CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ अथ भाषाटीकासहितं श्रीमदध्यात्मरामायणं प्रारभ्यते ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भाषाटीकासहिताध्यात्मरामायणानुक्रमणिका.

सर्गाङ्क	विषय.	पृष्ठाङ्क.
	बालकाण्ड १।	
१	उपक्रम तथा ब्रह्माजीका नारदजीसे अध्यात्मरामायणका माहात्म्य कहना.	१
१	श्रीमहादेवजीकरके श्रीपार्वतीसे संक्षिप्तरामकथा कहना. तथा श्रीमुखसे रामहृदयनिरूपण	९
२	असुरभारपीडित पृथ्वीका गोरूप होकर देवता तथा ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीके पास जाना. ब्रह्माजीका भगवानकी स्तुति करना, भगवानका अभयदान देना. तथा वानरोंका पृथ्वीपर अवतार लेना	१०
३	दशरथजीका पुत्रेच्छासे यज्ञ करना. ऋष्यशृंगकी कथा तथा श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, इनको दशरथजीके घर जन्म लेना.	१२
४	विश्वामित्रका दशरथजीसे मांगकर राम लक्ष्मणका ले जाना तथा ताटकावध	१६
५	मारीच व सुबाहुका वध, अहल्याशापमोचन तथा रामस्तोत्र वर्णन	१९
६	रामलक्ष्मणसहित विश्वामित्रजीका जनकपुरगमन, धनुषभंग, दशरथजीको बरात साजके जनकपुरमें आना तथा रामविवाहवर्णन	२३
७	मार्गमें परशुरामपराभव, तथा श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें आगमन	२८
	अयोध्याकाण्ड २।	
१	श्रीरामचन्द्रजीका तथा श्रीनारदमुनिका संवादवर्णन	१
२	श्रीवसिष्ठजीके साथ राजा दशरथजीकी तथा कैकेयीके साथ मन्थराकी सम्मतिवर्णन	४
३	कैकेयीको राजा दशरथसे दो वरदान मांगना तथा सुमन्तुको रामचन्द्रजीका बुलाना	१०
४	श्रीरामचन्द्रजीको माता कौशल्याको समझाकर पिता दशरथजीके पास जाना	१४
५	लक्ष्मणजी तथा सीताजीको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीका वनमें जाना तथा शृंगवेरपुर पहुंचकर गुहसे भेट होना	२०
६	गुहलक्ष्मणसंवाद तथा रामचन्द्रजीका गंगा उतरकर भरद्वाज मुनिके आश्रममें जाना, भरद्वाजरामसंवाद तथा वाल्मीकि मुनिके आश्रममें जाना, तथा वाल्मीकिरामसंवादवर्णन	२१
७	दशरथजीका स्वर्गवास होना	३०
८	चित्रकूटमें राममरतमिलाप	३७
९	भरतजीका श्रीरामचन्द्रजीकी पादुका लेकर अयोध्यामें आना, पुनः नन्दिग्राम जाना तथा अत्रिमुनिके आश्रममें श्रीरामगमन	४१
	अरण्यकाण्ड ३।	
१	विराधराक्षसका वध	१
२	शरभंगमुनिका रामदर्शन कर, देहत्याग करना	४
३	रामचन्द्रजीका व अगस्त्यमुनिका मिलाप होना	८
४	रामजटायुमिलाप तथा पञ्चवटीवास	११
५	शूर्पणखाविरूपकरण तथा खरदूषणवध	१५
६	रावणका मारीचके पास जाना तथा मारीचका कपटमृगरूप होना	१८
७	सीताहरण तथा जटायुमरण	२१
८	जटायुदेहसंस्कार तथा रामसंतापवर्णन	२६
९	कबन्धवध....	२९
१०	रामशबरीसंवाद तथा शबरीको मोक्ष पाना	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
	किष्किन्धाकाण्ड ४ ।	
१	पंपासरोवरपर रामहनुमानमिलाप तथा सुग्रीवसे मैत्री होना	१
२	वालिवध	७
३	ताराविलाप	११
४	ऋष्यमूकशोभावर्णन तथा वर्षा व शरदृतुवर्णन और रामपूजाविधान	१५
५	लक्ष्मणजीको सक्रोध देख सुग्रीवका समझना और रामचंद्रजीके समीप आना....	१८
६	सीताको खोजनेके निमित्त वानरयूथोंका जाना	२२
७	वानरसम्पातिमिलाप	२६
८	सम्पातिकृतचन्द्रमामुनिकथित ज्ञानोपदेश	२९
९	सम्पूर्ण वानरोंको अपना २ बल वर्णन करना तथा हनुमानजीका पर्वताकाररूप धरना	३३
	सुंदरकाण्ड ५ ।	
१	हनुमानजीका समुद्रतरण, सुरसाभेट, सिंहिकावध, लंकिनीपराजय व लंकामें प्रवेश	१
२	राजमहलमें सीताजीको ढूंढ, अशोकवाटिकामें ढूंढना तथा उसीसमय वहांपर रावणका आगमन	९
३	हनुमानजीका सीतासे भेंट कर, मुद्रिका देके अशोकवाटिकाविध्वंस करना	९
४	रावणहनुमानसंवाद तथा लंकादाह	१५
५	हनुमानजीको सीताजीके पाससे रामसमीपगमन तथा सीता संदेशकथन	१९
	युद्धकाण्ड ६ ।	
१	ससैन्यरामसमुद्रतटगमन	१
२	विभीषणका रामशरणगमन	९
३	सकोप रामचन्द्रजीका समुद्रपर प्रहारकरणार्थ बाण चढ़ाना	७
४	रामेश्वरस्थापना, सेतुबन्ध तथा शुककृत रावणको उपदेश	११

सर्गाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
५	शुकस्वगृहगमन तथा रामरावणसंग्राम	१५
६	लक्ष्मणजीका शक्तिप्रहारसे मूर्च्छित होना	२१
७	कालनेमिवध, लक्ष्मणसंज्ञाप्राप्ति, तथा रावणको कुम्भकर्णका जगाना	२४
८	कुम्भकर्णवध	२८
९	मेघनादवध	३२
१०	रावणका यज्ञ करना	३६
११	रावणवध	४०
१२	सीताजीका आना तथा अग्निमें परीक्षा लेना....	४९
१३	श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें आगमन	५०
१४	राममरतमिलाप	५५
१५	रामराज्याभिषेक	६०
१६	सुग्रीव आदिकोंका विदा होना	६५
	उत्तरकाण्ड ७ ।	
१	श्रीरामचन्द्रजीके समीप अगस्ति आदि मुनियोंका आगमन	१
२	अगस्तिजीकृतके मृतरावणके उत्पातोंका कथन....	४
३	वालि व सुग्रीवके जन्मकी कथा	९
४	श्रीरामकृतसीतात्याग	१२
५	श्रीरामगीता	१६
६	लवणासुरवध	२८
७	सीताका भूमिमें प्रवेश	३२
८	रामकृतलक्ष्मणत्याग	३७
९	रामनिजधामगमन....	४१

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना ।

महाशयो ! विचार करके देखिये तो इस असार संसारमें सिवाय " श्रीरामचरित " के और कुछभी सार नहीं है. और इस लोक तथा परलोकमें सुख सम्पादन करनेका इसके अतिरिक्त अन्य साधनभी नहीं है. यह बात सुज्ञ महाशयगण भली भांति जानते हैं. और यही विचारकर लोकोपकारपरायण, उदारचित्त वेदव्यासादि महर्षियोंने श्रीमन्महाभारत आदि इतिहास तथा श्रीमद्भागवतादि अष्टादश पुराण तथा श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणादि-ग्रंथोंमें उक्त विषयकोही बड़े विस्तारपूर्वक वर्णन किया है. महर्षिवेदव्यासविरचित उन्ही अष्टादश पुराणोंके अन्तर्गत यह " ब्रह्माण्ड-पुराण " भी है. इसीके अन्तर्गत यह तरणतारण " अध्यात्मरामायण " है, जिसमें महर्षिवेदव्यासजीने जगतके माता पिता श्रीशिवपार्वतीके संवादद्वारा श्रीरामकथाप्रसंगसे ऐसे अध्यात्मज्ञानका निरूपण किया है, कि जिसके श्रवणमात्रसे जीवन्मुक्तपुरुषोंको परमानन्द प्राप्त होता है. और मुमुक्षुपुरुषोंके अन्तःकरणमें विवेकरूप भास्करका उदय होकर अज्ञानरूप महान्धकारका नाश होजाता है. और ब्रह्मानन्दका अनुभव भी भली भांति होने लगता है. तथा जन्म-मरणादिदुःखरूप संसार निवृत्त होजाता है. और इन्द्रियसम्बन्धी विषयोंका अनुभव करनेवाले विषयीपुरुषोंके भी श्रोत्र, इन्द्रिय तथा मनको निरतिशय आनन्द प्राप्त होता है. अर्थात् कर्णपुटोंद्वारा इस श्रीरामचरितसम्बन्धी ज्ञानामृतका पानकरके विषयी पुरुषोंको भी ब्रह्मसुखका अनुभव होने लगता है. इसप्रकारके श्रीरामचरित्रको चाण्डाल व आत्मघातीके अतिरिक्त ऐसा कौन पुरुष है जो पान करनेसे वञ्चित रह जाय ? जैसा कि श्रीमद्भागवतमें कहा है.—" निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् " ॥ सारांश यह है कि यह " श्रीरामचरित " बालकसे लेके बूढ़ेपर्यंत सबको परमप्रिय है. इसप्रकार यद्यपि यह अध्यात्मरामायणमें निरूपित " श्रीरामचरित " सर्व साधारणके लिये परमोपयोगी है; तथापि संस्कृत भाषा और कठिन विषय होनेके कारण —

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे सहयोगी अल्पज्ञ महाशयगण इस परमानन्दसे वञ्चित रहते थे. उन लोगोंकोभी सुज्ञ महाशयोंकी भांति इसकी प्राप्ति होनेके लिये हमने हमारे मित्र, मुरादाबादनिवासी श्रीपंडित रामस्वरूपशर्माद्वारा इस ग्रंथका सुललित, सरल हिन्दी भाषामें परम मनोहर भाषान्तर निर्माण कराया और सुमेरपुर निवासी श्रीपंडित रघुवंशशर्माद्वारा बड़े परिश्रमसे शुद्ध करायके श्वेत, सुपुष्ट, सचिक्कण कागजपै सुवाच्य टाइपके अक्षरोंमें छापके प्रसिद्ध किया है.

आशा है कि गुणग्राही सज्जनपुरुष एक बार अवलोकन करके इस हमारे अपार परिश्रमको सफल करेंगे. और दृष्टि दोषसे रहेहुये प्रमादोंको सदयहृदय होकर क्षमा करेंगे. इत्यलं वि

होयँ चिरायू जगतमें, पण्डित हरिप्रसाद ॥ लक्ष्मी अरु यशको लहैं, कबहुँ न होय विषाद ॥ १ ॥
हैं यद्यपि जगमें बहुत, रामचरितके ग्रन्थ ॥ पर विशेष यामें कियो, ज्ञानकाण्डको मन्थ ॥ २ ॥
पश्चिमोत्तर देशमध, रामगंग सुगँभीर ॥ नगर मुरादाबाद है, बुध-कवि-युत तातीर ॥ ३ ॥
तहँ बसि रामस्वरूपने, रामरूप चित धार ॥ अध्यातमभाषा रची, निजमतिके अनुसार ॥ ४ ॥
उमा सुनी शंकर कही, रामकथा सुखदान ॥ जो याको चितमें लहै, होय ज्ञानकी खान ॥ ५ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

हनुमानदास वृजवल्लभजीका पुस्तकालय—
ठि० चौक—कानपूर.

हरिप्रसाद भगीरथजीका पुस्तकालय—
ठि०—कालिकादेवीरोड़—रामवाड़ी मुम्बई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

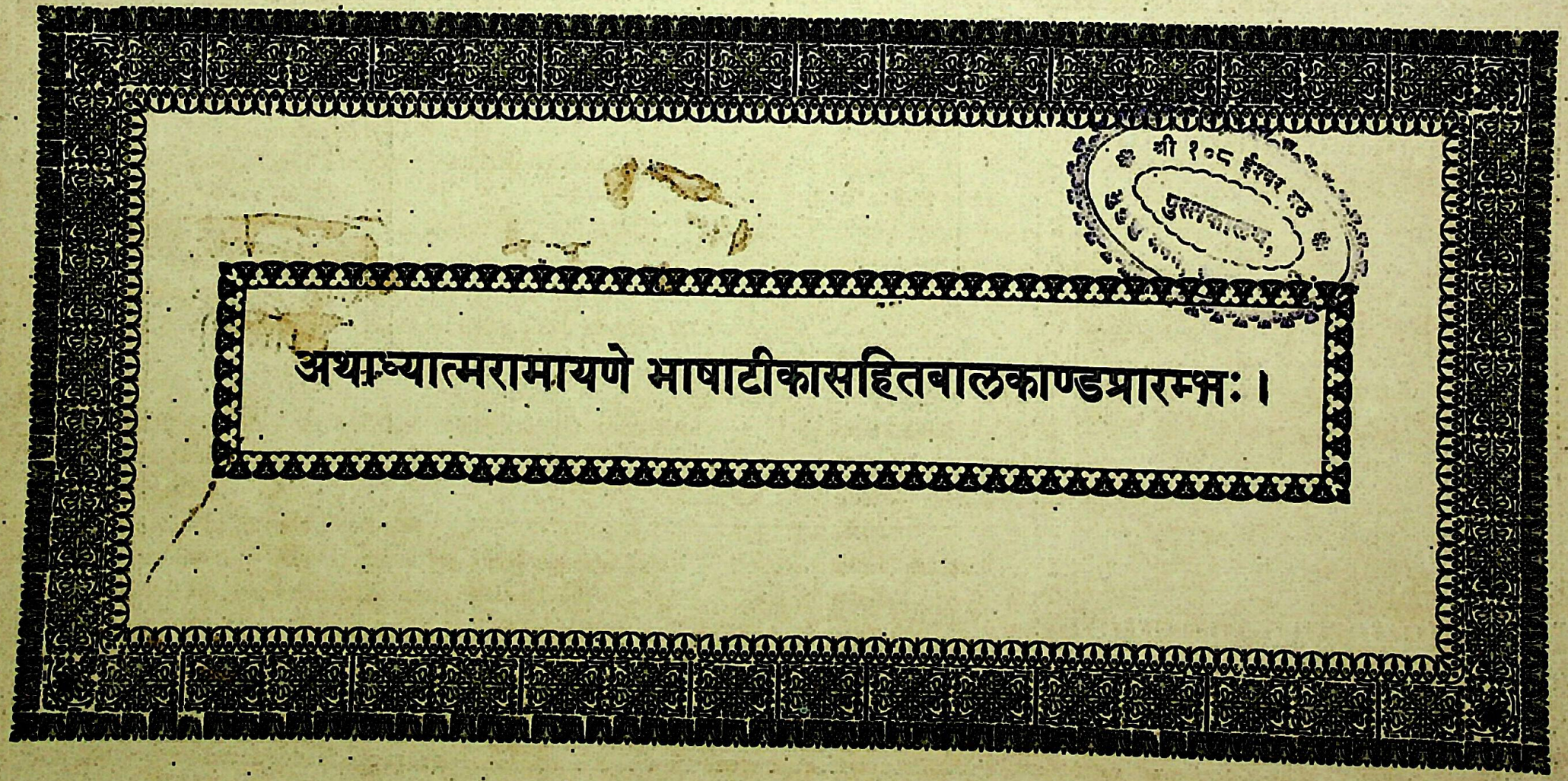

अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितबालकाण्डप्रारम्भः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक—योच्छिनच्छरपूगेण दशकन्धरकन्धराः ॥ तम्भजे जानकीजानिं रामं कामातिसुन्दरम् ॥ १ ॥

दोहा—विघ्नहरणमंगलकरण, गणनायक सुखदैन ॥ चरणकमलतिनकेशुभग, सुमरौंहियदिनरैन ॥ १ ॥
गौरीगौरीपतिभजों, रिद्धिसिद्धिदातार ॥ भवभयनाशनभक्तगति, मंगलमुदकरतार ॥ २ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अप्रमेय अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकरकें जाननेमें अशक्य जो त्रय अर्थात् माया, जीव और ईश्वर इनसे पर, निर्म्मल ज्ञान स्वरूप, मन और वाणीके अविषय जो दक्षिणामूर्ति सदाशिव हैं उनको नमस्कार है ॥ १ ॥ शौनकादि ऋषियोंके प्रति सूतजी बोले कि, किसी समय सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हुए योगक्रियामें प्रवीण श्रीनारदजी पुरुषोंके उपर अनुग्रहकरनेकी अन्य इच्छा करके ब्रह्मलोकमें आये ॥२॥ तहां मूर्तिमान् वेदोंकरके चारों ओरसे स्तुति करते हुए बालसूर्यकी कान्तिके समान कान्तिकरके समास्थानको प्रकाशित करते हुए, मार्कण्डेय

श्रीगणेशाय नमः ॥ अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये ॥ मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१॥ सूत उवाच ॥ कदाचिन्नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छया ॥ पर्यटन्सकलाँल्लोकान्सत्यलोकमुपागमत् ॥ २ ॥ तत्र दृष्ट्वा मूर्तिमद्भिश्छन्दोभिः परिवेष्टितम् ॥ बालार्कप्रभया सम्यग्भासयन्तं सभागृहम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयादिमुनिभिः स्तूयमानं मुहुर्मुहुः ॥ सर्वार्थगोचरज्ञानं सरस्वत्या समन्वितम् ॥ ४ ॥ चतुर्मुखं जगन्नाथं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ॥ प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥ ५ ॥ सन्तुष्टस्तं मुनिं प्राह स्वयंभूर्वैष्णवोत्तमम् ॥ किं प्रष्टुकामस्त्वमसि तद्वदिष्यामि ते मुने ॥ ६ ॥

आदि ऋषियोंकरके वारंवार स्तुति करते हुए, भूत भविष्य और वर्त्तमान जो सम्पूर्ण पदार्थ तिनके ज्ञाता, सरस्वतीकरके युक्त और भक्तोंकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाले, तथा जगत्को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजीको देख भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके श्रीनारदजी स्तुति करने लगे ॥३॥ ४ ॥ ५ ॥ तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ परम भागवत नारदमुनिसे बोले कि—हे मुने! तुम्हारी क्या प्रश्न करनेकी इच्छा है, सो प्रश्न करो, मैं तुम्हारे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ उसका उत्तर कहूँगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार तिनके वचनको सुनकर नारदमुनि ब्रह्माजीसे बोले—कि मैंने आपसे प्रथमही सम्पूर्ण सत् और असत् कर्म्म तथा उनका फल श्रवण किया ॥ ७ ॥ हे देववर्य! इस समय एकही वार्त्ता श्रवण करनेकी शेष रही है, सो यदि आपका मेरेऊपर प्रेम है तौ उस गुप्त वार्ताकोभी मुझको वर्णन करो ॥ ८ ॥ कि घोर कलियुगके प्राप्त होनेपर सम्पूर्ण मनुष्य पुण्यहीन होंगे, दुराचारमें तत्पर होंगे और सत्यवार्तासे विमुख अर्थात् निष्प्रयोजनही मिथ्या भाषण करनेवाले होंगे ॥९॥ दूसरेकी निन्दा करनेमें तत्पर होंगे, दूसरेकी हिंसा करनेमें तत्पर होंगे, दूसरेके द्रव्यकी इच्छा करनेवाले होंगे, परस्त्रीकेविषे मन लगानेवाले होंगे ॥ १० ॥ देहेके विषेही आत्मदृष्टि करनेवाले होंगे, मूढ होंगे, नास्तिक होंगे, पशुबुद्धि अर्थात्

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनिर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ त्वत्तः श्रुतं मया सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम् ॥ ७ ॥ इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सुरसत्तम ॥ तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो मयि ॥ ८ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ॥ दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्मुखाः ॥ ९ ॥ परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः ॥ परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ॥ १० ॥ देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः ॥ माता पितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः ॥ ११ ॥ विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः ॥ धनार्जनार्थमभ्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥ १२ ॥ त्यक्तस्वजातिकर्माणः प्रायशः परवञ्चकाः ॥ क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥ १३ ॥ तद्वच्छूद्राश्च ये केचिद्ब्राह्मणाचार तत्पराः ॥ स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञाननिर्भयाः ॥ १४ ॥ श्वश्रूद्रोहकारिण्यो भविष्यन्ति न संशयः ॥ एतेषा नष्टबुद्धिनां परलोकः कथं भवेत् ॥ १५ ॥

आहारविहारमात्रमें तत्पर होंगे, मातापितासे द्वेष करनेवाले होंगे, स्त्रीही है देवता कहिये पूज्य जिनकी अर्थात् स्त्रियोंके वशीभूत और कामदेवके भृत्य (दास) होंगे॥११॥और ब्राह्मण लोभरूपी पिशाचसे ग्रसे हुए होंगे, वेदादि शास्त्रोंको बेंचकर जीविका करनेवाले होंगे, धनकी प्राप्तिके अर्थही विद्याभ्यास करनेवाले होंगे, मदकरके अन्य पुरुषोंका अपमान करनेवाले होंगे ॥ १२ ॥ और क्षत्रिय तथा वैश्यभी अपने धर्मको स्वभावसेही त्यागनेवाले होंगे, अपनी जातिके कर्मको त्यागनेवाले और प्रायः अन्य पुरुषोंको ठगनेवाले होंगे ॥ १३ ॥ तिसीप्रकार जो कोई शूद्र होंगे वह ब्राह्मणोंका आचार करनेमें तत्पर होंगे और स्त्रियें प्रायः भ्रष्ट तथा पतिका अपमान करनेमें निःशंक होंगी ॥ १४ ॥ और श्वशुरसे द्रोह करनेवाली होंगी इसमें कोई सन्देह नहीं है. इन नष्टबुद्धि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योंको स्वर्गलोककी प्राप्ति किस प्रकार होयगी ॥ १५ ॥ इस चिन्ताकरके मेरा चित्त निरन्तर व्याकुलहो रहा है. अब जिस स्वल्प उपायकरके इनकी परलोकगति होवे ॥ १६ ॥ उस उपायको आप कहिये क्यों कि आप सब जानते हैं. इस प्रकार नारदऋषिके वाक्यको सुनकर कमलासन ब्रह्माजी बोले ॥ १७ ॥ कि हे साधो! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया. अब मैं कहता हूँ सो तुम आदरपूर्वक श्रवण करो. पूर्वकालमें भक्तोंकेऊपर कृपा करनेवाली पार्वतीजी श्रीरामतत्वको जाननेकी इच्छा करके विनयपूर्वक त्रिपुरारि शिवजीमहाराजसे प्रश्न करती हुई और शिवजीमहाराज तिन पार्वतीकेअर्थ वह गूढ़ रामतत्व स्वयम् वर्णन करते हुए ॥ १८ ॥ १९ ॥ जो श्रीमदध्यात्मरामायण सब पुराणोंमें उत्तम पुराण है उस

इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते मम सन्ततम् ॥ लघूपायेन येनैषा परलोकगतिर्भवेत् ॥ १६ ॥ तमुपायमुपाख्याहि सर्वं वेत्ति यतो भवान् ॥ इत्यृषेर्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाचाम्बुजासनः ॥ १७ ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो वक्ष्ये तच्छृणु सादरम् ॥ पुरा त्रिपुरहन्तारं पार्वती भक्तवत्सला ॥ १८ ॥ श्रीरामतत्त्वं जिज्ञासुः पप्रच्छ विनयान्विता ॥ प्रियायै गिरिशस्तस्यै गूढं व्याख्यातवान्स्वयम् ॥ १९ ॥ पुराणोत्तममध्यात्मरामायणमिति स्मृतम् ॥ तत्पार्वती जगद्धात्री पूजयित्वा दिवानिशम् ॥ २० ॥ आलोचयन्ती स्वानन्दमग्ना तिष्ठति साम्प्रतम् ॥ प्रचरिष्यति तल्लोके प्राण्यदृष्टवशाद्यदा ॥ २१ ॥ तस्याध्ययनमात्रेण जना यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरःसरम् ॥ २२ ॥ यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ तावत्कलिमहोत्साहो निःशङ्कं सम्प्रवर्तते ॥ २३ ॥ यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ तावद्यमभटाः शूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः ॥ २४ ॥

अध्यात्मरामायणको जगज्जननी पार्वतीजी पूजन करके रात्रिदिन विचार करती हुई इस समयभी निजानन्दमें मग्न है. प्राणियोंके भाग्यवशसे यदि उस अध्यात्मरामायणका मनुष्यलोकमें प्रचार होजायगा तो ॥ २० ॥ २१ ॥ इस अध्यात्मरामायणके पाठ करनेमात्रसेभी पुरुष सद्गतिको प्राप्त होंगे. हे नारद! ब्रह्महत्यादि पाप संसारमें तबतकही गर्ज रहे हैं और तबतकही कलियुग निःशंक होकर बड़े उत्साहसे संसारमें प्रवृत्त होते हैं जबतक अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता है ॥ २२ ॥२३॥ जबतक जगत्में अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता है तबतक यमके शुर दूत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्भय विचरते हैं ॥ २४ ॥ जबतक अध्यात्मरामायणका जगत्में उदय नहीं होता है तबतकही सम्पूर्ण शास्त्र परस्पर विवाद करते हैं ॥ २५ ॥ तबतकही श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप शास्त्रज्ञ पुरुषोंकोभी दुर्बोध है जबतक जगत्में अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता है ॥ २६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! अध्यात्मरामायणके कीर्तन और श्रवणके फलको पूर्ण रीतिसे वर्णन करनेको मैंभी समर्थ नहीं हूं ॥ २७ ॥ तथापि हे निष्पाप! तिस अध्यात्मरामायणका किंचिन्मात्र माहात्म्य जो कि पूर्वकालमें शिवजीने मुझको वर्णन किया था सो वर्णन करता हूं तुम चित्त लगाकर श्रवण करो ॥ २८ ॥ अध्यात्मरामायणका एक श्लोक अथवा आधा श्लोकभी जो भक्तियुक्त होकर पढै वह तत्क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है ॥ २९ ॥ जो पुरुष

यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम् ॥ २५ ॥ तावत्स्वरूपं रामस्य दुर्बोधं महतामपि ॥ यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति ॥ २६ ॥ अध्यात्मरामायणसङ्कीर्तनश्रवणादिजम् ॥ फलं वक्तुं न शक्नोमि कात्स्न्र्येन मुनिसत्तम ॥ २७ ॥ तथाऽपि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तवानघ ॥ शृणु चित्तं समाधाय शिवेनोक्तं पुरा मम ॥ २८ ॥ अध्यात्मरामायणतः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ॥ यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥ २९ ॥ यस्तु प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनन्यधीः ॥ यथाशक्ति वदेद्भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ३० ॥ यो भक्त्यार्चयतेऽध्यात्मरामायणमतन्द्रितः ॥ दिनेदिनेऽश्वमेधस्य फलं तस्य भवेन्मुने ॥ ३१ ॥ यदृच्छयापि योऽध्यात्मरामायणमनादरात् ॥ अन्यतः शृणुयान्मर्त्यः सोऽपि मुच्येत पातकात् ॥ ३२ ॥ नमस्करोति योऽध्यात्मरामायणमदूरतः ॥ सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ३३ ॥

प्रतिदिन अनन्यचित्त होकर अध्यात्मरामायणका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक पाठ करै वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥ ३० ॥ हे नारद मुने! जो पुरुष सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन अध्यात्मरामायणका पूजन करता है उस पुरुषको प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ करनेका फल होता है ॥ ३१ ॥ जिस किसी इच्छाके अनुसार अनादरसे भी जो पुरुष अन्यसे अध्यात्मरामायणको श्रवण करै वह भी पातकसे मुक्त होता है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष समीपसे अध्यात्मरामायणको नमस्कार करता है, वह निःसन्देह सम्पूर्ण देवताओंके पूजन करनेके फलको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो पुरुष अध्यात्मरामायणकी सम्पूर्ण पुस्तकको लिखकर श्रीरामचन्द्रके भक्तोंके लिये देता है उसका फल श्रवण करो ॥ ३४ ॥ वेद, शास्त्र और व्याकरणादिके अध्ययन करनेपरभी जो फल दुर्लभ होता है वह फल अध्यात्मरामायणका पुस्तक देनेवालेको होता है ॥ ३५ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजीका भक्त श्रेष्ठ पुरुष एकादशीके दिन उपवास करके सभामें अध्यात्मरामायणकी कथाको कहता है तिसके पुण्यका फल कहताहूं, हे विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजी! तुम श्रवण करो ॥ ३६ ॥ कि प्रत्यक्षर गायत्रीके पुरश्चरण करनेका फल उसको प्राप्त होता है. श्रीरामनवमीके दिन उपवासका व्रत करके रात्रिमें जागरण करके चित्त जगाकर जो पुरुष अध्यात्मरामायणका पाठ करे वा श्रवण करे उसके पुण्यको वर्णन करता हूं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कुरुक्षेत्र आदि सम्पूर्ण तीर्थों सूर्यग्रहणके

लिखित्वा पुस्तकेऽध्यात्मरामायणमशेषतः ॥ यो दद्याद्रामभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३४ ॥ अधीतेषु च वेदेषु शास्त्रेषु व्याकृतेषु च ॥ यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत् ॥ ३५ ॥ एकादशीदिनेऽध्यात्मरामायणमुपोषितः ॥ यो रामभक्तः सदसि व्याकरोति नरोत्तमः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणु वैष्णवसत्तम ॥ ३६ ॥ प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं भवेत् ॥ उपवासव्रतं कृत्वा श्रीरामनवमीदिने ॥ ३७ ॥ रात्रौ जागरितोऽध्यात्मरामायणमनन्यधीः ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥ ३८ ॥ कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ॥ आत्मतुल्यं धनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥ ३९ ॥ विप्रेभ्यो व्यासस्तुल्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमश्नुते ॥ तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ४० ॥ यो गायते मुदाध्यात्मरामायणमहर्निशम् ॥ आज्ञां तस्य प्रतीक्षन्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ४१ ॥ पठन्प्रत्यहमध्यात्मरामायणमनुव्रतः ॥ यद्यत्करोति तत्कर्म ततः कोटिगुणं भवेत् ॥ ४२ ॥ तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत्सुसमाहितः ॥ स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ॥ ४३ ॥ श्रीरामहृदयं यस्तु हनूमत्प्रतिमान्तिके ॥ त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स सर्वेप्सितमाग्भवेत् ॥ ४४ ॥

समय जलमें स्थित होकर व्यासजीकी तुल्य ब्राह्मणोंको अपनी तुलाका धन देनेसे जो फल होता है, वही फल उस पुरुषको होता है, यह मैं सत्य सत्य कहताहूँ इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो पुरुष प्रेम करके रात्रिदिन अध्यात्मरामायणका गान करता है, उस पुरुषकी आज्ञाकी इन्द्रादि देवता प्रतीक्षा(इच्छा)करते हैं ॥ ४१ ॥ तत्पर होकर प्रतिदिन अध्यात्मरामायणको पढ़ता हुआ पुरुष जो जो कार्य करता है वह करोड़गुणा होजाता है ॥ ४२ ॥ तिस अध्यात्मरामायणकेविषे श्रीरामहृदयको जो पुरुष सावधान होकर पढ़े, वह ब्रह्महत्यारा हो तोभी तीन दिनमेंही पवित्र होजाता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष श्रीरामहृदयको हनुमान्जीकी प्रतिमाके समीपमें तीनवार मौन होकर पढ़ता है, वह संपूर्ण अभिलषित फलोंको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि तुलसी और पीपलके समीप श्रीरामहृदयको पढ़ता हुआ प्रदक्षिणा करे तो प्रत्यक्षर ब्रह्महत्याको दूर करता है ॥ ४५ ॥ हे मुने ! श्रीरामगीताके सम्पूर्ण माहात्म्यको श्रीशिवजी जानते हैं, उसका आधा पार्वती जानती है और तिसका आधा मैं जानता हूँ ॥ ४६ ॥ सो तुझको अर्थ किंचिन्मात्र वर्णन करूंगा, क्योंकि सम्पूर्ण नहीं कहाजासक्ता. जिसको जानकर पुरुष तत्क्षण चित्तशुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ हे नारद ! जिस पापको श्रीरामगीता नहीं नष्ट करती है वह पाप कभीभी किसी तीर्थमें भी नष्ट नहीं होताहै ॥ ४८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपनिषद्रूपी समुद्रको मथकर निकाली हुई और प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मणजीके लिये अर्पण करीहुई श्रीरामगीतारूपी अमृतको पीकर परमानन्दको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ जमदग्निके पुत्र

पठन् श्रीरामहृदयं तुलस्यश्वत्थयोर्यदि ॥ प्रत्यक्षरं प्रकुर्वीत ब्रह्महत्यां निवर्तयेत् ॥ ४५ ॥ श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शङ्करः ॥ तदर्धं गिरिजा वेत्ति तदर्धं वेद्म्यहं मुने ॥ ४६ ॥ तत्ते किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते ॥ यज्ज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोक श्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद ॥ तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ॥ ४८ ॥ रामेणोपनिषत्सिन्धुमुन्मथ्योत्पादितां मुदा ॥ लक्ष्मणायार्पितां गीतासुधां पीत्वाऽमरो भवेत् ॥ ४९ ॥ जमदग्निसुतः पूर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया ॥ धनुर्विद्याभ्यसितुं महेशस्यान्तिके वसन् ॥ ५० ॥ अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः ॥ श्रुत्वा गृहीत्वाऽऽशु पठन्नारायणकलामगात् ॥ ५१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति ॥ रामगीतां मासमात्रं पठित्वा मुच्यते नरः ॥ ५२ ॥ दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् ॥ पापं यत्तत्कीर्तनेन रामगीता विनाशयेत् ॥ ५३ ॥ शालग्रामशिलाग्रे च तुलस्यश्वत्थसन्निधौ ॥ यतीनां पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥ ५४ ॥

परशुरामजी पूर्वकालमें कार्त्तवीर्यके वधकी इच्छा करके धनुर्विद्याका अभ्यास करनेके निमित्त सदाशिवके समीपमें निवास करते हुए, तब प्रयत्नपूर्वक पार्वतीजीकरके पढ़ी हुई रामगीताको श्रवण करके, शीघ्रही उसको ग्रहण कर पढ़ते हुए नारायणकलाको प्राप्तहुए ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यदि ब्रह्महत्या आदि पापोंसे उद्धार होनेकी इच्छा होय तो पुरुष एक मासपर्यन्त रामगीताका पाठ करके मुक्त होता है ॥ ५२ ॥ कुत्सित दान लेना, कुत्सित भोजन करना और निन्दित आलाप करनेसे उत्पन्न हुए पापको रामगीताका पाठ करनेसे विनष्ट कर देती है ॥ ५३ ॥ शालिग्रामकी शिलाके आगे, तुलसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा पिप्पलके समीपमें और संन्यासियोंके सन्मुख जो पुरुष रामगीताको पढ़ै वह उस फलको प्राप्त होता है जिसका कथन नहीं हो सक्ता, जो पुरुष भक्तिपूर्वक रामगीताको पढ़ता हुआ श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उसके वह सम्पूर्ण पितर विष्णुभगवान्के परंपद अर्थात् वैकुण्ठको प्राप्त होते हैं, एकादशीके दिन निराहार करके द्वादशीके दिन अगस्त्य वृक्षकी जड़में खड़ा होकर जो रामगीताको पढै वह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजीका रूप होकर देवताओंकरके पूजा जाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ दानके विना, ध्यानके विना और तीर्थ स्नानके विनाही पुरुष रामगीताको पढ़कर-अनन्त दान ध्यानादिके फलको प्रात होता है ॥ ५८ ॥ हे नारद ! यहाँ बहुत कहनेसे क्या है अर्थात् अधिक कहना निरर्थक है, अब तुम तत्व सुनो कि

स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरम् ॥ रामगीतां पठन्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान् ॥ ५५ ॥ तस्य ते पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥ एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशीदिने ॥ ५६ ॥ स्थित्वागस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः ॥ स एव राघवः साक्षात्सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥ ५७ ॥ विना दानं विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनम् ॥ रामगीतां नरोऽधीत्य तदनन्तफलं लभेत् ॥ ५८ ॥ बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च ॥ अर्हन्ति नाल्पामध्यात्मरामायणकलामपि ॥ ५९ ॥ अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वराय माहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन ॥ यः श्रद्धया पठति वा शृणुयात्स मर्त्यः प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमानः ॥ ६० ॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायणे माहात्म्यकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रुति स्मृति पुराण इतिहास और सैंकड़ों शास्त्र यह सब अध्यात्मरामायणकी स्वल्पकलाकोभी नहीं पाते हैं ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजीकरके नारदमुनिके मिमित्त कहे हुए इस अध्यात्मरामायणको जो मनुष्य श्रद्धाकरके पढ़े अथवा श्रवण करे वह देवताओंसे पूजित होता हुआ विष्णुलोकको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे अध्यात्मरामायणे बालकाण्डे भारद्वाजगोत्रोद्भवभोलानाथात्मजमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितया भाषाटीकया सहितः प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो चैतन्यस्वरूप अविनाशी श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त देवताओंके प्रार्थना करनेपर पृथ्वीतलकेविषे सूर्यवंशमें मायाकरके मनुष्यरूपसे उत्पन्न हुए, और परिवारसहित रावणका वध करके, तथा लोकोंके पापोंको हरनेवाली स्थिर कीर्तिको त्रिलोकीमें स्थापन करके फिर निरुपाधिक ब्रह्मभावको प्राप्त होगए तिन जानकीपति रामचन्द्रको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके मुख्य हेतु, मायाके आश्रय, मायाकरके रहित, अचिन्त्यमूर्ति, आनन्दघन, निर्म्मल, निजबोधरूप और जाना है अपना ज्ञानस्वरूप जिन्होंने ऐसे सीतापति श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ जो पुरुष चित्त लगाकर शुभ फलदायक, सम्पूर्ण पुराणोंको माननीय अध्यात्म रामायणको पढ़ते हैं, अथवा श्रवण करते

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः सञ्जातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ॥ निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरा कीर्तिं पापहरा विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥ १ ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम् ॥ आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि ॥ २ ॥ पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम् ॥ रामायणं सर्वपुराणसम्मतं निर्धूतपापा हरिमेव यान्ति ते ॥ ३ ॥ अध्यात्मरामायणमेव नित्यं पठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम् ॥ गवां सहस्रायुतकोटिदानात्फलं लभेद्यः शृणुयात्स नित्यम् ॥ ४ ॥ पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता ॥ अध्यात्मरामगङ्गेयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥ कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसङ्घैः ।
देवी वामाङ्कसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं वाक्यमानन्दकन्दम् ॥ ६ ॥

हैं वह पुरुष निष्पाप होकर हरिकोही प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ यदि संसाररूपी बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा करे तो नित्य अध्यात्मरामायणकाही पाठ करे, जो पुरुष नित्य अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है वह पुरुष सहस्रों और करोड़ों गौओंके दानके फलको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ शिवजीरूप पर्वतसे उत्पन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीरूप समुद्रसे मिलीहुई यह अध्यात्मरामायणरूप गङ्गा त्रिलोकीको पवित्र करती है ॥ ५ ॥ कैलासपर्वतके शिखरमें सैंकडों सूर्योंकी समान प्रकाशवान् मंदिरमें रत्नजटित सिंहासनपर बैठेहुए, ध्यानमें तत्पर, सिद्धसमूहोंकरके सेवित, निर्भय, आनन्दकन्द श्रीशिवजीमहाराजसे वामभागमें स्थित हिमालयकुमारी श्रीपार्वतीजी भक्तिपूर्वक नम्र होकर एक समय सम्पूर्ण दोषोंके हरनेवाले इस वाक्यको बोली ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पार्वती बोली—कि हे देव ! हे जगदाधार ! हे सबको आत्मदृष्टिसे अवलोकन करनेवाले आप सर्वथा समर्थ हैं, और आपभी सनातन हैं इसकारण आपसे सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ जो श्रीरामचन्द्रजी तिनके निरुपाधिक तत्वको पूंछती हूँ ॥ ७ ॥ जो अत्यन्त गुप्त रखने योग्य है और जो भक्तसे अन्यके अर्थ कहने योग्य नहीं हैं और जिस तत्वको महात्मा पुरुष भक्तोंके अर्थ वर्णन करते हैं, सो आप मेरेअर्थ वर्णन करो क्योंकि हे देव ! मैं तुम्हारी भक्त हूँ और आप मेरे प्रिय हैं ॥ ८ ॥ जिस ज्ञानकेद्वारा पुरुष संसारको तर जाते हैं, अर्थात् संसारबंधनसे छूटकर मुक्त होजाते हैं, तिस निदिध्यासनके परिपाकसे उत्पन्न होनेवाले अपरोक्ष ज्ञानकरके सहित और भक्ति तथा वैराग्यकरके युक्त विशेषकरके प्रकाशवान् तथा स्वल्प शब्दोंकरके

॥ पार्वत्युवाच ॥ नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोसि ॥ ७ ॥ गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः ॥ तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम् ॥८॥ ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्तिवैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत् ॥ जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन ॥ ९ ॥ पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ॥ श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे भक्तिर्दृढा नौर्भवति प्रसिद्धा ॥ १० ॥ भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नान्यत्ततः साधनमस्ति किञ्चित् ॥ तथाऽपि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ॥ ११ ॥ वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम् ॥ भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ॥ १२ ॥

सहित आत्मज्ञानको उत्पन्न करनेवाले वाक्योंको इसप्रकार वर्णन करिये, जिसप्रकार मैं स्त्रीभी आपके कथनको जान लूं ॥ ९ ॥ हे कमलनेत्र ! और भी एक परम गुप्तवार्ता पूंछती हूँ उसको आप प्रथम कहिये, जिससे सम्पूर्ण त्रिलोकीमें सारभूत जो श्रीरामचन्द्रजी तिनकेविषे हम दोनोंकी दृढ़ भक्ति प्रसिद्ध होयगी ॥ १० ॥ यद्यपि संसाररूपी बंधनसे मुक्त करनेके लिये भक्तिरूपही साधन प्रसिद्ध है अन्य नहीं तथापि आप निर्मल वचनों करके मेरे हृदयके संदेहरूप बंधनका भेदन करनेको योग्य हो ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! ऋषिगण, श्रीरामचन्द्रीको प्रकृतिसे पर, अद्वितीय और सबका कारण तथा त्यागा है मायाके सत्वादिगुणोंका कराहुआ रागद्वेषादिका प्रवाह जिनोंने ऐसे वर्णन करते है, और सावधान होकर रात्रिदिन भजन करते हैं और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिस भजनकेद्वाराही सिद्ध होकर परम पदको प्राप्त होजाते हैं ॥ १२ ॥ और कोई ऋषि इसप्रकार कहते हैं कि मायासे परभी श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायाकरके आवृत ब्रह्मस्वरूप अपने रूपको नहीं जानते हैं, इसकारण परब्रह्मबोध होनेपर ईश्वररूप निज तत्वको जानते हैं ॥ १३ ॥ यह मायासे पर श्रीरामचन्द्रजी यदि परब्रह्मरूप निजस्वरूपको जानते हो तो सीताके निमित्त विलाप क्यों करते और यदि आत्मस्वरूपको नहीं जानते हैं, तो सम्पूर्णजीवसमूहोंके समान होकरभी जीवोंकरके किसकारण सेवन करे जाते हैं ॥ १४ ॥ इस विषयमें आपने क्या उत्तर जान रक्खा है, वह मे रे संशयको नष्ट करनेवाला वाक्य कहिये ॥ १५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति! तू धन्य है और भक्त है, जो ब्रह्मस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके नि-

वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम् ॥ जानाति नात्मानमतः परेण सम्बोधितो वेद परात्मत्त्वम् ॥ १३ ॥ यदिस्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण ॥ जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ॥ १४ ॥ अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम् ॥ १५ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ धन्याऽसि भक्ताऽसि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम् ॥ पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढम् ॥ १६ ॥ त्वयाऽद्य भक्त्या परिनोदितोऽहं वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते ॥ रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥१७॥ स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥ सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥ १८ ॥ जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि ॥ एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये ॥ १९ ॥

रुपाधिक रूपको जाननेकी तेरी इच्छा हुई. पहिले इस परम गुप्त रहस्यका वर्णन करनेको मुझको किसीनेभी प्रेरणा नहीं करी ॥ १६ ॥ आज तूने भक्तिपूर्वक मुझको प्रेरणा करी है, सो रामचन्द्रजीको प्रणाम करके तुझको वर्णन करूँगा. श्रीरामचन्द्रजी तो निश्चय करके ब्रह्मस्वरूप मायाके संसर्गसे रहित, अनादि, अद्वितीय और आनन्दस्वरूप तथा सम्पूर्ण जीवोंकी अपेक्षासे श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायाकरके इस सम्पूर्ण विश्वको रचकर आकाशकी समान भीतर और बाहर वर्तमान हैं और गूढरूपसे सबके अंतरमें स्थित होकरभी अपनी मायाकरके रचे हुए इस संसारको देखते हैं ॥ १८ ॥ जिसप्रकार लोहचुम्बकमणिके समीपमें लोहा स्वयं घूमताहै तिसीप्रकार जिन श्रीरामचन्द्रजीके समीपमें नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्माण्ड घूमते रहते हैं, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके निरुपाधिक शरीरको जो पुरुष अपनी उपाधिभूत अविद्याकरके मोहित अन्तःकरणवाले हैं, वही विमूढचित्त नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ जो पुरुष मायाको दूर करनेवाले शुद्ध बुद्धस्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रकेविषे अपने अज्ञानको आरोपण करते हैं, अर्थात् अपने अज्ञानसे श्रीरामचन्द्रजीको मायाके वशीभूत जानते हैं, वह पुरुष निश्चयकरके, पुत्रादिकोंमें आसक्त हो, अनेक यज्ञादि कर्म्म करते हुए, इस जन्ममरण संसारमेंही वारंवार घूमते रहते हैं ॥ २० ॥ अज्ञ पुरुष जिसप्रकार कण्ठमें धारण करे हुए सुवर्णके आभूषणका स्मरण न होनेसे नहीं जानते हैं, तिसीप्रकार हृदयमें स्थित श्रीरामचन्द्रजीको नहीं जानते हैं. जिसप्रकार ज्योतिःस्वरूप सूर्यकेविषे अन्धकार नहीं होता है, तिसीप्रकार, विशुद्ध, ज्ञानघन उत्कृष्टोंसेभी उत्कृष्ट श्रीरामचन्द्रमें अविद्याका सम्बध किसप्रकार हो सक्ता है? ॥ २१ ॥ जिसप्रकार

स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये ॥ संसारमेवानुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः ॥ २० ॥ जानन्ति नैवं हृदये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाऽज्ञाः ॥ यथाऽप्रकाशो न तु विद्यते खौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा ॥ विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमेऽविद्या कथं स्यात्परतः परात्मनि ॥ २१ ॥ यथा हि चाक्षणा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते ॥ तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृतं परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति ॥ २२ ॥ नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत्प्रकाशरूपा व्यभिचारतः क्वचित् ॥ ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने ॥ २३ ॥ तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः ॥ अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥ २४ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम् ॥ सीताराममरुत्सूनुसंवादं मोक्षसाधनम् २५

दोषकरके नष्ट हुई है बुद्धि जिसकी ऐसे पुरुषको नेत्रके भ्रमसे पृथ्वी घूमति हुईसी प्रतीत होती है, तिसीप्रकार अज्ञपुरुष देह इंद्रिय अन्तःकरण तथा जीवात्माके किये हुए कर्मको मायासे पर जो आत्मा तिसकेविषे आरोपण करके मोहको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जिसप्रकार केवल प्रकाशस्वरूप भगवान् सूर्यको किसी कालमें भी दिन और रात्रि नहीं होती है, तिसीप्रकार ज्ञान और अज्ञान दोनों शुद्ध चैतन्यघन श्रीरामचन्द्रजीमें किसीप्रकार स्थित नहीं होसकते हैं ॥ २३ ॥ तिसकारण सर्वोपरीआनन्दमय, विज्ञानरूप, अज्ञानके साक्षी, अरविन्दलोचन श्रीरामचन्द्रजीकेविषे अज्ञान नहीं हो सकता है, और मोहका कारण मायाका संबन्धभी नहीं है ॥ २४ ॥ इस विषयमें गुप्त रखने योग्य अत्यन्त दुर्लभ मो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षका साधन श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी तथा वायुपुत्र हनूमानजीका संवाद कहताहूँ ॥ २५ ॥ पूर्वकालमें रामावतारके समय श्रीरामचन्द्रजी, देवद्रोही रावणको संग्राममें पुत्र और सेना तथा वाहनों सहित मारकर ॥ २६ ॥ श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी तथा सुग्रीव और हनुमान् आदि वानरोंसे सहित रणमें श्लाघाको प्राप्त हो अयोध्या नगरीमें पहुँचे ॥ २७ ॥ और राज्याभिषेकको प्राप्त होकर वसिष्ठजी आदि महात्माओंसे युक्त, कोटिसूर्यकी समान कांतिमान् श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनपर विरामान थे ॥ २८ ॥ तिससमय महामति हनुमानजीको हाथ जोड़ेहुए सन्मुख स्थित, कृतकृत्य, विषयभोगकी अभिलाषारहित केवल ज्ञानकीही अपेक्षायुक्त देखकर ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजीसे यह वचन बोले कि—हे सीते! हनुमानजीके

पुरा रामायणे रामो रावणं देवकण्टकम् ॥ हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम् ॥ २६ ॥ सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ॥ अयोध्यामगमद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥ २७ ॥ अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः ॥ सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा तदा हनूमन्तं प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम् ॥ कृतकार्यं निराकाङ्क्षं ज्ञानापेक्षं महामतिम् ॥ २९ ॥ रामः सीतामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते ॥ निष्कल्मषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नौ नित्यभक्तिमान् ॥ ३० ॥ तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम् ॥ हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी ॥ ३१ ॥ रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचम् ॥ ३२ ॥ आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥ ३३ ॥

अर्थ मेरा निरुपाधिक स्वरूप वर्णन करो, यह निष्पाप और तत्त्वज्ञानका अधिकारी तथा हमारेविषे भक्ति करनेवाला है ॥ ३० ॥ संसारको मायास्वरूपकरके मोहित करनेवाली जनककुमारी श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीके कथनको अंगीकार करके, निरुपाधिक स्वरूपको जाननेका निश्चय करके शरणागत आएहुए श्रीहनुमानजीकेअर्थ वर्णन करनेलगी ॥ ३१ ॥ श्रीसीताजी बोली कि हे हनुमान्! श्रीरामचन्द्रजीको सच्चिदानन्दस्वरूप, अद्वितीय सब प्रकारकी उपाधिशून्य, सत्स्वरूप और मन तथा वाणीके अगोचर परब्रह्मरूप जानो ॥ ३२ ॥ और आनन्दस्वरूप, रजोगुणशून्य, शान्तस्वरूप, षड्भाव*

* जायते १ अस्ति २ वर्द्धते ३ विपरिणमते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६ इति षड्भावविकाराः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकारशून्य अविद्याकरके रहित, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्य्यामी, स्वप्रकाश, और निष्पाप जानो ॥ ३३ ॥ मुझे सृष्टि, स्थिति और प्रलयको करनेवाली मूल प्रकृति जानो, तिस रामचन्द्रजीके सम्बन्धमात्रसे इस विश्वको मैं सावधान होकर रचतीहूं ॥ ३४ ॥ तिस सर्वथा शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव रामचन्द्रजीके सम्बन्धसे मेरा रचाहुआ जगत् अज्ञानी पुरुषोंकरके परमात्मामें आरोपण कियाजाता है, तिन मुक्तस्वभाव श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यानगरीमें अतिनिर्म्मल रघुकुलमें जन्म ॥ ३५ ॥ और विश्वामित्रजीका सहायक होना, तदनन्तर यज्ञकी रक्षा करना, अहल्याके शापको दूर करना, महादेवजीके धनुषको तोडना, ॥ ३६ ॥ मेरे साथ विवाह, पीछे परशुरामजीके दर्पको नष्ट करना और मेरे साथ बारह वर्षपर्य्यन्त अयोध्यामें निवासमें

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ॥ तस्य सन्निद्धिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥ ३४ ॥ तत्सान्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः ॥ अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः ॥ अहल्याशापशमनं चापभङ्गो महेशितुः ॥ ३६ ॥ मत्पाणिग्रहणं पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षयः ॥ अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः ॥ ३७ ॥ दण्डकारण्यगमनं विराधवध एवच ॥ मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा ॥ ३८ ॥ जटायुषो मोक्षलाभः कबन्धस्य तथैव च ॥ शबर्याः पूजनं पश्चात्सुग्रीवेण समागमः ॥ ३९ ॥ वालिनश्च वधः पश्चात्सीतान्वेषणमेव च ॥ सेतुबन्धश्च जलधौ लङ्कायाश्च निरोधनम् ॥ ४० ॥ रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः ॥ बिभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह ॥ ४१ ॥ अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम् ॥ एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ॥ आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥ ४२ ॥

करना, ॥३७॥ दण्डकारण्यको जाना, विराधका वध करना, मायावी मारीचको मारना, तथा मायाकी सीताजीका हरण होना, ॥ ३८ ॥ जटायूको मोक्षकी प्राप्ति होना तथा कबन्धकी मुक्ति होना, शबरीसे रामचंद्रजीका पूजन होना, पीछे सुग्रीवसे समागम होना॥३९॥वालिका वध, तदनन्तर सीताका अन्वेषण, समुद्रके उपर सेतुका बांधना, और लंकापुरीको घेरना, ॥४०॥ युद्धमें पुत्रसहित दुष्टात्मा रावणका वध, विभीषणको राज्य देना, तदनन्तर मेरेसहित ॥४१॥ अयोध्यामें आना, तदनन्तर राज्याभिषेक, इत्यादि कर्म मैंनेही कियेहुए, निर्विकार सर्वान्तर्य्यामी इन श्रीरामचन्द्रजीकेविषे मूढ पुरुष आरोपण करतेहैं ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वास्तवमें श्रीरामचन्द्रजी न चलते हैं, न स्थित होते हैं, न पश्चात्ताप करते हैं, न किसीवस्तुकी आकांक्षा करते हैं, न किसीवस्तुका त्याग करते हैं और न कुछ कर्म्म करते हैं, किन्तु आनंदमूर्ति हैं, सर्वदा एकरस हैं, परिणामहीन हैं, अचल (कूटस्थ) हैं, तथापि मायाके गुणोंमें प्रविष्ट होकर तिन तिन सांसारिक अवस्थाओंको प्राप्तहुएसे प्रतीत होते हैं॥ ४३ ॥ श्रीशिवजी महाराज बोले—कि हे पार्वति ! फिर जीव और ईश्वर आदिका तत्त्व जाननेकी इच्छा करनेवाले हनुमानजीको श्रीरामचन्द्रजी स्वयं बोले कि हे हनूमान् ! अब मैं आत्मा (ईश्वर) और अनात्मा (चिदाभास जीव) तथा परात्मा (शुद्ध चैतन्य) के तत्त्वको वर्णन करता हूँ तुम श्रवण करो ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार एकही आकाशके तीनभेद देखनेमें आते हैं, जैसे कि एक तो महाकाश (जो सर्वत्र व्यापक हे), और दूसरा वही महाकाश जब जलाशयमें होता है तब जलाशयावच्छिन्न आकाश कहलावै है, तथा तीसरा

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोचत्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ॥ आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो मायागुणाननुग तो हि तथा विभाति ॥ ४३ ॥ ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ॥ शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥ ४४ ॥ आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ॥ जलशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ॥ प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥ ॥ ४५ ॥ बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ॥ आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥ ४६ ॥ साभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ॥ साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥ ४७ ॥

प्रतिबिम्बाकाश जो कि जलमें मेघोंके प्रतिबिम्ब पडनेसे प्रतीत होता है, इसप्रकार तीन भेदोंसे आकाशका व्यवहार होता है, तिसीप्रकार चैतन्य भी तीनप्रकारका है, एक तो बुध्यवच्छिन्नपूर्ण चैतन्य (सम्पूर्ण बुद्धियोंकी समष्टिरूपमायामें प्रतिबिम्बित होकर सकलविश्वमें व्याप्त ईश्वर) और दूसरा आभासचैतन्य (तिनतिन बुद्धियोंमें प्रतिबिम्बित जीव) तथा तीसरा बिम्बचैतन्य (शुद्ध चैतन्य ब्रह्म) इनमें प्रथमके दो, एक तौ बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्य और दूसरा आभास चैतन्य उपाधिके सम्बन्धसे मिथ्याभूत हैं, और तीसरा शुद्ध चैतन्य ब्रह्म सत्यस्वरूप है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अज्ञ पुरुष, अविच्छिन्न अर्थात् भेदशून्य, अविकारी, साक्षी परमात्माके विषे, "मैं देखता हूँ—मैं जानता हूँ—मैं चलता हूँ" इत्यादि आभासयुक्त बुद्धिके धर्म्म भ्रान्तिकरके आरोपण करते हैं, अर्थात् आभास और बुद्धि तथा इनके कार्य्य मिथ्या हैं, इसकारण मैं देखता हूँ—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं जानता हूँ इत्यादि व्यवहारभी मिथ्या है, सो मिथ्या व्यवहार सत्यस्वरूप परमात्माकेविषे नहीं घट सकता है; इसी प्रकार जीव सत्य है नित्य है इत्यादि लौकिक व्यवहारसे सत्यस्वरूप परमात्माकेविषे अज्ञ पुरुष जीवपणाका आरोपण करते हैं, सोभी विचारदृष्टिसे मिथ्या होनेके कारण परमात्माके विषे नहीं घटसकता है ॥ ४७ ॥ और आभासदृष्टिसे जीव तो मिथ्या होनेके कारण नित्य नहीं हो सक्ता, और बुद्धि अविद्याका कार्य्य होनेसे दर्पणमें, प्रतिबिम्बित मुखकी समान सत्य और नित्य नहीं है, और जो ऊपर चैतन्यके तीन भेद कहे हैं सो वास्तविक नहीं हैं, क्योंकि चैतन्यरूप परब्रह्म तो अविच्छिन्न कहिये, विच्छेद जो भेद तिसकरके रहित है. तहां कहैं हैं कि तब तो चैतन्यके तीन भेदोंका वर्णन करना निरर्थक हो जायगा? तहाँ समाधान करते हैं कि चैतन्यमें जो त्रैविध्य (तीन प्रकारका भेद) है सो उपाधिके अध्यासका किया हुआ है, इसीप्रकार जीवोंका परस्पर भेदभी उपाधिके अध्यासकाही किया हुआ है ॥ ४८ ॥ वास्तविक भेदरहित उपाधिके अध्यासकृत भेदवाले आभासयुक्त चैतन्यका ईश्वरके साथ "तत्त्वमसि"

आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ॥ अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥ ४८ ॥ अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥ ४९ ॥ ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ॥ तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥ ५० ॥ एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ॥ मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ॥ न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥ ५१ ॥ इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघ ॥ मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥ ५२ ॥

आदि वाक्योंकरके एकत्व प्रतिपादन कियाजाता है, सो कल्पित भेदके विना नहीं हो सकता है, अर्थात् यदि सर्वथा भेद नहीं माना जाय तब तो "तत्त्वमसि" आदि वेदवाक्योंकी असङ्गति होयगी, और यदि वास्तविक भेद माना जायगा तो अनर्थ हो जायगा, इस कारण कल्पित भेद माना है ॥ ४९ ॥ जब "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंके द्वारा जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होता है, अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" इसप्रकार ज्ञान हो जाता है, तब अविद्या अपने कार्य्यरूप प्रपञ्चोंकरकेसहित नष्ट हो जाती है ॥ ५० ॥ हे हनूमान्! मेरा भक्त इस तत्त्वको जानकर फिर संसारमें जन्ममरणादिरूप बन्धनको नहीं प्राप्त होता है, और जो पुरुष मेरी भक्ति न करके मेरीभक्तिके प्रतिपादन न करनेवाले शास्त्ररूपी गढ़ोंमें मोहको प्राप्त हो रहे हैं, उन पुरुषोंको सैंकड़ों वर्षोंमेंभी ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ५१ ॥ हे निष्पाप हनूमान्! मैंने यह परम गुप्त रखनेयोग्य और इन्द्रके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राज्यसेभी अधिक, तथा मुझ चेतनरूपका हृदय, अथवा मेरे हृदयमें रहनेवाला (इस कारणही यह रामहृदयनामसे प्रसिद्ध है) ज्ञान मैंने स्वयं तुमसे कहा है, इसको तुम मेरी भक्तिसे हीन (रहित) दुष्ट पुरुषके अर्थ न देना॥५२॥श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति! हे देवि! अत्यन्तही गुप्त, हृदयको आनन्द देनेवाला, अत्यन्त पवित्र और पापोंको नष्ट करनेवाला श्रीरामहृदय मैंने तेरेअर्थ वर्णन किया ॥ ५३ ॥ यह सम्पूर्ण वेदान्तका तत्त्वरूप संग्रह श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं अपने मुखकमलसे वर्णन किया है, इसको जो पुरुष निरन्तर भक्तिपूर्वक पढ़ै वह मुक्त हो जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है॥५४॥ और अनेक जन्मोंमें कियो हुए ब्रह्महत्यादि पाप निःसन्देह नष्ट होजाते हैं, यह श्रीरामचन्द्रजीने कहा है ॥ ५५ ॥ जो पुरुष अपनी जातिसे च्युत हो,

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया ॥ अतिगुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पापशोधनम् ॥ ५३ ॥ साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसङ्ग्रहम् ॥ यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ५४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि ॥ नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥ ५५ ॥ योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदारेषु नित्योद्यतो वा स्तेयी ब्रह्मघ्नमातापितृवधनिरतो योगिवृन्दापकारी ॥ यः सम्पूज्याभिरामं पठति च हृदयं रामचन्द्रस्य भक्त्या योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते सर्वदेवैः स पूज्यम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायण उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं नाम प्रथमः सर्गः॥ १ ॥

अति पापी हो, अन्य पुरुषोंके धन तथा स्त्रीमें प्रीति करनेवाला हो, सदा चोरी करनेमें तत्पर हो, ब्रह्महत्यारा हो, मातापिताका वध करनेवाला हो और योगियोंके समूहका तिरस्कार करनेवाला हो, तोभी रामहृदयको भक्तिपूर्वक पूजन करके यदि पाठ करे तो योगिराजोंकोभी अलभ्य, सम्पूर्ण देवताओंके पूजनीय पदको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥ इत्यध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुराबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथतनूजपण्डितरामस्वरूपशर्म्मणा विरचितया भाषाटीकया सहितः प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीपार्वती बोली कि हे भगवन्! आज मैं धन्य हूं और कृतकृत्य हूं, हे जगत्प्रभो! आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, आज आपके अनुग्रहसे मेरी हृदयकी महासन्देहरूप ग्रंथि नष्ट होगई ॥ १ ॥ परन्तु हे देव ! आपके मुखसे निकलेहुए संसाररूपी रोगको नष्ट करनेवाले इस रामतत्त्व (रामहृदय) रूप मधुर रसायनको पान करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ २ ॥ मैंने आपसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा संक्षेपसे श्रवण करी, परन्तु अब मेरी ऐसी इच्छा है कि तिस श्रीरामचरित्रको विस्तरपूर्वक श्रवण करूं, सो आप स्पष्टरीतिसे मेरे अर्थ वर्णन करो ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले—कि हे पार्वति ! संसारमें सम्पूर्ण वार्ताओंसेभी गुप्त जो श्रीरामचन्द्रजीका आध्यात्मिक चरित्र है सो मैं तुह्मारे अर्थ वर्णन करताहूं तुम श्रवण करो, जो चरित्र पूर्वकालमें

॥ पार्वत्युवाच ॥ धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृर्थातास्मि जगत्प्रभो ॥ विच्छिन्नो मेऽतिसन्देहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात् ॥ १ ॥ त्वन्मुखाद्गलितं रामतत्त्वामृतरसायनम् ॥ पिबन्त्या मे मनो देव न तृप्यति भवापहम् ॥ २ ॥ श्रीरामस्य कथा त्वत्तः श्रुता सङ्क्षेपतो मया ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ अध्यात्मरामचरितं रामेणोक्तं पुरा मम ॥ ४ ॥ तदद्य कथयिष्यामि शृणु तापत्रयापहम् ॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुरज्ञानोत्थमहाभयात् ॥ प्राप्नोति परमामृद्धिं दीर्घायुः पुत्रसन्ततिम् ॥ ५ ॥ भूमिर्भारेण मम्रा दशवदनमुखाशेषरक्षोगणानां धृत्वा गोरूपमादौ दिविजमुनिजनैः साकमब्जासनस्य ॥ गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वं ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदा वेद शेषात्मकत्वात् ॥ ६ ॥ तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद्ब्रह्माथ देवैर्वृतो देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम् ॥ अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्धनिर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवैर्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दबाष्पैर्वृतः ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं मेरे अर्थ वर्णन किया है ॥ ४ ॥ तीनों तापोंके नष्ट करनेवाले जिस श्रीरामचरित्रको श्रवण करके प्राणी अज्ञानसे उत्पन्न हुए महाभयदायक संसारसे मुक्त होजाते है, और परम ऐश्वर्य्य तथा दीर्घायु पुत्रपौत्रादि सन्ततिको प्राप्त होता है, तिस श्रीरामचरित्रकोही अब तुह्मारे अर्थ वर्णन करताहूं सो सुनो ॥ ५ ॥ जब पृथ्वी रावण आदि सम्पूर्ण राक्षसोंके भारसे अत्यन्त पीडाको प्राप्त हुई, तब प्रथम गौका रूप धारणकर देवता और ऋषियोंकरके सहित ब्रह्मलोकको गई और तहां नेत्रोंसे जल भरकर अपना सम्पूर्ण दुःख ब्रह्माजीसे कहती भई, तब सर्वान्तर्यामी ब्रह्माजीने मुहूर्त्तमात्र ध्यान करके अपने मनमें सम्पूर्ण वार्त्ता जानली ॥ ६ ॥ और ब्रह्माजी देवताओंको तथा पृथ्वीको साथ लेकर तहांसे क्षीरसमुद्रके तट-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर गये, तहां पहुँचतेही भक्तिकी अधिकताके कारण ब्रह्माजीके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंका निर्म्मल प्रवाह वहनेलगा, और पुराणोंमें वर्णन करे हुए वेदानुकूल और निर्मल पदोंकरके रचे हुए अनेक स्तोत्रोंकरके गद्गदवाणीसे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी निर्विकार—सर्वज्ञ—भक्तोंके दुःखोंको दूर करनेवाले जो विष्णु भगवान् तिनकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ तब प्रकाशवान् सहस्रों सूर्य्योंकी समान कान्तिवाले विष्णु भगवान् पूर्व दिशाकेविषे अन्धकारको दूर करते हुए प्रकट हुए ॥ ८ ॥ चित्तको वशमें न करनेवाले पुरुषोंको जिनका दर्शन परम दुर्लभ है ऐसे इन्द्रनील मणिकी समान श्याम वर्ण, किञ्चित् हास्ययुक्त मुखवाले, पद्मनेत्र, मुकुट—हार—केयूर (बाजूबन्द) —कुण्डल और कटक (खंडुए) आदि करकै शोभायमान श्रीवत्स और कौस्तुभ मणिकी कान्तिकरके जिसका शरीरशोभायमान है, स्तुति करतेहुए सनक—सनन्दनादि तथा पार्षद जिनके चारों ओर खड़े

ततः स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः ॥ आविरासीद्धरिः प्राच्यां दिशां व्यपनयंस्तमः ॥ ८ ॥ कथञ्चिदृष्टवान्ब्रह्मा दुर्दर्शमकृतात्मनाम् ॥ इन्द्रनीलप्रतीकाशं स्मितास्यं पद्मलोचनम् ॥ ९ ॥ किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः ॥ विभ्राजमानं श्रीवत्सकौस्तुभप्रभयान्वितम् ॥ ॥ १० ॥ स्तुवद्भिः सनकाद्यैश्च पार्षदैः परिवेष्टितम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितम् ॥ ११ ॥ स्वर्णयज्ञोपवीतेन स्वर्णवर्णाम्बरेण च ॥ १२ ॥ श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम् ॥ हर्षगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ १३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्मि ते पदं देव प्राणबुद्धीन्द्रियात्मभिः ॥ यच्चिन्त्यते कर्मपाशाद्धृदि नित्यं मुमुक्षुभिः ॥ १४ ॥ मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि ॥ जगत्तेन न ते लेप आनन्दानुभवात्मनः ॥ १५ ॥

हैं. शंख—चक्र—गदा—पद्म और वनमाला करकै अति मनोहर, सुवर्णके यज्ञोपवीतको धारण करे हुए, सुवर्णकी समान देदीप्यमान पीताम्बरको पहिने हुए, लक्ष्मी और भूमिकरके सहित, और गरुड़के ऊपर विराजमान श्रीविष्णु भगवान्को ब्रह्माजीने अतिकठिनसे देखा और गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी बोले—कि हे भगवन् ! प्राण बुद्धि मन और इन्द्रियोंकरके आपके चरणकमलोंमें प्रणाम है, जिन आपके चरणोंका कर्मरूपी फांसीसे मुक्त होनेकी इच्छा करनेवाले योगी पुरुष निरन्तर हृदयमें ध्यान करते हैं ॥ १४ ॥ हे भगवन्! तुम त्रिगुणमयी मायाकरके जगत्को उत्पन्न करते हो, पालन करते हो और संहार करते हो, परंतु तुम आनंदरूप जो अनुभव तद्रूप हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस कारण सृष्टिकी रचना आदि कर्मोंकरके लिप्त नहीं होतेहो अर्थात् मैं सृष्टिका करनेवाला हूं इस प्रकारका अभिमान आपको नहीं होता है ॥ १५ ॥ विषयोंकी सक्तिसे अथवा अज्ञानसे अथवा अन्यकारणोंसे जिनके अन्तःकरण मलिन हो रहे हैं तिन पुरुषोंकी आपके चरित्रोंकेविषे भक्ति करनेसे जिसप्रकार शुद्धि होती है, तिस प्रकार अनेकदान, वेदपाठ और बहुतसे यज्ञ करनेसेभी शुद्धि नहीं होती है ॥ १६ ॥ इसकारण भक्ति करनेवाले मुनिजनोंकरके अन्तःकरणकेविषे नित्य ध्यान किये हुए आपके चरणकमलका जो मुझे दर्शन हुआ है सो मेरे अन्तःकरणके दोषोंको शीघ्रही दूर करै ॥ १७ ॥ कैसे चरण हैं कि जिन चरणोंका पूर्व कालमें हम ब्रह्मादिकोंने अपने कार्य्यकी सिद्धिके अर्थ सेवन किया है अर्थात् जब किसी कार्यमें हमारे ऊपर विपत्ति पड़ती है तब यह आपके चरणकमलही रक्षक होते हैं, जिन चरणोंका ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ

तथा शुद्धिर्न दुष्टानां दानाध्ययनकर्मभिः ॥ शुद्धात्मता ते यशसि सदा भक्तिमतां यथा ॥१६॥ अतस्तवाङ्घ्रिर्मे दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये ॥ सद्योऽन्तर्हृदये नित्यं मुनिभिः सात्वतैर्वृतः ॥१७॥ ब्रह्माद्यैः स्वार्थसिद्ध्यर्थमस्माभिः पूर्वसेवितः ॥ अपरोक्षानुभूत्यर्थं ज्ञानिभिर्हृदि भावितः ॥ १८ ॥ तवाङ्घ्रिपूजानिर्माल्यतुलसीमालया विभो ॥ स्पर्धते वक्षसि पदं लब्ध्वापि श्रीः सपत्निवत् ॥ १९ ॥ अतस्त्वत्पादभक्तेषु तव भक्तिः श्रियोऽधिका ॥ भक्तिमेवाभिवाञ्छन्ति त्वद्भक्ताः सारवेदिनः ॥ २० ॥ अतस्त्वत्पादकमले भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥ संसारामयतप्तानां भेषजं भक्तिरेव ते ॥ २१ ॥ इति ब्रुवन्तं ब्रह्माणं बभाषे भगवान् हरिः ॥ किं करोमीति तं वेधाः प्रत्युवाचातिहर्षितः ॥ २२ ॥

ज्ञानी पुरुष हृदयमें ध्यान करते हैं ॥ १८ ॥ हे भगवन् ! लक्ष्मी आपके वक्षःस्थलमें स्थानको प्राप्त होकरभी आपके चरणोंकी पूजामें निर्माल्यरूपको प्राप्त हुई तुलसीकी मालाके साथ सपत्नीकी समान स्पर्धा (हिर्स) करती है ॥ १९ ॥ तुह्मारे चरणकमलोंकी भक्ति करनेवाले भक्तोंपर तुह्मारा प्रेम लक्ष्मीसेभी अधिक है, इसकारण सारको जाननेवाले भक्त पुरुष आपके चरणोंकेविषे भक्ति होनेकी ही इच्छा करते हैं, अन्य किसीभी वस्तुकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २० ॥ इसकारण आपके चरणकमलमें सदा मेरी भक्ति होवे, क्योंकि संसाररूपीरोगसे दुःखित हुए पुरुषोंकी औषधि केवल आपकी भक्तिही है ॥ २१ ॥ इसप्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्माजीसे विष्णु भगवान् बोले कि तुह्मारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या कार्य्य है जिसको मैं करूँ, इसप्रकार विष्णुभगवान्के कहनेसे अतिप्रसन्न हुए ब्रह्माजी बोले ॥ २२ ॥ कि हे भगवन्! परम पराक्रमी पौलस्त्य ऋषिका पुत्र रावण सदा लोकपालोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको पीड़ा देताहै, क्योंकि वह राक्षसपति मेरे दिये हुए वरदानसे बड़ा गर्वयुक्त हो रहाहै. हे विश्वका कल्याण करनेमें समर्थ भगवन्! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे रची है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसकारण हे प्रभो! आप मनुष्यका रूप धारण करके उस देवताओंके शत्रुका नाश करो. इसप्रकार कहनेपर श्रीविष्णु भगवान् बोले कि हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें कश्यप ऋषिने तपस्या करके मुझे प्रसन्न किया तब मैंने उसे वरदान दियाहै ॥२५॥ वह वरदान यह है कि तिस कश्यप ऋषिने मुझसे ऐसा वर मांगा कि "तुम

भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान् ॥ राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पितः ॥२३॥ त्रिलोकीं लोकपालांश्च बाधते विश्वबाधकः ॥ मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कल्पिता ॥ २४ ॥ अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे ॥ २५ ॥ याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया ॥ स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले॥२६॥ तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्याया शुभे दिने ॥ चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥ २७ ॥ योगमायाऽपि सीतेति जनकस्य गृहे तदा ॥ उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्मा देवानथाब्रवीत् ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले ॥ २९ ॥

मेरे पुत्ररूपसे उत्पन्न होओ" और मैंने "तथास्तु" कहकर उसको अंगीकार करलिया सो इससमय वह कश्यपऋषि पृथ्वीतलमें "दशरथ" नाम राजा होकर स्थितहै ॥ २६ ॥ मैंने तिस कश्यपऋषिके पुत्र होनेका जिसप्रकार संकल्प कियाहै तिसप्रकारही कश्यपके अवतार राजा दशरथकी स्त्री कौसल्या तथा अन्य दोनों स्त्रियोंकेविषे अर्थात् राजा दशरथकी कौसल्या आदि तीनों राणियोंकेविषे शुभ समयमें मैं अलग २ चार अवतारोंको ग्रहण करूंगा ॥ २७ ॥ और उससमय योगमायाभी राजा जनकके यहाँ सीतानाम करके उत्पन्न हेगी, तिस सीताकरके सहित मैं सम्पूर्ण कार्य्योंको पूर्ण करूंगा ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्द्धान होगए. तब ब्रह्माजी देवताओंसे कहने लगे, ब्रह्माजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोले कि हे देवताओ ! विष्णु भगवान् मनुष्यरूपकरके रघुकुलमें अवतार लैंगे ॥ २९ ॥ सो तुम सबभी अपने अपने अंशोंकरके वानरोंमें अवतार लो और जबतक विष्णु भगवान् पृथ्वीतलमें रहे तबनक उनकी सहाय करो ॥ ३० ॥ इस प्रकार देवताओंको आज्ञा देकर और पृथ्वीको आश्वासन देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको चलेगए और निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक स्थित हुए ॥ ३१ ॥ इधर सम्पूर्ण देवता पर्वत और वृक्षरूपी शस्त्रोंसे युद्ध करनेवाले महापराक्रमी वानरोंका रूप धारणकरके तिस सर्वज्ञ सर्वसमर्थ ईश्वरकी वाट देखने लगे और उसकी सहाय करनेके निमित्त पर्वत और अरण्य आदि भिन्न भिन्न स्थानोंमें निवास करने लगे ॥ ३२ ॥ इत्यध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे

यूयं सृजध्वं सर्वेपि वानरेष्वंशसम्भवान् ॥ विष्णोः सहायं कुरुत यावत्स्थास्यति भूतले ॥ ३० ॥ इति देवान्समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम् ॥ ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥ ३१ ॥ देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः ॥ महाबलाः पर्वतवृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम् ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ अथ राजा दशरथः श्रीमान्सत्यपरायणः ॥ अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ १ ॥ सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा ॥ वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ २ ॥ स्वामिन्पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥ पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते ॥ ३ ॥

द्वितीयसर्गस्य मुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपशर्म्मणा कृता सान्वयभाषाटीका समाप्ता ॥

श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! पूर्वकालमें अयोध्यानगरीमें सत्य बोलनेको परम धर्म्म माननेवाला, महापराक्रमी, इसकारणही सम्पूर्ण संसारकेविषे प्रसिद्ध, और परमऐश्वर्य्ययुक्त दशरथनामवाला एक राजा होताभया ॥ १ ॥ सन्तानके न होनेके दुःखसे पीडित वह राजा दशरथ एकसमय अपने कुलके आचार्य्य तथा उपदेश करनेवाले गुरु वसिष्ठको प्रणाम करके इसप्रकार कहने लगे ॥ २ ॥ कि हे गुरो ! किस उपायके करनेसे मुझे सम्पूर्ण शुभलक्षणोंकरके युक्त पुत्र प्राप्त होंगे; पुत्रके न होनेसे इस सम्पूर्ण राज्यसेभी सुख नहीं होताहै उलटा दुःखही होताहै ॥३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार राजा दरशथके कहनेपर वसिष्ठजी बोले कि हे राजन् ! गाम्भीर्य्य आदि गुणोंके देखनेसे लोकोंको मनुष्यका रूप धारण किये हुए लोकपालोंकी समान प्रतीत होनेवाले चार पुत्र तुझको होंगे ॥ ४ ॥ सो तुम शान्ताके पति महातपस्वी ऋष्यशृंगको बुलाकर हम सबकरके सहित पुत्रेष्टियज्ञको शीघ्र करो ॥ ५ ॥ राजा दशरथने इसप्रकार वसिष्ठजीके कथनको स्वीकार करके मन्त्रियोंकेद्वारा ऋष्यशृङ्गको बुलाय लिया, और पवित्र होकर महात्मा ऋषियोंकरके सहित यज्ञ करनेका प्रारम्भ किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर भक्तिपूर्वक अग्निमें हवन करनेपर अग्निकरके तपाए हुए सुवर्णकी समान कान्तिवाला साक्षात् अग्नि देवता हाथमें सुवर्णके पात्रमें स्थिर पायस (खीर) को ग्रहणकरके बोला ॥ ७ ॥ कि हे

ततोऽब्रवीद्वसिष्ठस्तं भविष्यन्ति सुतास्तव ॥ चत्वारः सत्त्वसम्पन्ना लोकपाला इवापराः ॥ ४ ॥ शान्ताभर्तारमानीय ऋष्यशृङ्गं तपोधनम् ॥ अस्माभिः सहितः पुत्रकामेष्टिं शीघ्रमाचर ॥ ५ ॥ तथेति मुनिमानीय मन्त्रिभिः सहितः शुचिः ॥ यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः ॥ ६ ॥ श्रद्धया हूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभः ॥ पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट् ॥ ७ ॥ गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम् ॥ लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वा पायसं दत्त्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः ॥ ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः ॥ ९ ॥ वसिष्ठऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः ॥ कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः ॥ १० ॥ ततः सुमित्रा सम्प्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम् ॥ कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता ॥ ११ ॥

राजन् ! देवताओंकरके उत्पन्न कियेहुए इस परमदुर्लभ पुत्रके देनेवाले दिव्य पायसको ग्रहण करो, निःसंदेह इसके प्रभावसे परमात्मारूप पुत्रको प्राप्त होओगे ॥ ८ ॥ इसप्रकार कहकर और राजाको पायस देकर वह अग्निदेव अन्तर्धान होगए, तब पूर्ण हुआ है मनोरथ जिनका ऐसे राजा दशरथने वसिष्ठजी और ऋष्यशृंगको प्रणाम किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर वसिष्ठ और ऋष्यशृंगकी आज्ञाके अनुसार राजा दशरथने प्रयत्नसे उस चरुके दो भाग करके एक भाग कौसल्याको दिया; और एक भाग कैकेयीको दिया ॥ १० ॥ तदनन्तर पुत्रके देनेवाले चरुके ग्रहण करनेकी इच्छा करती हुई सुमित्रा तहां आई, तब कौसल्याने परम प्रसन्न होकर अपने भागमेंसे आधा भाग सुमित्राको दिया ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और कैकेयीनेभी प्रसन्नतापूर्वक अपने भागमेंसे आधा चरु सुमित्राको दिया, इसप्रकार तीनों रानी तिस चरुको भक्षण करके गर्भवती हुईं ॥ १२ ॥ वह तीनों रानी राजमन्दिरमें अपने तेजकरके देवताओंके समान शोभित हुईं. तदनन्तर दशवे मासमें कौसल्याने अद्भुत पुत्रको उत्पन्न किया ॥ १३ ॥ यह अवतार, चैत्रशुद्ध नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र, शुभकारक कर्क लग्नकेसमय हुआ. इससमय रवि, मंगल, गुरु, शुक्र और शनि यह पांचो ग्रह अपने अपने उच्च स्थानोंमें स्थित थे ॥ १४ ॥ और मेषराशिपर सूर्य्य था और सब देवता आकाशमेंसे पुष्पोंकी वर्षा करते थे तब जगत्पति अविनाशी परमात्माने अवतार धारण किया ॥ १५ ॥ कौसल्याके ऊपर अनुग्रह करके भगवानने जन्मसमयमें जो स्वरूप धारण किया तिसका वर्णन करते हैं कि भगवानके इस मूर्तिका नीलकमलके दलके समान नीलवर्ण था, पीताम्बरको धारण कियाथा, चार

कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विता ॥ उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः ॥ १२ ॥ देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे ॥ दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम् ॥ १३ ॥ मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे ॥ पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ १४ ॥ मेषं पूषणि सम्प्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले ॥ आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः ॥ १५ ॥ नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासश्चतुर्भुजः ॥ जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥१६॥सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः ॥ शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥ १७ ॥ अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः ॥ करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः ॥ श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला ॥ हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ १९ ॥

भुजा थीं, नेत्रोंके कोण लाल कमलकी समान रक्तवर्ण थे, देदीप्यमान कुण्डलोंको धारण कियाथा, हजारोंसूर्य्योंकी समान प्रकाश था, किरीटको धारण कियेहुए और घुंघराली अलकोंकरके शोभित होरहेथे, चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म और कण्ठमें वनमालाको धारण कर रहेथे; हृदयकेविषे स्थित जो भक्तोंके ऊपर अनुग्रहरूप चन्द्रमा उसको सूचित करनेवाली जिसकी मन्दमुसक्यानरूप चांदनी थी, करुणारससे भरेहुए जिनके कमलके समान चौंड़े नेत्र थे, और श्रीरामचन्द्रजी श्रीवत्स, हार बाजूबन्द, नूपुरआदि आभूषणों धारण कियेहुएथे, तिन साक्षात्परमात्माको देखकर कौसल्या बड़े आश्चर्य्ययुक्त होगई और नेत्रोंमें आनन्दके आँसुओंका प्रवाह भरकर प्रणाम किया, और हाथ जोडकर बोली ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ कौसल्या बोली कि हे देवदेव! हे शंख, चक्र, गदाके धारण करनेवाले भगवन्! आपको नमस्कार है, आप देवताओंकोभी दिव्यज्ञान देनेवाले हो, आप अपने स्वरूपसे कदापि च्युत नहीं होते हो, तुम्हारे गुण अनन्त हैं, आपको कोई "अमुक समय अमुक देशमें रहते हैं" ऐसा नहीं कहसक्ता इसकारण आप सर्वव्यापक हो, और सम्पूर्ण जीवोंसे श्रेष्ठ हो ॥ २० ॥ वेदके ज्ञाता पुरुष आपके स्वरूपको इसप्रकार वर्णन करते हैं; कि तुम वाणि-बुद्धि और मन आदिकरके जाननेमें नहीं आतेहो, इन्द्रियोंकरके आपका बोध नहीं होताहै केवल सत्तामात्रही आपका रूप है, और एक ज्ञानमात्रही आपका शरीर है ॥ २१ ॥ तुम सत्व-रज-तम इन तीन गुणोंकरके युक्त जो ब्रह्मा-विष्णु-महेश नामक देवता तिनके अवतारोंको धारणकरके मायाके योगसे जगत्की उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय करतेहो, परन्तु वास्तवमें तुम तुरीय अर्थात् त्रिगुणात्मक ब्रह्मादि तीनों मूर्तियोंसे अलग हो. तुम्हारेविषे मायासे उत्पन्न हुए कोई दोष नहीं लगतेहैं ॥ २२ ॥ तुम मायाके गुणोंके योगसे अनेक प्रकारकी क्रिया करते हुएसे दीखतेहो, परन्तु वास्तवमें कुछ कार्य्य नहीं करतेहो, गमन करते हुएसे प्रतीत हो तेहो परन्तु गमन नहीं करतेहो, श्रवण करते हुएसे प्रतीत होतेहो परन्तु वास्तवमें श्रवण नहीं करतेहो, देखतेहुएसे प्रतीतहोतेहो परन्तु वास्तवमें नहीं देखतेहो ॥ २३ ॥ वेदोंने इसप्रकार वर्णन कियाहै कि आत्मस्वरूपकेविषे प्राण नहीं हैं, मन नहीं है और परमात्मा निर्मल अर्थात् मायाकल्पित रागद्वेषादिकोंसे रहित है. और हे भगवन्! सत्तारूपकरके सम्पूर्ण पदार्थोंकेविषे स्थितभी तुम जिन पुरुषोंके अन्तःकरणोंमें अज्ञानरूपी अन्धकार छारहाहै उनको प्रतीत नहीं होतेहो, केवल ज्ञानी पुरुषोंकोही आपके स्वरूपका अनुभव होताहै, और अनन्तकोटिब्रह्माण्ड आपके उदर

॥ कौसल्योवाच ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ॥ परमात्माऽच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः ॥ २० ॥ वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम् ॥ त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम् ॥ २१ ॥ त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च ॥ सत्त्वादिगुण संयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा ॥ २२ ॥ करोषीव न कर्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि ॥ शृणोषि न शृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि ॥ २३ ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत् ॥ समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लक्ष्यसे ॥ २४ ॥ अज्ञानध्वान्तचित्तानां व्यक्त एव सुमेधसाम् ॥ जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः ॥ २५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पेट) में परमाणुओंकी समान उड़तेहुए दीखतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ सो तुम "मेरे उदरसे उत्पन्नहुए" इसप्रकार लोकोंको दिखातेहो, इस कारण हे रघुवीर! आज मैंने तुम्हारा भक्तोंके वशमें होना देखलिया, अर्थात् तुम सदा भक्तोंके वशमें रहतेहो इसकारण यह क्रीडा आपको करनी पडीहै ॥ २६ ॥ संसाररूपी समुद्रकेविषे पति–पुत्र–धनआदि तरङ्गोंमें घूमती हुई मैं आज आपके चरणकमलोंके समीप प्राप्तहुई हूँ इस कारण मैं धन्य हूँ ॥ २७ ॥ अब तुमसे मेरी यह प्रार्थना है कि हे देव! तुम्हारा यह रूप सदा मेरे मनमें स्थितरहै, और सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली माया मुझे कदापि मोहित नहीं करै ॥ २८ ॥ हे सर्वव्यापक ब्रह्मानन्दस्वरूप ईश्वर! कभीभी लोकोंके दृष्टिगोचर नहीं होनेवाले इस अपने अद्भुतरूपको गुप्त करके अतिशय कोमल बालरूपको दिखाओ ॥ २९ ॥ मैं तिस आपके बालरूपको प्रेमपूर्वक आलिङ्गन और

त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान्विडम्बसे ॥ भक्तेषु पारवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूत्तम ॥ २६ ॥ संसारसागरे मग्ना पतिपुत्रधनादिषु ॥ भ्रमामि मायया तेऽद्य पादमूलमुपागता ॥ २७ ॥ देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे ॥ आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी ॥ २८ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम् ॥ २९ ॥ ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तत्तद्भवतु नान्यथा ॥ ३० ॥ अहं तु ब्रह्मणा पूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये ॥ प्रार्थितो रावणं हन्तुं मानुषत्वमुपागतः ॥ ३१ ॥ त्वया दशरथेनाहं तपसाऽऽराधितः पुरा ॥ मत्पुत्रत्वाभिकाङ्क्षिण्या तथा कृतमनिन्दिते ॥ ३२ ॥ रूपमेतत्त्वया दृष्टं प्राक्तनं तपसः फलम् ॥ मद्दर्शनं विमोक्षाय कल्पते ह्यन्यदुर्लभम् ॥ ३३ ॥

भाषणकरके इस प्रचण्ड अज्ञानरूप संसारको तरजाऊंगी, श्रीभगवान् बोले-कि हे मातः! तेरे मनमें जो जो अभिलाषा है वह सब तेरे चित्तके अनुसारही होयगी ॥ ३० ॥ "पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त रावणका वध करो" इस कार्य्यके निमित्त ब्रह्माजीने पहिले मुझसे प्रार्थना करीथी इसकारण मैंने मनुष्यरूप धारण किया ॥ ३१ ॥ और पूर्वकालमें तू और राजा दशरथ दोनोंने मिलकर तपकरके मुझको प्रसन्न कियाथा, तब तुम ने मुझको पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेको प्रार्थना करीथी, सो मैंने तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करदिया अर्थात् इस कारण मैं तुम्हारे पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआहूँ ॥ ३२ ॥ और तुझको यह जो मेरे इस रूपका दर्शन हुआ है सो पूर्वजन्मके तपका फल है, क्योंकि मेरा दर्शन पुण्यहीन पुरुषको नहीं होता है, और मोक्षकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्ति होना मेरे दर्शनका फल है ॥ ३३ ॥ जो पुरुष इस हमारे संवादको पढ़ैगा अथवा सुनैगा उसको मुझ सरीखा स्वरूप प्राप्त होयगा, अर्थात् मोक्ष-की प्राप्ति होजायगी और अन्तमें मेरा स्मरण होयगा ॥ ३४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार मातासे कहकर तत्काल बालरूप धारण करके रुदन करने लगे, तिस बालस्वरूपका वर्ण देखनेमें इन्द्रनीलमणिकी समान था, विशाल नेत्र थे, स्वरूप परम सुन्दर था ॥ ३५ ॥ और बालसूर्य्यकी समान कान्ति थी तिन श्रीरामचन्द्रजीके अवतार धारण करनेसे इन्द्रादि सम्पूर्ण लोकपालोंको परमानन्द हुआ तदनन्तर राजा दशरथने जब "पुत्र हुआ है" यह आनन्दकी वार्त्ता सुनी तब तो आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गए, और तत्काल गुरु वसिष्ठको साथ लेकर सूतिगृहमें आये ॥ ३६ ॥ कमलके दलकी समान सुन्दर नेत्रवाले तिस बालकको देखतेही राजा दशरथके नेत्र आनन्दके आंसुओंसे भरगए और गुरु वसिष्ठसे उस समय करनेयोग्य

संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि ॥ स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह ॥ बालत्वेऽपीन्द्रनीलाभो विशालाक्षोऽतिसुन्दरः ॥ ३५ ॥ बालारुणप्रतीकाशो लालिताखिललोकपः ॥ अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम् ॥ आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥ ३६ ॥ रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसम्प्लुतः ॥ गुरुणा जातकर्माणि कर्तव्यानि चकार सः ॥ ३७ ॥ कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा ॥ सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ ॥ ३८ ॥ तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ ॥ सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः ॥ ३९ ॥ यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे ॥ तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥ ४० ॥ भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ॥ शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥ ४१ ॥

सम्पूर्ण जातक कर्म्म करवाए ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कमलके समान नेत्रवाली कैकेयीसे भरत नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और तदनन्तर पूर्ण-चन्द्रमण्डलकी समान मुखवाले दो पुत्र सुमित्राके उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ तदनन्तर राजा दशरथ प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको सहस्र ग्राम देता भया और सुवर्णके आभूषण-रत्न-वस्त्र-तथा सुन्दर गौ दीं ॥ ३९ ॥ ज्ञानकरके अज्ञानका नाश होय, इसकारण जिनकेविषे मुनिजन रमण करते हैं, तिस ईश्वरके मुख्य अवतारका वसिष्ठमुनिने "राम" यह नाम रक्खा ॥ ४० ॥ और कैकेयीके पुत्र दूसरे बालकका "भरत" नाम धरा; क्योंकि वह सम्पूर्ण प्रजाका भरण अर्थात् पोषण करेगा ऐसा ज्योतिःशास्त्रानुसार विचारमें आया, और तीसरा सुमित्राके ज्येष्ठ पुत्र सुन्दर लक्षणोंसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युक्त होनेके कारण उसका नाम "लक्ष्मण" रक्खा. और चौथे सुमित्राके छोटे पुत्रका नाम "शत्रुघ्न" रक्खा. क्योंकि यह शत्रुओंका नाश करेगा ऐसा ज्योतिः-शास्त्रानुसार विचारमें आया ॥ ४१ ॥ यह चारों पुत्र चरुके अंश भक्षण करनेसे उत्पन्न हुए ऐसा पहिले कह आए हैं, जब राजा दशरथने चरुका विभाग किया तब सुमित्रा समीपमें नहीं थी इसकारण उसको चरुका कोई भाग नहीं मिला, परन्तु पीछेसे कौसल्याने और कैकेयीने अपने अपने भागमेंसे आधा आधा भाग सुमित्राको दिया, इसप्रकार सुमित्राको चरुका भाग दूसरी दोनों रानियोंकी अपेक्षासे दुगुना मिला, इस कारण सुमित्राको दो पुत्र हुए; तिस सुमित्राके दोनो पुत्रोंमें जो पुत्र जिस पायसके भागसे उत्पन्न हुआथा वह उस पायससे उत्पन्न हुए बालकके साथही अधिकतर रहताथा, अर्थात् लक्ष्मण रामचन्द्रजीके साथ और शत्रुघ्न भरतजीके साथ; इसप्रकार वह दो दो मिलकर फिरतेथे ॥ ४२ ॥ रामचन्द्रजी जिधरको जातेथे उधरकोही उनके साथ लक्ष्मणजी जातेथे, तिन श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण दोनोंने नाना प्रकारकी बाललीला करके अर्थात् घुटुओंसे

लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च ॥ द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः ॥ ४२ ॥ रामस्तु लक्ष्मणेनाथ विचरन्बाललीलया ॥ रमयामास पितरौ चेष्टितैर्मुग्धभाषितैः ॥ ४३ ॥ भाले स्वर्णमयाश्वत्थपर्णमुक्ताफलप्रभम् ॥ कण्ठे रत्नमणिव्रातमध्यद्वीपिनखाञ्चितम् ॥ ४४ ॥ कर्णयोः स्वर्णसम्पन्नरत्नार्जुनसटालुकम् ॥ सिञ्जानमणिमञ्जीरकटिसूत्राङ्गदैर्वृतम् ॥ ४५ ॥ स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम् ॥ अङ्गणे रिङ्गमाणं तं तर्णकाननु सर्वतः ॥ ४६ ॥

चलना आदि नानाप्रकारकी चाल और तोतली बोली आदि नाना प्रकारके भाषण करके मातापिताको परम आनन्द दिया ॥ ४३ ॥ ललाटके विषे मोतियोंसे गुँथे हुए सुवर्णके पीपलके पत्राकार भूषणको धारण करे हुए, और कण्ठकेविषे जिसके मध्यमें व्याघ्रके नख जडित किये हैं ऐसे अनेक रत्न और मणियोंके हारको धारण करे हुए ॥ ४४ ॥ और दोनों कर्णोंकेविषे अर्जुन वृक्षके कच्चे फलकी समान रत्नजटित स्वर्णके आभूषणको धारण करे हुए, और रमणीय शब्द करनेवालीं घण्टिकाओंकरके युक्त कन्धनी और बाजूबन्दोंको धारण करे हुए ॥ ४५ ॥ और छोटे छोटे दाँतोंकरके युक्त मुखसे मुसकुराते हुए, इन्द्रनीलमणिकी समान कान्तिमान्, गौओंके बछड़ोंके पीछे पीछे पूँछका सिरा पकड़कर आँगनमें चारोंओर फिरते हुए राजा दशरथ और कौसल्या तिन श्रीरामचन्द्रजीको देखकर परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ४६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा दशरथने भोजन करनेको बैठतेही परम आनन्द और प्रेमसे श्रीरामचन्द्रजीको "हे राम! आओ भोजन करो" इसप्रकार अनेकवार बुलाया ॥ ४७ ॥ परंतु वह श्रीरामचन्द्रजी खेलमेंही लगे रहे आए नहीं तब राजा दशरथने कौसल्यासे कहा कि इसको पकड़के लेआओ, तब वह कौसल्या पुत्रको पकड़नेके निमित्त हँसती हँसती ॥ ४८ ॥ पीछे दौड़ती भी हुई परन्तु श्रीरामचन्द्रजी हाथ नहीं आए, योगीजन अनेक जन्मोंपर्य्यन्त योगसाधन करते हैं, तब कहीं उन योगियोंके मनकी दौड़ तिन श्रीरामचन्द्रजीपर्य्यन्त पहुँचती है, फिर वह परमात्मा कौसल्याके हाथ किस प्रकार आते? कौसल्या उनके पकड़नेको समर्थ नहीं हुई यह ठीकही है फिर यदि इच्छा हुई तो कींचमें हाथ सनेसनाए हँसते हुए श्रीरामचन्द्रजी

दृष्ट्वा दशरथो राजा कौसल्या मुमुदे तदा ॥ भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत् ॥ ४७ ॥ आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया ॥ आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम् ॥ ४८ ॥ धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनोगतिम् ॥ प्रहसन्स्वयमायाति कर्दमाङ्कितपाणिना ॥ ४९ ॥ किञ्चिद्गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते ॥ कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती ॥ ५० ॥ वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम् ॥ अपूपान्मोदकान्कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा ॥ कर्णपूरांश्च विविधान् वर्षवृद्धौ च वायनम् ॥ ५१ ॥ गृहकृत्यं तया त्यक्तं तस्य चापल्यकारणात् ॥ एकदा रघुनाथोऽसौ गतो मातरमन्तिके ॥ ५२ ॥ भोजनं देहि मे मातर्न श्रुतं कार्यसक्तया ॥ ततः क्रोधेन भाण्डानि लगुडेनाहनत्तदा ॥ ५३ ॥

स्वयं आए ॥ ४९ ॥ और एक ग्रास लेके फिर चले गए तिन श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्या प्रत्येक महीनेमें श्रीरामचन्द्रजीको स्नान कराकर और आभूषण पहिनाकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको नाना प्रकारके वायने देतीथी ॥ ५० ॥ वह कौशल्या जब श्रीरामचन्द्रजीका प्रतिवर्ष जन्मदिन आता था, तब पूए—लड्डू—कर्णशष्कुली—कर्णपूर आदिनानाप्रकारका भोजन बनाकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको वायना देतीथी ॥ ५१ ॥ इन श्रीरामचन्द्रजीकी बालस्वभावकी चपलताके कारण तिस कौसल्याने घरके काम करना छोड़दिये. एक समय यह श्रीरामचन्द्रजी माताके समीप गए और मातासे कहने लगे कि ॥ ५२ ॥ हे मातः मुझे! भोजन दे, परन्तु इस श्रीरामचन्द्रजीके कथनको किसी कार्यमें तत्पर होनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण कौसल्याने नहीं सुना, तिससे श्रीरामचन्द्रजीको क्रोध आगया, सो हाथमें लकड़ी लेकर बरतन भाँडे फोड़ने लगे ॥ ५३ ॥ सो छींकेपर धरे हुए दूध—दधि और माखनको गिरालिया, और वह दुग्धादि प्रथम लक्ष्मणको दिया फिर क्रमसे भरतजीको दिया ॥ ५४ ॥ पीछेसे शत्रुघ्नकोभी वह दधि और दुग्ध दिया, यह वार्त्ता देखकर जब रसोय्येने कौसल्यासे कही तब श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए भागगए ॥ ५५ ॥ फिर जब कौसल्या आई तो देखतेही सब भागगए, तब कौसल्याभी पकडनेको उनके पीछे भागने लगी, परन्तु अतिकठिनसे पदंपदपर गिरगिरकर अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकड़ लिया, परन्तु कुछ कहा नहीं, रामचन्द्रजीभी छोटे बालककी समान हौलेहौले रुदन करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर माताने उन सबको हृदयसे लगाकर यत्नसे चुपाया. श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण आनन्दोंके समूह हैं, और सम्पूर्ण जग-

शिक्यस्थं पातयामास गव्यं च नवनीतकम् ॥ लक्ष्मणाय ददौ रामो भरताय यथाक्रमम् ॥ ५४ ॥ शत्रुघ्नाय ददौ पश्चाद्दधि दुग्धं तथैव च ॥ सूदेन कथिते मात्रे हास्यं कृत्वा प्रधावति ॥५५॥ आगतां तां विलोक्याथ ततः सर्वैः पलायितम् ॥ कौसल्या धावमानापि प्रस्खलन्ती पदे पदे ॥ ५६ ॥ रघुनाथं करे धृत्वा किञ्चिन्नोवाच भामिनी ॥ बालभावं समाश्रित्य मन्दं मन्दं रुरोद ह ॥ ५७ ॥ ते सर्वे लालिता मात्रा गाढमालिङ्ग्य यत्नतः ॥ एवमानन्दसन्दोहजगदानन्दकारकः॥५८॥मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दम्पती ॥ अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे ॥५९॥ उपनीता वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः ॥ धनुर्वेदे च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥६०॥ बभूवुर्जगतां नाथा लीलया नररूपिणः॥लक्ष्मणस्तु सदा राममनुगच्छति सादरम्॥६१॥सेव्यसेवकभावेन शत्रुघ्नो भरतं तथा ॥ रामश्चापधरो नित्यं तूणी बाणान्वितः प्रभुः॥

त्को आनन्द देतेहैं, तिन श्रीरामचन्द्रजीने मायाके योगसे बालरूप धारण करके इसप्रकार तिन कौसल्या और दशरथ दोनोंको आनन्द दिया. तदनन्तर कुछ कालके व्यतीत होनेपर वह चारों भ्राता कुमार अवस्थाको प्राप्तहुए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ तदनन्तर वसिष्ठ मुनिने उनका उपनयन संस्कार किया, चारों भ्राता विद्यामें प्रवीण हुए और शस्त्रविद्यामें तो अत्यन्तही प्रवीण हुए, और उन चारोंमें प्रत्येकने सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वार्थसहित अभिप्रायको जाना, इन्होंने लीलाकरके मनुष्यरूप धारण कियाथा, वास्तवमें वह सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी थे, तिनमें लक्ष्मणजी सदा आदरपूर्वक श्रीरामचन्द्रकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करते थे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ तिसीप्रकार शत्रुघ्न सेव्यसेवकभावकरके भरतजीकी इच्छाके अनुसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्त्ताव करते थे. श्रीरामचन्द्रजी महापराक्रमी हुए, वह श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीकरके सहित हाथमें धनुष और बाण और पींठपर तरकस धारण करके तथा घोड़ेपर चढ़कर प्रतिदिन शिकार खेलनेको वनमें जातेथे, और अनेक दुष्ट पशुओंका वध करके सम्पूर्ण वृत्तान्त पिताको वर्णन करतेथे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ तिन श्रीरामचन्द्रजीका नित्यका क्रम ऐसा था कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर तथा स्नानसन्ध्यादि करके और नम्रतापूर्वक मातापिताको प्रणाम करके नगरके मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य्य पूर्ण करतेथे ॥ ६४ ॥ तदनन्तर सब भ्राताओंसहित प्रतिदिन विद्वान् और विचारशील ब्राह्मणोंको साथ लेकर भोजन करतेथे, और भोजनके अनन्तर धर्म्मशास्त्रके रहस्यों (गुप्तवार्त्ताओ) को श्रवण करतेथे. और उनका व्याख्यान करतेथे, यह श्रीरामचन्द्रजीका नियम कदापि नहीं टलताथा ॥ ६५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार मनुष्यका रूप

अश्वारूढो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः ॥ हत्वा दुष्टमृगान्सर्वान्पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६३ ॥ प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च ॥ पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ॥ ६४ ॥ बन्धुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम् ॥ धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च ॥ ६५ ॥ एवं परात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम् ॥ चक्रेऽविकारी परिणामहीनोविचार्यमाणे न करोति किञ्चित् ॥ ६६ ॥ इति श्रीमध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां ज्वलनप्रभः ॥ द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया ॥ १ ॥ दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युत्थायाचिरेण तु ॥ वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ २ ॥

धारण करके मनुष्यके समान यह सम्पूर्ण लीला किया, वास्तविक विचार करनेमें वह कुछ कार्य्य नहीं करतेहैं. क्योंकि वह साक्षात् परमात्मा हैं, उनको किसीप्रकारका विकार नहीं होताहै इसकारण उनके स्वरूपमें किसीप्रकार परिणाम नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भव गौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपविरचितया भाषाटीकया सहित स्तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति ! एक समय अग्निसमान तेजकरके देदीप्यमान विश्वामित्र मुनि, परमेश्वरने अपनी मायाकरके रामावतार धारण किया है, यह जानकर, उनके दर्शन करनेके निमित्त अयोध्यानगरीमें आए ॥ १ ॥ तिन विश्वामित्रऋषिको देखतेही सन्मान करनेके निमित्त राजा दशरथ तत्काल उठ खड़े हुए, और तिन राजा दशरथने वसिष्ठजीकी सम्मतिके अनुसार विश्वामित्रऋषिका विधिपूर्वक पूजन करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्कार किया ॥ २ ॥ राजा दशरथ हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक अपनी बुद्धिको विश्वामित्रऋषीके चरणोंमें नम्र किया और प्रणाम करके विश्वामित्रजीसे बोले कि हे तपोधन! आपका शुभागमन हुआ इसकारण मैं कृतार्थ हुआहूँ ॥ ३ ॥ आपसरीखे महात्मा जिस स्थानमें जाते हैं तहाँ सम्पूर्ण सम्पत्तिये आजाती हैं. हे मुने! आप जिस कार्य्यकेनिमित्त यहाँ आए हैं सो मेरेअर्थ आज्ञा करिये, मैं उस कार्य्यको अवश्यही करूँगा ॥ ४ ॥ इसप्रकार राजा दशरथके कथनको श्रवण करके महाबुद्धिमान् विश्वामित्रऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए, और राजा दशरथसे बोले कि—हे दशरथ! मैं पौर्णिमा और अमावास्याके आनेपर पर्वकाल देखकर जिसजिससमय देवता और पितरोंकी आराधना करनेके उद्देशसे यज्ञकर्म्मका प्रारम्भ करताहूँ, उस समयमें

अभिवाद्य मुनिं राजा प्राञ्जलिर्भक्तिनम्रधीः ॥ कृतार्थोऽस्मि मुनीन्द्राहं त्वदागमनकारणात् ॥ ३ ॥ त्वद्विधा यद्गृहं यान्ति तत्रैवायान्ति सम्पदः ॥ यदर्थमागतोऽसि त्वं ब्रूहि सत्यं करोमि तत् ॥ ४ ॥ विश्वामित्रोऽपि तं प्रीतः प्रत्युवाच महामतिः ॥ अहं पर्वणि सम्प्राप्ते दृष्ट्वा यष्टुं सुरान्पितॄन् ॥ ५ ॥ यदाऽरेभे तदा दैत्या विघ्नं कुर्वन्ति नित्यशः ॥ मारीचश्च सुबाहुश्च परे चानुचरास्तयोः ॥ ६ ॥ अतस्तयोर्वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा तव श्रेयो भविष्यति ॥ ७ ॥ वसिष्ठेन सहामन्त्र्य दीयतां यदि रोचते ॥ पप्रच्छ गुरुमेकान्ते राजा चिन्तापरायणः ॥ ८ ॥ किं करोमि गुरो रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः ॥ बहुवर्षसहस्रान्ते कष्टेनोत्पादिताः सुताः ॥ ९ ॥ चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः ॥ रामस्त्वितो गच्छति चेन्न जीवामि कथञ्चन ॥ १० ॥

मारीच—सुबाहु तथा और उनके सेवक जो राक्षस हैं सो सदा विघ्न करते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इसकारण उनका वध करनेके लिये तुह्मारे ज्येष्ठपुत्र श्रीरामचन्द्रजी और उनके साथ उनके छोटे भ्राता लक्ष्मण इन दोनोंको मुझे देओ, तिससे तुह्मारा कल्याण होगा ॥ ७ ॥ विश्वामित्रजीके इस वचनको श्रवण करके राजा दशरथ बड़ी चिन्तामें पडगए, और इस विषयमें गुरु वसिष्ठजीसे सम्मति करी, तब वसिष्ठजीने एकान्तमें राजा दशरथसे कहा कि यदि इच्छा हो तो देदो ॥ ८ ॥ तब दशरथ बोले कि हे गुरो! क्या करूँ! मेरा मन रामचन्द्रजीके छोड़नेको नहीं करता है, अनेक सहस्रवर्षके अनन्तर महाकष्टसे यह चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ९ ॥ उनके गुण मैं कहाँलौं वर्णन करूं, वह चारों देवताओंके समान हैं, तिनमें रामचन्द्र तो मुझे अत्यन्तही प्रियहै,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामचन्द्रजीके यहाँसे चले जानेपर सैंकड़ों उपाय करनेसेभी मैं नहीं जी सकूँगा ॥ १० ॥ और यदि विश्वामित्र ऋषिसे रामचन्द्रके देनेको नहीं कर दूँगा तो ऋषि निःसन्देह शाप देंगे, इस विषयमें मैं किसरीतिसे बचारहूँ और कल्याण होय तथा कथनभी असत्य नहीं होय ॥ ११ ॥ इसप्रकार राजा दशरथके कथनको श्रवण करके वसिष्ठ मुनि बोले कि—हे राजन्! देवताओंकी एक गुप्त वार्त्ता तुमसे कहताहूँ सो श्रवण करो. यह प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये. हे राजन्! रामचन्द्र मनुष्य नहीं है, यह जन्ममरणरहित साक्षात् परमेश्वरका अवतार है. ॥ १२ ॥ हे राजन्! पूर्व कालमें ब्रह्माजीने पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त इनकी प्रार्थना करी थी, इसकारण यह तुह्मारे यहाँ कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं, यह तुह्मारे पूर्व जन्मके पुण्योंका फल है ॥ १३ ॥ हे राजन्! तू पूर्वजन्ममें ब्रह्माका पुत्र कश्यपनामक प्रजापति था, और कौसल्या उससमय अदिति नामवाली

प्रत्याख्यातो यदि मुनिः शापं दास्यत्यसंशयः ॥ कथं श्रेयो भवेन्मह्यमसत्यं चापि न स्पृशेत् ॥ ११ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ शृणु राजन्देव गुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः ॥ १२ ॥ भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ॥ स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ ॥ १३ ॥ त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मण सुतः ॥ कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी ॥ भवन्तौ तप उग्रं वै तेपाथे बहुवत्सरम् ॥ १४ ॥ अग्राम्यविषयौ विष्णुपूजाध्यानैकतत्परौ ॥ तदा प्रसन्नौ भगवान्वरदो भक्तवत्सलः ॥ १५ ॥ वृणीष्व वरमित्युक्ते त्वं मे पुत्रो भवामल ॥ इति त्वया याचितोऽसौ भगवान्भूतभावनः ॥ १६ ॥ तथेत्युक्त्वाऽद्य पुत्रस्ते जातो रामः स एव हि ॥ शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥

देवमाता थी; जिसका सुयश सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ तुम दोनोंने उस जन्ममें अनेक वर्षोंपर्य्यन्त तीव्र तप किया, और तुम दोनोंने आहारविहारादि ग्राम्य सुखका उपभोग त्याग दिया, और विष्णुभगवान्के पूजन तथा ध्यान करनेमें शरीर और मनको एकाग्र होकर लगादियाथा ॥ १५ ॥ तिससमय वरदान देनेवाले तथा भक्तोंपर कृपा करनेवाले ईश्वर तुम दोनोंके तपसे प्रसन्न होगए, और "वर मांगो" इसप्रकार कहा, तब तुमने जगत्की सृष्टि—स्थिति और प्रलय करनेवाले परमात्मासे "हे निर्मलस्वरूप ईश्वर! तुम हमारे पुत्र होओ" ऐसा वर मांगा ॥ १६ ॥ तब परमात्माने "तथास्तु" कहकर वरदान दिया, वही परमात्मा इससमय तुह्मारे यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेकर उत्पन्न हुए हैं और लक्ष्मण शेषजीका अवतार है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो रामचन्द्रजीके पीछेही आया है, और भरत तिन शंखचक्रगदाधारी भगवान्के चक्रका अवतार है और शत्रुघ्न गरुडका अवतार है, इसप्रकार देखकर योगमायाभी सीता नामकरके जनककी पुत्री हुई है ॥ १७ ॥ १८ ॥ और विश्वामित्रमुनिभी तिस सीतानामक योगमायाको रामचन्द्रसे शरीर सम्बन्धका योग करनेके निमित्त लेनेको यहाँ आए हैं. हे राजन् ! यह वार्त्ता अत्यन्त गुप्त है, इसकारण किसीसे कहना योग्य नहीं है, और विश्वामित्र-ऋषिकी सन्तुष्ट अन्तःकरणसे पूजा करो और लक्ष्मणसहित लक्ष्मीपति रामचन्द्रको उनके साथ भेजदो ॥ १९ ॥ २० ॥ जब वसिष्ठजीने इस प्रकार कहा तब तौ राजा दशरथके मनमें अत्यंत हर्ष हुआ, और अपनेको कृतकृत्य माना ॥ २१ ॥ और हे राम ! हे राम ! हे लक्ष्मण ! इसप्रकार आदर-पूर्वक राम लक्ष्मणको बुलाकर हृदयसे लगाया, और मस्तक सूँघकर दोनोंको विश्वामित्रजीको अर्पण किया ॥ २२ ॥ तब राम और लक्ष्मणके

जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रगदाभृतः ॥ योगमायाऽपि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥१८॥ विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः॥
एतद्गुह्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन ॥१९॥ अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाऽथ कौशिकम् ॥ प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सह लक्ष्मणम्॥२०॥
वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितान्तरः ॥२१॥ आहूय रामरामेति लक्ष्मणेति च सादरम् ॥ आलिङ्ग्य
मूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥२२॥ ततोऽतिहृष्टो भगवान्विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ आशीर्भिरभिनन्द्याथ आगतौ रामलक्ष्मणौ ॥२३॥
गृहीत्वा चापतूणीरबाणखड्गधरौ ययौ ॥ किञ्चिद्देशमतिक्रम्य राममाहूय भक्तितः ॥ २४ ॥ ददौ बलां चातिबलां विद्ये द्वे देवनिर्मिते ॥
ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते ॥ २५ ॥ तत उत्तीर्य गङ्गां ते ताटकावनमागमन् ॥ विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम्॥२६॥

मिलनेसे विश्वामित्रजी परम आनंदको प्राप्त हुए, और परम ज्ञानी प्रभावशाली विश्वामित्रऋषिने राजा दशरथको अनेक आशीर्वाद दिये और गौरव किया, और धनुषबाण तथा तरकस धारण करनेवाले आए हुए श्रीरामलक्ष्मणको साथ लेकर चलदिये. कुछ मार्ग चलकर विश्वामित्रऋषिने परम भक्ति-पूर्वक रामचन्द्रजीको समीप बुलाकर उन्हे देवताओंकी रची हुई बला (शारीरक सामर्थ्य देनेवाली) और अतिबला (मनोवाञ्छित कार्य्यकी सिद्धि करनेवाली) नामक दो विद्या दीं, जिन विद्याओंके ग्रहण करनेमात्रसे क्षुधाके कारण क्षीणता और संतापकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ तदनंतर वह तीनों भागीरथीको उतरकर ताडकाके वनमें गए, रामचंद्रजीके हाथसे हुए कार्य्यमें कदापि अपयश नहीं होगा, ऐसा विचारकर उससमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वामित्रऋषि श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २६ ॥ हे राम ! इस स्थानमें एक ताडका नामवाली राक्षसी रहती है, वह अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करके सम्पूर्ण लोकोंको पीडा देती है, सो तुम मनमें किसीप्रकारका विचार न करके उस राक्षसीका वध करो ॥ २७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने "तथास्तु—बहुत अच्छा" कहकर धनुष हाथमें लिया और उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर टङ्कार शब्द किया, उस शब्दसे सम्पूर्ण वन परिपूर्ण हुआ ॥ २८ ॥ और ताडकाके कानमें पहुंचा, ताडका उसको सहन नकर सकी सुनतेही क्रोधमें भरगई और भयंकर रूप धारण करके मेघकी समान गरजती हुई श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख दौड़ी ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने तत्कालही उसके वक्षःस्थलमें एक बाणका प्रहार किया, उस बाणके लगतेही वह ताड़का मुखसे अत्यन्त रुधिर गिराती हुई वनमें गिरपडी ॥ ३० ॥ तदनन्तर वह ताड़का सुन्दर स्वरूपवती सम्पूर्ण अङ्गोंमें आभूषण धारण करेहुए एक

अत्रास्ति ताटका नाम राक्षसी कामरूपिणी ॥ बाधते लोकमखिलं जहि तामविचारयन् ॥ २७ ॥ तथेति धनुरादाय सगुणं रघुनन्दनः ॥ टङ्कारमकरोत्तेन शब्देनापूरयद्वनम् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसहमाना सा ताटका घोररूपिणी ॥ क्रोधसंमूर्छिता राममभिदुद्राव मेघवत् ॥ २९ ॥ तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि ॥ पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिरं बहु ॥ ३० ॥ ततोऽतिसुन्दरी यक्षी सर्वाभरणभूषिता ॥ शापात्पिशाचतां प्राप्ता मुक्ता रामप्रसादतः ॥ ३१ ॥ नत्वा रामं परिक्रम्य गता रामाज्ञया दिवम् ॥ ३२ ॥ ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामं मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किञ्चित् ॥ सर्वास्त्रजालं सरहस्यमन्त्रं प्रीत्याऽभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः ॥ ३३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायण उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

यक्षिणीके रूपमें दिखाई दी, यह शापके कारण राक्षसयोनिको प्राप्त हुईथी, सो श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे इससमय शापसे छूटगई ॥ ३१ ॥ और उसने प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा किया, और तिस श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे स्वर्गलोकको चली गई ॥ ३२ ॥ यह प्रभाव देखकर विश्वामित्रजीको परम आनन्द हुआ और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर मुनिने मस्तकमें सूँघा, और मैं इनका गुरु होउंगा तो अन्तमें मेरी मुक्ति होजायगी ऐसा क्षणमात्र विचार करके परमप्रसन्नतासे श्रीरामचन्द्रजीको रहस्यमन्त्रोंसहित सम्पूर्ण अस्त्रविद्याका उपदेश किया ॥ ३३ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणउमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसश्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपविरचितया भाषाटीकया सहितश्चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति! श्रीरामचन्द्रजीने जहाँ ताटकाका वध किया उसे कामाश्रम अर्थात् कामदेवका आश्रम कहते हैं (जहाँ कि शिवजीने कामदेवको भस्म किया था) तिस रमणीय वनमें अनेक मुनि रहते हैं, तहाँ वह तीनों एक रात्रि निवास करके प्रभात होतेही धीरे धीरे चलदिये ॥ १ ॥ और कुछ कालके अनन्तर तिन दोनो राजकुमारोंसहित विश्वामित्रऋषि अपने सिद्धाश्रममें पहुँचे, तिस स्थानका "वामनाश्रम" नाम है, जहाँकि सिद्धचारणादि देवयोनि प्रेमपूर्वक निवास करतेहैं. तहां निवास करनेवाले मुनियोंने विश्वामित्र ऋषिकी आज्ञासे तत्काल श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीका परम सत्कार किया. तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्रजीसे बोले कि—हे मुने! अब आप यज्ञ करनेका प्रारम्भ करिये ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ तत्र कामाश्रमे रम्ये कानने मुनिसङ्कुले ॥ उषित्वा रजनीमेकां प्रभाते प्रस्थिताः शनैः ॥ १ ॥ सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् ॥ विश्वामित्रेण सन्दिष्टा मुनयस्तन्निवासिनः ॥ २ ॥ पूजां च महतीं चक्रू रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् श्रीरामः कौशिकं प्राह मुने दीक्षां प्रविश्यताम् ॥ ३ ॥ दर्शयस्व महाभाग कुतस्तौ राक्षसाधमौ ॥ तथेत्युक्तो मुनिर्यष्टुमारेभे मुनिभिः सह ॥ ४ ॥ मध्याह्ने ददृशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ ॥ मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ॥ ५ ॥ रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ सन्दधे सुधीः ॥ आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक् ॥ ६ ॥ तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयन् शतयोजनम् ॥ पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७ ॥ द्वितीयोऽग्निमयो बाणः सुबाहुमजयत्क्षणात् ॥ अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिनः ॥ ८ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न! महाभाग! वह दुष्ट राक्षस कहाँ है मुझे दिखाइये. इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर मिश्वामित्रजीने "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर मुनियोंसहित यज्ञ करनेका प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥ तब मध्याह्न कालकेसमय यथेष्ट रूपधारण करनेवाले वह मारीच और सुबाहु नामक दोनो राक्षस रुधिर और हड्डियोंकी वर्षा करते हुए दीखे ॥ ५ ॥ परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीनेभी तत्काल धनुष हाथमें लेकर उसमें दो बाण चढ़ाए, और प्रत्यञ्चाको कानोपर्य्यन्त खैंचकर वह बाण दोनोंपर अलग अलग छोड़े ॥ ६ ॥ उनमेंसे एक बाणने तो मारीच चारसौ कोशपर्य्यंत घुमाकर समुद्रमें लेजाकर डालदिया, यह परम अद्भुतसा चरित्र हुआ ॥ ७ ॥ दूसरे अग्निरूप बाणने क्षणमात्रमें सुबाहुका प्राणांत करदिया, और उन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोनोंके अनुचर जो अन्य राक्षस थे उनको लक्ष्मणजीने तत्काल यमपुरीको पहुँचादिया ॥ ८ ॥ तिस समय श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके ऊपर देवताओंने पुष्पोंके गुच्छोंकी वर्षा करी, स्वर्गमें देवताओंके नगारे बजने लगे और सिद्ध चारण तिन दोनोंकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥ इस पराक्रमको देखतेही विश्वामित्रजीके नेत्रोंमें आनंदके आँसूँ भर आए और उन्होंने पूज्य रामचन्द्रजीका भक्तिपूर्वक पूजन किया, और गोदमें बैठाकर हृदयसे लगाया ॥ १० ॥ और पक्व फल आदि मंगाकर लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजीको भोजन करनेके निमित्त दिये, और मधुर मधुर पुराणोंकी कथा कहकर तिस आश्रममें तीन दिन विताए ॥ ११ ॥ चौथे दिन विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीको बोले कि—हे परमानंददायक श्रीराचन्द्रजी ! अब हम एक बड़े

पुष्पौघैराकिरन्देवा राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ ९ ॥ विश्वामित्रस्तु सम्पूज्य पूजार्हं रघुनन्दनम् ॥ अङ्के निवेश्य चालिङ्ग्य भक्त्या बाष्पाकुलेक्षणः ॥ १० ॥ भोजयित्वा सह भ्रात्रा रामं पक्वफलादिभिः ॥ पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ॥ ११ ॥ चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते कौशिको राममब्रवीत् ॥ रामराम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे वयम् ॥ १२ ॥ विदेहराजनगरे जनकस्य महात्मनः ॥ तत्र माहेश्वरं चापमस्ति न्यस्तं पिनाकिना ॥ १३ ॥ द्रक्ष्यसि त्वं महासत्त्वं पूज्यसे जनकेन च ॥ इत्युक्त्वा मुनिभिस्ताभ्यां ययौ गङ्गासमीपगम् ॥ १४ ॥ गौतमस्याश्रमं पुण्यं यत्राहल्यास्थिता तपः ॥ दिव्यपुष्पफलोपेतपादपैः परिवेष्टितम् ॥ ॥ १५ ॥ मृगपक्षिगणैर्हीनं नानाजन्तुविवर्जितम् ॥ दृष्ट्वोवाच मुनिं श्रीमान् रामो राजीवलोचनः ॥ १६ ॥

यज्ञका प्रारम्भ देखनेको विदेहदेशकी राजधानीको चलते हैं, तहाँ महात्मा राजा जनकके यहाँ श्रीशिवजीने अपना "माहेश्वर" नामक धनुष रक्खा है ॥ १२ ॥ १३ ॥ तिस प्रचण्ड धनुषका तुम्है दर्शन होगा, और राजा जनकभी तुम्हारा पूर्ण सत्कार करेगा, विश्वामित्र मुनि श्रीरामचंद्रसे इसप्रकार कहकर, और तिन दोनोंको तथा ऋषियोंके समूहको साथ लेकर चलदिये, और गङ्गाके तटपर गौतमऋषिके पवित्र आश्रममें पहुँचे, जहाँ कि अहल्याने तप कियाथा, तहां सुन्दर सुन्दर फल और पुष्पोंकरके युक्त अनेक वृक्ष लग रहे थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ परन्तु तहां पशुपक्षी बिलकुल नहीं थे, तथा वनके अनेक प्रकारके क्षुद्र जीवजन्तुभी नहीं थे इसप्रकारकी दशा देखकर कमलनेत्र सर्वैश्वर्य्यसंपन्न श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्रमुनिसे बोले ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे मुने ! यह जो आगे विस्तीर्ण सुन्दर आश्रमस्थान दीख रहा है सो किसका है, मुझे यह स्थान परम रमणीय प्रतीत होता है, यहा पत्र पुष्प और फल तो बहुत दीखते हैं, परन्तु किसीप्रकारके श्वापद अथवा जीवजन्तु नहीं दीखते हैं ॥ १७ ॥ यहां आनेसे मेरे अन्तःकरणको परम आनन्द होता है, सो हे भगवन् ! इसका कारण मेरे अर्थ यथावत् वर्णन करो ॥ १८ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि—हे रामचन्द्र ! पूर्वकालका वृतान्त कहताहूं सो सुनो. अपना धर्म्माचरण करनेवाले सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ एक गौतम नामक मुनि थे, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध है, वह मुनि परमेश्वरकी आराधना करनेमेंही अपने समयको व्यतीत करते थे ॥ १९ ॥ तिन गौतमऋषिका तीव्र ब्रह्मचर्य्यव्रत देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न होगए, और उनको अपनी अहल्या नामक परमरूपवती कन्या दी, उसने गौतमऋषिकी अत्यन्त सेवा करी ॥ २० ॥ वह महा तपस्वी गौतममुनि तिस अहल्याके साथ यहां

कस्यैतदाश्रमपदं भाति भास्वच्छुभं महत् ॥ पत्रपुष्पफलैर्युक्तं जन्तुभिः परिवर्जितम् ॥ १७ ॥ आह्लादयति मे चेतो भगवन् ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १८ ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ शृणु राम पुरा वृत्तं गौतमो लोकविश्रुतः ॥ सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठस्तपसाराधयन् हरिम् ॥ १९ ॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ कन्यामहल्यां लोकसुन्दरीम् ॥ ब्रह्मचर्येण सन्तुष्टः शुश्रूषणपरायणाम् ॥ २० ॥ तया सार्धमिहावात्सीद्गौतमस्तपतां वरः ॥ शक्रस्तु तां धर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरन्वहम् ॥ २१ ॥ कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात् ॥ धर्षयित्वाऽथ निरगात्त्वरितं मुनिरप्यगात् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा यान्तं स्वरूपेण मुनिः परमकोपनः ॥ पप्रच्छ कस्त्वं दुष्टात्मन्मम रूपधरोऽधमः ॥ २३ ॥ सत्यं ब्रूहि न चेद्भस्म करिष्यामि न संशयः ॥ सोऽब्रवीद्देवराजोऽहं पाहि मां कामकिङ्करम् ॥ २४ ॥

रहते थे. अहल्याके पतिव्रता धर्म्मको खण्डित करनेकी इच्छासे इन्द्रदेव प्रतिदिन ऐसा समय देखते थे कि गौतममुनि इस स्थानमें न हों ॥ २१ ॥ एकसमय जब गौतमऋषि आश्रमसे बाहर गए, तब सोई इन्द्र गौतमऋषिके समान वेष धारण करके गौतमऋषिके आश्रममें आया और अहल्याके पतिव्रता धर्म्मको खण्डित करके बाहर निकला कि इतनेमेंही गौतम मुनिभी लौटकर आगए ॥ २२ ॥ अपने समान वेषधारी पुरुषको आतेहुए देखकर गौतममुनिको बड़ा कोप आया, और उससे बोले कि—रे दुष्ट ! अरे नीच ! मेरेसरीखा स्वरूप धारण करनेवाला तू कौन है ? ॥ २३ ॥ सत्य बताओ, नहीं तो निःसंदेह मैं तुझे भस्म करदूँगा. तब वह पुरुष बोला, कि मैं देवताओंका राजा इंद्र हूँ. महाराज ! कृपाकरके मेरे अपराधको क्षमा करो, मैं काम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवके वशीभूत होगया था ॥ २४ ॥ तिससे मेरे हृदयमें पापका अङ्कुर उत्पन्न होकर मेरे हाथसे निंदित कर्म्म होगया, इसप्रकार सुनकर गौतम मुनिको इतना क्रोध आया कि नेत्र लाल होगए और इन्द्रको शाप दिया ॥२५॥ कि रे दुष्ट ! तू इतना योनिलम्पट हुआ इसकारण तेरे शरीरमें सहस्रभग होगी, इसप्रकार इन्द्रको शाप देकर शीघ्रही आश्रममें गए ॥ २६ ॥ तहां अहल्या कांपती हुई हाथ जोड़ खड़ी थी, तिसको देखतेही गौतमऋषि बोले कि रे दुष्टे ! तैंने दुराचरण किया है इसकारण तू शिलामें गुप्तरूप होकर मेरे आश्रममें रह और निराहार होकर रात्रिदिन तपश्चर्य्या करती हुई धूप वायु और वर्षाआदिका सहन कर और हृदयकेविषे स्थित सब कार्य्यमें समर्थ जो श्रीरामचन्द्रजी तिनका एकाग्रमनसे ध्यान कर, आजसे मेरे आश्र-

कृतं जुगुप्सितं कर्म मया कुत्सितचेतसा ॥ गौतमः क्रोधताम्राक्षः शशाप दिविजाधिपम् ॥ २५ ॥ योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्रभगवान्भव ॥ शत्वा तं देवराजानं प्रविश्य स्वाश्रमं द्रुतम् ॥ २६ ॥ दृष्ट्वाहल्यां वेपमानां प्राञ्जलिं गौतमोऽब्रवीत् ॥ दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलाया माश्रमे मम ॥ २७ ॥ निराहारा दिवारात्रं तपः परममास्थिता ॥ आतपानिलवर्षादिसहिष्णुः परमेश्वरम् ॥ २८ ॥ ध्यायन्ती राममेकाग्रमनसा हृदि संस्थितम् ॥ नानाजन्तुविहीनोऽयमाश्रमो मे भविष्यति ॥ २९ ॥ एवं वर्षसहस्रेषु ह्यनेकेषु गतेषु च ॥ रामो दाशरथिः श्रीमानागमिष्यति सानुजः ॥ ३० ॥ यदा त्वदाश्रयशिलां पादाभ्यामाक्रमिष्यति ॥ तदैव धूतपापा त्वं रामं सम्पूज्य भक्तितः ॥ ३१ ॥ परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुत्वा शापाद्विमोक्ष्यसे ॥ पूर्ववन्मम शुश्रूषां करिष्यसि यथासुखम् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा गौतमः प्रागाद्धिमवन्तं नगोत्तमम् ॥ तदाद्यहल्या भूतानामदृश्या स्वाश्रमे शुभे ॥ ३३ ॥ तव पादरजःस्पर्शं काङ्क्षते पवनाशना ॥ आस्तेऽद्यापि रघुश्रेष्ठ तपो दुष्करमास्थिता ॥ ३४ ॥

मर्में कृमिकीट आदि नहीं होंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसप्रकार अनेक सहस्रवर्ष व्यतीत होनेपर दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भ्राता सहित यहाँ आवेंगे ॥ ३० ॥ और जिससमय वह अपने चरणसे तेरे निवास करनेकी शिलाको आक्रमण करैंगे उससमयही तेरे पाप नष्ट होजायँगे तब तू भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करेगी और प्रदक्षिणा करके नमस्कार करती हुई स्तुति करेगी तब शापसे मुक्त होगी, तब फिर तू पहिलेकी तुल्य मेरी सेवा करनेके योग्य होगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि—हे रामचन्द्र ! गौतम ऋषि इसप्रकार कहकर परम पवित्र हिमालय पर्वतपर चलेगए, और उस दिनसेही अपने इस पवित्र आश्रममें अहल्या अदृश्यरूप होकर आपके चरणोंकी धूलिके स्पर्शकी इच्छा करती हुई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवास कर रही है, हे रामचन्द्र ! वह अहल्या अब भी केवल वायु भक्षण करके परम तप कर रही है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसकारणही हे रामचन्द्र ! मैं तुमसे इतना कहताहूँ कि तुम ब्रह्मकन्या और गौतम ऋषिकी स्त्री जो अहल्या तिसको पवित्र करो. इसप्रकार कहकर परम तपस्वी विश्वामित्र ऋषिने रामचन्द्रजीका हाथ पकड़कर शिलामें गुप्तरूपसे परम उग्र तपस्या करंती हुई अहल्याको दिखाया. श्रीरामचन्द्रजीने उसको चरणसे स्पर्श किया कि वह महातपस्विनीरूप दीखी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दर्शन करतेही श्रीरामचन्द्रजीने अहल्याको प्रणाम किया और "मैं रामचन्द्र हूँ" इसप्रकार कहा, उससमय अहल्याने श्रीरामचन्द्रजीको पीताम्बर पहिने हुए, चतुर्भुज और शंख चक्र गदा पद्म धारण करेहुए तथा हाथमें धनुषबाण लियेहुए,

पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम् ॥ इत्युक्त्वा राघवं हस्ते गृहीत्वा मुनिपुङ्गवः ॥ ३५ ॥ दर्शयामास चाहल्यामुग्रेण तपसा स्थिताम् ॥ रामः शिलां पदा स्पृष्ट्वा तां चापश्यत्तपोधनाम् ॥ ३६ ॥ ननाम राघवोऽहल्यां रामोऽहमिति चाब्रवीत् ॥ ततो दृष्ट्वा रघु श्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम् ॥ ३७ ॥ चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणम् ॥ धनुर्बाणधरं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ३८ ॥ स्मितवक्त्रां पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ नीलमाणिक्यसङ्काशं द्योतयन्तं दिशो दश ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा रामं रमानाथं हर्षविस्फारितेक्षणा ॥ गौतम स्य वचः स्मृत्वा ज्ञात्वा नारायणं वरम् ॥ ४० ॥ सम्पूज्य विधिवद्राममर्घ्यादिभिरनिन्दिता ॥ हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दण्डवत्प्रणिपत्य सा ॥ ४१ ॥ उत्थाय च पुनर्दृष्ट्वा रामं राजीवलोचनम् ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी गिरा गद्गदयैलत ॥ ४२ ॥

लक्ष्मणजीकरके सहित मंद मंद मुसकुराते हुए कमलके समान नेत्रवाले तथा वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करेहुए और इंद्रनीलमणिके समान श्यामवर्ण शरीरकी कांतिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करतेहुए देखा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करतेही अहल्याके नेत्र आनंदके जलसे भरगए, तदनंतर गौतम ऋषिके कथनका स्मरण होतेही अहल्याने रामचंद्रजीको पूर्णरीतिसे जान लिया कि यह सबके अंतर्यामी परमात्मा हैं ॥ ४० ॥ तदनंतर तिस पवित्र अहल्याने अर्घ्यआदिके द्वारा रामचंद्रजीका विधिपूर्वक पूजन करके दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ और उठकर उस कमलनयन सुंदर मूर्तिका फिर दर्शन किया, तब अहल्याके सम्पूर्ण अङ्गपर रोमाञ्च खड़े होगए, और गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगी॥४२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहल्या बोली कि—हे जगदाधार! श्रीरामचन्द्र! मैं तुह्मारे चरणकमलोंकी धूलिके स्पर्शसे कृतकृत्य होगई, ब्रह्मा और शिवआदि देवताओंके अन्तःकरणोंमें जब जब संकट प्राप्त होते हैं तब तब वह जिस आपके चरणोंकी धूलिको ढूँढ़ते हैं, तिस आपके चरणोंकी धूलिका आज मुझे स्पर्श हुआ. हे भगवन्! इसकारण मैं धन्य हूँ ॥ ४३ ॥ हे राम! तुह्मारे चरित्र परम विलक्षण हैं, वेदोंमें तुह्मारे स्वरूपका इसप्रकार वर्णन किया है कि, तुम चरणादि अवयवोंकरके रहित हो तथापि तुम सम्पूर्ण जगत्में विचरते हो, मायासे मोहित सांसारिक पुरुष तुह्मैं मनुष्यरूप मानते हैं, तुम परिपूर्ण आनंदस्वरूप होकरभी सम्पूर्ण मायावी पुरुषोंकी अपेक्षाचतुर हो ॥ ४४ ॥ भागीरथी गङ्गाका प्रवाह जिनके चरणकमलोंकी रजके

अहल्योवाच॥अहो कृतार्थाऽस्मि जगन्निवास ते पादाब्जसंलग्नरजःकणादहम्॥स्पृशामि यत्पद्मजशङ्करादिभिर्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ॥४३॥ अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं मनुष्यभावेन विमोहितं जगत्॥चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः॥४४॥ यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरिञ्चिमुखान्पुनाति ॥ साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते किं वर्ण्यते मम पुराकृत-भागधेयम् ॥ ४५ ॥ मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम् ॥ धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भ-जिष्ये ॥ ४६ ॥ यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च ॥ यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारिस्तं रामचन्द्रम-निशं हृदि भावयामि ॥ ४७ ॥ यस्यावतारचरितानि विरिञ्चिलोके गायन्ति नारदमुखा भवपद्मजाद्याः ॥ आनन्दजाश्रुपरिषिक्तकुचा ग्रसीमा वागीश्वरी च तमहं शरणं प्रपद्ये ॥ ४८ ॥

स्पर्शसे पवित्र होकर शिव और ब्रह्मा आदिकोंकोभी पवित्र करता है, वह तुम साक्षात् रूपसे मेरे दृष्टिगोचर हुए, यह मेरे पहिले अनेक जन्मोंके पुण्योंका प्रभाव है ॥ ४५ ॥ हे भगवन्! भक्तोंके दुःखोंको दूर करना यह तुह्मारा व्रत है, इस कारण तुमने इस मृत्युलोकमें मनुष्यरूप धारण किया है, तुह्मारी यह कमलवत् विशाल नेत्रवाली रामावतारकी मूर्ति परम रमणीय है, मैं तुह्मारे धनुष धारण करनेवाले इस स्वरूपकाही सदा भजन करूँगी; अन्य किसीका कदापि भजन नहीं करूंगी ॥ ४६ ॥ वेद जिनके चरणकमलके रजको ढूंढते हैं, ब्रह्माजी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं और भगवान् शिव-जीभी जिनके नामका रस बड़े प्रेमसे ग्रहण करते हैं, तिन श्रीरामचन्द्रजीका मैं हृदयमें सदा ध्यान करती हूं ॥ ४७ ॥ सत्यलोकमें नारदादि साधु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और शिव तथा ब्रह्माआदि देवता जिनके अवतारोंके चरित्रोंका गान करते हैं, और जिनकी लीलाओंका वर्णन करतेसमय नेत्रोंसे आनन्दके आसुओंका प्रवाह निकलनेके कारण सरस्वतीके स्तनोंका अग्रभाग भीज जाता है, तिन श्रीरामचन्द्रजीको मैं शरण हूं ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! तुम प्रत्यक्ष सबके अन्तर्यामी पुरातन पुरुष हो, स्वतःसिद्धज्ञानही आपका स्वरूप है, आपके आनन्दस्वरूपका कदापि अंत नहीं होता है, और सबके आदिकारण हो, तथा मुझसरीखे भक्तोंपर अनुग्रह करनेकेनिमित्त लोकोंको परम मोह देनेवाले स्वरूपको मायाकेद्वारा धारण करके यहां प्राप्त हुए हो ॥ ४९ ॥ हे भगवन्! तुम अपनी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेके निमित्त अपनी मायाके सत्व–रज–तम इन गुणोंमें प्रतिबिम्बित होकर ब्रह्मा–विष्णु और शिव ऐसे भिन्न भिन्न नामोंको धारण करते हो, वास्तवमें तुम स्वतंत्र–सर्वव्यापक तथा सर्वान्तर्यामी हो ॥ ५० ॥ हे श्रीरा-

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एष स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ॥ मायातनुं लोकविमोहनीयां धत्ते परानुग्रह एष रामः ॥ ४९ ॥ अयं हि विश्वोद्भवसंयमानामेकः स्वमायागुणबिम्बितो यः ॥ विरिञ्चिविष्ण्वीश्वरनामभेदान् धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा ॥ ५० ॥ नमोऽस्तु ते राम तवाङ्घ्रिपङ्कजं श्रिया धृतं वक्षसि लालितं प्रियात् ॥ आक्रान्तमेकेन जगत्त्रयं पुरा ध्येयं मुनीन्द्रैरभिमानवर्जितैः ॥ ५१ ॥ जगतामादिभूतस्त्वं जगत्त्वं जगदाश्रयः ॥ सर्वभूतेष्वसंयुक्त एको भाति भवान्परः ॥ ५२ ॥ ओंकारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान् ॥ वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः ॥ ५३ ॥

मचन्द्र! जिन तुह्मारे चरणोंको लक्ष्मी प्रेमपूर्वक हृदयकेविषे धारण करके लालन करती है, तथा जिस तुह्मारे एकही चरणने वामनावतारमें त्रिलोकीको व्याप्त करलिया और जिन तुह्मारे चरणोंको प्रथम अभिमानका त्याग करनेवाले मुनिजनही ध्यान करसकते हैं, तिन तुह्मारे चरणोंको तथा तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे भगवन्! तुम जगत्के आदिकारण हो, यह जगत् तुह्मारा स्वरूप है और जगत्के आश्रयभी तुमही हो, और वास्तवमें देखाजाय तो आश्रयआश्रयीभावसम्बंध तुह्मारेविषे नहीं है क्यों कि तुम तो सम्पूर्ण प्राणियोंकेविषे आसक्तिरहित हो. हे परमेश्वर! इसप्रकार तुम अपने अद्वितीय स्वरूपकरके सदा विराजमान रहते हो ॥ ५२ ॥ हे श्रीरामचन्द्र! त्रिगुणात्मक ब्रह्मा विष्णु शिव स्वरूप ओंकार मन्त्रकरके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुह्मारा वर्णन किया है, तथापि उसका ऐसा तात्पर्य्य नहीं है कि सगुण हो, क्यों कि तुह्मारा ब्रह्मस्वरूप वाणीके वर्णन करनेका विषय नहीं है, ओंकारकरके तुह्मारे स्वरूपको वर्णन किया है, ऐसा कहनेका तात्पर्य्य यह है कि—प्रतिपादन करनेका विषय और प्रतिपादक वचन इस भेदकी कल्पनाके द्वारा तुम जगत्स्वरूप होरहे हो ॥ ५३ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम एक हो परंतु तुह्मारी मायाके अनेक रूप हैं और तिस माया करकेही तुम महत्तत्त्व अहङ्कारादिकार्य्य—मूलप्रकृतिरूप कारण क्रिया स्वर्ग नरकआदि फल, और तिन फलोंके साधनरूप यज्ञ, इन भेदोंसे भिन्न भिन्न अनेकरूप प्रतीत होते हो ॥ ५४ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम मायाको स्वाधीन रखनेवाले परमेश्वर हो, परन्तु तुह्मारी मायाने जिनकी बुद्धिको मोहित कर लिया है वह पुरुष तुह्मारे सत्यस्वरूपको नहीं जानसक्ते हैं, और वह अज्ञ पुरुष तुम्है मनुष्य मानते हैं ॥ ५५ ॥ हे भगवन् !

कार्यकारणकर्तृत्वफलसाधनभेदतः ॥ एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया ॥ ५४ ॥ त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः ॥ मानुषं त्वाभिमन्यन्ते मायिनं परमेश्वरम् ॥ ५५ ॥ आकाशवत्त्वं सर्वत्र बहिरन्तर्गतोऽमलः ॥ असङ्गो ह्यचलो नित्यः शुद्धो बुद्धः सदव्ययः ॥ ५६ ॥ योषिन्मूढाऽहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो ॥ तस्मात्ते शतशो राम नमस्कुर्यामनन्यधीः ॥ ५७ ॥ देव मे यत्रकुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा ॥ त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदाऽस्तु मे ॥ ५८ ॥ नमस्ते पुरुषाध्यक्ष नमस्ते भक्तवत्सल ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥

तुम आकाशके समान सर्वत्र सृष्टिके बाहर और भीतर व्याप्त हो रहे हो, तुह्मारेविषे कोई दोष नहीं है, तुह्मारा किसीसे सम्बंध नहीं है, तुम कोई क्रिया नहीं करते हो, तुह्मारे स्वरूपको आदि नहीं है, वह आपका पवित्र स्वरूप ज्ञानात्मक होकर सत्तारूपसे अनुभवमें आता है. और उस स्वरूपका कदापि नाश नहीं होता है ॥ ५६ ॥ हे सर्वव्यापक ईश्वर ! मैं तमोगुणसे व्याप्त अज्ञ स्त्री हूँ सो तुह्मारे सत्यस्वरूपको मैं किसप्रकार जानसकूँ अर्थात् कदापि नहीं जानसक्ती, इसकारण हे श्रीरामचन्द्र ! मैं अनन्यभावसे तुम्हारेअर्थ शतशः प्रणाम करती हूँ ॥ ५७ ॥ हे देव ! मैं तुमसे एक याचना करती हूँ कि मैं जहां कहांभी होऊँ तहाँ मेरी तुम्हारे चरणकमलोंकेविषे सदा भक्ति होवे ॥ ५८ ॥ हे सम्पूर्ण जीवोंके साक्षिरूप ईश्वर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, हे भक्तोंपर दयाकरनेवाले ! तुम्हारेअर्थ नमस्कार है, हे इंद्रियोंके नियन्ता ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, हे सम्पूर्ण प्राणियोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वास करनेवाले (नारायण) तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ॥ ५९ ॥ संसाररूपीभयसे दूर करनेमें समर्थ—अद्वितीय—करोड़ों सूर्य्योंकी समान प्रकाशवान्—धनुषबाण हाथमें लिये हुए—कृष्णवर्ण मेघमण्डलके समान कान्तिमान्—सुवर्णकेतुल्य देदीप्यमान पीताम्बर धारण करे हुए—रत्नजड़ित कुण्डलोंको पहिने हुए और कमलके समान विशालनेत्र—छोटे भ्राताकरके सहित श्रीरामचन्द्रजीकी मैं स्तुति करती हूँ ॥ ६० ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे पार्वति! अहल्याने प्रत्यक्ष खड़ेहुए श्रीरामचन्द्रजीकी इसप्रकार स्तुति करी, तदनन्तर प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर तत्काल पति (गौतमऋषि) के समीप चली गई ॥ ६१ ॥ जो पुरुष भक्तियुक्त अन्तःकरणसे अहल्याकी करी हुई इस स्तुतिका पाठ

भवभयहरमेकं भानुकोटिप्रकाशं करधृतशरचापं कालमेघावभासम् ॥ कनकरुचिरवस्त्रं रत्नवत्कुण्डलाढ्यं कमलविशदनेत्रं सानुजं राममीडे ॥ ६० ॥ स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम् ॥ परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम् ॥ ६१ ॥ अहल्यया कृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः ॥ स मुच्यतेऽखिलैः पापैः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६२ ॥ पुत्राद्यर्थे पठेद्भक्त्या रामं हृदि निधाय च ॥ संवत्सरेण लभते वन्ध्या अपि सुपुत्रकम् ॥ ६३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति रामचन्द्रप्रसादतः ॥ ६४ ॥ ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगोऽपि पुरुषः स्तेयी सुरापोऽपि वा मातृभ्रातृविहिंसकोऽपि सततं भोगैकबद्धातुरः ॥ नित्यं स्तोत्रमिदं जपन् रघुपतिं भक्त्या हृदिस्थं स्मरन् ध्यायन्मुक्तिमुपैति किं पुनरसौ स्वाचारयुक्तो नरः ॥ ६५ ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायण उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्ड अहल्योद्धरणं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

करता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ वंध्याभी पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त अंतःकरणमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करती हुई इस स्तोत्रका पाठ करे तो उसको सुंदर पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ६३ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ६४ ॥ मनुष्यने ब्रह्महत्या करी हो, गुरुके स्त्रीकेपास गमन कियाहो, चोरी करी हो, मद्यपान कियाहो, माताका अथवा भ्रातका वध करा होय, और सदा विषयभोगमात्रमेंही आसक्त रहा हो तोभी यदि अन्तःकरणकेविषें निवास करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण और ध्यान करता हुआ भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका नित्य पाठ करे तो देखो उस पुरुषकोभी मोक्षकी प्राप्ति होती है फिर स्वधर्म्माचरण करनेवाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष यदि इस स्तोत्रका पाठ करे तो उसके मुक्त होनेमें संदेहही क्या है ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसपण्डितभोलानाथात्मजपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकया सहितः पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि—हे ऋषियों! तदनन्तर लक्ष्मणजीसहित रामचंद्रजीको विश्वामित्र मुनि बोले कि हे पुत्र! अब हम मिथिला नगरीको चलते हैं तहाँ राजा जनक राज करता है ॥ १ ॥ तहाँ शीघ्रही यज्ञका प्रारम्भ होनेवाला है उसको देखकर तुम अयोध्याको जाना, इसप्रकार कहकर और रामलक्ष्मणको साथ लेकर विश्वामित्र मुनि गङ्गाके परलेपार जानेके निमित्त नाविक (मल्लाह) के पास गए परंतु नाविकने श्रीरामचन्द्रजीको नावपर चढ़ानेको निषेध किया ॥ २ ॥ नाविक बोले कि—हे महाराज! मैं प्रथम तुह्मारे चरणकमलोंको धो लूं, क्योंकि पाषाण और काष्ठमें कोई भेद नहीं

॥ सूत उवाच ॥ विश्वामित्रोऽथ तं प्राह राघवं सहलक्ष्मणम् ॥ गच्छामो वत्स मिथिलां जनकेनाभिपालिताम् ॥ १ ॥ दृष्ट्वा क्रतुवरं पश्चादयोध्यां गन्तुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ गङ्गासुत्तर्तुं सहराघवः ॥ तस्मिन्काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ॥ २ ॥ ॥ नाविक उवाच ॥ क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ॥ मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥ ३ ॥ पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि ॥ नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्धिभो विद्धि कुटुम्बहानिः ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा क्षालितौ पादौ परं तीरं ततो गताः ॥ कौशिको रघुनाथेन सहितो मिथिलां ययौ ॥ ५ ॥ विदेहस्य पुरं प्रातर्ऋषिवाटं समाविशत् ॥ प्राप्तं कौशिकमाकर्ण्य जनकोऽतिमुदान्वितः ॥ ६ ॥

है, और आपके चरणोंमें पाषाणको मनुष्य करदेनेवाला चूर्ण है ऐसी कथा प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ इसकारण मैं प्रथम तुम्हारे चरणोंको धोकर स्वच्छ कर लूं तदनन्तर तुमको परलेपार लेजाउंगा, मैं ऐसा न करूँ तो यदि तुम्हारे चरणोंकी धूलिके लगनेसे यह नौका सुंदर स्त्रीरूप होगई तो हे महाराज! मेरे छोटे २ बालक भूंखे मरने लगैंगे और सम्पूर्ण कुटुम्बका नाश होजायगा, सो आप विचार देखिये ॥ ४ ॥ तिस नाविकने इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको धोया, तब सब परलेपार गए, तदनन्तर रामलक्ष्मणसहित विश्वामित्र मुनि मिथिलाके मार्गको चलदिये ॥ ५ ॥ और प्रातःकालकेसमय वह सब जनक राजाकी नगरी (मिथिला) में जाय पहुँचे, तहाँ ऋषियोंके ठहरनेके निमित्त अलग मठ बनवाया हुआ था,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ यह सब जाकर ठहरे, " विश्वामित्र आए हैं " यह वार्त्ता सुनतेही राजा जनकको परमानन्द हुआ ॥ ६ ॥ और पूजाकी सामग्री लेकर उपाध्याय सहित आया, तथा साष्टाङ्गनमस्कार करके विश्वामित्रमुनिका पूजन किया ॥ ७ ॥ राजा जनकने रामलक्ष्मणको समीपमें देखकर विश्वामित्रजीसे बूझा कि—हे मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ और देवकुमारोंके समान यह दोनों कुमार किसके हैं? इनके शरीरपर सम्पूर्ण शुभलक्षण प्रतीत होते हैं, इनके तेजसे सम्पूर्ण दिशा प्रकाशित हो रहीं हैं, इससे मुझे प्रतीत होता है कि यह दूसरे चन्द्रसूर्य्य हैं, इनको देखकर इससमय मेरे मनमें अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है, सो हे महाराज ! कहीं यह नरनारायण तो नहीं हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ यह प्रश्न सुनतेही विश्वामित्र मुनिको परम

पूजाद्रव्याणि संगृह्य सोपाध्यायः समाययौ ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याह पूजयामास कौशिकम् ॥ ७ ॥ पप्रच्छ राघवौ दृष्ट्वा सर्वलक्षणसंयुतौ ॥ द्योतयन्तौ दिशः सर्वाश्चन्द्रसूर्याविवापरौ ॥ ८ ॥ कस्यैतौ नरशार्दूलौ पुत्रौ देवसुतोपमौ ॥ मनःप्रीतिकरौ मेऽद्य नरनारायणाविव ॥ ९ ॥ प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा ॥ पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १० ॥ मखसंरक्षणार्थाय मयानीतौ पितुः पुरात् ॥ आगच्छन् राघवो मार्गे ताटका विश्वघातिनीम् ॥ ११ ॥ शरेणैकेन हतवान्नोदितो मेऽतिविक्रमः ॥ ततो ममाश्रमं गत्वा मम यज्ञविहिंसकान् ॥ १२ ॥ सुबाहुप्रमुखान्हत्वा मारीचं सागरेऽक्षिपत् ॥ ततो गङ्गातटे पुण्ये गौतमस्याश्रमे शुभे ॥ १३ ॥ गत्वा तत्र शिलारूपा गौतमस्य वधूः स्थिता ॥ पादपङ्कजसंस्पर्शात्कृता मानुषरूपिणी ॥ १४ ॥ दृष्ट्वाऽहल्यां नमस्कृत्य तया सम्यक् प्रपूजितः ॥ इदानीं द्रष्टुकामस्ते गृहे माहेश्वरं धनुः ॥ १५ ॥

सन्तोष हुआ और राजाको प्रसन्न करनेके लिये उत्तर दिया कि-हे राजन्! यह राम लक्ष्मण दोनो भ्राता हैं और राजा दशरथके पुत्र हैं ॥ १० ॥ मैं यज्ञकी रक्षा करनेके निमित्त इनको इनके पिताकी राजधानीसे लायाथा, यह रामचंद्र महापराक्रमी है इन्होंने आते आते मार्गमें मेरे कहनेसे जगत्का नाश करनेवाली ताटका राक्षसीका एक बाणसेही वध करदिया, तदनन्तर मेरे आश्रममें आकर, मेरे यज्ञको नष्ट करनेवाले सुबाहु आदि राक्षसोंको मारकर मारीचको समुद्रमें फेंक दिया, तदनन्तर भागीरथीके तीरपर गौतम मुनिके शुभकारक पवित्र आश्रममें जाकर तहाँ शिलारूपकरके निवास करनेवाली गौतमकी स्त्रीको चरणकमलके स्पर्शसे मनुष्यरूप करदिया ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अहल्याको देखतेही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्होने उसे प्रणाम किया और अहल्यानेभी इनकी विधिपूर्वक पूजा करी, इससमय इनके मनमें तुह्मारे घरमें धरे हुए शिवजीके धनुषको देखनेकी इच्छा है ॥ १५ ॥ इन्होंने ऐसा सुना है कि तुह्मारे घर वह धनुष पूजा करके धरा हुआ है, और आजपर्य्यन्त सम्पूर्ण राजा उसका दूरसेही दर्शन करके चलेगए, परन्तु किसीनेभी उसकी प्रत्यञ्चा (रोदा) नहीं चढ़ाई, इसकारण हे राजन्! वह अत्युत्तम शिवजीका धनुष इनको दिखाओ, यह देखकर पिताका दर्शन करनेके लिये अयोध्याको जायँगे ऐसी इनकी इच्छा है ॥ १६ ॥ विश्वामित्रमुनिके इसप्रकार कहतेही राजा जनकने विचार किया कि यह दोनो राजकुमार पूजन करनेयोग्य हैं, इसकारण हमें इनका सत्कार करना चाहिये. सो धर्म्मशास्त्रको जाननेवाले राजा जनकने विधिपूर्वक तिन दोनोंका पूजन किया ॥ १७ ॥ और धनुष लानेके लिये अपने परम बुद्धिमान् मंत्रीको भेजा. राजा जनक बोले कि—हे मंत्रिन्!

पूजितं राजभिः सर्वैर्दृष्टमित्यनुशुश्रुवे ॥ अतो दर्शय राजेंद्र शैवं चापमनुत्तमम् ॥ दृष्ट्वायोध्यां जिगमिषुः पितरं द्रष्टुमिच्छति ॥ १६ ॥
इत्युक्तो मुनिना राजा पूजार्हावितिपूजया ॥ पूजयामास धर्मज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १७ ॥ ततः संप्रेषयामास मन्त्रिणं बुद्धिमत्तरम् ॥
जनक उवाच ॥ ॥ शीघ्रमानय विश्वेशचापं रामाय दर्शय ॥ १८ ॥ ततो गते मन्त्रिवरे राजा कौशिकमब्रवीत् ॥ यदि रामो धनुर्धृत्वा
कोट्यामारोपयेद्गुणम् ॥ १९ ॥ तदा मयाऽत्मजा सीता दीयते राघवाय हि ॥ तथेति कौशिकोऽप्याह रामं संवीक्ष्य सस्मितम् ॥ २० ॥
शीघ्रं दर्शय चापाग्र्यं रामायामितेजसे ॥ एवं ब्रुवति मौनीश आगताश्चापवाहकाः ॥ २१ ॥ चापं गृहीत्वा बलिनः पञ्चसाहस्रसङ्ख्यकाः ॥
घण्टाशतसमायुक्तं मणिवज्रादिभूषितम् ॥ २२ ॥

शिवजीका धनुष्य शीघ्र लाओ और श्रीरामचन्द्रजीको दिखाओ ॥ १८ ॥ तदनन्तर वह मुख्य मन्त्री धनुष लेनेको गया, और राजा जनक विश्वामित्रजीसे बोले कि हे मुने! यदि रामचन्द्रजी धनुष हाथमें लेकर कोटीपर प्रत्यञ्चा चढ़ा देंगे तो मैं अपनी कन्या सीता देदूँगा. विश्वामित्रनेभी श्रीरामचन्द्रजीकी ओरको हँसते हँसते देखकर "बहुत अच्छा है" इसप्रकार कहा ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी महाप्रभावशाली हैं, तुम वह प्रचण्ड धनुष इनको शीघ्र दिखाओ, इसप्रकार विश्वामित्र मुनि कह रहेथे कि इतनेहीमें धनुषको उठानेवाले पाँच सहस्र शक्तिमान् पुरुष धनुषको लेकर तहां आए, तिस धनुषमें सैंकडों घण्टे लगरहेथे, और रत्न हीरा आदिके जड़ावसे वह धनुष परम शोभायमान था, तदनन्तर सम्पूर्ण मन्त्रियोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रेष्ठ राजा जनकके प्रधान मन्त्रीने श्रीरामचन्द्रजीको धनुष दिखाया, तिस धनुषको देखतेही श्रीरामचन्द्रजीके मनमें परम आनन्द हुआ और दृढ कमर बांधकर अनायाससेही वामहाथमें धनुषको तोलकर थाम लिया और सम्पूर्ण राजाओंके सन्मुख उस धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ रामचन्द्रजीकी शक्ति कितनी होगी क्या ऐसी कल्पना कोई करसक्ता है? सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके अन्तःकरण इकट्ठे हों तबभी रामचन्द्रजीके बलकी कल्पना नहीं हो सक्ती, जिन्होंने दाइँ हाथसे थोड़ीसी प्रत्यञ्चा खैंचकर धनुषके दो टुकड़े करदिये उस टूटनेके शब्दसे दिशा भरगई ॥ २५ ॥ केवल पूर्व—पश्चिम—उत्तर—दक्षिण यह दिशाही नहीं किंतु अवांतर दिशा (ईशान्य—आग्नेय—नैर्ऋत्य—वायव्य) स्वर्ग—मृत्यु और पाताल आदि सब तिस शब्दसे भरगए, तिससमय देवता स्वर्गमेंसे इस सब चरित्रको देखकर परम आश्चर्य्ययुक्त हुए ॥ २६ ॥

दर्शयामास रामाय मन्त्री मन्त्रवतां वरः ॥ दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टात्मा बद्ध्वा परिकरं दृढम् ॥ २३ ॥ गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन् धनुः ॥ आरोपयामास गुणं पश्यत्स्वखिलराजसु ॥ २४ ॥ ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः ॥ बभञ्जाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन् ॥ २५ ॥ दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मर्त्यं रसातलम् ॥ तदद्भुतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम् ॥ २६ ॥ आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २७ ॥ द्विधा भग्नं धनुर्दृष्ट्वा राजालिङ्ग्य रघूद्वहम् ॥ विस्मयं लेभिरे सीतामातरोऽन्तःपुराजिरे ॥ २८ ॥ सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥ २९ ॥ मुक्ताहारैः कर्णपत्रैः कणच्चरणनूपुरा ॥ दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी ॥ ३० ॥

देवताओंने पुष्पोंकी वृष्टिकरके श्रीरामचन्द्रजीको ढ़कदिया और अनेक स्तोत्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करी, स्वर्गमें दुन्दुभी बजने, लगे अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे ॥ २७ ॥ धनुषके दो टुकड़े होगए यह देखतेही राजा जनकको बड़ा आश्चर्य्य हुआ और रामचन्द्रजीको हृदयसे लगाया, सीताकी माता यह चरित्र देखनेके निमित्त रणवासके आंगनमें आगई और उसकोभी यह चरित्र देखकर परम आश्चर्य्य हुआ ॥ २८ ॥ इससमयमें सीताने दाहिने हाथमें सुवर्णकी माला ली, जिन सीताजीका मुख किञ्चित् हास्यकरके युक्त था, शरीरका वर्ण सुवर्णकेसमान था और सम्पूर्ण आभूषणोंको धारण किया था, कण्ठमें मोतियोंका हार और कानोंमें कर्णफूल तथा पैरोंमें पायजेवैं धारण करेहुए थीं, दुपट्टा ओढा था वस्त्रमेंसे उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तनोंका आकार प्रतीत होताथा, तिन श्रीजानकीजीने रामचंद्रजीके गलेमें माला ड़ाली, उससमय इतना आनन्द हुआ कि वह शरीरमें नहीं समाया, तिन श्रीजानकीजीका मुख हास्यकरके प्रफुल्लित दीखने लगा, श्रीरामचंद्रजीका स्वाभाविक स्वरूपही सबजगत्को मोहित करनेवाला था, तिसपरभी जब उनके ऊपर माला ड़ालीगई तब तो अत्यन्तही शोभायमान दीखने लगा. रणवासकी सम्पूर्ण रानियें झरोखोंके छिद्रोंमेंसे श्रीरामचंद्रजीको देखकर परम आनन्दित हुईं तदनन्तर सर्वशास्त्रप्रवीण राजा जनक विश्वामित्रजीसे बोले ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! विश्वामित्रजी महाराज! आप शीघ्रही पत्र देकर दूतोंको दशरथके पास भेजो, अब राजा दशरथको पुत्रोंको और स्त्रियोंको साथ लेकर मंत्रियोंसहित पुत्रोंका विवाह करनेनिमित्त शीघ्र आना चाहिये. मुनिने " बहुत अच्छा " इसप्रकार कहकर शीघ्र चलनेवाले दूतोंको भेजा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तिन दूतोंने अयोध्यामें जाकर श्रेष्ठ

रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं ययौ ॥ ततो मुमुदिरे सर्वे राजदाराः स्वलङ्कृतम् ॥ ३१ ॥ गवाक्षजालरन्ध्रेभ्यो दृष्ट्वा लोकविमोहनम् ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिं राजा सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३२ ॥ भो कौशिक मुनिश्रेष्ठ पत्रं प्रेषय सत्वरम् ॥ राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः ॥ ३३ ॥ विवाहार्थं कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः ॥ तथेति प्रेषयामास दूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥ ३४ ॥ ते गत्वा राजशार्दूलं रामश्रेयोन्यवेदयन् ॥ श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताप्लुतः ॥ ३५ ॥ मिथिलागमनार्थाय त्वरयामास मन्त्रिणः ॥ गच्छन्तु मिथिलां सर्वे गजाश्वरथपत्तयः ॥ ३६ ॥ रथमानय मे शीघ्रं गच्छाम्यद्यैव मा चिरम् ॥ वसिष्ठस्त्वग्रतो यातु सदारः सहितोऽग्निभिः ॥ ३७ ॥ राममातृः समादाय मुनिर्मे भगवान् गुरुः ॥ एवं प्रस्थाप्य सकलं राजर्षिर्विपुलं रथम् ॥ ३८ ॥

राजा दशरथसे श्रीरामचंद्रजीके भाग्योदयकी वार्ता कही, श्रीरामचंद्रजीने प्रचण्ड धनुषको तोड़ ड़ाला यह सुनतेही राजा दशरथको परम आनन्द हुआ ॥ ३५ ॥ और मिथिला नगरीको शीघ्रही जानेकेलिये तयारी करनेकी मंत्रियोंको आज्ञा दी. राजा दशरथ बोले—हस्ती, घोड़े, रथ, पैदल, आदि सबकोही मिथिला नगरीको रवाना करो ॥ ३६ ॥ और मेरा रथ शीघ्र लाओ, आजही जाना है सो किञ्चिन्मात्रभी विलम्ब मतकरो. परम ज्ञानी हमारे गुरु वसिष्ठ मुनि, स्त्री और अग्नियोंको साथ लेकर आगेचलैं, और उनकेही साथ रामचंद्रकी माताओं (कौसल्या—कैकेयी—सुमित्रा) को जाने दो. राजा दशरथ इसप्रकार सब मण्डलीके चलनेका बंदोबस्त करके आपभी अपने एक रमणीय रथपर बैठकर बहुत सारसेनाको साथ लेकर चलदिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा दशरथ आए ऐसा सुनतेही राजा जनकको परम आनन्द हुआ और राजा जनक अपने कुलगुरु शतानन्दको साथ लेकर दशरथको लेनेको गया, भेट होतेही उन्होंने तिन पूजनीय राजा दशरथका सत्कार करके विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ रामलक्ष्मणने मिलतेही तत्काल पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, पुत्रोंको देखतेही राजा दशरथ परम प्रसन्न हुए और श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे राम ! खिलेहुए कमलसरीखा तुम्हारा मुख आज मैंने देखा यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता है, विश्वामित्र मुनिकी कृपासे मेरा सर्वथा कल्याण हुआ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार कहकर दशरथ राजाने रामचन्द्रजीका मस्तक सूंघ लिया और वारंवार हृदयसे लगाया, उस समय वह राजा जिसप्रकार कोई योगी समाधिमें ब्रह्मानन्दमें निमग्न होता है तिसप्रकार आनन्दके समुद्रमें निमग्न हुआ ॥ ४३ ॥ तदनन्तर राजा जनकने रानी और पुत्रोंसहित राजा दशरथको एक सुन्दर मंदिरमें

महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ ॥ आगतं राघवं श्रुत्वा राजा हर्षसमाकुलः ॥ ३९ ॥ प्रत्युज्जगाम जनकः शतानन्दपुरोधसा ॥ यथोक्तपूजया पूज्यं पूजयामास सत्कृतम् ॥४०॥ रामस्तु लक्ष्मणेनाशु ववन्दे चरणौ पितुः ॥ ततो हृष्टो दशरथो रामं वचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ दिष्ट्या पश्यामि ते राम मुखं फुल्लाम्बुजोपमम् ॥ मुनेरनुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वाघ्राय मूर्धानमालिङ्ग्य च पुनः पुनः ॥ हर्षेण महताऽऽविष्टो ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥ ४३ ॥ ततो जनकराजेन मन्दिरे सन्निवेशितः ॥ शोभने सर्वभोगाढ्ये सदारः ससुतः सुखी ॥ ४४ ॥ ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघूत्तमम् ॥ आनयामास धर्मज्ञो राम सभ्रातृकं तदा ॥ ४५ ॥ रत्नस्तम्भसुविस्तारे सुविताने सुतोरणे ॥ मण्डपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते ॥ ४६ ॥

ठहराया, तिस मन्दिरमें सम्पूर्ण उपभोगकी सामग्री उपस्थित थी, तिस स्थानको देखकर राजा दशरथ सुखी हुए ॥ ४४ ॥ धर्म्मशास्त्रको जाननेवाले राजा जनक श्रेष्ठ दिन देखकर शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त्तमें सब भ्राताओंसहित श्रीरामचन्द्रजीको बुलवालिया, तिन राजा जनकने जो विवाहके निमित्त सम्पूर्ण शुभवस्तुओंसे शोभायमान विशाल मण्डप बनवाया था उसमें रत्नोंके खम्भे लगेहुए थे, सुन्दर छत्त छई हुईथी, बन्दरबालैं बन्धी हुई थीं, मोतियोंकी झालरैं, पुष्पोंकी माला और फलोंके गुच्छे लटके हुए थे, तहाँ वैदिक ब्राह्मणोंका बड़ा समाज बैठा था, सौभाग्यवती स्त्रियें इधर उधर फिर रहीं थीं, ब्राह्मण अङ्गोंपर सुवर्णके आभूषण पहिने हुए थे, और स्त्रियें कण्ठमें पचलड़ा आदि सुवर्णके आभूषण पहिने हुए थीं, नगारे और नफीरियोंके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दसे तथा नृत्य और नागके शब्दसे मण्डप गुञ्जार रहाथा, तिस मण्डपमें राजा जनकने महामूल्यके रत्नोंकरके जटित सिंहासनपर रामचन्द्रजीको बैठाया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ शतानन्द उपाध्याय (राजा जनकका पाधा और पुरोहित) ने वसिष्ठ और विश्वामित्र इन दोनोंको रामचन्द्रजीके दोनो ओर बैठाकर क्रमसे पूजन किया ॥ ४९ ॥ स्त्रीसहित राजा जनकने तिस मण्डपमें अग्निकी स्थापनाकरके विधिपूर्वक हवन किया, तदनन्तर सीताके अङ्गोंपर आभूषण पहिनाकर सुशोभितकर तहां लाए और कमलके समान नेत्रवाले रामचन्द्रजीके पास आए, राजा जनकने विधिपूर्वक रामचन्द्रजीके चरण धोए और उस धोए हुए जलको मस्तकपर धारण किया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उस जलका माहात्म्य कहाँतक

वेदविद्भिः सुसम्बाधे ब्राह्मणैः स्वर्णभूषितैः ॥ सुवासिनीभिः परितो निष्ककण्ठीभिरावृते ॥ ४७ ॥ भेरीदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतनृत्यैः समाकुले ॥ दिव्यरत्नाञ्चिते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयत् ॥ ४८ ॥ वसिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः ॥ यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः ॥ ४९ ॥ स्थापयित्वा स तत्राग्निं ज्वालयित्वा यथाविधि ॥ सीतामानीय शोभाढ्यां नानारत्नविभूषिताम् ॥ ५० ॥ सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् ॥ पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तदपो मूर्ध्न्यधारयत् ॥ ५१ ॥ या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा ॥ ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः ॥ सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता ॥ ५३ ॥ दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम ॥ इति प्रीतेन मनसा सीता रामकरेऽर्पयन् ॥ ५४ ॥

वर्णन करैं जिसको शिवजीने ब्रह्माने तथा मुनियोंने मस्तकपर सदा धारण किया है. तदनन्तर प्रथम राजा जनकने श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें अक्षतयुक्त जल दिया, फिर सीताका हाथ पकडकर सन्तोषपूर्वक विवाहकी विधिके अनुसार सीता रामचन्द्रजीको अर्पण करी, कन्यादान करतेसमय राजा जनक रामचन्द्रजीसे बोले कि—हे रामचन्द्र ! सुन्दर रूपवती कमलके समान नेत्रवाली और अङ्गोंपर सुवर्ण मोती आदिके आभूषण पहिने हुए यह सीता नामवाली मैं अपनी कन्या तुम्हें देताहूँ, हे रघुवीर ! तुम सन्तुष्ट होकर इसे ग्रहण करो. राजा जनकने इसप्रकार कहकर प्रसन्न चित्तसे जानकीका हाथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामचंद्रजीके हाथमें दिया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ पूर्वकालमें क्षीरसमुद्रने विष्णुभगवान्को लक्ष्मी दी थी तिससमय क्षीरसमुद्रको जैसा आनन्द हुआथा, तैसाही आनन्द इससमय राजा जनकको हुआ तदनन्तर राजा जनकने अपनी औरस कन्या ऊर्म्मिला परम आनन्दसे लक्ष्मणजीको दी ॥ ५५ ॥ तिन राजा जनकके भ्राताकी माण्डवी और श्रुतकीर्ति दो कन्या थीं, उनमेंसे माण्डवी भरतको दी और श्रुतकीर्ति शत्रुघ्नको दी ॥ ५६ ॥ सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त चारों भ्राता विवाह होनेके अनन्तर कान्तिसे लोकपालोंके समान शोभायमान हुए ॥ ५७ ॥ तदनन्तर मिथिला नगरीके स्वामी राजा जनकने नारद मुनिका कहा हुआ अपनी कन्याका वृत्तान्त वसिष्ठजीसे और विश्वामित्रजीसे कहा ॥ ५८ ॥ राजा जनक बोले—हे मुने ! मैं

मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे ॥ ऊर्मिलां चौरसीं कन्यां लक्ष्मणाय ददौ मुदा ॥ ५५ ॥ तथैव श्रुतकीर्तिं च माण्डवीं भ्रातृकन्यके ॥ भरताय ददावेकां शत्रुघ्नायापरां ददौ ॥ ५६ ॥ चत्वारो दारसम्पन्ना भ्रातरः शुभलक्षणाः ॥ विरेजुः प्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥ ५७ ॥ ततोऽब्रवीद्वसिष्ठाय विश्वामित्राय मैथिलः ॥ जनकः स्वसुतोदन्तं नारदेनाभिभाषितम् ॥ ५८ ॥ यज्ञभूमिविशुद्ध्यर्थं कर्षतो लाङ्गलेन मे ॥ सीतामुखात्समुत्पन्ना कन्यका शुभलक्षणा ॥ ५९ ॥ तामद्राक्षमहं प्रीत्या पुत्रिकाभावभावितम् ॥ अर्पिता प्रियभार्यायै शरच्चन्द्रनिभानना ॥ ६० ॥ एकदा नारदोऽभ्यागाद्विविक्ते मयि संस्थिते ॥ रणयन्महतीं वीणां गायन्नारायणं विभुम् ॥ ६१ ॥ पूजितः सुखमासीनो मामुवाच सुखान्वितः ॥ शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥ ६२ ॥

यज्ञकेनिमित्त भूमि शुद्ध करनेकेलिये हलसे खोद रहा था, तब फालकी खुदी हुई लकीरमेंसे एक शुभलक्षणोंकरके युक्त कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५९ ॥ उसका मुख शरत्कालके चन्द्रमाकी समान था, उसको देखतेही मेरे मनमें 'यह मेरी कन्या है' ऐसी भावना हुई और आजपर्य्यन्त उसपर वैसाही प्रेम रखता आया हूँ, फिर उस कन्याको मैने अपनी स्त्रीको अर्पण कर दिया ॥ ६० ॥ एकसमय मैं एकान्तमें बैठा हुआ था कि इतनेहीमें नारदमुनि अपनी महती नामक वीणाको बजाते हुए और सर्व व्यापक नारायण भगवान्के गुणोंका कीर्त्तन करते हुए मेरेसमीप आए ॥ ६१ ॥ मैंने आसन देकर उनका सत्कार किया, तिससे नारदमुनि परम प्रसन्न हुए और स्वस्थ होकर मुझसे बोले कि मैं तेरेसमीप एक गुप्तवार्त्ता कहनेको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आया हूँ तिससे तेरा अभ्युदय होनेवाला है इसकारण तू श्रवण कर ॥ ६२ ॥ इन्द्रियोंके नियामक परमेश्वर भक्तोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे रावणका वध करके देवताओंका कार्य्य सिद्ध करनेके निमित्त रामनामका अवतार धारण करके पृथ्वीपर आए हैं, परमेश्वरने अपनी मायाकरके यह एक मनुष्यका रूप धारण किया है, राजा दशरथके चारों पुत्र तिन परमात्माकाही अवतार हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ और योगमायाने सीता नामकरके तुम्हारे घर अवतार लिया है, तिसकारण तूं जिसप्रकार हो सकै तिसप्रकार यत्नकरके सीता रामचन्द्रजीकोही दे ॥ ६५ ॥ अन्य किसीको सीता नहीं देनी चाहिये, यह सीता तिस आनन्ददायक परमेश्वरकी अनादिकालसे भार्या (शक्ति—योगमाया) है. इसप्रकार कहकर देवऋषि नारदजी उससमय

परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥ ६३ ॥ जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् ॥ आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥ ६४ ॥ योगमायाऽपि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ॥ अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥ नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ देवगर्तिं देवमुनिस्तदा ॥ ६६ ॥ तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते ॥ कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा ॥ ६७ ॥ इति चिन्तासमाविष्टः कार्यमेकमचिन्तयम् ॥ मत्पितामहगेहे तु न्यासभूतमिदं धनुः ॥ ६८ ॥ ईश्वरेण पुरा क्षिप्तं पुरदाहादनन्तरम् ॥ धनुरेतत्पणं कार्यमिति चिन्त्य कृतं तथा ॥ ६९ ॥ सीतापाणिग्रहार्थाय सर्वेषां माननाशनम् ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ रामो राजीवलोचनः ॥ ७० ॥ आगतोऽत्र धनुर्द्रष्टुं फलितो मे मनोरथः ॥ अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥ ७१ ॥

स्वर्गलोकको चलेगए ॥ ६६ ॥ तबसेही मैंने 'सीता' विष्णुभगवान्की लक्ष्मीका अवतार है ऐसा निश्चय करलिया है, यह शुभलक्षणा जानकी रामचंद्रको किसप्रकार दी जाय, ऐसे सन्देहमें पड़ा था कि इतनेहीमें एक युक्ति विचारमें आई कि यह धनुष मेरे पितामह (दादा) के समयसे आजपर्य्यन्त धरोड़ रक्खा है, शिवजीने पूर्वकालमें त्रिपुरासुरके पुर भस्म करदिये, तदनन्तर यह धनुष हमारे यहां धरदिया है सो मैं इस धनुषका सीताके विवाहके निमित्त पण लगाऊँ, ऐसा विचारमें आया सो वैसाही किया, सीतासे विवाह करनेके लिये सम्पूर्ण राजा आए, परन्तु सब अपनी कीर्तिको नष्ट करके चले गए, हे मुने ! आपकी कृपासे कमलके समान विशाल नेत्रवाले श्रीरामचंद्रजी धनुष देखनेके निमित्त यहां आए और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे रामचन्द्र ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो तुमको सीतासहित एक आसनपर बैठे हुए देख रहाहूँ, तुह्मारी मूर्ति सूर्य्यके समान देदीप्यमान दीख रही है, सृष्टिके चक्रको चलानेवाले ब्रह्माजी तुह्मारे चरणरूपी तीर्थके जलको मस्तकपर धारण करते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ आपके चरणकमलोंके जलके स्पर्शसेही राजा बलीको इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई और तुह्मारे चरणकमलोंकी रजके स्पर्शसेही अहल्या पति (गौतमऋषि) के शापसे तत्काल छूट गई ॥ ७३ ॥ सो तुमसे दूसरा ऐसा रक्षा करनेवाला कौन है ? अर्थात् आपके समान रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ७४ ॥ सम्पूर्ण योगी पुरुष तुह्मारे चरणकमलोंकी रजपर परम प्रेम करते हैं, इसकारणही देखो कालचक्रको स्वाधीन कर लेते हैं, और कालचक्रके स्वाधीन होनेपर फिर उनको संसारका किसीप्रकारका भय नहीं रहता है, देवताभी तुह्मारेही नामका कीर्त्तन

एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ॥ त्वत्पादाम्बुधरो ब्रह्मा सृष्टिचक्रप्रवर्तकः ॥ ७२ ॥ बलिस्त्वत्पादलिलं धृत्वाऽभूद्दिविजाधिपः ॥ त्वत्पादपांसुसंस्पर्शादहल्या भर्तृशापतः ॥ ७३ ॥ सद्य एव विनिर्मुक्ता कोऽन्यस्त्वत्तोधिरक्षिता ॥ ७४ ॥ यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगिवृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ॥ यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥ ७५ ॥ इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद्राघवाय महात्मने ॥ दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतं तदा ॥ ७६ ॥ अश्वानां नियुतं प्रादाद्गजानां षट्शतं तथा ॥ पत्तीनां लक्षमेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ ॥ ७७ ॥ दिव्याम्बराणि हारांश्च मुक्तारत्नमयोज्ज्वलान् ॥ सीतायै जनकः प्रादात्प्रीत्या दुहितृवत्सलः ॥ ७८ ॥ वसिष्ठादीन्सुसंपूज्य भरतं लक्ष्मणं तथा ॥ पूजयित्वा यथान्यायं तथा दशरथं नृपम् ॥ ७९ ॥

करते हैं, इसकारणही उनके दुःख और शोक नष्ट हो जाते हैं, इसकारण हे रघुवीर ! मैं तुम्हारे सदा शरणागत हूँ ॥ ७५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि-हेपार्वती ! जनकराजाने उस समय श्रीरामचन्द्रजीकी इसप्रकार स्तुति करी, और तिन महात्मा रामचन्द्रजीको सौ करोड़ मोहरैं, दशसहस्र रथ, दशलक्ष घोड़े, छःसौ हाथी, एक लक्ष पैदल और तीनसौ दासी, इतना दहेज दिया ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ सीताके ऊपर राजा जनककी बड़ी प्रीति थी इसकारण राजाने सीताको प्रेमपूर्वक सुन्दर सुन्दर दिव्य वस्त्र तथा मोती और रत्नोंके प्रकाशवान् हार दिये ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वसिष्ठआदि मुनीश्वरोंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनको यथेष्ट दक्षिणा दी; तिसीप्रकार लक्ष्मणजीको भरतजीको और शत्रुघ्नकोभी यथोचित दहेज दिया, तदनन्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रीतिके अनुसार राजा दशरथका यथोचित सत्कार किया ॥ ७९ ॥ और तिन रघुकुलमें श्रेष्ठ राजा दशरथको बिदा करी, श्वसुरके यहाँ जती हुई, सीताजीके नेत्रोंमें जल भरआया, तब सीताकी माताके नेत्रोंसेभी आँसुओंकी धारा बहनेलगी, तिससमय माताने सीताको हृदयसे लगाया, और सासके यहाँ कैसा वर्त्ताव करना चाहिये सो उपदेश किया ॥ ८० ॥ कि हे पुत्रि! सासकी सदा सेवा करती रहो और रामचन्द्रजीकी सेवामें सदा तत्पर रहो तथा पतिव्रताधर्म्मका पालन करके अपने समयको सुखपूर्वक व्यतीत करो ॥ ८१ ॥ श्रीशिवजी बोले कि—हे पार्वती! जब रामचन्द्रजी जनकपुरीसे चले उस समय नौबत, मृदंग, तासे, तूर्यआदि बाजे बजनेलगे, उन बाजोंके शब्दमें स्वर्गके देवताओंके बजाए हुए दुंदुभि, झाँझ, घण्टा आदि बाजोंका शब्द मिलगया, तिससे ऐसा महाशब्द उत्पन्न हुआ कि प्राणियोंको उससे भय लगने लगा ॥ ८२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे

प्रस्थापयामास नृपो राजानं रघुसत्तमम् ॥ सीतामालिङ्ग्य रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः ॥ ८० ॥ श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्यं राममनुव्रता ॥ पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम् ॥ ८१ ॥ प्रयाणकाले रघुनन्दनस्य भेरीमृदङ्गानकतूर्यघोषः ॥ स्वर्वासिभेरीघनतूर्यशब्दैः सम्मूर्छितो भूतभयङ्करोऽभूत् ॥ ८२ ॥ ॥ इति श्री० रामा० उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथ गच्छति श्रीरामे मैथिलाद्योजनत्रयम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि ददर्श नृपसत्तमः ॥ १ ॥ नत्वा वसिष्ठं पप्रच्छ किमिदं मुनिपुङ्गव ॥ निमित्तानीह दृश्यन्ते विषमाणि समन्ततः ॥ २ ॥ वसिष्ठस्तमथ प्राह भयमागामि सूच्यते ॥ पुनरप्यभयं तेऽद्य शीघ्रमेव भविष्यति ॥ ३ ॥ मृगाः प्रदक्षिणं यान्ति पश्य त्वां शुभसूचकाः ॥ इत्येवं वदतस्तस्य ववौ घोरतरोऽनिलः ॥ ४ ॥

उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यभोलानाथात्मजरामस्वरूपकृतभाषाटीकासहितः षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि—हेऋषियों! तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी जब मिथिला राजधानीसे चलकर तीन योजन (१२ कोश) पहुँचगए, तब राजा दशरथने महाभयंकर अपशकुन देखे ॥ १ ॥ तब दशरथ राजाने वसिष्ठजीको प्रणाम करके पूँछा कि—हेमुने! यहां चारों ओर अपशकुन होते दीख रहे हैं यह क्या कारण है ॥ २ ॥ तिसपर वसिष्ठजी बोले कि—हे राजन्! यहांसे आगे चलकर कोई भय प्राप्त होगा ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु फिर शीघ्रही तुझको कुशलकी प्राप्ति होयगी ॥ ३ ॥ यह देख, हरिण तेरे दक्षिण होकर जा रहे हैं, यह तेरे कल्याणको सूचित करते हैं, वसिष्ठजी इसप्रकार कह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहेथे कि इतनेहीमें बड़े वेगसे वायु चलनेलगा ॥ ४ ॥ तिस वायुमेंसे धूलिकी वृष्टि होनेलगी, सबकी दृष्टि बन्द होगई और सब पुरुषोंको महादुःख हुआ, फिर आगे जाते जाते अपनी ओरको आताहुआ तेजका समूह राजा दशरथकी दृष्टिगोचर हुआ ॥ ५ ॥ कुछ कालके अनन्तर वह महाप्रतापी राजा दशरथको तहाँ जमदग्निके पुत्र तेजःसमूह परशुरामजी दीखनेलगे, उनकी कान्ति करोडों सूर्य्योंके समान और बिजलीके ढेरकी समान थी ॥ ६ ॥ कृष्णवर्णमेघके समान है शरीरकी कान्ति जिनकी और शिरपर जटाओंके समूहसे शोभायमान तथा हाथमें धनुष और फरसा लियेहुए यह परशुरामजी देखनेवालोंको सबका संहार करनेवाले साक्षात् मृत्युके समान दीखतेथे ॥ ७ ॥ कार्त्तवीर्य्यका वध करनेवाले और मदोन्मत्त क्षत्रियोंके गर्वको दूर करनेवाले वह परशुरामजी राजा दशरथके सामने आकर साक्षात् कालमृत्युके समान खड़े होगए ॥ ८ ॥ तिनको देखतेही राजादशरथ

मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां पांसुवृष्टिभिरर्दयन् ॥ ततो व्रजन्ददर्शाग्रे तेजोराशिमुपस्थितम् ॥ ५ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् ॥ तेजोराशिं ददर्शाथ जामदग्न्यं प्रतापवान् ॥ ६ ॥ नीलमेघनिभं प्रांशुं जटामण्डलमण्डितम् ॥ धनुःपरशुपाणिं च साक्षात्कालमिवान्तकम् ॥ ७ ॥ कार्तवीर्यान्तकं रामं दृप्तक्षत्रियमर्दनम् ॥ प्राप्तं दशरथस्याग्रे कालमृत्युमिवापरम् ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो राजा दशरथस्तदा ॥ अर्घ्यादिपूजां विस्मृत्य त्राहि त्राहीति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याह पुत्रप्राणं प्रयच्छ मे ॥ इति ब्रुवन्तं राजानमनादृत्य रघूत्तमम् ॥ १० ॥ उवाच निष्ठुरं वाक्यं क्रोधात्प्रचलितेन्द्रियः ॥ त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम ॥ ११ ॥ द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै ॥ पुराणं जर्जरं चापं भङ्क्त्वा त्वं कत्थसे मुधा ॥ १२ ॥

अत्यन्त भयभीत होगए, और अर्घ्य पाद्य आदि सामग्रीसे परशुरामजीके पूजनकोभी भूलकर त्राहि त्राहि (रक्षा करो—जीवनदान दो) इसप्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥ तिन परशुरामजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले कि—'मेरे पुत्रका प्राणदान दो' परन्तु परशुरामजी राजा दशरथके ओर और राजाके भाषणके ओर कुछ ध्यान न देकर, रघुवीर रामचन्द्रजीको कठोर वचन कहने लगे, उससमय क्रोधकेमारे उनकी इन्द्रियें (सम्पूर्ण अङ्ग) थरथर कांपने लगीं और रामचन्द्रजीसे बोले कि—रे क्षत्रियाधम ! तू मेरे नामके समान 'राम' इस नामको धारण करके पृथ्वीपर विचरता है, इसकारण तूं मेरा शत्रु है ॥ १० ॥ ११ ॥ यदि तू पूर्ण क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करनेको तयार हो, उस बहुतकालके धरेहुए धनुषको तोडकर अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

झूँठी प्रशंसा करता फिरता है ॥ १२ ॥ हे रघुकुलमें जन्म लेनेवाले रामचन्द्र ! यदि तूं इस (मेरे पासके) विष्णुके धनुषपर प्रत्यञ्चा (ड़ोरी) चढ़ा देगा तो मैं तुझे पराक्रमी और अपने साथ युद्ध करनेको योग्य समझूंगा, और तबही तुझसे युद्ध करूंगा ॥ १३ ॥ यदि इस धनुषपर तुझसे रोदा नहीं चढ़ा तो मैं सबका वध करड़ालूंगा, क्योंकि क्षत्रियोंका वध करना यह तो मेरी प्रतिज्ञा है, इसप्रकार परशुरामजी कहरहेथे कि इतनेहीमें बड़े वेगसे भूकम्प (हलाचला) हुआ ॥ १४ ॥ और सबके नेत्रोंके सामने अन्धकार आगया, इधर तिन महापराक्रमी दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीने परशुरामजीकी ओरको क्रोध दृष्टिसे देखा ॥ १५ ॥ और उनके हाथसे धनुषको छीनकर लेलिया, और सहजमेंही प्रत्यञ्चा चढ़ादी और तर्कसमेंसे बाण निकालकर चढ़ालिया और रोदा खैंचकर परम पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी परशुरामजीसे बोले कि—अरे ब्राह्मण ! मेरे कहनेकी ओरको ध्यान दे, इस

अस्मिंस्तु वैष्णवे चाप आरोपयसि चेद्गुणम् ॥ तदा युद्धं त्वया सार्धं करोमि रघुवंशज ॥ १३ ॥ नो चेत्सर्वान्हनिष्यामि क्षत्रियान्तकरो ह्यहम् ॥ इति ब्रुवति वै तस्मिंश्चचाल वसुधा भृशम् ॥ १४ ॥ अन्धकारो बभूवाथ सर्वेषामपि चक्षुषाम् ॥ रामो दाशरथिर्वीरो वीक्ष्य तं भार्गवं रुषा ॥ १५ ॥ धनुराच्छिद्य तद्धस्तादारोप्य गुणमञ्जसा ॥ तूणीराद्बाणमादाय सन्धायाकृष्य वीर्यवान् ॥ १६ ॥ उवाच भार्गवं रामं शृणु ब्रह्मन्वचो मम ॥ लक्ष्यं दर्शय बाणस्य ह्यमोघो मम सायकः ॥ १७ ॥ लोकान्पादयुगं वापि वद शीघ्रं ममाज्ञया ॥ अयं लोकः परो वाथ त्वया गन्तुं न शक्यते ॥ १८ ॥ एवं त्वां हि प्रकर्तव्यं वद शीघ्रं ममाज्ञया ॥ एवं वदति श्रीरामे भार्गवो विकृताननः ॥ १९ ॥ संस्मरन्पूर्वत्तातमिदं वचनमब्रवीत् ॥ राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥ २० ॥

चढ़ाएहुए बाणको कहां छोड़ूँ वह लक्ष्य (निशाना छोडनेका स्थान) दिखाओ क्योंकि मेरा बाण कदापि निरर्थक नहीं होता है, अर्थात् जिस लक्ष्यपर पड़ता है उसका नाशही करड़ालता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ मैं तुझे आज्ञा करताहूँ कि शीघ्र बोल, इस बाणसे तेरी परलोक गतिको बन्द करूं, या तेरे दोनो चरणोंको काटड़ालूं, जिससे तू इस लोकमें तीर्थादिपर नहीं फिर सके और परलोकमेंभी नहीं जासके ॥ १८ ॥ ऐसीही तेरी दशा करनी चाहिये, शीघ्र बोल, तेरे कौनसे लोकको नष्ट करूं, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहतेही परशुरामजीका मुख अत्यन्त कान्तिहीन (उतराहुआ) हो गया ॥ १९ ॥ और उनको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण होगया और वह रामचन्द्रजीसे इसप्रकार कहनेलगे कि—हे आनन्ददायक श्रीराम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्र ! तुम महापराक्रमी हो, मैंने तुमको पूर्णरीतिसे जानलिया कि तुम परमेश्वर हो ॥ २० ॥ अनादि, सबके शरीरोंमें वास करनेवाले, विष्णु तुमही हो, मैने बाल्यावस्थामें विधिपूर्वक तपश्चर्य्याकरके विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करनेकेलिये पुण्यकारक चक्रतीर्थमें जाकर प्रतिदिन अनन्य भावसे तिन सर्वव्यापी महासमर्थ नारायणको तपश्चर्य्या करके प्रसन्न कर लिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे रघुवीर ! तब एक दिन वह देवाधिदेव प्रसन्न होकर प्रगट हुए, जिनके हाथोंमें शंख—चक्र—गदा यह आयुध थे, और मुखकमलपर प्रसन्नताका चिन्ह स्पष्ट दीखताथा ॥ २३ ॥ वह षड्गुणैश्वर्य्य सम्पन्न भगवान् बोले कि—हे ब्राह्मण ! उठ तपश्चर्य्या करनेको समाप्तकर, यह मैं जानताहूं कि कार्त्तवीर्य्यने तेरे पिताका वध किया, तिसकारण तू तप करता है

पुराणपुरुषं विष्णुं जगत्सर्गलयोद्भवम् ॥ बाल्येऽहं तपसा विष्णुमाराधयितुमञ्जसा ॥ २१ ॥ चक्रतीर्थं शुभं गत्वा तपसा विष्णुमन्वहम् ॥ अतोषयं महात्मानं नारायणमनन्यधीः ॥ २२ ॥ ततः प्रसन्नो देवेशः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ उवाच मां रघुश्रेष्ठ प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ उत्तिष्ठ तपसो ब्रह्मन्फलितं ते तपो महत् ॥ मच्चिदंशेन युक्तस्त्वं जहि हैहयपुङ्गवम् ॥ २४ ॥ कार्तवीर्यं पितृहणं यदर्थं तपसः श्रमः ॥ ततस्त्रिःसप्तकृत्वस्त्वं हत्वा क्षत्रियमण्डलम् ॥ २५ ॥ कृत्स्नां भूमिं कश्यपाय दत्त्वा शान्तिमुपावह ॥ त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः ॥ २६ ॥ उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मां ततः ॥ मत्तेजः पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा ॥ २७ ॥ तदा तपश्चरँल्लोके तिष्ठ त्वं ब्रह्मणो दिनम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तथा सर्वं कृतं मया ॥ २८ ॥

अब मैं तुझे अपनी चैतन्य शक्तिका अंश देताहूं तिससे तू तिस हैहयकुलमें श्रेष्ठ पुरुषश्रेष्ठ (कार्त्तवीर्य्य) का वध कर, तदनन्तर इक्कीसवार भूमण्डलमें फिरकर क्षत्रियोंका नाश करके सम्पूर्ण भूमि कश्यपऋषिको दे, इसप्रकार करनेसे तेरा चित्त शान्त होगा, मेरे स्वरूपको उत्पत्ति आदि विकार नहीं है, परन्तु मैं त्रेतायुगके आरम्भमें दशरथकुमार रामचन्द्रका रूप धारण करके अवतार लूंगा तिस अवतारमें तेरी तेरेविषे रक्खी हुई चेतनशक्तिसे अधिक शक्ति होयगी तिस रामरूपका तुझे दर्शन होयगा, तब मैं इससमय तुझे दिये हुए अपने तेजको फिर लेलूँगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ तबसे लेकर तू ब्रह्माके एक दिनभर (चारहजार युग) पृथ्वीपर तप करता रहो, इसप्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान होगए, सो मैंने उनके कहनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुसारही सम्पूर्ण वर्त्ताव किया ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तुम वही विष्णु भगवान् हो, ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेसे तुमने रामावतार धारण किया है, मेरे में स्थित अपना तेज इससमय तुमने खैंचालिया ॥ २९ ॥ हे परमेश्वर ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, क्योंकि देखो ब्रह्मादि देवताओंको भी जिनका दर्शन नहीं होता है, तिन परम पूजनीय आपका आज मुझे दर्शन हुआ, तुह्मारा दर्शन दुर्लभ होनेमें कारण यह है कि तुम मायासे पर हो ॥ ३० ॥ अज्ञानके कारण उत्पन्न होनेवाले जन्म आदि छः विकार (जायते १ अस्ति २ वर्द्धते ३ विपरिणमते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६) आपकेविषे नहीं हैं, क्योंकि तुम ज्ञानसे परिपूर्ण हो, तुह्मारे स्वरूपमें कोई विकार नहीं है, तुम गमन आदि कोई क्रिया नहीं करते हो ॥ ३१ ॥ यदि कहो कि अबही मैंने तेरा तेज खैंचलिया यह क्रिया करी, फिर मैं निष्क्रिय किसप्रकार हो सक्ताहूं सो हे भगवन्! श्रीरामचन्द्र ! जिसप्रकार

स एव विष्णुस्त्वं राम जातोऽसि ब्रह्मणार्थितः ॥ मयि स्थितं तु त्वत्तेजस्त्वयैव पुनराहृतम् ॥ २९ ॥ अद्य मे सफलं जन्म प्रतीतोऽसि मम प्रभो ॥ ब्रह्मादिभिरलभ्यस्त्वं प्रकृतेः पारगो मतः ॥ ३० ॥ त्वयि जन्मादिषड्भावा न सन्त्यज्ञानसम्भवाः ॥ निर्विकारोऽसि पूर्णस्त्वं गमनादिविवर्जितः ॥ ३१ ॥ यथा जले फेनजालं धूमो वह्नौ तथा त्वयि ॥ त्वदाधारा त्वद्विषया माया कार्यं सृजत्यहो ॥ ३२ ॥ यावन्मायावृता लोकास्तावत्त्वां न विजानते ॥ अविचारितसिद्धैषाऽविद्या विद्याविरोधिनी ॥ ३३ ॥ अविद्याकृतदेहादिसंघाते प्रतिबिम्बिता ॥ चिच्छक्तिर्जीवलोकेऽस्मिन् जीव इत्यभिधीयते ॥ ३४ ॥ यावद्देहमनःप्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान् ॥ तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत् ॥ ३५ ॥

निर्म्मल जलमें आघात करनेसे फेनका समूह उत्पन्न होताहै, और अग्निकेविषे गीले इन्धनके कारण धूम दीखताहै, तिसीप्रकार मायारूप उपाधि करके तुम्हारेविषे क्रिया प्रतीत होतीहै, लोकोंको तुम्हारे स्वरूपकी प्रतीति न होने देनेवाली और तुम्हाराही है आधार जिसको ऐसी मायाही कार्य्योंको उत्पन्न करती है ॥ ३२ ॥ जबतक लोक मायाकरके ठके हुए रहतेहैं, तबतक तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानते हैं, यह अविद्या अति प्राचीन कालसे चली आती है और ज्ञानको उत्पन्न नहीं होने देतीहै ॥ ३३ ॥ यह शरीर, इन्द्रियें, आदि सम्पूर्ण संघात अविद्याकाही रचाहुआ है. इस संघातकेविषे प्रतिबिम्बरूपसे स्थितज्ञान शक्तिको इस जीवलोकमें 'जीव' कहते हैं ॥ ३४ ॥ जबतक जीवको देह—धन—प्राण—बुद्धि—आदिके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषे मैं हूँ और मेरा है ऐसा अभिमान रहताहै तबतक जीवको कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख, दुःख आदि भोगने पड़तेहैं ॥ ३५ ॥ मैं कार्य्य करताहूँ, मुझे उसका फल भोगना चाहिये, इस प्रकारके अभिमानसे उत्पन्न होनेवाला यह संसार आत्माको बिलकुल नहीं लगता है और बुद्धिको ज्ञान नहीं होताहै, क्योंकि बुद्धि अचेतन जड़ है, परन्तु यह जीव अज्ञानसे आत्माकेविषे संसारका और बुद्धिकेविषे ज्ञानका अभिमान करता है, और मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ, संसारी जीव हूँ इसप्रकार व्यवहार करता है ॥ ३६ ॥ चैतन्यके संसर्गसे जड़ पदार्थमें चैतन्यका धर्म्म प्रतीत होत है, और जड़के सम्बन्धसे चेतनमें जड़का धर्म्म भासता है, जैसे कि जलका और अग्निका संयोग है, अर्थात् जिसप्रकार जल जड़ होकरभी अग्निके सम्बन्धसे बिजलीरूप करके प्रकाशित होता है, और बिजलीका प्रकाश जलके सम्बन्धसे अपनें स्वरूपको त्यागकर अप्रकाश होजाता है,

आत्मनः संसृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञानं न जात्विति ॥ अविवेकाद्वयं युङ्क्त्वा संसारीति प्रवर्तते ॥ ३६ ॥ जडस्य चित्समायोगाच्चित्त्वं भूयाच्चितेस्तथा ॥ जडसङ्गाज्जडत्वं हि जलाग्न्योर्मेलनं यथा ॥ ३७ ॥ यावत्त्वत्पादभक्तानां सङ्गसौख्यं न विन्दति ॥ तावत्संसारदुःखौघान्न निवर्तेन्नरः सदा ॥ ३८ ॥ तत्सङ्गलब्धया भक्त्या यदा त्वां समुपासते ॥ तदा माया शनैर्याति तानवं प्रतिपद्यते ॥ ३९ ॥ ततस्त्वज्ज्ञानसम्पन्नः सद्गुरुस्तेन लभ्यते ॥ वाक्यज्ञानं गुरोर्लब्ध्वा त्वत्प्रसादाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वद्भक्तिहीनानां कल्पकोटिशतैरपि ॥ न मुक्तिशङ्का विज्ञानशङ्का नैव सुखं तथा ॥ ४१ ॥

तिसप्रकार यद्यपि बुद्धि जड़ है तथापि आत्माके सम्बन्धसे उसकी चेतन रूपसे प्रतीति और 'चित्त' नामकरके व्यवहार होता है, और आत्मा चेतन (ज्ञान) रूप होनेपरभी जड देहादिके सम्बन्धसे अपनेको अज्ञानी मानता है ॥ ३७ ॥ मनुष्यको जबतक तुह्मारे चरणोंकी भक्ति करनेवाले साधुके समागमका सुख नहीं मिलता है, तबतक वह संसाररूप दुःखके प्रवाहसे कदापि नहीं छूटता है ॥३८॥ सत्पुरुषोंका समागम होतेही मनुष्योंके अन्तःकरणोंमें तुह्मारी भक्ति उत्पन्न होती है, और तिस भक्तिकरके तुह्मारी उपासना करने लगते हैं, तब उनके पाससे माया धीरे धीरे दूर होने लगती है और उत्तरोत्तर क्षीणताको प्राप्त होतीहै ॥ ३९ ॥ तदनन्तर जिसको तुह्मारे स्वरूपका पूर्ण यथार्थ ज्ञान हुआ है ऐसे सद्गुरु उसको मिलते हैं, फिर तुह्मारी कृपासे तिन गुरुसे उसको 'तत्त्वमसि' महावाक्यका अर्थज्ञान होताहै और मूक होताहै ॥ ४० ॥ इससे यह वार्त्ता सिद्ध होती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि जिसमनुष्यके अन्तःकरणमें तुह्मारी भक्ति उत्पन्न नहीं हुई इसको अन्य साधनोंकरके, सैकड़ों कोटिकल्पोंसेभी क्या मुक्तिकी प्राप्ति होयगी अर्थात् निःसन्देह उसको कदापि तत्वज्ञानकी और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होयगी तथा सुखकी प्राप्तिभी नहीं होयगी ॥ ४१ ॥ इसकारण हे देव ! मैं तुमसे यह याचना करताहूँ कि जन्म जन्ममें तुह्मारे चरणोंमें मेरी भक्ति होय और मुझे तुह्मारे भक्तोंका सङ्ग मिले, क्योंकि भक्तिकरके और भक्तोंके सत्सङ्गकरके मनुष्योंका अज्ञान नष्ट होताहै ॥ ४२ ॥ जगत्में तुह्मारी भक्ति करनेमें तत्पर रहनेवाले और उपदेशकरके तुह्मारे तत्वज्ञानरूप अमृतकी वर्षा करनेवाले पुरुष संपूर्ण संसारको पवित्र करसक्ते हैं और अपने वंशजोंको पवित्र कर सक्ते हैं, इसमें तो कहनाही क्या है ! ॥ ४३ ॥ हे त्रिलोकीके स्वामी तुह्मारे अर्थ नमस्कार है, हे भक्तिसे वशमें होनेवाले देव ! तुमको अर्थ नमस्कार है, हे कृपासा-

अतस्त्वत्पादयुगले भक्तिर्मे जन्मजन्मनि ॥ स्यात्त्वद्भक्तिमतां सङ्गोऽविद्या याभ्यां विनश्यति ॥ ४२ ॥ लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वद्धर्माभृत तवर्षिणः ॥ पुनन्ति लोकमखिलं किं पुनः स्वकुलोद्भवात् ॥ ४३ ॥ नमोऽस्तु जगतां नाथ नमस्ते भक्तिभावन ॥ नमः कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ देव यद्यत्कृतं पुण्यं मया लोकजिगीषया ॥ तत्सर्वं तव बाणाय भूयाद्राम नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः करुणामयः ॥ प्रसन्नोऽस्मि तव ब्रह्मन्यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४६ ॥ दास्ये तदखिलं कामं मा कुरुष्वात्र संशयम् ॥ ततः प्रीतेन मनसा भार्गवो राममब्रवीत् ॥ ४७ ॥ यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन ॥ त्वद्भक्तसङ्गस्त्वत्पादे दृढा भक्तिः सदाऽस्तु मे ॥ ४८ ॥

गर ! हे अनन्त ! हे श्रीरामचन्द्र ! तुमको नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे देव ! लोगोंको जीतनेकी इच्छाकरके मैंने जो जो पुण्य कियाहै, वह सम्पूर्ण तुम्हारे बाणके लक्ष्य होओ, अर्थात् तेरे अमोघबाणसे नाशको प्राप्त होओ. हे रामचन्द्र! तुमको अर्थ नमस्कार है ॥ ४५ ॥ परशुरामके इस प्रकार स्तुति करनेपर वह दयालु , षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, तेरे मनमें जो कुछ है, वह मैं सब अभिलषित तुझको देताहूँ, इसमें तुम कुछ सन्देह मत करो, यह सुनकर परशुरामभी प्रसन्न अन्तःकरणसे श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ कि हे मधुदैत्यका वध करनेवाले विष्णुरूप रामचन्द्र ! यदि तुम्हारी मेरे ऊपर कृपा है तो तुम्हारे भक्तोंका सङ्ग और तुम्हारे चरणोंकी दृढ़भक्ति, यह दोनो मुझे सदा प्राप्तहो ॥४८॥ ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और मेरे करेहुए इस स्तोत्रका भक्तिहीन मनुष्यभी यदि पाठ करे तो उसको तुम्हारी भक्ति, ज्ञान और अन्तमें तुम्हारा स्मरण प्राप्तहोताहै इस मेरी इच्छाके पूर्ण करो ॥ ४९ ॥ रामचन्द्रजीने इसपर " तथास्तु " कहकर परशुरामका पूजन किया और उनको जानेकी आज्ञा दी. तब परशुराम-जीभी रामचन्द्रजीको प्रदक्षिणा करके और नमस्कार करके महेन्द्रपर्वतपर चलेगए ॥ ५० ॥ परशुराम चलेगए, ऐसा देखतेही राजा दशरथको " राम-चन्द्रका द्वितीय जन्म हुआ " ऐसा प्रतीत हुआ, हर्ष हुआ और रामचन्द्रजीको समीप आतेही बारम्बार हृदयसे लगाया और नेत्रोंसे आन-न्दके आंसुओंका प्रवाह वहने लगा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर राजा दशरथका चित्त प्रसन्न हुआ और स्वस्थ चित्त होकर अयोध्या नगरीको गए और वह देवताओंके समान चारों राम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न अपनी अपनी स्त्रीको लेकर अपने अपने मन्दिरोंमें आनन्दसे रहने लगे, उनके मातापिता

स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु भक्तिहीनोपि सर्वदा ॥ त्वद्भक्तिस्तस्य विज्ञानं भूयादन्ते स्मृतिस्तव ॥ ४९ ॥ तथेति राघवेणोक्तः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ पूजितस्तदनुज्ञातो महेन्द्राचलमन्वगात् ॥ ५० ॥ राजा दशरथो हृष्टो रामं मृतमिवागतम् ॥ आलिङ्ग्यालिङ्ग्य हर्षेण नेत्राभ्यां जलमुत्सृजत् ॥ ५१ ॥ ततः प्रीतेन मनसा स्वस्थचित्तः पुरं ययौ ॥ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसंमिताः ॥ ५२ ॥ स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्वस्वमन्दिरे ॥ मातापितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः ॥ ५३ ॥ रेमे वैकुण्ठभवने श्रिया सह यथा हरिः ॥ युधाजिन्नाम कैकेयीभ्राता भरतमातुलः ॥ ५४ ॥ भरतं नेतुमागच्छत्स्वराज्यं प्रीतिसंयुतः ॥ प्रेषयामास भरतं राजा स्नेहसमन्वितः ॥५५॥ शत्रुघ्नं चापि संपूज्य युधाजितमरिन्दमः ॥ कौसल्या शुशुभे देवी रामेण सह सीतया ॥ देवमातेव पौलोम्या शच्या शक्रेण शोभना ॥५६॥

भी आनन्दसे कालको व्यतीत करनेलगे, सीताके सङ्ग रामचन्द्रजीभी परम प्रसन्न रहे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार वैकुण्ठलोकमें विष्णु भग-वान् लक्ष्मीके साथ आनन्दमें रहतेहैं तिसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सीताजीसहित अपने महलमें परम प्रसन्न रहे. एक समय युधाजित् नाम-वाला कैकेयीका भ्राता अर्थात् भरतजीका मामा प्रेमकरके भरतजीको अपने राज्यमें लेजानेके निमित्त अयोध्यामें आया, दशरथसे उसका बड़ा प्रेम (स्नेह) था, इस कारण शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले तिस राजाने युधाजितका सत्कार करके उसके साथ भरत और शत्रुघ्न इन दोनों को भेज दिया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार देवताओंकी माता अदिति, इन्द्राणीसहित इन्द्रकरके शोभायमान होतीहै तिसप्रकार सीता सहि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त रामचन्द्रजीकरके कौसल्या शोभाको प्राप्त हुई ॥ ५६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सीतासहित अयोध्या नगरीमें रहने लगे; उनके अनेक गुण इन्द्रादि लोकपालोंमें और पृथ्वीतलके राजाओंमें प्रसिद्ध थे, उनकी कीर्तिका लोक प्रेमपूर्वक गान करतेथे. उनकी मूर्ति ऐसी थी कि उसके देखतेही सम्पूर्ण दर्शन करनेवाले पुरुषोंके अन्तःकरणमें आनन्द भरजाताथा, उनका ऐश्वर्य्य अखण्ड था, उनमें किसीप्रकारका विकार नहीं था, उनके ऐश्वर्यकी मर्यादा नहीं थी, उन्होंने मायाशक्तिको अपने वास्तविक स्वरूपसे दूर कर रक्खी है, वह सत्ता और स्फूर्ति रूपकरके मायाके सब कार्य्योंमें व्यापक रहेहैं और वास्तवमें सदा ज्ञानसम्पन्न और सम्पूर्ण जगत्के प्रेरक होकरभी मनुष्यके समान प्रतीत होतेहैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभारद्वाजगोत्रोद्भवगौड़वंशावतंसपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्म्मणाविरचितभाषाटीकासहितः सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ इस बालकाण्डमें ३६० श्लोक हैं. ॥ इति बालकाण्ड समाप्त ॥

साकेते लोकनाथप्रथितगुणगणो लोकसङ्गीतकीर्तिः श्रीरामः सीतयास्तेऽखिलजननिकरानन्दसन्दोहमूर्तिः ॥ नित्यश्रीर्निर्विकारो निरवधिविभवो नित्यमायानिरासो मायाकार्यानुसारी मनुज इव सदा भाति देवोऽखिलेशः ॥ ५७ ॥ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे बालकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्लोकसंख्या ३६० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदं पुस्तकं पण्डित "हरिप्रसाद भगीरथजी" इत्यनेन महाम्बापुर्यां
'गूजराती' मुद्रणालये मुद्रितम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–कालिकादेवी रोड़–रामवाड़ी–मुंबई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ इत्यध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितबालकाण्डः समाप्तः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितेऽयोध्याकाण्डप्रारम्भः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

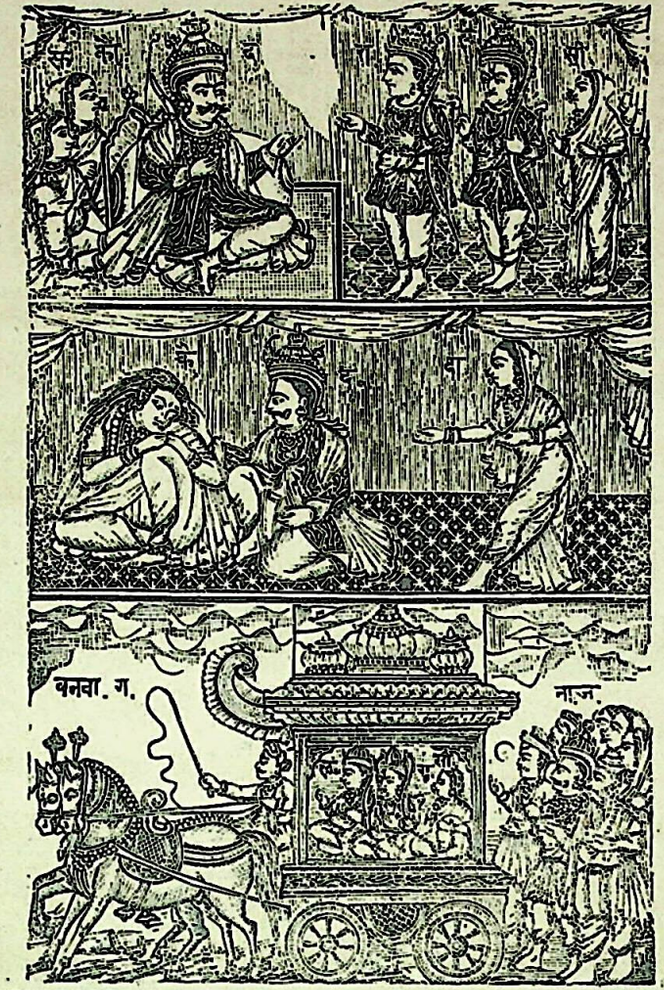

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति ! एकसमय श्रीरामचन्द्रजी अपने रणवासके आंगनमें रत्नजटित सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठेथे और शरीरपर सम्पूर्ण आभूषण धारण करेहुएथे ॥ १ ॥ अङ्गकी कान्ति नीलकमलके पत्रके समान श्यामवर्ण थी, कण्ठमें कौस्तुभमणि लटक रहीथी, सीता अपने हाथमें रत्नजटित दण्डीका चमर लियेहुए वायु कररहीथी ॥ २ ॥ और ताम्बूल भक्षणादि भोग सामग्रीकरके श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको विनोदित कररहेथे उससमय नारदमुनि तिन रामचन्द्रजीका दर्शन करनेकेनिमित्त तहाँ आकाशमार्गसे उतरकर आए ॥ ३ ॥ नारदमुनि आरहे हैं यह वार्त्ता श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमें और मनमें बिलकुल नहींथी, एकाएकी शरत्कालके चन्द्रमाके समान कांतिमान और स्फटिकमणिके समान

॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ एकदा सुखमासीनं रामं स्वान्तःपुराजिरे ॥ सर्वाभरणसंपन्नं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ १ ॥ नीलोत्पलदलश्यामं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ सीतया रत्नदण्डेन चामरेणाथ वीजितम् ॥ २ ॥ विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणादिभिरादरात् ॥ नारदोऽवतरद्द्रष्टुमम्बराद्यत्र राघवः ॥ ३ ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशः शरच्चन्द्र इवामलः ॥ अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः ॥ ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान् ॥५॥ उवाच नारदं रामः प्रीत्या परमयायुतः ॥ संसारिणां मुनिश्रेष्ठ दुर्लभं तव दर्शनम् ॥ अस्माकं विषयासक्तचेतसां नितरा मुने ॥ ६ ॥ अवाप्तं मे पूर्वजन्मकृतपुण्यमहोदयैः ॥ संसारिणापि हि मुने लभ्यते सत्समागमः ॥ ७ ॥ अतस्त्वद्दर्शनादेव कृतार्थोऽस्मि मुनीश्वर ॥ किं कार्यं ते मया कार्यं ब्रूहि तत्करवाणि भो ॥८॥

उज्ज्वल दिव्य पुरुष नारदजी तहाँ आकर खड़े होगए ॥ ४ ॥ नारदमुनिको देखतेही सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी प्रीतिपूर्वक एक साथ उठकर खड़े होगए और हाथ जोडकर भक्तिपूर्वक पृथ्वीपर मस्तक टेककर नमस्कार किया ॥ ५ ॥ इससमय श्रीरामचन्द्रजीको अत्यन्तही आनन्द हुआ, और नारदजीसे बोले कि—हे मुने! संसारी पुरुषोंको आपका दर्शन दुर्लभ है तिनमेंभी हे नारद! जिसका मन विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होरहा है ऐसे मुझसरीखे पुरुषोंको तो अत्यन्तही दुर्लभ है ॥ ६ ॥ आज मेरे पूर्व जन्मोंमें कियेहुए शुभफलदायक कर्म्मोंका उदय हुआ, क्योंकि हे नारद! संसारमें पडेहुएभी मुझे साधुओंका समागम होता है ॥ ७ ॥ इसकारण हे मुनीश्वर! मैं केवल आपके दर्शनसेही कृतकृत्य होगया, अब मुझे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपका क्या कार्य्य करना चाहिये सो कहिये उसको मैं करूं ॥ ८ ॥ तदनन्तर नारदमुनिभी तिन भक्तवत्सल रामचन्द्रजीसे बोले—कि हे रामचन्द्र! लोकाचारके अनुसार वाक्योंको कहकर क्या मुझेभी मोहित करतेहो ॥ ९ ॥ हे प्रभो! मैं जानताहूँ कि "मैं संसारी हूं" ऐसा जो आपने कहा सो सत्य है, क्योंकि यद्यपि तुम अन्य प्राणियोंके समान संसारी नहींहो, तथापि त्रिलोकीरूप गृहमें आप प्रधान गृहस्थ हो और सम्पूर्ण जगत्की आदिकारण जो माया सो आपकी गृहिणी (स्त्री) है ॥ १० ॥ आपके सम्बन्धसे तिस मायारूप स्त्रीकेविषे ब्रह्मा—शिव आदि सन्तान उत्पन्न होती है, सत्व—रज—तम इन तीन गुणोंकरके युक्त जो माया वह तुह्मारे आधारसे भिन्न भिन्न रूपमें प्रतीत होती है, वह माया सदा शुक्ल—

अथ तं नारदोऽप्याह राघवं भक्तवत्सलम् ॥ किं मोहयसि मां राम वाक्यैर्लोकानुसारिभिः ॥९॥ संसार्यहमितिप्रोक्तं सत्यमेतत्त्वया विभो॥ जगतामादिभूता या सा माया गृहिणी तव ॥ १० ॥ त्वत्सन्निकर्षाज्जायन्ते तस्या ब्रह्मादयः प्रजाः ॥ त्वदाश्रया सदा भाति माया या त्रिगुणात्मिका ॥ ११ ॥ सूतेऽजस्रं शुक्लकृष्णलोहिताः सर्वदा प्रजाः ॥ लोकत्रयमहागेहे गृहस्थस्त्वमुदाहृतः ॥ १२ ॥ त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ॥ ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥ १३ ॥ भवान् शशाङ्कः सीता तु रोहिणी शुभलक्षणा ॥ शक्रस्त्वमेव पौलोमी सीता स्वाहाऽनलो भवान् ॥१४॥ यमस्त्वं कालरूपश्च सीता संयमिनी प्रभो ॥ निर्ऋतिस्त्वं जगन्नाथ तामसी जानकी शुभा ॥१५॥ राम त्वमेव वरुणो भार्गवी जानकी शुभा ॥ वायुस्त्वं राम सीता तु सदागतिरितीरिता ॥ १६ ॥

कृष्ण और रक्तवर्ण प्रजाको उत्पन्न करती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन्! आप विशुद्ध पुरुष हैं और सीता परा प्रकृति है, प्रकृति पुरुषसे अन्य संसारमें कुछ पदार्थ नहीं है, तुम विष्णु हो और सीता लक्ष्मी है, तुम महादेव हो और सीता पार्वती है, तुम ब्रह्मा हो और सीता सरस्वती है, तुम सूर्य्य हो और सीता प्रभा (सूर्यकी स्त्री) है, तुम चन्द्रमा हों और सीता सुन्दर लक्षणोंकरके युक्त रोहिणी है, तुम इन्द्र हो और सीता इन्द्राणी है, तुम अग्नि हो और सीता स्वाहा (अग्निकी स्त्री) है ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे प्रभो! मृत्युस्वरूप यम तुमही हो और उसकी संयमिनी शक्ति जानकी है, हे जगन्नाथ! तुम निर्ऋति हो और शोभनरूपजानकी तामसी (निर्ऋतिकी स्त्री) है, हे रामचन्द्र तुम वरुण हो और शुभलक्षणा जानकी भार्गवी है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे रामचन्द्र! तुम वायु हो और जानकी सदागति (वायुकी स्त्री) है इसप्रकार सर्वज्ञपुरुष कहते हैं, हे रामचन्द्र! तुम कुबेर हो और जानकी सर्व सम्पत्तिरूप कुबेरकी स्त्री है इस प्रकार शास्त्रोंनें वर्णन किया है. जानकीका "रुद्राणी" नाम है और तुम सम्पूर्ण लोकोंके संहार करनेवाले रुद्र हो ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ जगत्में स्त्रीवाचक (स्त्रीलिङ्ग) जो कुछ वस्तु है वह सबही सुन्दर लक्षणोंसे युक्त जानकी है और पुरुषवाचक (पुल्लिङ्ग) सम्पूर्ण पदार्थ है वह रामचन्द्र तुम हो ॥ १८ ॥ इसकारण हे देव! त्रिलोंकीमें तुम दोनों (प्रकृति–पुरुष) से भिन्न कोई वस्तु नहीं है ॥ १९ ॥ तुम्हारे आभास (सम्बंध) के योगसे सृष्टिकी रचना करनेमें प्रवृत्त हुआ जो अज्ञान वह अव्याकृत (प्रकृति) नामसे कहाजाता है, तिस अव्याकृतसे महत्तत्त्व होता है, तिस महत्तत्त्वसे अहङ्कार होता है और तिस अहंकारसे सर्व कार्य्यस्वरूप लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ अहं-

कुबेरस्त्वं राम सीता सर्वसम्पत्प्रकीर्तिता ॥ रुद्राणी जानकी प्रोक्ता रुद्रस्त्वं लोकनाशकृत् ॥१७॥ लोके स्त्रीवाचकं यावत्तत्सर्वं जानकी-शुभा ॥ पुन्नामवाचकं यावत्तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥१८॥ तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किंचन ॥१९॥ त्वदाभासोदिताज्ञानमव्याकृत-मितीर्यते ॥ तस्मान्महांस्ततः सूत्रं लिङ्गं सर्वात्मकं ततः ॥२०॥ अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पञ्चप्राणेन्द्रियाणि च ॥ लिङ्गमित्युच्यते प्राज्ञैर्जन्म-मृत्युसुखादिमत् ॥ २१ ॥ स एव जीवसंज्ञश्च लोके भाति जगन्मयः ॥ अवाच्यानाद्यविद्यैव कारणोपाधिरुच्यते ॥ २२ ॥ स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः ॥ एतैर्विशिष्टो जीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वरः ॥ २३ ॥

कार (मन) बुद्धि, सूक्ष्म पञ्चमहाभूत (इनकेही अन्तर्गत पाँच कर्म्मेन्द्रिय हैं) पञ्च प्राण, पञ्च ज्ञानेंद्रिय, इन सबकी समष्टिको विद्वान् सर्व कार्य्यरूप लिङ्गशरीर कहते हैं, इन लिङ्गशरीरको मृत्यु–सुख–दुःख आदि विकार होते हैं ॥ २१ ॥ इस लिङ्गशरीरका अभिमानी सर्व जगत्स्वरूप (समष्टिरूप) जो हिरण्यगर्भ उसका नाम "जीव" है वह ब्रह्मस्वरूप निर्विकार होकरभी उपाधिके कारण संसारका कारण प्रतीत होता है, वह उपाधि अविद्या (अज्ञान) है, उसके स्वरूपका निश्चयात्मक वर्णन नहीं होसकता है और उसकी उत्पत्ति नहीं होती है अर्थात् वह अविद्या सनातन कालकी है ॥ २२ ॥ स्थूलशरीर (विराट्), सूक्ष्मशरीर (लिंग शरीर) और कारणशरीर (अन्तर्य्यामी ईश्वर), यह तीन चैतन्यकी उपाधि हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन उपाधियोंकरके युक्त चैतन्यको "जीव" कहते हैं और उपाधिरहित चैतन्य परमेश्वर है ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण संसारका जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन संज्ञाओंके भीतर अन्तर्भाव है जिसमें इन्द्रियोंका व्यापार चलता रहे ऐसे जाननेके कालको जाग्रत अवस्था कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोंका व्यापार न चले केवल अन्तःकरणकी वासनाके अनुसार भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न हो उसे स्वप्नावस्था कहते हैं और जिसमें इन्द्रिय अथवा मन आदि किसीकीभी वृत्ति नहीं चलती है उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं. हे रामचन्द्र ! तुम तिन अवस्थारूप संसारसे भिन्न हो और उसको साक्षी (देखनेवाले) हो ॥ २४ ॥ हे राम ! यह सम्पूर्ण जगत् तुह्मारे प्रकाशसे उत्पन्न हुआ है, और तुह्मारेविषे ही स्थित है, तथा अन्तकालमें यह सब तुम्हारेविषे ही लीन होताहै, इसकारण इस सम्पूर्ण सृष्टिके कारण तुमही हो ॥ २५ ॥ जिसप्रकार रस्सीको सर्प माननेसे पुरुषको भयकी प्रतीति

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या संसृतिर्या प्रवर्तते ॥ तस्या विचक्षणः साक्षी चिन्मात्रस्त्वं रघूत्तम ॥२४॥ त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम् ॥२५॥ रज्जावहिमिवात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत् ॥ परात्माहमिति ज्ञात्वा भयदुःखैर्विमुच्यते ॥ २६ ॥ चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्वदेहेषु बुद्धयः ॥ त्वया यस्मात्प्रकाश्यन्ते सर्वस्यात्मा ततो भवान् ॥ २७ ॥ अज्ञानान्न्यस्यते सर्वं त्वयि रज्जौ भुजङ्गवत् ॥ त्वज्ज्ञानाल्लीयते सर्वं तस्माज्ज्ञानं सदाभ्यसेत् ॥२८॥ त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ॥ तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ॥२९॥ अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किङ्करः ॥ अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ॥३०॥

होती है, तिसीप्रकार आत्माको जीव माननेसे भयरूप संसार भोगना पड़ताहै, फिर जब "मैं परमेश्वर हूँ" ऐसा ज्ञान होतेही प्राणी संसाररूप भयसे और दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २६ ॥ तुम केवल ज्ञानरूप तेजकरके सबके शरीरोंमें सम्पूर्ण बुद्धियोंको प्रकाशित करतेहो, इसकारण तुम सबके आत्मा हो ॥ २७ ॥ जिसप्रकार अज्ञानसे रस्सीमें सर्पकी प्रतीति होने लगती है तिसीप्रकार तुम्हारे स्वरूपमें सम्पूर्ण जगत्का आरोप अज्ञानकाही कियाहुआ है, तुम्हारा ज्ञान हुआ कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च लीन होताहै, इसकारण ज्ञानका नित्य अभ्यास करो ॥ २८ ॥ तुम्हारे चरणोंकी भक्ति करनेवालोंको क्रमसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञानकी प्राप्ति होती है, भक्तिके शिवाय ज्ञानकी प्राप्तिका अन्य उपाय नहीं है, इसकारण जो पुरुष तुम्हारी भक्ति करनेवाले हैं वहही मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ २९ ॥ मैं तुम्हारे भक्तोंके भक्तोंका और उनकेभी भक्तोंका दास हूँ. हे प्रभो ! मेरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर अनुग्रह(उपकार) करो और मुझे मोहित नहीं करो॥ ३०॥ हे प्रभो! तुम्हारे नाभिकमलसें उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, तिससे हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुम्हारा पौत्र (पोता-नाती) हूँ, इसकारण मुझदासकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ ऐसे कहकर नारदने रामचन्द्रजीको अनेकवार प्रणाम किया, और नारदजीके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा. तदनन्तर रामचन्द्रजीसे फिर बोले कि—हे रामचन्द्रजी! मुझे ब्रह्माजीने तुम्हारे पास सन्देशा कहनेके निमित्त भेजा है ॥ ३२ ॥ हे रघुकुलमणि रामचन्द्रजी! तुमने रावणका वध करनेके लिये अवतार धारण किया है अब राज्यकी रक्षा करनेके निमित्त पिता तुमको अभिषेक करेंगे ॥ ३३ ॥ यदि तुम राज्याभिषेकको प्राप्त होकर राज्यकार्य्योंमें आसक्त होजाओगे तो तुमसे रावणके वधका कार्य नहीं होयगा और हे रामचन्द्र! तुमनें रावणका वधकरके पृथ्वीका भार दूर करनेकी प्रतिज्ञा करी है ॥ ३४ ॥ उसको सत्य

त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो ॥ अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मा पाहि राघव ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा बहुशो नत्वा स्वानन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥ उवाच वचनं राम ब्रह्मणा नोदितोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥ रावणस्य वधार्थाय जातोऽसि रघुसत्तम ॥ इदानीं राज्यरक्षार्थं पिता त्वामभिषेक्ष्यति ॥ ३३ ॥ यदि राज्याभिसंसक्तो रावणं न हनिष्यसि ॥ प्रतिज्ञा ते कृता राम भूभारहरणाय वै ॥ ३४ ॥ तत्सत्यं कुरु राजेन्द्र सत्यसन्धस्त्वमेव हि ॥ श्रुत्वैतद्वदितं रामो नारदं प्राह सस्मितम् ॥ ३५ ॥ शृणु नारद मे किंचिद्विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥ प्रतिज्ञातं च यत्पूर्वं करिष्ये तन्न संशयः ॥ ३६ ॥ किंतु कालानुरोधेन तत्तत्प्रारब्धसङ्क्षयात् ॥ हरिष्ये सर्वभूभारं क्रमेणासुरमण्डलम् ॥ ३७ ॥ रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम् ॥ चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥ ३८ ॥

करो. हे राजेंद्र! तुम निःसन्देह सत्यप्रतिज्ञ (प्रतिज्ञा करके उसके अनुसार कार्य्य करनेवाले) हो, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है, इसप्रकार नारदजीका कहना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुसकुराते हुए नारदजीसे बोले ॥ ३५ ॥ हे नारद! सुनो जो मुझे मालूम न हो ऐसी कोई वस्तु क्या कहीं है? अर्थात् मुझे सर्वत्रका सब वृत्तान्त विदित है. मैंने जो प्रतिज्ञा करी है उसके अनुसार सब कार्य्य करूंगा, इसमें कुछ सन्देह मत करो ॥ ३६ ॥ परंतु यह सब वार्ता समयके अनुसार है, दैत्योंका प्रारब्धकर्म्म क्षीण होनेपर मैं क्रमक्रमसे उनका नाश करके पृथ्वीका भार दूर करूंगा ॥ ३७ ॥ रावणका वध करनेके निमित्त कलको दण्डकारण्यमें जानेवाला हूं, तहां मुनिवेष धारण करके चौदह वर्ष रहूंगा ॥ ३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीताके मिषसे मैं उस दुष्ट रावणका कुटुम्बसहित नाश करूंगा, इसप्रकार रामचन्द्रजीके प्रतिज्ञा करनेपर नारदजीको परम आनन्द हुआ ॥ ३९ ॥ तदनन्तर नारदमुनिने श्रीरामचन्द्रजीको तीन प्रदक्षिणा करके साष्टांग नमस्कार किया और रामचंद्रजीकी आज्ञा पाकर स्वर्गलोकको चलेगए ॥ ४० ॥ जो मनुष्य मुनिवर नारदजीके और श्रीरामचन्द्रजीके इस संवादको प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पढ़े श्रवण करे, अथवा विचारे तो उनको प्रथम वैराग्यकी प्राप्ति होती है और तदनन्तर क्रमसे ब्रह्मस्वरूपकेविषे एकतारूप मोक्षको प्राप्त होता है, जो मोक्ष देवताओंकोभी दुर्लभ है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद-ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे भाषाटीकासहितः प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! इधर राजा दशरथ एकां-

सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम् ॥ एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य तम् ॥ अनुज्ञातश्च रामेण ययौ देवगतिं मुनिः ॥ ४० ॥ संवादं पठति शृणोति संस्मरेद्वा यो नित्यं मुनिवररामयोः स भक्त्या ॥ संप्राप्नोत्यम-रसुदुर्लभं विमोक्षं कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ ॥ १ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ अथ राजा दशरथः कदाचिद्रहसि स्थितः ॥ वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमाहूयेदमभाषत ॥ १ ॥ भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ॥ पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः ॥ २ ॥ ततः सर्वगुणोपेतं रामं राजीवलोचनम् ॥ ज्येष्ठं राज्येऽभिषेक्ष्यामि वृद्धोऽहं मुनिपुङ्गव ॥ ३ ॥ भरतो मातुलं द्रष्टुं गतः शत्रुघ्नसंयुतः ॥ अभिषेक्ष्ये श्व एवाशु भवांस्तत्रानुमोदताम् ॥ ४ ॥ संभाराः संभ्रियन्ता च गच्छ संमन्त्र्य राघवम् ॥ उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समन्ततः ॥ ५ ॥

तमें बैठे थे सो अपने कुलगुरु जो वसिष्ठ तिनको बुलवाकर इसप्रकार कहनेलगे ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! नगरमें निवास करनेवाले प्रजाके लोग व्यापारी और वेदको जाननेवाले विद्वान् तथा वृद्ध वृद्ध मंत्री तो विशेषकरके रामचन्द्रकी वारंवार प्रशंसा करते हैं, वह सबको प्यारा है ॥ २ ॥ तथा वह सर्व गुणसम्पन्न और मेरे सब पुत्रोंमें बडा है, इस कारण हे मुनिवर ! मैं तिस कमलनेत्र रामचन्द्रको राज्याभिषेक करूंगा, क्यों कि मेरीभी वृद्धावस्था होगई है ॥ ३ ॥ शत्रुघ्नकरके सहित भरत अपने मामासे मिलनेको गए हैं और मैं शीघ्र कलकोही अभिषेक करना चाह-ताहूँ आप इसमें सम्मति दीजिये ॥ ४ ॥ "वसिष्ठजी बोके कि—हे राजन् ! यदि आपकी इच्छा है तो बडी सुन्दर वार्त्ता है," अब तुम सामग्रियें इकट्ठी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करो, रामचन्द्रजीके समीप जाकर उनकोभी यह वार्त्ता कहो, अनेक वर्णकी पताकाएँ नगरमें इधर उधर टँगवादो ॥ ५ ॥ सोनेकी और मोतियोंकी चित्रविचित्र बन्दरबालें बंधवादो, इसप्रकार वसिष्ठजीके कहने पर राजा दशरथने अपने मंत्रियोंमें मुख्य सुमंत्रनामक मंत्रीको बुलवाकर कहा कि ॥ ६ ॥ वसिष्ठजी जो जो आज्ञा करे वह वह सामग्री लाकर दो, कलको मैं रामचन्द्रजीको युवराजपदका अभिषेक करूंगा ॥ ७ ॥ सुमन्त्र आनन्दपूर्वक राजा दशरथसे "बहुत अच्छा" इसप्रकार कहकर वसिष्ठजीसे बोले कि महाराज ! मैं क्या करूं सो आज्ञा दीजिये, तब महातेजस्वी श्रेष्ठ ज्ञानी वसिष्ठमुनि उससे बोले कि ॥ ८ ॥ कल प्रातःकालके समय बीचके द्वारपर सुवर्णके आभूषणोंको धारण करेहुए सोलह

तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै ॥ आहूय मन्त्रिणं राजा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ॥ ६ ॥ आज्ञापयति यद्यत्त्वां मुनिस्तत्तत्समानय ॥ यौवराज्येऽभिषेक्ष्यामि श्वोभूते रघुनन्दनम् ॥ ७ ॥ तथेति हर्षात्स मुनिं किं करोमीत्यभाषत ॥ तमुवाच महातेजा वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥ ८ ॥ श्वः प्रभाते मध्यकक्षे कन्यकाः स्वर्णभूषिताः ॥ तिष्ठन्तु षोडश गजो स्वर्णरत्नादिभूषितः ॥ ९ ॥ चतुर्दन्तः समायातु ऐरावतकुलोद्भवः ॥ नानातीर्थोदकैः पूर्णाः स्वर्णकुम्भाः सहस्रशः ॥१०॥ स्थाप्यन्तां नव वैयाघ्रचर्माणि त्रीणि चानय ॥ श्वेतछत्रं रत्नदण्डं मुक्तामणिविराजितम् ॥ ११ ॥ दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ॥ मुनयः सत्कृतास्तत्र तिष्ठन्तु कुशपाणयः ॥ १२ ॥ नर्तक्यो वारमुख्याश्च गायका वेणुकास्तथा ॥ नानावादित्रकुशला वादयन्तु नृपाङ्गणे ॥ १३ ॥

कन्या स्थित रहैं और ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुआ चार दाँतोंवाला हस्ती सुवर्ण और रत्न आदिके आभूषणोंसे शोभायमान करके तहां खडा करो, अनेक तीर्थोंके जलोंकरके पूर्ण भरेहुए सुवर्णके सहस्रों कलश लाकर रक्खो, नौ अथवा तीन व्याघ्रके चर्म्म लाओ, रत्नजटित हैं दण्डे जिनके ऐसे मोती और रत्नोंकी झालरोंवाला उत्तम श्वेतच्छत्र, उत्तमपुष्प, वस्त्र तथा बहुमूल्यके आभूषण यह सब सामग्री इकट्ठी करनी चाहिये, और मुनिगणोंको सत्कारपूर्वक बुलाओ, वह हाथोंमें दर्भ (कुश) लेकर तहाँ खडे रहैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ नाँचनेवाली वेश्याएँ, गवय्ये, बांसुरी बजानेवाले तथा औरभी नानाप्रकारके बाजे बजानेमें कुशल अनेक बाजन्दरी राजमन्दिरके आंगनमें बाजोंको बजावैं ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने अपने शास्त्रोंकरके सहित हाथी—घोडे—रथ और पैदल इस चतुरङ्ग सेनाको तहां बाहर खडी करो, और नगरमें जो जो देवताओंके मन्दिर हैं उनमें पूजा करनेका प्रारम्भ कराओ, तिन देवताओंके प्रिय नानाप्रकारके बलि दो, राजाओंको बुलाना भेजो कि वह नानाप्रकारकी भेंट (नजर) लेकर शीघ्रही यहां आवैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ महातेजस्वी वसिष्ठमुनि राजाके सुमन्त्रनामक मंत्रीको इसप्रकार आज्ञा देकर अपने आप श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें गए, वह श्रीरामचन्द्रजीका मन्दिर अति रमणीय था ॥ १६ ॥ त्रिकालकी वार्त्ताको जाननेवाले श्रेष्ठ वसिष्ठमुनि रथमें बैठकर रामचन्द्रजीके समीप आए और तिस मन्दिर ड्यौढ़ियोंको उल्लंघन करके रथसे भूमिपर उतरे ॥ १७ ॥ वसिष्ठजी अपने (श्रीरामचन्द्रजीके) कुलगुरु थे इसकारण श्रीरामचन्द्रजीके

हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः ॥ नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च ॥१४॥ तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरावृता॥राजानः शीघ्रमायान्तु नानोपायनपाणयः ॥ १५ ॥ इत्यादिश्य मुनिः श्रीमान् सुमन्त्रं नृपमन्त्रिणम् ॥ स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम् ॥ १६ ॥ रथमारुह्य भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ त्रीणि कक्षाण्यतिक्रम्य रथात्क्षितिमवातरत् ॥ १७ ॥ अन्तः प्रविश्य भवनं स्वाचार्यत्वादवारितः ॥ गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृताञ्जलिः ॥ १८ ॥ प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद्भक्तिसंयुतः ॥ स्वर्णपात्रेण पानीयमानिनायाशु जानकी ॥ १९ ॥ रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ॥ तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ॥ २० ॥ धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्रामस्तव पादाम्बुधारणात् ॥ श्रीरामेणैवमुक्तस्तु प्रहसन्मुनिरब्रवीत् ॥ २१ ॥ त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद्गिरिजापतिः ॥ ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ॥ २२ ॥

मन्दिरमें जानेका उनको निषेध (मनादी) नहींथा, वह रामचन्द्रजी मन्दिरमें थे सो 'गुरु आए हैं' ऐसा सुनतेही हाथ जोडकर सन्मुख आए और अन्तःकरणमें गुरुकी पूर्ण भक्ति होनेके कारण गुरुको साष्टांग प्रणाम किया, इधर जानकीजी सुवर्णके पात्रमें शीघ्रही जल लाईं ॥ १८ ॥ १९ ॥ और सीतासहित रामचन्द्रजीने वसिष्ठजीको रत्नोंके आसनपर बैठाकर भक्तिपूर्वक चरण धोये, और उस चरणोंके जलको मस्तकपर धारण किया और कहने लगे कि महाराज! आज आपके चरणकमलोंके जलको धारण करनेसे मैं धन्य हूँ, श्रीरामचन्द्रजीके इसप्रकारके कथनको श्रवणकरके वसिष्ठमुनि हँसते हुए बोले कि हे राम! आपके चरणकमलके जलको धारण करके साक्षात्पार्वतीपति शिव धन्य हुए और मेरे पिता ब्रह्माजीभी आपके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरणोंके जलसे निष्पाप हुए ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ और मुझसे जो तुम इसप्रकार वार्त्तालापकरके मेरा गौरव कर रहेहो, इसका यह तात्पर्य्य प्रतीत होता है कि ब्राह्मणोंको पूज्य माननेके निमित्त लोकोंको उपदेश करतेहो, और मैं तो आपके सत्यस्वरूपको जानताहूँ, तुम सर्व शक्तिमान् ईश्वरने लक्ष्मीकरके सहित यहां अवतार लिया है ॥ २३ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! देवताओंका कार्य्य सिद्ध करनेकेलिये और भक्तोंको भक्तिका फल देनेके लिये तथा रावणका वध करनेके निमित्त तुमने अवतार धारण किया है, यह मैं जानताहूँ ॥ २४ ॥ तोभी देवताओंका कार्य्य सिद्ध होनेके निमित्त मैं यह गुप्त वार्त्ता किसीके सामने प्रकट नहीं करताहूँ, हे रामचन्द्रजी ! जिस प्रकार मायाकरके तुम सम्पूर्ण कार्य्य करते हो तिसकेही अनुसार मैंभी आपके साथ वर्त्ताव करता हूँ इसकारण जब तुम अपनेको मेरा शिष्य कहकर वर्त्ताव करते हो तो मैंभी अपनेको तुम्हारा गुरु कहकर

इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत् ॥ जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ॥ २३ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये ॥ रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥ २४ ॥ तथाऽपि देवकार्यार्थं गुह्यं नोद्घाट्याम्यहम् ॥ यथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन ॥ २५ ॥ तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् ॥ गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितॄणां त्वं पितामहः ॥ २६ ॥ अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः ॥ शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥ २७ ॥ मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमायया ॥ पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥२८॥ इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते ॥ इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥२९॥

वर्त्ताव करता हूँ, और वास्तवमें हे देव ! तुम सम्पूर्ण गुरुओंके गुरु और पितरोंके पितामह अर्थात् सबकी अपेक्षासे महान् हो ॥ २५ ॥ २६ ॥ तुम सबके अन्तर्य्यामी (हृदयमें प्रेरक) होकर जगत्के मार्गको चलाते हो तुम्हारा स्वरूप नेत्र आदि इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आता है इससमय धारण कियाहुआ तुम्हारा यह शरीर शुद्ध सत्वगुणात्मक (रजोगुण और तमोगुणके लेशकरके रहित) है, जन्मको धारण करना तुम्हारे स्वाधीन है ॥ २७ ॥ तुम अपनी योगमायाके योगसे इस लोकमें मनुष्यके समान प्रतीत होते हो, हे रामचन्द्र ! मैं जानता हूँ कि पाधाई पुरोहिताईका कार्य्य निन्दित है और इस वृत्तिसे निर्वाह करनेमें दोष लगता है, परन्तु इक्ष्वाकुके वंशमें परमात्मा रामचन्द्ररूपसे अवतार धारण करैंगे, ऐसा मुझे पहि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेसेही मालूम था, क्योंकि मुझसे ब्रह्माजीने कहा था, इसकारण मैंने तुह्मारे सम्बन्धकी इच्छाकरके यह निन्दितभी पाधा पुरोहितका काय्य मैंने स्वीकार कर लिया, क्यौंकि मुझे यह आशा थी कि मैं तुम्हारा गुरु होऊँगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे रामचन्द्र ! वह मेरा मनोरथ आज पूराहुआ, हे देव ! सम्पूर्ण लोकोंको मोहनेवाली माया तुम्हारे स्वाधीन है ॥ ३१ ॥ हे रघुकुलोद्धारक श्रीरामचन्द्र ! मेरी आपसे इतनी प्रार्थना है कि वह माया मुझे किञ्चिन्मात्रभी मोहित न करे ऐसा करो, यदि तुम्हारे मनमें "गुरुके ऊपर कोई प्रत्युपकार करना योग्य है" ऐसी इच्छा होय तो मेरी इस याचनाको पूर्ण करिये ॥ ३२ ॥ कहनेका प्रसंग आगया इस कारण मैंने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा है, अन्यत्र कहीं यह वृत्तान्त कहने

ततोऽहमाशया राम तव संबन्धकाङ्क्षया ॥ अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥ ३० ॥ ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन ॥ त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥३१॥ मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह ॥ गुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ॥३२॥ प्रसङ्गात्सर्वमप्युक्तं न वाच्यं कुत्रचिन्मया ॥ राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघूद्वह ॥३३॥ त्वामामन्त्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव ॥ अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि ॥३४॥ श्रुत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः ॥ गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यसि ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम् ॥ रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥३६॥ सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति ॥ निमित्तमात्रमेवाहं कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि ॥ ३७ ॥

योग्य नहीं है और मैं कहूँगाभी नहीं ऐसा विश्वास रक्खो, और हे रामचन्द्र ! आज मुझे दशरथराजाने तुम्हारे पास भेजा है, कारण यह है कि कल तुमको राज्याभिषेक करेंगे यह वार्त्ता कहनेकेलिये मैं आयाहूँ, इस कारण हे रामचन्द्र ! शास्त्रमें कही हुई रीतिके अनुसार तुम आज सीतासहित उपवास करो, पवित्र रहो, भूमिपर शयन करो, इन्द्रियोंको वशमें रक्खो, हे रामचन्द्र ! अब मैं राजाके समीप जाताहूँ, तुम प्रातःकाल आओगेही ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार कहकर वह राजगुरु वसिष्ठजी रथमें बैठकर वहासे तत्काल चलेगए. रामचन्द्रजीभी लक्ष्मणजीकी ओरको देखकर हँसते हंसते इसप्रकार बोले ॥ ३६ ॥ कि हे लक्ष्मण ! कल मुझको यौवराज्याभिषेक होगा, इस सम्पूर्ण चरित्रका मैं केवल निमित्तमात्र हूं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वास्तवमें सब कार्य करनेवाले और भोगनेवाले तुमही हो ॥ ३७ ॥ निःसन्देह तुम मेरे बाहरके प्राण हो अर्थात जिसप्रकार शरीरके भीतरके प्राण मुझको अत्यन्त प्रिय हैं तिसीप्रकार बाहर तुम अत्यन्त प्रिय हो. श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इसप्रकार वार्त्तालाप करके वसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार उसदिन व्रत धारण किया ॥ ३८ ॥ वसिष्ठजीनेभी राजा दशरथके समीप जाकर उनको कियाहुआ सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया. राजा दशरथने वसिष्ठजीके आगे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी वार्त्ता फिर चलाई ॥ ३९ ॥ उस समय नगरके एक पुरुषने वह वार्त्ता सुनली और जाकर रामचन्द्रजीकी माता जो कौसल्या तिससे और सुमित्रासे कह दी ॥ ४० ॥ तिस वार्त्ताको सुनकर दोनो रानियोंको बड़ा आनन्द हुआ, और उस कहनेवाले पुरुषको उत्तम हार पारितोषिक (इनाम) दिया, तदनन्तर तिस पुत्रकेविषे वात्सल्यभाव रखनेवाली कौसल्याने मनमें प्रस-

मम त्वं हि बहिःप्राणो नात्र कार्या विचारणा ॥ ततो वसिष्ठेन यथा भाषितं तत्तथाकरोत् ॥ ३८ ॥ वसिष्ठोऽपि नृपं गत्वा कृतं सर्वं न्यवेदयत् ॥ वसिष्ठस्य पुरोराज्ञा ह्युक्तं रामाभिषेचनम् ॥ ३९ ॥ यदा तदेव नगरे श्रुत्वा कश्चित्पुमान् जगौ ॥ कौसल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च ॥ ४० ॥ श्रुत्वा ते हर्षसंपूर्णे ददतुर्हारमुत्तमम् ॥ तस्मै ततः प्रीतमनाः कौसल्या पुत्रवत्सला ॥ ४१ ॥ लक्ष्मीं पर्यचरद्देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये ॥ सत्यवादी दशरथः करोत्येव प्रतिश्रुतम् ॥ ४२ ॥ कैकेयीवशगः किंतु कामुकः किं करिष्यति ॥ इति व्याकुलचित्ता सा दुर्गां देवीमपूजयत् ॥ ४३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवा दैवीं वाणीमचोदयन् ॥ गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः ॥ ४४ ॥ रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः ॥ मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम् ॥ ४५ ॥

न होकर श्रीरामचन्द्रजीका कार्य्य (राज्याभिषेक) सिद्ध होनेके निमित्त लक्ष्मी देवीका पूजन किया. राजा दशरथ सत्य बोलनेवाले हैं, जो प्रतिजा करते हैं उसके अनुसारही कार्य्य भी करतेहैं, ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ परन्तु कामी होनेके कारण किञ्चिन्मात्र कैकेयीके वशमें हैं इसकारण कोन जाने क्या करेंगे, ऐसा विचार करके कौसल्या मनमें व्याकुल हुई और संकट दूर करनेवाली दुर्गा देवीका पूजन किया ॥ ४३ ॥ इस अन्तरमेंही देवताओंने दिव्यरूप सरस्वतीको प्रेरणा करी कि हे देवि! प्रयत्नपूर्वक लोकमें अयोध्या नगरीमें जा और रामचन्द्रजीको जो राज्याभिषेक होनेवाला है उस कार्य्यमें ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार विघ्न कर. प्रथम मन्थराके शरीरमें प्रवेश कर तदन्तर कैकेयीके देहमेंभी प्रवेश कर ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे शुभकारिणि ! फिर विघ्नोंके प्रकट होतेही तू लौटकर स्वर्गलोकको आओ. वाग्देवता (सरस्वती) ने "तथास्तु-बहुत अच्छा" इसप्रकार कहकर वैसाही किया, अर्थात् उसने मन्थराके शरीरमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ वह कुबड़ी और कमर छाती तथा कण्ठ इन तीन स्थानोंमें टेढ़ी थी, वह मन्थरा उससमय राजमन्दिरके ऊपर चढ़ी, तो सम्पूर्ण नगर चारोंओर सजाहुआ देखा, जिधर तिधर सैंकड़ों बन्दनवारैंभी बँधीं थीं, पताकाओंसे उनकी अत्यन्तही शोभा होरही थी, सर्वत्र अनेक प्रकारके उत्सव होरहेथे, यह देखतेही मन्थराको बड़ा आश्चर्य्य प्रतीत हुआ और नीचे उतर आई ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ धाईसे बूझने लगी कि—हे मातः ! इस समय नगरके सजनेका क्या कारण है ? कौसल्या आज अनेक

ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ॥ तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम् ॥ ४६ ॥ सापि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत् ॥ नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलंकृतम् ॥ ४७ ॥ नानातोरणसंबाधं पताकाभिरलंकृतम् ॥ सर्वोत्सवसमायुक्तं विस्मिता पुनरागतम् ॥ ४८ ॥ धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलंकृतम् ॥ नानोत्सवसमायुक्ता कौसल्या चातिहर्षिता ॥ ४९ ॥ ददाति विप्रमुख्येभ्यो वस्त्राणि विविधानि च ॥ तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम् ॥ ५० ॥ श्वो भविष्यति तेनाद्य सर्वतोऽलंकृतं पुरम् ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरितं गत्वा कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५१ ॥ पर्यङ्कस्थां विशालाक्षीमेकान्ते पर्यवस्थिताम् ॥ किं शेषे दुर्भगे मूढे महद्भयमुपस्थितम् ॥ ५२ ॥ न जानीषेऽतिसौन्दर्यमानिनी मत्तगामिनी ॥ ५३ ॥ रामस्यानुग्रहाद्राज्ञः श्वोऽभिषेको भविष्यति ॥ तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय कैकेयी प्रियवादिनी ॥ ५४ ॥

प्रकारके उत्सव करनेमें तत्पर होकर परम प्रसन्न दीख रही है और श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नानाप्रकारके वस्त्र देरही है, यह वार्त्ता क्या है ? इसपर धाईने उससे कहा कि हे मन्थरे ! कल रामचन्द्रजीको राज्याभिषेक होयगा. इसकारण आज सम्पूर्ण नगर सजा है, यह सुनतेही मन्थराने एकान्तमें चुप्प पलँगपर लेटीहुई विशालनयना कैकेयीसे कहा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ कि हे हतभागिनी ! अरी मूर्ख ! क्या अबभी निश्चिन्त ही बैठी है, नहीं जानती कि बडे संकटका समय आपहुँचा, तू अपनेको अतिसुन्दर मानकर बड़े गर्व (घमण्ड) से चलती है, परन्तु तुझको अबभी सत्यवार्त्ता मालूम नहीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अरी ! राजा दशरथकी कृपासे कल रामचन्द्रजीको राज्याभिषेक होयगा, कैकेयीका कहना मधुर और स्वभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरल था, सो मन्थराकी यह वार्त्ता सुनतेही कैकेयीने एक साथ उठकर उसको महामोलका रत्नजडित सुवर्णकी पायजेवोंका जोड़ा पारितोषिक (इनाम) दिया और कहने लगी कि अरी मन्थरे! यह तो आनन्दकी वार्ता है, जिसपर भी तूं "बडे संकटका समय आपहुँचा" ऐसा मुझसे कहती है, इसमें क्या कारण है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ रामचन्द्रजीका भाषण तो बडा मधुर है, वह मुझे भरतकी अपेक्षासे अधिक प्रिय कार्य्य करनेवाला प्रतीत होताहै, कौसल्याको और मुझे दोनोंकोही वह एकसा मानताहै और एक भावकरकेही निरन्तर सेवा करता है ॥ ५६ ॥ अरी मूर्ख! रामचंद्रसे तुझे क्या भय प्राप्त हुआ है सो मुझसे कह. श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती! वाग्देवता (सरस्वती) का शरीरमें प्रवेश होनेके कारण उसके

तस्यै दिव्यं ददौ स्वर्णनूपुरं रत्नभूषितम् ॥ हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम् ॥ ५५ ॥ भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः ॥ कौसल्या मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम् ॥ ५६ ॥ रामाद्भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व मे ॥ तच्छ्रुत्वा विषसादाथ कुब्जा कारणवैरिणी ॥ ५७ ॥ शृणु मद्वचनं देवि यथार्थं ते महद्भयम् ॥ त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते ॥ ५८ ॥ कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन् ॥ कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम् ॥ ५९ ॥ मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम् ॥ भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम् ॥ ६० ॥ सुमित्रायाः समीचीनं भविष्यति न संशयः ॥ लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ॥ ६१ ॥

मनमें बड़ा वैरभाव उत्पन्न होरहाथा, सो इसप्रकार कैकेयीके कथनको सुनतेही उस मन्थराके चित्तमें बड़ा खेद हुआ, और कहने लगी कि—हे देवि! मेरे कहनेके ओर ध्यान दे, यह मैं यथार्थ कहती हूँ कि तुझे बड़े भारी संकटका समय आपहुँचा. राजा दशरथ तुझे सन्तुष्ट करनेके निमित्त मधुर वचन बोलते हैं, वास्तवमें वह कामी और असत्य बोलनेवाले हैं, तुझको केवल मधुर वचनोंमात्रसेही सन्तुष्ट करते हैं; और रामचन्द्रकी माता (कौसल्या) के बड़े २ कार्य्य करते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ यह संकेत मनमें विचार करही उन्होंने तेरे पुत्रको (मामाके यहां) भेज दिया है. हे कैकेयि! छोटे भ्राताकरके सहित भरतको मामाके यहाँ भेजनेका कारण यहही है ॥ ६० ॥ और सुमित्राका कार्य्य तो निःसन्देह ठीक होजा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यगा, क्योंकि लक्ष्मण सदा रामचन्द्रजीके चित्तके अनुसार वर्त्ताव करता है, सो उनको तो राज्यका उपभोग मिलेगाही ॥ ६१ ॥ केवल भरतकीही इसमें दुर्दशा होयगी, या तो उनको रामचन्द्रजीके सामने सेवककी समान रहना पड़ैगा अथवा नगरसे बाहर जाना पड़ैगा अथवा शीघ्रही प्राणोंका त्याग करना पड़ैगा ॥ ६२ ॥ तुझे तो दासीके समान नित्य सेवा करनीही पड़ैगी, सपत्नीसे प्राप्त हुए अपमानको सहनेकी अपेक्षासे तो मरण होजाय तो श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ इसकारण तू आजही शीघ्र यह यत्न कर कि भरतको राज्याभिषेक होवे और रामचन्द्रको नौ और पाँच (चौदह) वर्ष पर्य्यन्त वनवास होवे ॥ ६४ ॥ हे देवि ! ऐसा होयगा तबही तेरा पुत्र भरत निर्भयपदको प्राप्त होयगा, इसका उपाय मैंने पहिलेही विचार रक्खा है

भरतो राघवस्याग्रे किंकरो वा भविष्यति ॥ विवास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हाप्यतेऽचिरात् ॥ ६२ ॥ त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि ॥ ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ॥ ६३ ॥ अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने ॥ रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पञ्च च ॥ ६४ ॥ ततो रूढोऽभये पुत्रस्तव राज्ञि भविष्यति ॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि पूर्वमेव सुनिश्चितम् ॥ ६५ ॥ पुरा देवासुरे युद्धे राजा दशरथः स्वयम् ॥ इन्द्रेण याचितो धन्वी सहायार्थं महारथः ॥ ६६ ॥ जगाम सेनया सार्धं त्वया सह शुभानने ॥ युद्धं प्रकुर्व तस्तस्य राक्षसैः सह धन्विनः ॥ ६७ ॥ तदाक्षकीलो न्यपतच्छिन्नस्तस्य न वेद सः ॥ त्वं तु हस्तं समावेश्य कीलरन्ध्रेऽतिधैर्यतः ॥ ६८ ॥ स्थितवत्यसितापाङ्गी पतिप्राणपरीप्सया ॥ ततो हत्त्वाऽसुरान्सर्वान् ददर्श त्वामरिंदमः ॥ ६९ ॥

सो कहती हूँ ॥ ६५ ॥ पूर्वकालमें देवताओंका और दैत्योंका युद्ध हो रहा था, उस समय इन्द्रने राजा दशरथको सहाय करनेके निमित्त बुलायाथा. क्योंकि यह धनुर्धारी और महाशूर प्रसिद्ध हैं ॥ ६६ ॥ उस समय राजा तुझको साथ लेकर बडे सेनादलके साथ गयेथे. हे सुन्दरमुखवाली ! धनुर्धारी महाराज दशरथ राक्षसोंसे युद्ध करनेमें तत्पर होगए ॥ ६७ ॥ इधर रथके धुरेकी कील टूट कर गिर पड़ी यह वार्त्ता महाराजको नहीं मालूम हुई परन्तु तैने उसको देखा और बड़े धीरजसे उस कीलके छिद्रमें हाथ ड़ालकर बैठ गई ॥ ६८ ॥ हे कैकेयी ! उससमय तेरे नेत्रोंके कोए कृष्णवर्ण होगए. यद्यपि तुझसरीखी कोमल स्त्रियोंको यह कार्य्य करना महाकठिन है, परन्तु तैने पतिके प्राण बचानेके निमित्त ऐसा किया. शत्रुओंका नाश करनेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा दशरथने सम्पूर्ण दैत्योंका नाश किया, तदनन्तर उनकी दृष्टी तेरी ओरको पड़ी, ॥ ६९ ॥ उस समयकी तेरी दशा और कार्य्यको देखतेही उनको बडा आश्चर्य्य और आनन्द हुआ, उन्होने तुझे आलिङ्गन करके कहा कि—हे प्रिये ! तेरे मनमें जो अभिलाषा हो सो वर माँग मैं वर देनेको समर्थ हूँ ॥ ७० ॥ "दो वर माँग ले" ऐसा महाराजने अपने आप कहा, तब तैंने वरदान देनेमें समर्थ जो राजा दशरथ तिनसे कहा कि—हे महाराज ! यदि मुझे आपने दो वर दिये हैं तो वह वर बहुतकालपर्यन्त आपके पासही धरोहड़ रक्खे रहैं, हे निष्पाप ! हे महाराज ! जब मैं माँगू तब आप मुझे तत्काल दे दैं, यह मेरी प्रार्थना है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ राजाने इस वार्त्ताको स्वीकार कर लिया, और कहा कि—हे पतिव्रते ! अब संग्राममेंसे मन्दिर

आश्चर्यं परमं लेभे त्वामालिङ्ग्य मुदान्वितः ॥ वृणीष्व यत्ते मनसि वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥ ७० ॥ वरद्वयं वृणीष्व त्वमेवं राजाऽवदत्स्वयम् ॥ त्वयोक्तो वरदो राजन्यदि दत्तं वरद्वयम् ॥ ७१ ॥ त्वय्येव तिष्ठतु चिरं न्यासभूतं ममानघ ॥ यदा मेऽवसरो भूयात्तदा देहि वरद्वयम् ॥ ७२ ॥ तथेत्युक्त्वा स्वयं राजा मन्दिरं व्रज सुव्रते ॥ त्वत्तः श्रुतं मया पूर्वमिदानीं स्मृतिमागतम् ॥ ७३ ॥ अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता ॥ विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च ॥ भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि ॥ ७४ ॥ यावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते ॥ श्रुत्वा त्रिवक्रयोक्तं तत्तदा केकयनन्दिनी ॥ ७५ ॥ तथ्यमेवाखिलं मेने दुःसङ्गहतविभ्रमा ॥ तामाह कैकयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ ७६ ॥ एवं त्वां बुद्धिसंपन्नां न जाने वक्रसुन्दरीम् ॥ भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः ॥ ७७ ॥

(शिबिर) को जाओ. सो हे कैकेयी ! यह वृत्तान्त मैंने पहिले तुझसे सुनाथा वह मुझे अब याद आगया ॥ ७३ ॥ इसकारण अब शीघ्र क्रोधमें होकर और सम्पूर्ण आभूषणोंको उतारकर तथा इधर उधर ड़ालकर कोपभवनमें चलीजा ॥ ७४ ॥ और भूमिपर शयन कर, जबतक सत्य प्रतिज्ञाकरके तेरा इच्छित कार्य्य करै तबतक मौनपड़ी रह ॥ ७५ ॥ शिवजी बोले कि हे पार्वति ! तिस दुष्टाकी सङ्गतिसे कैकेयीकी बुद्धि चलायमान होगई, तिस कुबडीने जो जो वार्त्ता कही वह सब कैकेयीको सत्यही मालूम हुआ ॥ ७६ ॥ और अब कैकैयीके मनमें दुष्टभाव छागया, और मन्थरासे कहने लगी कि अरी मन्थरे ! तुझे ऐसी बुद्धि कहाँसे आई, वास्तवमें तो तू टेडी बेडी है, परन्तु इससमय मुझे बड़ी सुन्दर लगती है, मुझे नहीं मालूम था कि तुझमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी बुद्धि है ॥ ७७ ॥ मेरा प्रियपुत्र भरत यदि राजा होयगा तो मैं तुझे सौ ग्राम इनाम देउंगी, तू मुझे प्राणोंके समान अत्यन्त प्यारी लागति है ॥ ७८ ॥ इतना कहकर कैकेयी एकसाथ क्रोधमें भरगई, शरीरपैके सम्पूर्ण आभूषण उतारकर क्रोधसे चारोंओरको अस्तव्यस्त फेकदिये ॥ ७९ ॥ भूमिपर लोटकर उसने अपना शरीर मलिन कर लिया, फटे, मैले वस्त्र धारण कर लिये और मन्थरासे कहने लगी कि—अरी मन्थरे ! कुब्जे ! वक्रे ! मेरी प्रतिज्ञाको सुन. रामचन्द्रके वनको जानेपर्य्यन्त मैं ऐसीही पड़ी रहूंगी, अथवा अपने प्राणोंको त्याग दूँगी, यह मेरा निश्चय है, और तू मेरा हित चाहनेवाली है, तेरा भला होवे कैकेयीके इसप्रकार कहनेके नन्तर कुबड़ी (मन्थरा) अपने घरको चलीगई और कैकेयीने वैसाही वर्त्ताव करना प्रारम्भ किया ॥ ८० ॥ ८१ ॥ शिवजी बोले कि—हे पार्वति ! दुष्टोंके संगका परिणाम कैसा भयंकर होता है देखो मनुष्य कितनाही गम्भीर हो,

ग्रामान् शतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा ॥ इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा ॥ ७८ ॥ विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समन्ततः ॥ भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी ॥ ७९ ॥ प्रोवाच शृणु मे कुब्जे यावद्रामो वनं व्रजेत् ॥ प्राणांस्त्यक्ष्येऽथ वा वक्रे शयिष्ये तावदेव हि ॥ ८० ॥ निश्चयं कुरु कल्याणि कल्याणं ते भविष्यति ॥ इत्युक्ता प्रययौ कुब्जा गृहं साऽपि तथाऽकरोत् ॥ ८१ ॥ धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सुगुणाचारान्वितो वाऽथवा नीतिज्ञो विधिवाददेशिकपरो विद्याविवेकोऽथवा ॥ दुष्टानामतिपापभावितधियां सङ्गं सदा चेद्व्रजेत्तद्बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्साम्यं क्रमेण स्फुटम् ॥ ८२ ॥ अतः सङ्गः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि ॥ दुःसङ्गी च्यवते स्वार्थाद्यथैयं राजकन्यका ॥ ८३ ॥ इति श्रीमदध्या०उमामहे०अयोध्याकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अत्यन्त दयालु हो, सुन्दर गुण और आचारकरके युक्त हो, नीतिशास्त्रमें चतुर हो, शास्त्रोपदेश करनेवाले गुरुकी सेवामें तत्पर हो और अधिक क्या कहैं यदि ब्रह्मविद्याका विचार करनेवाला हो, तोभी वह यदि दुष्टोंका नित्य समागम रक्खै तो उस दुष्टकी बुद्धिपर पापोंका अधिक संस्कार होनेके कारण उसकी बुद्धिके सम्पर्कसे देखो उस श्रेष्ठ पुरुषकी बुद्धिभी नष्ट होजाती है, और धीरे धीरे वह पुरुष उसके समान दुष्ट बनजाता है, यह वार्त्ता कैकेयी और मन्थराके उदाहरणसे प्रकटही है ॥ ८२ ॥ इसकारण दुष्टोंका संग बिलकुल त्याग देवे, यह राजकन्या कैकेयी, वास्तवमें सुशील होकरभी दुष्ट मन्थराके समागमसे बिगड़गई; तिसीप्रकार दुष्टोंका संग करनेवाला पुरुष कुकर्ममें फँस जाताहै और अपने कार्य्यसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भ्रष्ट होजाता है, जैसे कैकेयी स्थिति होगई ॥ ८३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकासहितो द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि—हे पार्वति ! इधर राजा दशरथ रामचन्द्रजीके अभिषेकके कारणसे उत्सव करनेके निमित्त मन्त्रियोंको और प्रजाओंको आज्ञा देकर प्रसन्न होते हुए राजमन्दिरमें आए ॥ १ ॥ तहाँ उनकी प्रिया कैकेयी कहीं नहीं दीखी, तिससे विव्हल होकर राजा दशरथ विचारने लगे कि यह क्या वार्त्ता है जो सुन्दरी राजमन्दिरमें मेरे प्रवेश करनेही सदा हँसती हँसती सामने आतीथी, वह आज नहीं दीखती इसका क्या कारण है, इसप्रकार अपने आप चिन्ताकरके राजा मनमें बड़ा खिन्न हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥ कैकेयीकी अनेक दासी राजमन्दिरमें चिन्तामें खड़ीथीं, उनसे

॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् ॥ आदिश्य मन्त्रिप्रकृतीः सानन्दो गृहमाविशत् ॥ १ ॥ तत्रादृष्ट्वा प्रियां राजा किमेतदिति विह्वलः ॥ या पुरा मन्दिरं तस्याः प्रविष्टे मयि शोभना ॥ २ ॥ हसन्ती मामुपायाति सा किं नैवाद्य दृश्यते ॥ इत्यात्मन्येव संचिन्त्य मनसाऽतिविदूयता ॥ ३ ॥ प्रपच्छ दासीनिकरं कुतो वः स्वामिनी शुभा ॥ नायाति मां यथापूर्वं मत्प्रिया प्रियदर्शना ॥ ४ ॥ ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे ॥ कारणं तत्र देव त्वं गत्वा निश्चेतुमर्हसि ॥ ५ ॥ इत्युक्तो भयसंत्रस्तो राजा तस्याः समीपगः ॥ उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन्वै पाणिनाब्रवीत् ॥ ६ ॥ किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यङ्कादीन् विहाय च ॥ मां त्वं खेदयसे भीरु यतो मां नावभाषसे ॥ ७ ॥

महाराज दशरथने पूछा कि—हे दासियों ! जिसको देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द होताथा वह मेरी प्रिया और तुम्हारी सुशीला स्वामिनी पहिलेके समान आज मेरे पास क्यों नहीं आती है ॥ ४ ॥ वह दासियें बोलीं कि—हे महाराज ! वह कोपभवनमें गई है, इसका कारण क्या है सो हमें मालूम नहीं, आप अपने जाकर इसका निश्चय करलीजिये ॥ ५ ॥ इस प्रकार दासियोंने कहा तब राजा बड़े भयभीत हुए और कैकेयीके समीप जाकर बैठे और धीरे धीरे उसके शरीरपै हाथ फेरवते हुए बोले ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! तू पलंग और आसन आदि सबको छोड़कर भूमिपर क्यों लोटरही है, अरी डरपोक ! तू मुझसे बोलती भी नहीं इससे मुझे बड़ा खेद होता है, इस तेरे आचरणमें क्या कारण है सो प्रतीत नहीं होता ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आभूषण क्यों फेंकदिये हैं ? और मलीन वस्त्र धारण करके पृथ्वीपर क्यौं लोट रही है ? तुझको क्या होगया सो तो मुझसे कह तेरे मनमें होयगा सो सब करूंगा ॥ ८ ॥ तेरा अपकार करनेवाला पुरुष हो अथवा स्त्री हो तो मैं उसको दण्ड दूँगा अथवा उसको मरवादूँगा, इसको तू निश्चय जान ॥ ९ ॥ हे देवि ! तेरे मनको जिससे सन्तोष होय वह बात मेरे सामने अवश्य कह, क्यों हो वह कितनीही दुर्लभ हो तोभी मैं अभी क्षणभरमें सिद्ध करदूंगा ॥ १० ॥ तू मेरे मनको जानती है, तेरा मेरे ऊपर प्रेम है, मैंभी तेरे अत्यन्त वशमें हूं, यह जानकरभी तू मुझे खेद देती है यह तेरा वृथा परिश्रम है ॥ ११ ॥ कौनसे दरिद्री मनुष्यको जिसने तेरे मनके समान कार्य्य किया हो तिसको धनवान् करूं अथवा कौनसे धनवान् पुरुष-

अलङ्कारं परित्यज्य भूमौ मलिनवाससा ॥ किमर्थं ब्रूहि सकलं विधास्ये तव वाञ्छितम् ॥ ८ ॥ को वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥ स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥ ब्रूहि देवि यथा प्रीतिस्तदवश्यं ममाग्रतः ॥ तदिदानीं साधयिष्ये सुदुर्लभमपि क्षणात् ॥ १० ॥ जानासि त्वं मम स्वान्तं प्रियं मा स्ववशे स्थितम् ॥ तथापि मा खेदयसे वृथा तव परिश्रमः ॥ ११ ॥ ब्रूहि कं धनिनं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियंकरम् ॥ धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम् ॥ १२ ॥ ब्रूहि कं वा वधिष्यामि वधार्हो वा विमोक्ष्यते ॥ किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान्दास्यामि ते प्रिये ॥ १३ ॥ मम प्राणात्प्रियतरो रामो राजीवलोचनः ॥ तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम् ॥ १४ ॥ इति ब्रुवाणं राजानं शपन्तं राघवोपरि ॥ शनैर्विस्मृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत ॥ १५ ॥ यदि सत्य-प्रतिज्ञोऽसि शपथं कुरुषे यदि ॥ याच्ञां मे सफला कर्तुं शीघ्रमेव त्वमर्हसि ॥ १६ ॥

को जिसने तेरा अपकार किया हो उसको दरिद्री करूं ॥ १२ ॥ किसपुरुषको मारूं अथवा किस मरवाने योग्य अपराधीको छोडदूं, सो बतला, मैं वैसाही करूंगा, अधिक क्या कहूं. हे प्रिये ! यदि चाहिये तो मैं तेरे निमित्त प्राणभी दे दूं ॥ १३ ॥ कमलनयन रामचन्द्र मुझे प्राणोंसेभी अधिक प्रिय है मैं उसकी शपथ करके तुझसे कहताहूं, कि जिसमें तेरा हित होय मैं वही कार्य्य करूंगा, परन्तु तू जरा कह दे ॥ १४ ॥ रामचन्द्रकी शपथ करके कहता हूं ऐसा राजा कह रहेहैं, यह देखकर कैकेयीने अपने नेत्र पूंछे और धीरेधीरे बोलनेका प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥ कि हे महाराज ! यदि प्रतिज्ञा सत्य करनेका तुम्हारा व्रत है और यदि शपथ करते हो तो मेरी याचनाको शीघ्रही सफल (पूर्ण) करो ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वकालमें देवता और दैत्योंके युद्धमें मैंने आपका रक्षण कियाथा, तिस समय आपने चित्तमें प्रसन्न होकर मुझको दो वर दियेथे ॥ १७ ॥ वह दोनों वर मैंने तुम्हारे पास धरोहड़की समान रखदिये थे, क्योंकि मुझको पूर्ण विश्वास था और है कि आपका दृढ़ व्रत हैं अर्थात् एकवार देदिया सो देदिया यह आपका व्रत है, सो उन दोनोंमेंसे मैं एक वर मांगकर यह मांगती हूं कि मेरे प्रिय पुत्र भरतको शीघ्रही इस इकट्ठी करी हुई सामग्रीसे यौवराज्य (बली अहदी) का अभिषेक करो, और दूसरा वर यह मांगती हूं कि रामचन्द्र शीघ्रही दण्डकारण्यमें जाय ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह मुनिका वेष धारण करके अपने शरीरको शोभित करैं, जटा और वल्कलके आभूषण पहिनैं, और कन्द मूल फल खाकर चौदह १४ वर्ष वहां व्यतीत करैं ॥ २० ॥ वह फेर चौदह वर्षके अनन्तर आवैं, अथवा तहांसे आनेकी इच्छा नहीं होयतो खुशीसे वनमें रहैं, कल प्रातःकाल कमलनयन रामच-

पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः ॥ तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा ॥ १७ ॥ तद्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत ॥ तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम् ॥ १८ ॥ एभिः संभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय ॥ अपरेण वरेणाशु रामो गच्छतु दण्डकान् ॥ १९ ॥ मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः ॥ चतुर्दश समास्तत्र कन्दमूलफलाशनः ॥ २० ॥ पुनरायातु तस्यान्ते वने वा तिष्ठतु स्वयम् ॥ प्रभाते गच्छतु वनं रामो राजीवलोचनः ॥ २१ ॥ यदि किंचिद्विलम्बेत प्राणांस्त्यक्ष्ये तवाग्रतः ॥ भव सत्यप्रतिज्ञस्त्वमेतदेव मम प्रियम् ॥ २२ ॥ श्रुत्वैतद्दारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम् ॥ निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः ॥ २३ ॥ शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया ॥ दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तविभ्रमः ॥ २४ ॥ इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् ॥ किमिदं भाषसे भद्रे मम प्राणहरं वचः ॥ २५ ॥

न्द्रको वनमें जाना चाहिये ॥ २१ ॥ यदि उन्होने जानेमें कुछभी विलम्ब किया तो मैं आपके आगे प्राण त्याग दूंगी आप अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करिये, यही मेरी खुशी है ॥ २२ ॥ कैकेयीके इन कठोर वाक्योंको सुनतेही राजा दशरथके शरीरपर रोमाञ्च खड़े होगए और जिसप्रकार वज्रका प्रहार लगनेसे पर्वत गिरपड़ताहै तिसीप्रकार राजा दशरथ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ २३ ॥ कुछ कालके अनन्तर होसमें होकर राजाने धीरे धीरे नेत्र खोले. अपने नेत्रोंमें आंसू आएहुए देखकर, बडेभयभीत होकर आंसू पूंछे उससमय राजाको ऐसा प्रतीत होने लगाकि क्या मैंने कोई इससमय खोटा स्वप्न देखा है ! ओहो मैं खूब जाग रहाहूं, कहीं मेरे चित्तमें भ्रम तो नहीं होरहा है ॥ २४ ॥ ऐसा विचार मनमें कररहाथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि इतनेहीमें व्याघ्रीकी समान आगे स्थित रानीपर राजाकी दृष्टि गई, तब उससे बोले कि—अरी कैकेयी ! तू सुशील होकर यह ऐसे वचन क्यों कहती है; इससे मेरे प्राण जातें रहेंगे ॥ २५ ॥ कमलनयन रामचन्द्रने तेरा कौनसा अपराध किया है ? तू तो मेरे आगे रामचन्द्रके रमणीय गुण वर्णन किया करतीथी, ॥ २६ ॥ कौसल्या और मुझे दोनोको एक समान मानकर रामचन्द्र मेरी नित्य सेवा करता है, ऐसा पहिले तूही कहतीथी, और अब उलटी बातैं करती है ॥ २७ ॥ तू अपने पुत्रको राज्य ले, परन्तु रामचन्द्रको घरहीमें रहनेदे, इतनी मुझपर कृपाकर, हे सुन्दरी ! रामचन्द्रजीसे तू किसी प्रकारका भय मत करो ॥ २८ ॥ इसप्रकार कहते हुए राजा दशरथके नेत्रोंमेंसे आंसुओंकी धारा वह रहीथी और दुःखित होकर कैकेयीके चरणोंमें गिरपड़ा, परन्तु कैकेयीको दया नहीं आई, और उलटा उसने अपने नेत्रोंको लाल लाल करके राजाको उत्तर दिया कि ॥ २९ ॥

रामः कमपराधं ते कृतवान्कमलेक्षणः ॥ ममाग्रे राघवगुणान्वर्णयस्यनिशं शुभान् ॥ २६ ॥ कौसल्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषां कुरुते सदा ॥ इति ब्रूवन्ती त्वं पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा ॥ २७ ॥ राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे ॥ अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुपरीताक्षः पादयोर्निपपात ह ॥ कैकेयी प्रत्युवाचेदं साऽपि रक्तान्तलोचना ॥ २९ ॥ राजेन्द्र किं त्वं भ्रान्तोऽसि उक्तं तद्भाषसेऽन्यथा ॥ मिथ्या करोषि चेत्स्वीयं भाषितं नरको भवेत् ॥ ३० ॥ वनं न गच्छेद्यदि रामचन्द्रः प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्तः ॥ उद्बंन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाहम् ॥ ३१ ॥ सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु ॥ रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि ॥ ३२ ॥

हे महाराजाधिराज ! क्या आपको कुछ भ्रम होगया है, जो पहिले वचन दिये और अब लौटे जातेहो, यदि अपनी प्रतिज्ञाको असत्य करोंगे तो तुम्हें नरकमें जाना पड़ैगा ॥ ३० ॥ कल प्रातः यदि रामचन्द्र कृष्णाजिन (कृष्णमृगका चर्म्म) और वल्कल अंगपर धारण करके वनको नहीं जायंगे तौ मैं अपने गलेमें फांसी लगाकर अथवा विष खाकर तुह्मारे सामने प्राणोंको त्याग दूंगी ॥ ३१ ॥ इस लोकमें सभामें अपनेको, मैं सत्यप्रतिज्ञा करनेवाला हूं ऐसा कहकर बात मारतेहो, तुमने अबहीं मेरा इच्छित कार्य्य करनेके लिये रामचन्द्रकी शपथ उठाई है और थोडा काल वीताही नहीं वह अपनी प्रतिज्ञा असत्य करनेको तयार होगए, तिससे अब यह तुह्मारे लिये नरकका मार्ग है, और क्या कहूं ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रिय स्त्रीने जब इसप्रकार कहा, तब राजा दशरथ दीन होकर दुःखके समुद्रमें मग्न होगए और मूर्छा आगई, तथा मृतककी समान अचेतन होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ३३ ॥ ऐसे दुःखके कारण उनको वह रात्रि पूरे वर्षभरकी समान मालूम पडी, अरुणोदय होनेके समय गानेवाले स्तुतिपाठक (भाट) गाने लगे ॥ ३४ ॥ परन्तु कैकेयीको क्रोध आरहाथा, इसकारण उसने उन सबका गाना बन्द करदिया, तदनन्तर प्रातःकालके समय बीचकी ड्यौढीपर लोग जमा होने लगे ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ऋषि, कन्या, छत्र, चामर, दिव्य हत्ती, घोडा तथा नगरकी मुख्य वेश्याएँ, नगरके पुरुष और अन्य देशोंके रहनेवाले पुरुषभी आए. जैसी वसिष्ठ मुनिने आज्ञा दी थी उसके अनुसार सब यथास्थित तयारी

इत्युक्तः प्रियया दीनो मग्नो दुःखार्णवे नृपः ॥ मूर्छितः पतितो भूमौ विसंज्ञो मृतको यथा ॥ ३३ ॥ एवं रात्रिर्गता तस्य दुःखात्सं वत्सरोपमा ॥ अरुणोदयकाले तु बन्दिनो गायका जगुः ॥ ३४ ॥ निवारयित्वा तान् सर्वान्कैकेयी रोषमास्थिता ॥ ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा ॥ छत्रं च चामरं दिव्यं गजो वाजी तथैव च ॥ ३६ ॥ अन्याश्च वारमुख्या याः पौरजानपदास्तथा ॥ वसिष्ठेन यथाऽऽज्ञप्तं तत्सर्वं तत्र संस्थितम् ॥ ३७ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे ॥ कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ॥ ३८ ॥ सर्वाभरणसंपन्नं किरीटकटकोज्वलम् ॥ कौस्तुभाभरणं श्यामं कन्दर्पशतसुन्दरम् ॥ ३९ ॥ अभिषिक्तं समायातं गजारूढं स्मिताननम् ॥ श्वेतच्छत्रधरं तत्र लक्ष्मणं लक्षणान्वितम् ॥ ४० ॥ रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् ॥ इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः ॥ ४१ ॥

होगई ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ स्त्री बालक और वृद्ध किसीको भी रात्रिमें निद्रा नहीं आई, क्योंकि सबको ऐसी उत्सुकता होरहीथी कि पीताम्बरधारी रामचन्द्र हमारे दृष्टिगोचर कब होंगे ॥ ३८ ॥ सबका रामचन्द्रकेविषे एकसा ध्यान लगरहाथा, कि शरीरपर सम्पूर्ण आभूषण, मस्तकपर मुकुट और हाथोंमें कड़े धारण करेहुए, तेजके समूहके समान दीखतेहुए कण्ठमें कौस्तुभ मणिकी समान आभूषण धारण कियेहुए, मेघके समान श्यामवर्ण, सैंकड़ों कामदेवके समान सुन्दर, राज्याभिषेकको प्राप्त होकर, मुसकुरानयुक्त, हाथीपर आतेहुए श्रीरामचन्द्रजीको और हाथमें श्वेत चमर लेकर उनके समीपमें खडेहुए सुलक्षणोंकरके युक्त लक्ष्मणजीको कब देखेंगे और कब प्रभात होगा, सम्पूर्ण नगरके निवासी इसप्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कार उत्सुक होरहेथे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इस समयपर्य्यन्त महाराज शयन करके क्यों नहीं उठे, ऐसी चिन्ता करताहुआ, सुमन्त्र मन्त्री धीरे २ जहाँ राजा दशरथ थे तहाँ गया ॥ ४२ ॥ और जयजयकार करके राजा दजरथको शिरसे प्रणाम किया; परन्तु राजा अत्यन्त खिन्न दीख रहेथे, इसकारण सुमन्त्रने कैकेयीसे पूँछा ॥ ४३ ॥ कि हे राजरानी कैकेयी ! तुम्हारा उत्कर्ष (जय) होय, महाराज आज रोजकी समान नहीं दीखतेहैं, दुःखीसे दीखतेहैं, इसमें क्या कारण है, ? कैकेयी बोली कि महाराजको रात्रिभर निद्रा नहीं आई ॥ ४४ ॥ और "राम, राम, राम" ऐसा कहकर उनकाही चिन्तन करतेरहे, इस कारण जागनेसे उनका चित्त अस्वस्थसा प्रतीत होता है, सो तू रामचन्द्रको शीघ्रही यहाँ लिवाकर ला, महारा-

नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन् ॥ सुमन्त्रः शनकैः प्रायाद्यत्र राजाऽवतिष्ठते ॥ ४२ ॥ वर्धयन् जयशब्देन प्रणमन्शिरसा नृपम् ॥ अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत ॥ ४३ ॥ देवि कैकेयि वर्धस्व किं राजा दृश्यतेऽन्यथा ॥ तमाह कैकयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ॥ ४४ ॥ राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ॥ प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते ॥ राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ॥ ४५ ॥ सुमन्त्र उवाच ॥ अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि ॥ तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् ॥ इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा सुमन्त्रो राममन्दिरम् ॥ ४७ ॥ अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत् ॥ शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ॥ ४८ ॥ पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥ इत्युक्तो रथमारुह्य संभ्रमात्त्वरितो ययौ॥४९॥रामः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ मध्यकक्षे वसिष्ठादीन् पश्यन्नेवत्वरान्वितः ॥५०॥

जकी उनको देखनेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥ सुमन्त्र बोला कि हे देवि ! महाराजकी आज्ञाके विना मैं किसप्रकार जाऊँ, यह मन्त्रीका कहना सुनकर उससे राजा दशरथजी बोले कि ॥ ४६ ॥ हे सुमन्त्र ! रामचन्द्रकी सुन्दरमूर्ति देखनेको मेरी इच्छा होरही है, तू उनको शीघ्रही लिवाकरला. ऐसी आज्ञा होतेही सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें गया, तहाँ जानेका उसको निषेध नहीं था, सो शीघ्रतासे तहाँ पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा कि हे कमलनेत्र रामचन्द्र ! तुम्हारा कल्याण होय, मेरे साथ शीघ्रही पिताके मन्दिरमें चलिये, महाराजको तुम्हारे देखनेकी इच्छा हुई है, सुमन्त्रके इसप्रकार कहतेही रामचन्द्र रथमें बैठकर शीघ्रतासे चलदिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ साथमें सारथि और लक्ष्मण यह दोनो चले,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजमन्दिरके बीचकी ड्यौढ़ीमें वसिष्ठ आदि ऋषिसमूह स्थित था, यह पहिले कहाही है, उनकी ओरको देखते हुए (वार्त्तालाप न करके) श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही पिताके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करतेहुये, राजा दशरथ रामचन्द्रजीको हृदयसे लगानेके निमित्त उठकर खड़ेही रहे, ॥ ५० ॥ ५१ ॥ हे रामचन्द्र ! इसप्रकार कहकर उन्होंने अपनी भुजा फैलाई, परन्तु दुःखसे बीचमेंही पडगया. रामचन्द्रजीने हा ! हा ! ! इसप्रकार कहकर राजाको हृदयसे लगाकर गोदीमें लिटाया ॥ ५२ ॥ राजा दशरथ मूर्छित होकर गिर पड़े ऐसा देखकर सम्पूर्ण रणवासकी स्त्रियें रोदन करनेलगीं; रुदन क्यौं होरहा है ? इसका निश्चय करनेको वसिष्ठजीभी भीतर आये ॥ ५३ ॥ रामचन्द्रजीने पूछा कि, यह है क्या ? राजाको दुःख काहेसे

पितुः समीपं संगम्य ननाम चरणौ पितुः ॥ राममालिङ्गितुं राजा समुत्थाय ससंभ्रमः ॥ ५१ ॥ बाहू प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह ॥ हाहेति रामस्तच्छीघ्रमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥ ५२ ॥ राजानं मूर्छितं दृष्ट्वा चुक्रुशुः सर्वयोषितः ॥ किमर्थं रोदनमिति वसिष्ठोऽपि समाविशत् ॥ ५३ ॥ रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम् ॥ एवं पृच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत् ॥ ५४ ॥ त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखोपशान्तये ॥ किंचित्कार्यं त्वया राम कर्तव्यं नृपतेर्हितम् ॥ ५५ ॥ कुरु सत्यप्रतिज्ञस्त्वं राजानं सत्यवादिनम् ॥ राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम संतुष्टचेतसा ॥ ५६ ॥ त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वा लज्जते नृपः ॥ सत्यपाशेन संबद्धं पितरं त्रातुमर्हसि ॥ ५७ ॥ पुत्रशब्देन चैतद्धि नरकात्त्रायते पिता ॥ रामस्तयोदितं श्रुत्वा शूलेनाभिहतो यथा ॥ ५८ ॥

हुआ ? इस प्रकार रामचन्द्रजीके पूछनेपर कैकेयी रामचन्द्रजीसे बोली ॥ ५४ ॥ कि हे रामचन्द्र ! इस सम्पूर्णवार्त्ताका कारण तूही है यह दुःख दूर होनेकेलिये महाराजका हितकारक एक छोटासा कार्य्य तुझको करना चाहिये ॥ ५५ ॥ अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करना यह तुम्हारा व्रत है, तैसेही तुम महाराजकोभी अपना वचन सत्य करनेमें सहायता करो. पहिले एकसमय महाराजने चित्तमें प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिये थे ॥ ५६ ॥ उनको परिपूर्ण करना सर्वथा तुम्हारे अधीन है, महाराजको तो तुमसे ऐसा कहते लज्जा लगती है. सत्यरूपी फाँसीसे बँधेहुए अपने पिताका तुम रक्षण करो, यह मुझे योग्य मालूम होताहै ॥ ५७ ॥ पुत्रशब्दका अर्थ तो यह ही है कि वह पुन्नाम नरकसे पिताका रक्षण करताहै. कैकेयीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन वाक्योंको सुनतेही रामचन्द्रजी वज्रका प्रहार लगनेके समान पीडित हुए, और कैकेयीसे बोले कि हे मातः ! तू मुझसे यह क्या बात कहतीहै. मेरा तो ऐसा निश्चय है कि मैं पिताके निमित्त प्राणोंको भी देदूँगा अथवा भयंकर विषभी पान करलूँगा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ सीताका तो क्या है कौसल्यामाताकाभी त्याग करदूँगा; राज्य तो मैं अबही त्याग दूँगा. उत्तम पुत्र उसको ही कहते हैं, कि जो आज्ञा मिलनेके पहिलेही पिताकी इच्छाको जानकर उनके अनुसार कार्य्य करै ॥ ६० ॥ पिताके आज्ञा करनेपर जो उनका कार्य्य करता है उसको 'मध्यमश्रेणीका' पुत्र कहतेहैं, कार्य्य करनेके निमित्त पिताके आज्ञा करनेपरभी जो कार्य्य नहीं करता है, उस पुत्रको केवल 'मल' कहते हैं, अर्थात् उसको 'पुत्र' यह नाम शोभा नहीं देता, वह केवल माता और पिताके शरीर मलका एक गोला उत्पन्न हुआ है ॥ ६१ ॥ इसकारण मेरे पिताजी मुझे जो कार्य्य करनेको

व्यथितः कैकयीं प्राह किं मामेवं प्रभाषसे ॥ पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम् ॥ ५९ ॥ सीतां त्यक्ष्येऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम् ॥ अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः ॥ ६० ॥ उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः ॥ उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते ॥ ६१ ॥ अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम ॥ सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ ६२ ॥ इति रामप्रतिज्ञां सा श्रुत्वा वक्तुं प्रचक्रमे ॥ राम त्वदभिषेकार्थं संभाराः संभृताश्च ये ॥ ६३ ॥ तैरेव भरतोऽवश्यमभिषेच्यः प्रियो मम ॥ अपरेण वरेणाशु चीरवासा जटाधरः ॥ ६४ ॥

कहैंगे, अथवा कहचुके होंगे, वह मैं सब कार्य्य करूँगा, सत्य कहताहूँ कि वह कार्य्य मैं अवश्यही करूँगा, इसमें अन्तर (फरक) नहीं होयगा, रामचन्द्रजी एक वार्त्ताको दो प्रकारसे नहीं कहते अर्थात् पहिले किसी वार्त्ताको कहकर फिर उसको लौटते नहीं किन्तु वैसाही करते हैं ॥ ६२ ॥ कैकेयीने रामचन्द्रजीकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर बोलनेका प्रारम्भ किया, कि हे रामचन्द्र ! तुम्हारा अभिषेक करनेके निमित्त जो सामग्रियें इकट्ठी करी हैं उनसे मेरे प्रियपुत्र भरतको राज्याभिषेक अवश्य होना चाहिये, यह एक वर मैंने महाराजसे माँगा है, दूसरे वरसे मैंने यह माँगा है कि हे रामचन्द्र ! तुम आज शीघ्रही अङ्गपर वस्त्रोंकी जगह चीरैं अथवा वल्कल (भोजपत्र) धारण करके और जटा धारण करके,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिताकी आज्ञासे आजही बनको शीघ्र चले जाओ, और तहाँ मुनियोंके खानेके अन्नको भक्षण करके चौदह वर्षपर्य्यन्त रहो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ यह पिताका कार्य्य तुम आज करो. हे रामचन्द्र ! महाराजको तुमसे यह वार्त्ता कहते लज्जा लगती है ॥ ६६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे मातः ! भरतही राज्य करैं, मैं दण्डकारण्यको जाताहूँ, परन्तु महाराज इस बारेमें मुझसे कुछ नहीं कहतेहैं, इसका कारण मुझे मालूम नहीं होता ॥ ६७ ॥ राजा दशरथजीने रामचन्द्रजीके यह वचन सुने और आगे खड़े हुए रामचन्द्रजीकी ओरको देखा, उससमय उनको अत्यंत दुःख हुआ, और रामचन्द्रजीसे दुःखके वचन कहे ॥ ६८ ॥ कि हे राम ! इस स्त्रीने मुझे पूर्ण रीतिसे जीत लिया है, मेरे मनको भ्रान्ति होनेके कारण मैं उलटे मार्गमें

वनं प्रयाहि शीघ्रं त्वमद्यैव पितुराज्ञया ॥ चतुर्दश समास्तत्र वस मुन्यन्नभोजनः ॥ ६५ ॥ एतदेव पितुस्तेऽद्य कार्यं त्वं कर्तुमर्हसि ॥ राजा तु लज्जते वक्तुं त्वामेवं रघुनन्दन ॥ ६६ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ भरतस्यैव राज्यं स्यादहं गच्छामि दण्डकान् ॥ किंतु राजा न वक्तीह मां न जानेऽत्र कारणम् ॥ ६७ ॥ श्रुत्वैतद्रामवचनं दृष्ट्वा रामं पुरः स्थितम् ॥ प्राह राजा दशरथो दुःखितो दुःखितं वचः ॥ ६८ ॥ स्त्रीजितं भ्रान्तहृदयमुन्मार्गपरिवर्तिनम् ॥ निगृह्य मां गृहाणेदं राज्यं पापं न तद्भवेत् ॥ ६९ ॥ एवं चेदनृतं नैव मां स्पृशेद्रघुनन्दन ॥ इत्युक्त्वा दुःखसंतप्तो विललाप नृपस्तदा ॥ ७० ॥ हा राम हा जगन्नाथ हा मम प्राणवल्लभ ॥ मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥ ७१ ॥ इति रामं समालिङ्ग्य मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥ विमृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना ॥ ७२ ॥ आश्वासयामास नृपं शनैः स नयकोविदः ॥ किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शासतु मेऽनुजः ॥ ७३ ॥ अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम् ॥ राज्यात्कोटिगुणं सौख्यं मम राजन्वने सतः ॥ ७४ ॥

चलरहाहूँ इसकारण तुम मुझे राज्यसे दूर करके अथवा मुझे जेलखानेमें ड़ालकर इस राज्यको ग्रहण करलो, ऐसा करनेसे तुझको पाप बिलकुल नहीं लगेगा ॥ ६९ ॥ हे रामचन्द्र ! तुने ऐसा करनेपर मुझेभी असत्यका दोष नहीं लगेगा. दुःखसे सन्तप्त हुए राजा दशरथ उससमय इसप्रकार कहकर विलाप करने लगे ॥ ७० ॥ हा राम ! हा जगन्नाथ ! अरे मेरे प्राणवल्लभ ! मुझे छोड़कर तुम घोर वनमें किसप्रकार जाओगे ॥ ७१ ॥ राजा दशरथ रामचन्द्रजीको गोदीमें बैठालकर और पहिले कहनेके अनुसार पुकार पुकार कर किल्ल मारकर रोदन करने लगे. रामचन्द्रजीने पानीके हाथोंसे पिताके नेत्र पोंछे ॥ ७२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी नीतिशास्त्रमें प्रवीण थे उन्होने देशकालके अनुसार इसप्रकार कहकर राजाको समझाया कि—हे महाराज ! आप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो ज्ञानी हो, इससमय दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है, मेरे छोटे भ्राताको राज्य करने दो ॥ ७३ ॥ मैं प्रतिज्ञाको पूरी करके आपकी राजधानीमें फिर लौटकर आऊँगा. हे महाराज ! वनमें रहनेसे मुझे राज्यकी अपेक्षा करोड़गुण सुख अधिक होयगा ॥ ७४ ॥ क्योंकि उससे दो लाभ होगें— एक तो आपके सत्यका पालन होयगा और दुसरा देवताओंकाभी कार्य्य सिद्ध होयगा, और मैं वनमें रहूं यह वार्त्ता कैकेयीको प्रियभी है, इससे मेरे वनमें रहनेसे बड़ा लाभ होगा ॥ ७५ ॥ मेरे मनकी ऐसी इच्छा है कि इसीसमय चला जाऊं, माता (कैकेयी) के मनका ताप तो दूर होने दो, अभिषेककेलिये जो जो सामग्री इकट्ठी करी है, उनको उठाकर रखवादो ॥ ७६ ॥ माता (कौसल्या) को आश्वासन देकर और सीताको समझाकर मैं यहां आताहूं, फिर आपके चरणोंको प्रणाम करके सुखपूर्वक वनको जाऊंगा ॥ ७७ ॥ रामचन्द्रजी ऐसा कहकर और पिताकी

त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति ॥ कैकेय्याश्च प्रियो राजन्वनवासो महागुणः ॥ ७५ ॥ इदानीं गन्तुमिच्छामि व्येतु मातुश्च हृज्ज्वरः ॥ संभाराश्चोपहीयन्तामभिषेकार्थमागताः ॥ ७६ ॥ मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम् ॥ आगत्य पादौ वन्दित्वा तव यास्ये सुखं वनम् ॥७७॥ इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ ॥ कौसल्याऽपि हरेः पूजां कुरुते रामकारणात् ॥ ७८ ॥ होमं च कारयामास ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥ ध्यायते विष्णुमेकाग्रमनसा मौनमास्थिता ॥ ७९ ॥ अन्तःस्थमेकं घनचित्प्रकाशं निरस्तसर्वातिशयस्वरूपम् ॥ विष्णुं सदानन्दमयं हृदब्जे सा भावयन्ती न ददर्श रामम् ॥ ८० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहे० अयोध्याकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ ततः सुमित्रा दृष्ट्वैनं रामं राज्ञी ससंभ्रमा ॥ कौसल्या बोधयामास रामोऽयं समुपस्थितः ॥ १ ॥

प्रदक्षिणा करके माताका दर्शन करनेके निमित्त चलदिये. इधर कौसल्या रामचन्द्रके अभिषेकके उत्सवके निमित्त बैठी हुई विष्णुभगवान्का पूजन कर रही थी ॥ ७८ ॥ उसने ब्राह्मणोंसे होम कराया और उनको बहुत धन दिया, अब वह मौनव्रत धारण करके एकाग्र मनसे विष्णुभगवान्का ध्यान कर रहीथी ॥ ७९ ॥ सबके अन्तर्यामी अद्वितीय पूर्ण ज्ञानस्वरूप प्रकाशात्मक सबकी अत्युत्तम स्वरूपताको तिरस्कार करनेवाले और नित्यानन्दस्वरूप भगवान्का ध्यान करती हुई कौसल्याने आगे खडे हुएभी रामचन्द्रको नहीं देखा ॥ ८० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकासहितस्तृतीयः सर्ग समाप्तः ॥ ३ ॥ तदनन्तर सुमित्राने तिन रामचन्द्रजीको देखकर शीघ्रही कौसल्यासे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा कि यह रामचन्द्र आए तेरे धोरे खड़े हैं ॥ १ ॥ रामचन्द्रजीका नाम सुनतेही कौसल्याने अपनी दृष्टिको समाधिसे उतारकर बाह्य प्रवाहमें लगाया, तब विशालनेत्र रामचन्द्रजीको देखकर हृदयसे लगाया और गोदीमें बैठालिया ॥ २ ॥ मस्तकको सूंघा तथा नीलकमलके समान तेज युक्त उनके शरीरपर हाथ फेरा और कहा कि हे पुत्र ! तू भूंखा होगा, सो मैंने तेरे निमित्त मधुर मधुर पदार्थ तयार करके रक्खे हैं उनको भक्षण कर ले ॥ ३ ॥ रामचन्द्र बोले कि हे मातः ! पिताजीने अब मुझके भोजन करनेको अवकाश नहीं दिया है, मैं आज इससमय शीघ्रही दण्डकारण्यको जाऊंगा ऐसा निश्चय किया है ॥ ४ ॥ अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करना यह मेरे पिताजीका नियम है, तिसके अनुसार उन्होंने कैकेयीको दियेहुए वचनको सत्य करनेके निमित्त भरतको अयोध्याका राज्य और मुझे अरण्य (वन) का श्रेष्ठ आधिपत्य दिया है ॥ ५ ॥ अब मैं मुनिका वेश

श्रुत्वैव रामनामैषा बहिर्दृष्टिप्रवाहिता ॥ रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिङ्ग्याङ्के न्यवेशयत् ॥ २ ॥ मूर्ध्न्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छवि ॥ भुङ्क्ष्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दितः ॥ ३ ॥ रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कृतः ॥ दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्य निश्चितः ॥ ४ ॥ कैकेयीवरदानेन सत्यसन्धः पिता मम ॥ भरताय ददौ राज्यं ममाप्यारण्यमुत्तमम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥ आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा सहसोद्विग्ना मूर्छिता पुनरुत्थिता ॥ आह रामं सुदुःखार्ता दुःखसागरसंप्लुता ॥ ७ ॥ यदि राम वनं सत्यं यासि चेन्नय मामपि ॥ त्वद्विहीना क्षणार्धं वा जीवितं धारये कथम् ॥ ८ ॥ यथा गौर्बालकं वत्सं त्यक्त्वा तिष्ठेन्न कुत्रचित् ॥ तथैव त्वां न शक्नोमि त्यक्तुं प्राणात्प्रियं सुतम् ॥ ९ ॥

धारण करके चौदह वर्षपर्य्यन्त तहाँ (वनमें) रहूंगा और फिर लौटकर आऊंगा, तू किञ्चिन्मात्रभी चिन्ता न करना ॥ ६ ॥ यह सुनतेही एकदम दुःखकी घबड़ाहटसे कौसल्या मूर्छित होकर गिरपडी, कुछकालके अनन्तर फिर उठी परन्तु उस अत्यन्त दुःखसे उसके मनको अत्यन्तही पीड़ा होने लगी, अधिक तो क्या उस दुःखके समुद्रमें मग्न होगई और इस दशामेंही श्रीरामचन्द्रजीसे बोली कि—हे राम ! यदि तुम सत्य बनकोही जाओगे तो मुझेभी साथ ले चलो तुम्हारे विना मैं क्षणमात्रभी जीवनको किसप्रकार धारण करूंगी ॥ ७ ॥ ८ ॥ जिसप्रकार गौ अपने छोटेसे बालकको छोडकर कहीं नहीं रहसकती है, तिसीप्रकार हे पुत्र! मैं तुझको छोडकर जरा देरभी नहीं रहसकूंगी, क्योंकि तुम मुझे प्राणोंकी अपेक्षासेभी अधिक प्रिय हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ ९ ॥ राजा प्रसन्न हो तो वह खुशीसे भरतको राज्य दे, तूभी तो उन्हे प्रिय हो तिसपरभी वह तुझको वनको जानेके निमित्त आज्ञा देते हैं इसमें क्या कारण है ॥ १० ॥ राजाने कैकेयीको वर दिया है तो उसको सर्वस्व देदें, तूने कैकेयीका अथवा राजाका ऐसा क्या अपराध किया है कि जिससे तुझको वनको जाना चाहिये ॥ ११ ॥ पिता गुरु होनेके कारण तुझको पूज्य हैं परन्तु मैं उनसेभी अधिक तुझको मान्य हूं, इससे पिताने बनको जानेकेलिये कहा है तोभी मैं निषेध करती हूँ कि तू बनको मत जाओ ॥ १२ ॥ यदि तू मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके राजाकी आज्ञाके अनुसार चले जाओ तो मैं तत्काल प्राणोंका त्यागकर यमपुरीको चली जाऊंगी ॥ १३ ॥ लक्ष्मणजीको यह वृत्तान्त सुननेसे क्रोध आरहाथा, तिसमेंभी कौसल्याका यह भाषण सुननेसे तो अत्यन्त ही बढ़गया, उस समय उनकी आकृतिसे यह प्रतीत होताथा कि मानो यह त्रिलोकीको भस्म करदेंगे, ऐसी दशामेंही लक्ष्मणजी राम-

भरताय प्रसन्नश्चेद्राज्यं राजा प्रयच्छतु ॥ किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम् ॥ १० ॥ कैकेय्या वरदो राजा सर्वस्वं वा प्रयच्छतु ॥ त्वया किमपराद्धं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ॥ ११ ॥ पिता गुरुर्यथा राम तवाहमधिका ततः ॥ पित्राज्ञप्तो वनं गन्तुं वारयेयमहं सुतम् ॥ ॥ १२ ॥ यदि गच्छसि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य नृपवाक्यतः ॥ तदा प्राणान्परित्यज्य गच्छामि यमसादनम् ॥ १३ ॥ लक्ष्मणोऽपि ततः श्रुत्वा कौसल्यावचनं रुषा ॥ उवाच राघवं वीक्ष्य दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ १४ ॥ उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम् ॥ बद्ध्वा निहन्मि भरतं तद्बन्धून्मातुलानपि ॥ १५ ॥ अद्य पश्यन्तु मे शौर्यं लोकान्प्रदहतः पुरा ॥ राम त्वमभिषेकाय कुरु यत्नमरिंदम ॥ १६ ॥ धनुष्पाणिरहं तत्र निहन्यां विघ्नकारिणः ॥ इति ब्रुवन्तं सौमित्रिमालिङ्ग्य रघुनन्दनः ॥ १७ ॥

चन्द्रजीसे कहा कि ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! भरत अत्यन्त उन्मत्त हो गया है राज्यके लोभसे उसके मनमें भ्रान्ति होगई है, इसकारणही वह कैकेयीके स्वाधीन रहताहै, और अपनी इच्छा होती है सो करताहै, अब मैं उसको, उसके सहायकोंको और उसके मामाको बाँधकर मार डालताहूँ ॥ १५ ॥ पहिले प्रलयकालमें शिवजीने सम्पूर्ण लोकोंको भस्म करतेसमय जैसा उग्र स्वरूप धारण कियाथा वैसाही भयंकर स्वरूप मैं धारण करताहूँ, प्राणी आज मेरे पराक्रमको देखैं. हे रामचन्द्र ! तुम शत्रुओंको दण्ड देनेवाले हो तो इससमय अपना राज्याभिषेक करनेके निमित्त उद्योग करो ॥ १६ ॥ मैं हाथमें धनुष लेकर तयार होताहूँ, और यदि उस कार्य्यमें कोई विघ्न आवेगा तो उसका नाश करूँगा लक्ष्मणजीके इसप्रकार कहनेपर रामच-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्द्रजीने उसको हृदयसे लगाया और गोदीमें बैठाकर कहने लगे ॥ १७ ॥ कि हेरघुकुलश्रेष्ठ लक्ष्मण! तू शूर और मेरा हित करनेमें अत्यन्त कटिबद्ध है, जैसा तुमने कहा वैसाही तू करसक्ता है यह सब सत्य है और मैं जानताभी हूँ, परन्तु तैसा वर्त्ताव करनेका समय नहीं है ॥ १८ ॥ यह राज्य शरीर आदि जो कुछ दीखैहै वह यदि सब सत्य होता तो उसके निमित्त तेरा परिश्रम सफल होता ॥ १९ ॥ परन्तु यह भोग मेघमण्डलके ऊपर क्षणमात्र चमकनेवाली बिजलीके समान चञ्चल हैं, आयु तो अग्निसे तपाए हुए लोहेपर डालेहुए जलकी बिन्दुके समान तत्काल नाशको प्राप्त होनेवाली है ॥ २० ॥ जिस प्रकार मेंडक सर्पके मुखमें ग्रसाहुआ होकरभी डाँस मक्षिका आदिके पकडनेको इच्छा करताहै, तिसी प्रकार मनुष्य कालरूपी सर्पसे ग्रसाहुआ होकरभी नाशवान् भोगोंको भोगनेकी इच्छा करताहै ॥ २१ ॥ शरीरको भोग मिलै इसकारण मनुष्य रात्रिदिन बड़े कष्टसे

शूरोऽसि रघुशार्दूल ममात्यन्तहिते रतः ॥ जानामि सर्वं ते सत्यं किंतु तत्समयो नहि ॥ १८ ॥ यदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत् ॥ यदि सत्यं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते ॥ १९ ॥ भोगा मेघवितानस्थविद्युल्लेखेव चञ्चलाः ॥ आयुरप्यग्निसंतप्तलोहस्थजलबिन्दुवत् ॥ २० ॥ यथा व्यालगलस्थोऽपि भेको दंशानपेक्षते ॥ तथा कालाहिना ग्रस्तो लोको भोगानशाश्वतान् ॥ २१ ॥ करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रं शरीरभोगार्थमहर्निशं नरः ॥ देहस्तु भिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यते को वात्र भोगः पुरुषेण भुज्यते ॥ २२ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्ध्वादिसङ्गमः ॥ प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥ २३ ॥ छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता तारुण्यमम्बूर्मिवदध्रुवं च ॥ स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्पं तथापि जन्तोरभिमान एषः ॥ २४ ॥

द्रव्य पैदा करनेका उपाय और वेदोक्त कर्म्म करताहै, परन्तु यह जड़ शरीर तो अन्तर्य्यामी पुरुष (आत्मा) से बिलकुल भिन्न है, ऐसा देखनमें आता है, तब पुरुषको इस शरीरमें कौनसा भोग भोगनेको मिलैगा ॥ २२ ॥ जिस प्रकार प्रपा (पानीयशाला-पौ) पर चारों ओरके पुरुष क्षणमात्रको इकट्ठे होते हैं, तिसी प्रकार प्राणीको पिता—माता—पुत्र—भ्राता—स्त्री और भाई बन्धु आदिका कुछ कालको समागम होता है और फिर नदीमें पड़े हुए काठके और प्रवाहके सम्बन्धके समान चञ्चल पिता आदिका और प्राणीका समागम क्षणमात्रमें नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥ लक्ष्मी छायाके समान चञ्चल है, यह तो प्रत्येक पुरुषके अनुभवमें आता है, और तरुण अवस्था जलकी तरङ्गके समान अस्थिर है, स्त्रीसुख केवल स्वप्नके सुखके समान है, और आयु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यन्तही थोड़ी है, ऐसा होनेपर भी प्राणी "मैं भोग भोगताहूँ, मेरा द्रव्य है" ऐसा अभिमान करता है ॥ २४ ॥ संसार स्वप्नके समान होकर भी नित्य रोगादिकोंसे भरा हुआ है, और इस संसारका "गन्धर्वनगर" यह नाम है ऐसा होनेपर भी पुरुष अज्ञानके वशीभूत होकर तिस संसारमें आनन्द मानता है ॥ २५ ॥ सूर्य्यके जाने आनेसे (उदय अस्त होनेसे) आयु नित्य नष्ट होती है, तिससे कुछ पुरुष वृद्धावस्थासे ग्रस्त होजाते हैं, और कुछ मृत्युको प्राप्त होजाते हैं, ऐसी दशा देखकर भी मनुष्य बिलकुल नहीं समझते, यह कैसा आश्चर्य्य है ॥ २६ ॥ इस प्राणीकी बुद्धिको कितना मोह होरहा है, देखो कल वीता हुआ वही दिन और वही रात्रि आज है, ऐसा समझ करभी भोग भोगनेमें आसक्त होकर आयुको वृथा खोवै है, काल (मृत्यु) के वेगको बिलकुल नहीं देखता है ॥ २७ ॥ कच्चे घड़ेमें भरकर रक्खे हुए पानीके समान यह आयु क्षणक्षणमें कम हो जाता है,

संसृतिः स्वप्नसदृशी सदा रोगादिसंकुला ॥ गन्धर्वनगरप्रख्या मूढस्तामनुवर्तते ॥ २५ ॥ आयुष्यं क्षीयते यस्मादादित्यस्य गतागतैः ॥ दृष्ट्वाऽन्येषां जरामृत्यू कथंचिन्नैव बुद्ध्यते ॥ २६ ॥ स एव दिवसः सैव रात्रिरित्येव मूढधीः ॥ भोगाननुपतत्येव कालवेगं न पश्यति ॥ २७ ॥ प्रतिक्षणं क्षरत्येतदायुरामघटाम्बुवत् ॥ सपत्ना इव रोगौघाः शरीरं प्रहरन्त्यहो ॥ २८ ॥ जरा व्याघ्रीव पुरतस्तर्जयन्त्यवतिष्ठते ॥ मृत्युः सहैव यात्येष समयं संप्रतीक्षते ॥ २९ ॥ देहेऽहंभावमापन्नो राजाऽहं लोकविश्रुतः ॥ इत्यस्मिन्मनुते जन्तुः कृमिविड्भस्मसंज्ञिते ॥ ३० ॥ त्वगस्थिमांसविण्मूत्ररेतोरक्तादिसंयुतः ॥ विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं वद ॥ ३१ ॥

रोगोंका समूह शत्रुके समान शरीरपर प्रहार कररहा है ॥ २८ ॥ जरा (बुढ़ापा) व्याघीके समान भय दिखाती हुई आगे खडी है, मृत्यु तो यह साथही आताहुआ, "समय कब पूरा होय" ऐसी वाट देख रहाहै ॥ २९ ॥ इस शरीरका कीड़ा, विष्ठा अथवा भस्म, इनमेंसे कोई एक नाम रखना चाहिये, क्यों कि इसका अन्त इन तीनोंमेंसे किसीएक प्रकारका तो होयगाही, (पृथ्वीपर पड़ा सड़ता रहेगा तो कीड़े पडजायँगे, कौए कुत्ते खा जायँगे तो विष्ठा हो जायगा और जलादियाजायगा तो भस्म होजायगा) ऐसी वास्तविक दशा होनेपरभी प्राणी तिस शरीरके ऊपर "मैं" ऐसा अभिमान करता है, और अपनेको "मैं" राजा अथवा सब लोकोंमें प्रसिद्ध हूँ ऐसा मानता है ॥ ३० ॥ यह देह त्वचा, अस्थि, मांस, विष्ठा, मूत्र, रेत (वीर्य) और रुधिरआदिकरके भरा है. इसको अनेक प्रकारके विकार और दशा भोगनी पडती है, आत्मा तो निर्विकार परिणामहीन है, ऐसा वेदोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा है, तब कहो इस शरीरको आत्मा किसप्रकार कह सक्ते हैं. हे लक्ष्मण! तू इस देहके ऊपर अभिमान करके लोकोंको भस्म करनेकी इच्छा करता है ॥ ३१ ॥ हे लक्ष्मण! देहके ऊपर अभिमान करनेवाले प्राणीके हाथसे अनेक दोष उत्पन्न होतेहैं, देहकेविषे "मैं आत्मा" ऐसी बुद्धि करनेहीका नाम अविद्या (अज्ञान) है ॥ ३२ ॥ "मैं देह नहीं हूँ किन्तु ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ" ऐसी जो बुद्धि है वही ज्ञान कहाता है, अज्ञान संसारका कारण होताहै और ज्ञान संसारकी निवृत्ति करताहै ॥ ३३ ॥ इसकारण मुमुक्षुपुरुषोंको ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त यत्न करना चाहिये. हे लक्ष्मण! तुझे शत्रुओंका नाश करनेका यदि आग्रह है तो मैं शत्रु कौनसे हैं तिन्हैं दिखलाताहूँ, उनका नाश कर. अरे! तिस मोक्षप्राप्तिरूप कार्य्यके काम-

यमास्थाय भवाँल्लोकं दग्धुमिच्छति लक्ष्मण ॥ देहाभिमानिनः सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति हि ॥ ३२ ॥ देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता ॥ नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ॥ ३३ ॥ अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका ॥ तस्माद्यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ॥ कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदन ॥ ३४ ॥ तत्रापि क्रोध एवालं मोक्षविघ्नाय सर्वदा ॥ येनाविष्टः पुमान्हन्ति पितृभ्रातृसुहृत्सखीन् ॥ ३५ ॥ क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम् ॥ धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं परित्यज ॥ ३६ ॥ क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी ॥ संतोषो नन्दनवनं शान्तिरेव हि कामधुक् ॥ ३७ ॥ तस्मात्क्षान्तिं भजस्वाद्य शत्रुरेवं भवेन्न ते ॥ देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्यो विलक्षणः ॥ ३८ ॥

क्रोधादि शत्रु हैं ॥ ३४ ॥ तिनमें भी इकला क्रोधही मोक्षकी प्राप्तिमें सदा विघ्न करनेको समर्थ है, मनुष्यको क्रोधका आवेश आया कि वह पुरुष पिताको भ्राताको मित्रको और अपने हितकरनेवालोंको भी मारनेको प्रवृत्त हो जाता है ॥ ३५ ॥ मनको ताप होनेका कारण क्रोधही है, क्रोधके कारणही संसारमें बन्धन होता है, क्रोधही धर्म्मका नाश करता है, इस कारण हे लक्ष्मण! क्रोधका बिलकुल त्याग करदो ॥ ३६ ॥ यह क्रोध एक बड़ा प्रबल शत्रु है, तृष्णा (भोगकी इच्छा) ही वैतरणी (यम राजाके नगरके समीप बहनेवाली मांस रुधिर पीब आदिसे भरी हुई) नदी है, सन्तोष नन्दनवन है और शान्तिही कामधेनु है ॥ ३७ ॥ इस कारण हे लक्ष्मण! तू अब क्षमाको अङ्गीकार करो, ऐसा करनेसे तुझको शत्रु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न नहीं होंगे ॥ ३८ ॥ आत्मा देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि आदिसे भिन्न होकर शुद्ध और स्वयंप्रकाश है, उसको कोई विकार अथवा आकार नहीं है, जबतक प्राणीको आत्मा "ऐसा ज्ञान नहीं होता है, तबतक उसको संसारमें दुःखोंके समूहोंकी पीडा भोगनी पड़ती है, और यह मृत्यूकी तो अवधिही है, अर्थात् जब यह ज्ञान होजाता है फिर प्राणोंको मृत्युका भय नहीं होता है, इस कारण हे लक्ष्मण! तू नित्य हृदयमें "आत्मा शरीरादिसे भिन्न है" ऐसी भावना रक्खो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ "मैं बुद्ध्यादिसे भिन्न हूँ" ऐसा मनमें रखके बाहर लोकव्यवहारके अनुसार वर्त्ताव खुशीसे कर, खेद बिलकुल मत कर, सुख अथवा दुःख जो कुछ प्राप्त होय उसको प्रारब्धपर दृष्टि देकर भोगता रह अर्थात् उसका अभिमान

आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः ॥ यावद्देहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नात्मनो विदुः ॥ ३९ ॥ तावत्संसारदुःखौघैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः ॥ तस्मात्त्वं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय ॥ ४० ॥ बुद्ध्यादिभ्योबहिः सर्वमनुवर्तस्व मा खिदः ॥ भुञ्जन्प्रारब्धमखिलं सुखं वा दुःखमेव वा ॥ ४१ ॥ प्रवाहपतितः कार्यं कुर्वन्नपि न लिप्यसे ॥ बाह्ये सर्वत्र कर्तृत्वमावहन्नपि राघव ॥ ४२ ॥ अन्तःशुद्धस्वभावस्त्वं लिप्यसे न च कर्मभिः ॥ एतन्मयोदितं कृत्स्नं हृदि भावय सर्वदा ॥ ४३ ॥ संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन ॥ त्वमप्यम्ब मयादिष्टं हृदि भावय नित्यदा ॥ ४४ ॥ समागमं प्रतीक्षस्व न दुःखैः पीड्यसे चिरम् ॥ न सदैकत्र संवासः कर्ममार्गानुवर्तिनाम् ॥ ४५ ॥

मत कर ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हृदयमें विचार कर तू संसारप्रवाहमें पड़नेके कारण, चाहिये सो व्यवहार करता हुआ भी लिप्त नहीं होगा. हे रघुकुलमें जन्म लेनेवाले लक्ष्मण! बाहरमें तू सम्पूर्ण कार्य्योंके कर्तृत्वको धारण करकेभी यदि तुझका आभ्यन्तरिक स्वभाव शुद्ध रहेगा तो अर्थात् हृदयमें किसी कार्य्यके कर्तृत्वका अभिमान नहीं करोगे तो तुझको कर्म्म करनेका दोष बिलकुल नहीं लगैगा, इस मेरे सम्पूर्ण उपदेशको तू नित्य हृदयमें रख ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तब तुझको संसारकेविषे किसी प्रकारके भी दुःखसे कदापि पीडा नहीं होयगी. हे मातः! तूभी मैंने कहेहुए इस वृतान्तको सदा ध्यानमें रख ॥ ४४ ॥ मेरे लौटकर आनेकी वाट देखती रहो, तुझे बहुत दिनोंपर्य्यन्त दुःख नहीं सहना पडेगा, नदीके प्रवाहमें अनेक नौका डाली जायँ हैं, परन्तु उनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक स्थानमें रहना कदापि नहीं होता ह, तिसीप्रकार संसार मार्गमें नित्य विचरनेवाले प्राणियोंका नित्य एक स्थानमें समागम कदापि नहीं रहता है, चौदह वर्ष यह संख्या बहुत मालूम होती है, परन्तु क्षणमात्रमें बीत जायगी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे मातः ! अब दुःखको दूर करके आनन्दपूर्वक मुझे जानेकी आज्ञा दो, ऐसा करनेसे वनमें मेरा समय सुखपूर्वक व्यतीत होजायगा ॥ ४७ ॥ रामचन्द्रजी इसप्रकार कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके बहुत कालपर्य्यन्त माताके चरणोंमें पडे, तब कौसल्याने उन्हे उठाकर गोदीमें बैठाया और अनेक आशीर्वाद देकर प्रशंसा करी ॥ ४८ ॥ गन्धर्वों करके सहित ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता तुम्हारी चलते समय, स्थित होते समय और शयन करते समय रक्षा करैं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार

यथा प्रवाहपतितप्लवानां सरितां तथा ॥ चतुर्दशसमासंख्या क्षणार्धमिव जायते ॥ ४६ ॥ अनुमन्यस्व मामम्ब दुःखं संत्यज्य दूरतः ॥ एवं चेत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वा दण्डवन्मातुः पादयोरपतच्चिरम् ॥ उत्थाप्याङ्के समावेश्य आशीर्भिरभिनन्दयत् ॥ ४८ ॥ सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ रक्षन्तु त्वा सदा यान्तु तिष्ठन्तं निद्रया युतम् ॥ ४९ ॥ इति प्रस्थापयामास समालिङ्ग्य पुनः पुनः ॥ लक्ष्मणोऽपि तदा रामं नत्वा हर्षाश्रुगद्गदः ॥ ५० ॥ आह राम ममान्तस्थः संशयोऽयं त्वया हृतः ॥ यास्यामि पृष्ठतो राम सेवां कर्तुं तदादिश ॥ ५१ ॥ अनुगृह्णीष्व मां राम नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ तथेति राघवोऽप्याह लक्ष्मणं याहि माचिरम् ॥ ५२ ॥ प्रतस्थे तां समाधातुं गतः सीतापतिर्विभुः ॥ आगतं पतिमालोक्य सीता सुस्मितभाषिणी ॥ ५३ ॥

कहकर और वारंवार हृदयसे लगाकर कौसल्याने रामचन्द्रजीको आज्ञा दी. पूर्व कहे हुए उपदेशको सुनतेही लक्ष्मणजीके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा, और उनका कण्ठ भरआया, ऐसी दशामेंही वह रामचन्द्रजीको नमस्कार करके कहने लगा कि—हे रामचन्द्र ! यह मेरे हृदयका सन्देह तुमने दूर किया. हे रामचन्द्र ! मैं तुह्मारी सेवा करनेके लिये तुम्हारे साथ चलूँ, मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इतना मुझपर अनुग्रह करो, नहीं तो मैं प्राणोंको त्याग दूँगा. तब रामचन्द्रजीने 'बहुत अच्छा, शीघ्र चलो, विलम्ब मत करो' इस प्रकार कहा ॥ ५२ ॥ फिर वह सीतापति समर्थ ईश्वर तहाँसे आकर सीताको समझानेके निमित्त उसके मन्दिरमें गए, सीताजीका स्वभाव आनन्दीं होनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण उसका मुख नित्य हास्ययुक्त रहताथा, उसका भाषण मधुर था, "पति आए" ऐसा देखतेही सीताजीने सुवर्णके पात्रमें भरे हुए जलको लेकर भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके चरण धुलाए और पतिकी ओरको देखकर उनसे पूछा कि—हे देव! आज आप सेनाके विनाही कैसे आए? और कहाँ गएथे? आपका श्वेत छत्र कहाँ है? बाजे नहीं बजते हैं, मुकुट आदि राजचिह्न आपके शरीरपर नहीं दीखते, सुनाथा कि आज आप माण्डलिक राजाओंके साथ बडे ठाटसे आओगे, परन्तु आप उस रीतिसे नहीं आए, इसका क्या कारण हैं? सीताजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर श्रीरामचन्द्रजी हँसते हँसते उनसे बोले ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे सुन्दरि! आज महाराज (पिताजी) ने मुझे दण्डकारण्यका सम्पूर्ण

स्वर्णपात्रस्थसलिलैः पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ॥ पप्रच्छ पतिमालोक्य देव किं सेनया विना ॥ ५४ ॥ आगतोऽसि गतः कुत्र श्वेतच्छत्रं च ते कुतः ॥ वादित्राणि न वाद्यन्ते किरीटादिविवर्जितः ॥ ५५ ॥ सामन्तराजसहितः संभ्रमान्ना गतोऽसि किम् ॥ इति स्म सीतया पृष्टो रामः सस्मितमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ राज्ञा मे दण्डकारण्ये राज्यं दत्तं शुभेऽखिलम् ॥ अतस्तत्पालनार्थाय शीघ्रं यास्यामि भामिनि ॥ ५७ ॥ अद्यैव यास्यामि वनं त्वं तु श्वश्रूसमीपगा ॥ शुश्रूषां कुरु मे मातुर्न मिथ्यावादिनो वयम् ॥ ५८ ॥ इति ब्रुवन्तं श्रीरामं सीता भीताऽब्रवीद्वचः ॥ किमर्थं वनराज्यं ते पित्रा दत्तं महात्मना ॥ ५९ ॥ तामाह रामः कैकेय्यै राजा प्रीतो वरं ददौ ॥ भरताय ददौ राज्यं वनवासं ममानघे ॥ ६० ॥ चतुर्दश समास्तत्र वासो मे किल याचितः ॥ तया देव्या ददौ राजा सत्यवादी दयापरः ॥ ६१ ॥

राज्य दिया है, इस कारण हे प्रिये! उस पिताकी आज्ञाका पालन करनेके निमित्त मैं शीघ्रही जानेवाला हूँ ॥ ५७ ॥ मैं आजही बनको जाऊँगा, तू अपनी सासुओंके समीप रहती हुई मेरी माताकी सेवा करती रहियो, तुझे मालूमही है कि मैं कभी असत्य नहीं बोलताहूँ ॥ ५८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे ऐसे शब्द निकलतेही सीताजीको बडा भय मालूम पडा और रामचन्द्रजीसे कहने लगी—क्या? उदार अन्तःकरणसे आपके पिताजीने आपको वनका राज्य दिया है? और उन्होंने क्या कहा है? ॥ ५९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि—हे पतिव्रते सीते! महाराजने प्रसन्न होकर कैकेयीको वर दिया था, उससे भरतको राज्य और मुझे वनवास दिया है ॥ ६० ॥ क्योंकि कैकेयी माताने तिन वरोंमेंसे एकसे 'मैं वनमें चौदह वर्ष पर्य्यन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहूं' ऐसा मागा है, दयालु महाराज सत्यवादी हैं, इसकारण उन्होंने उस याचनाको स्वीकार किया है ॥ ६१ ॥ इसकारण हे प्रिये ! मैं अब शीघ्रही जाऊँगा, तू इसमें विघ्न मत कर. इसप्रकार रामचन्द्रका भाषण सुनकर जानकी प्रसन्न अन्तःकरणसे उनको कहने लगी कि—हे रघुवीर ! मैं आपके आगे बनको जाऊँगी, आप पीछे चलेंगे, मुझे लियेविना जाना आपको योग्य नहीं है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ मधुर भाषण करनेवाली प्रिय स्त्रीका ऐसा भाषण सुनकर रामचन्द्रजीको सन्तोष हुआ, और जानकीसे कहने लगे कि हे प्रिये ! मैं तुझे अनेक व्याघ्र चीता आदि हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें किस प्रकार लेजाऊं ॥ ६४ ॥ तहाँ मनुष्योंको भक्षण करनेवाले घोर विकराल स्वरूपके राक्षस हैं, और सिंह व्याघ्र तथा शूकर आदि इधर उधर

अतः शीघ्रं गमिष्यामि मा विघ्नं कुरु भामिनि ॥ श्रुत्वा तद्रामवचनं जानकी प्रीतिसंयुता ॥ ६२ ॥ अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्त्वमेष्यसि ॥ इत्याह मां विना गन्तुं तव राघव नोचितम् ॥ ६३ ॥ तामाह राघवः प्रीतः स्वप्रियां प्रियवादिनीम् ॥ कथं वनं त्वां नेष्येऽहं बहुव्याघ्रमृगाकुलम् ॥ ६४ ॥ राक्षसा घोररूपाश्च सन्ति मानुषभोजिनः ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च संचरन्ति समन्ततः ॥ ६५ ॥ कट्वम्लफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे ॥ अपूपानि व्यञ्जनानि विद्यन्ते न कदाचन ॥ ६६ ॥ कालेकाले फलं वाऽपि विद्यते कुत्र सुन्दरि ॥ मार्गो न दृश्यते क्वापि शर्कराकण्टकान्वितः ॥ ६७ ॥ गुहागह्वरसंबाधं झिल्लीदंशादिभिर्युतम् ॥ एवं बहुविधं दोषं वनं दण्डकसंज्ञितम् ॥ ६८ ॥ पादचारेण गन्तव्यं शीतवातातपादिमत् ॥ राक्षसादीन्वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात् ॥ ६९ ॥

फिरते रहैं हैं ॥ ६५ ॥ हे सुन्दरि ! तहां भोजनके अर्थ पदार्थ चाँहो तौ कडुए आमले आदि फल मूल मिलते हैं. पूरी और तरकारी कभीभी नहीं मिलती ॥ ६६ ॥ हे सीते ! वह फलभी ढूंढो तो योग्य समयपर किसी जगहही मिलते हैं, सब स्थानमें मिलही जायँ यह नियम नहीं है, रेती—कांटे आदिसे ढका हुआ होनेके कारण कहीं कहीं तो मार्ग ढूंढनेसेभी नहीं मिलता है ॥ ६७ ॥ यद्यपि तहां रहनेके योग्य गुफा आदि किलेके समान स्थान होनेके कारण शत्रु आ नहीं सक्ते हैं, और उन गुफा आदिके कारण पीड़ाभी नहीं सहनी पड़ती है, तथापि तहां झींगर—डांस आदि जन्तु बहुत हैं, इस प्रकारके उस दण्डकारण्यमें अनेक दोष (भय) हैं ॥ ६८ ॥ पैरों चलना पड़ेगा, तिस मार्गमें कहीं वायु होगा, कहीं ठंढ़ होगी, कहीं धूप होगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिस वनमें तू राक्षसादिकोंको देखकर भयके मारे तत्काल प्राणोंको त्यागेगी ॥ ६९ ॥ इसकारण हे सुन्दरि ! तू घरही रह मैं तुझसे फिर शीघ्रही लौटकर मिलूंगा, इस प्रकार रामचन्द्रजीका कहना सुनकर सीताको बड़ा खेद हुआ. और कुछ क्रोध आजानेके कारण होठ फड़फड़ाने लगे, ऐसी दशामेंही वह रामचन्द्रजीसे बोली कि-हे श्रीरामचन्द्र ! मैं तुम्हारी पतिव्रता धर्म्मपत्नी हूँ, सो तुम्हारी इच्छा मुझे छोड़नेको कैसे होतीहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥ तुम धर्म्मके जाननेवाले और दयालु हो, मुझसे कोई दोष तो हुआही नहीं है, तुम्हारे सिवाय अन्य कोईभी मेरा आधार नहीं है, हे प्राणवल्लभ ! तहाँ राक्षस रहो, मैं तुम्हारे पास रहूँगी तो मुझे वनमें कौन भय दिखा सकैगा ॥७२॥ फलमूलआदि जो कुछ तुम्हारे भक्षण करनेसे बचैगे, वही मुझे अमृततुल्य

तस्माद्भद्रे गृहे तिष्ठ शीघ्रं द्रक्ष्यसि मा पुनः ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा सीता दुःखसमन्विता ॥ ७० ॥ प्रत्युवाच स्फुरद्वक्त्रा किंचित्कोपसमन्विता ॥ कथं मामिच्छसे त्यक्तुं धर्मपत्नीं पतिव्रताम् ॥ ७१ ॥ त्वदनन्यामदोषां मां धर्मज्ञोऽसि दयापरः ॥ त्वत्समीपे स्थितां राम को वा मां धर्षयेद्वने ॥ ७२ ॥ फलमूलादिकं यद्यत्तव भुक्तावशेषितम् ॥ तदेवामृततुल्यं मे तेन तुष्टा रमाम्यहम् ॥ ७३ ॥ त्वया सह चरन्त्या मे कुशाः काशाश्च कण्टकाः ॥ पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यन्ति न संशयः ॥ ७४ ॥ अहं त्वां क्लेशये नैव भवेयं कार्यसाधिनी ॥ बाल्ये मां वीक्ष्य कश्चिद्वै ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥ ७५ ॥ प्राह ते विपिने वासः पत्या सह भविष्यति ॥ सत्यवादी द्विजो भूयाद्गमिष्यामि त्वया सह ॥ ७६ ॥ अन्यत्किंचित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मां नय काननम् ॥ रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः ॥ ७७ ॥

होंगे, मैं उससेही सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक कालको व्यतीत करूँगी ॥ ७३ ॥ आपके साथ फिरनेपर मुझे दर्भ (कुश), काश और काँटे भी पुष्पोंकी शय्याके समान मालूम पड़ैंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ७४ ॥ मैं आपको किञ्चिन्मात्रभी क्लेश नहीं दूंगी, किन्तु आपका कार्य्य (रावण आदि राक्षसोंका वधरूप कार्य्य ऐसा जानकीजीका गूढ़ अभिप्राय है) सिद्ध करनेमें सहायक होऊँगी, बालकपनेमें मुझे देखकर एक ज्योतिःशास्त्रके जाननेवाले चतुर पण्डितने कहाथा कि—तेरा पतिके साथ वनमें वास होयगा, सो प्राणप्यारे ! उस ब्राह्मणका वचन सत्य होने दो, मैं तुम्हारे साथ वनको जाऊँगी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ हे प्रभो ! और भी एक थोडीसी बात आपसे कहती हूँ, उसको सुनकर मुझे वनको ले चलिये, इस प्रकरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुह्मारे मनमें आही जायगा, देखो प्रभो! तुमने बहुत ब्राह्मणोंसे अनेक रामायणें सुनी हैं ॥ ७७ ॥ उनमें कहीं भी 'राम सीताके विना वनको गए' ऐसी कथा है क्या? कहो इस कारण मैं तुह्मारी सब प्रकारसे सहाय करनेके निमित्त तुह्मारे साथ वनको जाऊँगी ॥ ७८ ॥ यदि मुझे छोड़कर जाओगे तो मैं तुह्मारे सामनेही प्राणोंको त्याग दूंगी. रामचन्द्रजी सीताके इस निश्चयको जानकर बोले कि हे देवि! बहुत अच्छा, तो अब मेरे साथ वनको चलनेके निमित्त शीघ्र तयार होओ अपने हार और आभूषण शीघ्र अरुन्धतीको देदो ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अब हम ब्राह्मणोंको अपना सम्पूर्ण द्रव्य दान करके वनको जायँगे. श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार कहकर तत्काल लक्ष्मणजीके द्वारा भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको बुलवा लिया ॥ ८१ ॥ वह

सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद ॥ अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी ॥ ७८ ॥ यदि गच्छसि मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ॥ इति तं निश्चयं ज्ञात्वा सीताया रघुनन्दनः ॥ ७९ ॥ अब्रवीद्देवि गच्छ त्वं वनं शीघ्रं मया सह ॥ अरुन्धत्यै प्रयच्छाशु हारानाभरणानि च ॥ ८० ॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं सर्वं दत्त्वा गच्छामहे वनम् ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाशु द्विजानाहूय भक्तितः ॥ ॥ ८१ ॥ ददौ गवां वृन्दशतं धनानि वस्त्राणि दिव्यानि विभूषणानि ॥ कुटुम्बवद्भ्यः श्रुतशीलवद्भ्यो मुदा द्विजेभ्यो रघुवंशकेतुः ॥ ॥ ८२ ॥ अरुन्धत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च ॥ रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥ ८३ ॥ स्वकान्तःपुरवासिभ्यः सेवकेभ्यस्तथैव च ॥ पौरजानपदेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यः सहस्रशः ॥ ८४ ॥ लक्ष्मणोऽपि सुमित्रां तु कौसल्यायै समर्पयत् ॥ धनुष्पाणिः समागत्य रामस्याग्रे व्यवस्थितः ॥ ८५ ॥ रामः सीता लक्ष्मणश्च जग्मुः सर्वे नृपालयम् ॥ ८६ ॥

ब्राह्मण कुटुम्बवत्सल, विद्वान् और सुशील थे, तदनन्तर तिन रघुकुलश्रेष्ठ रामचन्द्रजीने तिन ब्राह्मणोंको गौओंके सैंकड़ों समूह, धन, दिव्य वस्त्र, और आभूषण आदि अनेक पदार्थ आनन्दपूर्वक दान दिये ॥ ८२ ॥ सीताने अरुन्धतीको अपने उत्तम उत्तम आभूषण दिये, रामचन्द्रजी अपनी माताके सेवकोंको और अपने रणवासमें रहनेवाले सेवकोंको, तथा नगरके लोगोंको और देशान्तरके पुरुषोंको, तथा सहस्रों ब्राह्मणोंको इनाम-वेतन (नौकरी) और दक्षिणा आदिमें अनेकप्रकारका धन दिया ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ लक्ष्मणजीनेभी अपनी माता सुमित्राको कौसल्याके स्वाधीन किया, और हाथमें धनुष लेकर रामचन्द्रजीके आगे खड़े होगये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण यह सब राजमन्दिरको चले ॥ ८६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजी सीताको और छोटेभ्राता लक्ष्मणजीको साथ लेकर राजमार्गसे धीरे २ चले, उससमय नगरके पुरुष और अभिषेकोत्सवके निमित्त आए हुए देशान्तरोंके सम्पूर्ण पुरुष कौतुकसे उनकी ओरको देखते थे, रामचन्द्रभी उनकी ओर आनन्दपूर्वक देखतेथे, उनका शरीर श्यामवर्ण और सहस्रों कामदेवोंके समान सुन्दर था, उनकी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशा शोभायमान दीखतीथीं, वह परमात्मा अपने चरणोंके न्यास (धरने) सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करते हुए पिताके मन्दिरमें पहुँचे ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे भाषाटीकासहितश्चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ श्रीशिवजी बोले कि-हे पार्वति! कैकेयीके वरदान आदिका वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ, अब लक्ष्मण और सीता करके सहित मार्गमें श्रीरामचन्द्रजी चलते हुए नगरवासियोंने देखे तब सब पुरुष परस्पर कहने लगे

श्रीरामः सह सीतया नृपपथे गच्छन् शनैः सानुजः पौरान् जानपदान्कुतूहलदृशः सानन्दमुद्वीक्षयन् ॥ श्यामः कामसहस्रसुन्दरवपुः कान्त्या दिशो भासयन्पादन्यासपवित्रिताऽखिलजगत्प्रापालयं तत्पितुः ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ आयान्तं नागरा दृष्ट्वा मार्गे रामं सजानकिम् ॥ लक्ष्मणेन समं वीक्ष्य ऊचुः सर्वे परस्परम् ॥ १ ॥ कैकेय्या वरदानादि श्रुत्वा दुःखसमावृताः ॥ बत राजा दशरथः सत्यसन्धं प्रियं सुतम् ॥ २ ॥ स्त्रीहेतोरत्यजत्कामी तस्य सत्यवता कृतः ॥ कैकेयी वा कथं दुष्टा रामं सत्यं प्रियंकरम् ॥ ३ ॥ विवासयामास कथं क्रूरकर्माऽतिमूढधीः ॥ हे जना नात्र वस्तव्यं गच्छामोऽद्यैव काननम् ॥ ४ ॥ यत्र रामः सभार्यश्च सानुजो गन्तुमिच्छति ॥ पश्यन्तु जानकीं सर्वे पादचारेण गच्छतीम् ॥ ५ ॥

अहो यह कैसे कष्टकी वार्ता है, अपने बचनको सत्य करना, यह श्रीरामचन्द्रजीको योग्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं परन्तु महाराज दशरथने विषयलम्पट होकर स्त्रीके कहनेसे अपने प्रिय पुत्रको त्याग दिया, अर्थात् वनमें जानेको कह दिया, क्या इससे महाराज 'सत्यप्रतिज्ञ' कहला सक्ते हैं? और कैकेयी ऐसी दुष्टा किस प्रकार होगयी? श्रीरामचन्द्रजी 'सत्यप्रतिज्ञ' हैं, इस कारण उसका प्रिय कार्य्य करनेको तत्पर हैं, ऐसे होने-परभी उसने श्रीरामचन्द्रजीको नगरसे बाहर किसप्रकार निकलवाया है, ऐसा कार्य्य उसके हाथसे किसप्रकार हुआ? इससे प्रतीत होता है कि निःसन्देह उनकी बुद्धिको बड़ा भारी मोह होगया है, अरे पुरुषों! अब हमको भी यहाँ नहीं रहना चाहिये, स्त्री और छोटे भ्राता करके सहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीके मनमें जहाँ जानेकी इच्छा है तहां चलो आजही उस वनमेंही हमभी चलैं. अरे सब पुरुषों! देखो देखो! जानकीजी पैदल चली जारही है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ इन त्रिभुवनसुन्दरी सीताजीको आजपर्य्यन्त कभी क्या किसी पुरुषने देखाथा? देखो आज वह इतने जनसमूहमें प्रत्यक्ष पैरोंसे चल रही है ॥ ६ ॥ क्या श्रीरामचन्द्रजीभी हाथी घोड़े आदिके विना कभी पैरों चलतेथे? देखो देखो! हा! त्रिलोकीमें अद्वितीय सुन्दर अत्यन्त कोमल श्रेष्ठ पुरुषोंकी भी यह दशा! ॥ ७ ॥ यह तो कैकेयी नामसे सबका नाश करनेके निमित्त कोई राक्षसी उत्पन्न हुई है, सीताजीको पैरों चलते देखकर श्रीरामचन्द्रजीको भी दुःख होता होगा ॥ ८ ॥ यहाँ प्रारब्धकोही प्रबल कहना चाहिये, पुरुषका यत्न बिलकुल दुर्बल है, सत्पुरुषोंका समूह दुःखसे व्याकुल होकर इसप्रकार वार्त्ताकर रहाथा, इस साधुओंके समूहमें श्रेष्ठ वामदेव मुनि थे, वह कहने लगे—कि हे पुरुषो!

पुंभिः कदाचिद्दृष्टा वा जानकी लोकसुन्दरी ॥ साऽपि पादेन गच्छन्ती जनसंघेष्वनावृता ॥ ६ ॥ रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः ॥ गच्छति द्रक्ष्यथ विभुं सर्वलोकैकसुन्दरम् ॥ ७ ॥ राक्षसी कैकयीनाम्नी जाता सर्वविनाशिनी ॥ रामस्यापि भवेद्दुःखं सीतायाः पादयानतः ॥ ८ ॥ बलवान्विधिरेवात्र पुंप्रयत्नो हि दुर्बलः ॥ इति दुःखाकुले वृन्दे साधूनां मुनिपुङ्गवः ॥ ९ ॥ अब्रवीद्वामदेवोऽथ साधूनां सङ्घमध्यगः ॥ मानुशोचथ रामं वा सीतां वा वच्मि तत्त्वतः ॥ १० ॥ एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ॥ एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥ ११ ॥ असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम् ॥ एष मायागुणैर्युक्तस्तत्तदाकारवानिव ॥ १२ ॥ एष एव रजोयुक्तो ब्रह्माऽभूद्विश्वभावनः ॥ सत्वाविष्टस्तथा विष्णुस्त्रिजगत्प्रतिपालकः ॥ १३ ॥ एष रुद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम् ॥ एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्वतं मनुम् ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी इनके विषयमें तुम बिलकुल शोक मत करो, यह मै सत्य कहता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ अहो यह रामचन्द्र साक्षात् परमेश्वर आदि नारायण विष्णु भगवान्का अवतार है और यह जानकीजी लक्ष्मीजीका अवतार है, यही लोकमें 'योगमाया' इसनामसे प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥ इस समय जो रामचन्द्रजीके पीछे चल रहाहै यह लक्ष्मणजी साक्षात् शेषजीका अवतार है, यह श्रीरामचन्द्रजी मायाके गुणोंसे युक्त होकर अनेकप्रकारके रूपोंको धारण करतेहुएसे मालूम होते हैं ॥ १२ ॥ यहही रजोगुणसे युक्त होकर प्रथम सृष्टिकर्ताभी ब्रह्माजी होतेहुए, तथा सत्वगुणसे युक्त होकर त्रिलोकीके पालन करनेवाले विष्णु हुए ॥ १३ ॥ और प्रलयकालमें तमोगुणरूपी होकर जगत्का संहार करनेवाले रुद्र यहही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होतेभए, पूर्वकालमें इन्होंने मत्स्यावतार धारण करके वैवस्वत मनुनामक अपने भक्तको नौकामें बैठाकर प्रलयकालकी समाप्ति पर्य्यन्त उसकी रक्षा करतेभए, इनही श्रीरामचन्द्रजीने पूर्वकालमें समुद्रमन्थनके समय मन्दराचलपर्वत पातालमें चलागया तब कच्छपका रूप धारण करके उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण कियाथा, यहही रघुवीर पृथ्वी रसातलको चली गई तब प्रलयकालमें वराहरूप हुए थे॥१४॥१५॥१६॥ और उस समय इन्होंने अपनी दाढ़की नोकपर पृथ्वीको तोलकर रखलियाथा, इन श्रीरामचन्द्रजीनेही पूर्वकालमें प्रह्लादको वर देनेके निमित्त नृसिंह अवतार धारण कियाथा ॥ १७ ॥ और त्रिलोकीको काँटेके समान दुःख देनेवाले एक राक्षस हिरण्यकशिपुको अपनें नखोंसे फाड़ डालाथा, पूर्वकालमें अदितीने अपने

नाव्यारोप्य लयस्यान्तं पालयामास राघवः ॥ समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते ॥ १५॥ अधारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिकूर्मरूपी रघूत्तमः ॥ मही रसातलं याता प्रलये सूकरोऽभवत् ॥ १६ ॥ तोलयामास दंष्ट्राग्रे तां क्षोणीं रघुनन्दनः ॥ नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लादवरदः पुरा ॥ १७ ॥ त्रिलोककण्टकं रक्षः पाटयामास तन्नखैः ॥ पुत्रराज्यं हृतं दृष्ट्वा ह्यादित्या याचितः पुरा ॥ १८ ॥ वामनत्वमुपागम्य याच्ञया चाहरत्पुनः ॥ दुष्टक्षात्रियभूभारनिवृत्त्यै भार्गवोऽभवत् ॥ १९ ॥ स एव जगतां नाथ इदानीं रामतां गतः ॥ रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ मानुषेणैव मरणं तस्य दृष्टं दुरात्मनः ॥ राज्ञा दशरथेनापि तपसाराधितो हरिः ॥ २१ ॥ पुत्रत्वाकांक्षया विष्णो स्तदा पुत्रोऽभवद्धरिः ॥ स एव विष्णुः श्रीरामो रावणादिवधाय हि ॥ २२ ॥

पुत्र इन्द्रका राज्य राजा बलिने छीनलिया ऐसा देखकर इनकी प्रार्थना करी थी ॥ १८ ॥ तब इन्होंने "वामन" अवतार धारण करके भिक्षा माँगकर वह राज्य बलिसे फिर फेर लियाथा, फिर पृथ्वीके ऊपर दुष्ट क्षत्रियोंका बडा भार होगया, उस भारको दूर करनेके निमित्त इन्होंने 'परशुराम' अवतार धारण किया ॥ १९ ॥ वही जगत्के स्वामी इससमय 'रामावतार' धारण करके यहाँ उत्पन्न हुए हैं, यह अब शीघ्रही रावण आदि करोडों राक्षसोंका वध करैंगे ॥ २० ॥ तिस दुष्टका मरण मनुष्यकेही हाथसे ठहरा है; राजा दशरथने भी 'विष्णु भगवान्' मेरे पुत्र हो इस अभिलाषासे तप करके तिन दुःखहरण करनेवाले प्रभुकी आराधना करी थी तब वह हरि राजाके पुत्र हुए, वहही विष्णु भगवान् यह श्रीरामचन्द्रजी हैं, यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रावणादि राक्षसोंका वध करनेके निमित्त सहायतार्थ लक्ष्मणजीको साथ लेकर आजही वनको जायँगे, यह सीता सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाली तिन हरिकी माया है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजी वनको भेजनेमें राजा दशरथ अथवा कैकेयी किञ्चिन्मात्रभी कारण नहीं है, कलही नारदजीने पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त ब्रह्माजीका सन्देशा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा था ॥ २४ ॥ तब प्रत्यक्ष श्रीरामचन्द्रजीने अपने आप कहा था कि कल मैं बनको जाऊँगा, सो हे पुरुषो ! तुम्हे श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपके विषयमें अबभी अज्ञान है, इसकारण मैं कहताहूँ कि तुम श्रीरामचन्द्रजीकी बिलकुल चिन्ता मत करो ॥ २५ ॥ पृथ्वीतलमें जो पुरुष नित्य 'राम-राम' ऐसा जप करते हैं, उनको मृत्यु आदिका भय

गन्ताऽद्यैव वनं रामो लक्ष्मणेन सहायवान् ॥ एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ २३ ॥ राजा वा कैकयी वाऽपि नात्र कारणमण्वपि ॥ पूर्वेद्युर्नारदः प्राह भूभारहरणाय च ॥ २४ ॥ रामोऽप्याह स्वयं साक्षाच्छ्वो गमिष्याम्यहं वनम् ॥ अतो रामं समुद्दिश्य चिन्तां त्यजत बालिशाः ॥ २५ ॥ रामरामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि ॥ तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥ ॥ २६ ॥ का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशंका महात्मनः ॥ रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात्कलौ नान्येन केनचित् ॥ २७ ॥ मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत् ॥ भक्तानां भजनार्थाय रावणस्य वधाय च ॥ २८ ॥ राज्ञश्चाभीष्टसिद्ध्यर्थं मानुषं वपुराश्रितः ॥ इत्युक्त्वा विरामाथ वामदेवो महामुनिः ॥ २९ ॥ श्रुत्वा तेऽपि द्विजाः सर्वे रामं ज्ञात्वा हरिं विभुम् ॥ जहुर्हृत्संशयग्रन्थिं राममेवानुचिन्तयन् ॥ ३० ॥

कदापि नहीं होताहै ॥ २६ ॥ ऐसी जिनके नामकी महिमा है तिन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको क्या दुःख पानेकी शंका करनी चाहिये ? कलियुगमें मुक्ति मिलनेका साधन केवल रामनाम ही है, अन्य वस्तु नहीं है ॥ २७ ॥ वह लोकोंके कर्ता प्रभु मायाके योगसे मनुष्यका रूप धारण करके लोकोंके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, भक्तोंको भजन करनेका आधार मिलै, रावणका वध होय और राजा दशरथका मनोरथ सिद्ध होय, इन तीन उद्देशोंसे तिन प्रभुने यह मनुष्यका रूप धारण किया है, इतना कहकर वह वामदेव मुनि चुप होगए ॥ २८॥२९॥ इसप्रकार सुनकर उन द्विजों (ब्राह्मण—क्षत्रिय-वैश्यों)ने पूर्ण रीतिसे जान लिया कि यह श्रीरामचन्द्रजी भक्तोंका दुःख नष्ट करनेवाले व्यापक साक्षात् परमेश्वर हैं तब तिन सब पुरुषोंके हृदयकी सन्देहरूपग्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्थि (गाँठ) दूर होगई, और वह श्रीरामचन्द्रजीकाही चिन्तवन करने लगे ॥ ३० ॥ जो पुरुष सीता और श्रीरामचन्द्रजीके रहस्यको चिन्तन करताहै, उसको उत्तम तत्वज्ञानकी प्राप्ति होतीहै, और उसकी श्रीरामचन्द्रजीके विषे दृढ भक्ति होती है ॥३१॥ हे पुरुषो ! तुम श्रीरामचंद्रजीके प्रिय भक्त हो, इस रहस्यको गुप्त रक्खो, इतना कहकर वामदेवमुनि चले गए. तिन पुरुषोंकोभी श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परमेश्वर हैं ऐसा ज्ञान हो गया ॥ ३२ ॥ इधर श्रीरामचंद्रजी छोटे भ्राता लक्ष्मण और सीताजी सहित बेरोंक पिताके मंदिरमें जाकर कैकेयीसे यह बोले कि ॥ ३३ ॥ हे मातः ! तेरी अभिलाषाके अनुसार हम तीनौंजनें दण्डकारण्यको जानेके निमित्त निश्चय करके यहाँ आए हैं, अब पिताजी हमें शीघ्रही आज्ञा दें ॥ ३४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार

य इदं चिन्तयेन्नित्यं रहस्यं रामसीतयोः ॥ तस्य रामे दृढा भक्तिर्भवेद्विज्ञानपूर्विका ॥ ३१ ॥ रहस्यं गोपनीयं वो यूयं वै राघवप्रियाः ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रस्तेऽपि रामं परं विदुः ॥ ३२ ॥ ततो रामः समाविश्य पितृगेहमवारितः ॥ सानुजः सीतया गत्वा कैकयीमिदम ब्रवीत् ॥ ३३ ॥ आगताः स्मो वयं मातस्त्वयस्ते संमतं वनम् ॥ गन्तुं कृतधियः शीघ्रमाज्ञापयतु नः पिता ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा सहसोत्थाय चीराणि प्रददौ स्वयम् ॥ रामाय लक्ष्मणायाथ सीतायै च पृथक् पृथक् ॥३५ ॥ रामस्तु वस्त्राण्युत्सृज्य वन्यचीराणि पर्यधात् ॥ लक्ष्मणोऽपि तथा चक्रे सीता तन्न विजानती ॥ ३६ ॥ हस्ते गृहीत्वा रामस्य लज्जया मुखमैक्षत ॥ रामो गृहीत्वा तच्चीरमंशुके पर्यवेष्टयत् ॥ ३७ ॥ तद्दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे राजदाराः समंततः ॥ वसिष्ठस्तु तदाकर्ण्य रुदितं भर्त्सयन् रुषा ॥ ३८ ॥ कैकयीं प्राह दुर्वृत्ते राम एव त्वया वृतः ॥ वनवासाय दुष्टे त्वं सीतायै किं प्रयच्छसि ॥ ३९ ॥

कहतेही कैकेयीने तत्काल उठकर अपने आप श्रीरामचंद्रजीको और लक्ष्मणजीको तथा सीताजीको अलग अलग वल्कल दिये ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीने राजकीय वस्त्रोंको उतार कर वह वनके योग्य चीरवल्कल धारण किया, लक्ष्मणजीने भी ऐसाही किया, परन्तु सीताजी यह नहीं जानती थी कि चीरवल्कल किसप्रकार धारण करने चाहिये ॥ ३६ ॥ इस कारण सीता उन वल्कलोंको हाथमें लेकर लज्जापूर्वक श्रीरामचंद्रजीके मुखकी ओर देखने लगी, श्रीरामचंद्रजीने वह वल्कल सीताजीके हाथमेंसे लेकर वस्त्रोंके स्थानमें सीताजीको पहिनाए ॥ ३७ ॥ यह देखतेही चारोंओर सम्पूर्ण रणवासकी रानियें रोने लगीं, वह रोना सुनकर वसिष्ठजीको दुःख मालूम पड़ा, सो क्रोधीत होकर ललकारते हुए कैकेयीको कहने लगे कि—अरी दुष्टे ! यह तेरा कार्य्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बड़ाही दुःखदायी है, अरी ! तैने तो इकले रामचन्द्रजीकोही वनको भेजनेके लिये वर माँगाहै फिर सीताको वल्कल क्यों देती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ अब यह परम पतिव्रता सीता पातिभक्तिके कारण यदि रामचन्द्रजीके संग जाती है तो उसको बल्कल मत दो, वह खुशीसे दिव्य वस्त्र धारण करै, और नित्य शरीरपर आभूषण पहिरै ॥ ४० ॥ और प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करै, इसको सुखी देखकर रामचन्द्रका वनमें रहनेका दुःख दूर होयगा. राजा दशरथभी सुमन्त्रसे बोले कि हे सुमन्त्र ! रथ लाओ ॥ ४१ ॥ वनमें रहनेवाले मुनि प्रिय हैं जिनको ऐसे रामचन्द्र आदि तीनों यह रथमें बैठकर बनको जायँ. राजा दशरथने इसप्रकार कहकर रामचन्द्र सीता और लक्ष्मण इन तीनोंके मुखकी ओर देखा ॥ ४२ ॥ तिस देखनेके साथ ही दुःखसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े और रोदन करने लगे, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा वहने लगी, श्रीरामचन्द्रजीके समक्ष

यदि रामं समन्वेति सीता भक्त्या पतिव्रता ॥ दिव्याम्बरधरा नित्यं सर्वाभरणभूषिता ॥ ४० ॥ रमयत्वनिशं रामं वनदुःखनिवारिणी ॥ राजा दशरथोऽप्याह सुमन्त्रं रथमानय ॥ ४१ ॥ रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः ॥ इत्युक्त्वा राममालोक्य सीता चैव सलक्ष्मणम् ॥ ४२ ॥ दुःखान्निपतितो भूमौ रुरोदाश्रुपरिप्लुतः ॥ आरुरोह रथं सीता शीघ्रं रामस्य पश्यतः ॥ ४३ ॥ रामः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं रथमारुहत् ॥ लक्ष्मणः खड्गयुगलं धनुस्तूणीयुगं तथा ॥ ४४ ॥ गृहित्वा रथमारुह्य नोदयामास सारथिम् ॥ तिष्ठतिष्ठ सुमन्त्रेति राजा दशरथोऽब्रवीत् ॥ ४५ ॥ गच्छगच्छेति रामेण नोदितोऽचोदयद्रथम् ॥ रामे दूरं गते राजा मूर्छितः प्रापतद्भुवि ॥ ४६ ॥ पौरास्तु बालवृद्धाश्च वृद्धा ब्राह्मणसत्तमाः ॥ तिष्ठतिष्ठेति रामेति क्रोशंतो रथमन्वयुः ॥ ४७ ॥ राजा रुदित्वा सुचिरं मां नयन्तु गृहं प्रति ॥ कौसल्याया राममातुरित्याह परिचारकान् ॥ ४८ ॥

सीताजी शीघ्रही रथपर चढ़गई ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रजी पिताकी प्रदक्षिणा करके रथपर चढ़गए, लक्ष्मणजीभी दो खड्ग, दो धनुष और दो तर्कस, इतनी सामग्री लेकर रथपर चढ़े, और सारथीको शीघ्रही रथ हाँकनेके निमित्त कहा राजा दशरथ बोले कि हे सुमन्त्र ! थामले जरा थामले खड़ा रह ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने चल चल (रथको चलाओ, थामो मत) इसप्रकार कहा, इसकारण सुमन्त्रने रथ हाँकदिया, श्रीरामचन्द्रजी. के दूर चले जानेपर राजा दशरथ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४६ ॥ नगरमेंके आबालवृद्ध पुरुष और श्रेष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण; हे राम ! खडे रहो खड़े रहो इसप्रकार चिल्लाते हुये रथके पीछे चले ॥ ४७ ॥ राजा दशरथने बहुत कालपर्य्यन्त रोदन किया, अन्तमें अपने सेवकोंसे कहा कि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे रामचन्द्रकी माता जो कौसल्या तिसके मान्दिरमें ले चलो ॥ ४८ ॥ तहाँ मेरा कुछ काल जीवन होयगा, रामचन्द्रको मुझसे छुडा दिया, अब इस दुःखके कारण मैं आगेको बहुत काल नहीं जीऊँगा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर कौसल्याके मन्दिरमें पहुँचतेही राजा फिर मूर्छित होकर गिरपड़े, बहुत देरके अनन्तर होसमें तो हुए, परन्तु कुछ बोले नहीं चुप्पही बैठे रहे ॥ ५० ॥ इधर श्रीरामचन्द्रजी तमसा नदीके तटपर जाकर तहाँ सुखपूर्वक रहे, तिन प्रभुने कुछ भक्षण न किया केवल जलपान करके एक वृक्षके नीचे सीता सहित शयन किया. लक्ष्मणजी इस वार्ताको जानतेथे कि बड़े भ्राता पिताके समान होतेहैं और उनकी सेवा करना धर्म्म है सो उन्होने इस धर्म्मके अनुसार रात्रिभर जागरण किया, और सुमन्त्र करके सहित हाथमें धनुष लेकर रात्रिभर श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीकी रक्षा करी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ सब नगरके पुरुष तहाँ आकर रामचन्द्रजीके समीप रहे, उन सबने विचार

किंचित्कालं भवेत्तत्र जीवनं दुःखितस्य मे ॥ अत ऊर्ध्वं न जीवामि चिरं रामं विना कृतः ॥ ४९ ॥ ततो गृहं प्रविश्यैव कौसल्यायाः पपात ह ॥ मूर्छितश्च चिराद्बुद्धा तूष्णीमेवावतास्थिवान् ॥ ५० ॥ रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्रावसत्सुखी ॥ जलं प्राश्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद्विभुः ॥ ५१ ॥ सीतया सह धर्मात्मा धनुष्पाणिस्तु लक्ष्मणः ॥ पालयामास धर्मज्ञः सुमंत्रेण समन्वितः॥ ५२ ॥ पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः ॥ शक्ता रामं पुरं नेतुं नोचेद्गच्छामहे वनम् ॥ ५३ ॥ इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविस्मितः ॥ नाहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः ॥ ५४ ॥ भविष्यन्तीति निश्चित्य सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ इदानीमेव गच्छामः सुमन्त्र रथमानय ॥ ५५ ॥ इत्याज्ञप्तः सुमन्त्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत् ॥ आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रुतम् ॥ ५६ ॥ अयोध्याभिमुखं गत्वा कञ्चिद्दूरं ततो ययुः ॥ तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रातरुत्थाय दुःखिताः ॥ ५७ ॥

करलियाथा कि—यदि हम श्रीरामचन्द्रजीको लौटकर नगरमें नहीं लासकैंगे तो, हमभी उनके साथ वनको जायँगे ॥ ५३ ॥ उनका निश्चय जान कर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ उन श्रीरामचंद्रजीने मनमें विचार किया कि—मैं तो अब नगरको लौटकर जाऊँगाही नहीं, परन्तु इनको विनाकारण मेरे साथ क्लेश भोगना पड़ैगा, अब इसमें क्या युक्ति करनी चाहिये, विचारते विचारते अन्तमें एक निश्चय करके सुमन्त्रसे बोले कि, हे सुमन्त्र! रथ लाओ, हम अबही जायँगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ऐसी आज्ञा पातेही सुमन्त्रने रथके घोडे जोड़े और श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीको रथमें बैठाकर, किसीकोभी मालूम नहीं हुआ जल्दीसे चले गये ॥ ५६ ॥ लोगोंको बँहकानेके निमित्त प्रथम अयोध्याके सामनेको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थोड़ा मार्ग चलकर फिर दूरको वनमें चले गए. इधर वह पुरवासी प्रातःकालको उठकर श्रीरामचंद्रजीको ढूँढने लगे, जब रामचन्द्रजी नहीं मिले तो उन्हैं बड़ा दुःख हुआ ॥ ५७ ॥ और श्रीरामचंद्रजीके रथका चिह्न लग रहाथा, उस मार्गको देखते देखते नगरमें आगए, और वहां प्रतिदिन अन्तःकरणमें सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीका चिन्तवन करतेहुए रहने लगे ॥ ५८ ॥ सुमन्त्रनेभी आदरपूर्वक रथको शीघ्र चलाया सीताजीसहित श्रीरामचंद्रजी मनोहर देशोंको देखते हुए श्रीगङ्गाजीके तीरपर पहुँचे तहाँ शृंगबेरपुरके समीप श्रीरामचंद्रजीने श्रीगंगाजीका दर्शन किया और प्रणाम करके स्नान किया तब श्रीरामचंद्रजीके मनमें परम आनन्द हुआ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ तदनन्तर वह रघुवीर श्रीरामचन्दरजी एक शिंशपाके बृक्षके

रथनेमिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः ॥ हृदि रामं ससीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम् ॥ ५८ ॥ सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास सादरम् ॥ स्फीतान् जनपदान्पश्यन् रामः सीतासमन्वितः ॥ ५९ ॥ गङ्गातीरं समागच्छच्छृङ्गवेराविदूरतः ॥ गङ्गां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः ॥ ६० ॥ शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः ॥ ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम् ॥ ६१ ॥ सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत् ॥ फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥ ६२ ॥ रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दण्डवत्प्रापतद्भुवि ॥ गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे ॥ ६३ ॥ संपृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ॥ ६४ ॥ बभूव परमानंदः स्पृष्ट्वा तेऽङ्ग रघूत्तम ॥ नैषादराज्यमेतत्ते किङ्करस्य रघूत्तम ॥ ६५ ॥

नीचे बैठे. इधर गुहको (शृंगबेरपुरके भिल्लोंके राजाको) लोगोंसे श्रीरामचन्द्रजी आए हैं यह परमानन्दकी वार्त्ता मालूम पड़ी ॥ ६१ ॥ तब वह गुह भक्तिपूर्वक अपने मित्र और स्वामी जो श्रीरामचन्द्रजी तिनसे मिलनेके निमित्त आनन्दयुक्त होकर फल—मधु पुष्पादि लेकर जल्दीसे आया ॥ ६२ ॥ उसने श्रीरामचन्द्रजीके आगे वह उपायन (नजराना) रखकर, पृथ्वीपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया. श्रीरामचन्द्रजीने गुहको उठाकर शीघ्रही हृदयसे लगाया ॥ ६३ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने कुशल प्रश्न पूछे, तब गुह हाथ जोड़कर बोला कि हे श्रीरामचंद्रजी ! तुम सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाले हो, मेरा जन्म नीच निषाद (भिल्ल) के कुलमें हुआहै, परन्तु मैं आज धन्य हूँ ॥ ६४ ॥ हे रघुबीर ! तुम्हारे शरीरका स्पर्श

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होतेही मुझे परमानन्द प्राप्तहुआ, तुम्हारे सेवकका यह नैषाद (भिल्लोंका) राज्य आपके स्वाधीन है. हे रघुकुलके उद्धार करनेवाले श्रीरामचंद्रजी ! यहाँ रहकर तुम हमारा पालन करो, आप नगरको चलिये और मेरे स्थानको पवित्र करिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ हे देवाधिदेव ! षड्गुणैश्वर्युयुक्त श्रीरामचन्द्रजी ! मैने आपकेलीये फल मूल इकट्ठे करे हैं, उनको ग्रहण करके कृपा करिये, मैं आपका दास हूँ ॥ ६७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर तिस गुहसे बोले कि—हे मित्र ! मेरे वचन सुनो. मैं चौदह वर्षपर्य्यन्त गृहमें अथवा ग्राममें नहीं प्रवेश करूंगा ॥ ६८ ॥ तथा किसी दूसरेके दियेहुए फलमूलादिभी कुछ नहीं भक्षण करूंगा, यह तुम्हारा राज्य सम्पूर्ण मेराही है ऐसा मैं जानताहूं, क्यों कि तू मेरा अत्यन्त प्रिय मित्र है ॥ ६९ ॥

त्वदधीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह ॥ आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम् ॥ ६६ ॥ गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं सञ्चितानि मे ॥ अनुगृह्णीष्व भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम ॥ ६७ ॥ रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे ॥ न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नव वर्षाणि पञ्च च ॥ ६८ ॥ दत्तमन्येन नो भुञ्जे फलमूलादि किञ्चन ॥ राज्यं ममैतत्ते सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः ॥ ६९ ॥ वटक्षीरं समानाय्य जटामुकुटमादरात् ॥ बबन्ध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनंदनः ॥ ७० ॥ जलमात्रं तु संप्राश्य सीतया सह राघवः ॥ आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयनं लक्ष्मणेन हि ॥ ७१ ॥ उवास तत्र नगरप्रासादाग्रे यथा पुरा ॥ सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यंक इव संस्कृते ॥ ७२ ॥ ततोऽविदूरे परिगृह्य चापं सबाणतूणीरधनुः स लक्ष्मणः ॥ रक्ष रामं परितो विपश्यन् गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥ ७३ ॥ इति श्रीमदध्यात्म रामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

फिर रामचंद्रजीने गुहसे बड़का क्षीर मंगवाया और आदरपूर्वक लक्ष्मणजी करके सहित अपनी जटाओंका मुकुट बांधा ॥ ७० ॥ लक्ष्मणजीने तहाँ कुश और पत्तेआदिकी शय्या बनाई, सीताजी सहित श्रीरामचंद्रजी केवल जलपानमात्र करके उसपर सोए, जिसप्रकार पहिले अयोध्यानगरीमें राजमन्दिरकी अटारीकेविषे सजाएहुए पलँगपर शयन करतेथे, तिसीप्रकार तहाँभी वह सीतासहित श्रीरामचंद्रजी सुखपूर्वक सोए ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तहाँ समीपमेंही लक्ष्मणजी अपने समीप बाण, तर्कस और धनुष रखकर और बाण लगाया हुआ अपना धनुष हाथमें लेकर " सीतारामको भय देनेके निमित्त कोई जीव जन्तु तो नहीं आताहै" ऐसा चारों ओरको देखते हुए उनकी रक्षा करते रहे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके समीपही गुहभी धनुषके ऊपर बाण चढ़ाए हुए सावधान रहा ॥ ७३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकासहितःपञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! रामचंद्रजीको निद्रा आगई,ऐसा देखतेही गुहके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी और नम्रभावसे लक्ष्मणजीको कहने लगा कि हे भ्रातः ! तुम रामचंद्रजीकी ओर देखतेही हो, जो श्रीरामचंद्रजी सुन्दर मन्दिरमें सुवर्णकी शय्यापर बिछेहुए मृदु बिछानेपर सोतेथे, वहही आज सीतासहित कुश और पत्तोंकी शय्यापर सोरहे हैं ॥ १ ॥ २ ॥ दैव (प्रारब्ध) ने कैकेयीको श्रीरामचन्द्रजीके दुःखका कारण किया है, इसकारणही कैकेयीने मन्थराकी बुद्धिका सहारा लेकर यह पापाचरण-किया है ॥ ३ ॥ इसको सुनकर लक्ष्मणजी बोले कि हे मित्र ! मेरे वचनको सुन. कौन किसके दुःखका हेतु है और कौन किसके सुखका हेतु है ॥४॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ सुप्तं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः ॥ लक्ष्मणं प्राह विनयाद्भ्रातः पश्यसि राघवम् ॥ १ ॥ शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह ॥ यः शेते स्वर्णपर्यङ्के स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ॥ २ ॥ कैकेयी रामदुःखस्य कारणं विधिना कृता ॥ मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत् ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम ॥ कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा ॥ ४ ॥ स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः ॥ ५ ॥ सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ॥ अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥ ६ ॥ सुहृन्मित्रार्युदासीनद्वेष्यमध्यस्थबान्धवाः ॥ स्वयमेवाचरन्कर्म तथा तत्र विभाव्यते ॥ ७ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः ॥ यद्यद्यथागतं तत्तद्भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत् ॥ ८ ॥

सुख अथवा दुःख प्राप्त होनेका कारण प्राणीका पूर्वजन्मका अर्जित (किया हुआ) कर्म्म है ॥ ५ ॥ सुख अथवा दुःखका देनेवाला दूसरा कोई नहीं है "दूसरा मुझे दुःख देता है" ऐसी बुद्धि जो है वह कुबुद्धि है, "मैं सुखप्राप्तिके निमित्त उद्योग करताहूँ" यह अभिमान करनाभी वृथा है, क्योंकि सब प्राणी अपने कर्म्मरूपी बन्धनमें बँधे हुए हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं, ईश्वर कर्म्मोंके सूत्रको चलातेहैं, उसके अनुसार प्राणी सुख अथवा दुःखको प्राप्त होतेहैं ॥ ६ ॥ हितकर्त्ता, मित्र, शत्रु, उदासीन, द्वेषी (हिंसासे वैर करनेवाला), मध्यस्थ और बान्धव, यह सब अपने योग्य कर्म्मको करतेहुए हितकर्त्ता-शत्रु-मित्रादि प्रतीत होते हैं॥७॥ मनुष्य अपने कर्म्मोंके अधीन(स्वाधीन)है इसकारण सुख अथवा दुःख जो कुछ जैसा प्राप्त होय उसको वैसाही भोग-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर अपने अन्तःकरणको स्वस्थ रक्खै ॥ ८ ॥ हे गुह ! मुझे भोगोंकी प्राप्तिकी तथा भोगोंके त्यागकी इच्छा नहीं है. वह भोग मिलैं वा न मिलैं, कुछ होय, मैं कभीभी भोगोंके अधीन होनेवाला नहीं हूँ, और श्रीरामचन्द्रजीकी स्थितिभी मेरेही समान है इसकारण हमको किसी दशामें भी दुःख नहीं होता है ॥ ९ ॥ जिस देशमें जिस समय जिसकारणसे जिसकिसीने जो जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कर्म्म किया हो उसका फल तैसी तैसी रीतिसेही उसको भोगना पड़ता है, वह अन्यथा (तिसी रीतिसे न भोगना पड़ै ऐसा) नहीं होता है ॥ १० ॥ इसकारण शुभ अथवा अशुभ कैसाही फल प्राप्त होय तो हर्ष अथवा शोक करना वृथा है, ब्रह्माजीने जो कुछ जैसा रच दिया है उसको देवता अथवा दैत्य कोई भी उल्लंघन नहीं करसक्ता है ॥ ११ ॥ मनुष्यका सुख दुःखसे सर्वदा सम्बन्ध रहता है, क्योंकि यह शरीर केवल पुण्य और पापके संयो-

न मे भोगागमे वाञ्छा न मे भोगविवर्जने ॥ आगच्छत्वथ मागच्छत्वभोगवशगो भवे ॥ ९ ॥ यस्मिन् देशे च काले च यस्माद्वा येन केन वा ॥ कृतं शुभाशुभं कर्म योज्ये तत्तत्र नान्यथा ॥ १० ॥ अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाशुभफलोदये ॥ विधात्रा विहितं यद्यत्तदलङ्घ्य सुरासुरैः ॥ ११ ॥ सर्वदा सुखदुःखाभ्यां नरः प्रत्यवरुध्यते ॥ शरीरं पुण्यपापाभ्यामुत्पन्नं सुखदुःखवत् ॥ १२ ॥ सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ॥ द्वयमेतद्धि जन्तूनामलङ्घ्यं दिनरात्रिवत् ॥ १३ ॥ सुखमध्ये स्थितं दुःखं दुःखमध्ये स्थितं सुखम् ॥ द्वयमन्योऽन्यसंयुक्तं प्रोच्यते जलपङ्कवत् ॥ १४ ॥ तस्माद्धैर्येण विद्वांस इष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेति भावनात् ॥ १५ ॥

गसे उत्पन्न हुआ है, इसकारण इसको सुखदुःख लगेही रहते हैं ॥ १२ ॥ दिनके अनन्तर रात्रि और रात्रिके अनन्तर दिन होता है, कदापि चूकता नहीं है, इसीप्रकार सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख प्राप्त होता है, इस परम्पराको प्राणी कदापि उल्लंघन नहीं करसक्ताहै ॥ १३ ॥ पानी और पंक (कींच) यह दोनों जिसप्रकार एकमें एक मिले हुए होते हैं तिसी प्रकार सुखके मध्यमें दुःख स्थित है और दुःखके मध्यमें सुख स्थित है, अर्थात् सुख और दुःख दोनौ परस्पर मिले हुए हैं ॥ १४ ॥ इसकारण विद्वान् पुरुष इष्ट (प्रिय) अथवा अनिष्ट (अप्रिय) प्रसङ्ग आजाय तो धैर्य्य रखते हैं, यह सब मायाके खेल हैं ऐसा जानते हैं, इस कारणही उन विद्वान् पुरुषोंको सुखके समय आनन्द नहीं होता है और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुःखके समय मोह (खेद) नहीं होता है ॥ १५ ॥ गुह और लक्ष्मण इन दोनोंका ऐसा वार्त्तालाप हो रहाथा कि इतनेहीमें आकाश स्वच्छ दीखने लगा (प्रातःकाल हो गया) तब रामचन्द्रजीने अन्तःकरणको स्वस्थ करके आचमन किया अर्थात् प्रातःकालका सब विधि किया ॥ १६ ॥ और गुहसे बोले कि, हे मित्र ! मेरे लिये जलदीसे एक दृढ़ (मजबूतसी) नौका लाओ, इसप्रकार रामचन्द्रजीके भाषणको सुनतेही वह भिल्लों-का राजा गुह अपने आपही एक दृढ़ सुलक्षणसम्पन्न (अच्छी चलनेवाली) नौका लेकर आया और बोला कि, हे प्रभो ! आप सीताजीको और लक्ष्म-णजीको साथ लेकर इस नौकापर चढ़िये ॥ १७ ॥ १८ ॥ मैं अपने आपही जातिके पुरुषोंसहित सावधानीसे इस नौकाको चलाकर परले-

गुहलक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः ॥ बभूव समः सलिलं दृष्ट्वा प्रातः समाहितः ॥ १६ ॥ उवाच शीघ्रं सुदृढा नावमानय मे सखे ॥ श्रु-त्वा रामस्य वचनं निषादाधिपतिर्गुहः ॥ १७ ॥ स्वयमेव दृढां नावमानिनाय सुलक्षणाम् ॥ स्वामिन्नारुह्यतां नौकां सीतया लक्ष्मणेन च ॥ १८ ॥ वाहये ज्ञातिभिः सार्धमहमेव समाहितः ॥ तथेति राघवः सीतामारोप्य शुभलक्षणाम् ॥ १९ ॥ गुहस्य हस्तावालम्ब्य स्वयं चारुहदच्युतः ॥ आयुधादीन् समारोप्य लक्ष्मणोऽप्यारुरोह च ॥ २० ॥ गुहस्तान्वाहयामास ज्ञातिभिः सहितः स्वयम् ॥ गङ्गामध्ये गता गङ्गां प्रार्थयामास जानकी ॥ २१ ॥ देवि गङ्गे नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः ॥ रामेण सहिताहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये ॥ २२ ॥ सुरामांसोपहारैश्च नानाबलिभिरादृता ॥ इत्युक्त्वा परकूलं तौ शनैरुत्तीर्य जग्मतुः ॥ २३ ॥

पार पहुँचताहूँ. श्रीरामचन्द्रजीने " बहुत अच्छा " ऐसा कहकर तिस शुभलक्षणा सीताको चढ़ाया और वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आप नौकापर गुहके हाथके सहारे चढ़े, लक्ष्मणजीभी पहले आयुधआदि चढ़ाकर फिर आप चढ़े ॥ १९ ॥ २० ॥ जातिके पुरुषोंसहित गुहने तिन तीनोंके बैठनेपर नौकाको अपने आप चलाया. गङ्गाके मध्यमें नौका आनेपर जानकीजीने गंगाजीकी प्रार्थना करी ॥ २१ ॥ कि हे देवि ! गङ्गे ! तेरेको नमस्कार है, मैं श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी इन दोनो करके सहित जब वनवाससे लौटकर आऊँगी तब आदरपूर्वक मद्य, मांस, उपहार, नानाप्रकारकी बलि इतनी सामग्रीसे तेरा पूजन करूँगी. ऐसा भाषण करनेके अनन्तर सीता और श्रीरामचन्द्रजी धीरे २ भागीरथीको उतरकर परलेपार पहुँचे ॥ २२ ॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब गुहभी श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, राजाधिराज ! मैं तुम्हारे साथ चलताहूँ, मुझे आज्ञा दीजिये, नहीं तो प्राणोंको त्यागदूँगा ॥ २४ ॥ निषादपुत्र (गुह) का यह कहना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी उससे बोले कि, हे गुह मित्र ! मैं चौदह वर्षपर्य्यन्त दण्डकारण्यमें रहकर फिर लौटकर आऊँगा, इसवचनको सत्य मान, रामचंद्रका वचन कभी झूँठा नहीं होताहै. ऐसे कहकर श्रीरामचन्द्रजीने तिस भक्तको हृदयसे लगाया और वारंवार आश्वासन दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने गुहको लौटादिया, वहभी बड़ी कठिनतासे घरको गया, इधर तीनोंने एक पवित्र मृग मारा, उसके मांसका पाक किया और हवन करके भोजन किया फिर श्रीरामचंद्रजीने और सीताजीने वृक्षोंके पत्तोंपर शयन किया, इसप्रकार

गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह ॥ अनुज्ञां देहि राजेन्द्र नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ २४ ॥ श्रुत्वा नैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत् ॥ चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम् ॥ २५ ॥ आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम् ॥ इत्युक्त्वालिङ्ग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः ॥ २६ ॥ निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छ्राद्ययौ गृहम् ॥ तत्र मेध्यं मृगं हत्वा पक्त्वा हुत्वा च ते त्रयः ॥ २७ ॥ भुक्त्वा वृक्षदले सुप्त्वा सुखमासत तां निशाम् ॥ ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ २८ ॥ भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः ॥ तत्रैकं बटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे बटो ॥ २९ ॥ रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ॥ आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यतां मुनिसन्निधौ ॥ ३० ॥ तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः ॥ स्वामिन् रामः समागत्य वनाद्बहिरवस्थितः ॥ ३१ ॥ सभार्यः सानुजः श्रीमानाह मां देवसन्निभः ॥ भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम् ॥ ३२ ॥

उन्होंने वह रात्रि सुखपूर्वक बिताई. फिर श्रीरामचंद्रजी सीताजीको और लक्ष्मणजीको साथ लेकर भरद्वाजमुनिके आश्रममें जाकर बाहर खड़े रहे तहाँ एक बटु (ऋषिकुमार) को देखकर श्रीरामचंद्रजी बोले कि, हे बटो ! राजा दशरथका पुत्र रामचंद्र सीता और लक्ष्मणसहित बाहर वनमें आया है, ऐसा मुनिसे जाकर कह दो ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह सुनतेही तिस मुनिकुमारने तत्काल जाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा कि, हे महाराज ! श्रीरामचन्द्रजी आकर वनके बाहर खड़े हैं ॥ ३१ ॥ उनके साथमें उनकी स्त्री और छोटा भाईभी है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस देवताओंके समान तेजस्वी पुरुषने मुझसे कहा कि, भरद्वाजमुनिसे मैं आयाहूँ यह वार्ता यथोचित रीतीसे कहदो ॥ ३२ ॥ यह सुनतेही मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी उठे और अर्घ्य पाद्य आदि पूजाकी सामग्री साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आए ॥ ३३ ॥ उन्होंने लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके विधिपूर्वक उनका पूजन किया फिर बोले कि, हे कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी ! मेरी पर्णकुटीमें चलो और हे रघुनन्दन ! अपने चरणोंकी धूलिसे उस स्थानको पवित्र करो, भरद्वाजमुनि इसप्रकार कहकर सीताजीसहित श्रीरामलक्ष्मणको आश्रममें ले आए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और भक्तिपूर्वक फिर पूजन करके उनका उत्तम रीतिसे आदर और आतिथ्य किया फिर भरद्वाजमुनि बोले कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! तपश्चर्याका उत्तम फल यही है कि आपका दर्शन होय, आज तुम्हारा समागम हुआ, इसकारण मेरी तपश्चर्य्या (तप करना) सफल हो

तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः ॥ गृहीत्वार्घ्यं च पाद्यं च रामसामीप्यमाययौ ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा रामं यथान्यायं पूजयित्वा सलक्ष्मणम् ॥ आह मे पर्णशालां भो राम राजीवलोचन ॥ ३४ ॥ आगच्छ पादरजसा पुनीहि रघुनन्दन ॥ इत्युक्त्वोटजमानीय सीतया सह राघवौ ॥ ३५ ॥ भक्त्या पुनः पूजयित्वा चकारातिथ्यमुत्तमम् ॥ अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव सङ्गमात् ॥ ३६ ॥ ज्ञातं राम तवोदन्तं भूतं चागामिकं च यत् ॥ जानामि त्वां परात्मानं मायया कार्यमानुषम् ॥ ३७ ॥ यदर्थमवतीर्णोऽसि प्रार्थितो ब्रह्मणा पुरा ॥ यदर्थं वनवासस्ते यत्करिष्यसि वै पुरः ॥ ३८ ॥ जानामि ज्ञानदृष्ट्याहं जातया त्वदुपासनात ॥ इतः परं त्वां किं वक्ष्ये कृतार्थोऽहं रघूत्तम ॥ ३९ ॥ यस्त्वां पश्यामि काकुत्स्थं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ रामस्तमभिवाद्याह सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ ४० ॥

गई ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्र ! पूर्वकालमें बीतेहुए और आगेको होनेवाले तुम्हारे सम्पूर्ण चरित्रको मैं जानताहूं, तुम साक्षात् परमेश्वर हो किसी कार्य्यके निमित्त मायाकरके तुमने मनुष्यरूप धारण किया है ॥ ३७ ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेसे तुमने जिस कार्य्यके निमित्त अवतार धारण किया है और जिसकारणसे वनवासको आए हो तथा आगे जो कुछ कार्य्य करोगे वह सब मैं तुम्हारी उपासनासे प्राप्त हुई ज्ञानदृष्टिसे जानताहूं, इससे अधिक और मैं आपके विषयमें क्या वर्णन करूँ. हे रघुवीर ! मैं आज कृतकृत्य हो गया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ क्यों कि मुझे तुम्हारा दर्शन मिला, तुम प्रकृतिके नियन्ता परमेश्वर ककुत्स्थराजाके वंशमें उत्पन्न हुए हो, तदनन्तर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचंद्रजीने तिन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुनिको प्रणाम किया और बोले ॥४०॥ कि अहो ब्रह्मनिष्ठ महाराज ! हमसरीखे अधम क्षात्रियोंपर आप अनुग्रह करतेही हैं, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजी और भरद्वाजमुनिका वार्त्तालाप हुआ तदनन्तर उसदिन वह तीनोंजन भरद्वाजमुनिके पास रहे ॥ ४१ ॥ प्रातःकाल उठकर मुनिने स्नान करके श्रीरामचन्द्रजीको आगे जानेका मार्ग दिखाया, तदनन्तर मार्ग दिखानेके लिये भरद्वाजमुनिके भेजेहुए मुनिकुमारोंके साथ उस मार्गसे यमुनाको उतरकर चित्रकूटपर्वतके समीप आए, जहाँ वाल्मीकिऋषिका आश्रम था, चलते चलते श्रीरामचन्द्रजी तिस वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे, तहाँ अनेक ऋषि थे ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ वह स्थान अनेक जातिके पक्षियोंसे भर रहाथा, वहाँ पुष्प और फल सदा लगे रहते थे, तहाँ रहनेवाले मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीको देखकर राम, लक्ष्मण, सीता, इन तीनोंने शिरसे प्रणाम किया, वाल्मीकिऋषिने जो आगे देखा तो साक्षात् लक्ष्मीके पतिका अवतार त्रैलोक्यसुन्दर श्रीरामचन्द्र-

अनुग्राह्यास्त्वया ब्रह्मन्वयं क्षत्रियबान्धवाः ॥ इति संभाष्य तेऽन्योन्यमुषित्वा मुनिसन्निधौ ॥ ४१ ॥ प्रातरुत्थाय यमुनामुत्तीर्य मुनिदारकैः ॥ कृताप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघवः ॥ ४२ ॥ प्रययौ चित्रकूटाद्रिं वाल्मीकेर्यत्र चाश्रमः ॥ गत्वा रामोऽथ वाल्मीकेराश्रमं ऋषिसंकुलम् ॥ ४३ ॥ नानामृगद्विजाकीर्णं नित्यपुष्पफलाकुलम् ॥ तत्र दृष्ट्वा समासीनं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥ ४४ ॥ ननाम शिरसा रामो लक्ष्मणेन च सीतया ॥ दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम् ॥ ४५ ॥ जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥ कन्दर्पसदृशाकारं कमनीयाम्बुजेक्षणम् ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वैव सहसोत्तस्थौ विस्मयानिमिषेक्षणः ॥ आलिङ्ग्य परमानन्दं रामं हर्षाश्रुलोचनः ॥ ४७ ॥ पूजयित्वा जगत्पूज्यं भक्त्यार्घ्यादिभिरादृतः ॥ फलमूलैः समधुरैर्भोजयित्वा च लालितः ॥ ४८ ॥ राघवः प्राञ्जलिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः ॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकानागता वयम् ॥ ४९ ॥

जी दृष्टि पड़े ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उनके साथमें जानकीजी और लक्ष्मणजी यह दोनों थे, जटाओंके मुकुटसे शोभायमान दीखतेथे, उनका रूप कामदेवके समान था और नेत्र कमलके समान मनोहर थे ॥ ४६ ॥ उनको देखतेही आश्चर्य्यसे मुनिकी दृष्टि स्तब्ध होगई (टक्की बाँधकर उनको देखने लगे) और तत्काल उठकर परमानन्दरूप श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाया, तब मुनिके नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसुओंका प्रवाह बहने लगा ॥ ४७ ॥ फिर तिन वाल्मीकिमुनिने सम्पूर्ण जगत्के पूज्य जो श्रीरामचन्द्रजी तिनकी अर्घ्य पाद्यआदि सामग्रीसे आदर और भक्तिपूर्वक पूजा करी, मधुर मधुर फल मूल मंगवाए और हे पुत्र रामचंद्र ! यह फल मधुर है, इसको भक्षण करो ऐसी वारंवार विनंति करके उनका गौरव किया ॥ ४८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर वाल्मीकिमुनिसे बोले कि—महाराज! पिताजीकी आज्ञाको मानकर हम दण्डकारण्यमें आए हैं ॥ ४९ ॥ आप सब जानते ही हैं, फिर इसका कारण मैं आपके सामने क्या कहूँ? अर्थात् कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है. अब जो मेरे सुखपूर्वक निवास करनेके योग्य हो ऐसा एक स्थान आप मुझे बतादीजिये ॥ ५० ॥ तहाँ मैं सीतासहित कुछ काल व्यतीत करूँगा, श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार कहनेपर वाल्मीकिमुनि हँसते हँसते इनसे बोले ॥ ५१ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी! तुमही सब लोकके रहनेका उत्तम स्थान हो, तैसेही सम्पूर्ण प्राणी तुम्हारे रहनेके स्थान हैं ॥ ५२ ॥ हे रघुनन्दन! यह तुम्हैं साधारण स्थान बतादिया, अब तुम सीताजीसहित रहनेके योग्य स्थान कौनसा है? ऐसा विशेष प्रश्न करतेहो तो हे रघुवीर! तुम्हारे नित्य निवास करनेका स्थान कौनसा है सो कहताहूं. लोकमें जो पुरुष शान्त हैं और अमुक

भवन्तो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम् ॥ यत्र मे सुखवासाय भवेत्स्थानं वदस्व तत् ॥ ५० ॥ सीतया सहितः कालं किंचित्तत्र नयाम्यहम् ॥ इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमब्रवीत् ॥ ५१ ॥ त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम् ॥ तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि ॥ ५२ ॥ एवं साधारणं स्थानमुक्तं ते रघुनन्दन ॥ सीतया सहितस्येति विशेषं पृच्छतस्तव ॥ ५३ ॥ तद्वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत्ते नियतमन्दिरम् ॥ शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टृणां च जन्तुषु ॥ त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम् ॥ ५४ ॥ धर्मा धर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम् ॥ सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमन्दिरम् ॥ ५५ ॥ त्वन्मन्त्रजापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः ॥ निर्द्वन्द्वो निःस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम् ॥ ५६ ॥

श्रेष्ठ है अमुक निकृष्ट (बुरा) है ऐसी भेददृष्टि न रखकर जो पुरुष सर्वत्र समदृष्टि होतेहैं और किसीभी प्राणीसे द्वेषभाव (बैरभाव) नहीं रखते हैं, नित्य तुम्हारी भक्ति करतेहैं, उन पुरुषोंका हृदय तुम्हारे निवास करनेका सबसे उत्तम स्थान है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जो पुरुष विहित और निषिद्धआदि सम्पूर्ण कर्म्मोंका त्याग करके केवल एक तुम्हारीही सेवा करते हैं उनका हृदयभी सीताजीसहित तुम्हारे सूखपूर्वक निवास करनेका सुन्दर स्थान है ॥ ५५ ॥ जो पुरुष अहंता-ममता, जय-पराजय, लाभ—हानि इत्यादि द्वन्द्वोंको त्यागकर और अभिलाषारहित होकर तुम्हारी शरणागत जातेहैं और तुम्हारे नाममन्त्रका जप करतेहैं उनका हृदयभी तुम्हारे निवास करनेका उत्तम स्थान है ॥ ५६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिन पुरुषोंने अहङ्कार, प्रीति और द्वेष त्याग दियेहैं और मृत्तिकाका ढ़ेला और सोना इनपर समदृष्टि करके शान्ति स्वीकार करलीहैं उन पुरुषोंका हृदयभी तुम्हारे निवास करनेका उत्तम स्थान है ॥ ५७ ॥ जो पुरुष तुम्हारेविषे मन और बुद्धिको लगाकर नित्य सन्तुष्ट रहतेहैं और अपने सम्पूर्ण कर्मोंको तुम्हारे अर्पण करतेहैं उन पुरुषोंका हृदयभी तुम्हारे निवास करनेका उत्तम स्थान है ॥ ५८ ॥ जो अप्रिय वस्तुको प्राप्त होकर द्वेषभाव नहीं करतेहैं और प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होनेपर जिन्हैं आनन्द नहीं प्रतीत होता है और "यह सब माया है" ऐसा निश्चय करके जो पुरुष तुम्हारा भजन करतेहैं उन पुरुषोंका मनभी तुम्हारे निवास करनेका स्थान है ॥ ५९ ॥ जन्म लेना १, उत्पत्तिके अनन्तर होना २, वृद्धिको प्राप्त होना ३, पूर्ण होना अर्थात् परिणामावस्थाको प्राप्त होना ४, क्षीण होनेलगना ५ और नाशको प्राप्त होना ६, यह छः भावविकार देहको प्राप्त होतेहैं आत्माके नहीं हैं, क्षुधा

निरहङ्कारिणः शान्ता ये रागद्वेषवर्जिताः ॥ समलोष्टाश्मकनकास्तेषा ते हृदयं गृहम् ॥ ५७ ॥ त्वयि दत्तमनोबुद्धिर्यः सन्तुष्टः सदा भवेत् ॥ त्वयि संत्यक्तकर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम् ॥ ५८ ॥ यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति ॥ सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम् ॥ ५९ ॥ षड्भावादिविकारान्यो देहे पश्यति नात्मनि ॥ क्षुत्तृट् सुखं भयं दुःखं प्राणबुद्ध्योर्निरीक्षते ॥ ६० ॥ संसारधर्मैर्निर्मुक्तस्तस्य ते मानसं गृहम् ॥ ६१ ॥ पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं त्वां चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ॥ अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं तेषां हृदब्जे संह सीतया वस ॥ ६२ ॥ निरन्तराभ्यासदृढीकृतात्मनां त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितानाम् ॥ त्वन्नामकीर्त्या हतकल्मषाणां सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे ॥ ६३ ॥

और तृषा (प्यास) यह विकार प्राणके हैं, तथा सुख दुःख और भय यह विकार बुद्धिके हैं आत्माके नहीं हैं, ऐसी जिसकी दृष्टि होतीहै वह पुरुष संसारकी प्राप्तिके कारण जो पुण्य और पाप इन धर्म्मोंसे मुक्त होताहै उन पुरुषोंका अन्तःकरणभी सीतासहित तुम्हारे निवास करनेका श्रेष्ठ स्थानहै ॥६०॥६१॥ श्रीरामचंद्रजी सबकी बुद्धियोंकी वृत्तियोंमें निवास करतेहैं वह ज्ञानस्वरूप हैं, उनका स्वरूप भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीनों कालोंमें नष्ट नहीं होताहै, उनकेविषे परिणाम और द्वेषभाव नहीं होता है, वह श्रेष्ठ ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होकरभी निर्लेप हैं, ऐसी तुम्हारे विषयमें जिनकी दृष्टि है उन पुरुषोंके हृदयरूपी कमलमें तुम सीताजीसहित निवास करो ॥ ६२ ॥ निरन्तर ध्यानका अभ्यास करनेसे जिनके मन तुम्हारे स्वरूपकेविषे निश्चल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगए हैं, उन पुरुषोंके हृदयकमलकेविषे सीतासहित तुम्हारे निवास करनेका स्थान है ॥ ६३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारे नामकी महिमा कौन वर्णन करसक्ता है और यदि उसका वर्णन करै तो किसप्रकार करै ? तुम्हारे नामके प्रभावसेही मैं इस ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त हुआहूं ॥ ६४ ॥ मैं पहिले किरातों (भिल्लों) के साथ रहा और उनकेही साथ वृद्धिको प्राप्त हुआ, केवल जन्ममात्रसेही मुझमें ब्राह्मणपना था, बाकी मैं बिलकुल शूद्रोंके समान आचार करनेमें तत्पर रहताथा ॥ ६५ ॥ इन्द्रियें बिलकुल मेरे वशमें नहींथीं, तिन इन्द्रियोंके वशमें होनेके कारण मैं एक शूद्रस्त्रीकेविषे आसक्त होगया, उस स्त्रीकेविषे मुझसे बहुत पुत्र उत्पन्न हुए, फिर मैं चोरोंके समागमसे चोर होगया ॥ ६६ ॥ मैं नित्य हाथमें धनुषबाण

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम् ॥ यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान् ॥ ६४ ॥ अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः ॥ जन्ममात्रद्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥ ६५ ॥ शूद्रायां बहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः ॥ ततश्चौरैश्च संगम्य चौरोऽहमभवं पुरा ॥ ६६ ॥ धनुर्बाणधरो नित्यं जीवानामन्तकोपमः ॥ एकदा मुनयः सप्त दृष्टा महति कानने ॥ ६७ ॥ साक्षान्मया प्रकाशन्तो ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ तानन्वधावं लोभेन तेषां सर्वपरिच्छदान् ॥ ६८ ॥ ग्रहीतुकामस्तत्राहं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रुवम् ॥ दृष्ट्वा मां मुनयो पृच्छन्किमायासि द्विजाधम ॥ ६९ ॥ अहं तानब्रुवं किञ्चिदादातुं मुनिसत्तमाः ॥ पुत्रदारादयः सन्ति बहवो मे बुभुक्षिताः ॥ ७० ॥ तेषां संरक्षणार्थाय चरामि गिरिकानने ॥ ततो मामूचुरव्यग्रा पृच्छ गत्वा कुटुम्बकम् ॥ ७१ ॥

लेकर प्राणियोंको मृत्युके समान प्रतीत होताथा अर्थात् अनेक प्राणियोंका बध करताथा ॥ ६७ ॥ एक समय एक बड़े बनमें परम तेजस्वी साक्षात् सप्तर्षि मेरी दृष्टि पड़े, उनकी कान्ति अग्निके वा सूर्य्यके समान थी ॥ ६८ ॥ लोभसे और इनका सर्वस्व छीन लूँ इस इच्छासे, " खड़े रहो, खड़े रहो " ऐसे कहताहुआ मैं उनके पीछे दौड़ा, मुझे देखकर मुनियोंने बूझा कि अरे अधम ब्राह्मण ! हमारे ऊपर तू क्यौं दौड़ा चला आता है ॥ ६९ ॥ तब मैंने उनसे कहा कि, हे श्रेष्ठमुनियों ! तुमसे कुछ छीनलूँ इस लिये मैं आयाहूं, मेरे बहुतसे स्त्री और बालक हैं, उनको भूँक लगी है ॥ ७० ॥ उनका निर्वाह करनेके निमित्त मैं पर्वतपर और बनमें फिराहूँ. हे श्रीरामचन्द्रजी ! मुझे देखतेही प्राणियोंको भय लगताथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु इन मुनियोंको भय नहीं हुआ, मेरे इस कहनेको सुनतेही वह मुझसे कहने लगे कि अरे ! तू अपने घर जा और अपने कुटुम्बके मनुष्योंसे बूझ कि मैं प्रतिदिन जो कुछ पाप इकट्ठा करताहूँ उसके भागी (हिस्सेदार) तुम हो वा नहीं, यह बात कुटुम्बके प्रत्येक मनुष्यसे अलग अलग बूझ ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ तेरे लौटकर आने पर्य्यंत हम यहीं हैं, यह तू निश्चय रख. मैं "बहुत अच्छा" इसप्रकार कहकर घरको गया और मुनियोंने जो कहाथा उसके अनुसार स्त्री पुत्रादिकोंसे बूझने लगा, तब हे श्रीरामचन्द्रजी ! उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि वह सम्पूर्ण पाप तेरेही हैं, हम तो केवल जो तुम लाकर हमैं दोगे उस द्रव्यादिको भोगनेकेही भागी (हिस्सेदार) हैं ॥ ७३ ॥७४॥ यह सुनतेही मुझे बुरा मालूम पड़ा, मैं इन स्त्रीपुत्रादिकोंका कुछ

यो यो मया प्रतिदिनं क्रियते पापसंचयः ॥ यूयं तद्भागिनः किं वा नेति वेति पृथक् पृथक् ॥ ७२ ॥ वयं स्थास्यामहे तावदागमिष्यसि निश्चयः ॥ तथेत्युक्त्वा गृहं गत्वा मुनिभिर्यदुदीरितम् ॥ ७३ ॥ आपृच्छं पुत्रदारादींस्तैरुक्तोऽहं रघूत्तम ॥ पापं तवैव तत्सर्वं वयं तु फलभागिनः ॥ ७४ ॥ तच्छ्रुत्वा जातनिर्वेदो विचार्य पुनरागमम् ॥ मुनयो यत्र तिष्ठन्ति करुणापूर्णमानसाः ॥ ७५ ॥ मुनीना दर्शनादेव शुद्धान्तःकरणोऽभवम् ॥ धनुरादीन्परित्यज्य दण्डवत्पतितोऽस्म्यहम् ॥ ७६ ॥ रक्षध्वं मा मुनिश्रेष्ठा गच्छन्तं निरयार्णवम् ॥ इत्यग्रे पतितं दृष्ट्वा मामूचुर्मुनिसत्तमाः ॥ ७७ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते सफलः सत्समागमः ॥ उपदेक्ष्यामहे तुभ्यं किञ्चित्तेनैव मोक्ष्यसे ॥७८॥ परस्परं समालोच्य दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः ॥ उपेक्ष्य एव सद्भिस्तथापि शरणं गतः ॥ रक्षणीयः प्रयत्नेन मोक्षमार्गोपदेशतः ॥ ७९ ॥

भी उपकार नहीं करूंगा, ऐसा विचार करके मैं जहाँ वह दयालु हृदयवाले मुनि खड़े थे तहाँ लौटकर फिर आया ॥ ७५ ॥ मुनियोंका दर्शन होतेही मेरा अंतःकरण शुद्ध होगया, मैंने धनुष आदिको फेंककर उनको साष्टांग नमस्कार किया और विनती करी ॥ ७६ ॥ कि हे श्रेष्ठ मुनीश्वरो ! मैं नरकके समुद्रमें जाता हूं मेरी रक्षा करो मैं आगे खड़ाहुआ हूँ, ऐसा देखकर वह श्रेष्ठ मुनीश्वर मुझसे बोले कि उठ उठ तेरा कल्याण होय, साधुओंका समागम कदापि निष्फल नहीं होता है, हम तुझे थोड़ासा उपदेश करतेहैं, उसके द्वारा तू संसारदुःखसे छूट जायगा, फिर वह मुनि एकएककी ओरको देखकर विचारकरके आपसमें कहने लगे कि यह ब्राह्मण अधम और दुराचारी होनेके कारण उपेक्षा करनेके योग्य है अर्थात् इसको उपदेश न करके उदासीन रहना चाहिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह श्रेष्ठ है तथापि सदाचरणी शरण आएहुए मनुष्यको मोक्षमार्गका उपदेश करके प्रयत्नपूर्वक रक्षा करते हैं ॥ ७७॥ ७८॥ ७९॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! उन ऋषियोंने इसप्रकार परस्पर वार्त्तालाप किया और यहही निश्चय करके तुम्हारे नामके "मरा" यह विपरीत (उलटे) अक्षर कहकर एकाग्रमनसे उस स्थानमेंही बैठकर जप करनेके निमित्त मुझे आज्ञा दी ॥ ८० ॥ फिर हम लौटकर आवैं तबतक हमारे कहनेके अनुसार नित्य जप करते रहो, ऐसे कहकर यह दिव्यस्वरूप सब मुनि चलेगए ॥ ८१ ॥ मैं उनके उपदेशके अनुसार वैसाही करतारहा, एकाग्रमनसे जप करते करते अनायासमें ही मेरी बाह्य विषयोंकी स्मृति जाती रही ॥ ८२ ॥ मैने सब सङ्गका परित्याग करादिया और शरीर किञ्चिन्मात्रभी हला नहीं ऐसी रीतिसे बहुत

इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम् ॥ एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा ॥ ८० ॥ आगच्छामः पुनर्यावत्तावदुक्तं सदा जप ॥ इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे मुनयो दिव्यदर्शनाः ॥ ८१ ॥ अहं यथोपदिष्टं तैस्तथाऽकरवमञ्जसा ॥ जपन्नेकाग्रमनसा बाह्यं विस्मृतवानहम् ॥ ८२ ॥ एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः ॥ सर्वसङ्गविहीनस्य वल्मीकोऽभून्ममोपरि ॥ ८३ ॥ ततो युगसहस्रान्ते ऋषयः पुनरागमन् ॥ मामूचुर्निष्क्रमस्वेति तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थितः ॥ ८४ ॥ वल्मीकान्निर्गतश्चाहं नीहारादिव भास्करः ॥ मामप्याहुर्मुनिगणा वाल्मीकिस्त्वं मुनीश्वर ॥ ८५ ॥ वल्मीकात्संभवो यस्माद्द्वितीयं जन्म तेऽभवत् ॥ इत्युक्त्वा ते ययुर्दिव्यगतिं रघुकुलोत्तम ॥ ८६ ॥ अहं ते राम नाम्नश्च प्रभावादीदृशोऽभवम् ॥ अद्य साक्षात्प्रपश्यामि ससीतं लक्ष्मणेन च ॥ ८७ ॥ रामं राजीवपत्राक्षं त्वां मुक्तो नात्र संशयः ॥ आगच्छ राम भद्रं ते स्थलं वै दर्शयाम्यहम् ॥ ८८ ॥

दिन बीतगए तब मेरे शरीरपर वल्मीक (बांबीरे तेका ढ़ेर) होगया ॥ ८३ ॥ फिर सहस्रयुग! व्यतीत होनेपर वह ऋषि लौटकर आए और मुझसे "बाहर आओ" ऐसा कहा यह सुनकर तत्कालही मैं उठकर खड़ा होगया ॥ ८४ ॥ और जैसे नीहार (कहर) मेंसे सूर्य्य बाहर निकलताहै, तिसप्रकार वल्मीकसे बाहर निकला, तब वह सप्तऋषि मुझसे बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! तेरा "वाल्मीकि" यह नाम हम रखतेहैं ॥ ८५ ॥ क्योंकि इस समय तू वल्मीक (रेतेके ढेर) से उत्पन्न हुआहै, यह तेरा दूसरा जन्म हुआ. हे रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी! इतना कहकर वह मुनि स्वर्गके मार्गको चलेगए ॥ ८६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुह्मारे नामके प्रभावसे इस स्थितिको प्राप्त हुआ हूँ. आज साक्षात् सीताजी और लक्ष्मणजीसहित कमलनयन श्रीराम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रजीका दर्शन हुआ, अब मैं मोक्षको प्राप्त होजाऊंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं. हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे निवास करनेके योग्य स्थान दिखाताहूं, तुम्हारा कल्याण होय ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ वह तेजस्वी मुनि इसप्रकार वार्त्ता करके शिष्योंकी मण्डलीकरके सहित श्रीरामलक्ष्मणको साथ लेकर आगे चले और उन्होंने पर्वत और गङ्गा इन दोनोंके मध्यमें श्रीरामचन्द्रजीको रहनेके योग्य स्थान दिखादिया ॥ ८९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने पर्वतपर रहनेवाले भिल्लोंसे तहाँ एक बड़ी लम्बी चौंड़ी शाला और पूर्वपश्चिम तथा एक दक्षणोत्तर ऐसे दो सुन्दर मन्दिर बनवाए, जो श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण जगत्के निवासस्थान थे उन्होने भी रहनेके निमित्त मन्दिर बनवाए ॥ ९० ॥ जानकीजी और लक्ष्मणजी इन दोनोंकरके संहित श्रीरामचंद्रजी वह देवताओंके समान तीनोजने तिस उत्तम मन्दिरमें रहनेलगे ॥ ९१ ॥ तहाँ वाल्मीकि मुनिने सीताजी और लक्ष्मणजी

एवमुक्त्वा मुनिः श्रीमाँल्लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ शिष्यैः परिवृतो गत्वा मध्ये पर्वतगङ्गयोः ॥ ८९ ॥ तत्र शालां सुविस्तीर्णां कारयामास वासभूः ॥ प्राक्पश्चिमं दक्षिणोदक् शोभनं मन्दिरद्वयम् ॥ ९० ॥ जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे ॥ ९१ ॥ वाल्मीकिना तत्र सुपूजितोऽयं रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ॥ देवैर्मुनीन्द्रैः सहितो मुदाऽऽस्ते स्वर्गे यथा देवपतिः स शच्या ॥ ९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ सुमन्त्रोऽपि तदायोध्यां दिनान्ते प्रविवेश ह ॥ वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य बाष्पाकुलितलोचनः ॥ १ ॥ बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ ॥ जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह ॥ २ ॥

सहित श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम रीतिसे पूजा करी, स्वर्गमें इन्द्राणीसहित इन्द्र देवताओंसहित जिसप्रकार आनन्दसे रहतेहैं. तिसी प्रकार तहाँ सीतासहित श्रीरामचन्द्रजी अनेक श्रेष्ठमुनियोंसहित आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकासहितः षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ इधर सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीको गङ्गाके तीरपै छोड़कर लौटा तो सायंकालके समय अयोध्यामें आया, नगरमें आतेहुए लज्जाके कारण उसने अपना मुख वस्त्रसे ढ़ंकलिया और उसके नेत्र आँसुओंसे भरआए ॥ १ ॥ वह अपने रथको बहार खड़ाकरके राजा दशरथका दर्शन करनेके निमित्त मन्दिरमें गया, तहाँ उसने जयजयकार पूर्वक महाराज दश-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रथकी स्तुति करके उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥ सुमन्त्र प्रणाम करता है, ऐसा देखतेही राजा दशरथका अन्तःकरण विव्हल हो आया, तिस दशा मेंही वह सुमन्त्रसे बोले कि हे सुमन्त्र ! सीता और लक्ष्मण इन दोनों सहित श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं ! ॥ ३ ॥ तूने उनको कहाँछोड़ाथा ! मुझ पापीको उन्होंने क्या कहा मेरे ! निर्दयीपनेके कारण सीता और लक्ष्मणने मुझे क्या कहा ! ॥ ४ ॥ हा राम ! हा गुणनिधे ! हा मधुरभाषिणि सीते ! मैं दुःखके समुद्रमें मग्न होकर मरणोन्मुख (मृत्युके सामने प्राप्त) होगयाहूँ, यह मेरी दशा तुमको नहीं दीखती ॥ ५ ॥ इसप्रकार बहुत समय-पर्य्यन्त विलाप करके राजादशरथ दुःखके समुद्रमें निमग्न होगए अर्थात् परमदुःखको प्राप्तहुए. तिन राजादशरथको इसप्रकार विलाप करतेहुए देख कर सुमन्त्र मन्त्री हाथजोड़कर बोला कि ॥ ६ ॥ हे महाराज ! श्रीरामचन्द्र, सीताजी और लक्ष्मणजी इन तीनोंको मैं रथमें बैठालकर शृङ्गवेरपुरके

ततो राजा नमन्तं तं सुमन्त्रं विह्वलोऽब्रवीत् ॥ सुमन्त्र रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ३ ॥ कुत्र त्यक्तस्त्वया रामः किं मा पापिनमब्रवीत् ॥ सीता वा लक्ष्मणो वाऽपि निर्दयं मां किमब्रवीत् ॥४॥ हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि ॥ दुःखार्णवे निमग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि ॥ ५ ॥ विलप्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे ॥ एवं मन्त्री रुदन्तं तं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ रामः सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते ॥ शृङ्गवेरपुराभ्याशे गङ्गाकूले व्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ गुहेन किंचिदानीतं फलमूलादिकं च यत् ॥ स्पृष्ट्वा हस्तेन संप्रीत्या नाग्रहीद्विससर्ज तत् ॥ ८ ॥ वटक्षीरं समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः ॥ जटासुकुटमाबद्ध्य मामाह नृपते स्वयम् ॥ ९ ॥ सुमन्त्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते ॥ साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥ १० ॥ मातुर्मे वन्दनं ब्रूहि शोकं त्यजतु मत्कृते ॥ आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिप्लुतम् ॥ ११ ॥ सीता चाश्रुपरीताक्षी मामाह नृपसत्तम ॥ दुःखगद्गदया वाचा रामं किंचिदवेक्षती ॥ १२ ॥

समीप गङ्गाके तटपर लेगया, तहाँ वह तीनो जने उतर पड़े ॥ ७ ॥ तहाँ गुहने कुछ फलमूल आदि लाया, श्रीरामचन्द्रजीने उस (गुह) का सन्तोष करनेके निमित्त उन फलोंको हाथसे स्पर्शमात्र किया और वह वैसेही रखदिये (भक्षण नहीं किया) ॥ ८ ॥ महाराज ! फिर श्रीरामचन्द्रजीने अपने आप गुहसे बड़का दूध मंगाकर जटाओंका मुकुट बाँध लिया और मुझसे कहा ॥ ९ ॥ कि हे सुमन्त्र ! महाराजसे कहना कि मेरे निमित्त आप शोक नहीं करैं हम सबको वनमें अयोध्याकी अपेक्षाभी अधिक सुख होगा ॥ १० ॥ माताको प्रणामपूर्वक मेरा सन्देशा कहना कि मेरे निमित्त आप बिलकुल दुःख नहीं मानै, महाराज वृद्धावस्थाके कारण शोकसे व्याकुल होयँगे, उनको आप समझा दें ॥ ११ ॥ महाराजाधिराज ! उस समय सीताके नेत्रोंमें आँसूभर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आए और श्रीरामचन्द्रजीकी ओरको किञ्चिन्मात्र देखकर, दुःखके कारण गद्गदवाणीसे मुझसे बोलीं ॥ १२ ॥ कि हे सुमन्त्र ! सासुओंके और श्वशुरजीके चरणकमलोंमें मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम कहना, ऐसे कहकर और मुख कुछ नींचेको करके सीताजी रोती हुई चलीगई ॥ १३ ॥ फिर शीघ्रही तीनोजने नौकापर चढे उस समय तीनोकेही नेत्रोंमें आँसू भर रहेथे, वह गङ्गाको उतरकर परलेपार गए तबतक मैं खड़ा रहा ॥ १४ ॥ फिर मैं बड़ा दुःखित होता हुआ लौट आया, यह सुनतेही कौसल्या रोती रोती राजा दशरथसे इस प्रकार बोली ॥ १५ ॥ कि हे महाराज ! कैकेयी आपकी प्रिया स्त्री है, इसकारण आपने उसको वर दिया तो उसके पुत्रको राज्य दे दो, इस विषयमें मैं कुछ नहीं कहती परन्तु मेरे पुत्रको बाहर क्यों निकाल दिया ? ॥ १६ ॥ यह सब आप अपने हाथोंसे किया है, फिर अब रोते क्यों हो ? यह कौसल्याका भाषण सुनतेही जैसे घावपर अग्नि लगजाय

साष्टाङ्गं प्रणिपातं मे ब्रूहि श्वश्र्वोः पदाम्बुजे ॥ इति प्ररुदती सीता गता किंचिदवाङ्मुखी ॥ १३ ॥ ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा ॥ यावद्गङ्गां समुत्तीर्य गतास्तावदहं स्थितः ॥ १४ ॥ ततो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः ॥ ततो रुदन्ती कौसल्या राजानमिदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ कैकेय्यै प्रियभार्यायै प्रसन्नो दत्तवान्वरम् ॥ त्वं राज्यं देहि तस्यैव मत्पुत्रः किं विवासितः ॥ १६ ॥ कृत्वा त्वमेव तत्सर्वमिदानीं किंनु रोदिषि ॥ कौसल्यावचनं श्रुत्वा क्षते स्पृष्ट इवाग्निना ॥ १७ ॥ पुनः शोकाश्रुपूर्णाक्षः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ दुःखेन म्रियमाणं मां किं पुनर्दुःखयस्यलम् ॥ १८ ॥ इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यन्ति निश्चयः ॥ शप्तोऽहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा ॥ १९ ॥ पुराहं यौवने दृप्तश्चापबाणधरो निशि ॥ अचरं मृगयासक्तो नद्यास्तीरे महावने ॥ २० ॥ तत्रार्धरात्रसमये मुनिः कश्चित्तृषार्दितः ॥ पिपासार्दितयोः पित्रोर्जलमानेतुमुद्यतः ॥ अपूरयज्जले कुम्भं तदा शब्दोऽभवन्महान् ॥ २१ ॥

ऐसी राजा दशरथकी दशा होगई ॥ १७ ॥ उनके नेत्र शोकके आँसुओंसे फिर भर आए ऐसी दशामें वह कौसल्यासे बोले कि हे कौसल्ये ! पहिलेही मैं दुःखसे मर रहाहूँ, तिसपरभी फिर मुझे तू क्यों दुःख देती है ? ॥ १८ ॥ निःसन्देह अबही मेरे प्राण निकल जायँगे. पूर्वकालमें मेरी मूर्खताके कारण मुझे एक मुनिने शाप दियाथा ॥ १९ ॥ पूर्वकालमें युवावस्था (जवानी) केविषे मैं बड़ा उन्मत्त था, मृगया (शिकार) का अत्यन्त व्यसन (शौक) होनेके कारण एक समय मैं हाथमें धनुष बाण लेकर रात्रिके समय बड़े बनमें एक नदीके तटपर फिर रहाथा ॥ २० ॥ अर्द्धरात्रि (आधीरात) के समय तहाँ कोईएक तृषासे घबड़ाहुआ (प्यासा) मुनि आया, उसके माता पिता पिपासा (प्यास) से व्याकुल होरहेथे इसकारण वह उनके निमित्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जल लेजानेके उद्योगमें था, उसने अपने कुम्भ (घड़े) को जलमें डुबोया तब घड़ेमें पानी भरते समय "गुड गुड़ गुड़ गुड़" ऐसा बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ २१॥ अर्द्धरात्रिका समय होनेके कारण 'तहाँ कोई मनुष्य होगा' ऐसी शंका तौ मुझे थीही नहीं, मैंने जाना कि कोई हस्ती जल पीरहा है, सो मैंने धनुषपर शब्दवेधी बाण चढाकर छोडदिया ॥ २२ ॥ इतनेहीमें तहाँ कोई मनुष्य है इस बातको जतानेवाला "मरारे मरा" ऐसा शब्द हुआ, वह मनुष्य फिर चिल्लाने लगा कि मैंने तो किसीकाभी अपराध नहीं किया फिर मुझे किसने मारा, हा प्रारब्ध ! ॥ २३ ॥ मेरे मातापिता जलकी इच्छासे मेरी वाट देखरहे होंगे, यह उसपुरुषका कहना सुनतेही मैं भयभीत हुआ और वैसाही धीरे धीरे उस पुरुषके समीप गया और उससे कहा कि हे स्वामिन् ! मैं दशरथ हूं, आप यहाँ आए हैं, यह मुझे मालूम नहीं था, इस कारण मेरे हाथसे आपको बाण लग गया. हे मुने ! हे महाराज ! अब मेरी रक्षा करना

गजः पिबति पानीयमिति मत्वा महानिशि ॥ बाणं धनुषि सन्धाय शब्दवेधिनमक्षिपम् ॥ २२ ॥ हा हतोऽस्मीति तत्राभूच्छब्दो मानुषसूचकः ॥ कस्यापि न कृतो दोषो मया केन हतो विधे ॥ २३ ॥ प्रतीक्षते मां माता च पिता च जलकाङ्क्षया ॥ तच्छ्रुत्वा भयसंत्रस्तस्ततोऽहं पौरुषं वचः ॥ २४ ॥ शनैर्गत्वाथ तत्पार्श्वं स्वामिन् दशरथोऽस्म्यहम् ॥ अजानता मया विद्धस्त्रातुमर्हसि मा मुने ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य पतितो गद्गदाक्षरः ॥ तदा मामाह स मुनिर्मा भैषीर्नृपसत्तम ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वा वैश्योऽहं तपसि स्थितः ॥ पितरौ मा प्रतीक्षेते क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितौ ॥ २७ ॥ तयोस्त्वमुदकं देहि शीघ्रमेवाविचारयन् ॥ न चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यात्पिता मे यदि कुप्यति ॥ २८ ॥ जलं दत्त्वा तु तौ नत्वा कृतं सर्वं निवेदय ॥ शल्यमुद्धर मे देहात्प्राणांस्त्यक्ष्यामि पीडितः ॥ २९ ॥

आपके ही आधीन है ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह शब्द उच्चारण करतेमें मेरे मुखसे ठीक अक्षर नहीं निकलतेथे, अन्तमें मैं उनके चरणोंमें गिरपड़ा उस समय वह मुनि मुझसे बोले कि—हे राजाधिराज ! ड़रो मत ॥ २६ ॥ तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगैगी, क्योंकि मैं तप करनेवाला वैश्य हूं, मेरे माता पिता क्षुधा (भूँख) और प्याससे व्याकुल होकर मेरी बाट देखते होंगे ॥ २७ ॥ तू बूझनेबाझनेमें कालक्षेप न करके शीघ्रही जल लेजाकर उन्हैं दे, तू ऐसा नहीं करैगा, और कहीं यदि मेरे पिताको क्रोध आगया तो वह तुझे भस्म करडालैंगे ॥ २८ ॥ इस कारण तू जल लेजाकर उन्हैं दे, और प्रणाम करके यह सम्पूर्ण जो कुछ हुआ है सो वृत्तान्त निवेदन कर, मुझे बड़ी पिड़ा होती है इससे वह बाणकी नोक मेरे शरीरमेंसे बाहर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकाल, मैं अब प्राणोंको छोडताहूं ॥ २९ ॥ तिस मुनिके इस प्रकार कहनेपर मैंने तत्काल उसके शरीरमेंसे बाणकी नोक बाहर निकाली और जलसे भराहुआ कलश लेकर जहाँ उसके माता पिता थे वहाँ गया ॥ ३० ॥ वह दोनों अतिवृद्ध और अन्धे थे, उस रात्रिके समय क्षुधा और तृषासे व्याकुल हो रहेथे, पुत्र जल लेकर आया नहीं इसका क्या कारण है ? ॥ ३१ ॥ हम वृद्धोंको दूसरे किसीका आधार नहीं है, हमैं समीप देखतेही प्रत्येक पुरुषको बुरा मालूम होताहै, ऐसी हमारी दीन दशा है, इस समय हम प्याससै अत्यन्तही व्याकुल होरहेहैं, ऐसे समयमें हमारा भक्तिमान् पुत्र न जाने हमारी क्यों उपेक्षा करताहै ॥ ३२ ॥ इसप्रकार व्याकुल होकर वह दोनो चिंता कररहेथे, इतनेहीमें मेरे पैरोंका शब्द उनके का-

इत्युक्तो मुनिना शीघ्रं बाणमुत्पाट्य देहतः ॥ सजलं कलशं धृत्वा गतोऽहं यत्र दम्पती ॥ ३० ॥ अतिवृद्धावन्धदृशौ क्षुत्पिपासार्दितौ निशि ॥ नायाति सलिलं गृह्य पुत्रः किं वाऽत्र कारणम् ॥ ३१ ॥ अनन्यगतिकौ वृद्धौ शोच्यौ तृट्परिपीडितौ ॥ आवामुपेक्षते किंवा भक्तिमानावयोः सुतः ॥ ३२ ॥ इति चिन्ताव्याकुलौ तौ मत्पादन्यासजं ध्वनिम् ॥ श्रुत्वा प्राह पिता पुत्र किं बिलम्बः कृतस्त्वया॥३३॥ देह्यावयोः सुपानीयं पिब त्वमपि पुत्रक ॥ इत्येवं लपतोर्भीत्या सकाशमगमं शनैः ॥ ३४ ॥ पादयोः प्रणिपत्याहमब्रुवं विनयान्वितः॥ नाहं पुत्रस्त्वयोध्याया राजा दशरथोऽस्म्यहम् ॥ ३५ ॥ पापोऽहं मृगयासक्तो रात्रौ मृगविहिंसकः ॥ जलावताराद्दूरेऽहं स्थित्वा जलगतं ध्वनिम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वाहं शब्दवेधित्वादेकं बाणमथात्यजम् ॥ हतोऽस्मीति ध्वनिं श्रुत्वा भयात्तत्राहमागतः ॥ ३७ ॥

नोमें पडा वह शब्द सुनतेही पिता बोला कि हे पुत्र! तुमने इतना विलम्ब क्यों किया ॥ ३३ ॥ हे पुत्र! हमें निर्मल जल दे और तूभी पी. उनके इसप्रकार कहतेमें भयके कारण मैं धीरे उनके समीप गया ॥ ३४ ॥ और नम्रतापूर्वक चरणोंमें प्रणाम करके बोला कि हे महाराज! मैं तुम्हारा पुत्र तो नहीं हूँ अयोध्याका राजा दशरथ हूँ ॥ ३५ ॥ मुझ दुष्टको मृगया (शिकार)का बडा व्यसन (शौक) है, इस कारण मैं आज रात्रिमें पशुओंका शिकार खेलता खेलता एक जलाशयसे दूरपर खडाथा, इतनेहीमें जलमेंका कुछ शब्द मेरे कानमें पडा, सो मैं शब्दवेधी बाणका छोडनेवाला हूँ इसकारण मैंने एक शब्दवेधी बाण छोडा, सोई "मरा रे मरा" ऐसा शब्द मेरे सुननेमें आया, तब मैं भयभीत होकर वैसाही उसके समीप आया ! ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तहाँ जटाओंको बखेर कर पडेहुए एक मुनिकुमारको मैंने देखा, उसको देखतेही भयभीत होकर मैंने उसकी प्रार्थना करी, कि मेरी रक्षा करो मुझे जीवदान दो ॥ ३८ ॥ तब वह मुझसे बोला कि भय मतकर तुझे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगैगा, तू मेरे मातापिताको जल लेजाकर दे तथा प्रणाम कर और अपने जीवनके निमित्त उनकी प्रार्थना कर ॥ ३९ ॥ उस मुनिने इस प्रकार कहा तब मैं यहाँ आया हूँ. हे महाराज ! मैं मुनिका घात करनेवाला दुष्ट पातकी आपकी शरण आया हूं, आप दया करके मेरी रक्षा करो ॥ ४० ॥ यह पुत्रके मरणकी वार्त्ता कानमें पडतेही वह दोनों दुःखसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरपडे और बिलाप करने लगे बिलाप करते करते उन्होंने मुझसे कहा कि अरे! हमारा पुत्र जहाँ होय तहाँ हमै शीघ्रही ले चल,

जटा विकीर्य पतितं दृष्ट्वाहं मुनिदारकम् ॥ भीतो गृहीत्वा तत्पादौ रक्षरक्षेति चाब्रुवम् ॥३८॥ माभैषीरिति मा प्राह ब्रह्महत्याभयं न ते ॥ मत्पित्रोः सलिलं दत्त्वा नत्वा प्रार्थय जीवितम् ॥ ३९ ॥ इत्युक्तो मुनिना तेन ह्यागतो मुंनिर्हिंसकः ॥ रक्षेतां मां दयायुक्तौ युवां हि शरणागतम् ॥ ४० ॥ इति श्रुत्वा तु दुःखार्तौ विलप्य बहुशोच्य तम् ॥ पतितौ नौ सुतो यत्र नय तत्राविलम्बयन् ॥ ४१ ॥ ततो नीतौ सुतो यत्र मया तौ वृद्धदम्पती ॥ स्पृष्ट्वा सुतं तौ हस्ताभ्यां बहुशोऽथ विलेपतुः ॥४२॥ हाहेति क्रंदमानौ तौ पुत्रपुत्रेत्यवोचताम् जलं देहीति पुत्रेति किमर्थं न ददास्यलम् ॥ ४३ ॥ ततो मामूचतुः शीघ्रं चितिं रचय भूपते ॥ मया तदैव रचिता चितिस्तत्र निवेशिताः त्रयस्तत्राग्निरुत्सृष्टो दग्धास्ते त्रिदिवं ययुः॥४४॥तत्र वृद्धः पिता आह त्वमप्येवं भविष्यसि ॥ पुत्रशोकेन मरणं प्राप्स्यसे वचनान्मम॥४५॥

विलम्ब मत कर ॥ ४१ ॥ फिर मैं उन बूढ़े दोनों स्त्री पुरुषको जहाँ उनका पुत्र था तहाँ लेगयो, तहाँ उन्होंने पुत्रके शरीरपर हाथ फेर कर बहुत विलाप किया ॥ ४२ ॥ वह हाय ! हाय ! ऐसे चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे, हा पुत्र ! हा पुत्र ! हा बेटा ! अरे हमैं जल पिला देरे ! अरे ! हमैं जल क्यों नहीं देता है ! ॥ ४३ ॥ तदन्तर वह दोनों मुझसे बोले कि हे राजन् ! अब जलदीसे चिता तयार कर. उनकी आज्ञाके अनुसार मैने शीघ्रही चिता रचकर उसपैं तीनोंको बैठाला और लाकर अग्नि दे दी, तब वह तीनों भस्म होकर स्वर्गलोकको गए ॥ ४४ ॥ उनमेंसे वृद्ध पिता मरते समय शोकके आवेशमें मुझसे बोला कि तेरी ऐसीही दशा होयगी, मेरा तुझे शाप है कि तूं पुत्रके शोकमें मरणको प्रात होयगा ॥ ४५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे कौसल्ये ! वह शाप भोगनका समय मुझे इस समय प्राप्त हुआ है, इस शापका दूर होना अशक्य है (कदापि दूर नहीं हो सक्ता) इतना भाषण करके राजा दशरथ शोकसे व्याकुल होकर विलाप करने लगे कि ॥ ४६ ॥ हा राम ! हा पुत्र ! हा सीते ! हा गुणनिधे लक्ष्मण ! तुम्हारे वियोगमें मुझे मरण प्राप्त हुआ है, अरे ! यह सब कैकेयीकी करनी है ॥ ४७ ॥ राजा दशरथ इस प्रकार विलाप करते हुए प्राणोंको त्यागकर स्वर्ग लोकको पधार गए. कौसल्या, सुमित्रा तथा औरभी रणबासकी स्त्रियें रोदन करने लगीं, और छातीको कूट कूटकर बडा विलाप करने लगीं. प्रातःकालको मन्त्रियों सहित वसिष्ठमुनि तहाँ आए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उन्होंने राजा दशरथके शव (मृतकशरीर) को

स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः ॥ इत्युक्त्वा विललापाथ राजा शोकसमाकुलः ॥ ४६ ॥ हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर ॥ त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसम्भवम् ॥ ४७ ॥ वदन्नेवं दशरथः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ कौसल्या च सुमित्रा च तथान्या राजयोषितः ॥ ४८ ॥ चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् ॥ वसिष्ठः प्रययौ तत्र प्रातर्मन्त्रिभिरावृतः ॥ ४९ ॥ तैलद्रोण्यां दशरथं क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत् ॥ गच्छत त्वरितं साश्वा युधाजिन्नगरं प्रति ॥ ५० ॥ तत्रास्ते भरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः ॥ उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया ॥ ५१ ॥ अयोध्यां प्रति राजानं कैकेयीं चापि पश्यतु ॥ इत्युक्तास्त्वरितं दूता गत्वा भरतमातुलम् ॥ ॥ ५२ ॥ युधाजितं प्रणम्योचुर्भरतं सानुजं प्रति ॥ वसिष्ठस्त्वाऽब्रवीद्राजन् भरतः सानुजः प्रभुः ॥ ५३ ॥ शीघ्रमागच्छतु पुरीमयोध्याम-विचारयन् ॥ इत्याज्ञप्तोऽथ भरतस्त्वरितं भयविह्वलः ॥ ५४ ॥

तैलकी द्रोणीमें रखकर, फिर दूतोंको आज्ञा दी कि तुम शीघ्रही घोड़ोंपर चढ़कर युधाजित् (भरतके मामाके नगर) को जावो ॥ ५० ॥ तहाँ परमतेजस्वी और प्रतापशाली भरतजी शत्रुघ्न सहित है, उसको मेरी आज्ञासे शीघ्र ही लेकर आओ और उसको यह कहना ॥ ५१ ॥ कि शीघ्रही अयोध्यामें जाकर राजाके और कैकेयीके भी दर्शन करो. ऐसी आज्ञा पातेही दूत चलदिये, और बडी शीघ्रतासे भरतजीके मामा युधाजित्के पास पहुँचे ॥ ५२ ॥ और प्रणाम करके बोले कि—हे महाराज ! वसिष्ठमुनिने छोटे भ्रातासहित भरतजीके विषयमें आपको सन्देशा कहा है कि भरतजीको अपने छोटे भ्राताके साथ शीघ्रही अयोध्यापुरीको भेज दो विचार करनेमें देरी मत लगाओ यह आज्ञा सुनतेके साथही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भरत भयसे व्याकुल होगए; और शीघ्रही वसिष्ठगुरुकी आज्ञाके अनुसार छोटे भ्राताको साथ लेकर दूतोंसहित चलदिये, महाराजको अथवा श्रीरामचन्द्रजीको कोई दुःख आनकर प्राप्त हुआ होगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ऐसी चिन्तामें ग्रस्त होकर मार्गमें विचार करते करते नगरमें आए तो नगरकी शोभा बिलकुल नष्ट होरहीथी, तहाँ लोगोंकी व्यवहार व्यापारसम्बन्धकी बातैं तथा पुरुषोंके समूह कहींभी नहीं देखे ॥ ५६ ॥ आनन्दोत्सवोंकरके तो नगर बिलकूलही हीन होरहाथा, जब भरतने नगरकी यह दशा देखी तब तो उनको बडीही चिन्ता हुई; फिर राजभवनमें जाकर देखा तो ऐसा प्रतीत होता था कि मानो रामलक्ष्मी इस स्थानको छोडकर चली गई है ॥ ५७ ॥ फिर उन्होने देखा तो इकली कैकेयीही आसनपर बैठी है, तब

आययौ गुरुणादिष्टः सह दूतैस्तु सानुजः ॥ राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किञ्चिदुपस्थितम् ॥ ५५ ॥ इति चिन्तापरो मार्गे चिन्तयन्नगरं ययौ ॥ नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकं जनसम्बाधवर्जितम् ॥ ५६ ॥ उत्सवैश्च परित्यक्तं दृष्ट्वा चिन्तापरोऽभवत् ॥ प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम् ॥ ५७ ॥ अपश्यत्कैकयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् ॥ ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः ॥ ५८ ॥ आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकयी प्रेमसम्भ्रमात् ॥ उत्थायालिङ्ग्य रभसा स्वाङ्कमारोप्य संस्थिता ॥ ५९ ॥ मूर्ध्न्यवघ्राय पप्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा ॥ पिता मे कुशली भ्राता माता च शुभलक्षणा ॥ ६० ॥ दिष्ट्या त्वमद्य कुशली मया दृष्टोऽसि पुत्रक ॥ इति पृष्टः स भरतो मात्रा चिन्ताकुलेन्द्रियः ॥ ६१ ॥ दूयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत ॥ मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह संस्थिता ॥ ६२ ॥

भरतजीने शिर नमाकर माताके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥ ५८ ॥ भरतजी आए यह देखतेही कैकेयी प्रेमसे उठकर खड़ी होगई और जल्दीसे उनको हृदयसे लगाकर गोदीमें बैठा लिया ॥ ५९ ॥ फिर उसने भरतजीके मस्तकको सूँघकर फिर उनसे अपने मैकेके मनुषोंकी कुशल बूझी कि हे भरत ! मेरा भ्राता तथा भाग्यशाली मेरी माता तो कुशल है ना ? ॥ ६० ॥ हे पुत्र ! आज वधाई है जो मैने तुम्हैं आज कुशलपूर्वक देखा, माताने भरतसे यह सब वार्त्ता बूझी, परन्तु भरतजीका मन चिन्तासे व्याकुल होरहाथा, सो भरतजीने माताके बूझनेपर तो कुछ ध्यान नहीं दिया और खिन्न अन्तःकरणसे माताके प्रति बूझने लगे कि हे मातः ! हमारे पिताजी कहाँ हैं ? तू यहाँ इकली बैठी है इसका क्या कारण है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे महाराज पिताजी तो तुम्हें छोड़कर एकान्तमें कभी भी नहीं बैठते थे, इस समय वह यहाँ नहीं दीखते, सो बता कहाँ हैं? ॥ ६३ ॥ पिताजीका दर्शन न होनेसे मेरे मनमें इस समय भय और दुःख उत्पन्न होताहै. यह प्रश्न सुनकर कैकेयी पुत्रसे बोली कि हे पुत्र! तेरे दुःख करनेसे लाभ क्या है? ॥ ६४ ॥ धर्मात्मा और अश्वमेधादि यज्ञोंसे परमेश्वरकी आराधना करनेवाले पुरुष जिस गतिको प्राप्त होते हैं तिस गतिकोही अब तुम्हारे पिताभी प्राप्त होगए, तुम्हारी पिताकेविषे बड़ी भारी प्रीति थी परन्तु अब शोक करनेसे क्या लाभ होगा? ॥ ६५ ॥ यह वार्त्ता सुनतेही भरत शोकसे विह्वल होकर पृथ्वीपर गिरपड़े और हे तात! मुझे दुःखके समुद्रमें डालकर किधरको चलेगए ॥ ६६ ॥ हा

त्वया विना न मे तातः कदाचिद्रहसि स्थितः ॥ इदानीं दृश्यते नैव कुत्र तिष्ठति मे वद ॥ ६३ ॥ अदृष्ट्वा पितरं मेऽद्य भयं दुःखं च जायते ॥ अथाह कैकयी पुत्रं किं दुःखेन तवानघ ॥ ६४ ॥ या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम् ॥ तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल ॥ ६५ ॥ तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्वलः ॥ हा तात क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मा वृजिनार्णवे ॥ ६६ ॥ असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मा क्व गतोऽसि भो ॥ इति विलपितं पुत्रं पतितं मुक्तमूर्धजम् ॥ ६७ ॥ उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत् ॥ समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं मया ॥ ६८ ॥ तामाह भरतस्तातो म्रियमाणः किमब्रवीत् ॥ तमाह कैकयी देवी भरतं भयवर्जिता ॥ ६९ ॥ हा राम राम सीतेति लक्ष्मणेति पुनःपुनः ॥ विलपन्नेव सुचिरं देहं त्यक्त्वा दिवं ययौ ॥ ७० ॥ तामाह भरतो हेऽम्ब रामः सन्निहितो न किम् ॥ तदानीं लक्ष्मणो वापि सीता वा कुत्र ते गताः ॥ ७१ ॥

पिताजी! मुझे रामचन्द्रजीके अर्थ सौंपे बिना किधर चलेगए, ऐसा विलाप करताहुआ पुत्र पृथ्वीपर पडा है और इसके केश चारों ओरको बिखर रहेहैं ॥ ६७ ॥ ऐसा देखकर कैकेयीने भरतको उठाकर बैठाया और नेत्र पोंछकर कहा कि हे पुत्र! सावधान हो, तेराही भला होयगा, ऐसी सब युक्ति मैंने करली है ॥ ६८ ॥ तब भरतजी बोले कि महाराजने मरतेसमय क्या कहा था? कैकेयीको भय अथवा लज्जा कुछ नहीं थी, सो शान्तिपूर्वक भरतजीसे कहने लगी ॥ ६९ ॥ कि महाराज हा राम! हा लक्ष्मण! हा राम! हा सीते! इसप्रकार वारंवार कहकर बहुतकालपर्य्यन्त शोक करते हुए अन्तमें स्वर्गलोकको पधारगए ॥ ७० ॥ तब भरतजीने कैकेयीसे बुझा कि हे मातः! क्या उससमय श्रीरामचन्द्रजी समीपमें नहीं थे? तथा लक्ष्मण और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीता इनमेंसेभी कोई क्या समीप नहीं था? उस समय वह सब कहाँ गए थे ? ॥ ७१ ॥ कैकेयी बोली कि हे भरत ! रामचन्द्रको यौवराज्य देनेके निमित्त तुम्हारे पिताने बड़ी सामग्री इकट्ठी करीथी, परन्तु तुझे राज्य मिलै इस उद्देशसे मैंने उस समय तिस कार्य्यमें विघ्न करदिया॥७२॥महाराजने वरदानी होकर पूर्वकालमें मुझे दो वर दिये थे वह मैंने इस समय माँग लिये उनमेंसे एक बरसे तुमको सम्पूर्ण राज्य माँगा और दुसरेसे रामचन्द्र मुनियोंके समान व्रत धारण करके वनमें रहै यह माँगा. महाराज सत्यका पालन करनेवाले थे, इसकारण उन्होंने तुझेही राज्य दिया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ और तुम्हारे पिताने रामचन्द्रजीको वनमेंही भेजा, सीताभी पातिव्रत्यका मार्ग अवलम्बन करके रामचन्द्रके साथ गई ॥ ७५ ॥ मैं श्रेष्ठ (यथार्थभक्तिमान्) भ्राता हूँ, ऐसा दिखानेके निमित्त लक्ष्मण भी रामचन्द्रके साथ गया, उन सबके बनको चले जानेपर महाराज उनकाही चिन्तन करने लगे ॥ ७६ ॥

कैकेय्युवाच ॥ रामस्य यौवराज्यार्थं पित्रा ते संभ्रमः कृतः ॥ तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचरम् ॥ ७२ ॥ राज्ञा दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् ॥ याचितं तदिदानीं मे तयोरेकेन तेऽखिलम् ॥ ७३ ॥ राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् ॥ ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तवैव हि ॥ ७४ ॥ रामं संप्रेषयामास वनमेव पिता तव ॥ सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥ ७५ ॥ सौभ्रात्रं दर्शयन्राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः ॥ वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥ ७६ ॥ प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः ॥ ७७ ॥ पपात भूमौ निःसंज्ञस्तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा ॥ कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोकेन किं तव ॥ ७८ ॥ राज्ये महति संप्राप्ते दुःखस्यावसरः कुतः ॥ इति ब्रुवन्तीमालोक्य मातरं प्रदहन्निव ॥ ७९ ॥

अन्तमें "राम राम" इसप्रकार पुकारते हुए महाराज स्वर्गलोकको पधार गए. यह माताका बचन सुनतेही जिसप्रकार वज्रका प्रहार लगने पर वृक्ष टूटकर नीचे गिरपड़ता है, तिसीप्रकार भरत मूर्च्छाको प्राप्त होकर पृथ्वीपर निश्चेष्ट होकर गिरपड़े, यह देखकर कैकेयीको दुःख हुआ वह उस समय भरतसे फिर बोली कि हे पुत्र! तू शोक किस कारण करता है? मुझे तो शोकका कोई कारण दीखता नहीं ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ अरे! तुझे तो बड़ा सुन्दर राज्य प्राप्त हुआ और तुझे इस समय शोक करना सूझा है, इसका क्या कारण है ? माताके इसप्रकार कहनेपर भरत उसकी ओरको इतनी कठोर दृष्टिसे देखने लगे कि इस देखनेसे वह कैकेयीको क्या जलाही देते हैं ऐसे मालूम पडे, फिर भरतजी कैकेयीसे बोले कि ॥ ७९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असंभाष्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी ॥ पापे त्वद्गर्भजातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम् ॥ अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम् ॥ ८० ॥ खड्गेन वाथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम् ॥ भर्तृघातिनि दुष्टे त्वं कुम्भीपाकं गमिष्यसि ॥ ८१ ॥ इति निर्भर्त्स्य कैकेयीं कौसल्याभवनं ययौ ॥ साऽपि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकण्ठा रुरोद ह ॥८२॥ पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदारुदत् ॥ आलिङ्ग्य भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी ॥८३॥ कृशाऽतिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत् ॥ पुत्र त्वयि गते दूरमेवं सर्वमभूदिदम् ॥ उक्तं मात्रा श्रुतं सर्वं त्वया ते मातृचेष्टितम् ॥ ८४ ॥ पुत्रः सभार्यो वनमेव यातः सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्रः ॥ चीराम्बरो बद्धजटाकलापः सन्त्यज्य मां दुःखसमुद्रमग्नाम् ॥ ८५ ॥ हा राम हा मे रघुवंशनाथ जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा ॥ तथापि दुःखं न जहाति मां वै विधिर्बलीयानिति मे मनीषा ॥ ८६ ॥ स एवं भरतो वीक्ष्य विलपन्तीं भृशं शुचा ॥ पादौ गृहीत्वा प्राहेदं शृणु मातर्वचो मम ॥ ८७ ॥

रे दुष्टे ! पतिकी हत्या करी है इसकारण तू महापापिनी है, तुझसे बात करना मुझे अच्छा नहीं मालूम होताहै, अरी पापे! तेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, इस कारण मैं भी इस समय पापका भागी हूँ, अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा या विष खालूँगा ॥ ८० ॥ अथवा खड्ग (तलवार) से आत्महत्या करके यमपुरीको जाताहूँ, अरी दुष्टे ! तैने पतिका वध किया है, इसकारण तू कुम्भीपाक नरकको जायगी ॥ ८१ ॥ भरत इसप्रकार कैकेयीको ललकार कर फिर कौसल्याके मन्दिरमें गए वह भी भरतको देखतेही चीखमार कर रोनेलगी ॥ ८२ ॥ उस समय भरतभी उसके चरणोंमें गिरकर रोने लगे, जिनकी कीर्ति सम्पूर्ण जगत्में फैल रही है तिन श्रीरामचन्द्रकी माताने भरतको हृदयसे लगाया, वह महासीधी बड़ी दुर्बल होरहीथी, उसका मुख बड़ा दीन मलीन दीखताथा, नेत्रोंसे बराबर आँसू बहरहेथे, सो भरतसे बोली कि हे पुत्र ! तुम दूर चलेगए और इधर यह सब कौतुक हुआ, तेरी माताने क्या क्या कार्य्य किये वह सब उसके कहनेसे तुझे मालूमही होयगा ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ मेरा पुत्र रघुकुलोत्पन्न रामचन्द्र मुझे दुःखके समुद्रमें डूबतीहुईको छोड़कर स्त्रीको और लक्ष्मणको साथ लेकर बनको चलागया, उसने वस्त्रोंके स्थानमें शरीरपर वल्कल धारण किये और केशोंका जटाजूट बाँध लिया ॥ ८५ ॥ हा राम! हा रघुवंशाधिपते ! तुम प्रत्यक्ष परात्पर ईश्वर मेरी कोखमें आए तोभी मुझे दुःख नहीं छोड़ते, इससे मेरी बुद्धिको निश्चय होताहै कि अवश्यही दैव बलवान् है ॥ ८६ ॥ इसप्रकार कौसल्या अत्यन्त शोकसे विलाप कर रही है; ऐसा देखकर भरतने कौसल्याके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरण पकड़कर कहा कि हे मातः ! मेरा वचन सुनो ॥ ८७ ॥ कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषयमें जो कुछ कार्य्य किया, अथवा और जो कुछ (मेरे लिये राज्य माँगना आदि) कार्य्य किया, वह यदि मुझे मालूम होय, या यदि मैंने उसे प्रेरणा करी होय तो हे मातः ! मुझे सैंकड़ों ब्रह्महत्याओंका पाप लगै, अरुन्धतीसहित वसिष्ठजीको खड्गसे वध करनेपर जो पाप होय वह पाप "यदि यह वार्त्ता पहिलेसे मुझे मालुम होय" तो मुझे लगै, इस प्रकार शपथ करके भरत उस समय रोने लगे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ तदनन्तर कौसल्याने उसे हृदयसे लगाकर कहा कि हे पुत्र ! तेरे हृदयको मैं जानतीहूं, तू बिलकुल शोक मतकर, यह वार्त्ता होरहीथी कि इतनेहीमें "भरत आए हैं" यह वार्त्ता सुनकर वसिष्ठजी मन्त्रियोंसहित राजमन्दिरमें आए, भरत शोक करते हैं ऐसा देखकर वसिष्ठजी उनसे आदरपूर्वक बोले कि ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ हे भरत !

कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने ॥ अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ॥ ८८ ॥ पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्या-शतोद्भवम् ॥ हत्वा वसिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ॥ ८९ ॥ भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम् ॥ इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ॥ ९० ॥ कौसल्या तमथालिङ्ग्य पुत्र जानामि मा शुचः ॥ एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम् ॥ ९१ ॥ वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमन्दिरम् ॥ रुदन्तं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम् ॥ ९२ ॥ वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः ॥ भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ॥ ९३ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वा रामं सुतं हरिम् ॥ अन्ते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्धासनं प्रभुः ॥ ९४ ॥ तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम् ॥ आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः ॥ ९५ ॥

राजा दशरथ ज्ञानवान् और सत्यपराक्रमी थे, इस समय उनकी वृद्ध अवस्था थी, उन्होंने मर्त्यलोकके सब सुख भोग लिये, बडी २ दक्षिणा देकर अश्वमेधादियज्ञोंसे परमेश्वरकी आराधना करी और राम सरीखा पुत्र मिला, यह श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले साक्षात् ईश्वर हैं, अन्तमें वह महासमर्थ राजा दशरथ स्वर्गमें जाकर इन्द्रके आधे आसनकों प्राप्त हुएहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ उनके विषयमें तुम बिलकुल निष्कारण शोक करते हो, उनके विषयमें शोक करना अयोग्य है, क्योंकि वह मोक्षकी प्राप्तिके अधिकारी होकर स्थित हैं, आत्मानात्मा-का विचार किये विना शोक करना कितना अयोग्य है, सो तुम्है मालूम ही होगा, आत्मा नित्य है उसको कोई विकार नहीं होताहै, वह शुद्ध और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्म मृत्यु आदिसे रहित है ॥ ९५ ॥ यह शरीर जड़ और अत्यन्त अपवित्र है, इसका कभी तो नाश होनाही है, इतना विचार करनेसे किसी प्रकारसेभी शोक करनेका अवकाश नहीं है ॥ ९६ ॥ पिता अथवा पुत्र कोई यदि मृत्युको प्राप्त होजाय तो अपने शरीरको ताड़न करके जो पुरुष मृतक पुरुषके विषयमें शोक करते हैं वह सब मूर्ख हैं ॥ ९७ ॥ संसार वास्तवमें असार है, यह संसारका स्वरूप जिसको मालूम होजाता है उस पुरुषको संसारकेविषे किसी वस्तुका वियोग होजाय तो यह वैराग्यका कारण होता है, तिससेही आगेको शान्तिसुख प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ जिस समय प्राणी इस लोकमें जन्मको प्राप्त हुआ कि उसी समय मृत्यु उसके पीछे आता है, इसकारण जन्म लेनेवाले प्राणीका मृत्यु कदापि नहीं टलता है ॥ ९९ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंको जन्म अथवा मृत्यु प्राप्त होना, यह उनका अपने अपने कर्म्मोंके अधीन है, अज्ञानी पुरुषकोभी यदि

शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम् ॥ विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथञ्चन ॥ ९६ ॥ पिता वा तनयो वाऽपि यदि मृत्युवशं गतः ॥ मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम् ॥ ९७ ॥ निःसारे खलु संसारे वियोगो ज्ञानिना यदा ॥ भवेद्वैराग्यहेतुः स शान्तिसौख्यं तनोति च ॥ ९८ ॥ जन्मवान्यदि लोकेऽस्मिंस्तर्हि तं मृत्युरन्वगात् ॥ तस्मादपरिहार्योऽयं मृत्युर्जन्मवतां सदा ॥ ९९ ॥ स्वकर्मवशतः सर्वजन्तूना प्रभवाप्ययौ ॥ विजानन्नप्यविद्वान्यः कथं शोचति बान्धवान् ॥ १०० ॥ ब्रह्माण्डकोट्यो नष्टाः सृष्टयो बहुशो गताः ॥ शुष्यन्ति सागराः सर्वे कैवास्था क्षणजीविते ॥ १०१ ॥ चलपत्रान्तलग्नाम्बुबिन्दुवत्क्षणभङ्गुरम् ॥ आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव ॥ ॥ १०२ ॥ देही प्राक्तनदेहोत्थकर्मणा देहवान्पुनः ॥ तद्देहोत्थेन च पुनरेवं देहः सदात्मनः ॥ १०३ ॥

यह तत्त्ववार्त्ता मालूम होजाय तो वह बान्धवोंके विषयमें किस प्रकार शोक करैगा ! अर्थात् कदापि शोक नहीं करैगा, जिस विषयमें मूर्खभी शोक न करै, क्या उस विषयमें तत्त्वज्ञानी शोक मानैगा ? ॥ १०० ॥ अरे आजपर्य्यन्त करोडों ब्रह्माण्ड नष्ट होगए, अनेक सृष्टियोंके प्रलय होगए, सम्पूर्ण समुद्र सूखगए, तब इस क्षणिक जीवनके विषयमें आस्था किसप्रकार करी जाय ? ॥ १०१ ॥ हलते हुए पत्तेके अग्रभागपर लगेहुए जलके बिन्दुके समान यह आयु क्षण मात्रमें नष्ट होनेवाला है, और असमयमें त्याग देता है, फिर उसपर तेरा विश्वास किसप्रकार है ॥ १०२ ॥ जीवको पूर्वजन्मके शरीरमें किये हुए कर्म्मके अनुसार फिर देह प्राप्त होता है; तिस (नवीन प्राप्त हुए) देहमें जो कर्म्म करै उसके योगसे फिर दूसरा जन्म होताहै, यह परम्परा नित्यसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही चली आतीहै, इसप्रकार कुछ समयको देहका वियोग होजाय तो भी आत्माका नाश नहीं होताहै, इसकारण उसके विषयमें शोक करना निरर्थक है ॥ १०३ ॥ जिसप्रकार मनुष्य वस्त्र जीर्ण होनेपर उनको त्याग देता है, तिसीप्रकार जीव जीर्ण शरीरका त्यागकरके फिर नवीन शरीरको सदा ग्रहण करताहै, फिर अब उस शरीरके विषयमें शोक करनेका अवसर रहाही कहाँ ? आत्मा कभी मरता नहीं है, कभी जन्म नहीं लेता है, अथवा कभी वृद्धिको नहीं प्रात होताहै ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ वह आत्मा छःओंही भावविकारों (जायते अस्ति आदि) करके रहित है, उसके स्वरूपकी इयत्ता नहीं है, तीनोकालमें नष्ट न होनेवाला निर्विषय ज्ञान तिस आत्माकी मूर्ति है, वह आनन्दरूप और बुद्धि, चित्तआदिका साक्षी है, उसका नाश कदापि नहीं होताहै ॥१०६॥ हे भरत ! एकही आत्मा सर्वत्र पूर्णरूपसे व्याप्त है, उसकेविषे द्वैतभाव किञ्चिन्मात्रभी नहीं है, वह सर्वत्र समानसत्तारूपसे रहता है, मैं वह

यथा त्यजति वै जीर्णं वासो गृह्णाति नूतनम् ॥ तथा जीर्णं परित्यज्य देही देहं पुनर्नवम् ॥ १०४ ॥ भजत्येव सदा तत्र शोकस्यावसरः कुतः ॥ आत्मा न म्रियते जातु जायते न च वर्धते ॥ १०५ ॥ षड्भावरहितोऽनन्तः सत्यप्रज्ञानविग्रहः ॥ आनन्दरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी लयविवर्जितः ॥१०६॥ एक एव परो ह्यात्मा ह्यद्वितीयः समः स्थितः ॥ इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोकं कुरु क्रियाम् ॥ १०७ ॥ तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवैः सहः ॥ कृत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन ॥१०८ ॥ इति संबोधितः साक्षाद्गुरुणा भरतस्तदा ॥ विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे स विधिवत्क्रियाम् ॥ १०९ ॥ गुरुणोक्तप्रकारेण आहिताग्नेर्यथाविधि ॥ संस्कृत्य स पितुर्देहं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ११० ॥ एकादशेऽहनि प्राप्ते ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ भोजयामास विधिवच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ १११ ॥

ही आत्मा हूँ, इसप्रकार पूर्ण रीतिसे जान शोकको त्याग दे और अब आगेकी क्रिया कर ॥ १०७ ॥ कुलको आनन्द देना यह तेरा कार्य्य है, इसकारण तू अब मन्त्रियोंके व हमारे साथ पिताके शव (मृतकदेह) को तेलकी द्रोणीसे बाहर निकालकर उसका यथोचित संस्कार कर ॥ १०८ ॥ इसप्रकार साक्षात् वसिष्ठगुरुने समझाया, तब भरतने अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले शोकको त्यागकर विधिपूर्वक पिताकी प्रेतक्रिया करी ॥ १०९ ॥ उनके पिता दशरथ ने यथाविधि अग्निहोत्र स्वीकार कियाथा, अर्थात् राजा दशरथ विधिपूर्वक अग्निहोत्र किया करतेथे इसकारण भरतने गुरुकी बताई हुई रीतिके अनुसार पिताके शवका संस्कार किया ॥ ११० ॥ ग्यारहवां दिन आनेपर भरतने वेदके पारङ्गत सैंकड़ों हजारों ब्राह्मणोंको विधि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वक भोजन कराया ॥ १११ ॥ पिताके उद्देशसे ब्राह्मणोंको बहुतसा द्रव्य, सहस्रों गौ, ग्राम, रत्न और वस्त्र दिये ॥ ११२ ॥ और फिर वसिष्ठ गुरु छोटे भ्राता शत्रुघ्न और मन्त्रिमण्डलसहित वह भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान करते हुए अपने घर रहे ॥ ११३ ॥ अब उन भरतजीके मनमें विचार होने लगा कि सीताजी और लक्ष्मण इन दोनोंसहित श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त घोर वनमें गए, इसका कारण मेरी माता है, इसकारण वह राक्षसीके समान दीखती हुईको देखतेही तत्काल मेरा अंतःकरण जलने लगता है, तिससे अब मैं इस सम्पूर्ण राज्यको दूरसेही त्यागकर वनमें जाताहूँ, तहाँ सीताजीसहित तिन सुहास्यवदन श्रीरामचन्द्रजीकी सदा सेवा करता रहूँगा ॥ ११४ ॥ इति

उद्दिश्य पितरं तत्र ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु ॥ ददौ गवा सहस्राणि ग्रामान् रत्नाम्बराणि च ॥ ११२ ॥ अवसत्स्वगृहे तत्र राममेवानुचिन्तयन् ॥ वसिष्ठेन सह भ्रात्रा मन्त्रिभिः परिवारितः ॥ ११३ ॥ रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां सुघोरं माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं दर्शनादेव सद्यः ॥ गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यं रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे ॥ ११४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मन्त्रिभिः परिवारितः ॥ राज्ञः सभा देवसभासन्निभामविशद्विभुः ॥ १ ॥ तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापरः ॥ आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥ २ ॥ अब्रवीद्वचनं देशकालोचितमरिन्दमम् ॥ वत्स राज्येऽभिषेक्ष्यामस्त्वामद्य पितृशासनात् ॥ ३ ॥

श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकयासहितः सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! महासमर्थ वसिष्ठमुनि अनेक मुनियोंकरके सहित मंत्रिमण्डलको साथ लेकर राजाकी सभामें आए, वह सभागृह देवसभाके समान था ॥ १ ॥ तहाँ वसिष्ठजी आसनपर बैठे थे, उनकी ओरको देखतेही देखनवालेको "यह दूसरे ब्रह्माजीही हैं" ऐसे प्रतीत होतेथे उन्होंने छोटे भ्रातासहित भरतजीको बुलवाकर समीप बैठाला ॥ २ ॥ और तिन शत्रुओंको निग्रह करनेवाले (प्रतापी) भरतजीसे देश और कालके अनुसार वार्त्ता करनेका प्रारम्भ किया कि हे पुत्र ! तुम्हारे पिताजीकी आज्ञाके अनुसार आज तुमको राज्याभिषेक करैंगे ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारे निमित्त कैकेयीने राज्य माँगलियाथा और राजादशरथका अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेका संकल्प था, इसकारण उन्होंने हमारे सबके समक्ष तुम्हारे लिये देदियाहै ॥ ४ ॥ सो आज मुनियोंके मंत्रोच्चारणपूर्वक तुम्हारा अभिषेक किया जायगा. यह सुनकर भरतजी बोले कि हे गुरो ! महाराज ! मुझे राज्यको क्या करनाहै ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी राजाधिराज हैं, मैं तो उनका सेवकही हूँ मैंने कल प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजीको शीघ्रही लौटाकर लानेके निमित्त जानेका संकल्प किया है ॥ ६ ॥ मैं आप और उस राक्षसी कैकेयीके सिवाय सम्पूर्ण माता चलैं, कैकेयीके विषे मेरा मातृत्वका सम्बन्ध है ठीक है, परन्तु मेरे चित्तमें तो ऐसा आताहै कि अभी उसको मारडालूँ ॥ ७ ॥ परन्तु स्त्रीकी हत्या करनेपर रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी

कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थे पुरुषर्षभ ॥ सत्यसन्धो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल ॥ ४ ॥ अभिषेको भवत्वद्य मुनिभिर्मन्त्रपूर्वकम् ॥ तच्छ्रुत्वा भरतोऽप्याह मम राज्येन किं मुने ॥ ५ ॥ रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किङ्कराः ॥ श्वः प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमञ्जसा ॥ ६ ॥ अहं यूयं मातरश्च कैकेयीं राक्षसीं विना ॥ हनिष्याम्यधुनैवाहं कैकेयीं मातृगन्धिनीम् ॥ ७ ॥ किन्तु मा नो रघुश्रेष्ठः स्त्रीहन्तारं सहिष्यते ॥ तच्छ्वोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान् ॥ ८ ॥ शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायान्तु वा न वा ॥ रामो यथा वने यातस्तथाऽहं वल्कलाम्बरः ॥ ९ ॥ फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने ॥ भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ॥ १० ॥ इति निश्चित्य भरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥ साधु साध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ११ ॥ ततः प्रभाते भरतं गच्छन्तं सर्वसैनिकाः ॥ अनुजग्मुः सुमन्त्रेण नोदिताः साश्वकुञ्जराः ॥ १२ ॥

मुझे क्षमा नहीं करैंगे, इसकारण मैं ऐसा नहीं करताहूँ, सो कल प्रातःकाल होतेही मैं शत्रुघ्नको साथ लेकर शीघ्रही दण्डकारण्यको पैदल जाऊँगा, आप चलैं या न चलैं. श्रीरामचन्द्रजी जिसप्रकार वनको गए हैं तिसीप्रकार मैंभी शरीरपर वल्कलोंकेही वस्त्र धारण करके वनको जाऊँगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे मुने ! मेरे साथ शत्रुघ्नभी जायँगे, मैं श्रीरामचन्द्रजीके लौटकर आनेके समयतक फल और मूल भक्षण करके रहूँगा, भूमिपर शयन करूँगा और मस्तकपर जटाओंको धारण करूंगा ॥ १० ॥ भरतजी ऐसा निश्चय करके चुप्प होकर बैठगए. यह वार्त्ता सुनतेही सम्पूर्ण पुरुषोंने आनन्दमें आकर उनकी " बहुत योग्य है बहुत उत्तम है " ऐसा कहकर प्रशंसा करी ॥११॥ फिर प्रातःकालः होतेही भरतजी चलदिये, और सुमन्त्रकी आज्ञाके अनुसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हत्ती घोड़े आदि सम्पूर्ण सेना उनके पीछे पीछे चली ॥ १२ ॥ कौसल्या आदि राजपत्नी और वसिष्ठआदि ब्राह्मण यह सब इकट्ठे होकर भरतजीके आगे पीछे और दहिने बाएँ होकर पृथ्वीको ढँकते हुए चले ॥ १३ ॥ तिस प्रचण्ड सेनाने शृङ्गवेरपुरके समीप जाकर शत्रुघ्नकी आज्ञासे इधर उधर गङ्गाके सम्पूर्ण तटपर निवास किया ॥ १४ ॥ "भरत आए हैं" यह वार्त्ता सुनतेही गुहके मनमें यह शङ्का उत्पन्न हुई कि देखो भरतजी बड़ा सेनाका समूह साथ लेकर आए हैं ॥ १५ ॥ सो कहीं कुछ दुष्ट कार्य्य करनेके निमित्त तो नहीं आए हैं ? श्रीरामचन्द्रजीको यह वार्त्ता इससमय पर्य्यन्त मालूम नहीं है, सो मैं समीप जाऊं तो भरतके हृदयकी वार्त्ता मालूम होय, यदि उनके मनमें कपट नहीं होयगा तो मैं उनको गंगाके परलीपार उतारदूँगा नहीं तो सम्पूर्ण मेरी जातिके लोग अपनी नौकाओंको गङ्गामेंसे निकालकर बाहर डालदैं और हाथोंमें शस्त्र लेकर चारों ओरसे

कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः ॥ छादयन्तो भुवं सर्वे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥१३॥ शृङ्गवेरपुरं गत्वा गङ्गाकूले समन्ततः ॥ उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिचोदिता ॥ १४ ॥ आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शङ्कितमानसः ॥ महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल ॥ १५ ॥ पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः ॥ गत्वा तद्धृदयं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति ॥ १६ ॥ गङ्गां नोचेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठन्तु सायुधाः ॥ ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यन्तः सर्वतोदिशम् ॥ १७ ॥ इति सर्वान्समादिश्य गुहो भरतमागतः ॥ उपायनानि संगृह्य विविधानि बहून्यपि ॥ १८ ॥ प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः ॥ निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समन्ततः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः ॥ चीराम्बरं घनश्यामं जटासुकुटधारिणम् ॥ २० ॥ राममेवानुशोचन्तं रामरामेति वादिनम् ॥ ननाम शिरसा भूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥

देखते रहैं, यदि भरत गङ्गाके पार जानेका यत्न करैं तो उनको रोकैं किसीप्रकार पार न उतरने दें ॥ १६ ॥ १७ ॥ गुहने अपने सम्पूर्ण जातिके पुरुषोंको इसप्रकार आज्ञा दी तब वह सब नानाप्रकारकी अनेक भेटैं (नजराने) लेकर भरतजीके समीप आए ॥ १८ ॥ तिस गुहने भरतजीके पासको आतेसमय अनेकप्रकारके आयुधोंको धारण करे हुए जातिके अनेक पुरुषोंको साथ लेलियाथा, भरतजीके सामने भेट (नजराना) निवेदन करके गुहने चारोंओरको देखा तो उसको पहिलीसीही दशा दीखी, कि लघुभ्रातासहित भरतजी बैठे हैं, और उनके समीपमेंही मन्त्रिमण्डल बैठा है, भरतजीने अपने मेघके समान श्यामवर्ण शरीरपर वस्त्रोंके स्थानमें वल्कल धारण करके जटाओंका मुकुट बनालियाहै और श्रीरामचन्द्रजीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निमित्त शोक कर करके मुखसे 'राम राम' ऐसी रटना कररहे हैं, यह दशा देखकर गुहने भूमिपर मस्तक टेककर उनको प्रणाम किया और 'मैं गुह हूँ' इसप्रकार कहा ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ भरतजीने तत्काल उठाकर गुहको हृदयसे लगाया और आदरपूर्वक कुशल क्षेम बुझा, इससमय भरतजीने स्वस्थचित्त हो गुहको अपना मित्र समझकर कहने लगे कि हे भ्रातः ! इस स्थानमें तुम श्रीरामचन्द्रजीके साथ आनन्दपूर्वक बैठेथे, तथा निर्मल मनसे तुम्हैं हृदयसे लगायाथा और तुम्हारी प्रीतिको देखकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र प्रेमके अश्रुओंसे भर आए थे, इसकारण तू धन्य है, सीता और लक्ष्मणजीसहित तिन कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम अनेक प्रकारके वार्त्तालाप करै इस कारण तुम कृतकृत्य हो ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे सुव्रत गुह ! तुम्हैं जहाँ श्रीरामचन्द्रको देखा हुआथा तहाँ मुझे लिवाचल, जानकी सहित श्रीरामचंद्र-

शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिङ्ग्य सादरम् ॥ पृष्ट्वानामयमव्यग्रः सखायमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेतः समवस्थितः ॥ रामेणालिङ्गितः सार्द्रनयनेनामलात्मना ॥ २३ ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि यत्त्वया परिभाषितः ॥ रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया ॥२४॥ यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुव्रत ॥ सीतया सहितो यत्र सुप्तस्तद्दर्शयस्व मे॥२५॥त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः ॥ २६ ॥ गुहेन सहितस्तत्र यत्र रामः स्थितो निशि ॥ ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसमास्तृतम् ॥ २७ ॥ सीताभरणसँल्लग्नस्वर्णबिन्दुभिरञ्चितम् ॥ दुःखसन्तप्तहृदयो भरतः पर्यदेवयत् ॥ २८ ॥ अहोऽतिसु कुमारी या सीता जनकनन्दिनी ॥ प्रासादे रत्नपर्यङ्के कोमलास्तरणे शुभे ॥ २९ ॥

जीने जहाँ शयन कियाथा वह स्थल मुझे दिखाओ ॥ २५ ॥ तुमने श्रीरामचन्द्रजीकेविषे भक्ति करी और उनको अत्यन्त प्रिय हुए तिससे तुम भाग्यवान् हो, भरतजी इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार स्मरण करके नेत्रोंसे आँसुओंका प्रवाह वरसाने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर भरतजी गुहके साथ जहाँ श्रीरामचन्द्रजी रात्रिमें रहेथे तहाँ गए, तहाँ दर्भ (कुश) बिछाकर बनाए हुए शयन करनेके स्थान उन्होंने देखे ॥ २७ ॥ सीताजीके अङ्गोंके आभूषणोंकी रगड़ लगेनेस तहाँ शयनके स्थानपर सुवर्णके चिन्ह लगा रहेथे, उस स्थानको देखतेही भरतजीका हृदय दुःखसे सन्तप्त हुआ और वह शोक करने लगे ॥ २८ ॥ कि हाय ! जो जनकराजाकी सुकुमार कन्या सीता राजमन्दिरमें रत्नजटित शय्यापर कोमल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिछौने बिछाकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ शयन करतीथी उसही सीताने मेरे दोषसे श्रीरामचन्द्रजीसहित कुशोंके आसनमें कैसे कष्टसे शयन किया होगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ धिक्कार है मुझे, जिस मैंने पापोंकी राशिरूप कैकेयीके उदरसे जन्म लिया और मेरे कारणसे परमेश्वररूप श्रीरामचन्द्रजीको यह क्लेश सहना पडताहै ! धिक्कार है मेरे जीवनको ॥ ३१ ॥ अहो ! लक्ष्मण धन्य हैं, जो जन्मलेनेका उत्तम फल उनको मिलगया, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी वनमें रहने लगे तो वह लक्ष्मण भी प्रसन्नचित्तसे नित्य उनकेही पीछे पीछे फिरतेहैं ॥ ३२ ॥ मैं यदि श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंके दासोंका सेवक होऊँगा तबही मेरा जन्म सफल होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे भ्रातः गुह ! श्रीरामचन्द्रजी

रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टरे ॥ सीता रामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः ॥ ३० ॥ धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः ॥ मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः ॥ ३१ ॥ अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ राममेव सदाऽन्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥ ३२ ॥ अहं रामस्य दासा ये तेषां दासस्य किङ्करः ॥ यदि स्यां सफलं जन्म मम भूयान्न संशयः ॥ ३३ ॥ भ्रातर्जानासि यदि तत्कथस्व ममाखिलम् ॥ यत्र तिष्ठति तत्राहं गच्छाम्यानेतुमञ्जसा ॥ ३४ ॥ गुहस्तं शुद्धहृदयं ज्ञात्वा सस्नेहमब्रवीत् ॥ देव त्वमेव धन्योऽसि यस्य ते भक्तिरीदृशी ॥३५॥ रामे राजीवपत्राक्षे सीताया लक्ष्मणे तथा ॥ चित्रकूटाद्रिनिकटे मन्दाकिन्याविदूरतः ॥३६॥ मुनीनामाश्रमपदे रामस्तिष्ठति सानुजः ॥ जानक्या सहितोऽनन्दात्सुखमास्ते किल प्रभुः ॥ ३७॥ तत्र गच्छामहे शीघ्रं गङ्गां तर्तुमिहार्हसि ॥ इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा नावः पञ्चशतानि ह ॥ ३८ ॥

कहाँ रहतेहैं यह यदि तुम्हैं मालूम होय तो मुझसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह, तो मैं उनको लानेकेलिये शीघ्रही जाऊँ ॥ ३४ ॥ गुहने " भरतजीका अन्तःकरण निष्कपट है " यह जानकर उनसे प्रेमपूर्वक कहा कि हे देव ! राजन् भरतजी ! कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी तथा सीताजी इन तीनोकेविषे तुम्हारी इतनी भक्ति है इसकारण तुम धन्य हो, चित्रकूटपर्वतके समीप जहाँ गङ्गा नदी समीप ही है, तहाँ मुनियोंके आश्रमोंके स्थानमें लघुभ्राता लक्ष्मणजी और जानकी इन दोनोंकरके सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी रहते हैं, तहाँ फलमूलोंकी अधिकता होनेसे श्रीरामचन्द्रजी सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ चलिये, तहाँ शीघ्रही चलैं, अब तुम्हैं गंगा उतरकर परलीपार जाना होयगा, इसप्रकार कहकर यह शीघ्रही जाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाँचसौ नौका लेआया, जिनसे कि सम्पूर्ण सेना महानदी गंगाके परलेपार उतर जाय, और भरतजीका अधिक आदर करनेके लिये, राजाओंके बैठनेके योग्य एक उत्तम नौका अपने आप लाया, तदनन्तर गुहने उस नौकापर भरत, शत्रुघ्न, श्रीरामचन्द्रजीकी माता (कौसल्या) और वसिष्ठजी इन सबको बैठाला, और दूसरी सुन्दरसी एक नौका लाकर उसमें कैकेयीको तथा अन्य स्त्रियोंको बैठाला, और सबको गङ्गाके परलेपार लेगया ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गङ्गाको उतरकर परलेपार जातेके साथ शीघ्रही भरतजी सेनासहित भरद्वाज मुनिके आश्रमपर्य्यन्त गए, फिर "आश्रममें लोगोंके कारण उपद्रव न होय" इसकारण अपनी प्रचण्ड सेनाको कुछ दूरपै ठहराकर शत्रुघ्नकरके सहित आश्रममें गए ॥ ४१ ॥ तिस आश्रममें अग्निके समान तेजस्वी भरद्वाज मुनि बैठे हुएथे, उनको देखकर भरतने अत्यन्त भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ उन मुनिश्रेष्ठ भरद्वा-

समानयत्ससैन्यस्य तर्तुं गङ्गां महानदीम् ॥ स्वयमेवानिनायैकां राजनावं गुहस्तदा ॥ ३९ ॥ आरोप्य भरतं तत्र शत्रुघ्नं राममातरम् ॥ वसिष्ठं च तथान्यत्र कैकेयीं चान्ययोषितः ॥ ४० ॥ तीर्त्वा गङ्गां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति ॥ दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ ॥ ४१ ॥ आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टाङ्गमतिभक्तितः ॥ ४२ ॥ ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट् ॥ पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम् ॥ ४३ ॥ राज्यं प्रशासतस्तेऽद्य किमेतद्वल्कलादिकम् ॥ आगतोऽसि किमर्थं त्वं विपनं मुनिसेवितम् ॥ ४४ ॥ भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः ॥ सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः ॥ ४५ ॥ तथापि पृच्छसे किञ्चित्तदनुग्रह एव मे ॥ कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्यविघातनम् ॥ ४६ ॥

जजीने यह दशरथके पुत्र हैं, ऐसा पहिचान कर उनका स्वागत किया और फिर उनके शरीरको जटा और वल्कल धारण करेहुए देखकर कुशल क्षेम बूझा और कहने लगे ॥ ४३ ॥ कि हे भरत ! राज्यका पालन करना यह तुह्मारा कार्य्य है, इसको छोड़कर आज तुमने यह वल्कल आदि किस कारण धारण किया हैं और मुनियोंके निवास करनेके वनमें तू किसकारण आया है ? ॥ ४४ ॥ यह भरद्वाज मुनिका भाषण सुनतेही भरतजीके नेत्रोंसे आँसुओंका प्रवाह वहने लगा. और बोले कि, हे महाराज ! आप सर्वज्ञ हो इसकारण आपको जितनी जो कुछ वार्त्ता है संपूर्ण मालूम है ॥४५॥ ऐसे प्रभावशाली होकरभी अपने जो कुछ बूझा सो मेरे ऊपर आपका अनुग्रहही है, हे महाराज ! कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीको राज्य मिलानेमें जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विघ्न किया है वह, अथवा वनवासको वह रामचंद्रजी किसके कहनेसे किसप्रकार गए, इत्यादि मुझे कुछभी मालूम नहीं है, अर्थात् मुझे मालूम होकर यह कुछभी वार्त्ता नहीं हुई है. हे मुनिश्रेष्ठ ! इस विषयमें मैं आज आपके दोनो चरणोंकी शपथ करताहूँ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ऐसे कहाकर भरतजीने मुनिके चरणोंपर हाथ रक्खा और अन्तःकरणमें खिन्न होकर फिर कहनेलगे कि हे महाराज ! मेरा मन शुद्ध है अथवा कलुषित (दुष्ट) है, वह तो आप जानही सक्तेहैं ॥ ४८ ॥ हे स्वामिन् ! राजा रामचंद्रजीके होतेहुए मुझे राज्यका क्या करनाहै ? हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं श्रीरामचन्द्रजीकी सदा सेवा करताहूँ ॥ ४९ ॥ इसकारण हे ऋषिवर्य ! मैं श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर उनके चरणोंमें गिरकर और सम्पूर्ण राज्यका भार समर्पण करके,

वनवासादिकं वापि नहि जानामि किञ्चन ॥ भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ॥४७॥ इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वार्तमानसः ॥ ज्ञातु मर्हसि मां देव शुद्धो वाशुद्ध एव वा ॥४८ ॥ मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि ॥ किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः ॥ ४९ ॥ अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणान्तिके ॥ पतित्वा राज्यसम्भारान्समर्प्यात्रैव राघवम् ॥ ५० ॥ अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह ॥ नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत् ॥ ५१ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः ॥ आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय प्रशशंस सविस्मयः ॥ ५२ ॥ वत्स ज्ञातं पुरैवैतद्भविष्यं ज्ञानचक्षुषा ॥ माशुचस्त्वं पुरो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि ॥५३॥ आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ ॥ अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्वं श्वो गन्ता रामसन्निधिम् ॥ ५४ ॥

और यहाँही वसिष्ठ आदिमुनि, नगरके पुरुष और देशदेशान्तरोंके लोगोंकी सहायतासे उनका अभिषेक करूँगा, फिर उन लक्ष्मीपति प्रभुको अयोध्यापुरीमें लेजाकर मैं उनका दास अति नीचभावसे उनकी सेवा करतारहूँगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यह भरतजीका वचन सुनकर भरद्वाज मुनि आश्चर्य्यमें होगए, और भरतजीको हृदयसे लगाकर, मस्तकको सूंघा और उनकी परम प्रशंसा करी ॥ ५२ ॥ और कहने लगे कि हे पुत्र ! इस भवितव्यवार्त्ताको मैं ज्ञानदृष्टिकरके पहिलेहीसे जानताथा, तुम बिलकुल खेद मतकरो, तुम्हारी श्रीरामचन्द्रजीकेविषे लक्ष्मणजीसे भी अधिक भक्ति है, इस वार्त्ताको मैं पूर्ण रीतिसे जानताहूँ ॥ ५३ ॥ तुम्हारा आचरण परम पवित्र है, हे भरत ! मैं सेनासहित तुम्हारा आतिथ्य करनेकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इच्छा करताहूँ, तुम आज सेनासहित यहाँ भोजन करो, कल श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ ॥ ५४ ॥ भरतजी बोले कि हे महाराज! जैसी आपकी आज्ञा होयगी वह मुझे शिरोधार्य्य है. तदनन्तर भरद्वाजमुनि जाकर होमशालामें बैठे और आचमन करके मौन होगए, और मनोरथको पूर्ण करनेवाली कामधेनुका ध्यान करने लगे, वह मुनि अभ्यागतोंकी सम्पूर्ण इच्छा पूर्ण करतेथे, तदनन्तर कामधेनुने जिस तिसकी इच्छाके अनुसार सम्पूर्ण अलौकिक (दुष्प्राप्य—अतिउत्तम) पदार्थ उत्पन्न किये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ भरतजीकी और उनकी सेनाकी जैसी जैसी इच्छा होती गई तैसे तैसे सम्पूर्ण पदार्थोंकी कामधेनुने यथेष्ट वर्षा करी, तिससे सम्पूर्ण सेनाके लोग तृप्त होगए ॥ ५७ ॥ तिस श्रेष्ठ योगिराज भरद्वाज मुनिने आदर-पूर्वक आतिथ्य करतेसमय प्रथम शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार वासिष्ठ मुनिका पूजन किया, तदनन्तर सेनासहित भरतजीको तृप्त किया ॥ ५८ ॥ लघु-

यथाज्ञापयति भवांस्तथेति भरतोऽब्रवीत् ॥ भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः ॥ ५५ ॥ दध्यौ कामदुघा कामवर्षिणीं कामदो मुनिः ॥ असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम् ॥ ५६ ॥ भरतस्य ससैन्यस्य यथेष्टं च मनोरथम् ॥ यथा ववर्ष सकलं तृप्तास्ते सर्वसैनिकाः ॥ ५७ ॥ वसिष्ठं पूजयित्वाग्रे शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ पश्चात्ससैन्यं भरतं तर्पयामास योगिराट् ॥ ५८ ॥ उषित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे ॥ अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः ॥ भरतस्तु कृतानुज्ञः प्रययौ रामसन्निधिम् ॥ ५९ ॥ चित्रकूटमनुप्राप्य दूरे संस्थाप्य सैनिकान् ॥ रामसंदर्शनाकाङ्क्षी प्रययौ भरतः स्वयम् ॥ ६० ॥ शत्रुघ्नेन सुमन्त्रेण गुहेन च परन्तपः ॥ तपस्विमण्डलं सर्वं विचिन्वानो न्यवर्तत ॥ ६१ ॥ अदृष्ट्वा रामभवनमपृच्छदृषिमण्डलम् ॥ कुत्रास्ते सीतया सार्धं लक्ष्मणेन रघूत्तमः ॥ ६२ ॥

भ्राता शत्रुघ्नसहित भरतजी तिस स्वर्गतुल्य आश्रमकेविषे एक दिन रहे, और दूसरे दिन प्रातःकालके समय उठकर भरद्वाजमुनिको प्रणाम करके उनकी आज्ञा मिलनेपर रामचन्द्रके समीप जानेके निमित्त चलदिये ॥ ५९ ॥ जाते जाते चित्रकूटके समीप पहुँचनेपर उन्होंने अपनी सेनाको कुछ दूरपर ठहरादिया, और श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंकी इच्छासे अपने आप आगेको चले ॥ ६० ॥ उन परमपराक्रमी भरतजीने शत्रुघ्न सुमन्त्र और गुह इनको साथ लेकर तपस्वियोंके सम्पूर्ण आश्रम ढूँढे परन्तु श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम कहीं नहीं मिला, भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीके ढूँढ़नेके सिवाय और सम्पूर्ण कार्य छोड़दिये ॥ ६१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी कुटी नहीं मिली तब भरतजीने ऋषियोंसे बूझा कि हे महाराज! सीता और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजी कहाँ विराजते हैं? ॥ ६२ ॥ तब ऋषि बोले कि यहाँसे आगे पर्वतके पीछे गङ्गाके उत्तरकी ओरके तटपर एकान्त स्थलमें श्रीरामचन्द्रजीका आश्रम है, सम्पूर्ण बन सुन्दर होनेके कारण वह स्थल शोभायमान दीखता है ॥ ६३ ॥ वह आश्रम केलेके बनोंसे घिरा हुआ है, तहाँ फलोंसे लदेहुए आम्र और पनसके वृक्ष बहुत हैं, तथा तहाँ चम्पक, कोविदार, पुन्नाग, यह वृक्ष अनेक हैं ॥ ६४ ॥ इस प्रकार मुनियोंकरके दिखाएहुए आश्रमको भरतजी आगे देखकर आनन्दपूर्वक सुमन्त्र मन्त्री करके सहित श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमकी ओरको गए ॥ ६५ ॥ तब छोटे भ्राता शत्रुघ्नसहित भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर और अतितेजयुक्त आश्रम दूरसेही दीखने-

ऊचुरग्रे गिरेः पश्चाद्गङ्गाया उत्तरे तटे ॥ विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमण्डितम् ॥ ६३ ॥ सफलैराम्रपनसैः कदलीखण्डसंवृतम् ॥ चम्पकैः कोविदारैश्च पुन्नागैर्विपुलैस्तथा ॥ ६४॥ एवं दर्शितमालोक्य मुनिभिर्भरतोऽग्रतः ॥ हर्षाद्ययौ रघुश्रेष्ठभवनं मन्त्रिणा सह ॥ ६५ ॥ ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम् ॥ वृक्षाग्रसँल्लम्बसुवल्कलाजिनं रामाभिरामं भरतः सहानुजः ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ अथ गत्वाश्रमपदसमीपं भरतो मुदा ॥ सीतारामपदैर्युक्तं पवित्रमतिशोभनम् ॥ १ ॥ स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाश्चितध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः ॥ ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गलान्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः ॥ २ ॥

लगा, श्रीरामचन्द्रजी तहाँ रहतेथे, इसकारण वह स्थान अत्यन्त रमणीय होगयाथा, तहाँ अनेक मुनिमण्डल विराजमान थे, तहाँ वृक्षोंकी शाखाओंपर अनेक सुन्दर वल्कल वस्त्र और चर्म्म (कृष्णाजीन—मृगछाला) सूख रहेथे ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे, पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकयासहितोऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ श्रीमहादेव कहते हैं हे पार्वति! तदनन्तर भरतजी आनन्दित होतिस आश्रमके समीप गए, जानकीजी और श्रीरामचन्द्रजी इन दोनोंजनोंके चरणोंके चिन्ह स्पष्ट लगेहुए मालूम होतेथे, इसकारण वह स्थान परमपवित्र और अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होताथा ॥ १ ॥ तहाँ वज्र, अंकुश, कमल और इनके साथसे विशेष रमणीय मालूम होनेवाले ध्वज आदिचिन्होंकरके युक्त श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिन्ह चारों ओर लगे हुए भरतने देखे उन चरणोंके चिन्होंसे तहाँकी पृथ्वीका अतिसौभाग्य प्रतीत होताथा, तिस रामचन्द्रजीके चरणोंसे चिन्हित भूमिको देखकर छोटे भ्रातासहित भरतजी उस चरणोंकी धूलिमें लोटने लगे ॥ २ ॥ और अपने आपसे कहने लगे कि अहो ब्रह्मदेवादिदेव और वेद जिसके चरणोंकी धूलिको पाने लिये नित्य ढूंढतेहैं, तिनही श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके चिन्होंकरके युक्त इस भूमिका मुझे दर्शन हुआ, इसकारण मैं अत्यन्तही धन्य हूँ ॥ ३ ॥ ऐसा विचार होतेही एकसाथ विलक्षण प्रेमरस उत्पन्न हुआ और उसमें भरतजीका अन्तःकरण मग्न होगया, उनकी मनकी वृत्ति उस समय एक श्रीरामचन्द्रजीके ध्यानमेंही लगगई; और आनन्दके आँसुओंके प्रवाहसे उनका वक्षःस्थल भीजगया ऐसी दशामेंही वह धीरे धीरे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके समीप आए ॥ ४ ॥ तहाँ बैठे हुए रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीको भरतजीने देखा. तिस श्रीरामचन्द्रजीके

अहो सुधन्योऽहममूनि रामपादारविन्दाङ्कितभूतलानि ॥ पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ॥ ३ ॥ इत्य-द्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने ॥ आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तरः शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरेः ॥ ४ ॥ स तत्र दृष्ट्वा रघु-नाथमास्थितं दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम् ॥ जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरं प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम् ॥ ५ ॥ विलोकयंतं जनकात्मजां शुभां सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम् ॥ तदाभिदुद्राव रघूत्तमं शुचा हर्षाच्च तत्पादयुगं त्वराग्रहीत् ॥ ६ ॥ रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहु-र्दोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजैः ॥ जलैरथाङ्कोपरि संन्यवेशयत्पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः ॥ ७ ॥

अङ्गकी कान्ति दूबके पत्तोंके समान श्यामताको लिये हुएथी, नेत्र विशाल थे, उनके मस्तकपर जटाओंका मुकुट विराजमान था और शरीरपर नवीन वल्कलरूपी वस्त्र धारण कररहेथे, उनका मुख प्रसन्न था, और कान्ति बालसूर्य्यके समान थी ॥ ५ ॥ उस समय तिन श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टि शुभलक्ष-णोंकरके युक्त जो जानकीजी तिनकेविषे लगरहीथी और लक्ष्मणजी उनके चरणकमलोंकी सेवा कर रहेथे, यह देखतेही भरतजीके मनमें हर्ष और शोक यह दोनों विकार एकसाथ उत्पन्न हुए, और दौड़के जाकर झट श्रीरामचन्द्रजीके चरण पकड़ लिये ॥ ६ ॥ आजानुबाहु श्रीरामचन्द्रजीने अपनी भुजाओंसे भरतजीको खैंचकर हृदयसे लगाया, और उनके शरीरपर आनन्दके आँसुओंके प्रवाहसे अभिषेक करनेलगे, तदनन्तर प्रभु श्रीराम-चन्द्रजीने उनको गोदीमें बैठालकर वारंवार हृदयसे लगाया ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतनेहीमें जिसप्रकार तृषा(प्यास)से घबडाई हुई गौ जलके निमित्त दौडकर आवे स्था वनवासन्द्रजीकी सब माता श्रीरामचन्द्रजीको देखनेकी इच्छा करके शीघ्रही तहाँ आई ॥ ८ ॥ अपनी माता (कौसल्या) को देखते ही श्रीरामचन्द्र हे श्रीराम उठकर उसके चरणोंमें आनन्दके आँसुओंसहित मस्तक रक्खा, कौसल्याने भी पुत्रको हृदयसे लगाया, पति (राजा दशरथ) का स्मरण होनेके कारण इस समयमें कौसल्याको अत्यन्त दुःख होरहाथा ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने कौसल्याके समान औरभी माताओंको प्रणाम किया, तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीको आतेहुए देखकर श्रीरामचन्द्रजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया, और आज मैं धन्य हूँ इसप्रकार वारंवार कहा, तदनन्तर सबको यथायोग्य आसनपै बैठालकर श्रीरामचन्द्रजी बूझने लगे ॥ १० ॥ ११ ॥ कि मेरे पिताजी तो कुशलपूर्वक हैं ? उनको बड़ा दुःख कष्ट आ होगा, अब उन्होंने मेरे लिये क्या क्या आज्ञा कह दियाहैं ? इसपर वसि-

अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ राघवं द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम् ॥ ८ ॥ रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः ॥ ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिङ्ग्यातीव दुःखिता ॥ ९ ॥ तथाश्च तथा नत्वा जननी रघुनन्दनः ॥ ततः समागतं दृष्ट्वा वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ १० ॥ साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह धन्योऽस्मीति पुनः पुनः ॥ यथार्हमुपवेश्याह सर्वानेव रघूद्वहः ॥ ११ ॥ पिता मे कुशली किं वा मां किमाहातिदुःखितः ॥ वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन ॥ १२ ॥ त्वद्वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन् ॥ रामरामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह ॥ १३ ॥ श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्वचनमञ्जसा ॥ हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः सलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ ततोऽनुरुरुदुः सर्वा मातरश्च पुरःसरे ॥ हा तात मां परित्यज्य क्व गतोऽसि घृणाकर ॥ १५ ॥ अनाथोऽस्मि महाबाहो मां को वा लालयेदितः ॥ सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥ १६ ॥

ष्ठजीने उनको इसप्रकार उत्तर दिया कि हे श्रीरामचन्द्र ! तुम्हारे पिताको तुम्हारे वियोगसे महादुःख हुआ, और अन्तमें उन्होने तुम्हाराही चिन्तन तथा हे राम! हेराम! हा सीते! हा लक्ष्मण ! इस प्रकार कहकर प्राण त्याग दिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ यह वसिष्ठजीका भाषण, जिसप्रकार कानमें एक-प्रकारका शूलरोग पड़े इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कानोंमें पड़ा और तत्काल हाय ! हाय ! हाय मरण होगया ऐसे कहतेहुए श्रीरामचन्द्रजी भूमिपर गिरपड़े, उनके साथही लक्ष्मणजीके चरणोंमें गिरपड़े ॥ १४ ॥ उनको रुदन करतेहुए देखकर यह स्थान परपूर्ण माता तथा अन्यलोगभी रुदन करने लगे, श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे और इनके साथ आदिचिन्होंकरके युक्त हा दयालो ! मुझे छोड़कर आप कहाँ , हा पितः! अब मेरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोई भी आधार [illegible]हा ! अब आगेको म[illegible] चरणोंके चिन्होंसे[illegible] ! सीता और लक्ष्मण इनसेभी अधिक [illegible]होताथा, तिस रामचन्द्रजीने वसिष्ठजीने पहिले अनेक राजाओंके इस[illegible]गर चरित्र और संस[illegible]रस चरणोंकी [illegible]त्यादि प्रसंगोंकरके युक्त अपने शान्तभा आपसे कहने [illegible]को शान्त किया तदनन्तर वह सब जने गंगापै [illegible]ाकर स्नान करके शुद्ध[illegible]य [illegible]॥ तहाँ तिन सबने, श्रीरामचंद्रजीके हाथोंसे जल मिलंक्त इच्छा करनेवाले राजा दशरथको जलदान दिया, फिर लक्ष्मण[illegible] सहित श्रीराम[illegible]वन्द्रजीने पिण्डदान किया ॥१८॥ वह पिण्ड इंगुदी (तापसवृक्ष [illegible]र की पीठीके बनेहुए और मधु- (शहत)से भीजेहुए थे. श्रीशिवजी[illegible] [illegible]ले किहे पार्वति ! इंगुदीके फलोंके पिण्ड करना राजाको अयोग्य न जानना, क्योंकि शास्त्रोंमें इसप्रकार कहा है कि अपने आप जो अन्न भक्षण करै वही अन्[illegible]तरोंको देय. रामचन्द्रजी स्वयं फल भक्षण करतेथे इसकारण उन्होंने पिण्डभी फलोंके ही दिये ॥ १९ ॥

वसिष्ठः शान्तवचनैः शमयामपादां शुचम् ॥ ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः॥ १७ ॥ राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे ॥ पिण्डान्निर्वापयामास [illegible] लक्ष्मणसंयुतः ॥१८॥ इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान्मधुसंप्लुतान् ॥ वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥ १९ ॥ इति दुःखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहं ययौ ॥ सर्वे रुदित्वा सुचिरं स्नात्वा जग्मुस्तथाश्रमम् ॥ २० ॥ तस्मिंस्तु दिवसे सर्वे उपवासं प्रचक्रिरे ॥ ततः परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले ॥ २१ ॥ उपविष्टं समागम्य भरतो राममब्रवीत् ॥ राम राम महाभाग स्वात्मानमभिषेचय ॥ २२ ॥ राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे [illegible]ता तथा ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥ २३ ॥ इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे ॥ राज[illegible]वं समारोप्य गमिष्यसि [illegible]ततो वनम् ॥ २४ ॥

उस समय श्रीरामचन्द्रजीके नेत्र दुःखके का[illegible]रामचन्द्रजीओंसे भर आए, त[illegible]र स्नन करके आश्रमको गए, इसीप्रकार और सब मण्डलीभी बहुत देरपर्य्यन्त शोककरके और स्नानकरके आश्[illegible] [illegible]॥२०॥उस दि[illegible]बने उप[illegible]ा किया, फिर दूसरे दिन श्रीरामचन्द्रजी गंगाके निर्म्मल जलमें स्नान करके बैठे तब भरतजी समीपमें जाकर श्री[illegible] कहने [illegible]गे कि हे अ[illegible]न्दायक श्रीरामचन्द्रजी ! हे भाग्यशाली पुरुष ! तुम अपना अभिषेक करो ॥२१ ॥ २२॥ और पितृपरम्परा प्राप्त हुए अपने[illegible] [illegible]गे, तुम [illegible] इसकारण मेरे पिताके समान हो प्रजाका पालन करना यह क्षत्रियोंका धर्म्म है ॥२३॥ प्रथम अनेक प्रकारके यज्ञ[illegible]के देवताओंकी [illegible], यह आ[illegible] वंशकी वृद्धि करनेके निमित्त पुत्रोंको उत्पन्न करो और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्रको राज्यपर बैठाकर फिर वनवासको जाओ॥ २४॥ [illegible] समयकी अवस्था वनवासकी नहीं है, मेरे ऊपर कृपा करो, मेरी माताने जो कुछ खोटा कर्म्म (वनवास दिलाना) [illegible] है, उसका [illegible] करिये, [illegible] पिताके समान आप हमारा पालन करिये ॥ २५ ॥ भरतजीने इसप्रकार कहकर भक्ति [illegible] और साक्षात् [illegible] भूमिपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ २६ ॥ भरतजीकी अत्यन्त भक्ति देखकर श्रीराम [illegible] प्रेमके आँसुओंका प्रवाह [illegible] और [illegible] भरतजीको उठाकर गोदमें बैठालिया, और धीरे २ उनसे बातें करने लगे ॥ २७ ॥ [illegible] (भरत) [illegible] परन्तु पिताजीने मुझसे कह दिया है कि

इदानीं वनवासस्य कालो [illegible] प्रसिद्ध [illegible] ॥ [illegible] ॥ इत्युक्त्वा चरणौ भ्रातुः शिरस्याधाय भक्तितः ॥ रामस्य पुरतः साक्षाद्दण्डवत्पतितो भुवि ॥ २६ ॥ उत्था [illegible] भक्तितः ॥ उवाच भरतं रामः स्नेहार्द्रनयनः शनैः ॥ २७ ॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि त्वयोक्तं यत्तथैव तत् ॥ किन्तु मामब्रवीत्तातो नव [illegible] पञ्च च ॥ २८ ॥ उषित्वादण्डकारण्ये पुरं पश्चात्समाविश ॥ इदानीं भरतायेदं राज्यं दत्तं मयाखिलम् ॥ २९ ॥ ततः पित्रैव सुव्यक्तं राज्यं दत्तं तवैव हि ॥ दण्डकारण्यराज्यं मे दत्तं पित्रा तथैव च ॥ ३० ॥ अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतियत्नतः ॥ पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतंत्रो यस्तु वर्तते ॥ ३१ ॥ स जीवन्नेव मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत् ॥ तस्माद्राज्यं प्रशाधि त्वं वयं दण्डकपालकाः ॥ ३२ ॥ भरतस्त्वब्रवीद्रामं कामुको मूढधीः पिता ॥ स्त्रीजितो भ्रान्तहृदय उन्मत्तो यदि वक्ष्यति ॥ तत्सत्यमिति न ग्राह्यं भ्रान्तवाक्यं यथा सुधीः ॥ ३३ ॥

चौदह वर्षपर्य्यन्त दण्डकारण्यमें रहकर, फिर नगरमें प्रवेश करना, इस समय [illegible] सम्पूर्ण राज्य [illegible] भरतको दिया है ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसका अभिप्राय यह है कि पिताजीनेही तुम्हें [illegible] राज्य दिया है ॥ ३० ॥ इसकारण हम दोनोंकोही यत्नपूर्वक [illegible] वचनका पालन [illegible] पड़ा [illegible] अपनी इच्छाके अनुसार वर्ताव करता है वह जीता हुआही प्राणहीन [illegible] समान होता है और [illegible] ॥ १ [illegible] पालन करो और मैं दण्डकारण्यका पालन करता श्रीराम [illegible] ॥ ३२ ॥ इसपर भरतजी [illegible] हा द [illegible] इसकारण उनकी बुद्धि मोहको प्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगई थी, स्त्रियोंने उन्हें अत्यन्त वशमें करलियाथा, मनमें भ्रान्ति होने के कारण वह उन्मत्त होगएथे, जैसे प्रवीण पुरुष उन्मत्त पुरुषोंके कहनेको चित्तपर नहीं लातेहैं इसीप्रकार पिताजीने जो कुछ कहाथा, क्या तुम सत्य मत मानो ॥३३॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे भरत! हमारे पिता विषयी अथवा स्त्रियोंके वशीभूत बिलकुल नहीं थे, तथा उन्होने मुझे जो यह आज्ञा दी यह बुद्धिके मोहित होनेके कारण दी यह नहीं, किन्तु सत्यवादी होकरही उन्होने मुझे यह आज्ञा दी है, उन्होंने कैकेयीको वरदानेवे वचन दियेथे, वह मिथ्या न हो जायँ, इसकारण भयसे तुम्हे राज्य और मुझे वनवास दिया ॥ ३४ ॥ सत्पुरुषोंको असत्य बोलनेका नरकसेभी अधिक भय होता है, इसकारण मैं भी पिताजीके कैकेयीको दिये हुए वचनोंको सत्य करूँगा ॥ ३५ ॥ रघुकुलमें जन्म लेकर मैं बचनके भङ्ग करनेमें किसप्रकार प्रवृत्त होसक्ताहूँ, इस श्रीरामचन्द्रजीके कहनेको सुनकर भरतजी

॥ राम उवाच ॥ ॥ न स्त्रीजितः पिता ब्रूयान्न कमी नैव मूढधीः ॥ पूर्वं प्रतिश्रुतं तस्यै सत्यवादी ददौ भयात् ॥ ३४ ॥ असत्याद्भीतिरधिका महतां नरकादपि ॥ करोमीत्यहमप्येततत्यं तस्यै प्रतिश्रुतम् ॥ ३५ ॥ कथं वाक्यमहं कुर्यामसत्यं राघवो हि सन् ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य रामस्य भरतोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तथैव रीरवसनो वने वत्स्यामि सुव्रत ॥ चतुर्दश समास्त्वं तु राज्यं कुरु यथासुखम् ॥ ३७ ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ पित्रा दत्तं तवैवैतद्राज्यं मह्यंवनं ददौ ॥ व्यत्ययं यद्यहं कुर्यामसत्यं पूर्ववत् स्थितम् ॥ ३८ ॥ ॥ भरत उवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामि सेवे त्वां लक्ष्मणो यथा ॥ नोचेत्प्रायोपवेशेन त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥ ३९ ॥

बोले ॥ ३६ ॥ कि हे सदाचरणतत्पर श्रीरामचन्द्रजी जिसप्रकार तुम शरीरपर बल्कलोंको धारण करके बनमें निवास करना चाहते हो, तिसीप्रकार तुम्हारे बदले मैं चौदह वर्षपर्य्यंत बनमें रहूँगा, तुम सुखपूर्वक राज्य करो ॥ ३७ ॥ इसपर श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे भरत! पिताजीने यह राज्य तुम्हेंही दिया है और वनवास मुझे जोहै, उसमें यदिमैं व्यत्यय (उलटापलटा) करूँगा तो पूर्वके समानही असत्य हो जायगा ॥ ३८ ॥ भरतजी बोले कि—बहुत अच्छा तो मैं तुम्हारे साथ बनमें जाऊँगा अथवा पालेमें लक्ष्मणके समान तुम्हारी सेवा करता रहूँगा, यदि आप इसकाभी निषेध करोगे तो प्रायोपवेश (अन्नपान त्यागकर मरणका संकल्प) करके इस शरीरका त्याग करदूँगा, यह आप निश्चय जानिये ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भरतजी इसप्रकार किये हुए अपने निश्चयको कहकर औरभूमिमें कुश बिछाकर, मनसे भी तैसाही निश्चय करके पूर्वाभिमुख बैठगये ॥ ४० ॥ इसप्रकार भरतजीका आग्रह देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा आश्चर्य हुआ, तब श्रीरामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठजीको नेत्रसे संकेत (इशारा) किया कि—इनको आप समझा दीजिये ॥ ४१ ॥ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ जो वसिष्ठजी हैं उन्होंने उस संकेतको जानकर एकान्तमें भरतजीसे कहा कि—हे पुत्र ! मैं तुझसे एक सिद्धान्तकी गुप्त वार्ता कहता हूं उसको तुम सुनो ॥ ४२ ॥ हे भरत ! यह श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् नारायण हैं, यह ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे रावणका वध करनेके निमित्त दशरथजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ४३ ॥ और योगमायाभी "सीता" इस नामकरके जनककी कन्या होकर प्रकट हुई

इत्येवं निश्चयं कृत्वा दर्भानास्तीर्य चातपे । उमनस्यपि विनिश्चित्य प्राङ्मुखोपविवेश सः ॥ ४० ॥ भरतस्यापि निर्बन्धं दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः ॥ नेत्रान्तसंज्ञां मुखे चकार रघुनन्दनः ॥ ४१ ॥ एकान्ते भरतं प्राह वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ॥ वत्स गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यात्सुनिश्चितम् ॥ ४२ ॥ रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा ॥ रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥ ४३ ॥ योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ॥ शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा ॥४४॥ रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः ॥ कैकेय्या वरदानादि यच्चानिष्टुरभाषणम् ॥ ४५ ॥ सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम् ॥ तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥ ४६ ॥ निवर्तस्व महासैन्यैर्भ्रातृभिः सहितः प्रभुः ॥ रावणं वधित्वा शीघ्रमेवागमिष्यति ॥ ४७ ॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भरतो विस्मयान्वितः ॥ गत्वा समीपं रामस्य

है, शेषजीभी लक्ष्मणका रूप धारण करके [illegible] फिरते हैं ॥ ४४ ॥ यह तीनोंजनें रावणका वध करनेकी इच्छासे उधर जायँगे इसमें कुछ संदेह नहीं है [illegible] करना इत्यादि सम्पूर्ण चरित्र देवताओंने किये हैं, नहीं तो वह इसप्रकार कैसे कहती ? इसकारण हे पुत्र [illegible] यह छोड़दो ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और अपनी बड़ी भारी सेना और भ्राता शत्रुघ्न को साथले कर लौटजाना सुनकर श्रीरामचंद्रजी हँसे [illegible] वणका वध करके शीघ्रही लौटकर आवेंगे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार गुरु वसिष्ठजीके कथनको सुन नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण सत्य है, मैं [illegible] उनके नेत्र प्रफुल्लसे दीखने लगे और श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[illegible] मेरा दोष नहीं [illegible]

उनसे कहने लगे [illegible] हओ [illegible] आ [illegible] पनी पूज्य पादुका राज्य करनेको दीजिये अर्थात् तुम्हारी पादुकाओंको राज्यपर स्थापन करूँगा. तुम्हारे लौटकर [illegible] उपयको [illegible] दूर हो जायगा [illegible] सेव करता रहूँगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ऐसा कहकर भरतजीने एक दिव्य पादुकाओंका जोड़ा श्रीरामचन्द्रजीके चरणों [illegible] रामच [illegible] जीने अत्यन्त प्रेमभावसे वह पादुका भरतजीको दीं ॥ ५० ॥ भरतजीने वह रत्नजटित पादुका लेलीं और फिर श्रीराम [illegible] जीकी प्रदक्षिणा करके वरंवार नमस्कार किया ॥ ५१ ॥ भक्तिके कारण भरतजीका कण्ठ रुकगया और गद्गद वाणी होगई, इस दशामें श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! चौदह वर्ष पूर्ण होतेही पन्द्रहवें वर्षके पहिले दिन यदि तुम लौटकर नहीं

पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते ॥ तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा पादुके दिव्ये योजयामास पादयोः ॥ रामस्य ते ददौ रामो भरतायातिभक्तितः ॥ ५० ॥ गृहीत्वा पादुके दिव्ये भरतो रत्नभूषिते ॥ रामं पुनः परिक्रम्य प्रणनाम पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ भरतः पुन [illegible] गद्गदया गिरा ॥ नवपञ्चसमान्ते तु प्रथमे दिवसे यदि ॥ ५२ ॥ नागमिष्यसि चेद्राम प्रविशामि महानलम् ॥ बाढमि [illegible] त रामो भरतं सन्यवर्तयत् ॥ ५३ ॥ ससैन्यः सवसिष्ठश्च शत्रुघ्नसहितः सुधीः ॥ मातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं गमनायोपचक्रमे ॥ ५४ ॥ [illegible] केयी राम [illegible] कान्ते स्रवन्नेत्रजलाकुला ॥ प्राञ्जलिः प्राह हे राम तव राज्यविघातनम् ॥ ५५ ॥ कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचेतस [illegible] क्षमस्व म [illegible] गौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ॥ ५६ ॥

आजाओगे तो मैं बहुतसी अग्नि [illegible] करके [illegible] में भस्म होजाऊँगा. श्रीरामचन्द्रजीने इस [illegible] स्वीकार करके भरतजीको अयोध्यापुरीको लौटजानेके लिये कहा ॥ ५२ [illegible] ॥ भरतजी पर [illegible] बुद्धिमान् थे उन्होने श्रीरामचन्द्रजीकी [illegible] अनुसार वसिष्ठमुनि, शत्रुघ्न, माता, मन्त्री और सेना इन सबको साथ लेकर [illegible] तयारी करदी ॥ ५४ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजी इकले [illegible] थे, ऐसा समय पाकर कैकेयी उनके पास गई, दुःखित होनेके कारण निरंतर [illegible] की धारा वह [illegible] से उसके नेत्र विह्वल हो रहेथे, सो [illegible] जोड़कर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि हे श्रीरामचंद्र ! मैंने तुम्हारे राज्य [illegible] किया, मेरी बुद्धि दुष्ट होगईथी, मायाने मेरे अन्तःकरणको मोहित करलियाथा, सो अब आप मेरे इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुष्कर्म्मको क्षमा करो, क्यों कि क्षमा करना सत्पुरुषोंका स्वभाव होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ [illegible] साक्षात्परमेश्वर विष्णु भगवान् हो, तुम्हारा स्वरूप अव्यक्त और नित्य है, तुमने [illegible] करके मनुष्यरूप धारण किया है, और उस मायासे तुम [illegible] गत्को मोहित करते हो, तुम्हारी प्रेरणा होनेसेही पुरुष सत्कर्म्म अथवा दु[illegible]में प्रवृत्त होते हैं ॥ ५७ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे [illegible] और स्वयं परतन्त्र है, अपने आप क्या कर सकै है ? जिसप्रकार कठपुतलियें, [illegible]र (नचानेवाले) की इच्छाके अनुसार नृत्य करती हैं; [illegible] हारी वशीभूत माया, तुम्हारी प्रेरणा होनेसे तुम्हारी इच्छाके अनुसार [illegible] प्रकारके रूप धारण करके नृत्य करती है, तुम्हारे मनमें [illegible] का कार्य्य सिद्ध करनेका था, इसकारण तुमने मुझे प्रेरणा करी, इसकारण [illegible] मनमें पाप उत्पन्न हुआ और मैंने यह अत्यन्त दुष्कर्म [illegible] हे शत्रुनाशक श्रीरामचंद्र ! जिनका दर्शन

त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परम[illegible]सनातनः ॥ मायामानुषरूपेण मोहयस्यखिलं जगत् ॥ त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधु वा ॥५७॥
त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्र[illegible]रोति किं[illegible] ॥ यथा कृत्रिमनर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ॥ ५८ ॥ त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ॥ त्वयैव प्रेरिताऽहं [illegible]दृक्कार्यं करिष्यता ॥ ५९ ॥ पापिष्ठं पापमनसा कर्माचरमरिन्दम ॥ अद्य प्रतीतोऽसि मम देवानामप्यगोचरः ॥ ६० ॥ पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते ॥ छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ॥ ६१ ॥ त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता ॥ कैकेय्या वचनं श्रुत्वा रामः सस्मितमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत् ॥ मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद्विनिर्गता ॥ ६३ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव ॥ गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम् ॥६४॥

देवताओंको भी दुर्लभ होता है तिनही आज तुम्हारा मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो रहाहै, यह मेरा बड़ा भाग्य है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हे श्रीरामचंद्र ! मेरी रक्षा करो, जगत्के स्वामी [illegible] यही हो, तुम्हारे स्वरूपका, गुणोंका और शक्तिका अंत नहीं है, हे जगत्पते ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, मेरी तुमसे इतनी प्रार्थना है कि [illegible] अपने ज्ञानरूपी निर्म्मल खड्गसे पुत्र द्रव्य आदिके विषयकी मेरी स्नेहरूपी फांसीको काटदो, मैं तुम्हारी शरणागत हूँ, यह कैकेयीका कहना सुनकर श्रीरामचंद्रजी हँसते हँसते उससे बोले ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ कि हे मातः ! तेरा अहोभाग्य है, तने जो मुझसे कहा है सो असत्य नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण सत्य है, मैंने जैसे प्रेरणा करी वैसेही वाणी तेरे मुखसे निकली ॥ ६३ ॥ यह सब देवतसमा[illegible] कार्य्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[illegible] मेरा दोष नहीं [illegible]

सिद्ध करनेके निमित्त हुआ [illegible] आ[illegible] है. उधारू अयोध्यानगरीको जा और हृदयमें नित्य रा[illegible] मेरा ध्यान करती [illegible] ६४ ॥ तब मेरी भक्तिसे तेरा सब विषयका [illegible] दूर हो जायगा और शीघ्रही तू मुक्त होजायगी, मेरी दृष्टि सर्व स[illegible] जि[illegible] इसप्रकार मायावी (बाजीगर) की अपने आप उत्पन्न किये हुए मायाके [illegible] पदार्थोंमें द्वेष अथ[illegible] प्रीति नहीं होतीहै, तिसी प्रकार मेरे म[illegible] किसीसे वैरभाव अथवा प्रेमभाव नहीं है, भक्ति करनेवालेके मैं वशमें रहताहूँ. हे मातः ! जिनक[illegible] बुद्धिको मेरी मायाने मोहित करलिया है, वह पुरुष मुझको मनुष्योंके समान ही एक मनुष्य और सुखदुःखके प्रवाहमें पड़ाहुआ समझते हैं, परन्तु वास्तव[illegible] वैसा नहीं हूँ तुझे मेरे विषयका यथार्थ ज्ञान हुआ, वह बड़े आनन्दकी वार्त्ता है, यह ज्ञान संसारबन्धनको नष्ट करता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ घरमेंही तू मुझे स्मरण करती रह, तू कर्म्मोंसे लिप्त नहीं होयगी, श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार

सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात् ॥ अहं सर्वत्र समदृक् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा ॥ ६५ ॥ नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम् ॥ मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम् ॥ ६६ ॥ सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति नतु तत्त्वतः ॥ दिष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥ ६७ ॥ स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः ॥ इत्युक्त्वा सा परिक्रम्य रामं सानन्दविस्मया ॥ ६८ ॥ प्रणम्य शतशो भूमौ ययौ गेहं मुदान्विता ॥ भरतस्तु सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह ॥ ६९ ॥ अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन् ॥ पौरजानपदान्सर्वानयोध्यायामुदारधीः ॥ ७० ॥ स्थापयित्वा यथान्यायं नन्दिग्रामं ययौ स्वयम् ॥ तत्र सिंहासने नित्यं पादुके स्थाप्य भक्तितः ॥ ७१ ॥ पूजयित्वा यथा रामं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ राजोपचारैरखिलैः प्रत्यहं नियतव्रतः ॥ ७२ ॥

कहा तब कैकेयीको आनन्द और आश्चर्य्य दोनों हुए, उसने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करी, भूमिपर सैंक[illegible] नमस्कार किये और बड़े आनन्दपूर्वक घरको जानेकी तयारी करी. भरतजी, मंत्री, माता और गुरु आदि सब पुरुषोंको साथ लेकर श्रीराम[illegible] ही ध्यान करते हुए अयोध्याको गए, वह महाबुद्धिमान् भरतजी; नगरके लोगोंको और देशदेशोंसे आए हुए सम्पूर्ण पुरुषोंको अयोध[illegible] बैठे [illegible] वेषे नीतिकी रीतिके अनुसार स्थापन करके अपने आप नन्दिग्रामको चले ग[illegible] तहाँ उन्होंने सिंहासनपर श्रीरामचन्द्रजीकी पादुका स्थापन[illegible] और नित्य भक्तिपूर्वक गंध, पुष्प, अक्षत आदि सामग्रीसे उनकी पूजा करने लगे [illegible] भरतजी उन पादुकाओंको श्रीरामचन्द्रजीके समान मानक[illegible] तिदिन सम्पूर्ण राजोपचार (छत्र चमर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि) अर्पण करतेथे, उन्होंने नित्य व्रत धारण करनेका निश्चय कर लियाथा [illegible] म नही होगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ शत्रुघ्नसहित वह भरतजी नित्य फल और मूल भक्षण करके रहने लगे, इन्द्रियोंको वशमें करलिया, जटा और [illegible]शलपूर्वक [illegible] लिये, भूमिपर शयन किया और ब्रह्मचर्य्यव्रतका पालन किया, उससमय भरतजी पृथ्वीतलपर जितने राजकार्य्य होतेथे वह सम्पूर्ण पादुकाओंमें [illegible] श्रीरामचन्द्रजी [illegible] निवेदन करतेथे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ साक्षात् ब्रह्मनिष्ठ मुनिके समान उनका मन श्रीरामचन्द्रजीकी ओर सदा लगा रहताथा, रामचन्द्र [illegible] इच्छा करके वह दिनोंको गिनतेही रहतेथे ॥ ७५ ॥ इधर सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजी मुनियोंके साथ चित्रकूट पर्वतपर जहां पहिले रहतेथे, तहाँही कुछ

फलमूलाशनो दान्तो जटावल्कलधारकः ॥ अधःशायी ब्रह्मचारी शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ ७३ ॥ राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले ॥ तानि पादुकयोः सम्यङ्निवेदयति राघवः ॥ ७४ ॥ गणयन् दिवसान्येव रामागमनकाङ्क्षया ॥ स्थितो रामार्पितमनाः साक्षाद्ब्रह्ममुनिर्यथा ॥ ७५ ॥ रामस्तु चित्रकूटाद्रौ वसन्मुनिभिरावृतः ॥ सीतया लक्ष्मणेनापि किञ्चित्कालमुपावसत् ॥ ७६ ॥ नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलालसाः ॥ चित्रकूटस्थितं ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वा तज्जनसम्बाधं रामस्तत्याज तं गिरिम् ॥ दण्डकारण्यगमने कार्यमप्यनुचिन्तयन् ॥ ७८ ॥ अन्वगात्सीतया भ्रात्रा ह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ॥ सर्वत्र सुखसंवासं जनसम्बाधवर्जितम् ॥७९॥ गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम् ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये ॥ ८० ॥

दिन पर्य्यन्त और रहे ॥ ७६ ॥ फिर सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूटपर हैं, ऐसा सुना तब उनका दर्शन करनेकी उत्कण्ठासे नगरसे लोग तहाँ नित्य आनेलगे ॥ ७७ ॥ लोंगोंके समूह आते हैं ऐसा देखकर और दण्डकारण्यमें आगेको कार्य्य करनेका विचार करके श्रीरामचन्द्रजीने उस पर्वतपर रहना छोड़ दिया ॥ ७८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको और भ्राता लक्ष्मण [illegible] साथ लेकर [illegible] आश्रममें गए, वह आश्रम निवास करनेके सदा सुखदायक [illegible], तहाँ नगरके लोगोंकी भीड़ नहीं रहती थी। [illegible] मातः ! ते [illegible] तहाँ [illegible] थे उनकी कान्तिसे वह तपोवन, किन्तु सम्पूर्ण [illegible] श्रीरामचन्द्रजी मुनिके समीप जाकर दण्डवत् प्रणाम कर [illegible] ॥ ६३ [illegible] ॥ ८६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमें ऐसा दोष नहीं

प्रणाम करताहूं ॥ ८० ॥ हे मुने, [illegible] आज्ञा शिरोधार्य्य मानकर मैं दण्डकारण्यमें आया हूं, त्रिदिन मे[illegible] हुआ, इसकारण मैं [illegible] ॥ ८१ ॥ अत्रिमुनिने श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुनकर और श्रीरामजीको [illegible] जानकर भक्तिसे विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ८२ ॥ और वनमेंके फल अर्पण करके आतिथ्य क्रियामें [illegible] श्रीरामचन्द्र सीता [illegible] ण यह तीनो जने स्वस्थ होकर बैठे तब अत्रिमुनि अन्तःकरणमें संतुष्ट होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ [illegible] रामचन्द्रजी! मेरी अत्यंत वृद्ध स्त्री अनसूया भीतर बैठी है, बहुत दिनोपर्य्यन्त तप करनेके कारण उसकी कीर्ति सब जगत्में प्रसिद्ध [illegible] जाननेके कारण उसको धर्म्माचरण अत्यन्त प्रिय है, हे शत्रुनाशक! सीताजी उसका दर्शन करैं कमलनयन श्रीरामजन्द्रजीने "बहुत अच्छा" कहकर सीताजीसे कहा ॥ ८४ ॥

पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः [illegible] धन्योऽहं दर्शनात्तव ॥ ८१ ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं रामं ज्ञात्वा हरिं परम् ॥
पूजयामास विधिवद्भक्त्या परमया मुनि [illegible] ॥ वन्यैः [illegible] कृ[illegible]तिथ्यमुपविष्टं रघूत्तमम् ॥ सीतां च लक्ष्मणं चैव सन्तुष्टो वाक्यम-
ब्रवीत् ॥ ८३ ॥ भार्या मेऽतीव संवृद्धा ह्यनसूयेति [illegible] तप[illegible]श्चरन्ती सुचिरं धर्मज्ञा धर्मवत्सला ॥ ८४ ॥ अन्तस्तिष्ठति तां सीता
पश्यत्वरिनिषूदन ॥ तथेति जानकी प्राह राघो[illegible] ॥ ८५ ॥ गच्छ देवीं नमस्कृत्य शीघ्रमेहि पुन[illegible] शुभे ॥ तथेति रामवचनं
सीता चापि तथाऽकरोत् ॥ ८६ ॥ दण्डवत्पतितामग्रे सीतां [illegible]तिहृष्टधीः ॥ अनसूया समालिङ्ग्य वत्से [illegible]तेति सादरम् ॥ ८७ ॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्म[illegible] ॥ दुकूले द्वे ददौ [illegible] निर्मले भक्तिसंयुता ॥ ८८ ॥ अङ्गरागं [illegible] सीतायै ददौ दिव्यं शुभा-
ननाः ॥ न त्यक्षतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलाननेः ॥ [illegible]

॥ ८५ ॥ कि हे शुभलक्षणे जानकि! जाओ अनसूया देवीको [illegible] करके [illegible] शीघ्रही लौ [illegible] आओ, सी[illegible] [illegible] ऐसा" कहकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य किया, अर्थात् सीता जाकर [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ८७ ॥ और ऐसा देखकर अनसूयाके मनको आनन्द हुआ, उसने सीताजीको हे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ८८ ॥ अनसूयाने विश्वकर्मा [illegible] दो दिव्य कुण्डल, तथा दो स्वच्छ कपडे दिये उसके मनमें सीताके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उबटना तेरे अंगको लगाया है इसमें ऐसा गुण है कि यह तेरे स्वाभाविक शोभाको कभी देयगा ॥ ८९ ॥ हे जानकी ! पातिव्रत्य-
का आदर करके तू नित्य श्रीरामचन्द्रजीके पीछे पीछे जाओ, श्रीरामचन्द्रजी तेरे साथ फिर जायँ ॥ ९० ॥ फिर अत्रिमुनिने
न्यायानुस सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको और लक्ष्मणजीको भोजन कराया और हाथ जोड़कर श्र से बोले ॥ ९१ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी !

पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य सम्वेहि जानकि ... या सह पुनर्गृहम् ॥ ९० ॥ भोजयित्वा य ... न्यायं रामं सीतासम-
न्वितम् ॥ लक्ष्मणं च तदा रामं पुनः प्र ... ञ्जलिः ॥ ... त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां संरक्षणाय सुरम ... नुषतिर्यगादीन् ॥ देहा
न्बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्तस्त्वत्तो बि ... यन् ॥ ९२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहे ... श्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ अयोध्याकाण्डे नवानां सर्गा ... अरावृतः ॥

नेहितेऽयोध्याकाण्ड

... तया ...

॥ ७८ ॥

... सीत ...

तुमही भुवनोंको उत्पन्न करके उनकी ... कनक निमित्त कन्प्रनुष्य अ ... ं अवतार ... ण करतेहो, देहके गुणोंसे तुम
किञ्चिन्मात्रभी लिप्त नहीं होतेहो, सब ... ात्मरामार ... उमामहेश्वरसंवादे अयोध्याकाण्डे
पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यभ ... ाटीकाया नवमः सर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितेऽरण्यकाण्डप्रारम्भः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की ! पातिव्रत्य-
फिर अत्रिमुनिने
श्रीरामचन्द्रजी !

सीतासम-

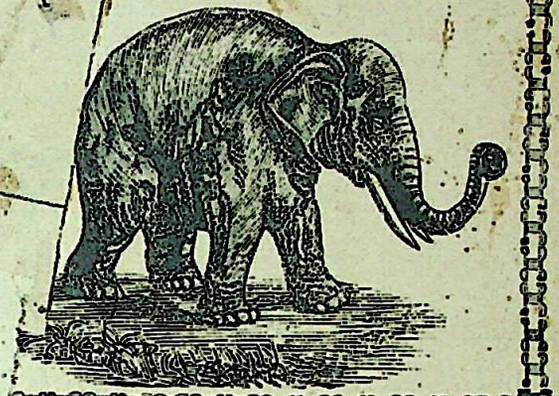

समीप गए, और उसके उ
बैठे, इतनेहीमें एक भयङ्कर बड़ाभा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजी वहाँ एक दिन रहे और दूसरे दिन प्रातःकाल उसके मुखमें लम्बी लम्बी दाढ़ें थीं आगे जानेको तयार हुए ॥ १ ॥ चलते समय श्रीरामचन्द्रजी मुनिसे बोले कि हे मुने ! दण्डकारण्यमें अनेक मुनियोंके मुखमें अनेक मनुष्य लटका लिए अकारण तिस स्थानकी अत्यन्तही शोभा होरही है, ऐसा सुनकर मुझे तहाँ जानेकी इच्छा होती है, सो आप आज्ञा दीजिये ॥ २ ॥ और हमें मार्ग बतानेके लिये अपने शिष्योंको आज्ञा दीजिये. वह परम प्रसिद्ध अत्रिमुनि श्रीरामचन्द्रजीके इसप्रकार भाषणको सुनकर हँसने लगे, और श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे आनन्ददायक श्रीरामचन्द्र ! देवताओंको भी तुम्हारा ही आश्रय है, तुम सम्पूर्ण जगत्को मार्ग दिखानेवाले हो, तुम्हे मार्ग दिखानेवाला संसारमें

श्रीमहादेव उवाच ॥ अथ तत्र दिनं स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दनः ॥ स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे ॥ १ ॥ मुने गच्छामहे सर्वे मुनिमण्डलमण्डितम् ॥ विपिनं दण्डकं यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि ॥२॥ मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः ॥ प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम सुराश्रय ॥ ३ ॥ सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः ॥ तथापि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः ॥ ४ ॥ इति शिष्यान्समादिश्य स्वयं किञ्चित्तमन्वगात ॥ रामेण वारितः प्रीत्या अत्रिः स्वभवनं ययौ ॥ ५॥ क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददर्श महतीं नदीम् ॥ अत्रेः शिष्यानुवाचेदं रामो राजीवलोचनः ॥ ६ ॥ नद्याः संतरणे कश्चिदुपायो विद्यते न वा ॥ ऊचुस्ते विद्यते नौका सुदृढा रघुनन्दन ॥ ७ ॥ तारयिष्यामहे युष्मान्वयमेव क्षणादिह ॥ ततो नावि समारोप्य सीतां राघवलक्ष्मणौ ॥ ८ ॥ क्षणात्सन्तारयामासुर्नदीं मुनिकुमारकाः ॥ रामाभिनन्दिताः सर्वे जग्मुरत्रेरथाश्रमम् ॥ ९ ॥

कौन है ? तथापि तुमने लोकाचारके अनुसार बूझा है, इस कारण यह शिष्य तुम्हे मार्ग दिखा देंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकार शिष्योंको आज्ञा देकर अत्रिमुनि अपने आपभी थोड़ी दूरतक उनको पहुँचानेको गए ॥ ५ ॥ फिर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी कोसभर पहुँचे तब मार्गमें एक बड़ी नदी दीखी, तब अत्रिमुनिके शिष्योंसे श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार कहने लगे कि ॥ ६ ॥ क्योंजी ? नदी उतरनेका कोई उपाय है या नही ? वह कहने लगे कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! यहां एक बड़ी मजबूत नौका है ॥ ७ ॥ हमही क्षणमात्रमें तुम्हे परलेपार उतारदेंगे, तदनन्तर मुनिकुमारोंने सीताजी श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी इन तीनोंको नौकामें बैठाकर थोड़ेसमयमेंही नदीके परलेपार उतारदिया और श्रीरामचन्द्रजीने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनन्दपूर्वक लौट जानेकी आज्ञादी तब वह सर्व मुनिकुमार लौटकर अत्रिमुनिके आश्रमको गए ॥ ८ ॥ ९ ॥ श्रीरामलक्ष्मण आगे चले तो उनको एक भयानक बन मिला, तहाँ झींगरका झिंगारशब्द निरन्तर होरहाथा, अनेक प्रकारके जंगली पशुओंके समूह इधर उधर फिर रहेथे, सिंह—व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंके कारण वह स्थान भयंकर होरहाथा ॥ १० ॥ कराल विकराल स्वरूपके राक्षस तहाँ बड़े प्रेमसे रहते थे, तहाँ जानेके साथही मनुष्योंके शरीरपर भयके कारण रोमाञ्च खड़े होजातेथे ऐसे उस भयानक बनमें प्रवेश करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ कि हे लक्ष्मण ! यहांसे अब तुम बड़ी सावधानीसे बिलकुल मेरे साथ साथ चलो, ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाली, हाथमें बाण लेलिये और लक्ष्मणजीसे यह कहतेहुए आगेको चले ॥ १२ ॥ कि हे लक्ष्मण ! मैं आगे चलताहूं तुम हाथमें धनुष लेकर पीछे पीछे चलो,

तावेत्य विपिनं घोरं झिल्लीझङ्कारनादितम् ॥ नानामृगगणाकीर्णं सिंहव्याघ्रादिभीषणम् ॥ १० ॥ राक्षसैर्घोररूपैश्च सेवितं रोमहर्षणम् ॥ प्रविश्य विपिनं घोरं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ११ ॥ इतः परं प्रयत्नेन गन्तव्यं सहितेन मे ॥ धनुर्गुणेन संयोज्य शरानपि करे दधत् ॥ १२ ॥ अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धरः ॥ आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ॥ १३ ॥ चक्षुश्चारय सर्वत्र द्रष्टं रक्षोभयं महत् ॥ विद्यते दण्डकारण्ये श्रुतपूर्वमरिन्दम ॥ १४ ॥ इत्येवं भाषामाणौ तौ जग्मतुः सार्धयोजनम् ॥ तत्रैका पुष्करिण्यास्ते कल्हारकुमुदोत्पलैः ॥ १५ ॥ अम्बुजैः शीतलोदेन शोभमाना व्यदृश्यत ॥ तत्समीपमथो गत्वा पीत्वा तत्सलिलं शुभम् ॥ १६ ॥

और जिसप्रकार जीव और ईश्वरके मध्यमें माया हो इसप्रकार सीता हम दोनोंके बीचमें चले ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण ! चारों ओरको दृष्टि डालकर देखो, तुम शत्रुओंका वध करनेके कार्य्यमें प्रवीण हो, दण्डकारण्यमें राक्षसोंका बड़ा भारी भय है; यह तुमने अपने कानोंसे सुनाही है, आज अपशकुन होते हैं, इसकारण तिस प्रकारका कोई कष्ट आनकर पड़ेगा, ऐसा मालूम होता है ॥ १४ ॥ ऐसे वार्त्ता करते करते वह डेढ़ योजन (छः कोश) मार्ग चले गए, तहाँ उन्होंने एक सरोवर देखा, उसमें कल्हार कुमुद कमल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प और शीतल जलकी अत्यन्त अधिकता थी, इसकारण वह सरोवर शोभायमान दीखताथा, वह तीनोंजने उस सरोवरके समीप गए, और उसके उत्तम जलका पान करके जलके समीप थोड़ीही दूरपर एक वृक्षकी छायामें क्षणमात्र विश्राम लेनेके निमित्त बैठे, इतनेहीमें एक भयङ्कर बड़ी लम्बा चौड़ा प्राणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने ऊपरको चला आवै है ऐसा उन्होने देखा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ उसके मुखमें लम्बी लम्बी दाढ़ें थीं और वह अपनी महाग र्जना करके प्राणियोंको भय दिखाताथा, वह अपने बाएँ कन्धेपर भाला रक्खा हुआथा, उसमें अनेक मनुष्य लटका लिए थे ॥१८॥ वनमें जो कोई जीव मिलताथा वह हस्ती हो, व्याघ्र हो अथवा भैंसा हो, उसको भक्षण कर लेताथा, श्रीरामचन्द्रजीने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा पहिलेही चढ़ा रक्खीथी, उस धनुषको हाथमें लेकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १९ ॥ कि हे भ्रातः ! देखो, यह बड़े भारी शरीरवाला राक्षस समीप आगया यह हमारे सामने इधरहीको चला आता है, इसको देखकर डरपोकोंको बड़ा भय लगताहोगा ॥ २० ॥ तुम धनुषको तयार करके खड़ेरहो, हे

ऊषुस्ते सलिलाभ्याशे क्षणं छायामुपाश्रिताः ॥ ततो ददृशुरायान्तं महासत्वं भयानकम् ॥ १७ ॥ करालदंष्ट्रवदनं भीषयन्तं स्वगर्जितैः ॥ वामांसे न्यस्तशूलाग्रग्रथितानेकमानुषम् ॥१८॥ भक्षयन्तं गजव्याघ्रमहिषं वनगोचरम् ॥ ज्याऽऽरोपितं धनुर्धृत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १९ ॥ पश्य भ्रातर्महाकायो राक्षसोऽयमुपागतः ॥ आयात्यभिमुखं नोऽग्रे भीरूणा भयमावहन् ॥ २० ॥ सज्जीकृतधनुस्तिष्ठ मा भैर्जनकनन्दिनि ॥ इत्युक्त्वा बाणमादाय स्थितो राम इवाचलः ॥ २१ ॥ स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा ॥ अट्टहासं ततः कृत्वा भीषयन्निदमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कौ युवां बाणतूणीरजटावल्कलधारिणौ ॥ मुनिवेषधरौ बालौ स्त्रीसहायौ सुदुर्मदौ ॥ २३ ॥ सुन्दरौ बत मे वक्त्रप्रविष्टकवलोपमौ ॥ किमर्थमागतौ घोरं वनं व्यालनिषेवितम् ॥ २४ ॥

जानकि ! तुम भयभीत मत होना, इसप्रकार कहकर और बाण हाथमें लेकर श्रीरामचन्द्रजी पर्वतके समान निश्चल खड़े होगए ॥ २१ ॥ उस समय वह राक्षस तो श्रीरामचन्द्रजीको और लक्ष्मणजीको तथा जानकीजीको देखकर बड़ी जोरसे हँसनेलगा, और उनको डराताहुआ इसप्रकार बोला ॥ २२ ॥ कि अरे तुम दोनों जने कौन हो ? तुम्हारे शरीरपर बाण, तरकस, जटा और वल्कल दीखतेहैं, तुमने बालक होकर मुनियोंका वेष धारण किया है, तुम्हारे साथ एक स्त्री है, आकृतिसे तो तुम बड़े उन्मत्त मालूम होतेहो ॥ २३ ॥ देखनेमें बड़े सुन्दर हो और मुझे तुम मेरे मुखमें अपने आप आकर पड़नेवाले ग्रासके समान मालूम होतेहो, अरे ! इस घोर बनमें सिंहादि हिंसक पशु रहतेहैं, तुम यहाँ किसकारण आए हो ? ॥ २४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार राक्षसके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हँसतेहुए उस राक्षससे कहने लगे कि, अरे ! मैं रामचन्द्र हूँ और यह मेरे प्रिय भ्राता लक्ष्मण है तथा यह मेरी प्राणप्रिया सीता है, हम पिताकी आज्ञाको मानकर तुझसरीखे दुष्टोंको शिक्षा देनेके निमित्त यहाँ आए हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुननेके साथही वह राक्षस बड़े वेगसे खीखीकरके हँसनेलगा, और मुख फैलाकर तथा जल्दीसे हाथमें शूल लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि ॥ २७ ॥ अरे रामचन्द्र ! मैं संपूर्ण जगत्में प्रसिद्ध विराधनामवाला राक्षस हूँ, और तू मुझे नहीं जानता है, अरे मेरे भयसे तो सम्पूर्ण मुनि वनको छोड़कर यहाँसे चले गए ॥ २८ ॥ अब तुम्है यदि जीवित रहनेकी इच्छा होय तो शस्त्रोंको

श्रुत्वा रक्षोवचो रामः स्मयमान उवाच तम् ॥ अहं रामस्त्वयं भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मतः ॥ २५ ॥ एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागताः ॥ पितृवाक्यं पुरस्कृत्य शिक्षणार्थं भवादृशाम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वा तद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत् ॥ व्यादाय वक्त्रं बाहुभ्यां शूलमादाय सत्वरः ॥ २७ ॥ मा न जानासि राम त्वं विराधं लोकविश्रुतम् ॥ मद्भयान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः ॥ २८ ॥ यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीता निरायुधौ ॥ पलायतं न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम् ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातु मभिदुद्रुवे ॥ रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण ग्रहसन्निव ॥ ३० ॥ ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम् ॥ राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावतः ॥ ३१ ॥ पदद्वयं विराधस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥ ततः सर्प इवास्येन ग्रसितुं राममापतत् ॥ ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिरः ॥ ३३ ॥ चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले ॥ ततः सीता समालिङ्ग्य प्रशशंस रघूत्तमम् ॥ ३४ ॥

डालकर और सीताको छोड़कर भागजाओ, नहीं तो मैं तुम दोनोंको अभी भक्षण कर लेताहूँ ॥ २९ ॥ इसप्रकार कहकर वह राक्षस सीताजीको पकड़नेके लिये उनके ऊपरको दौड़ा, तब श्रीरामचन्द्रजीने हँसते हँसते दोनों भुजा काटडालीं ॥ ३० ॥ तबतो उसके चित्तमें बडा क्रोध भरगया, और वह अपने विकराल मुखको फैलाकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपरको चला. 'विराध दौडकर आताहै' ऐसा देखकर श्रीरामचन्द्रजीने दौडतेही दौडतेमें उसके दोनो पैर काटडाले, यह एक आश्चर्य्यसा होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको ग्रसनेके लिये सर्पके समान सरकता सरकता आनेलगा, तब श्रीरामचन्द्रजीनें अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका प्रचण्ड मस्तक काटडाला, वह मस्तक रुधिरकी धारासहित पृथ्वीपर गिरपडा, तब सीताने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा की ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससमय स्वर्गमें देवताओंके समूहने दुन्दुभी बजाई, अप्सरा आनन्दमें होकर नृत्य करनेलगीं और गन्धर्व तथा किन्नर गान करनेलगे ॥ ३५ ॥ विराधके शरीरमेंसे एक अत्यंत स्वरूपवान् तेजस्वी पुरुष निकला, उसने निर्म्मल वस्त्र धारण किया था, तपाएहुए सुवर्णके समान चमकतेहुए उत्तम आभूषण धारण किये थे जिसप्रकार आकाशमें सूर्य्य दीखता है, इसप्रकार वह पुरुष श्रीरामचंद्रजीके आगे दीखने लगा ॥ ३६ ॥ उसने भक्तोंके दुःखोंको दूर करनेवाले श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम किया. श्रीमहादेवजी कहनेलगे कि हे पार्वति ! श्रीरामचंद्रजी संसारप्रवाहका नाश करनेवाले हैं, दयाका उत्पत्तिस्थान वह प्रभु स्वयं शरण आएहुए जनके संकटोंको दूर करते हैं, उनका दर्शन होतेही उस पुरुषका मन प्रसन्न होगया और उसने श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ३७ ॥ और वह विराध

ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः ॥ ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ ३५ ॥ विराधकायादतिसुन्दराकृतिर्विभ्राजमानो विमलाम्बरावृतः ॥ प्रतप्तचामीकरचारुभूषणो व्यदृश्यताग्रे गगने रविर्यथा ॥३६॥ प्रणम्य रामं प्रणतार्तिहारिणं भवप्रवाहोपरमं घृणाकरम् ॥ प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवत्प्रपन्नसर्वार्तिहरं प्रसन्नधीः ॥३७॥ विराध उवाच ॥श्रीराम राजीवदलायताक्ष विद्याधरोऽहं विमलप्रकाशः ॥ दुर्वाससाऽकारणकोपमूर्तिना शप्तः पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया ॥३८॥ इतः परं त्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिः सदा मेऽस्तु भवापशान्तये ॥ त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम् ॥३९॥ कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात् ॥ शिरश्च ते पादयुगप्रणामं करोतु नित्यं भवदीयमेवम् ॥ ४० ॥ नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ आत्मारामाय रामाय सिताराम्राय वेधसे ॥ ४१ ॥

कहने लगाकि, हे श्रीरामचन्द्रजी ! हे कमलपत्रके समान विशालनेत्र ! तुम्हारे सन्मुख खड़ाहुआ शुद्धतेजस्वी पुरुष मैं विद्याधर हूँ, विना कारणही क्रोध करनेवाले साक्षात् कोपमूर्त्ति दुर्वासाऋषिने पूर्वकालमें मुझे शाप दियाथा. तुमने आज उस शापसे मुझे छुडाया ॥ ३८ ॥ अबसे आगेको संसारबन्धनके दूर होनेके निमित्त तुम्हारे चरणकमलोंका नित्य स्मरण रहै, मेरी वाणी तुम्हारे नामोंका कीर्त्तन ही करती रहै, कानोंसे तुम्हारे कीर्त्तनरूपी अमृतका पान करतारहूं, मेरे दोनों हाथ तुम्हारे चरणकमलोंका पूजन करते रहैं, मेरा शिर आपके दोनों चरणकमलोंको प्रणाम करतारहै, इसप्रकार मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियें तुम्हारी सेवा करनेमें तत्पर रहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी ! शुद्ध अपरोक्ष ज्ञानही तुम्हारी मूर्त्ति है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार राक्षसके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हँसतेहुए उस राक्षससे कहने लगे कि, अरे ! मैं रामचन्द्र हूँ और यह मेरे प्रिय भ्राता लक्ष्मण है तथा यह मेरी प्राणप्रिया सीता है, हम पिताकी आज्ञाको मानकर तुझसरीखे दुष्टोंको शिक्षा देनेके निमित्त यहाँ आए हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुननेके साथही वह राक्षस बड़े वेगसे खीखीकरके हँसनेलगा, और मुख फैलाकर तथा जल्दीसे हाथमें शूल लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि ॥ २७ ॥ अरे रामचन्द्र ! मैं संपूर्ण जगत्में प्रसिद्ध विराधनामवाला राक्षस हूँ, और तू मुझे नहीं जानता है, अरे मेरे भयसे तो सम्पूर्ण मुनि वनको छोड़कर यहाँसे चले गए ॥ २८ ॥ अब तुम्है यदि जीवित रहनेकी इच्छा होय तो शस्त्रोंको

श्रुत्वा रक्षोवचो रामः स्मयमान उवाच तम् ॥ अहं रामस्त्वयं भ्राता लक्ष्मणो मम सम्मतः ॥ २५ ॥ एषा सीता मम प्राणवल्लभा वयमागताः ॥ पितृवाक्यं पुरस्कृत्य शिक्षणार्थं भवादृशाम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वा तद्रामवचनमट्टहासमथाकरोत् ॥ व्यादाय वक्त्रं बाहुभ्यां शूलमादाय सत्वरः ॥ २७ ॥ मा न जानासि राम त्वं विराधं लोकविश्रुतम् ॥ मद्भयान्मुनयः सर्वे त्यक्त्वा वनमितो गताः ॥ २८ ॥ यदि जीवितुमिच्छास्ति त्यक्त्वा सीता निरायुधौ ॥ पलायतं न चेच्छीघ्रं भक्षयामि युवामहम् ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातु मभिदुद्रुवे ॥ रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण प्रहसन्निव ॥ ३० ॥ ततः क्रोधपरीतात्मा व्यादाय विकटं मुखम् ॥ राममभ्यद्रवद्रामश्चिच्छेद परिधावतः ॥ ३१ ॥ पदद्वयं विराधस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥ ततः सर्प इवास्येन ग्रसितुं राममापतत् ॥ ततोऽर्धचन्द्राकारेण बाणेनास्य महच्छिरः ॥ ३३ ॥ चिच्छेद रुधिरौघेण पपात धरणीतले ॥ ततः सीता समालिङ्ग्य प्रशशंस रघूत्तमम् ॥ ३४ ॥

डालकर और सीताको छोड़कर भागजाओ, नहीं तो मैं तुम दोनोंको अभी भक्षण कर लेताहूँ ॥ २९ ॥ इसप्रकार कहकर वह राक्षस सीताजीको पकड़नेके लिये उनके ऊपरको दौड़ा, तब श्रीरामचन्द्रजीने हँसते हँसते दोनों भुजा काटडालीं ॥ ३० ॥ तबतो उसके चित्तमें बडा क्रोध भरगया, और वह अपने विकराल मुखको फैलाकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपरको चला. 'विराध दौडकर आताहै' ऐसा देखकर श्रीरामचन्द्रजीने दौडतेही दौडतेमें उसके दोनो पैर काटडाले, यह एक आश्चर्य्यसा होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको ग्रसनेके लिये सर्पके समान सरकता सरकता आनेलगा, तब श्रीरामचन्द्रजीनें अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका प्रचण्ड मस्तक काटडाला, वह मस्तक रुधिरकी धारासहित पृथ्वीपर गिरपडा, तब सीताने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा की ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उससमय स्वर्गमें देवताओंके समूहने दुन्दुभी बजाई, अप्सरा आनन्दमें होकर नृत्य करनेलगीं और गन्धर्व तथा किन्नर गान करनेलगे ॥ ३५ ॥ विराधके शरीरमेंसे एक अत्यंत स्वरूपवान् तेजस्वी पुरुष निकला, उसने निर्म्मल वस्त्र धारण किया था, तपाएहुए सुवर्णके समान चमकतेहुए उत्तम आभूषण धारण किये थे जिसप्रकार आकाशमें सूर्य्य दीखता है, इसप्रकार वह पुरुष श्रीरामचंद्रजीके आगे दीखने लगा ॥ ३६ ॥ उसने भक्तोंके दुःखोंको दूर करनेवाले श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम किया. श्रीमहादेवजी कहनेलगे कि हे पार्वति ! श्रीरामचंद्रजी संसारप्रवाहका नाश करनेवाले हैं, दयाका उत्पत्तिस्थान वह प्रभु स्वयं शरण आएहुए जनके संकटोंको दूर करते हैं, उनका दर्शन होतेही उस पुरुषका मन प्रसन्न होगया और उसने श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ३७ ॥ और वह विराध

ततो दुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवगणेरिताः ॥ ननृतुश्चाप्सरा हृष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ ३५ ॥ विराधकायादतिसुन्दराकृतिर्विभ्राजमानो विमलाम्बरावृतः ॥ प्रतप्तचामीकरचारुभूषणो व्यदृश्यताग्रे गगने रविर्यथा ॥३६॥ प्रणम्य रामं प्रणतार्तिहारिणं भवप्रवाहोपरमं घृणाकरम् ॥ प्रणम्य भूयः प्रणनाम दण्डवत्प्रपन्नसर्वार्तिहरं प्रसन्नधीः ॥३७॥ विराध उवाच ॥श्रीराम राजीवदलायताक्ष विद्याधरोऽहं विमलप्रकाशः ॥ दुर्वाससाऽकारणकोपमूर्तिना शप्तः पुरा सोऽद्य विमोचितस्त्वया ॥३८॥ इतः परं त्वच्चरणारविन्दयोः स्मृतिः सदा मेऽस्तु भवापशान्तये ॥ त्वन्नामसङ्कीर्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम् ॥३९॥ कथामृतं पातु करद्वयं ते पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात् ॥ शिरश्च ते पादयुगप्रणामं करोतु नित्यं भवदीयमेवम् ॥ ४० ॥ नमस्तुभ्यं भगवते विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ आत्मारामाय रामाय सिताराम्राय वेधसे ॥ ४१ ॥

कहने लगाकि, हे श्रीरामचन्द्रजी ! हे कमलपत्रके समान विशालनेत्र ! तुम्हारे सन्मुख खड़ाहुआ शुद्धतेजस्वी पुरुष मैं विद्याधर हूँ, विना कारणही क्रोध करनेवाले साक्षात् कोपमूर्त्ति दुर्वासाऋषिने पूर्वकालमें मुझे शाप दियाथा. तुमने आज उस शापसे मुझे छुडाया ॥ ३८ ॥ अबसे आगेको संसारबन्धनके दूर होनेके निमित्त तुम्हारे चरणकमलोंका नित्य स्मरण रहै, मेरी वाणी तुम्हारे नामोंका कीर्त्तन ही करती रहै, कानोंसे तुम्हारे कीर्त्तनरूपी अमृतका पान करतारहूं, मेरे दोनों हाथ तुम्हारे चरणकमलोंका पूजन करते रहैं, मेरा शिर आपके दोनों चरणकमलोंको प्रणाम करतारहै, इसप्रकार मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियें तुम्हारी सेवा करनेमें तत्पर रहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी ! शुद्ध अपरोक्ष ज्ञानही तुम्हारी मूर्त्ति है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम नित्य आत्मस्वरूपमें रमण करते रहते हो, और भक्तजनोंके आनन्ददायक हो, तथा जैसी इच्छा होय वैसाही चरित्र करनेमें समर्थ हो, हे श्रीरामचन्द्रजी ! सीतासहित तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मैं तुमको शरण आयाहूँ, मेरी रक्षा करो, आप आज्ञा दें कि मैं देवलोकको जाऊँ. हे रघुवीर ! तुम्हारी माया मुझे मोहित नहीं करै, इतनी कृपा करनेके लिये आपसे मेरी प्रार्थना है ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे उस पुरुषने प्रार्थना करी, तब श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए. उस समय तिन परमउदार परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजीने सन्तुष्ट होकर विराधको वरदान दिया और कहा ॥ ४३ ॥ कि हे विद्याधर ! जाओ, संसारमें अज्ञानके दोषोंसे जो परिणाम देखनेमें आते हैं वह तैने मेरे दर्शनसे जीतलिये, इसकारण अब तू ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ होकर मुक्त होजायगा ॥ ४४ ॥ संसारमें मेरी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, वह भक्ति उत्पन्न हुई कि मुक्ति होही जाती है,

प्रपन्नं पाहि मा राम यास्यामि त्वदनुज्ञया ॥ देवलोकं रघुश्रेष्ठ माया मां मावृणोतु ते ॥ ४२ ॥ इति विज्ञापितस्तेन प्रसन्नो रघुनन्दनः ॥ ददौ वरं तदा प्रीतो विराधाय महामतिः ॥ ४३ ॥ गच्छ विद्याधराशेषमायादोषगुणा जिताः ॥ त्वया मद्दर्शनात्सद्यो मुक्तो ज्ञानवतां वरः ॥ ४४ ॥ मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाता चेन्मुक्तिदा यतः ॥ अतस्त्वं भक्तिसम्पन्नः परं याहि ममाज्ञया ॥ ४५ ॥ रामेण रक्षोनिधनं सुघोरं शापाद्विमुक्तिर्वरदानमेवम् ॥ विद्याधरत्वं पुनरेव लब्धं रामं गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ४६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा महेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सितया ॥ जगाम शरभङ्गस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥ १ ॥ शरभङ्गस्ततो दृष्ट्वा रामं सौमित्रिणा सह ॥ आयान्तं सीतया सार्धं संभ्रमादुत्थितः सुधीः ॥ २ ॥

इसकारण तेरी जो मेरे विषे भक्ति हुईहै तिससे मेरी आज्ञा है कि तुझे मुक्ति प्राप्त होयगी ॥ ४५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने महाभयंकर राक्षसका वध किया, उसको शापसे छुडाकर वरदान दिया, अन्तमें उस राक्षसको फिर विद्याधरयोनि मिली, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंको जो वर्णन करैगा, वह पुरुष सम्पूर्ण पदार्थोंको प्राप्त होयगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे मुरादाबादनिवासिपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकयासहितः प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे पार्वति ! विराधके स्वर्गको चलेजानेके अनन्तर लक्ष्मणजी और सीताजी इन दोनोंको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी शरभंगके वनमें गए, वह स्थान सम्पूर्ण प्राणियोंको सुखदायक था ॥ १ ॥ उस समय परम बुद्धिमान शरभंग ऋषि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजी सीताको साथ लेकर आए हैं' ऐसा देखकर जल्दीसे उठकर खड़े हुए ॥ २ ॥ और सन्मुख जाकर तीनोंको बहुत सन्मानपूर्वक आश्रममें लाए और आसनपर बैठाकर कन्द-मूल-फल आदिसे उनका आतिथ्य सत्कार किया ॥ ३ ॥ फिर शरभङ्गऋषि आनन्दपूर्वक तिन भक्तपरायण श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे श्रीरामचंद्रजी ! मैं तप करनेका निश्चय करके बहुत दिनोंसे यहाँही निवास कररहाहूँ ॥ ४ ॥ मेरी अत्यन्तही इच्छा थी कि आपका दर्शन होय, सो आज मेरी इच्छा पूर्ण होगई. हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम प्रत्यक्ष प्रमेश्वर हो, आज मेरा तप करना सफल हुआ, मैंने तप करके जो कुछ पुण्य संपादन किया है, वह सब मैं आज आपको समर्पण करताहूँ और फिर मोक्षको प्राप्त होताहूँ ॥५॥ श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि—हे पार्वति ! शरभंगमुनि पूर्णयोगी और विरक्त थे, उन्होंने अपना अपार पुण्यफल श्रीरामचंद्रजीको समर्पण किया और जिनके स्वरूपका

अभिगम्य सुसम्पूज्य विष्टरेषूपवेशयत् ॥ आतिथ्यमकरोत्तेषां कन्दमूलफलादिभिः ॥ ३ ॥ प्रीत्याह शरभङ्गोऽपि रामं भक्तपरायणम् ॥ बहुकालमिहैवासं तपसे कृतनिश्चयः ॥ ४॥ तव सन्दर्शनाकाङ्क्षी राम त्वं परमेश्वरः ॥ अद्य मत्तपसा सिद्धं यत्पुण्यं बहु विद्यते ॥ तत्सर्वं तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥ ५ ॥ समर्प्य रामस्य महत्सुपुण्यफलं विरक्तः शरभङ्गयोगी ॥ चितिं समारोहयदप्रमेयं रामं ससीतं सहसा प्रणम्य ॥ ६ ॥ ध्यायंश्चिरं राममशेषहृत्स्थं दूर्वादलश्यामलमम्बुजाक्षम् ॥ चीराम्बरं स्निग्धजटाकलापं सीतासहायं सहलक्ष्मणं तम् ॥ ७ ॥ को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्या रघुनायकादहो ॥ स्मृतो मया नित्यमनन्यभाजा ज्ञात्वा स्मृतिं मे स्वयमेव यातः ॥ ८ ॥

प्रमाण नहीं ऐसे सीतासहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया और तत्काल चितापर चढ़गए ॥ ६ ॥ इस समयमें वह निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान कररहेथे, श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, उनका शरीर दूबके पत्तोंके समान श्यामवर्ण और नेत्र कमलके समान थे, बल्कलरूपी वस्त्रोंको धारण किएहुए थे, मस्तकपर तेजस्वी जटाओंका मुकुट विराजमान था और सीता तथा लक्ष्मणजी यह दोनों उनके साथ थे ॥७॥ देह त्याग करते हुए शरभङ्गऋषिने स्तुति करके श्रीरामचन्द्रजीसे प्रार्थना करी कि जगत्में श्रीरामचन्द्रजीके समान दूसरा दयालु पुरुष क्या कोई और देखनेमें आताहै? अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीके समान दया करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, जो स्मरण करतेही कामधेनुके समान वाञ्छित पदार्थोंको देते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं सदा अनन्यभावसे उनका चिन्तन करता चला आया हूँ, उस स्मरणको जानकर तिन प्रभुने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है ॥ ८ ॥ देवाधिदेव, दशरथ-कुमार प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अब यहां देखते रहैं, मैं अपने आपही देहको भस्म करके निष्पाप होकर ब्रह्मलोकको जाताहूँ ॥ ९ ॥ मेघपर विद्युच्छ-टाके समान जिनके वामांगमें सीता बैठी हुई है, वह अयोध्यापति रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी सदा सर्वकाल मेरे हृदयमें रहैं ॥ १० ॥ शरभंग मुनिने इस प्रकार कहकर बहुत कालपर्यन्त श्रीरामचंद्रका ध्यान किया, फिर आगे खडी हुई मुक्तिका दर्शन किया, अग्निको जलाया और तत्काल अपने पञ्चभूतात्मक शरीरको भस्म करडाला ॥ ११ ॥ तब वह दिव्यदेहधारी होकर साक्षात् लोकरक्षक प्रभु श्रीरामचन्द्रके पदको प्राप्त हुआ, फिर दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले सम्पूर्ण मुनिजन श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेके निमित्त तिन शरभङ्गऋषिके आश्रममें आपहुँचे ॥ १२ ॥ जानकी-

पश्यत्विदानीं देवेशो रामो दाशरथिः प्रभुः ॥ दग्ध्वा स्वदेहं गच्छामि ब्रह्मलोकमकल्मषः ॥ ९ ॥ अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा ॥ यद्वामाङ्के स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ॥ १० ॥ इति रामं चिरं ध्यात्वा दृष्ट्वा च पुरतः स्थितम् ॥ प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मकं वपुः ॥ ११॥ दिव्यदेहधरः साक्षाद्ययौ लोकपतेः पदम् ॥ ततो मुनिगणाः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः ॥ आजग्मू राघवं द्रष्टुं शरभङ्गनिवेशनम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा मुनिसमूहं तं जानकीरामलक्ष्मणाः ॥ प्रणेमुः सहसा भूमौ मायामानुषरूपिणः ॥ १३ ॥ आशीर्भिरभिनन्द्याथ रामं सर्वहृदि स्थितम् ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे धनुर्बाणधरं हरिम् ॥ १४ ॥ भूमेर्भारावताराय जातोऽसि ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ जानीमस्त्वा हरिं लक्ष्मीं जानकीं लक्ष्मणं तथा ॥१५॥ शेषांशं शङ्खचक्रे द्वे भरतं सानुजं तथा ॥ अतश्चादौ ऋषीणां त्वं दुःखं मोक्तुमिहार्हसि ॥ १६ ॥

जी श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी इन्होंने मायाकरके मनुष्यका रूप धारण किया, तिसकारण उस मुनिसमूहके दर्शन करके तत्काल भूमिपर प्रणाम किया ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं, उन्होंने भक्तोंका दुःख दूर करनेके निमित्त उस समय धनुषबाण हाथमें लियाथामुनियोंने आशीर्वाद देकर गौरव किया, और हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! ब्रह्माजीने भूमिका भार दूर करनेके निमित्त प्रार्थना करी, इसकारण तुमने यहां अवतार लिया है, हम जानते हैं कि तुम प्रत्यक्ष विष्णु भगवान्, जानकीजी लक्ष्मी और लक्ष्मणजी शेषजीका अंश तथा भरत और शत्रुघ्न दोनों शंखचक्रका अवतार हैं, सो अब अवश्यही तुम ऋषियोंको दुःखसे छुडाओगे ॥ १५ ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे श्रीरामचंद्रजी ! लक्ष्मणजी और सीताजीको लेकर हमारे साथ चलिये, मुनि जहाँ जहाँ निवास करते हैं, उन संपूर्ण आश्रमोंको आप क्रमसे देखते जाओ, तिस देखनेसे आपकी हमारे ऊपर दया बढ़ैगी ॥ १७ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रार्थना की, तब वह सर्व व्यापी ईश्वर श्रीरामचंद्रजी मुनियोंका वन देखनेके निमित्त ऋषियोंके साथ गए ॥ १८ ॥ तहाँ चारों ओर पड़े हुए अनेक मस्तकोंके हाड़ श्रीरामचंद्रजीने देखे, तब उन्होंने ऋषियोंसे बूझा ॥ १९ ॥ कि हे मुनियों! यह हाड़ किनके हैं और यहाँ क्यों पड़े हैं? मुनि बोले कि हे श्रीरामचन्द्रजी! यह ऋषियोंके मस्तक हैं ॥२०॥ हे ईश्वर! नृशंस (घातुक) राक्षसोंके समूहके समूह समाधिको त्यागनेके समय ऋषियोंके तपमें विघ्न करते फिरते हैं अब

आगच्छ यामो मुनिसेवितानि वनानि सर्वाणि रघूत्तम क्रमात् ॥ द्रष्टुं सुमित्रासुतजानकीभ्यां तदा दयास्मासु दृढा भविष्यति ॥ १७ ॥ इति विज्ञापितो रामः कृताञ्जलिपुटैर्विभुः ॥ जगाम मुनिभिः सार्धं द्रष्टुं मुनिवनानि सः ॥ १८ ॥ ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसि सः ॥ अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत् ॥१९॥ अस्थीनि केषामेतानि किमर्थं पतितानि वै ॥ तमूचुर्मुनयो राम ऋषीणां मस्तकानि हि ॥ २० ॥ राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधितः ॥ अन्तरायं मुनीनां ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि ॥ २१ ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुनीनां स भयदैन्यसमन्वितम् ॥ प्रतिज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम् ॥ २२ ॥ पूज्यमानः सदा तत्र मुनिभिर्वनवासिभिः ॥ जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ २३ ॥ उवास कतिचित्तत्र वर्षाणि रघुनन्दनः ॥ एवं क्रमेण संपश्यन्नृषीणामाश्रमान्विभुः ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमं प्रागात्प्रख्यातमृषिसंकुलम् ॥ सर्वर्तुगुणसंपन्नं सर्वकालसुखावहम् ॥२५॥ राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्णः स्वयमागतः ॥ अगस्त्य शिष्यो रामस्य मन्त्रोऽपासनतत्परः ॥ विधिवत्पूजयामास भक्त्युत्कण्ठितलोचनः ॥ २६ ॥

आप इस विपत्तिसे हमारी रक्षा करो ॥ २१ ॥ भय और दीनतायुक्त वह मुनियोंका भाषण सुनतेही श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा करी ॥ २२ ॥ तदनन्तर सीता और लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजी कुछ वर्षपर्यन्त रहे वनके निवास करनेवाले मुनि नित्य उनका पूजन करतेथे, प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने क्रमक्रमसे तहाँ सम्पूर्ण ऋषियोंके आश्रम देखे ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनन्तर सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमको गये ऋषिके उस प्रसिद्ध आश्रममें ऋषियोंका बडा समूह रहताथा, तहाँ सम्पूर्ण ऋतुओंके फल पुष्प आदि सदा रहतेथे इसकारण प्राणियोंको तहाँ सदा सुख प्राप्त होताथा ॥ २५ ॥ 'श्रीरामचन्द्रजी आये हैं' ऐसा सुनतेही सुतीक्ष्ण मुनि अपने आप आए, यह मुनि अगस्त्य ऋषिके शिष्य थे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और रामचन्द्रकी उपासना करनेमें सदा लगे रहतेथे, उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीका विधिपूर्वक पूजन किया, भक्तिके कारण उनके नेत्र इतने उत्कंठित होरहे थे कि रामचन्द्रकी ओरको कितनीही देर देखा परन्तु तृप्ति न हुई ॥ २६ ॥ सुतीक्ष्ण मुनि श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि हे सीतापते ! तुम्हारे गुणोंका अन्त नहीं है, तुम्हारे स्वरूपकी देशकरके अथवा कालकरके मर्य्यादा नहीं है अर्थात् तुम्हारा स्वरूप अमुक देशमें अथवा अमुक कालपर्य्यन्त रहता है यह कहना नहीं बनसक्ता किन्तु सर्वव्यापी और नित्य है, महादेव और ब्रह्माजी तुम्हारे चरणोंका आश्रय लेते हैं, तुम्हारे चरणही संसाररूपी समुद्रको तरनेके निमित्त उत्तम नौकारूप हैं, तुम भक्त जनोंको सर्वोपरि आनन्द देतेहो, हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं तुम्हारे नाम मात्रका जप करता रहता हूँ, और अब आगेको भी नियमसे तुम्हारे भक्तोंका दास होकर रहूंगा ॥ २७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मैं तुम्हारी मायासे

॥ ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ ॥ त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे ॥ संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद रामाभिराम सततं तव दासदासः ॥ २७ ॥ मामद्य सर्वजगतामविगोचरस्त्वं त्वन्मायया सुतकलत्रगृहान्धकूपे ॥ मग्नं निरीक्ष्य मलपुद्गलपिण्डमोहपाशानुबद्धहृदयं स्वयमागतोऽसि ॥ २८ ॥ त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि त्वन्मन्त्रजाप्यविमुखेषु तनोषि मायाम् ॥ त्वन्मन्त्रसाधनपरेष्वपयाति माया सेवानुरूपफलदोऽसि यथा महीपः ॥ २९ ॥ विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकस्त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू ॥ भासीश मोहितधियां विविधाकृतिस्त्वं यद्भद्रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः ॥ ३० ॥

पुत्र, स्त्री, गृहरूप अज्ञानमय कूपमें डूब रहा हूँ, यह शरीर केवल मलका एक पिण्ड है, परन्तु इसकी मोहरूपी फांसीसे मेरा मन अत्यन्त बंध रहा है. हे देव ! तुम्हारे स्वरूपका ज्ञान अथवा दर्शन सम्पूर्ण संसारमें किसीको भी नहीं होता है परन्तु वही तुम मेरी दशाको देखकर अपने आप मेरे समीप आये इस कारण मैं धन्य हूँ ॥ २८ ॥ तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हो; परन्तु जो मनुष्य तुम्हारे मंत्रका जप करनेसे विमुख होते हैं उनके ऊपर तुम मायाका जाल फैलातेहो और जो तुम्हारे मंत्रका साधन करनेमें तत्पर रहते हैं उनके पाससे माया दूर रहती है जिसप्रकार राजा अपने सेवकोंको उनके कार्यके अनुसार न्यूनाधिक वेतन (तनख्वाह) देता है तिसीप्रकार तुम भी अपने भक्तोंको सेवाके अनुसार फल देते हो ॥ २९ ॥ जगतकी उत्पत्ति पालन और प्रलय होनेका कारण एक तुमही हो. हे ईश्वर ! तुमही अपनी त्रिगुणात्मक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मायाकरके ब्रह्मा, शिव और विष्णु इन रूपोंसे प्रतीत होते हो, जिसप्रकार सूर्यमण्डल वास्तवमें एकही होकर भी अनेक जलके पात्रोंमें प्रतिबिम्बित होनेसे अनेक रूपका दीखता है इसीप्रकार तुम्हारी माया करके जिनकी बुद्धि मोहित होरही है उनको तुम्हारा रूप भिन्न २ प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम शुद्ध सत्वगुणप्रधान चित्तके विषे निवास करते हो; आज मुझे तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन हुआ इस कारण मैं धन्य हूँ, अविचारी पुरुषोंको तुम्हारा स्वरूप प्रतीत नहीं होता है; परन्तु जिनके अन्तःकरण तुम्हारे मंत्रका जप करनेसे पवित्र होरहे हैं जिनसे तुम सदा प्रसन्न रहते हो उनको नित्य दर्शन देते हो ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! वास्तवमें तो तुम्हारा रूप नहीं है परन्तु मायाकरके व्यवहार करनेके निमित्त तुमने जो यह रूप धारण किया है तिसका मुझे दर्शन मिला यह स्वरूप करोड़ों कामदेवकी अपेक्षासे सुन्दर है और हाथमें सुन्दर धनुष-

प्रत्यक्षतोऽद्य भवतश्चरणारविन्दं पश्यामि राम तमसः परतः स्थितस्य ॥ दृग्रूपतस्त्वमसतामविगोचरोऽपि त्वन्मन्त्रपूतहृदयेषु सदा प्रसन्नः ॥ ३१ ॥ पश्यामि राम तव रूपमरूपिणोऽपि मायाविडम्बनकृतं सुमनुष्यवेषम् ॥ कन्दर्पकोटिसुभगं कमनीयचापबाणं दयार्द्रहृदयं स्मितचारुवक्त्रम् ॥ ३२ ॥ सीतासमेतमजिनाम्बरमप्रधृष्यं सौमित्रिणा नियतसेवितपादपद्मम् ॥ नीलोत्पलद्युतिमनन्तगुणं प्रशान्तं तद्भागधेयमनिशं प्रणमामि रामम् ॥ ३३ ॥ जानन्तु राम तव रूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् ॥ प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ॥ ३४ ॥

बाण होनेपरभी अन्तःकरण दयाकरके आर्द्र होरहा है, इस मूर्तिका मुख हास्य करके शोभायमान दीखता है ॥ ३२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! सीताजीसहित तुम इस समय शरीरपर कृष्णमृगके चर्म्मरूप वस्त्रोंको धारण कर रहे हो, तुम किसीसे भयभीत नहीं होते हैं, लक्ष्मणजी सदा तुम्हारे चरणकमलोंकी सेवा करते हैं; तुम्हारे शरीरकी कान्ति नीलकमलके समान है, तुम्हारे गुण अनन्त हैं, तुम अत्यन्त गम्भीर हो मेरे भाग्यसेही यह तुमने अवतार धारण किया है, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारे अर्थ मैं वारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! देशकाल आदि उपाधियोंसे रहित और पूर्ण ज्ञान ज्योतिस्वरूप तुम्हारे स्वरूपको जो जानते हैं वह जानै परन्तु मेरी तो ऐसी इच्छा है कि आज प्रत्यक्ष आगे जो यह स्वरूप दीख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा है यहही निरन्तर मेरे हृदयमें रहै इसके सिवाय मुझे दूसरी कोई इच्छा नहीं है ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्ण मुनिके इसप्रकार स्तुति करनेपर श्रीरामचन्द्रजी मुस्कराकर कहने लगे कि हे मुने ! तुम्हारा अन्तःकरण मेरी उपासना करनेसे निर्मल होगया है यह मैं जानताहूँ ॥ ३५ ॥ और इसकारणही मैं तुमसे मिलनेको आया हूं. मेरी भक्तिके सिवाय दूसरा कोई संसारसमुद्रको तरनेका उपाय नहीं है, जगत्में जो पुरुष मेरी उपासना करते हैं और सम्पूर्ण इच्छाओंका त्याग करके एक मेरेही शरणागत होते हैं उनको प्रतिदिन मेरा दर्शन होता है, तुम्हारी करी हुई यह स्तुति मुझे प्रिय है जो पुरुष नित्य इस स्तोत्रका पाठ करैंगे उनकी मेरे विषे भक्ति होयगी और उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त होयगा. तुम मेरी उपासना

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सस्मितमब्रवीत् ॥ मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात्॥३५॥ अतोऽहमागतो द्रष्टुं मद्दते नान्यसाधनम् ॥ मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः ॥ ३६ ॥ निरपेक्षा नान्यगतास्तेषा दृश्योऽहमन्वहम् ॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा ॥ ३७ ॥ सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञानं च विमलं भवेत् ॥ त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः ॥ ३८॥ देहान्ते मम सायुज्यं लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम् ॥ किंचित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम् ॥ ३९ ॥ सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव ॥ अहमप्यागमिष्यामि चिराद्दृष्टो महामुनिः ॥ ४० ॥ अथ प्रभाते मुनिना समेतो रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ॥ अगस्त्यसंभाषणलोलमानसः शनैरगस्त्यानुजमन्दिरं ययौ ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

मन्त्रोपासक लोके मामेव शरणं गताः ॥ ३६ ॥ निरपेक्षा नान्यगतास्तेषा दृश्योऽहमन्वहम् ॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा ॥ ३७ ॥ सद्भक्तिर्मे भवेत्तस्य ज्ञानं च विमलं भवेत् ॥ त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः ॥ ३८॥ देहान्ते मम सायुज्यं लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिनायकम् ॥ किंचित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम् ॥ ३९ ॥ सुतीक्ष्णोऽपि तथेत्याह श्वो गमिष्यसि राघव ॥ अहमप्यागमिष्यामि चिराद्दृष्टो महामुनिः ॥ ४० ॥ अथ प्रभाते मुनिना समेतो रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन ॥ अगस्त्यसंभाषणलोलमानसः शनैरगस्त्यानुजमन्दिरं ययौ ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

करनेसे इस समयही सम्पूर्ण क्रियाओंसे मुक्त हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुमको देहान्तसमयमें मेरे स्वरूपकेविषे सायुज्यकी प्राप्ति होयगी यह वार्ता निःसन्देह है, हे सुतीक्ष्ण मुने! मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम्हारे गुरु मुनिवर अगस्त्यजीका दर्शन करूँ, मेरे चित्तमें कुछ काल तहाँ निवास करनेकी इच्छा है; इसकारण शीघ्रता करताहूँ ॥ ३९ ॥ सुतीक्ष्ण मुनि भी कहने लगे कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! अच्छा कल आप तहाँ जायँ, मेरेको भी महामुनि अगस्त्यजीके दर्शन करेहुए बहुत दिन होगये इसकारण मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा ॥४०॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजीका अन्तःकरण अगस्त्यमुनिसे वार्ता करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होरहाथा, सो फिर दूसरे दिन प्रातःकालही सुतीक्ष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुनि सीता और लक्ष्मणजी इन सबको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी चलदिये और जहां अगस्त्यमुनिके लघुभ्राता निवास करतेथे तिसआश्रममें जा पहुँचे ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँव्वादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वती ! सुतीक्ष्ण मुनि जानकी और लक्ष्णजी इनकरके सहित श्रीरामचन्द्रजी अगस्तमुनिके भ्राताके आश्रममें मध्याह्न कालमें जाकर पहुँचे ॥१॥ उन मुनिने श्रीरामचन्द्रजीका पूजन किया और श्रीरामचन्द्रजीने भी तहां उस दिन उत्तम उत्तम फल मूल आदि भक्षण किये, दूसरे दिन प्रातःकालके समय उठकर सबजने अगस्त्यमुनिके आश्रमको आये ॥२॥ तहां सम्पूर्ण ऋतुओंके फल और पुष्प वृक्षोंपर लग-रहेथे, नानाप्रकारके पशुओंके समूह विचर रहेथे और अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूह मधुर मधुर शब्द कर रहेथे, मानो वह आश्रमका

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ अथ रामः सुतीक्ष्णेन जानक्या लक्ष्मणेन च ॥ अगस्त्यस्यानुजस्थानं मध्याह्ने समपद्यत ॥१॥ तेन सं-पूजितः सम्यग्भुक्त्वा मूलफलादिकम् ॥ परेद्युः प्रातरुत्थाय जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम् ॥२॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं नानामृगगणैर्युतम् ॥ पक्षिसङ्घैश्च विविधैर्नादितं नन्दनोपमम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षिभिर्देवर्षीभिः सेवितं मुनिमन्दिरैः ॥ सर्वतोलङ्कृतं साक्षाद्ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥४॥ बहिरेवाश्रमस्याथ स्थित्वा रामोऽब्रवीन्मुनिम् ॥ सुतीक्ष्ण गच्छ त्वं शीघ्रमागतं मां निवेदय ॥ ५ ॥ अगस्त्यमुनिवर्याय सीतया लक्ष्मणेन च ॥ महाप्रसाद इत्युक्त्वा सुतीक्ष्णः प्रययौ गुरोः ॥ ६ ॥ आश्रमं त्वरया तत्र ऋषिसङ्घसमावृतम् ॥ उपविष्टं रामभक्तैर्विशेषेण समायुतम् ॥ ७ ॥ व्याख्यातराममन्त्रार्थं शिष्येभ्यश्चातिभक्तितः ॥ दृष्ट्वागस्त्यं मुनिश्रेष्ठं सुतीक्ष्णः प्रययौ मुनेः ॥ ८ ॥

बन्ध इन्द्रके नन्दनवनकी बराबरी कररहाथा ॥ ३ ॥ तहां अनेक ब्रह्मर्षि और देवर्षि रहतेथे, मध्यमध्यमें ऋषियोंके आश्रम होनेके कारण वह प्रदेश चारोंओरसे शोभायमान दीखता था, देखनेवालेको ऐसा प्रतीत होताथा कि यह दूसरा ब्रह्मलोकही है ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी आश्रमके बाहरही खड़े होकर सुतीक्ष्ण मुनिसे कहने लगे कि हे सुतीक्ष्ण मुने ! तुम शीघ्रही जाओ और मुनिवर अगस्त्यजीसे कहो कि लक्ष्मण और सीता सहित रामचन्द्र आये हैं ॥ ५ ॥ इसप्रकारकी आज्ञा करना मेरे ऊपर बड़ाही अनुग्रह है, ऐसा कहकर सुतीक्ष्ण मुनि शीघ्रही गुरुके आश्रममें गए, तहां चारों ओर ऋषियोंके समूह बैठे थे, और बीचमें अगस्त्य मुनि विराजमान थे, तहां विशेष करके रामभक्त बहुत थे; इससमयमें अगस्त्यमुनि अपने शिष्योंको अत्यन्त भक्तिसे राममंत्रका अर्थ स्पष्ट रीतिसे कहरहेथे ॥ ६ ॥ ७ ॥ तिन श्रेष्ठ अगस्त्यमुनिको देखतेही परम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिवान् सुतीक्ष्णमुनि उनके समीप गए और साष्टांग नमस्कार करके नम्रतापूर्वक कहने लगे ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मनिष्ठ महाराज ! दशरथका पुत्र रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणसहित आपका दर्शन करनेके निमित्त बाहर आकर हाथ जोड़े खड़े हैं ॥ ९ ॥ अगस्त्यमुनि बोले कि हे सुतीक्ष्ण ! बड़े आनन्दकी बार्ता कहते हो तुम्हारा कल्याण होवै उनकों शीघ्रही लिवाकर लावो, रामचन्द्रजी मेरे हृदयमें सदा निवास करते हैं, मैं उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी इच्छा करके इनका ध्यान करताहुआ यहां निवास करता रहा हूं ॥ १० ॥ ऐसा कहकर अगस्त्यमुनि अपनेआप उठे और मुनियों को साथ लेकर परमभक्तिसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये, और आतेही अगस्त्यमुनि श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम

दण्डवत्प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः ॥ रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च ॥ आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः ॥ ९ ॥
॥ अगस्त्य उवाच ॥ ॥ शीघ्रमानय भद्रं ते रामं मम हृदि स्थितम् ॥ तमेव ध्यायमानोऽहं काङ्क्षमाणोऽत्र संस्थितः ॥१०॥ इत्युक्त्वा स्वयमुत्थाय मुनिभिः सहितो द्रुतम् ॥ अभ्ययात्परया भक्त्या गत्वा राममथाब्रवीत् ॥ ११ ॥ आगच्छ राम भद्रं ते दिष्ट्या तेऽद्य समागमः ॥ प्रियातिथिर्मम प्राप्तोऽस्यद्य मे सफलं दिनम् ॥ १२ ॥ रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः ॥ सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि ॥ १३ ॥ द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड्राममालिङ्ग्य भक्तितः ॥ तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा करमेकेन करेण रघुनन्दनम् ॥ जगाम स्वाश्रमं हृष्टो मनसा मुनिपुङ्गवः ॥ १५ ॥

आये यह बहुत अच्छा हुआ तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा समागम हुआ तिससे आजका दिन बडे आनन्दका है, मेरे यहां प्रिय अतिथि आया इस कारण आजका दिन मेरा सफल हुआ ॥ १२ ॥ अगस्त्य मुनि सामने आये ऐसा देखतेही श्रीरामचन्द्रजीकोभी परम आनन्द हुआ, श्रीरामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणजीकरके सहित भूमिपर लोटकर उनको प्रणाम किया ॥ १३ ॥ मुनिवर अगस्त्यजीने तत्काल श्रीरामचन्द्रजीको उठाकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाया, उनके शरीरका स्पर्श होतेही मुनिको परमानन्द हुवा और नेत्रोंमेंसे एकसाथ आंसुओंका प्रवाह बहनेलगा ॥ १४ ॥ वह श्रेष्ठ मुनि एक हाथसे श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकडकर उनको अपने आश्रममें लिवागए, तिससमय उनके मनको परमानन्द होरहाथा ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजी स्वस्थ होकर बैठे, तब अगस्त्यमुनिने उनका षोडशोपचारसे पूजन किया और लोकरीतिके अनुसार वनके अनेक प्रकारके भक्षण करनेयोग्य फलोंका भोजन कराया ॥ १६ ॥ फिर वह पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जब सुखपूर्वक एकान्त स्थानमें बैठे तब परम ज्ञानी अगस्त्यमुनि हाथ जोड़कर उनसे इसप्रकार कहनेलगे ॥ १७ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारे आनेकी बाट देखता हुआ मैं यहां रहताथा जिससमय पूर्वकालमें क्षीरसमुद्रकेविषे ब्रह्माजीने भूमिका भार उतारनेके निमित्त तथा रावणका बध करनेके निमित्त तुमसे प्रार्थना करी थी ॥ १८ ॥ तबसे यहाँ मुनियोंसहित तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे तप करताहुआ निवास करता हूँ. हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरा ध्यान सदा तुम्हारी ओरही लगा रहता है ॥ १९ ॥ सृष्टिके पहिले एक तुमही थे यह त्रिगुणसे उत्पन्न होनेवाला जगत् तुम्हारेविषे नहींथा क्योंकि तुम मायारूप

सुखोपविष्टं संपूज्य पूजया बहुविस्तरम् ॥ भोजयित्वा यथान्यायं भोज्यैर्वन्यैरनेकधा ॥ १६ ॥ सुखोपविष्टमेकान्ते रामं शशिनिभाननम् ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो भगवानृषिः ॥ १७ ॥ त्वदागमनमेवाहं प्रतीक्षन्समवस्थितः ॥ यदा क्षीरसमुद्रान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा ॥ १८ ॥ भूमेर्भारापनुत्त्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥ तदादि दर्शनाकाङ्क्षी तव राम तपश्चरन् ॥ वसामि मुनिभिः सार्धं त्वामेव परिचिन्तयन् ॥१९॥ सृष्टेः प्रागेक एवासीर्निर्विकल्पोऽनुपाधिकः ॥ त्वदाश्रया त्वद्विषया माया ते शक्तिरुच्यते ॥२० ॥ त्वामेव निर्गुणं शक्तिरावृणोति यदा तदा ॥ अव्याकृतमिति प्राहुर्वेदान्तपरिनिष्ठिताः ॥ २१ ॥ मूलप्रकृतिरित्येके प्राहुर्मायेति केचन ॥ अविद्या संसृतिर्बन्ध इत्यादि बहुधोच्यते ॥ २२ ॥ त्वया संक्षोभ्यमाणा सा महत्तत्त्वं प्रसूयते ॥ महत्तत्त्वादहंकारस्त्वया संचोदितादभूत् ॥ २३ ॥

उपाधिसे रहित थे, तुम्हारी शक्तिको मायानामसे कहते हैं, वह दो प्रकारकी है एक माया दूसरी अविद्या, जीवभी तुम्हाराही स्वरूप है तिसके विषे आश्रयत्वसे रहनेवाली शक्ति माया है, और तुम्हारेविषे जीवको होनेवाला अज्ञानही अविद्या है ॥ २० ॥ तुम्हारे गुणरहित स्वरूपकोभी जब वह शक्ति आवृत करती है उस समय वेदान्तशास्त्रमें प्रवीण पुरुष उसको 'प्रधान' नामसे कहते हैं ॥ २१ ॥ उसकोही सांख्यशास्त्रके अनुयायी 'मूलप्रकृति' कहते हैं कोई 'माया' कोई 'संसृति' कोई 'बन्ध' इसप्रकार भिन्न भिन्न नामसे कहते हैं ॥ २२ ॥ तुम्हारे कल्पनामात्र सम्बन्धसे उसके विषे क्षोभ उत्पन्न हुआ कि वह माया महत्तत्वको उत्पन्न करती है, तुम्हारी प्रेरणा होतेही तिस महत्तत्वसे अहंकार उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महत्तत्वसे युक्त जो अहंकार सो तीन प्रकारका होता है, सात्विक १, राजस २ और तामस ३ ॥ २४ ॥ तामस अहंकारसे सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते हैं. हे श्रीरामचन्द्रजी ! तिन सूक्ष्म भूतोंसे क्रमसे स्थूल पंच महाभूत उत्पन्न होतेहैं; उन्होंमें उत्तरोत्तर क्रमसे एक एक गुण अधिक होताहै अर्थात् प्रथम आकाश उत्पन्न होता है उसका गुण शब्द है फिर स्पर्श सूक्ष्म भूत और आकाशसे वायु उत्पन्न होता है उसका गुण स्पर्शके शिवाय उसके आदि कारणका गुण जो शब्द वहभी परस्परसे तिस वायुमें आता है, अर्थात् वायुके शब्द और स्पर्श यह दो गुण होते हैं, वायु और रूप सूक्ष्मभूतसे अग्नि उत्पन्न होता है उसका गुण रूप और पहिले परम्परा सम्बन्धसे आये हुए दोनों गुण इसप्रकार अग्निके गुण शब्द, स्पर्श और रूप यह तीन होते हैं, अग्नि और रससूक्ष्मभूतसे जल उत्पन्न होता है उसका गुण रस और पहिले परम्परासम्बन्धसे आये हुए तीन गुण इसप्रकार शब्द, स्पर्श, रूप और रस यह चार गुण जलके होते हैं, जल और गन्ध सूक्ष्मभूतसे पृथ्वी उत्पन्न होती है उसका गुण गन्ध और पाहिले परम्परा-

अहंकारो महत्तत्त्वसंवृतस्त्रिविधोऽभवत् ॥ सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेति भण्यते ॥ २४ ॥ तामसात्सूक्ष्मतन्मात्राण्यासन् भूतान्यतः परम् ॥ स्थूलानि क्रमशो राम क्रमोत्तरगुणानि ह ॥ २५ ॥ राजसानीन्द्रियाण्येव सात्विका देवता मनः ॥ तेभ्योऽभवत्सूत्ररूपं लिङ्गं सर्वगतं महत् ॥ २६ ॥ ततो विराट् समुत्पन्नः स्थूलाद्भूतकदम्बकात् ॥ विराजः पुरुषात्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २७ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याश्च कालकर्मक्रमेण तु ॥ त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगतः सर्वकारणम् ॥ २८ ॥

सम्बन्धसे आयेहुए चार गुण इसप्रकार पृथ्वीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह पांच गुण होते हैं ॥ २५ ॥ रजोगुणी अहंकारसे १ कर्ण, २ त्वचा, ३ नेत्र, ४ जिह्वा, ५ घ्राण, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय और ६ वाणी, ७ हस्त, ८ पाद, ९ गुद, १० उपस्थ, यह पांच कर्मेन्द्रिय उत्पन्न होती हैं, सात्विक अहंकारसे तिन दश इन्द्रियोंके क्रमसे १ दिशा, २ वायु, ३ सूर्य, ४ वरुण, ५ अश्विनीकुमार, ६ अग्नि, ७ इन्द्र, ८ विष्णु, ९ मित्र, १० प्रजापति यह दश देवता और मन उत्पन्न होता है, तिनसे क्रियाशक्ति सूत्रात्मा प्राण उत्पन्न होता है यह सब मिलकर सम्पूर्ण कार्य्य करनेवाला समष्टि हिरण्यगर्भरूप लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥ फिर पंचमहाभूतके समूहसे विराट् उत्पन्न होता है, तिस विराट्रूपसे स्थावर जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ॥ २७ ॥ जिसप्रकार भिन्न भिन्न ऋतुओंमें एकके बाद एक धान्य उत्पन्न होता है तिसीप्रकार काल और कर्मके संयोगसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रमसे पशुपक्षी और मनुष्य आदि योनियें प्राणियोंको प्राप्त होती हैं, तुम रजोगुणको स्वीकार करके सम्पूर्ण सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा होते हो ॥ २८ ॥ सत्वगुणको अंगीकार करके विश्वका पालन करते हो तब सत्पुरुष तुह्में विष्णुनामसे कहते है, जगत्के प्रलयकालमें तुमही रुद्र होतेहो, तुह्मारी मायाके भिन्न भिन्न गुणोंकरके बुद्धिकी भिन्न भिन्न प्रकारकी वृत्तियें होती हैं तिन वृत्तिके जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन नाम हैं, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम तिन तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण (तुरीय) हो तुम तिन अवस्थाओंके साक्षी ज्ञानरूप और विकाररहीत हो ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ जिससमय तुह्मारी सृष्टिरूप लीला करनेकी इच्छा होती है तब तुम मायाके काल्पनिक सम्बन्धको अंगीकार करते हो और वास्तवमें गुण रहित होकरभी गुणवान्से प्रतीत होतेहो ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुह्मारी माया सदा विद्या और अविद्या दो प्रकारकी प्रतीत होती है अर्थात्

सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्य पालकः सद्भिरुच्यते ॥ लये रुद्रस्त्वमेवास्य त्वन्मायागुणभेदतः ॥ २९ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या वृत्तयो बुद्धिजैर्गुणैः ॥ तासा विलक्षणो रामस्त्वं साक्षी चिन्मयोऽव्ययः ॥ ३० ॥ सृष्टिलीलां यदा कर्तुमीहसे रघुनन्दन ॥ अङ्गीकरोषि मायां त्वं तदा वै गुणवानिव ॥ ३१ ॥ राम माया द्विधा भाति विद्याऽविद्येति ते सदा ॥ प्रवृत्तिमार्गनिरता अविद्यावशवर्तिनः ॥ निवृत्तिमार्गनिरता वेदान्तार्थविचारकाः ॥ ३२ ॥ त्वद्भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामयाः स्मृताः ॥ अविद्यावशगा ये तु नित्यं संसारिणश्च ते ॥ विद्याभ्यासरता ये तु नित्यमुक्तास्त एव हि ॥३३॥ लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये ॥ विद्या प्रादुर्भवेत्तेषां नेतरेषां कदाचन॥३४॥ अतस्त्वद्भक्तिसम्पन्ना मुक्ता एव न संशयः ॥ त्वद्भक्त्यमृतहीनाना मोक्षः स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥ ३५ ॥

वहही संसार और मोक्ष दोनों देसक्ती है, जो प्राणी प्रवृत्तिमार्गमें तत्पर होरहे हैं वह अविद्याके वशीभूत हैं, और जो पुरुष निवृत्तिमार्गमें रहकर वेदान्तके अर्थका विचार करते हैं और तुह्मारी भक्ति करनेमें निमग्न होजाते हैं, वह विद्यामय (ज्ञानी) होते हैं, अविद्याकी फाँसीमें पड़ेहुए पुरुष नित्य संसारीही रहते हैं और जो पुरुष तत्त्वज्ञानके अभ्यास करनेमें तत्पर रहते हैं वह पुरुष नित्यमुक्त होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जगत्में तुह्मारी भक्ति करनेमेंही रमेहुए और तुह्मारे मंत्रकी आराधना करनेवाले जो पुरुष होते हैं, उनकोही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है, औरोंको कभी भी नहीं होती है ॥ ३४ ॥ इसकारण जो पुरुष तुह्मारी भक्तिसे युक्त हैं वह निःसन्देह मुक्तही हैं, जो पुरुष तुह्मारी भक्तिरूप अमृतका पान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं करते हैं, उनको स्वप्नमें भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ ३५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! अधिक कहाँलौं कहूँ, सबका सार तुमसे थोड़ेहीमें कहताहूँ कि सत्पुरुषोंका समागमही जगत्में मोक्षका साधन कहा है ॥ ३६ ॥ जो पुरुष सर्वत्र समदृष्टि रखते हैं, रागद्वेषके कारण जो विषयवासना वह जिनके समीपसे दूर होगई है, पुत्रैषणा वित्तैषणा आदि एषणा (इच्छा) जिनको नहीं हैं अर्थात् सबप्रकारकी वासना जिनके मनसे दूर होगई हैं, और जिन्होने इन्द्रियोंको वश करके पूर्ण शान्ति और तुह्मारी भक्तिका अङ्गीकार किया है वहही सत्पुरुष हैं ॥ ३७ ॥ ऐसे पुरुष प्रिय वस्तुकी प्राप्ति अथवा विपत्ति, कैसाही समय आपडै परन्तु एकसीही वृत्ति रखते हैं, विषयमेंभी आसक्ति नही करते हैं और सम्पूर्ण कर्म्मोंका त्याग करके सर्वकाल ब्रह्मकेविषे रमण करते हैं ॥ ३८ ॥ और वह यमनियमादि अष्टाङ्गयोगका अभ्यास करके सिद्ध होते हैं, इसकारणही कैसाही समय आपड़ै परन्तु

किं राम बहुनोक्तेन सारं किंचिद्ब्रवीमि ते ॥ साधुसङ्गतिरेवात्र मोक्षहेतुरुदाहृता ॥३६॥ साधवः समचित्ता ये निःस्पृहा विगतैषिणः ॥ दान्ताः प्रशान्तास्त्वद्भक्ता निवृत्ताखिलकामनाः ॥ ३७ ॥ इष्टप्राप्तिविपत्त्योश्च समाः सङ्गविवर्जिताः ॥ संन्यस्ताखिलकर्माणः सर्वदा ब्रह्मतत्पराः ॥ ३८ ॥ यमादियुगसम्पन्नाः संतुष्टा येनकेनचित् ॥ सत्सङ्गमो भवेद्यर्हि त्वत्कथाश्रवणे रतिः ॥३९॥ समुदेति ततो भक्तिस्त्वयि राम सनातने ॥ त्वद्भक्तावुपपन्नायां विज्ञानं विपुलं स्फुटम् ॥ ४० ॥ उदेति मुक्तिमार्गोऽयमाद्यश्चतुरसेवितः ॥ तस्माद्राघव सद्भक्तिस्त्वयि मे प्रेमलक्षणा ॥४१॥ सदा भूयाद्धरे सङ्गस्त्वद्भक्तेषु विशेषतः ॥ अद्य मे सफलं जन्म भवत्संदर्शनादभूत् ॥४२॥ अद्य मे क्रतवः सर्वे बभूवुः सफलाः प्रभो ॥ दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः ॥ तस्येह तपसो राम फलं तव यदर्चनम् ॥ ४३ ॥

नित्य आनन्दमें रहते हैं, उनही सत्पुरुषोंका समागम होनेसे प्राणियोंको तुह्मारी कथा श्रवण करनेमें रुचि होती है ॥३९॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तदन्तर तुह्मारे विषे उसकी भक्ति होती है, तुम तीनों कालमें अखण्डरूप हो, तुह्मारे विषे भक्ति उत्पन्न होतेही प्राणीको प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है, प्रवीण पुरुषोंका अंगीकार किया हुआ मोक्षका यहही मुख्य मार्ग है, इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी ! मुझे तुह्मारेविषे प्रेमरूप उत्तमभक्ति प्राप्त होय और हे दुःखोंको दूर करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! विशेषकरके तुह्मारे भक्तोंका मुझे समागम मिलै, और आज तुह्मारा दर्शन होनेके कारण मेरा जन्म सफल होगया है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे ईश्वर ! आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ सफल हुए, हे श्रीरामचंद्रजी ! मैने केवल तुह्मारे विषेही बुद्धि लगा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर बहुत दिनोंपर्य्यन्त तपश्चर्या करी, तिस तपका फल आज मेरे हाथोंसे तुम्हारी पूजा होना है ॥ ४३ ॥ हे राघव ! सीतासहित तुम नित्य मेरे अन्तःकरणमें निवास करो, मैं चलूँ, बैठूँ अथवा खड़ा रहूँ तो मुझे नित्य तुम्हारा स्मरण रहै ॥ ४४ ॥ इसप्रकार तिन मुनिवर अगस्त्यजीने लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करी और तिनही श्रीरामचन्द्रजीके निमित्त पूर्वकालमें इन्द्रने आश्रममें धराहुआ धनुष श्रीरामचंद्रजीको दिया ॥४५॥ तिस धनुषके साथ कदापि क्षीण (कमती) नहीं होनेवाले बाणोंके दो तरकस और एक खड्ग (तलवार) यह शस्त्र दिये वह खड्ग रत्नजटित होनेके कारण अत्यन्त शोभायमान था, वह देकर अगस्त्य मुनिने कहा कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! राक्षसोंके समूहका पृथ्वीपर अत्यन्त भार होगया है, इसकारण तुम उनका वध करो ॥ ४६ ॥ इस कार्य्यको करनेके निमित्तही तुमने मायाकरके मनुष्यरूप धारण किया है,

सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव ॥ गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि ॥ ४४ ॥ इति स्तुत्वा रमानाथमगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ ददौ चापं महेन्द्रेण रामार्थे स्थापितं पुरा ॥ ४५ ॥ अक्षय्यौ बाणतूणीरौ खड्गो रत्नविभूषितः ॥ जहि राघव भूभारभूतं राक्षसमण्डलम् ॥ ४६ ॥ यदर्थमवतीर्णोऽसि मायया मनुजाकृतिः ॥ इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमण्डितः ॥ ४७ ॥ अस्ति पञ्चवटीनाम्ना आश्रमो गौतमीतटे ॥ नेतव्यस्तत्र ते कालः शेषो रघुकुलोद्वह ॥ ४८ ॥ तत्रैव बहुकार्याणि देवाना कुरु सत्पते ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा तदागस्त्यसुभाषितं वचः स्तोत्रं च तत्त्वार्थसमन्वितं विभुः ॥ मुनिं समाभाष्य मुदान्वितो ययौ प्रदर्शितं मार्गमशेषविद्धरिः ॥ ५० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

यहाँसे आठ कोशपर गोदावरीके तीरमें पवित्र वनसे शोभायमान पञ्चवटी नामवाला आश्रम है. हे रघुकुलभूषण ! तुम अब अपने शेष बचे हुए वनवासके दिन तहाँ व्यतीत करो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे साधुओंके पालक ! तहाँ देवताओंके बहुत कार्य करने हैं उनको पूर्ण करो ॥ ४९ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! यह अगस्त्यमुनिकी उत्तम भक्ति और स्तुति सम्पूर्ण तात्विक सिद्धान्तोंसे ओतप्रोत भरी हुई है, तिसको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको आनन्द हुआ, वह भक्तसङ्कटनाशक प्रभु सर्वज्ञ थे, परन्तु उससमय अज्ञानीके समान लीला करतेथे, इसकारण फिर उन्होंने अगस्त्यमुनिकी आज्ञा लेकर उनके दिखाए हुए मार्गसे आगेको चल दिये ॥ ५० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँव्वादे अरण्यकाण्डे पञ्चितराम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव बोले हे पार्वति ! जाते जाते मार्गमें पर्वतके शिखरके समान खड़ा हुआ वृद्ध जटायु पक्षी श्रीरामचंद्रजीने देखा, उसको देखतेही श्रीरामचन्द्रजीको बडा आश्चर्य हुआ और विचारने लगे कि यह क्या है ? ॥ १ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि—हे लक्ष्मण ! धनुष लाओ, यह आगे राक्षस खड़ा है, इस ऋषियोंके भक्षण करनेवाले राक्षसको यमलोकको पहुँचाताहूँ ॥ २ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीका भाषण सुनतेही गृध्रराज जटायु भयके मारे काँपने लगा, और कहने लगा कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुमको मेरा वध करना योग्य नहीं है, क्योंकि मैं तुम्हारे पिताका प्रिय मित्र हूँ ॥ ३ ॥ मेरा नाम जटायु है. हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम्हारा कल्याण होय. मैं तुम्हारे

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ मार्गे व्रजन्ददर्शाथ शैलशृङ्गमिव स्थितम् ॥ वृद्धं जटायुषं रामः किमेतदिति विस्मितः ॥ १ ॥ धनुरानय सौमित्रे राक्षसोऽयं पुरः स्थितः ॥ इत्याह लक्ष्मणं रामो हनिष्याम्यृषिभक्षकम् ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा रामवचनं गृध्रराड् भयपीडितः ॥ वधार्होऽहं न ते राम पितुस्तेऽहं प्रियः सखा ॥ ३ ॥ जटायुर्नाम भद्रं ते गृध्रोऽहं प्रियकृत्तव ॥ ४ ॥ पञ्चवट्यामहं वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया ॥ मृगयायां कदाचित्तु प्रयाते लक्ष्मणेऽपि च ॥ ५ ॥ सीता जनककन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नतः ॥ श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं रामः सस्नेहमब्रवीत् ॥ ६ ॥ साधु गृध्र महाराज तथैव कुरु मे प्रियम् ॥ अत्रैव मे समीपस्थो नातिदूरे वने वसन् ॥७॥ इत्यामन्त्रितमालिङ्ग्य ययौ पञ्चवटीं प्रभुः ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया रघुनन्दनः ॥ ८ ॥ नत्वा ते गौतमीतीरं पञ्चवट्यां सुविस्तरम् ॥ मन्दिरं कारयामास लक्ष्मणेन सुबुद्धिना ॥ ९ ॥

चित्तके अनुसार वर्त्ताव करनेवाला हूं ॥ ४ ॥ तुम्हारा प्रिय कार्य्य करनेकी इच्छासे मैं पंचवटीमें रहताहूँ, जब कभी तुम और लक्ष्मण दोनों मृगया (शिकार) को जाओगे, तब मैं जनककुमारी सीताको जहाँतक होसकैगी तहाँतक रक्षा करूँगा, इसप्रकार तिस जटायुके वचनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रेमपूर्वक उससे कहने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ कि हे गृध्रराज ! बहुत अच्छा ऐसाही करो, यहाँसे कुछ दूरपर मेरे निवास स्थानके समीपमें वनके विषे निवास करो और अपनी इच्छाके अनुसार मेरा प्रिय कार्य्य करते रहो ॥ ७ ॥ इसप्रकार जटायुसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके और हृदयसे लगाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीसहित पंचवटीमें गए ॥ ८ ॥ गोदावरीके तीरपरपै पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे विस्तीर्ण कुटी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनवाई, क्योंकि कारीगरीके कार्य्यमें लक्ष्मणजीकी बुद्धि परम प्रवीण थी ॥ ९ ॥ वह सब जने गोदावरीके उत्तरकी ओरके तीरपर तिस कुटीमें रहनेलगे, तिस कुटीके चारों और कदम्ब पनस और आम्र आदि अनेक वृक्ष लगरहेथे ॥ १० ॥ इस एकान्तस्थानमें जनसमूहका आना जाना बिलकुल नहीं था, तथा अतिवृष्टि अनावृष्टि और शारीरिक व्याधि आदिका भय नहीं था, तहाँ परम प्रवीण लक्ष्मणजीके साथ जानकीके चित्तको प्रसन्न करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी सुखपूर्वक निवास करनेलगे, देवलोकमें जो आनन्द इन्द्रको प्राप्त होता है वही आनन्द यहाँ श्रीरामचंद्रको प्राप्त होताथा, लक्ष्मणजी प्रतिदिन उनको कन्द-मूल-फल आदि लाकर देतेथे; क्योंकि उनका अन्तःकरण श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेमें सदा

तत्र ते न्यवसन्सर्वे गङ्गाया उत्तरे तटे ॥ कदम्बपनसाम्रादिफलवृक्षसमाकुले ॥ १० ॥ विविक्ते जनसंबाधवर्जिते नीरुजस्थले ॥ विनोदयन् जनकजां लक्ष्मणेन विपश्चिता ॥ ११ ॥ अध्युवास सुखं रामो देवलोक इवापरः ॥ कन्दमूलफलादीनि लक्ष्मणोऽनुदिनं तयोः ॥ १२ ॥ आनीय प्रददौ रामसेवातत्परमानसः ॥ धनुर्बाणधरो नित्यं रात्रौ जागर्ति सर्वतः ॥ १३ ॥ स्नानं कुर्वन्त्यनुदिनं त्रयस्ते गौतमीजले ॥ उभयोर्मध्यगा सीता कुरुते च गमागमौ ॥ १४ ॥ आनीय सलिलं नित्यं लक्ष्मणः प्रीतमानसः ॥ सेवतेऽहरहः प्रीत्या एवमासन् सुखं त्रयः ॥ १५ ॥ एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम् ॥ विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥ १६ ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥ त्वत्तः कमलपत्राक्ष संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

तत्पर रहताथा, वह नित्य रात्रिके समय हाथमें धनुषबाण लेकर चारों ओरको देखतेहुए जागतेथे ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ वह तीनोजने प्रतिदिन गोदावरीके जलमें स्नान करतेथे, सीताजीको कहीं जाना आना होताथा तो वह श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीके बीचमें होकर चलतीथीं, ॥ १४ ॥ लक्ष्मणजी नित्य प्रसन्न अन्तःकरणसे जल लाकर देतेथे और उनकी सेवा करतेथे, इसप्रकार वह तीनोजने तहाँ सुखपूर्वक रहतेथे ॥ १५ ॥ एकसमय परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी एकान्तमें स्वस्थ बैठे थे, तब लक्ष्मणजीने विनयपूर्वक नम्र होकर उनसे बूझा ॥ १६ ॥ हे षड्गुणैश्वर्य्यसपन्न ! कमलनयन ! ईश्वर ! श्रीरामचन्द्रजी ! जिस मार्गसे चलनेपर निःसन्देह मोक्षकी प्राप्ति होती है उस मार्गको आपके मुखसे श्रवण करनेकी इच्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, सो आप संक्षेपसे मेरेको वर्णन करिये ॥ १७ ॥ मोक्षका साधन ज्ञान है यह तो मुझे मालूम है, परन्तु तिस ज्ञानका स्वरूप क्या है ? सो मैं आपसे श्रवण करना चाहताहूँ वेदान्त आदि शास्त्रोंके श्रवण और मनन करके कौनसा ज्ञान प्राप्त होता है ? और अपरोक्ष ज्ञान कौन है ? तथा तिस ज्ञानकी वृद्धि करनेके साधन जो भक्ति और वैराग्य उनका स्वरूप क्या है ? यह सब मेरेको वर्णन करिये. हे रघुवीर ! तुम्हारे सिवाय और कोई पृथ्वीतलमें इनके स्वरूपका वर्णन करनेवाला नहीं है ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि—हे तात ! सुनो. तुमको अत्यन्त गुप्तसे गुप्त वार्त्ता कहताहूँ, " शश (खरगोश) के सींग " " वन्ध्याका पुत्र " यह शब्द केवल उच्चारणमात्रही हैं, इनका वाच्य अर्थ कुछ भी नहीं है, तिसप्रकारही ' सृष्टि ' इस शब्दकी रीति है, सृष्टि केवल भ्रममात्र है, मेरे कहे हुए ज्ञानकी प्राप्ति होतेही मनुष्यका वह भ्रम तत्काल दूर होजाताहै ॥ १९ ॥

ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम् ॥ आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥ १८ ॥ राम उवाच ॥ शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतरं परम् ॥ यद्विज्ञाय नरो जह्यात्सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १९ ॥ आदौ मायास्वरूपं ते वक्ष्यामि तदनन्तरम् ॥ ज्ञानस्य साधनं पश्चाज्ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥ २० ॥ ज्ञेयं च परमात्मानं यज्ज्ञात्वा मुच्यते भयात् ॥ अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत् ॥ २१ ॥ सैव माया तयैवासौ संसारः परिकल्प्यते ॥ रूपे द्वे निश्रिते पूर्वं मायायाः कुलनन्दन ॥ २२ ॥ विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत् ॥ लिङ्गाद्यब्रह्मपर्यन्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ॥ २३ ॥ अपरं त्वखिलं ज्ञानरूपमावृत्य तिष्ठति ॥ मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले ॥ २४ ॥

प्रथम मैं तुझको मायाका स्वरूप कहताहूँ, फिर ज्ञानका साधन, फिर शब्दज्ञान और तत्त्वज्ञान और अंतमें ज्ञानका विषय (ज्ञेय) परमात्मा है, तिस परमात्माका ज्ञान होतेही मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है, शरीर आत्मासे भिन्न और जड है, तिस शरीरके विषे ' यहही आत्मा है ' ऐसी जो बुद्धि होती है वहही माया है, तिस माया करकेही संसार कल्पित होता है. हे कुलभूषण लक्ष्मण ! अनादिकालसे माया दो प्रकारकी मानी गई है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ एक विक्षेपरूप और दूसरी आवरणरूप, तिनमेंसे पहली विक्षेपरूप माया महत्तत्त्वसे लेकर चतुर्मुख ब्रह्मापर्यन्त स्थूल सूक्ष्म भेदवाला जो कुछ संसार है, तिसकी कल्पना करती है ॥ २३ ॥ दूसरी आवरणरूप माया ज्ञानरूपको आच्छा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दन करके स्थित रहती है, वह माया केवल परमात्माके आधारसे सम्पूर्ण विश्वकी कल्पना करती है ॥ २४ ॥ जिसप्रकार भ्रान्तिसे रज्जुके विषे सर्पकी प्रतीति होती है अर्थात् वह सर्प्प सत्य नहीं होता है, किन्तु रज्जुही सत्य होती है; तिसीप्रकार परमेश्वरके विषे माया करके कल्पना किया हुआ जगत् सत्य नहीं है परमात्माही सत्य है, ऐसा बिचार करतेही संसार कुछभी नहीं होता है, मनुष्योंको नित्य जो कुछ श्रवण करनेमें आता है, दीखता है और स्मरण होता है, वह सब स्वप्नके अथवा मनःकल्पित पदार्थोंके समान मिथ्या है, संसाररूपी वृक्षका दृढ मूल देहही है; ऐसा शास्त्रोंमें कहा है ॥ २५ ॥ २६ ॥ तिस देहके कारण पुत्र स्त्री आदिका सम्बन्ध भी नहीं रहता है ॥ २७ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच महा भूतोंसे यह स्थूल देह होता है, पंच सूक्ष्मभूत, अहंकार, बुद्धि, दश इन्द्रियें चैतन्यका प्रतिबिम्ब और मन, यह लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीर होता है,

रज्जौ भुजङ्गवद्भान्त्या विचारे नास्ति किञ्चन ॥ श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरैः सदा ॥ २५ ॥ असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ ॥ देह एव हि संसारवृक्षमूलं दृढं स्मृतम् ॥ २६ ॥ तन्मूलः पुत्रदारादिबन्धः किं तेऽन्यथात्मनः ॥ २७॥ देहस्तु स्थूलभूतानां पञ्चतन्मात्रपञ्चकम् ॥ अहंकारश्च बुद्धिश्च इन्द्रियाणि तथा दश ॥ २८ ॥ चिदाभासो मनश्चैव मूलप्रकृतिरेव च ॥ एतत्क्षेत्रमिति ज्ञेयं देह इत्यभिधीयते ॥ २९ ॥ एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः ॥ तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु ॥३० ॥ जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः ॥ मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम् ॥ ३१ ॥ पराक्षेपादिसहनं सर्वत्रावक्रता तथा ॥ मनोवाक्कायसद्भक्त्या सद्गुरोः परिसेवनम् ॥ ३२ ॥

प्रकृति कारणशरीर है, इन तीनों शरीरोंको भी क्षेत्र कहते हैं और देह भी कहते हैं, इसकोही अज्ञानी पुरुष आत्मा समझते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ इस जड़समूह (तीनों शरीरों) से जीव धन्य है, वहही परमात्मा है, उसको जन्म आदि छः भावविकार नहीं होते हैं, तिस जीवके तत्त्वस्वरूपका ज्ञान होनेके साधन मैं कहताहूँ श्रवण करो ॥ ३० ॥ जीव और परमात्मा यह एककेही पर्याय (नामान्तर) हैं, इन दोनोंमें भेदभाव नहीं है और उनके स्वरूपकी ईयत्ता भी नहीं है; अब इस तत्वज्ञानकी प्राति होनेके साधन वर्णन करताहूँ मनुष्य गर्व हिंसा आदिको त्याग दें ॥ ३१ ॥ दूसरा पुरुष निन्दाआदि करै तो सहलेय, सबके साथ सूधेपनेसे वर्ताव करै, मन वाणी और शरीरसे पूर्ण भक्तिकरके सद्गुरुकी सेवा करै ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीर और मनको स्वच्छ रक्खै, सदाचरण करनेमें तत्पर रहै, मन वाणी और शरीर इन तीनोंको अन्याय न करनेदे अर्थात् दूसरेका अनिष्ट चिन्तत न करके मनको वशमें रक्खै, दूसरेको अपशब्दोंसे दुःख न देकर वाणीको वशमें रक्खै, हिंसा न करके शरीरका दमन करै, तथा विषयभोगकी इच्छा न करै ॥ ३३ ॥ अहंकार त्याग देय, मनुष्योंको जन्म और वृद्धावस्था आदिके दुःख सहने पड़ते हैं, यह देखकर संसारसे विरक्त होजाय, तथा पुत्र स्त्री द्रव्य आदिमें आसक्ति न करै, प्रेम त्याग देय ॥ ३४ ॥ सुख तथा दुःख दोनोंके समयमें सबका अंतर्यामी जो मैं राम तिस मेरेविषे अनन्यभावसे बुद्धि लगावै ॥ ३५ ॥ जहाँ मनुष्य समूहके आनेजानेका विघ्न न होय, तिस एकान्त और पवित्र स्थानमें निवास करै, संसारी

बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु ॥ मनोवाक्कायदण्डश्च विषयेषु निरीहता ॥३३॥ निरहंकारता जन्मजराद्यालोचनं तथा ॥ असक्तिः स्नेहशून्यत्वं पुत्रदारधनादिषु ॥३४॥ इष्टानिष्टागमे नित्यं चित्तस्य समता तथा ॥ मयि सर्वात्मके रामे ह्यनन्यविषया मतिः ॥ ३५ ॥ जनसंबाधरहितशुद्धदेशनिषेवणम् ॥ प्राकृतैर्जनसङ्घैश्च ह्यरतिः सर्वदा भवेत् ॥ ३६ ॥ आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थाव-लोकनम् ॥ उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥३७॥ बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः ॥ चिदात्माऽहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम् ॥ ३८ ॥ येन ज्ञानेन संवित्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे ॥ विज्ञानं च तदैवैतत्साक्षादनुभवेद्यदा ॥ ३९ ॥ आत्मा सर्वत्र पूर्णः स्याच्चिदानन्दात्मकोऽव्ययः ॥ बुद्ध्याद्युपाधिरहितः परिणामादिवर्जितः ॥ ४० ॥

पुरुषोंके समूहसे कदापि प्रेम न करै, आत्मज्ञानकी प्राप्तिका सदा उद्योग करता रहै, वेदान्तके अर्थका अवलोकन, श्रवण, मनन आदि करता रहै, इसप्रकार कहे हुए उपायोंसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, इसके प्रतिकूल आचरण करनेसे अज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ मैं बुद्धि प्राण दान मन शरीर अहंकार इनसे भिन्न और चैतन्य स्वरूप और तीनोंकालमें नष्ट न होनेवाला परम पवित्र ज्ञानमय मैं ही हूँ, इसप्रकारके सिद्धान्तरूप उपदेशसे जो बोध होता है वही ज्ञान है, इस ज्ञानकाही जिस समय प्रत्यक्ष अनुभव होता है, तब वह तत्त्वज्ञान कहलाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ आत्मा सर्वत्र ज्ञान और आनन्द स्वरूपसे व्याप्त है, अविनाशी है, उसके स्वरूपका परिवर्त्तन नहीं होता है, आत्माके विषे बुद्धि चित्त अहंकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिके राग द्वेष लोभ अहंभाव आदि धर्म नहीं हैं ॥ ४० ॥ आत्मा अपने ज्ञानमय प्रकाशसे देहआदिको प्रकाशित करता है, उसके स्वरूपकी मर्यादा आवरण और इयत्ता नहीं है, वह नित्य एकरूप और भेदभाव रहित है, सत्य[1] ज्ञान और अनन्त है इत्यादि श्रुतिमें कहे हुए ब्रह्मस्वरूपके लक्षण तिस आत्माकेही हैं ॥ ४१ ॥ आत्मा किसीमें आसक्त नहीं होता है, स्वरूपके ज्ञानके निमित्त दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं करताहै, वह सम्पूर्ण कर्म और वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखता है, तत्त्वज्ञानसे वह आत्मस्वरूप जाना जाता है, प्राणीको जिससमय सद्गुरुसे प्राप्त हुए महावाक्यके उपदेशसे जीवात्मा और परमात्माकी एकताका ज्ञान होता है उस समय ही संसारका मूलकारण जो अविद्या सो अपना कार्य जो स्थूल और इन्द्रियोंकरके सहित परमात्माके स्वरूपमें लीन होजाती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इस अवस्थाको मुक्ति कहते हैं, यह सम्पूर्ण आत्माकेविषे क-

स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः ॥ एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥ ४१ ॥ असङ्गः स्वप्रभो द्रष्टा विज्ञानेनावगम्यते ॥ आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञानं यदा भवेत् ॥ ४२ ॥ आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि ॥ लीयते कार्यकरणैः सहैव परमात्मनि ॥ ४३ ॥ सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्यपचारोऽयमात्मनि ॥ इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन ॥४४॥ ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितं मे परात्मनः ॥ किं त्वेतद्दुर्लभं मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम् ॥४५॥ चक्षुष्मतामपि यथा रात्रौ सम्यङ्न दृश्यते ॥ पदं दीपसमेतानां दृश्यते सम्यगेव हि ॥ ४६ ॥ एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते ॥ मद्भक्तेः कारणं किंचिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ ४७ ॥

ल्पना किया है अथवा यह आत्मा ज्ञानका मार्ग है. हे रघुनन्दन ! शब्दज्ञान और तत्त्वज्ञानसे यह परमात्माका स्वरूप तुमसे वर्णन किया सो परमात्मा मैंही हूँ अर्थात् मोक्षावस्था मेराही स्वरूप है, परन्तु जो पुरुष मेरी भक्ति नहीं करते हैं उनको मोक्षकी प्राप्ति होना महाकठिन है ॥ ४४ ॥ ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार नेत्र होनेपर भी रात्रिके समय अन्धकारमें मनुष्यको " चोर किधरसे आया और किधरको गया " यह अच्छी तरह नहीं दीखता परंतु साथमें दीपक लेतेही उस मनुष्यकोही संपूर्ण पदार्थ भलेप्रकार दीखने लगते हैं ॥ ४६ ॥ तिसीप्रकार जिस पुरुषके अन्तःकरणमें मेरी भक्ति होती है उसको आत्मस्वरूपकी प्रतीति अच्छी प्रकार होती है, इस कारण मेरे विषे भक्ति होनेका कारण कुछ थोडासा तुमसे तत्त्वतः वर्णन

१ ' सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ' ऐसी श्रुति है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करताहूँ सूनो ॥ ४७ ॥ मेरे भक्तोंकी सङ्गति करै, मेरी तथा मेरे भक्तोंकी सेवा करै, एकादशीके व्रत आदि धर्मका पालन करै, रामनवमी आदि मेरे उत्साहके दिनोंमें उत्सव करै, मेरी कथाके श्रवण करनेमें, पाठ करनेमें और सुनानेमें सदा प्रीति करै, मेरा पूजन करनेमें निष्ठा रक्खै, और मेरे नामका जप करता रहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जो पुरुष निरंतर वर्ताव करते हैं उनकी मेरे विषे निरंतर अचल भक्ति होती है, इसप्रकार मेरी भक्तिकी प्राप्ति होनेपरभी क्या कोई ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय रहजाता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ५० ॥ इसकारण मैं कहता हूँ कि मेरी भक्ति करनेवालेको वैराग्य शब्दज्ञान और तत्वज्ञानकी तत्काल प्राप्ति होजाती है, तदनन्तर उस मनुष्यको मुक्तिकी प्राप्ति होजाती है ॥ ५१ ॥ हे लक्ष्मण ! तेरे प्रश्न करनेके अनुसार यह सब मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन किया जो पुरुष इसके विषे मनको लगाकर स्थित होता है वह मुक्तिको प्राप्त होता

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम् ॥ एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम् ॥ ४८ ॥ मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः॥ मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ॥ ४९ ॥ एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ मयि संजायते नित्यं ततः किमवशिष्यते ॥ ५० ॥ अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च ॥ वैराग्यं च भवेच्छीघ्रं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ कथितं सर्वमेतत्ते तव प्रश्नानुसारतः ॥ अस्मिन्मनः समाधाय यस्तिष्ठेत्स तु मुक्तिभाक् ॥ ५२ ॥ न वक्तव्यमिदं यत्नान्मद्भक्तिविमुखाय हि ॥ मद्भक्ताय प्रदातव्यमाहूयापि प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥ य इदं तु पठेन्नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ अज्ञानपटलध्वान्तं विधूय परिमुच्यते ॥५४॥ भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनां मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा ॥ सङ्गं यः कुरुते सदोद्यतमतिः सत्सेवनानन्यधीर्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नान्यथा ॥ ५५ ॥

है ॥ ५२ ॥ जो पुरुष मेरी भक्तिसे रहित हो उसके अर्थ यह ज्ञान कदापि न कहै. मेरी भक्ति करनेवाले पुरुषको अपने आप बुलाकर प्रयत्न करके इस ज्ञानका उपदेश करै ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य विश्वास करके भक्तिपूर्वक इस उपदेशका नित्य पाठ करताहै वह अपने विषे वर्तमान अज्ञानके समूहरूपी अन्धकारको नष्ट करके मुक्त होताहै ॥ ५४ ॥ मेरी भक्ति करनेवाले योगी पुरुषोंके अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त शान्त होतेहैं, उनके मन मेरी सेवा करनेमें अत्यन्त प्रेम करतेहैं, वह निर्मल आत्मस्वरूपके ज्ञानकी प्राप्ति करनेमें नित्य यत्न करते रहतेहैं जो मनुष्य ऐसे भक्तोंकी संगतिमें रहताहै और ज्ञानकी प्राप्ति करनेमें अपनी बुद्धिसे उद्योग करताहै तथा साधुओंकी सेवा करनेके सिवाय दूसरे विष-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यमें बुद्धि नहीं लगाताहै उसके हाथमें ही मोक्ष स्थित है और मैंभी उसे नित्य दर्शन देताहूँ, और उपायोंसे मोक्षकी प्राप्ति तथा मेरा दर्शन नहीं होताहै ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ तिससमय उस बड़े भारी दण्डकारण्यमें जनस्थानकी रहनेवाली एक राक्षसी फिरा करतीथी. वह अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करने वाली और परमबलवान थी ॥ १ ॥ एक समय गोदावरीके किनारेपर पंचवटीके समीप पृथ्वीपति श्रीरामचन्द्रजीके कमल वज्र और अंकुशके चिन्हों-करके युक्त चरणोंके चिन्होंको देखकर उस राक्षसीका मन तत्काल कामवासनासे व्याप्त होगया, वह उन चरणोंकी सुंदरता देखकर मोहित होगई;

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ तस्मिन्काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी ॥ विचचार महासत्त्वा जनस्थाननिवासिनी ॥ १ ॥ एकदा गौतमीतीरे पंचवट्याः समीपतः ॥ पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानि पदानि जगतीपतेः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता ॥ पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम् ॥ ३ ॥ तत्र सा तं रमानाथं सीतया सह संस्थितम् ॥ कन्दर्पसदृशं रामं दृष्ट्वा कामविमोहिता ॥ ४ ॥ राक्षसी राघवं प्राह कस्य त्वं कः किमाश्रमे ॥ युक्तो जटावल्कलाद्यैः साध्यं किं तेऽत्र मे वद ॥ ५ ॥ अहं शूर्पणखानाम राक्षसी कामरूपिणी ॥ भगिनी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महात्मनः ॥ ६ ॥ खरेण सहिता भ्रात्रा वसाम्यत्रैव कानने ॥ राज्ञा दत्तं च मे सर्वं मुनिभक्षा वसाम्यहम् ॥ ७ ॥

और उन चिन्होंको देखती २ हौले हौले श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई ॥ २ ॥ ३ ॥ तहाँ कामदेवके समान सुंदर लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी सीतासहित बैठे थे उनको देखतेही उसकी कामवासना अत्यंत बढ़ गई ॥ ४ ॥ फिर उस राक्षसीने श्रीरामचन्द्रजीसे बूझा कि तुम किसके कौन हो ? जटा वल्कल आदि तपस्वियोंके वेषको धारण करके आश्रममें किस कारणसे रहते हो और यहां रहकर तुमको कौनसा काम सिद्ध करना है सो मुझसे कहो ॥ ५ ॥ मैं राक्षसी हूँ और राक्षसोंका राजा जो महापराक्रमी रावण तिसकी बहन हूँ, मेरा नाम शूर्पणखा है, मैं अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करलेती हूँ ॥ ६ ॥ मेरा खरनामक भ्राता है, उसके पास मैं इस वनमेंही रहती हूँ, राजाने यह सम्पूर्ण वन मुझे दे-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिया, मैं यहाँ मुनियोंका भक्षण करके निर्वाह करती हूँ ॥ ७ ॥ तुम्हारा वृत्तान्त जाननेकी मेरी इच्छा है, सो हे श्रेष्ठ ! मुझसे कहिये. श्रीरामचन्द्रजी उससे बोले कि मैं अयोध्याके राजाका पुत्र हूँ, मेरा नाम राम है.॥ ८ ॥ यह सुन्दरी जनकराजाकी कन्या और मेरी स्त्री है, इसका नाम सीता है, वह अति सुन्दर पुरुष मेरा छोटा भ्राता लक्ष्मण है ॥ ९ ॥ हे त्रैलोक्यसुन्दरी ! मैं तेरा क्या कार्य करूं, सो बता. शूर्पणखा कामवासनासे व्याकुल होरही थी सो इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर वह उनसे बोली ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरे साथ आवो और पर्वतपर चलके वनमें बिहार करो तुम्हारे यह कमलसदृश नेत्र देखकर मैं कामपीड़ित होरही हूँ, मैं तुम्हैं छोड़कर नहीं जाऊंगी ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी ओर कटाक्षसे देखकर हँसते हँसते शूर्पणखासे कहा, कि हे शूर्पणखे ! मेरी यह शुभलक्षणा व अपाय न करनेवाली अर्थात् सुख देनेवाली सीता धर्मपत्नी

त्वां तु वेदितुमिच्छामि वद मे वदतां वर ॥ तामाह रामनामाहमयोध्याधिपतेः सुतः ॥ ८॥ एषा मे सुन्दरी भार्या सीता जनकनन्दिनी ॥ स तु भ्राता कनीयान्मे लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥ ९ ॥ किं कृत्यं ते मया ब्रूहि कार्यं भुवनसुन्दरि ॥ इति रामवचः श्रुत्वा कामार्ता साऽब्रवीदिदम् ॥ १० ॥ एहि राम मया सार्धं रमस्व गिरिकानने ॥ कामार्ताहं न शक्नोमि त्यक्तुं त्वां कमलेक्षणम् ॥ ११ ॥ रामः सीतां कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत् ॥ भार्या ममैषा कल्याणी विद्यते ह्यनपायिनी ॥ १२ ॥ त्वं तु सापत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि ॥ बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः ॥ १३ ॥ तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव संचर ॥ इत्युक्ता लक्ष्मणं प्राह पतिर्मे भव सुन्दर ॥ १४ ॥ भ्रातुराज्ञां पुरस्कृत्य संगच्छावोऽद्य माचिरम् ॥ इत्याह राक्षसी घोरा लक्ष्मणं काममोहिता ॥ १५ ॥ तामाह लक्ष्मणः साध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः ॥ दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम् ॥ १६ ॥

विद्यमान है ॥ १२ ॥ इसकारण हे सुन्दरी ! सपत्नीके दुःखसे तू मेरे पास कैसे रह सकैगी, बाहर मेरे भ्राता लक्ष्मण हैं वह अतिसुन्दर पुरुष तेरे योग्य पति होजाँयगे जा उनके साथही वनमें बिहार कर, जब श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार कहा, तब वह राक्षसी लक्ष्मणजीके पास गई और उनसे बोली कि हे सुन्दरपुरुष ! तुम मेरे पति बनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ भ्राताकी आज्ञा मानकर परस्परका सुख भोगनेमें विलम्ब मत करो, कामवासनासे मोहित राक्षसीने लक्ष्मणसे इसप्रकार कहा, तब लक्ष्मणजी उससे बोले कि हे साध्वि ! मैं उन परम बुद्धिवान् श्रीरामचन्द्रजीका सेवक हूँ, अतः तुझेभी उनकी दासी बनना पड़ैगा, और संसारमें दासकार्य करनेसे अधिक क्या दुःख है ? अर्थात् कुछभी नहीं ॥ १५ ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसकारण कि तू उनकेही पास जा, तेरा कल्याण होय, वह राजा और सबके स्वामी हैं, इसप्रकार लक्ष्मणके कथनको सुनकर वह दुष्ट अन्तःक-
रणवाली राक्षसी फिर रामचन्द्रजीके पास गई ॥ १७ ॥ और क्रोधमें होकर कहने लगी कि हे रामचन्द्र! कहनेमें कुछभी स्थिरता और शक्तिता
नहीं है, अरे मुझे इधर उधर क्यों फिराताहै, जिसके प्रेमसे मुझे फिराता है तिस सीताको मैं अबहीं यहाँ तेरे सामने खा डालतीहूँ ॥ १८ ॥
ऐसे कहकर वह विकरालस्वरूप राक्षसी सीताजीके ऊपर दौड़ी, तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे तलवार निकालली और तिस
राक्षसीको पकड़कर उसके कान और नाक काटडाले, लक्ष्मणजी परमशक्तिमान थे उससमय शूर्पणखाने भयङ्कर शब्दकरके रुदन किया उसका

तमेव गच्छ भद्रं ते स तु राजाऽखिलेश्वरः ॥ तच्छ्रुत्वा पुनरप्यागाद्राघवं दुष्टमानसा ॥ १७ ॥ क्रोधाद्राम किमर्थं मा भ्रामयस्यनवस्थितः ॥
इदानीमेव तां सीता भक्षयामि तवाग्रतः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा विकटाकारा जानकीमनुधावति ॥ ततो रामाज्ञया खड्गमादाय परिगृह्य
ताम् ॥ १९ ॥ चिच्छेद नासा कर्णौ च लक्ष्मणोऽलघुविक्रमः ॥ ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्द्रुतम् ॥ २० ॥ क्रन्दमाना पपाताग्रे
खरस्य परुषाक्षरा ॥ किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः ॥ २१ ॥ केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्त्रानुवर्तिना ॥ वद मे तं वधिष्यामि
कालकल्पमपि क्षणात् ॥ २२ ॥ तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ दण्डकं निर्भयं कुर्वन्नास्ते गोदावरीतटे ॥ २३ ॥ मामेवं कृत-
वांस्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः ॥ यदि त्वं कुलजातोऽसि वीरोऽसि जहि तौ रिपू ॥ २४ ॥

शरीर रुधिरसे भीजगया, और शीघ्रही रोती रोती और अपने भ्राता खरराक्षसको अपशब्द कहती हुई उसके सामने पृथ्वीपर गिरपड़ी खरराक्ष-
सका शब्द उसके शब्दसेभी कठोर था उसने शूर्पणखासे बूझा कि यह क्या हुआ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ तेरी यह दुर्दशा किसने करीहै अपने
आपही मृत्युके मुखमें जानेको कौनसा पुरुष तयार हुआ, सो मुझे बता? चाहे वह प्रत्यक्ष मृत्युके समान ही हो परन्तु देख मैं उसका क्षणभरमें नाश
करदूँगा ॥ २२ ॥ राक्षसी उससे कहनेलगी कि रामचन्द्र नामवाला एक मनुष्य सीता और लक्ष्मणको साथ लेकर दण्डकारण्यको निर्भय करताहुआ
गोदावरीके तटपर निवास करताहै ॥२३॥ उसके कहनेसे उसके छोटे भ्राताने यह मेरी दशा करीहै, यदि तू अपने कुलका अभिमानी और वीर है तो इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शत्रुका नाश कर ॥ २४ ॥ मैने यह निश्चय करलिया है कि रामलक्ष्मणके रुधिरका पान करूँगी और उन उन्मत्त मनुष्योंका भक्षण करूँगी, यदि यह नहीं होसकैगा तो प्राणोंको त्यागकर यमपुरको चलीजाऊंगी ॥ २५ ॥ यह सुनतेही खरराक्षस क्रोधमें भरगया, और तत्काल महाकठोर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षस रामचन्द्रके आश्रमको भेजदिये, और उनका वध करनेकी इच्छासे खर त्रिशिरा तथा दूषण यह तीनों राक्षस शीघ्रही अनेकप्रकारके शस्त्र धारण करके तैयार हो रामचन्द्रजीकी ओरको आये, उनके शब्दका कोलाहल सुनतेही श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण! बड़ा कलकल शब्द सुनाई आरहाहै. सो निःसन्देह राक्षस यहाँको आतेहोंगे आज निःसन्देह उनका मेरे साथ घोर युद्ध होगा॥२९ ॥ तुम

तयोस्तु रुधिरं पास्ये भक्षये तौ सुदुर्मदौ ॥ नो चेत्प्राणान्परित्यज्य यास्यामि यमसादनम् ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा त्वरितं प्रागात्खरः क्रोधेन मूर्च्छितः ॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा भीमकर्मणाम् ॥ २६ ॥ चोदयामास रामस्य समीपं वधकाङ्क्षया ॥ खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षसः ॥ २७ ॥ सर्वे रामं ययुः शीघ्रं नानाप्रहरणोद्यताः ॥ श्रुत्वा कोलाहलं तेषा रामः सौमित्रिमब्रवीत ॥ २८ ॥ श्रूयते विपुलः शब्दो नूनमायान्ति राक्षसाः ॥ भविष्यति महद्युद्धं नूनमद्य मया सह ॥ २९ ॥ सीता नीत्वा गुहा गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल ॥ हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वान् राक्षसान् घोररूपिणः ॥ ३० ॥ अत्र किंचिन्न व्यक्तव्यं शापितोऽसि ममोपरि ॥ तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वरं ययौ ॥ ३१ ॥ रामः परिकरं बद्ध्वा धनुरादाय निष्ठुरम् ॥ तूणीरावक्षयशरौ बद्ध्वायत्तोऽभवत्प्रभुः ॥ ३२ ॥ तत आगत्य रक्षासि रामस्योपरि चिक्षिपुः ॥ आयुधानि विचित्राणि पाषाणान्पादपानपि ॥ ३३ ॥

पराक्रमी हो परंतु मैं तुमसे कहता हूँ कि इससमय तुम सीताको लेकर गुफामें चले जाओ और वहाँ बैठो मेरे मंनमें इस सम्पूर्ण भयङ्कर राक्षसोंका वध करनेकी इच्छा है ॥ ३० ॥ इसमें अब कुछ कहनेकी आवश्यकता नही है तुम्हें मेरी शपथ है. लक्ष्मणजी बहुत अच्छा कहकर और सीताजीको लेकर गुफामें चले गए ॥ ३१ ॥ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कसके कमर बाँधली, हाथमें धनुष लेलिया, अक्षय बाणोंसे भरेहुए दो तरकस पीठपर बांधलिये, इसप्रकार तयारी करी कि इतनेहीमें राक्षस आकर श्रीरामचन्द्रजीके उपर नानाप्रकारके शस्त्रोंकी और पत्थरोंकी तथा वृक्षोंकी वर्षा करनेलगे ॥३२॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीने भी एकक्षणके भीतर सहजमेंही उन शस्त्र आदिके तिलके समान टुकड़े करडाले फिर एक हजार बाणोंकी वर्षा करके सम्पूर्ण राक्षसोंका नाश करदिया, फिर श्रीरामचन्द्रजीने खर, त्रिशिरा इन तीनों राक्षसोंको चार घड़ीके भीतरही यमपुरीको पहुँचादिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणजीने भी सीताको गुंफासे बाहर लाकर रामचन्द्रजीको सोंप दिया, श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षसोंका नाश कर दिया, यह लक्ष्मणजी देखकर आश्चर्ययुक्त होगये ॥ ३६ ॥ प्रसन्न है मुखरूपी कमल जिनका ऐसी जानकीजीने श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाया और उनके शरीरपर जो शस्त्रोंसे घाव थे उनको धोया ॥ ३७ ॥ इधर बड़े बड़े राक्षस मारेगए यह देखकर रावणकी बहन शूर्पणखा लंकामें गई और रोती रोती सभामें जाकर

तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात् ॥ ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान् ॥ ३४ ॥ खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः ॥ ३५ ॥ लक्ष्मणोऽपि गुहामध्यात्सीतामादाय राघवे ॥ समर्प्य राक्षसान्दृष्ट्वा हतान्विस्मयमाययौ ॥ ३६ ॥ सीता रामं समालिङ्ग्य प्रसन्नमुखपङ्कजा ॥ शस्त्रव्रणानि चाङ्गेषु ममार्ज जनकात्मजा ॥ ३७ ॥ साऽपि दुद्राव दृष्ट्वा तान्हतान् साक्षसपुङ्गवान् ॥ लङ्का गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ ॥ ३८ ॥ रावणस्य पपातोर्व्यां भगिनी तस्य रक्षसः ॥ दृष्ट्वा ता रावणः प्राह भगिनीं भयविह्वलाम् ॥ ३९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से त्वं विरूपकरणं तव ॥ कृतं शक्रेण वा यमेन वरुणेन वा ॥४०॥ कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्या क्षणेन तम् ॥ राक्षसी तमुवाचेदं त्वं प्रमत्तो विमूढधीः ॥४१॥ पानासक्तः स्त्रीविजितः षण्ढः सर्वत्र लक्ष्यसे ॥ चारचक्षुर्विहीनस्त्वं कथं राजा भविष्यसि ॥ ४२ ॥

रावणके चरणोंके समीप पृथ्वीपर गिरपड़ी मेरी बहन भयसे व्याकुल होरही है, ऐसा देखकर रावण उससे कहने लगा कि हे बाले ! उठ उठ इस तेरे सुन्दर रूपको किसने विरूप किया, इन्द्रने यमने वरुणने अथवा कुबेरने ? हे कल्याणि ! उसका नाम बतला तो मैं उसको क्षणमात्रमें भस्म करडालूँ. राक्षसी शूर्पणखाने उसको उत्तर दिया कि तू प्रमत्त है तथा तेरी बुद्धि अत्यन्त मन्द होरही है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तू मद्यपानमेंही लग रहता है और स्त्रियोंके वशीभूत तथा नपुंसकके समान है. राजाके दूतही नेत्र होते हैं सो तेरेपास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिलकुल नहीं हैं फिर तू किसप्रकार राज्यका पालन करैगा ॥ ४२ ॥ खर, दूषण, त्रिशिरा यह तीनों युद्धमें मारे गए तथा बड़े २ वीर चौदह हजार राक्षसोंका रामचन्द्रने क्षणमात्रमें नाश करदिया वह राक्षसोंका बड़ाभारी शत्रु उत्पन्न होगया है, उसने सम्पूर्ण जनस्थान ऋषियोंके निवास करनेयोग्य निर्भय करदिया यह वृत्तान्त तुझे इससमय पर्यन्त कुछ भी मालूम नहीं, इसकारणही मैं तुझे मूर्ख कहती हूँ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ रावण बोला कि हे शूर्पणखे ! रामचन्द्र कौन है ? उसने राक्षसोंका किसकारण नाश किया यह सब मुझे ठीक ठीक बता ? तब मैं उन तीनोंको निर्मूल (नष्ट) कर दूँगा ॥ ४५ ॥ शूर्पणखा कहनेलगी कि हे राजन् ! एकसमय मैं जनस्थानसे फिरती फिरती गोदावरीके तटपर गईथी तहाँ पंचवटी नामक एक स्थान

खरश्च निहतः सङ्ख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥ चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम् ॥ ४३ ॥ निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा ॥ जनस्थानमशेषेण मुनीना निर्भयं कृतम् ॥ न जानासि विमूढस्त्वमत एव मयोच्यते ॥ ४४ ॥ ॥ रावण उवाच ॥ को वा रामः किमर्थं वा कथं तेनासुरा हताः ॥ सम्यक्कथय मे तेषा मूलघातं करोम्यहम् ॥ ४५ ॥ ॥ शूर्पणखोवाच ॥ जनस्थानादहं याता कदाचिद्गौतमीतटे ॥ तत्र पञ्चवटी नाम पुरा मुनिजनाश्रया ॥ ४६ ॥ तत्राश्रमे मया दृष्टो रामो राजीवलोचनः ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान् जटावल्कलमण्डितः ॥ ४७ ॥ कनीयाननुजस्तस्य लक्ष्मणोऽपि तथाविधः ॥ तस्य भार्या विशालाक्षी रूपिणी श्रीरिवापरा ॥ ४८ ॥ देवगन्धर्वनागानां मनुष्याणां तथाविधा ॥ न दृष्टा न श्रुता राजन्द्योतयन्ती वनं शुभा ॥ ४९ ॥ आनेतुमहमुद्युक्ता तां भार्यार्थं तवानघ ॥ लक्ष्मणो नाम तद्भ्राता चिच्छेद मम नासिकाम् ॥ ५० ॥

है तहाँ पूर्वकालमें अनेक ऋषि निवास करतेथे ॥ ४६ ॥ तिस आश्रममें कमलनेत्र रामचन्द्रको मैंने देखा वह हाथमें धनुषबाण धारण किये तथा तेजस्वी होकरभी जटा और वल्कलोंको धारण किये हुएथे ॥ ४७ ॥ उनका छोटा भ्राता लक्ष्मण देखनेमें बिलकुल उनके ही समान है, रामचन्द्रकी स्त्री इतनी सुन्दर है कि दूसरी लक्ष्मीसी प्रतीत होती है, उसके नेत्र विशाल हैं ॥ ४८ ॥ देव, गन्धर्व, नाग और मनुष्योंमें ऐसी स्त्री आजपर्य्यंत न देखनेमें आई और न सुननेमें आई. हे राजन् ! उस सुन्दरीका तेज वनको प्रकाशित कर रहा है ॥ ४९ ॥ हे वीर ! तिस स्त्रीको तेरी भार्य्या करनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निमित्त लाऊं, इस उद्योगमें मैं थी; परन्तु रामचन्द्रजीके परमशक्तिमान लक्ष्मण भ्राताने उनके कहनेसे मेरे नाक कान काट लिये, उनके सामने मेरी कुछभी नहीं चली, फिर मैं अत्यन्त दुःखित हो रोती रोती खरके पास चलीगई ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उसनेभी राक्षसोंके अनेक सेनापति साथमें लेकर रामचंद्रके ऊपर चढाई करके युद्ध किया परन्तु रामचंद्र ऐसे बलवान् हैं कि उन्होंने एक क्षणमेंही सम्पूर्ण राक्षसोंको मारकर गिरादिया, वह राक्षस भी कुछ कम थे यह नहीं, किन्तु महापराक्रमी थे. यदि रामचन्द्रजी मनसे चाहैं तो त्रिलोकीको भी निःसन्देह आधे क्षणमेंही भस्म करसक्ते हैं, ऐसा मुझे प्रतीत होता है, हे समर्थ! यदि वह स्त्री तेरी पत्नी होयगी तबहीं तेरा जीवन सफल होयगा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसकारण हे राजाधिराज !

कर्णौ च नोदितस्तेन रामेण स महाबलः ॥ ततोऽहमतिदुःखेन रुदती खरमन्वगाम् ॥ ५१ ॥ सोऽपि रामं समासाद्य युद्धं राक्षसयूथपैः ॥ ततः क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना ॥ ५२ ॥ सर्वे तेन विनष्टा वै राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ यदि रामो मनः कुर्यात्त्रैलोक्यं निमिषार्धतः ॥ ५३ ॥ भस्मीकुर्यान्न सन्देह इति भाति मम प्रभो ॥ यदि सा तव भार्या स्यात्सफलं तव जीवितम् ॥ ५४ ॥ अतो यतस्व राजेन्द्र यथा ते वल्लभा भवेत् ॥ सीता राजीवपत्राक्षी सर्वलोकैककसुन्दरी ॥ ५५ ॥ साक्षाद्रामस्य पुरतः स्थातुं त्वं न क्षमः प्रभो ॥ मायया मोहयित्वा तु प्राप्स्यसे तां रघूत्तमम् ॥ ५६ ॥ श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा ॥ आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥ तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रां रात्रौ न लब्धवान् ॥ ५७ ॥ एकेन रामेण कथं मनुष्यमात्रेण नष्टः सबलः खरो मे ॥ भ्राता कथं मे बलवीर्यदर्पयुतो विनष्टो बत राघवेण ॥ ५८ ॥

जिसप्रकार सीता तेरी प्रियपत्नी होय सो उपाय कर, उसके कमल पत्रसमान नेत्र देखकर मेरे मनको तो निश्चय होगया है कि इसके समान सुन्दर स्त्री त्रिलोकीमें नहीं है ॥ ५५ ॥ हे रावण! तेरी शक्ति कितनीही बढ़ी हुई हो परन्तु तू प्रत्यक्ष रामचन्द्रके सामने स्थित नहीं होसकैगा, इसकारण कुछ कपटकरके तिन रामचन्द्रको मोहित करलेगा तो सीता तुझे मिलैगी ॥ ५६ ॥ रावणने यह वृत्तान्त सुनकर मधुर मधुर वचनोंसे और धन देकर तथा आदर सत्कारकरके बहनको शांत किया, फिर अपने मंदिरमें चलागया, परन्तु चित्त चिन्ताग्रस्त होरहाथा, इसकारण उसे रात्रिभर निद्रा नहीं आई ॥ ५७ ॥ वह मनमें विचारताथा कि रामचंद्र एक साधारण मनुष्य है उस इकलेनेही मेरे खर भ्राता और उसकी सेनाका कैसे नाश करदिया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस मेरे भ्राताको अपनी शक्ति और धैर्यका बड़ा गर्व था उसको रामचन्द्रने मारडाला ॥ ५८ ॥ अथवा रामचन्द्र मनुष्य नहीं होंगे किन्तु परमेश्वरही होंगे मेरे पास सेनाका समूह बहुत हो गया है और मैं अत्यन्त बलवान होगया हूं इसकारण मेरा बध करनेकी इच्छासे पहिले ब्रह्माकी प्रार्थना करनेसे इससमय प्रभुने रघुकुलमें मनुष्यरूपसे अवतार लिया होगा ॥ ५९ ॥ यदि परमेश्वरके हाथसे मेरा प्राणान्त होगा तो मैं वैकुन्ठके राज्यका पालन करूंगा नहीं तो चिरकाल पर्यंत इस राक्षसोंके राज्यकोही भोगूंगा, दोनों प्रकारसे मेरा कल्याणही होगा; इसकारण मैं रामचन्द्रके समीप जाताहूं ॥ ६० ॥ तिस सम्पूर्ण राक्षसोंके राजाने ऐसा बिचार कर तथा रामचंद्र साक्षात् परमेश्वर विष्णु हैं यह जानकर उसके मनमें यह आग्रह हुआ कि

यद्वा न रामो मनुजः परेशो मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः ॥ संप्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत् ॥ ५९ ॥ वध्यो यदि स्या परमात्मनाऽहं वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम् ॥ नोचेदिदं राक्षसराज्यमेव मोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि ॥ ६० ॥ इत्थं विचिन्त्या खिलराक्षसेन्द्रो रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम् ॥ विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान्प्रसीदेत् ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पञ्चम सर्गः ॥ ५ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ विचिन्त्यैवं निशाया स प्रभाते रथमास्थितः ॥ रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान् ॥ १ ॥ ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः ॥ मारीचस्तत्र मुनिवज्जटावल्कलधारकः ॥ २ ॥ ध्यायन् हृदि परात्मानं निर्गुणं गुणभासकम् ॥ समाधिविरमेऽपश्यद्रावणं गृहमागतम् ॥ ३ ॥

विरोध करकेही रामपद पाऊं, यह ठीकही था, क्योंकि सीधे भक्तिमार्ग से भगवान शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! परम बुद्धिवान् रावणने रात्रिभर इसप्रकार विचार करके अपनेको क्या करना चाहिये यह निश्चय किया और प्रातःकाल होतेही रथमें बैठकर समुद्रके परलीपार मारीचके यहाँ गया, मारीच राक्षस उससमय ऋषियोंके समान जटा वल्कल धारे हुए अपने हृदयमें वास्तवमें गुणरहित होकर भी त्रिगुणात्मक माया के कार्यको प्रकाश करनेवाले परमेश्वरका ध्यानकर रहाथा, उसने समाधि उतारी तब देखा कि रावण मेरे घर आया है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो शीघ्रही उठकर उसने रावणको हृदयसे लगाया और विधिपूर्वक उसका आदरसत्कार किया. अनन्तर रावण स्वस्थ होकर आसनपर बैठा, तब मारीचने उससे बूझा किं हे रावण! तुम कहींको जातेथे तो साथमें दश पांच रथ तथा बहुतसे सेवक आदि होते थे और आज तो यहाँ इकलेही रथपर बैठकर आये हो तुम मनमें कौनसे कार्यका विचार कररहे हो, इससमय तुम मुझे बडे चिन्ताग्रस्तसे मालूम होते-हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसमें कुछ गुप्त करने लायक नहीं होय तो सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझसे कहो, तब मैं जो तुम्हारे मनमें होगा उसी कार्यको करूँगा, हे राजाधिराज! यदि तुम्हारा कार्य न्यायसे अथवा धर्मसे विरुद्ध नहीं होय तो मुझसे कहो, क्योंकि उस कार्यके करनेसे मुझे पाप न

द्रुतमुत्थाय चालिङ्ग्य पूजयित्वा यथाविधि ॥ कृतातिथ्यं सुखासीनं मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ समागमनमेतत्ते रथेनैकेन रावण ॥ चिन्तापर इवाभासि हृदि कार्यं विचिन्तयन् ॥ ५ ॥ ब्रूहि मे नहि गोप्यं चेत्करवाणि तव प्रियम् ॥ न्याय्यं चेद् ब्रूहि राजेन्द्र वृजिनं मां स्पृशेन्नहि ॥ ६ ॥ रावण उवाच ॥ अस्ति राजा दशरथः साकेताधिपतिः किल ॥ रामनामा सुतस्तस्य ज्येष्ठः सत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥ विवासयामास सुतं वनं वनजनप्रियम् ॥ भार्यया सहितं भ्रात्रा लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ८ ॥ स आस्ते विपिने घोरे पञ्चवट्याश्रमे शुभे ॥ तस्य भार्या विशालाक्षी सीता लोकविमोहिनी ॥ ९ ॥ रामो निरपराधान्मे राक्षसान् भीमविक्रमान् ॥ खरं च हत्वा विपिने सुखमास्तेऽ-तिनिर्भयः ॥ १० ॥ भगिन्या मे शूर्पणख्या निर्दोषायाश्च नासिकाम् ॥ कर्णौ चिच्छेद दुष्टात्मा वने तिष्ठति निर्भयः ॥ ११ ॥

लगे ॥ ६ ॥ रावण बोला कि हे मारीच! दशरथ नामवाला एक प्रसिद्ध अयोध्याका राजा था उसका बड़ा पुत्र रामचन्द्र बड़ा पराक्रमी है ॥ ७ ॥ दशरथने उस अपने पुत्रको स्त्री और लक्ष्मण नामक छोटे भ्रातासहित बनमें निकाल दिया है, उसको वनके ऋषि प्राणोंसे भी प्रिय हैं, वह रामचन्द्र घोर बनमें पंचवटीनामक रमणीय आश्रममें रहता है, विशालनेत्रवाली उसकी स्त्री अत्यन्त सुन्दर है, उसको पुरुष देखतेही मोहित होजाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ तिस रामचन्द्रने मेरे महापराक्रमी राक्षसोंका विना अपराधही वध करडाला और खरकाभी प्राणान्त करके वह उस वनमें निर्भय होकर सुखपूर्वक निवास करता है ॥ १० ॥ उसका अन्तःकरण बिलकुल दयाहीन है, मेरी बहन शूर्पणखा कितनी सूधी है, उसने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामचन्द्रका कोई बिगाड़ नहीं किया तथापि उसके नाक कान काटडाले ॥ ११ ॥ इसकारण मैं सहायताके लिये तुझे साथ लेजाकर वहां जाऊंगा और रामचन्द्र बनमें नहीं होयँगे तब उसकी प्राणप्यारी सीताको हरलाऊंगा ॥१२॥ तू मायाकरके हरिणका रूप धारण कर और लक्ष्मणसहित रामचन्द्रको आश्रमसे दूर लेजा, इतनेहीमें इधर मैं सीताको हरकर लाताहूँ ॥ १३ ॥ तू मेरी इतनी सहायता करके फिर वहाँ आकर पूर्ववत् आश्रममें निवास कर. रावणने इसप्रकार कहा तो रावणको देखकर मारीचको बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा ॥ १४ ॥ कि हे रावण ! तुझे सर्वस्वका नष्ट करनेवाला यह उपदेश किसने दिया, ऐसा अमंगल उपदेश करके जो तेरा नाश होता हुआ देखनेके निमित्त निश्चिन्त बैठा होगा वह तेरा परम शत्रु

अतस्त्वया सहायेन गत्वा तत्प्राणवल्लभाम् ॥ आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम् ॥१२॥ त्वं तु मायामृगो भूत्वा ह्याश्रमादपनेष्यसि ॥ रामं च लक्ष्मणं चैव तदा सीतां हराम्यहम् ॥१३॥ त्वं तु तावत्सहायं मे कृत्वा स्थास्यसि पूर्ववत् ॥ इत्येवं भाषमाणं तं रावणं वीक्ष्य विस्मितः ॥ १४ ॥ केनेदमुपदिष्टं ते मूलघातकरं वचः ॥ स एव शत्रुर्वध्यश्च यस्त्वन्नाशं प्रतीक्षते ॥ १५ ॥ रामस्य पौरुषं स्मृत्वा चित्तमद्यापि रावण ॥ बालोऽपि मां कौशिकस्य यज्ञसंरक्षणाय सः ॥ १६ ॥ आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे ॥ योजनानां शतं रामस्तदादि भयविह्वलः ॥१७॥ स्मृत्वा स्मृत्वा तदेवाहं रामं पश्यामि सर्वतः ॥१८॥ दण्डकेऽपि पुनरप्यहं वने पूर्ववैरमनुचिन्तयन् हृदि ॥ तीक्ष्णशृङ्गमृगरूपमेकदा मादृशैर्बहुभिरावृतोऽभ्ययाम् ॥१९॥ राघवं जनकजासमन्वितं लक्ष्मणेन सहितं त्वरान्वितः ॥ आगतोऽहमथ हन्तुमुद्यतो मां विलोक्य शरमेकमक्षिपत् ॥ २० ॥

है प्रथम उसका वध करना चाहिये ॥ १५ ॥ हे रावण ! रामचन्द्रजीके पराक्रमका स्मरण होतेही अन्तःकरण अत्यन्त घबरा जाता है, बालकपनमेंही वह विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेके निमित्त आये थे, उससमय उन्होंने एक बाण मारकर मुझे सौ योजनपर समुद्रमें फेंकदिया, तबसे मैं उनके भयसे अत्यन्त व्याकुल रहता हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस वार्ताका वारंवार स्मरण होकर मुझे जिधर तिधर रामचन्द्रही खड़े हैं ऐसा मालूम होने लगता है ॥ १८ ॥ पहिले मनमें शत्रुता होनेके कारण फिर भी मैं एक समय तीक्ष्ण सींगवाले मृगका रूप धारण करके और अपने सदृशही प्रतापी बहुतसे राक्षसोंको साथ लेकर दण्डकारण्यमें उनके आश्रमपर गया ॥ १९ ॥ सीता और लक्ष्मणसहित रामचन्द्र थे सो तहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहुंचकर मैं बड़े वेगसे उनको मारनेके लिये तयार हुआ, तब रामचन्द्रने मुझे देखतेही एक बाण छोडा ॥ २० ॥ हे राक्षसोंका राजा रावण! वह बाण मेरे वक्षस्थलमें लगा और मैं घूमता घूमता इस समुद्रमें आकर गिरा, तबसे मैं बड़ा भयभीत होकर यहाँ रहता हूँ, इस स्थानमें किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ २१ ॥ और मैं भोगराशिसे भयभीत होकर निरन्तर रामचंद्रहीका ध्यान किया करता हूँ, तथा राजा, रत्न, रमणी (सुन्दर स्त्री), रथ इत्यादि शब्द यदि मेरे कानमें पड़ जाते हैं, तो उन शब्दोंमें रकार होनेके कारण मुझे मालूम होताहै कि रामचन्द्र आगए ऐसी शंकासे ही मैने सम्पूर्ण बाह्य कार्योंको त्याग दिया और जब निद्राके वशमें होकर मनसे रामचन्द्रकीही चिन्ता करता सोताहूँ तब स्वप्नमें रामचन्द्रकी मूर्ति दीखतीहै और शीघ्रही मैं जाग जाता

तेन विद्धहृदयोऽहमुद्भमन् राक्षसेन्द्र पतितोऽस्मि सागरे ॥ तत्प्रभृत्यहमिदं समाश्रितः स्थानमूर्जितमिदं भयार्दितः ॥ २१ ॥ राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः ॥ राजरत्नरमणीरथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत् ॥ २२ ॥ राम आगत इहेति शङ्कया बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम् ॥ निद्रया परिवृतो यदा स्वपे राममेव मनसाऽनुचिन्तयन् ॥ २३ ॥ स्वप्नदृष्टिगतराघवं तदा बोधितो विगतनिद्र आस्थितः ॥ तद्भवानपि विमुच्य चाग्रहं राघवं प्रति गृहं प्रयाहि भो ॥ २४ ॥ रक्ष राक्षसकुलं चिरागतं तत्स्मृतौ सकलमेव नश्यति ॥ तव हितं वदतो मम भाषितं परिगृहाण परात्मनि राघवे ॥ २५ ॥ त्यज विरोधमतिं भज भक्तितः परमकारुणिको रघुनन्दनः ॥ अहमशेषमिदं मुनिवाक्यतोऽशृणवमादियुगे परमेश्वरः ॥ २६ ॥

हूँ फिर निद्रा नहीं आती, और क्या कहूँ बैठे बैठेही समयको बिताने लग जाताहूँ, इसकारण मैं तुझसे कहताहूँ कि हे राजन्! तुमभी रामचन्द्रके विषयमें दुराग्रहको छोड़कर घरको लौट जाओ, बहुत दिनोंसे चलतेआए हुए राक्षसोंके राज्यका पालन करते रहो, रामचन्द्रकी वार्ता मनमें लाओगे अथवा उनके समीप जाओगे तो सम्पूर्ण राक्षस कुल नष्ट होजायगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ मैं तेरे हितकी यह वार्ता कहताहूँ मेरे उपदेशको ध्यानमें ला रामचन्द्र साक्षात् परमेश्वर हैं उनसे विरोध न करके सूधे भक्तिमार्गसे सेवाकर, वह रघुनन्दन परमदयालु हैं और पूर्वकालमें नारदजीसे सुनेहुए वचनोंकरके मुझे यह वृत्तान्त पूर्णरीतिसे मालूम है कि सत्ययुगमें ब्रह्माजीने प्रार्थना करीथी तब उन भक्तोंके संकट हरनेवाले प्रभुने प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे कहा तुम्हारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या इच्छा है, सो मुझसे कहो उसके अनुसारही मैं कार्य करूं ॥ २५ ॥ २६ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे कमलनेत्र ईश्वर! आप मनुष्यका रूप धारण करके दशरथके पुत्ररूपसे भूमिपर अवतार लो, और हमारा शत्रु जो दशमुख रावण उसका शीघ्रही नाश करो ॥ २७ ॥ इससे यह सिद्ध होता है कि यह रामचन्द्र मनुष्य नहीं किन्तु साक्षात् निर्विकार नारायण मायासे मनुष्यका रूप धारण करके भूमिका भार दूर करनेके लिये वनमें आये हैं; तुमको किसीको देखकर किंचिन्मात्रभी भय नहीं होता है, इसकारण हे राजन्! सुखपूर्वक अपने घरको जाओ. इतना मारीचका भाषण सुनके रावणने उसको उत्तर दिया, कि हे मारीच! यदि रामचंद्र निःसन्देह परमेश्वरही हैं, और ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मेरे मारनेके लिये मनुष्यरूप धारण करके युक्ति करके यहाँ आये हैं तो वह सत्यसंकल्प प्रभु अपना कार्य शीघ्रही सिद्ध करैंगे, इसमें चिन्ता करनेसे क्या होगा, इसकारण मैं जहांतक

ब्रह्मणाऽर्थित उवाच तं हरिः किं तवेप्सितमहं करवाणि तत्॥ ब्रह्मणोक्तमरविन्दलोचन त्वं प्रयाहि भुवि मानुषं वपुः ॥ दशरथात्मज-भावमञ्जसा जहि रिपुं दशकन्धरं हरे ॥ २७ ॥ अतो न मानुषो रामः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ मायामानुषवेषेण वनं यातोऽतिनिर्भयः ॥ ॥ २८ ॥ भूभारहरणार्थाय गच्छ तात गृहं सुखम् ॥ श्रुत्वा मारीचवचनं रावणः प्रत्यभाषत ॥ २९ ॥ परमात्मा यदा रामः प्रार्थितो ब्र-ह्मणा किल ॥ मां हन्तुं मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागतः ॥ ३० ॥ करिष्यत्यचिरादेव सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ अतोऽहं यत्नतः सीतामाने-ष्याम्येव राघवात् ॥ ३१ ॥ वधे प्राप्ते रणे वीर प्राप्स्यामि परमं पदम् ॥ यद्वा रामं रणे हत्वा सीतां प्राप्स्यामि निर्भयः ॥ ३२ ॥ अतोत्तिष्ठ महाभाग विचित्रमृगरूपधृक् ॥ रामं सलक्ष्मणं शीघ्रमाश्रमादतिदूरतः ॥ ३३ ॥ आक्रम्य गच्छ त्वं शीघ्रं सुखं तिष्ठ यथा पुरा ॥ अतः परं चेद्यत्किंचिद्भाषसे मद्भिभीषणम् ॥ ३४ ॥ हनिष्याम्यसिनाऽनेन त्वामत्रैव न संशयः ॥ मारीचस्तद्वचः श्रुत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ॥३५॥

होसकैगा तहांतक प्रयत्नकरके रामचंद्रके पाससे सीताको हरकर लाऊंगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे वीर! यदि मेरा रणमें मरण होयगा तो परमपदको प्राप्त होऊंगा, नहीं तो युद्धमें रामचंद्रको मारकर सीताको लेलूंगा और निर्भय होकर राज्य करूँगा ॥ ३२ ॥ इसकारण मुझसे तुझे इतनाही कहना है कि हे भाग्यवान् पुरुष! उठ विचित्र प्रकारके मृगका रूप धारण कर और लक्ष्मणसहित रामचंद्रको शीघ्रही आश्रमसे बहुत दूर निकालकर लेजा. फिर शीघ्रही घर आकर स्वस्थ बैठ. इसके अनन्तर यदि मुझे भयदायक वार्त्ता कहैगा तो इस खड्गसे तेरा यहाँही प्राणान्त करदूँगा, इसमें कुछ संदेह नहीं है. मारीचने इस वचनको सुनकर विचार किया कि यदि रामचन्द्र मेरा वध करेंगे तो मैं संसारबन्धनसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुक्त होऊंगा, और यदि इस दुष्टके हाथसे मेरा मरण होगा तो अवश्यही नरकमें पड़ना पड़ैगा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ऐसा विचार करनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके हाथसेही मरणका निश्चय करके मारीच शीघ्रही उठ खड़ा हुआ, और रावणसे कहने लगा कि हे रावण ! तुम परम पराक्रमी और सर्वसमर्थ हो इसकारण आपकी आज्ञा मुझे माननाही चाहिये ॥ ३७ ॥ इसप्रकार कहकर मारीच उसके साथ चलनेको तयार हुआ तब दोनों जने रथमें बैठकर श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आए मारीचने अग्निसे तपाए हुए सुवर्णके समान अधिक क्या कहैं, सुवर्णकाही रूप धारण करलिया उसके अंगपर रूपेकी बूँदे शोभायमान हो रहींथीं, उसके सींग साक्षात् रत्नोंकेही थे खुर हीरेके थे, नेत्र इन्द्रनीलमणिके समान थे,

यदि मा राघवो हन्यात्तदा मुक्तो भवार्णवात् ॥ मां हन्याद्यदि चेद्दुष्टस्तदा मे निरयो ध्रुवम् ॥ ३६ ॥ इति निश्चित्य मरणं रामादुत्थाय वेगतः ॥ अब्रवीद्रावणं राजन्करोम्याज्ञां तव प्रभो ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वा रथमास्थाय गतौ रामाश्रमं प्रति ॥ शुद्धजाम्बूनदप्रख्यो मृगोऽभूद्रौप्यबिन्दुकः ॥ ३८ ॥ रत्नशृङ्गो मणिखुरो नीलरत्नविलोचनः ॥ विद्युत्प्रभो विसुग्धास्यो विचचार वनान्तरे ॥ ३९ ॥ रामाश्रमपदस्यान्ते सीतादृष्टिपथे चरन् ॥ ४० ॥ क्षणं च धावत्यवतिष्ठते क्षणं समीपमागत्य पुनर्भयावृतः ॥ एवं स मायामृगवेषरूपधृक् चचार सीतां परिमोहयन्खलः ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम् ॥ उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वचः ॥ १ ॥ रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम् ॥ त्वं तु छाया त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ॥ २ ॥

कान्ति बिजलीके समान थी और मुख अत्यन्त सुंदर था वह मृग वनमें इधर उधर फिरने लगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और रामचन्द्रजी आश्रमके समीपमें उसे सीताजीने देखा उससमय वह कभी भागताथा कभी समीपमें आकर खड़ा होजाता था और फिर भयभीत होकर भागजाताथा, इसप्रकार कपटसे रूप धारण करनेवाला वह दुष्ट राक्षस सीताको मोहित करनेकेलिये इसप्रकार विचरने लगा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षष्ठः सर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव बोले हे पार्वति ! इधर रामचन्द्रको रावणका वह सम्पूर्ण कर्तव्य मालूम हुआ इसकारण उन्होंने एकान्तमें सीतासे कहा कि हे जानकी ! मेरे कहनेको सुन ॥ १ ॥ रावण संन्यासीका रूप धारण करके तेरे पास आवैगा, इस-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण तू अपने आकारकी एक छायाको आश्रममें स्थापन करके अपने आप अग्निमें प्रवेश कर जा, और मेरी आज्ञासे तिस अग्निके विषे एक वर्षपर्यन्त गुप्तरूपसे निवास कर. हे सुन्दरी ! निःसन्देह रावणका वध करनेके अनन्तर तू पहिलेके समान मेरे पास प्राप्त होयगी ॥ २ ॥ ३ ॥ यह रामचन्द्रजीका भाषण सुनके सीताने वैसाही किया, मायाकी सीता बनाकर बाहर बेठाल दी और अपने आप अग्निमें प्रवेश करगई ॥ ४ ॥ मारीचने कपट करके धारण किया हुआ वह मृगका रूप इस मायाकी बनाई हुई सीताने देखा, तब वह हँसती हँसती रामचन्द्रजीके समीप जाकर नम्रतापूर्वक कहने लगी ॥ ५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! देखो देखो वह सुवर्णका मृग इधर उधर निर्भय होकर फिर रहा है, ऐसा मृग आजपर्य्यन्त किसीने भी नहीं

अग्नावदृश्यरूपेण वर्ष तिष्ठ ममाज्ञया ॥ रावणस्य वधान्ते मा पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ॥ ३ ॥ श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाकरोत् ॥ मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले ॥ ४ ॥ मायासीता तदाऽपश्यन्मृगं मायाविनिर्मितम् ॥ हसन्ती राममभ्येत्य प्रोवाच विनयान्विता ॥ ५ ॥ पश्य राम मृगं चित्रं कानकं रत्नभूषितम् ॥ विचित्रबिन्दुभिर्युक्तं चरन्तमकुतोभयम् ॥ ६ ॥ बद्ध्वा देहि मम क्रीडामृगो भवतु सुन्दरः ॥ तथेति धनुरादाय गच्छन् लक्ष्मणमब्रवीत् ॥७॥ रक्ष त्वमतियत्नेन सीता मत्प्राणवल्लभाम् ॥ मायिनः सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शनाः ॥८॥अतोऽत्रावहितः साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम् ॥ लक्ष्मणो राममाहेदं देवायं मृगरूपधृक् ॥ मारीचोऽत्र न सन्देह एवंभूतो मृगः कुतः ॥ ९ ॥ श्रीराम उवाच ॥ यदि मारीच एवायं तदा हन्मि न संशयः ॥ मृगश्चेदानयिष्यामि सीताविश्रामहेतवे ॥ १० ॥

देखा होगा, उसका शरीर रत्नजटित सुवर्णकासा दीखता है, क्योंकि उसपर चित्र विचित्र अनेक बिन्दु हैं ॥ ६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस सुन्दर मृगको बांधकर मुझे लादो. मैं उससे क्रीड़ा करूँगी, रामचन्द्रजी 'बहुत अच्छा लाकर देताहूँ' ऐसे कह धनुष लेकर निकले और जाते समय लक्ष्मणसे कहा ॥ ७ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम बड़ी चतुरतासे मेरी प्राणप्यारी सीताकी रक्षा करना इस वनमें अति विकराल स्वरूप धारण करनेवाले मायावी राक्षस बहुत हैं ॥ ८ ॥ इसकारण तुम यहाँ सावधान होकर पवित्रकीर्ति सीताकी रक्षा करते रहो, इसपर लक्ष्मणजी रामचन्द्रसे बोले कि हे देव ! यह मृगका रूप धारण करनेवाला निःसन्देह मारीच राक्षस है; ऐसा विलक्षण मृग पृथ्वीपर कहाँ होसक्ता है? ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि हे लक्ष्मण ! यदि ये मारीच ही होगा तौ भी मैं निःसन्देह इसका वध करूँगा, और यदि सच्चा मृग होगा तौ भी सीताके चित्तविनोदार्थ लेकर आऊँगा ॥ १० ॥ अब मैं जाताहूँ और शीघ्रही मृगको बाँधकर लाताहूँ, तुम चतुरतासे सीताकी रक्षा करनेके निमित्त सावधान रहो ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी तिस मायावी मृगके पीछे दौड़ते चले गए (शिवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! रामचन्द्रजीका सामर्थ्य कितना प्रचण्ड है उसको ध्यानमें लो,) क्योंकि प्राणियोंको मोहित करनेवाली और जगतरूपसे परिणामको प्राप्त होनेवाली माया उनकेही आश्रयसे रहती है ॥ १२ ॥ वह निर्विकार होकरभी केवल चैतन्यरूप हैं उनकी सम्पूर्ण कामना सदा परिपूर्ण रहतीहैं क्योंकि वह आनन्दस्वरूप हैं तौभी उस हिरणके पीछे दौडते चलेगए, इससे प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि भगवान् भक्तोंपर दया करनेवाले और उनके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं, यह कहना सत्य है ॥ १३ ॥ इसकारणही वह

गमिष्यामि मृगं वध्वा ह्यानयिष्यामि सत्वरः ॥ त्वं प्रयत्नेन सन्तिष्ठ सीतासंरक्षणोद्यतः ॥११॥ इत्युक्त्वा प्रययौ रामो मायामृगमनुद्रुतः ॥ माया यदाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृतिः ॥ १२ ॥ निर्विकारश्चिदात्मापि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात् ॥ भक्तानुकम्पी भगवानिति सत्यं वचो हरिः ॥१३॥ कर्तुं सीताप्रियार्थाय जानन्नपि मृगं ययौ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मनः ॥ १४ ॥ मृगेण वा स्त्रिया वापि किं कार्यं परमात्मनः ॥ कदाचिद्दृश्यतेऽभ्याशे क्षणं धावति लीयते ॥१५॥ दृश्यते च ततो दूरादेवं राममपाहरत् ॥ ततो रामोऽपि विज्ञाय राक्षसोऽयमिति स्फुटम् ॥१६॥ विव्याध शरमादाय राक्षसं मृगरूपिणम् ॥ पपात रुधिराक्तास्यो मारीचः पूर्वरूपधृक् ॥ १७ ॥

भगवान् इस मृगको सच्चा नहीं है किन्तु मृगरूप धारणकरनेवाला मायावी राक्षस मारीच है यह जानकरभी सीताकी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त (उसको बांधकर लानेके निमित्त) गये. यदि ऐसा नहीं माना जाय तो वास्तवमें श्रीरामचन्द्रजी नित्य परिपूर्णकाम हैं उनको आत्मस्वरूपका ज्ञान है ॥ १४ ॥ फिर उनको मृगसे अथवा स्त्रीसे कार्यही क्या था ? (इससे सिद्ध हुआ कि यह सम्पूर्ण लीला भगवानने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके निमित्त करी.) वह मृग कभी समीप दीखताथा और कभी दौडता दौडता छिप जाताथा कभी बहुत दूरपर दीखने लगताथा इसप्रकार वह श्रीरामचन्द्रजीको बहुत दूर लेगया तब रामचन्द्रजीने भी ठीक जानलिया कि यह राक्षसही है ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने एक बाण लेकर तिस मृगरूपी राक्षसके ऊपर छोंडा उस बाणके लगनेके साथही मारीच अपने पहिले राक्षसरूपको धारण करके भूमिपर गिरपडा और मुखमेंसे रुधिर टपकनेलगा ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और गिरते गिरते उस राक्षसने रामचन्द्रके समान स्वर बनाकर हाय! हाय! मरारे मरा! हे महाबाहो लक्ष्मण! शीघ्र आकर मेरी रक्षा करो! इसप्रकार पुकारा ॥१८॥ अज्ञानी प्राणीभी मरणके समय जिनके नामका एकबारभी स्मरण करनेसे सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होजातेहैं, तिन प्रभुके सामने उनका ध्यान करते ही मारीचका देहान्त हुआ और प्रत्यक्ष तिन श्रीरामचन्द्रजीके हाथसेही बध हुआ फिर उसकी मुक्ति होनेमें सन्देहही क्या ॥१९॥ उसके देहसे निकलाहुआ तेज सम्पूर्ण वनवासी पुरुषोंके देखते देखते श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपमेंही जाकर मिलगया उस समय देवताओंको बडा आश्चर्य हुआ ॥ २० ॥ वह कहने लगे कि यह मारीच तो मुनियोंका भक्षण करनेवाला महापापी था देखो इसके कैसे दुष्ट कर्म थे और कैसे उत्तमपदको प्राप्त हुआ यह निःसन्देह श्रीरामच-

हा हतोऽस्मि महाबाहो त्राहि लक्ष्मण मां द्रुतम् ॥ इत्युक्त्वा रामवद्वाचा पपात रुधिराशनः ॥ १८ ॥ यन्नामाज्ञोऽपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात ॥ किमुताग्रे हरिं पश्यंस्तेनैव निहतोऽसुरः ॥ १९ ॥ तद्देहादुत्थितं तेजः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राममेवाविशद्देवा विस्मयं परमं ययुः ॥ २० ॥ किं कर्म कृत्वा किं प्राप्तः पातकी मुनिहिंसकः ॥ अथवा राघवस्यायं महिमा नात्र संशयः ॥ २१॥ राम बाणेन संविद्धः पूर्वं राममनुस्मरन् ॥ भयात्सर्वं परित्यज्य गृहवित्तादिकं च यत् ॥ २२ ॥ हृदि रामं सदा ध्यात्वा निर्धूताशेषकल्मषः ॥ अन्ते रामेण निहताः पश्यन् राममवाप सः ॥ २३ ॥ द्विजो वा राक्षसो वाऽपि पापी वाऽधार्मिकोऽपि वा ॥ त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम् ॥ २४ ॥ इति तेऽन्योन्यमाभाष्य ततो देवा दिवं ययुः ॥ रामस्तच्चिन्तयामास म्रियमाणोऽसुराधमः ॥ २५ ॥

न्द्रकीही महिमा है ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें यह एकसमय श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए बाणसे विंधकर दूर जाकर गिरा था तबसे यह भयभीत हो घर द्रव्य आदि जो वस्तु थी सबका त्याग करके श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान करता रहताथा ॥ २२ ॥ हृदयमें सदा श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेसे इसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होगएहोंगे, और इसका रामचन्द्रजीके ही हाथसे मरण हुआ तथा अन्तकालमें रामचन्द्रका दर्शन मिला इसकारण इसको तिन आनन्दमय प्रभुके स्वरूपकी प्राप्ति हुई ॥ २३ ॥ प्राणी ब्राह्मण हो वा राक्षस हो, अथवा पापी हो या अधर्म करनेवाला हो यदि देहत्याग होनेके समय वह रामचन्द्रजीका स्मरण करै तो उत्तम पदको प्राप्त होताहै ॥२४॥ वह देवता इसप्रकार आपसमें वार्तालाप करके स्वर्गको चलेगए, इधर श्रीरामचन्द्रजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनमें यह विचार करने लगे कि इस अधम राक्षसने मरतेसमय हा लक्ष्मण ! इसप्रकार मेरे भाषणका अनुकरण करके प्राण त्यागे इसका क्या कारण है ? मेरे चिल्लानेके समान इस शब्दको सुनकर सीताने जाने क्या जाना होगा? ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसप्रकार चिन्तासे श्रीरामचन्द्रजीका अन्तःकरण व्याकुल होगया और वह श्रीरामचन्द्रजी उस दूर जगहसे पीछेको लौटे इधर सीताजी तिस दुष्ट मारीचका वाक्य कानमें पड़तेही भयभीत होगई और अत्यन्त दुःखित होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगी कि हे लक्ष्मण ! शीघ्र जाओ तुम्हारे भ्राताको उस राक्षसने बड़ी भारी पीड़ा दीहै, क्या तुमने अपने भ्राताका 'हा लक्ष्मण !' यह शब्द नहीं सुना ? इसपर लक्ष्मणजी बोले कि हे देवी जानकी ! वह रामचन्द्रका शब्द नहीं है, किन्तु किसी दुष्ट राक्ष-

हा लक्ष्मणेति मद्वाक्यमनुकुर्वन्ममार किम् ॥ श्रुत्वा मद्वाक्यसदृशं वाक्यं सीतापि किं भवेत् ॥ २६ ॥ इति चिन्तापरीतात्मा रामो दूरान्न्यवर्तत ॥ सीता तद्भाषितं श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मनः ॥ २७ ॥ भीताऽतिदुःखसंविग्ना लक्ष्मणं त्विदमब्रवीत् ॥ गच्छ लक्ष्मण वेगेन भ्रातातेऽसुरपीडितः ॥ २८ ॥ हा लक्ष्मणेति वचनं भ्रातुस्ते न शृणोषि किम् ॥ तामाह लक्ष्मणो देवि रामवाक्यं न तद्भवेत् ॥ २९ ॥ यः कश्चिद्राक्षसो देवि म्रियमाणोऽब्रवीद्वचः ॥ रामस्त्रैलोक्यमपि यः क्रुद्धो नाशयति क्षणात् ॥ ३० ॥ स कथं दीनवचनं भाषतेऽमरपूजितः ॥ क्रुधा लक्ष्मणमालोक्य सीता बाष्पविलोचना ॥ ३१ ॥ प्राह लक्ष्मण दुर्बुद्धे भ्रातुर्व्यसनमिच्छसि ॥ प्रेषितो भरतेनैव रामनाशाभिकाङ्क्षिणा ॥ ३२ ॥ मां नेतुमागतोऽसि त्वं रामनाश उपस्थिते ॥ न प्राप्स्यसे त्वं मामद्य पश्य प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ३३ ॥

सनेमरते समय इसप्रकार पुकारा होगा, हे देवी ! यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध करै तो क्षणभरमें त्रिलोकीका नाश कर सक्ते हैं और अतुलप्रभाव होनेके कारणही देवता जिनका पूजन करतेहैं वह प्रभु ऐसे दीन वचन किसप्रकार उच्चारण करसक्तेहैं ? सीताजीने क्रोधकरके लक्ष्मणजीके उपर दृष्टि डाली और नेत्रोंसे अश्रुधाराका प्रवाह चलने लगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ऐसी दशामें सीताजी लक्ष्मणजीसे कहने लगी कि हे लक्ष्मण ! मुझे तुम्हारी बुद्धि टेढ़ी दिखती है. हे दुष्ट ! तेरी इच्छा ऐसी मालूम होतीहै कि भ्रातापर कोई दुःख आन पड़े मुझे मालूम होताहै कि रामचन्द्रजीके नाशकी इच्छा करनेवाले भरतने ही तुझे हमारे साथ भेजा है ॥ ३२ ॥ रामचंद्रजीका प्राणान्त होनेपर तू मुझे ले जायगा इस निमित्तही तू यहाँ आया है, परन्तु भलीप्रकार जान ले कि तुझे मेरी प्राप्ति नहीं होयगी, देख मैं अभी प्राणोंको त्याग देतीहूँ ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचंद्रजी तुझे स्त्रीको हरकर लेजानेवाला और ऐसा बनावटी नहीं जानतेथे मैं तुझसे सत्य कहती हूँ कि रामचंद्रजीके सिवाय दूसरेका तेरा क्या और भरतका क्या कदापि स्पर्श नहीं करूंगी ॥ ३४ ॥ सीताजी इसप्रकार कहकर अपने हाथोंसे अपनी छातीको पीटने लगी और रुदन करना प्रारंभ करदिया सीताजीका वह भाषण लक्ष्मणजीने श्रवण करना नहीं चाहा इसकारण उन्होंने कानोंपर हाथ रखलिये और अत्यन्त दुःखित होकर सीताजीसे कहने लगे कि हे चण्डी ! तू अत्यन्तही खोटे स्वभाववाली स्त्री है जो मुझसे ऐसा कहती है इसकारण तुझे धिक्कार है तूं यहांसे नष्ट होजायगी इसप्रकार लक्ष्मणजीने कहकर सीता वन देवताओंको सोंप दी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और अपने आप अत्यन्त दुःखित हो धीरे धीरे

न जानातीदृशं रामस्त्वां भार्याहरणोद्यतम् ॥ रामादन्यं न स्पृशामि त्वां वा भरतमेव वा ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा वध्यमाना सा स्वबाहुभ्यां रुरोद ह ॥ तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः कर्णौ पिधायातीव दुःखितः ॥ ३५ ॥ मामेवं भाषसे चण्डि धिक् त्वां नाशमुपैष्यसि ॥ इत्युक्त्वा वनदेवीभ्यः समर्प्य जनकात्मजाम् ॥ ३६ ॥ ययौ दुःखातिसंविग्नो राममेव शनैः शनैः ॥ ततोऽन्तरं समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक् ॥ ३७ ॥ सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दण्डकमण्डलुः ॥ सीता तमवलोक्याशु नत्वा संपूज्य भक्तितः ॥३८॥ कन्दमूलफलादीनि दत्त्वा स्वागतमब्रवीत् ॥ मुने भुङ्क्ष्व फलादीनि विश्रमस्व यथासुखम् ॥ ३९ ॥ इदानीमेव भर्ता मे ह्यागमिष्यति ते प्रियम् ॥ करिष्यति विशेषेण तिष्ठ त्वं यदि रोचते ॥ ४० ॥ भिक्षुरुवाच ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि को वा भर्ता तवानघे ॥ किमर्थमत्र ते वासो वने राक्षससेविते ॥ ब्रूहि भद्रे ततः सर्वं स्ववृत्तान्तं निवेदय ॥ ४१ ॥

श्रीरामचंद्रकीही ओरको चलदिये सो रावणकोभी उस समय मौका मिला सो वह संन्यासीका स्वरूप धारण करके सीताके पास आया उस समय रावणके हाथमें दण्ड कमण्डलु शोभायमान होरहेथे उस रावणको देखतेके साथही सीताजीने नमस्कार करके भक्तिपूर्वक पूजा करी ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ और कन्द मूल आदि समर्पण करके कहने लगी कि हे मुने ! आप आये यह बड़ी सुन्दर वार्ता हुई, यह फल मूल खाकर सुखसे विश्राम करो ॥ ३९ ॥ मेरे पति अब शीघ्रही आवेंगे और आपका इससेभी अधिक सत्कार करेंगे यदि आपकी इच्छा होय तो यहाँ विश्राम करो ॥ ४० ॥ संन्यासी बोला कि हे सुन्दरि! तेरा स्वरूप इतना मनोहर मालूम होता है कि जिसका वर्णन नहीं होसक्ता तेरे नेत्र कमलपत्रोंके समान हैं सो तू कौन है ? और तेरा पति कौन है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और तू इस राक्षसोंसे भरेहुए वनमें किसकारण रहती है ? सो मुझसे कहो तो मैं भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करूँ ॥४१॥ हे स्वामिन्! अयोध्या नगरीमें दशरथ नामवाले महाशूर वीर और श्रीमान् राजा थे, उनकेही यह रामचन्द्र सर्वगुणसम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र हैं ॥ ४२ ॥ मैं उनकी धर्म-पत्नी जनक राजाकी कन्या सीता हूँ उनके लक्ष्मण नामक छोटे भ्राता हैं वह अपने भ्रातापर बड़ी प्रीति करते हैं ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञाको मानकर १४ वर्षपर्यन्त वनमें निवास करनेलिये आये हैं. हे महाराज ! आप अपना वृत्तान्त कहिये उसको श्रवण करनेकी मेरी इच्छा है ॥ ४४ ॥ वह संन्यासी कहने लगा कि हे जानकी ! मैं पौलस्त्यका पुत्र राक्षसोंका राजा रावण हूँ, तेरे प्राप्त होनेकी इच्छासे व्याकुल होकर मैं तुझे

॥ सीतोवाच ॥ ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान् ॥ तस्य ज्येष्ठः सुतो रामः सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ४२ ॥ तस्याहं धर्मतः पत्नी सीता जनकनन्दिनी ॥ तस्य भ्राता कनीयांश्च लक्ष्मणो भातृवत्सलः ॥ ४३ ॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डके वस्तुमागतः ॥ चतुर्दश समास्त्वां तु ज्ञातुमिच्छामि मे वद ॥ ४४ ॥ भिक्षुरुवाच ॥ पौलस्त्यतनयोऽहं तु रावणो राक्षसाधिपः ॥ त्वत्कामपरितप्तोऽहं त्वां नेतुं पुरमागतः ॥ ४५॥ मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मां भज ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्धं त्यज दुःखं वनोद्भवम् ॥ ४६ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं सीता भीता किंचिदुवाच तम् ॥ यदेवं भाषसे मां त्वं नाशमेष्यसि राघवात् ॥ ४७ ॥ आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः ॥ मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा ॥ ४८ ॥ रामबाणैर्विभिन्नस्त्वं पतिष्यसि महीतले ॥ इति सीतावचः श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४९ ॥

अपनी राजधानीमें लेजानेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ ४५ ॥ रामचन्द्र वैराग्यका वेष धारण किये हुए रहते हैं उनके साथ रहकर तुझे क्या लाभ होगा मेरे यहाँ चलकर निवास कर और मेरे साथ भोगोंको भोग और इन वनवासके दुःखोंको त्याग दे ॥ ४६ ॥ यह भाषण सुनतेही सीता भयभीत होगई और उससे कहने लगी कि हे दुष्ट ! जो तू ऐसा अयोग्य भाषण करता है इसकारण तेरा रामचन्द्रजीके हाथोंसे नाश होजायगा ॥ ४७ ॥ क्षणभर ठहर रामचन्द्रजी अपने छोटे भ्रातासहित आतेही होंगे अरे मुझे भय दिखानेमें तेरी क्या सामर्थ्य है ? तू ऐसा साहस करता है जैसे कोई खरगोस सिंहकी स्त्रीको ललकारे अरे तेरा यह साहस योग्य नहीं है ॥ ४८ ॥ रामचन्द्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर तू

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमिपर पड़ाहुआ दीखैगा. इसप्रकार सीताजीके भाषणको सुनकर रावण क्रोधमें भरगया ॥ ४९ ॥ और उसने अपना भयंकर पर्वतसमान रूप धारण किया उस शरीरके दश मुख वीस भुजा और कृष्ण वर्ण मेघमंडलके समान कान्ति थी ॥ ५० ॥ उस स्वरूपको देखकर वनदेवता और बनके सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगए फिर रावणने 'सीताके चरण जबतक पृथ्वीसे लग रहे हैं तबतक उडाकर लेजानेमें मेरी सामर्थ्य नहीं है (क्योंकि सीता पृथ्वीकी पुत्री है)' ऐसा विचार करके अपने नखोंसे सीताके चरणोंके नीचेकी जमीन खोदी और भुजाओंसे ऊपर उठाकर रथमें बैठाला और तत्काल आकाश मार्गसे चलदिया, वह जनककुमारी सीता हा राम! हा लक्ष्मण! ऐसे कहकर रुदन करने लगी ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वह दीन स्त्री भयसे इतनी व्याकुल होगई कि इधर उधरको नहीं देखसकी किन्तु उसकी दृष्टि नीचे भूमिकी ओरही लगी रही सीताके उस दीन रुदनको सुन

स्वरूपं दर्शयामास महापर्वतसन्निभम् ॥ दशास्यं विंशतिभुजं कालमेघसमद्युति ॥ ५० ॥ तद्दृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वितत्रसुः ॥ ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः ॥ ५१ ॥ तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा ॥ हा राम हा लक्ष्मणेति रुदंती जनकात्मजा ॥ ५२ ॥ भयोद्विग्नमना दीना पश्यन्ती भुवमेव सा ॥ श्रुत्वा तत्क्रन्दितं दीनं सीताया पक्षिसत्तमः ॥ ५३ ॥ जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाग्रात्तीक्ष्णतुण्डकः ॥ तिष्ठ तिष्ठेति तं प्राह को गच्छति ममाग्रतः ॥ ५४ ॥ मुषित्वा लोकनाथस्य भार्यां शून्याद्धनालयात् ॥ शुनको मन्त्रपूतं त्वं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥ ५५॥ इत्युक्त्वा तीक्ष्णतुण्डेन चूर्णयामास तद्रथम् ॥ वाहान्निबिभेद पादाभ्यां चूर्णयामास तद्धनुः ॥ ५६ ॥ ततः सीतां परित्यज्य रावणः खड्गमाददे ॥ चिच्छेद पक्षौ सामर्षः पक्षिराजस्य धीमतः ॥ ५७ ॥

कर पक्षिराज जटायु शीघ्रही पर्वतके शिखरपरसे उतरा उसकी चोंच अत्यन्त तीक्ष्ण थी वह रावणसे कहने लगा कि अरे जिसप्रकार यज्ञमें मंत्रोंसे पवित्र किये हुए पुरोडाशको कोई देखे नहीं और कुत्ता लेजाय तिसीप्रकार इस वनमें आश्रममें कोई नहीं है ऐसा देखकर तू त्रिलोकीके स्वामीकी स्त्रीको चुराकर लेजाता है, परन्तु जबतक मैं बैठाहूँ तब तक सीताको लेजानेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ॥ ५५ ॥ इसप्रकार कहकर जटायुने अपनी तीक्ष्ण चोंचसे उसके रथका चूरा चूरा कर दिया, घोड़ोंको घायल करके टुकड़े टुकड़े करदिये, और परोंसे धनुषका चूरा करदिया ॥ ५६ ॥ तब रावणने क्रोधमें भरकर सीताको छोड़ दिया, और खड्ग लेकर तिस बुद्धिवान् पक्षिराजके पंख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काटडाले ॥ ५७ ॥ उससमय वह पक्षिराज जटायु मृतकसा होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, परन्तु कुछ थोडा थोडा प्राण चलता रहा इधर रावणने मायासे फिर दूसरा रथ बनालिया उसमें सीताको बैठाला और शीघ्रही अपनी राजधानीको चलागया ॥ ५८ ॥ सीताको अपनी रक्षा करनेवाला कोई न मिला तब हा राम! हा आनन्ददायक! हा त्रिलोकीपते रामचन्द्र! मैं संकटमें पडी हूँ आज आप मेरे ऊपर दृष्टि क्यों नहीं देते ॥ ५९ ॥ हे रघुपते! यह राक्षस आपकी धर्मपत्नीको लिये जाता है इससे छुडाओ. हे लक्ष्मण! तुम श्रेष्ठ गुणोंके समुद्र हो, मैने तुम्हारा अपराध किया है, परन्तु उस अपराधकी ओर ध्यान मतकरो और इससमय आकर मेरी रक्षा करो ॥ ६० ॥ हे लक्ष्मण! मैंने तुम्हैं कहनेके अयोग्य अपशब्द कहे, उन अपशब्दरूपी बाणोंसे तुम्हारे हृदयमें घाव होरहेहोंगे, परन्तु अब मेरे ऊपर क्षमा करो. इसप्रकार सीता बहुत विलाप करनेलगी, परन्तु रावणने

पपात किंचिच्छेषेण प्राणेन भुवि पक्षिराट् ॥ पुनरन्यरथेनाशु सीतामादाय रावणः ॥५८॥ क्रोशन्ती रामरामेति त्रातारं नाधिगच्छति ॥ हा राम हा जगन्नाथ मां न पश्यसि दुःखिताम् ॥ ५९ ॥ रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव ॥ हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम् ॥ ६० ॥ वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर ॥ इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशंकया ॥ ६१ ॥ जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः ॥ विहायसा नीयमाना सीतापश्यदधोमुखी ॥ ६२ ॥ पर्वताग्रे स्थितान्पञ्च वानरान्वारिजाननाः ॥ उत्तरीयार्धखण्डेन विमुच्याभरणादिकम् ॥६३॥ बद्ध्वा चिक्षेप रामाय कथयन्त्विति पर्वते ॥ ततः समुद्रमुल्लङ्घ्य लंकां गत्वा स रावणः॥६४॥स्वान्तःपुरे रहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत् ॥ राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्याऽनुपालयत् ॥ ६५ ॥

उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, और रामचन्द्रजीके आनेके भयसे सीताको लेकर शीघ्रही वायुके समान वेगसे चलने लगा ॥६१॥ रावण आकाश मार्गसे सीताको लेकर चला तब वह नीचेको मुख करे बैठी हुई थी इतनेहीमें पर्वतके शिखरपर बैठे हुए पांच वानर तिस कमलसदृश मुखवाली सीताने देखे उससमय सीताने तत्काल शरीरपरसे आभूषण उतारे और दुपट्टेका आधाटुकड़ा फाड़कर उसमें बांधे तथा उन वानरोंके द्वारा रामचन्द्रजीको सम्पूर्ण वृत्तान्त मालूम होजाय इस अभिप्रायसे पर्वतपर फेंकदिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ फिर वह रावण समुद्रको उल्लंघन करके लंकामें गया और सीताको अपने रणवासमें एकान्तस्थलमें लगीहुई अशोकवाटिकामें स्थिर करदिया, उसके चारोंओर रक्षा करनेके निमित्त राक्षसीं नियत करदीं, और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माताके समान पालन करनेलगा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ सीताजीकी विपत्तिकी अवस्था कहाँतक वर्णन करैं, बहुत दिन व्यतीत होनेपर बराबर दुबली होनेलगीं अत्यन्त दीनसी होगई, किसी दिनभी उबटना स्नान आदि नहीं किया, और दुःखके कारण मुख शुष्क होगया, अत्यन्त व्याकुल होकर सीताजी हा राम! हा राम! इसप्रकार विलाप करती हुई राक्षसियोंके समूहमें रहने लगी ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वति! इधर श्रीरामचन्द्रजी उस मायावी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले मारीच राक्षसका वध करके लौटकर आश्रमको आनेके निमित्त चलदिये सो दूरसेही उन्होंने देखा कि लक्ष्मण आरहे हैं; उस समय

कृशाऽतिदीना परिकर्मवर्जिता दुःखेन शुष्यद्वदनाऽतिविह्वला ॥ हा राम रामेति विलप्यमाना सीता स्थिता राक्षसवृन्दमध्ये ॥ ६६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ रामो मायाविनं हत्वा राक्षसं कामरूपिणम् ॥ प्रतस्थे स्वाश्रमं गन्तुं ततो दूराद्ददर्श तम् ॥ १ ॥ आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥ राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामतिः ॥ २ ॥ लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम् ॥ ज्ञात्वाप्येनं वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा ॥ ३ ॥ यद्यहं विरतो भूत्वा तूष्णीं स्थास्यामि मन्दिरे ॥ तदा राक्षसकोटीनां वधोपायः कथं भवेत् ॥ ४ ॥ यदि शोचामि तां दुःखसन्तप्तः कामुको यथा ॥ तदा क्रमेणानुचिन्वन्सीतां यास्येऽसुरालयम् ॥ रावणं सकुलं हत्वा सीतामग्नौ स्थितां पुनः ॥ ५ ॥

लक्ष्मणजी दीन हो रहेथे और मुख बिलकुल सूख रहाथा श्रीरामचन्द्रजी परम बुद्धिवान् और सर्वज्ञ थे, इसकारण उन्होंने जो कुछ वार्ता हुई थी सब जानगए, परन्तु इससमय उन्होंने अपने मनमेंही यह विचारा कि मैंने जो मायाकी सीता उत्पन्न करी है, यह वार्ता लक्ष्मणको मालूम नहीं है, यद्यपि मुझे सम्पूर्ण वृत्तान्त मालूम है तथापि अज्ञानीके समान शोक करना चाहिये, क्योंकि यदि मैं उदासीन होकर कुटीमें चुप्प बैठा रहूँगा तो करोडों राक्षसोंके वधका उपाय किसप्रकार हागा? ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ यदि मैं साधारण कामी पुरुषके समान दुःखसे व्याकुल होकर सीताके निमित्त शोक करूँगा तबहीं क्रमक्रमसे सीताको ढूंढ़ते २ राक्षसोंकी राजधानीमें जानेका अवसर मिलेगा तब मैं कुटुम्बसहित रावणका वध करूँगा ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीताको तो मैंने इससमय अग्निमें गुप्त करही दिया, और रावणका वध करनेके अनन्तर मैं सीताको लेकर अयोध्याको जाऊँगा, ब्रह्माकी प्रार्थनासे मैने मनुष्यरूप धारण किया है ॥ ६ ॥ मैं इस मनुष्यरूपसे कुछ कालपर्यन्त पृथ्वीपर रहूँगा तदनन्तर जो पुरुष मायाकरके धारण कियेहुए इस मेरे मनुष्य अवतारको श्रवण करैंगे उनको अनायासही मुक्तिकी प्राप्ति होयगी, परन्तु उनको मेरी भक्तिके मार्गपर चलना चाहिये; श्रीरामचन्द्रजीने अपने मनमें इसप्रकार निश्चय किया कि इतनेहीमें क्या देखतेहैं कि लक्ष्मणजी पास आगए, तब तो लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम मेरी प्रिया सीताको छोडकर यहाँ क्यों चले आये, जानकीको राक्षसोंने छीन लिया अथवा भक्षण करालिया ॥ ९ ॥ उस समय लक्ष्मणजीने रुदनकरके

मयैव स्थापितां नीत्वा याताऽयोध्यामतन्द्रितः ॥ अहं मनुष्यभावेन जातोऽस्मि ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ ६ ॥ मनुष्यभावमापन्नः किञ्चित्कालं वसामि कौ ॥ ततो मायामनुष्यस्य चरितं मेऽनुशृण्वताम् ॥ ७ ॥ मुक्तिः स्यादप्रयासेन भक्तिमार्गानुवर्तिनाम् ॥ निश्चित्यैवं तदा दृष्ट्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥ किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्त्वा मम प्रियाम् ॥ नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्जनकात्मजा ॥ ९ ॥ लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राह सीताया दुर्वचो रुदन् ॥ हा लक्ष्मणेति वचनं राक्षसोक्तं श्रुतं तया ॥ १० ॥ त्वद्वाक्यसदृशं श्रुत्वा मां गच्छेति त्वराब्रवीत् ॥ रुदती सा मया प्रोक्ता देवी राक्षसभाषितम् ॥ नेदं रामस्य वचनं स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ११ ॥ इत्येवं सान्त्विता साध्वी मया प्रोवाच मां पुनः ॥ यदुक्तं दुर्वचो राम न वाच्यं पुरतस्तव ॥ १२ ॥ कर्णौ पिधाय निर्गत्य यातोऽहं त्वां समीक्षितुम् ॥ रामस्तु लक्ष्मणं प्राह तथाऽप्यनुचितं कृतम् ॥ १३ ॥

सीताके कहेहुए दुर्वचन सुनाए और हाथ जोडकर रामचन्द्रजीसे कहने लगे कि हे रघुवीर ! जब सीताने राक्षसका पुकारा हुआ 'हा लक्ष्मण !' यह शब्द सुना ॥ १० ॥ तब तुम्हारे भाषणके समान उस वाक्यको सुनतेही घबडा गई और रोतीं रोतीं मुझसे कहने लगीं कि शीघ्रही तहाँ जाओ मैंने सीताजीसे कहा कि हे देवो ! यह शब्द राक्षसका है रामचन्द्रका नहीं है तुम निश्चिंत रहो ॥ ११ ॥ इसप्रकार मैंने उन पतिव्रताको समझाया उससे उनका चित्त तो व्याकुलतारहित नहीं हुआ और उलटे जो अपशब्द मुझे कहे वह मैं आपके सामने उच्चारण नहीं करसक्ता ॥ १२ ॥ मैं कानोंपर हाथ रखके वहाँसे निकलकर तुम्हारे दर्शन करनेके निमित्त यहाँ आयाहूँ, यह सुनकर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा कि हे लक्ष्मण ! तथापि तुमने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुचितही किया ॥ १३ ॥ अरे स्त्रीके कहेको सत्य मानकर तू उस सुंदरमुखीको छोड़कर चला आया यह क्या किया निःसंदेह राक्षस उसको ले गए होंगे अथवा भक्षण करगए होंगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार चिंतासे व्याकुल होकर शीघ्रही अपने आश्रममें आए तहाँ जानकीको जब किसी स्थानमें भी नहीं पाया, तब तो दुःखसे अत्यंत व्याकुल होकर विलाप करने लगे ॥ १५ ॥ हा प्रिये! तू कहाँ चली गई? पूर्ववत् आज मुझे आश्रममें नहीं दीखती है, क्या मेरा हास्य करनेके निमित्त अथवा मुझे मोहित करनेके निमित्त लीलासे कहीं छिप रही है ॥ १६ ॥ इसप्रकार कहकर उन्होंने वनमें सर्वत्र ढूँढ़ा, परन्तु जानकी कहीं भी नहीं मिली तब तो वनकी स्थावर जङ्गम वस्तुओंसे बूझने लगे कि हे वनदेवताओं! मेरी प्रिया सीता कहाँ है सो बतादो ॥ १७ ॥ हे पशुपक्षियो! हे वृक्षो! मेरी प्रिया सीता मुझे दिखादो

त्वया स्त्रीभाषितं सत्यं कृत्वा त्यक्त्वा शुभाननाम् ॥ नीता वा भक्षिता वाऽपि राक्षसैर्नात्रसंशयः ॥ १४ ॥ इति चिन्तापरो रामः स्वाश्रमं त्वरितो ययौ ॥ तत्रादृष्ट्वा जनकजां विललापातिदुःखितः ॥ १५ ॥ हा प्रिये क्व गताऽसि त्वं नासि पूर्ववदाश्रमे ॥ अथवा मद्विमोहार्थं लीलया क्व विलीयसे ॥ १६ ॥ इत्याचिन्वन्वनं सर्वं नापश्यज्जानकीं तदा ॥ वनदेव्यः कुतः सीतां ब्रुवन्तु मम वल्लभाम् ॥ १७ ॥ मृगाश्च पक्षिणो वृक्षा दर्शयन्तु मम प्रियाम् ॥ इत्येवं विलपन्नेव रामः सीतां न कुत्रचित् ॥ १८ ॥ सर्वज्ञः सर्वथा क्वापि नापश्यद्रघुनन्दनः ॥ आनन्दोऽन्यन्वशोचत्तामचलोऽप्यनुधावति ॥ १९ ॥ निर्ममो निरहङ्कारोऽप्यखण्डानन्दरूपवान् ॥ मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ॥ २० ॥ एवं मायामनुचरन्नसक्तोऽपि रघूत्तमः ॥ आसक्त इव मूढानां भाति तत्त्वविदां नहि ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे परन्तु सीता कहींभी देखनेमें नहीं आई. महादेवजी बोले कि हे पार्वति! वास्तवदृष्टिसे देखो तो श्रीरामचन्द्रजी सर्वज्ञ हैं परन्तु उन्होंने अज्ञानियोंकासा वर्ताव किया वह परमानन्दरूप होकर भी सीताके निमित्त शोक करने लगे वास्तवमें वह कोईभी क्रिया नहीं करते हैं परन्तु इससमय चारों ओर दौड़ते फिरते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह सत्यस्वरूप और अहंकार ममता रहित तथा नित्य आनन्दमय हैं, परन्तु इससमय मेरी सीता मेरी स्त्री इसप्रकार कहकर और अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे ॥ २० ॥ हे पार्वति! श्रीरामचन्द्रजी किसीभी विषयमें आसक्ति नहीं करते हैं परन्तु इससमय माया करके सांसारिक व्यवहार करने लगे यह वार्ता सत्य है; अज्ञानी पुरुषोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो आसक्त हुएसे दीखते हैं, परन्तु जो तत्वज्ञानी हैं उनको सदा श्रीरामचन्द्रजी सत्यस्वरूपही प्रतीत होते हैं ॥ २१ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको साथ लेकर सम्पूर्ण वनमें ढूँढ़ते ढूँढते एक टूटा हुआ रथ, फटा हुआ छत्र, टुकडे टुकथे हुआ धनुष और पृथ्वीपर पड़ा हुआ ऐसा देखा, तब तो लक्ष्मणजीसे कहने लगे कि हे लक्ष्मण ! यह देखो कोई राक्षस जानकीको लेजाताथा, परन्तु उसको जीतकर किसी दूसरेने जानकी छीन ली है, ऐसा मालूम होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ फिर कुछ थोड़ी दूर आगे चले तो तहाँ श्रीरामचन्द्रजीने पर्वतके समान एक रुधिरसे भीजा हुआ शरीर पडा देखा तब तो फिर कहने लगे ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! निःसन्देह यह दुष्ट जीवही तिस रूपवती जानकीको भक्षण करके अत्यंत तृप्त हो, अब

एवं विचिन्वन्सकलं वनं रामः सलक्ष्मणः ॥ भग्नं रथं छत्रचापं कूबरं पतितं भुवि ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा लक्ष्मणमाहेदं पश्य लक्ष्मण केनचित् ॥ नीयमानां जनकजां तं जित्वाऽन्यो जहार ताम् ॥ २३ ॥ ततः कञ्चिद्भुवो भागं गत्वा पर्वतसन्निभम् ॥ रुधिराक्तवपुर्दृष्ट्वा रामो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ २४ ॥ एष वै भक्षयित्वा तां जानकीं शुभदर्शनाम् ॥ शेते विविक्तेऽतितृप्तः पश्य हन्मि निशाचरम् ॥ २५ ॥ चापमानय शीघ्रं मे बाणं च रघुनन्दन ॥ तच्छ्रुत्वा रामवचनं जटायुः प्राह भीतवत् ॥ २६ ॥ मां न मारय भद्रं ते म्रियमाणं स्वकर्मणा ॥ अहं जटायुस्ते भार्याहारिणं समनुद्रुतः ॥ २७ ॥ रावणं तत्र युद्धं मे बभूवारिविमर्दन ॥ तस्य वाहान् रथं चापं छित्त्वाहं तेन घातितः ॥ २८ ॥ पतितोऽस्मि जगन्नाथ प्राणांस्त्यक्ष्यामि पश्य माम् ॥ तच्छ्रुत्वा राघवो दीनं कण्ठप्राणं ददर्श ह ॥ २९ ॥

यहाँ एकान्तमें आकर शयन कर रहा है, देखो मैं अब इस राक्षसको मार डालताहूँ ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण ! शीघ्रही मेरा धनुष और बाण लाकर दे, श्रीरामचन्द्रजीके इस बचनको सुनतेही जटायु भयभीतसा होगया, और श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ २६ ॥ कि हे भगवन् ! मैं अपने कर्मोंसेही मररहाहूँ, मुझे मतमारो, तुम्हारा कल्याण हो, हे तात ! मैं जटायु हूँ, राक्षस नहीं हूँ, मैं तुम्हारी स्त्रीको चुराकर लेजानेवाले रावणके सन्मुख गयाथा. हे शत्रुनाशक ! तब मेरा और उनका युद्ध हुआ, मैंने उसके घोडे मारडाले और रथ तोडडाला और धनुषके टुकड़े टुकड़े कर डाले, तब उसने मेरे ऊपर खडग्का प्रहार किया तिससे घायल होकर मैं यहाँ पडा हूँ. हे त्रैलोक्यनाथ ! अब मैं प्राणोंको त्यागूंगा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरीओर कृपादृष्टिसे देखो. श्रीरामचन्द्रजीने यह भाषण सुनके दीन और कंठमें आयेहैं प्राण जिसके ऐसे तिस जटायुकी ओर देखा ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ उससमय दुःखके कारण श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें आंसू भर आये, और उन्होंने जटायुको अपने हाथोंसे स्पर्श करके कहने लगे ॥ ३० ॥ कि हे तात जटायो ! मेरी सुन्दरमुखी स्त्रीको कोन लेगया सो बता ? मेरा कार्य करनेके निमित्त तुम्हारा प्राणान्त हुआ, इस कारण तुम मेरे प्रिय बान्धव हो ॥ ३१ ॥ जटायु अत्यन्त खिन्न स्वरसे कहनेलगा उसके मुखसे इससमयपर्यन्त रुधिर वह रहाथा, उस दशाहीमें बोला कि हे रामचन्द्र ! रावणनामवाला एक बड़ा प्रतापी है ॥ ३२ ॥ वही जनकराजकुमारी सीताको लेकर दक्षिणदिशाकी ओर गया है, इससे

हस्ताभ्यां संस्पृशन् रामो दुःखाश्रुवृतलोचनः ॥ ३० ॥ जटायो ब्रूहि मे भार्यां केन नीता शुभानना ॥ मत्कार्यार्थं हतोऽसि त्वमतो मे प्रियबान्धवः ॥ ३१ ॥ जटायुः खिन्नया वाचा वक्त्राद्रक्तं समुद्धमन् ॥ उवाच रावणो राम राक्षसो भीमविक्रमः ॥ ३२ ॥ आदाय मैथिलीं सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ ॥ इतो वक्तुं न मे शक्तिः प्राणांस्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः ॥ ३३ ॥ दिष्ट्या दृष्टोऽसि राम त्वं म्रियमाणेन मेऽनघ ॥ परमात्माऽसि विष्णुस्त्वं मायामनुजरूपधृक् ॥ ३४ ॥ अन्तकालेऽपि दृष्ट्वा त्वां मुक्तोहं रघुसत्तम ॥ हस्ताभ्यां स्पृश मां राम पुनर्यास्यामि ते पदम् ॥ ३५ ॥ तथेति रामः पस्पर्श तदङ्गं पाणिना स्मयन् ॥ ततः प्राणान्परित्यज्य जटायुः पतितो भुवि ॥ ३६ ॥ रामस्तमनुशोचित्वा बन्धुवत्साश्रुलोचनः ॥ लक्ष्मणेन समानाय्य काष्ठानि प्रददाह तम् ॥ ३७ ॥

आगेकी बात बोलनेकी मुझे शक्ति नहीं अब मैं तुम्हारे सामनेही प्राणोंको त्यागताहूँ ॥३३॥ हे पवित्र आत्मा श्रीरामचन्द्रजी ! मरणकालमें मुझे आपका दर्शन हुआ यह बड़े भाग्यकी वार्ता है, तुम साक्षात् परमेश्वर विष्णु भगवान् हो, मायासे मनुष्यरूप धारण कर रहेहो ॥ ३४ ॥ हे रघुवीर ! अन्तकालमें तुम्हारा दर्शन होनेसे मैं मुक्त होगया, तुम अपने हाथोंसे मुझे फिरभी एकवार स्पर्श करो तो मैं तुम्हारे लोकको प्राप्त होऊंगा ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने बहुत अच्छा कहकर उसके शरीरपर हाथ फेरा, उसका शुद्ध भाव देखकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और मुस्कुराने लगे, तदनन्तर जटायु प्राणोंको त्यागकर भूमिपर गिरपड़ा ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजीने साक्षात् बंधुके समान तिस जटायुका शोक किया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेत्रोंमें दुःखके कारण आंसू भर आये और लक्ष्मणजीसे काष्ठ मँगाकर तिस जटायुका अपने हाथोंसे दाह किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसहित अत्यंत दुःखित हुए और स्नान करके वनमें जाकर एक मृग मारा और उसके मांसके टुकडे तहाँ आसपास हरी घासपर अनेक स्थानमें फैलाकर रक्खे और सम्पूर्ण पक्षी इन टुकडोंको भक्षण करैं तिससे पक्षिराज जटायु तृप्त हो, ऐसा संकल्प किया तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि हे जटायो! मेरे पदको प्राप्त हो और अबहीं सब लोकके देखते २ मेरी स्वरूपतारूप मुक्तिको प्राप्त होजाओ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इतनेहीमें अति शीघ्र तिस पुण्यात्मा जटायुको दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति हुई, और सूर्यके समान तेजस्वी उत्तम विमानमें चढ़कर शंख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट आदि आभू-

स्नात्वा दुःखेन रामोऽपि लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ हत्वा वने मृगं तत्र मांसखण्डान्समन्ततः ॥३८॥ शाद्वले प्राक्षिपद्रामः पृथक् पृथगनेकधा ॥ भक्षन्तु पक्षिणः सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट् ॥३९॥ इत्युक्त्वा राघवः प्राह जटायो गच्छ मत्पदम् ॥ मत्सारूप्यं भजस्वाद्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४०॥ ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधरः शुभः ॥ विमानवरमारुह्य भास्वरं भानुसन्निभम् ॥ ४१ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणैः ॥ द्योतयन्स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोऽमलः ॥४२॥ चतुर्भिः पार्षदैर्विष्णोस्तादृशैरभिपूजितः ॥ स्तूयमानो योगिगणै रामामाभाष्य सत्वरः ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥४३॥ ॥ जटायुरुवाच ॥ ॥ अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम् ॥ उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥ ४४ ॥

षणोंसे और अपने प्रकाशसे आकाशको प्रकाशित करने लगा, उससमय जटायुने पीताम्बर धारण किया हुआ था उसकेही समान रूप धारण करने वाले विष्णु भगवानके चार पार्षद चारोंओर उसकी पूजा कर रहे थे, योगियोंके समूह स्तुति कररहे थे, उस समय जटायुने अतिशीघ्रतासे पुकारा और हाथ जोड़कर उन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जटायु बोला मैं साक्षात् परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको निरन्तर प्रणाम करताहूँ, जिन अनन्त शक्ति प्रभुके असंख्य गुण हैं, उनके देश कालकी मर्यादा नहीं है, वह पुराणपुरुष हैं, सम्पूर्ण जगत्का पालन और प्रलय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उत्पत्तिकारण वही हैं, शान्तिही उनके उत्तम स्वरूपकी शोभा है ॥ ४४ ॥ इनका स्वरूप अनन्तसुखरूप है, लक्ष्मी अपने प्रेमके कटाक्ष उनके ऊपर सदा डालती रहती है, उन्होंने ही इंद्रादि और ब्रह्मादिकोंके दुःख दूर कियेहैं वही सर्वश्रेष्ठ प्रभु भक्तोंको वर देनेमें उत्कण्ठित रहते हैं, और हाथोंमें धनुष बाण धारण करते हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको मैं निरंतर प्रणाम करताहूँ ॥४५॥ जिनका स्वरूप त्रिलोकीमें अत्यन्त सुन्दर है जो एकही स्तुति करनेके योग्य हैं जिनकी कान्ति सैंकडों सूर्यके समान है, भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेका जिनका स्वभाव है, जो प्रीतिके प्रथम स्थान अन्तःकरणमें निवास करते हैं, मैं उनही श्रीरघुनन्दनको शरणागत हूँ ॥ ४६ ॥ जिनका नाम संसाररूपी वनके भस्म करनेके निमित्त दावानलरूप है, महादेव आदि देवता भी जिनका पूजन करते हैं, जिन परम दयालु ईश्वरने सहस्रों अथवा करोडों दैत्योंका नाश करनेकेलिये अवतार धारण किया है,

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम् ॥ नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वरचापबाणहस्तम् ॥ ४५ ॥ त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं रविशतभासुरमीहितप्रदानम् ॥ शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४६॥ भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवसुखदैवतदैवतं दयालुम् ॥ दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥४७॥ अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ॥ भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥४८॥ गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ॥ सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥४९॥ परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ॥ परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥ ५० ॥

जिनके अंगकी कान्ति यमुना नदीके समान श्यामवर्ण है, दुःखोंको दूर करनेवाले तिन परमेश्वरको मैं शरणागत हूँ ॥ ४७ ॥ जो प्रभु निरंतर संसारकी चिन्तामें फँसे हुए पुरुषोंको प्राप्त नहीं होते हैं, संसारको त्यागकर विरक्त हुए मुनियोंको जिनका दर्शन नित्य मिलता है, जिनके चरण इस संसाररूपी समुद्रको पार होनेके निमित्त सुन्दर नौकारूप है, उनही रघुकुमार श्रीरामचंद्रको शरणागत हूँ ॥ ४८ ॥ जो परमात्मा शिवजी और पार्वतीके हृदयमें निवास करते हैं, जिन्होंने कृष्णावतार धारण करके गोवर्द्धनपर्वतको उठालियाथा, बडे बडे देवता और दैत्योंके अधिपति जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, जो देवताओंको इच्छित वर देते हैं, तिन रघुनाथको मैं शरणागत हूँ ॥ ४९ ॥ जो पुरुष परद्रव्य और परस्त्रीका त्याग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते हैं, दूसरोंके गुण और ऐश्वर्य देखकर जिनके मनको संतोष होता है और जिनके अन्तःकरण दूसरोंके हितकारक कार्योंमें सदा तत्पर रहते हैं, उनही पुरुषोंको जिन कमलनयन रघुनन्दनकी सेवा सुसाध्य है, तिन परमेश्वर रामचन्द्रजीको मैं शरणागत हूँ ॥ ५० ॥ जिनका मुख किंचिन्मात्र मुस्कुरानेसे अतिसुन्दर और प्रफुल्लित दीखता है, जिनका दर्शन मुझे अति सहजमें हुआ है, जिनके अंगकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान नीलवर्ण है, जिनके नेत्रोंकी शोभा श्वेत कमलके समान सुन्दर है, जो शिवजीके पिता जो ब्रह्मा उनके भी पिता हैं, तिन श्रीरामचन्द्रजीको मैं शरणागत हूँ ॥ ५१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जिसप्रकार जलसे भरे हुए अनेक पात्रोंमें सूर्य प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपवाला दीखता है, तिसीप्रकार तुम सत्व, रज, तम, इन तीन गुणोंको अंगीकार करते हो, तब इस जगतमें ब्रह्मा विष्णु और शिव इन भेदोंसे अनेक प्रकारके प्रतीत होते हो, इन्द्रादिक देवता तुम्हा-

स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम् ॥ सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ॥५१॥ हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः ॥ रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ॥ ५२ ॥ रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ॥ यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥५३॥ इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः ॥ उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ॥ ५४ ॥ शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत् ॥ स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥ ५५ ॥ इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ॥ रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

रीही स्तुति करतेहैं तिन आपकी मैं स्तुति करताहूँ ॥ ५२ ॥ जिन श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्ति सैंकड़ो और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर है, शतपथ ब्राह्मणमें कहे हुए प्रकार अनुसार जिनकी अनायासही प्राप्ति होजाती है, बड़े योगियोंके अन्तःकरणमें जो नित्य प्रकाशित होते हैं, भक्तोंके दुःखोंको दूर करनेवाले तिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको मैं शरणागत हूँ॥५३॥जटायुके इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होगए और कहने लगे की तेरा कल्याण हो अब तू मेरे श्रेष्ठ विष्णुपदको प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य तेरे कहेहुए इस स्तोत्रको नियमसे श्रवण करेंगे अथवा लिखेंगे उनको मरणसमयमें मेरा स्मरण होयगा और अन्तमें मेरी सरूपता रूप मुक्ति मिलेगी ॥ ५५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके यह वाक्य सुनकर उस समय जटायुका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तःकरण आनन्दसे भरगया, श्रीरामचन्द्रजीके समान रूपको प्राप्त हुआ, वह जटायु ब्रह्माजीके भी पूजनीय विष्णुलोकको चलागया ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वती ! तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको साथ लेकर दूसरे वनमें गए, और दुःखित होकर फिर तहाँ सीताजीको ढूँढ़ने लगे ॥ १ ॥ तहाँ उन दोनोंने एक विलक्षण आकृतिका राक्षस देखा उसके वक्षस्थलमें बड़ा भारी मुख था, नेत्र आदि कुछ नहीं थे, उस राक्षसके हाथ चारकोशपर्यंत लम्बे थे, अनेक प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले उस दैत्यका नाम कबंध था ॥ २ ॥ ३ ॥ राम लक्ष्मण उसकी भुजाओंकी बीचकी भूमिमें फिर रहेथे, चारों

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ ततो रामो लक्ष्मणेन जगाम विपिनान्तरम् ॥ पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परः ॥ १ ॥ तत्राद्भुतसमाकारो राक्षसः प्रत्यदृश्यत ॥ वक्षस्येव महावक्त्रश्चक्षुरादिविवर्जितः ॥ २॥ बाहू योजनमात्रेण व्यापृतौ तस्य रक्षसः ॥ कबन्धो नाम दैत्येन्द्रः सर्वसत्वविहिंसकः ॥ ३ ॥ तद्बाह्वोर्मध्यदेशे तौ चरन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ददर्शतुर्महासत्वं तद्बाहुपरिवेष्टितौ ॥ ४ ॥ रामः प्रोवाच विहसन्पश्य लक्ष्मण राक्षसम् ॥ शिरःपादविहीनोऽयं यस्य वक्षसि चाननम् ॥ ५ ॥ बाहुभ्यां लभ्यते यद्यत्तत्तद्भक्षन् स्थितो ध्रुवम् ॥ आवामप्येतयोर्बाह्वोर्मध्ये संकलितौ ध्रुवम् ॥ ६ ॥ गन्तुमन्यत्र मार्गो न दृश्यते रघुनन्दन ॥ किं कर्तव्यमितोऽस्माभिरिदानीं भक्षयेत्स नौ ॥ ७ ॥ लक्ष्मणस्तमुवाचेदं किं विचारेण राघव ॥ आवामेकैकमन्यश्रौ छिन्द्यां रक्षोभुजौ ध्रुवम् ॥ ८ ॥

ओर भुजाओंका घेरा पड़गया, तब एकाएकी उनकी दृष्टि उस भयंकर राक्षसपर पड़ी ॥ ४ ॥ तब रामचन्द्रजी हँसते हँसते लक्ष्मणजीसे कहने लगे कि हे लक्ष्मण ! देखो यह राक्षस है, इसके नेत्र और चरण नहीं है, छातीपर मुख हैं ॥ ५ ॥ हाथोंके बीचमें जो कुछ भी आजाता है निःसन्देह उसकोही भक्षण करके निर्वाह करता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि हम दोनोंभी इसकी भुजाओंके बीचमें आगये हैं ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! बाहर निकल जानेका कोई मार्ग नहीं दीखता, अब यहाँ हमको क्या करना चाहिये यह तो हम दोनोंको खाजायगा ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! अब विचार करनेसे क्या होयगा ? हम दोनोजने सावधान होकर उस राक्षसकी एक एक भुजा काट डाले ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीने इस बातको स्वीकार करके खड्गसे राक्षसका दाह हाथ काट डाला और लक्ष्मणजीने भी सहजमेंही उसका बाँया हाथ काट डाला ॥ ९ ॥ तब उस दैत्यको बड़ा आश्चर्य हुआ और इन दोनोंसे बूझने लगा कि तुम दोनों कौन हो ? मुझे मालूम होता है कि तुम कोई श्रेष्ठ देवता हो नहीं तो मेरे हाथोंके काटनेकी इस लोकमें क्या स्वर्ग लोकके देवताओंमेंभी किसीको शक्ति नहीं है ॥ १० ॥ तदनन्तर कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी कुछ हँसते हुए उससे कहने लगे कि हे राक्षस ! महाराज दशरथ नामक एक ऐश्वर्यवान् और परम बलवान् अयोध्याके राजा थे ॥ ११ ॥ मैं उनकाही पुत्र रामचन्द्र हूँ यह परम बुद्धिवान् पुरुष मेरे भ्राता लक्ष्मण हैं मेरी स्त्री त्रिलोकीमें सर्वोपरी सुन्दर जनककुमारी सीता है

तथेति रामः खड्गेन भुजं दक्षिणमच्छिनत् ॥ तथैव लक्ष्मणो वामं चिच्छेद भुजमञ्जसा ॥९॥ ततोऽतिविस्मितो दैत्यः कौ युवा सुरपुङ्गवौ ॥ मद्बाहुच्छेदकौ लोके दिवि देवेषु वा कुतः ॥ १० ॥ ततोऽब्रवीद्धसन्नेव रामो राजीवलोचनः ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथो महान् ॥ ११ ॥ रामोऽहं तस्य पुत्रोऽसौ भ्राता मे लक्ष्मणः सुधीः ॥ मम भार्या जनकजा सीता त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ १२ ॥ आवां मृगयया यातौ तदा केनापि रक्षसा ॥ नीतां सीतां विचिन्वन्तौ चागतौ घोरकानने ॥ १३ ॥ बाहुभ्यां वेष्टितावत्र तव प्राणरिरक्षया ॥ छिन्नौ तव भुजौ त्वं च को वा विकटरूपधृक् ॥ १४ ॥ कबन्ध उवाच ॥ धन्योऽहं यदि रामस्त्वमागतोऽसि ममान्तिकम् ॥ पुरा गन्धर्वराजोऽहं रूपयौवनदर्पितः ॥ १५ ॥ विचरँल्लोकमखिलं वरनारीमनोहरः ॥ तपसा ब्रह्मणो लब्धमवध्यत्वं रघूत्तम ॥१६॥ अष्टावक्रं मुनिं दृष्ट्वा कदाचिदहसं पुरा ॥ क्रुद्धोऽसावाह दुष्ट त्वं राक्षसो भव दुर्मते ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ मैं मृगया (सिकार) के निमित्त गयाथा इतनेहीमें सीताको कोई राक्षस लेगया, उसको ढूंढता हुआ मैं इस घोर वनमें आयाहूं ॥ १३ ॥ परन्तु यहाँ तेरी भुजाओंके लपेटमें फँसगया इसकारण प्राणोंकी रक्षा करनेके निमित्त हमने तेरे हाथ काटडाले अब तू हमें यह बता कि ऐसे भयंकर रूपको धारण किया हुआ तू कौन है ॥ १४ ॥ कबन्ध बोला कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप मेरे पास आये इसकारण मैं धन्य हूँ. मैं पहिले गंधर्वोंका राजा था, उत्तम रूप और युवावस्थाको प्राप्त होनेसे गर्वमें होकर मैं सम्पूर्ण जगतमें फिरा, मुझे देखतेही सुन्दर सुन्दर स्त्रियोंका मन मोहित होजाताथा, हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने तप करके ब्रह्माजीसे अमर होनेका वर लिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर एकसमय अष्टावक्र मुनि मिले तब मुझे आठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगहसे उनके टेढे शरीरको देखकर हँसी आगई तिससे मुनिने क्रोधमें होकर मुझे शाप दिया कि हे दुष्ट! हे दुर्बुद्धे! तू राक्षस होजा ॥ १७ ॥ तपके प्रभावसे अष्टावक्र मुनिकी कान्ति चारों ओर फैल रहीथी मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रार्थना करी, तब उन्होंने दयायुक्त होकर मेरे शापका अंत कहदिया ॥ १८ ॥ कि त्रेतायुगमें साक्षात् नारायण दशरथके पुत्ररूपसे अवतार लेंगे और चार कोशपर्यंत फैले हुए तेरे हाथोंको काटेंगे ॥ १९ ॥ तब तू शापसे मुक्त होकर अपने पहिले रूपको प्राप्त होयगा, इसप्रकार उनके शाप देतेही मुझे अपना शरीर राक्षसकैसा दीखने लगा॥२०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी फिर मैं एकसमय इन्द्रके सामने दौड़ा, तब इन्द्रने भी मेरे मस्तकपर वज्रका प्रहार किया ॥ २१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! उससमय तत्काल मेरा शिर नीचे

अष्टावक्रः पुनः प्राह वन्दितो मे दयापरः ॥ शापस्यान्तं च मे प्राह तपसा द्योतितप्रभः ॥ १८ ॥ त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणः स्वयम् ॥ आगमिष्यति ते बाहू छिद्येते योजनायतौ ॥१९॥ तेन शापाद्विनिर्मुक्तो भविष्यसि यथा पुरा ॥ इति शप्तोऽहमद्राक्षं राक्षसीं तनुमात्मनः ॥ २० ॥ कदाचिद्देवराजानमभ्यद्रवमहं रुषा ॥ सोऽपि वज्रेण मां राम शिरोदेशेऽभ्यताडयत् ॥२१॥ तदा शिरो गतं कुक्षिं पादौ च रघुनन्दन ॥ ब्रह्मदत्तवरान्मृत्युर्नाभून्मे वज्रताडनात् ॥ २२ ॥ मुखाभावे कथं जीवेदयमित्यमराधिपम् ॥ ऊचुः सर्वे दयाविष्टा मां विलोक्यास्यवर्जितम् ॥ २३ ॥ ततो मां प्राह मघवा जठरे ते मुखं भवेत् ॥ बाहू ते योजनायामौ भविष्यत इतो व्रज ॥ २४ ॥ इत्युक्तोऽत्र वसन्नित्यं बाहुभ्यां वनगोचरान् ॥ भक्षयाम्यधुना बाहू खण्डितौ मे त्वयाऽनघ ॥ २५ ॥ इतःपरं मां श्वभ्रास्ये निक्षिपाग्नीन्धनावृते ॥ अग्निना दह्यमानोऽहं त्वया रघुकुलोत्तम ॥ २६ ॥

कोखमें घुसगया और चरण बिलकुल नष्ट होगये, परन्तु ब्रह्माजीके वरदानसे वज्रका प्रहार लगनेसे मेरा मरण नहीं हुआ ॥२२॥ मेरे शरीरमें मुख न देख कर सबको दया आई और वह इंद्रसे बोले कि यह मुखके विना प्राणोंको किसप्रकार धारण कर सकैगा?॥२३॥तब ईंद्रने मुझसे कहा कि तेरे पेटमेंसे मुख निकलेगा, और चार कोश लम्बे हाथ होंगे अब यहांसे जा ॥ २४ ॥ इंद्रके इसप्रकार कहतेही मैं यहां आकर रहनेलगा, अब जो कुछ बनमें मेरे हाथोंमें आजाता है, उसको ही भक्षण करके नित्य निर्वाह करताहूँ, परन्तु हे पुण्यपुरुष! इससमय तुमने मेरे वह हाथ काट डाले॥२५॥अब आपसे मेरी इतनीही प्रार्थना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैकि तुम मुझे किसी अग्नि और काष्ठोंसे भरेहुए गड्ढेमें डाल दो. हे रघुकुलोत्तम ! तुम अग्निसे मेरा दाह कर देंगे तो मुझे अपने पहले रूपकी प्राप्ति हो जायगी और फिर मैं तुम्हे तुम्हारी स्त्रीके मिलनेका मार्ग बतादूँगा. उसने इसप्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने तत्काल लक्ष्मणजीसे एक गढ़ा खुदवाया, और उसमें उस राक्षसको रखकर काष्ठोंसे दाह किया, तब शीघ्रही उस राक्षसके शरीरमेंसे कामदेवके समान सुन्दर सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित एक पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ उसने रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग नमस्कार किया और हाथ जोडकर भक्तिके कारण गद्गद् हुई वाणीसे इसप्रकार कहने लगा ॥ २९ ॥ गन्धर्व बोला कि श्रीरामचन्द्रजी ! आज मेरा मन आपकी स्तुति करनेके निमित्त बड़ी उत्कण्ठासे उत्साह कर रहा है, तुम्हारे स्वरूपका आदि और अन्त नहीं है, तुम्हारे स्वरूपकी ईयत्ता नहीं है अर्थात् यह नियम नहीं होसक्ता कि तुम

पूर्वरूपमनुप्राप्य भार्यामार्गं वदामि ते ॥ इत्युक्ते लक्ष्मणेनाशु श्वभ्रं निर्माय तत्र तम् ॥ २७ ॥ निक्षिप्य प्रादहत्काष्ठैस्ततो देहात्समुत्थितः ॥ कन्दर्पसदृशाकारः सर्वाभरणभूषितः ॥२८॥ रामं प्रदक्षिणं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्तिगद्गदया गिरा ॥२९॥ गन्धर्व उवाच ॥ स्तोतुमुत्सहते मेऽद्य मनो रामातिसम्भ्रमात् ॥ त्वामनन्तमनाद्यन्तं मनोवाचामगोचरम् ॥ ३० ॥ सूक्ष्मं ते रूपमव्यक्तं देहद्वयविलक्षणम् ॥ दृश्यूपमितरत्सर्वं दृश्यं जडमनात्मकम् ॥ तत्कथं त्वां विजानीयाद्व्यतिरिक्तं मनः प्रभो ॥ ३१ ॥ बुद्ध्यात्माभासयोरैक्यं जीव इत्यभिधीयते ॥ बुद्ध्यादिसाक्षी ब्रह्मैव तस्मिन्निर्विषयेऽखिलम् ॥ ३२ ॥

अमुकही स्थानमें रहतेहो, किन्तु तुम सर्व व्यापी हो, मनमें तुम्हारा चिन्तन करनेकी शक्ति नहीं है और वाणी तुम्हारा वर्णन नहीं करसक्ती है ॥ ३० ॥ तुम्हारा सूक्ष्मरूप विराट् और हिरण्यगर्भनामवाले स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों शरीरोंसे पृथक् है, और ज्ञानमय होनेके कारण उसके योगी जन भी अतिकठिनसे जान सकै हैं, तुमको छोड़कर और सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ अनात्मक अर्थात् जड़ हैं, और हे प्रभो ! यह मन आपसे भिन्न जड़ है, इसकारण इस मनको आपका ज्ञान किसप्रकार होसक्ता है? ॥३१॥ बुद्धि और आत्मा इन दोनोंके प्रतिबिम्बकी एकतारूप सम्बन्धको जीव कहते हैं, बुद्धि आदि सम्पूर्ण जड़ पदार्थोंका साक्षी ब्रह्मही है, ऐसे आपके स्वरूपके विषे मन और वाणी नहीं प्रवेश करसक्ती हैं अज्ञ पुरुष आपके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूपके विषे सम्पूर्ण प्रपंचका आरोप अज्ञानसे करते हैं, वास्तवमें आपका स्वरूप निर्विकार और सबका आत्मा है. हिरण्यगर्भ तुम्हारा सूक्ष्म शरीर है और विराट् आपका स्थूल देह कहावै है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तुम्हारा सूक्ष्म रूप हृदय कमलके विषे ध्यान करनेका विषय होता है और जिसका ध्यान करनेसे ध्यान करनेवाले पुरुषका कल्याण होता है, और उस सूक्ष्म स्वरूपके ध्यानकी सिद्धि होनेपर प्राणीको भूत भविष्य और वर्तमान रूप त्रिकालमें होनेवाली संसारकी सम्पूर्ण वार्ताओंका ज्ञान होजाताहै ॥ ३४ ॥ तुम्हारे अण्डगोलरूप स्थूल देहके चारोंओर एकसे एक अधिक ऐसे महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह सात आवरण हैं, इसमें रहनेवाला विराट्जीव विश्वके धारणका आश्रय है सब प्राणियोंको अन्तमें प्राप्त होने योग्य कैवल्यरूप मुक्ति तुमही हो, चौदह लोक तुम्हारेही शरीरके अंग कहलाते हैं, पाताल लोक तुम्हारे चरणका त-

आरोप्यतेऽज्ञानवशान्निर्विकारेऽखिलात्मनि ॥ हिरण्यगर्भस्ते सूक्ष्मं देहं स्थूलं विराट् स्मृतम् ॥ ३३ ॥ भावनाविषयो राम सूक्ष्मं ते ध्यातृमङ्गलम् ॥ भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्रेदं दृश्यते जगत् ॥ ३४ ॥ स्थूलेऽण्डकोशे देहे ते महदादिभिरावृते ॥ सप्तभिरुत्तरगुणैर्विराजो धारणाश्रयः ॥ ३५ ॥ त्वमेव सर्वकैवल्यं लोकास्तेऽवयवाः स्मृताः ॥ पातालं ते पादमूलं पार्ष्णिस्तव महातलम् ॥ ३६ ॥ रसातलं ते गुल्फौ तु तलातलमितीर्यते ॥ जानुनी सुतलं राम ऊरू ते वितलं तथा ॥ ३७ ॥ अतलं च मही राम जघनं नाभिगं नभः ॥ उरःस्थलं ते ज्योतींषि ग्रीवा ते मह उच्यते ॥ ३८ ॥ वदनं जनलोकस्ते तपस्ते शङ्खदेशगम् ॥ सत्यलोको रघुश्रेष्ठ शीर्षण्यास्ते सदा प्रभो ॥ ३९ ॥ इन्द्रादयो लोकपाला बाहवस्ते दिशः श्रुती ॥ अश्विनौ नासिके राम वक्त्रं तेऽग्निरुदाहृतः ॥ ४० ॥

लुआ है, महातल लोक पार्ष्णि अर्थात् चरणके ऊपरका भाग है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ रसातल लोक तुम्हारे गुल्फ हैं, तलातल लोक तुम्हारी पिण्डली कहलाती है, हे श्रीरामचन्द्र ! सुतल लोक तुम्हारे घुटने हैं तथा वितल लोक तुम्हारी जंघा है ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! अतल लोक तुम्हारी जंघाओंके नीचेका भाग है, पृथ्वी तुम्हारी कमर है, स्वर्गलोक तुम्हारा वक्षस्थल है, महर्लोक तुम्हारा कण्ठ है ॥ ३८ ॥ जनलोक तुम्हार मुख है और तपोलोक तुम्हारा शंखाकार ललाट है. हे प्रभो श्रीरामचन्द्रजी ! सत्यलोक सदा सर्वकाल तुम्हारे मस्तकपर रहता है ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी भुजा हैं, दिशा तुम्हारे कान हैं, अश्विनीकुमार तुम्हारी नासिका है, अग्नि तुम्हारा मुख है, इसप्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शास्त्रोंमें वर्णन कियाहै ॥४०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! सूर्य तुम्हारे नेत्र हैं, चंद्रमा तुम्हारा मन कहाता है, कालही तुम्हारी चढ़ी हुई विकराल भ्रुकुटि है, बृहस्पति तुम्हारी बुद्धि है ॥४१॥ रुद्र तुम्हारा अहंकाररूप है, हे निर्विकारस्वरूप! तुम्हारा भाषण वेद है, यमराज तुम्हारी दाढा हैं, तारागण तुम्हारे दांतोंकी पंक्ति है ॥ ४२ ॥ जगतको मोहित करनेवाली माया तुम्हारा हास्य है, सृष्टि तुम्हारा कटाक्ष है, धर्म तुम्हारा अग्रभाग है और अधर्म तुम्हारा पृष्ठभाग कहाता है ॥४३॥ हे रघुवीर! रात्रिदिन तुम्हारा निमेषोन्मेष (नेत्रोंका खुलना मिचना) है, सातों समुद्र तुम्हारा उदर (पेट) है, हे प्रभो! नदियें तुम्हारी नाडी हैं॥४४॥ हे ईश्वर! वृक्ष और वनस्पति तुम्हारे रोमांच हैं, वर्षा तुम्हारा वीर्य है, और ज्ञानशक्ति तुम्हारी महिमा है, तुम्हारे स्थूल (विराट्) शरीरका

चक्षुस्ते सविता राम मनश्चन्द्र उदाहृतः ॥ भ्रूभङ्ग एव कालस्ते बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥ रुद्रोऽहङ्काररूपस्ते वाचश्छन्दांसि तेऽव्यय ॥ यमस्ते दंष्ट्रदेशस्थो नक्षत्राणि द्विजालयः ॥ ४२ ॥ हासो मोहकरी माया सृष्टिस्तेऽपाङ्गमोक्षणम् ॥ धर्मः पुरस्तेऽधर्मश्च पृष्ठभाग उदीरितः ॥ ४३ ॥ निमिषोन्मेषणे रात्रिर्दिवा चैव रघूत्तम ॥ समुद्राः सप्त ते कुक्षिर्नाड्यो नद्यस्तव प्रभो ॥ ४४ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयो रेतो वृष्टिस्तव प्रभो ॥ महिमा ज्ञानशक्तिस्ते एवं स्थूलं वपुस्तव ॥ ४५ ॥ यदस्मिन् स्थूलरूपे ते मनः संधार्यते नरैः ॥ अनायासेन मुक्तिः स्यादतोऽन्यन्नहि किञ्चन ॥ ४६ ॥ अतोऽहं राम रूपं ते स्थूलमेवानुभावये ॥ यस्मिन्ध्याते प्रेमरसः सरोमपुलको भवेत् ॥४७॥ तदैव मुक्तिः स्याद्राम यदा ते स्थूलभावकः ॥ तदप्यास्तां तवैवाहमेतद्रूपं विचिन्तये ॥ ४८ ॥

वर्णन इसप्रकार है ॥ ४५ ॥ जो पुरुष इस तुम्हारे स्थूल शरीरके विषे मनको लगाते हैं, उन्हें अनायाससेही मोक्षकी प्राप्ति होती है इसके सिवाय दूसरा मोक्षकी प्राप्तिका कोईभी सहज और श्रेष्ठ उपाय नहीं है ॥४६॥ इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुम्हारे स्थूल शरीरकाही ध्यान करताहूँ, जिसका ध्यान करनेसे मनुष्योंके अन्तःकरणमें प्रेमरस टपकने लगता है, सच्चे प्रेमरसका लक्षण यह है कि इष्ट देवका स्मरण होतेही मनुष्योंके शरीरपै रोमांच खड़े हो जाते हैं, यही दशा आपके विराटस्वरूपके ध्यान करनेवालेकी होती है ॥ ४७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम्हारे स्थूल शरीरका ध्यान करतेही जीवकी मुक्ति होजाती है, स्थूल रूपका ध्यान रहो परन्तु हे रघुवीर! मैं इस समय साक्षात् सामने खड़े हुए तुम्हारे इस स्वरूपका ध्यान करताहूँ ॥ ४८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कलभूषितम् ॥ अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम् ॥ ४९ ॥ इदमेव सदा मे स्यान्मानसे रघुनन्दन ॥ सर्वज्ञः शङ्करः साक्षात्पार्वत्या सहितः सदा ॥ ५० ॥ त्वद्रूपमेवं सततं ध्यायन्नास्ते रघूत्तम ॥ मुमूर्षूणां तदा काश्यां तारकं ब्रह्मवाचकम् ॥ ५१ ॥ रामरामेत्युपदिशन्सदा सन्तुष्टमानसः ॥ अतस्त्वं जानकीनाथ परमात्मा सुनिश्चितः ॥ ५२ ॥ सर्वे ते मायया मूढास्त्वां न जानन्ति तत्त्वतः ॥ नमस्ते रामभद्राय वेधसे परमात्मने ॥५३॥ अयोध्याधिपते तुभ्यं नमः सौमित्रिसेवित ॥ त्राहि त्राहि जगन्नाथ मां माया नावृणोतु ते ॥ ५४ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ तुष्टोऽहं देवगन्धर्व भक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ ॥ याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम् ॥ ५५ ॥ जपन्ति ये नित्यमनन्यबुद्ध्या भक्त्या त्वदुक्तं स्तवमागमोक्तम् ॥ तेऽज्ञानसम्भूतभवं विहाय मां यान्ति नित्यानुभवानुमेयम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जो हाथोंमें धनुषबाण धारण किये हुए हैं, जिनके अंगकी कान्ति श्यामवर्ण है, और जो जटा और वल्कलसे शोभायमान हो रहे हैं, और जिनकी युवावस्थाकी मूर्ति लक्ष्मणजीको साथ लेकर सीताजीको ढूँढ रही है ॥४९॥ हे रघुनन्दन! यहही मूर्ति सदा मेरे अन्तःकरणमें निवास करे, शंकर भगवान सर्वज्ञ हैं-परन्तु पार्वतीसहित सदा तुम्हारे इस स्वरूपकाही ध्यान करते हैं. हे रघुवीर ! तुम्हारा नाम जीवोंको अज्ञानसमुद्रसे तारनेवाला है ओर "तत्त्वमसि" आदि महावाक्योंकरके प्रतिपादन किये हुए ब्रह्मरूप अर्थका वर्णन करनेवाला है, शिवजी महाराज सदा अपने मनमें प्रसन्न होकर काशीपुरीमें प्राणत्याग करनेवाले जीवोंको तुम्हारे "रामराम" इस नामके मंत्रका उपदेश करते हैं, इसकारण हे जानकीनाथ ! तुम निःसन्देह परमेश्वर हो ॥५०॥५१॥ ५२ ॥ यह सम्पूर्ण प्राणी तुम्हारी मायासे मोहित होरहेहैं इसकारण तुम्हारे यथार्थ स्वरूपका ज्ञान नहीं होता है, हे श्रीरामचंद्र! हे मंगलदायक ! हे सृष्टिकर्त्ता ! हे परमेश्वर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है॥५३॥हे अयोध्यापते ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, लक्ष्मणजी तुम्हारी सदा सेवा करते हैं, ऐसे रूपको धारण करनेवाले हे जगन्नाथ! मेरी रक्षा करो, मुझे संसारसे तारो, तुम्हारी माया मुझे मोहित न करै ॥ ५४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे गन्धर्व! तू पुण्यवान् है, तेरी भक्ति और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ अब तू मेरे परमपदरूपी सनातन स्वर्गलोकको प्राप्त हो, योगी पुरुष अपनी योगशक्तिसे इस देहसहित उस लोकमें जानेको समर्थ होते हैं ॥ ५५ ॥ तूने जो मेरी इससमय स्तुति करी है सो वेदके तात्पर्योंसे भरी है, जो पुरुष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनन्यभावसे भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करैंगे वह अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले संसारबन्धनको दूर करके नित्य और अनुभवसे जानने योग्य मेरे स्वरूपको प्राप्त होयँगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ श्रीशिवजी बोले हे पार्वति ! इसप्रकार वर मिलनेपर वह गन्धर्व चलते समय श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि हे रघुनन्दन ! वह जो आगे दीख रहाहै उस आश्रममें एक शबरी नामवाली भीलनी रहती है ॥१॥ वह परमभक्ति करनेवाली तुम्हारे चरणोंमें परमभक्तिसे मन लगाकर रही है, इसलिये हे महाभाग्यवान पुरुष ! उसके पास जाओ वह तुमसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहैगी ॥ २ ॥ ऐसे कहकर वह गन्धर्व सूर्यके समान तेजस्वी विमानमें बैठकर विष्णुके पद (स्वर्गलोक) को चला

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ लब्ध्वा वरं स गन्धर्वः प्रयास्यन् राममब्रवीत् ॥ शबर्यास्ते पुरोभागे आश्रमे रघुनन्दन ॥ १ ॥ भक्त्या त्वत्पादकमले भक्तिमार्गविशारदा ॥ तां प्रयाहि महाभाग सर्वं ते कथयिष्यति ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ सोऽपि विमानेनार्कवर्चसा ॥ विष्णोः पदं रामनामस्मरणे फलमीदृशम् ॥ ३ ॥ त्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम् ॥ शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः ॥ ४ ॥ शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा ॥ ५ ॥ पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना ॥ स्वागते नाभिनन्द्याथ स्वासने संन्यवेशयत् ॥ ६ ॥ रामलक्ष्मणयोः सम्यक्पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ॥ तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्घ्यादिभिरादृता ॥ ७ ॥ सम्पूज्य विधिवद्रामं ससौमित्रिं सपर्यया ॥ सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरी मुदा ॥ ८ ॥

गया. शिवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! देखो रामनामके स्मरणका ऐसा फल होता है ॥ ३ ॥ कबन्धके वनमें सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जीवोंको बड़ा उपद्रव था, श्रीरामचन्द्रजी उस भयानक वनको छोड़कर हौले हौले चलकर शबरीके आश्रममें पहुँचे ॥ ४ ॥ लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीको दूरसेही आते हुए देखा, सो शीघ्रही आनन्दसे ऊठकर सन्मुख आई ॥ ५ ॥ और चरणोंमें पडकर उठ खडी हुई, उससमय उसके नेत्रोंमें आनन्दके आंसु भरआए, फिर स्वागत पूँछकर दोनोंका सत्कार किया और उत्तम आसनपर बैठाया ॥ ६ ॥ फिर भक्तिपूर्वक उत्तम प्रकारसे श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणके चरणोंका जल अपने शरीरपर छिड़का, तदनन्तर बड़े आनन्दसे अर्घ्यादि सामग्रीसहित पूजनके द्रव्योंसे लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीका विधिपूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूजन किया और श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ इकट्ठे करके धरे हुए अमृततुल्य फल भक्तिपूर्वक अर्पण किये और चन्दनादि विलेपनसहित सुगन्धित पुष्पोंसे फिर उनके चरणोंका पूजन किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ अतिथिसत्कार होनेके अनन्तर लघुभ्रातासहित श्रीरामचन्द्रजी स्वस्थ होकर बैठे तब परमभक्तिवाली शबरीने हाथ जोड़कर उनसे वार्ता करनेका प्रारम्भ किया और कहने लगी कि हे रघुवीर ! इस आश्रममें मेरे गुरु महर्षि रहतेथे और मैंभी अनेक सहस्रों वर्षोंसे उनकी सेवा करती हुई पास रहतीथी, अब वह ब्रह्मपदको चलेगए, जातेसमय वह मुझसे कहनेलगे, कि तू सावधान होकर यहांही निवास कर ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ साक्षात् सनातन परम ब्रह्म परमात्मा राक्षसोंका वध और ऋषियोंकी रक्षा,

फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः ॥ पादौ सम्पूज्य कुसुमैः सुगन्धैः सानुलेपनैः ॥ ९ ॥ कृतातिथ्यं रघुश्रेष्ठमुपविष्टं सहानुजम् ॥ शबरी भक्तिसम्पन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो मे महर्षयः ॥ स्थिताः शुश्रूषणं तेषां कुर्वती समुपस्थिता ॥ ११ ॥ बहुवर्षसहस्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम् ॥ गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां त्वं वसात्रैव समाहिता ॥ १२ ॥ रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः ॥ राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च ॥ १३ ॥ आगमिष्यति चैकाग्रध्यानानिष्ठा स्थिरा भव ॥ इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः ॥ १४ ॥ यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम् ॥ दृष्ट्वैव राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम् ॥ १५ ॥ तथैवाकरवं राम त्वद्ध्यानैकपरायणा ॥ प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम् ॥ १६ ॥ तव सन्दर्शनं राम गुरूणामपि मे नहि ॥ योषिन्मूढाऽप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा ॥ १७ ॥

करनेके निमित्त दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्र रूपसे प्रकट हुए हैं ॥ १३ ॥ वह यहाँ शीघ्रही आवेंगे तू और विषयोंपर चित्त न देकर एकाग्र चित्तसे केवल उनकाही ध्यान करती हुई सावधान रहो, इससमय प्रभु चित्रकूटपर्वतपर आश्रममें रहते हैं ॥ १४ ॥ उनके आनेपर्यन्त तू अपने शरीरकी रक्षा कर, श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन होनेके अनन्तर अपने शरीरको भस्म करके तू उनके पदको प्राप्त होयगी ॥ १५ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! मैं उनकी आज्ञाके अनुसार वर्ताव करके केवल तुम्हारा ध्यान करनेमेंही तत्पर रही, आजपर्यन्त मैंने तुम्हारी वाट देखी आज गुरुके वचन सफल हुए ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम्हारा दर्शन मेरे गुरुकोभी देखो नहीं हुआ और मैं मूढ और हीन जातिमें उत्पन्न होनेवाली स्त्री हूँ तथापि मुझे दर्शन हुआ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह मेरा अहोभाग्य है, वास्तवमें तुह्मारा रूप अप्रमेय है ॥ १७ ॥ तुम्हारे दासका दास ऐसी परम्परा सैंकडोंपर्यन्त चली जाय तो उस दासकीभी सेवा करनेका मुझे अधिकार नहीं है, फिर प्रत्यक्ष तुम्हारी सेवा करनेकी योग्यता तो कहाँसेही होसक्ती है ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तुम्हारे स्वरूपको मन जान नहिं सक्ता है और वाणी वर्णन नहीं करसक्ती है, न जाने मुझे आज आपका दर्शन किस पुण्यके प्रतापसे हुआ. हे देवाधिदेव ! तुम्हारी स्तुति किसप्रकार करनी चाहिये सो मेरे विचारमें नहीं आता, मैं क्या करूँ मेरे ऊपर अनुग्रह करो ॥ १९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे शबरी ! पुरुष स्त्री अथवा जाति नाम और आश्रम आदि मेरी सेवा करनेके मुख्य उपाय नहीं हैं, केवल भक्तिही मुख्य उपाय है ॥ २० ॥ पुरुष बहुतसे यज्ञ, दान, तप, वेदपाठ और अन्य कर्म करैं, परन्तु मेरी विना भक्ति किये मेरा दर्शन मिलना कठिन होता है ॥ २१ ॥ हे भामिनी ! मैं इसकारण

तवदासस्य दासानां शतसङ्ख्योत्तरस्य वा ॥ दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्त्ववैव हि ॥१८॥ कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः ॥ स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥१९॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः ॥ न कारणं यद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥२०॥ यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः ॥ नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा ॥२१॥ तस्माद्भामिनि सङ्क्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम् ॥ सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥ २२ ॥ द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम् ॥ व्याख्यातृत्वं मद्वचसा चतुर्थं साधनं भवेत् ॥२३॥ आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्याऽमायया सदा ॥ पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥२४॥ निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् ॥ मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ॥ २५ ॥

तुझसे संक्षेपसे भक्तिके उपाय कहताहूँ, साधु पुरुषोंकी सङ्गति करना भक्तिका प्रथम उपाय है ॥ २२ ॥ दूसरा मेरी कथाका बाँचना, तीसरा मेरे गुणोंका कीर्तन करना और चौथा उपाय वेदरूपी मेरे वाक्योंका व्याख्यान करना है ॥ २३ ॥ हे शुभे ! गुरुको रामरूप मानकर, निष्कपट होकर तिसकी नित्य सेवा करना पाँचवाँ उपाय है, पवित्र आचरणमें प्रीति करना, चोरीका त्याग करना, ब्रम्हचर्यका धारण करना, कुछभी संग्रह न करना, नियमोंका पालन, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाधाय, इन नियमोंको धारण करना, धारणा ध्यान और समाधि करना, तथा मेरी पूजा करनेमें निष्ठा रखना, यह छट्ठा उपाय कहाता है. मंत्रकाण्डमें कही हुई विधिके अनुसार मेरे मंत्रकी साङ्गोपाङ्ग उपासना करना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह सातवा उपाय कहाता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ मेरे भक्तोंका मुझसेभी अधिक पूजन करना, सम्पूर्ण प्राणियोंमें ईश्वरभाव रखना, बाह्य विषयोंसे विरक्त रहना और मन तथा बाहरकी इन्द्रियोंको वशमें रखना, यह आठवा उपाय है और मेरे तत्त्वस्वरूपका विचार करना नवमा उपाय है. हे शबरी ! इसप्रकार मेरी भक्ति नवप्रकारकी है, इसका उपाय जो कोई करता है फिर वह स्त्री होय अथवा पशु पक्षि होय उसकी मेरे विषे भक्ति होती है. हे सुलक्षणे ! शुद्ध प्रेमही भक्तिका लक्षण है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ भक्तिके उत्पन्न होतेही मेरे तत्त्वका साक्षात्कार होता है, और मेरे स्वरूपका साक्षात्कार होतेही तत्काल प्राणीको इस जन्ममेंही मुक्तिकी प्राप्ति होतीहै इससे यह स्पष्ट सिद्ध होताहै कि निःसन्देह मोक्षका उपाय

मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ॥२६॥ अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि ॥ एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ॥ २७ ॥ स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा ॥ भक्तिः सञ्जायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ॥२८॥ भक्तौ सञ्जातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा ॥ ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि ॥ २९ ॥ स्यात्तस्मात्कारणं भक्तिर्मोक्षस्येति सुनिश्चितम् ॥ प्रथमं साधनं यस्य भवेत्तस्य क्रमेण तु ॥३०॥ भवेत्सर्वं ततो भक्तिर्मुक्तिरेव सुनिश्चितम् ॥ यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः ॥३१॥ इतो मद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः ॥ यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना ॥३२॥ कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना ॥३३॥ शबर्युवाच ॥ देव जानासि सर्वज्ञ सर्वं त्वं विश्वभावन ॥ तथाऽपि पृच्छसे यन्मा लोकाननुसृतः प्रभो ॥३४॥ ततोऽहमभिधास्यामि सीता यत्राधुना स्थिता ॥ रावणेन हृता सीता लंकाया वर्ततेऽधुना ॥ ३५ ॥

भक्तिही है, जिसका पहिले एक उपाय सिद्ध हो जाता है उसके क्रमसे सम्पूर्ण उपाय सिद्ध हो जाते हैं, इसकारण निःसन्देह भक्तिही मुक्ति है. हे शबरी ! तू मेरी भक्ति करती है इसकारण मैं तेरे पास प्राप्त हुआ हूँ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अब मेरा दर्शन होनेके कारण तुझे निःसन्देह मुक्तिकी प्राप्ति होयगी, यदि तुझे मालूम होय तो मुझे बता कि मेरी कमलसदृश नेत्रवाली सीता कहाँ है ॥ ३२ ॥ उस सुन्दररूपवती मेरी प्रियाको कौन ले गया ? ॥ ३३ ॥ शबरी बोली-कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम सृष्टिकर्त्ता सर्वज्ञ देव हो, इसकारण सब कुछ जानते हो, तथापि मुझसे बूझते हो इसका कारण हे प्रभो ! तुम लोकोंके समान वर्त्ताव करके सबको दिखाते हो; यहही है ॥ ३४ ॥ इसकारण सीता इससमय कहाँ रहती हैं, वह स्थान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्है बताती हूँ, कि सीताजीको रावण लेगया है और इससमय वह लङ्कामें है ॥ ३५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! यहाँ समीपही एक पम्पा नामक सरोवर है, और उससे लगा हुआही ऋष्यमूक नामक बड़ा भारी पर्वत है ॥ ३६ ॥ अतुल प्रतापी वानरोंका राजा सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर चार मंत्रियोंसहित तिस पर्वतपर ही निरन्तर निवास करता है ॥ ३७ ॥ उसको अपने वालीनामवाले भ्राताका बड़ा भय है, केवल इस पर्वतपरही वह वाली नहीं आता है, क्योंकि उसको एक ऋषिका भय है, हे प्रभो ! तुम तहाँ जाकर सुग्रीवसे मित्रता करो, तब वह तुम्हारे संपूर्ण कार्य्य पूर्ण करेगा. हे रघुवीर ! अब मैं तुम्हारे सामनेही अग्निमें प्रवेश करतीहूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे राजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी ! तुम साक्षात् षड्गुण ऐश्वर्य्य-

इतः समीपे रामस्ते पम्पानाम सरोवरम् ॥ ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महानगः ॥ ३६ ॥ चतुर्भिर्मंत्रिभिः सार्धं सुग्रीवो वानराधिपः ॥ भीतभीतः सदा यत्र तिष्ठत्यतुलविक्रमः ॥ ३७ ॥ वालिनश्च भयाद्भ्रातुस्तदगम्यमृषेर्भयात् ॥ वालिनस्तत्र गच्छ त्वं तेन सख्यं कुरु प्रभो ॥३८॥ सुग्रीवेण स सर्वं ते कार्यं सम्पादयिष्यति ॥ अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि तवाग्रे रघुनन्दन ॥३९॥ मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र यावद्गत्वा कलेवरम्॥ यास्यामि भगवन् राम तव विष्णोः परं पदम् ॥४०॥ इति रामं समामन्त्र्य प्रविवेश हुताशनम् ॥ क्षणान्निर्धूय सकलमविद्याकृतबन्धनम् ॥ रामप्रसादाच्छबरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम् ॥४१॥ किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले ॥ प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा॥४२॥ किं पुनर्ब्राह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः ॥ मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिर्मुक्तिरेव न संशयः ॥ ४३ ॥

संपन्न विष्णु हो, क्षणमात्र खड़े रहो, मैं इस शरीरको भस्म करके तुम्हारे श्रेष्ठ पदको जातीहूँ ॥ ४० ॥ शबरीने इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रार्थना करके अग्निमें प्रवेश किया और क्षणमात्रमें अज्ञानके बन्धनसे छूटकर श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अति दुर्लभ मोक्षको प्राप्त होगई ॥ ४१ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पार्वति ! जगन्नाथ भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हो जायँ तो प्राणियोंको कौन पदार्थ दुर्लभ है? देखो शबरी अधमकुल (भिल्लकुल) में जन्म पाकरभी उनकी कृपासे मुक्त होगई ॥४२॥ भिल्लनीको यदि मोक्ष मिलगया तो फिर उत्तम ब्राह्मणकुलसे जन्म लेने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले सदाचरणी पुरुषोंको श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेसे मुक्तिके मिलनेमें संदेहही क्या है? ॥ ४३ ॥ हे प्रवीण पुरुषों! इसकारण मुझे तुमसे इतना कहना है कि-भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है, इसकारण तुम अज्ञानके नानाप्रकारके चरित्र जो मंत्रसाधनके आडंबर उनका दूरसेही त्याग करके उत्सुक होकर श्रीरामचन्द्रजीकी पूर्ण सेवा करो, उनके चरणकमल इच्छाको पूर्ण करनेवाले प्रत्यक्ष कामधेनुरूपही हैं, वह

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः ॥ नानाज्ञानविशेषमन्त्रवितर्तिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥ अरण्यकाण्डे भर्गेण सर्गाणां दशकं तथा ॥ पद्यानां पञ्चशतकं प्रोक्तं पञ्चदशोत्तरम् ॥

श्यामसुंदर प्रभु शिवजीकेभी हृदयमें नित्य निवास करते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे अरण्यकाण्डे मुरादाबादनिवासि भरद्वाजगोत्रोद्भव गौड़वंशावतंसपण्डितभोलानाथात्मजरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितेऽरण्यकाण्डं समाप्तम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदं पुस्तकं पण्डित "हरिप्रसाद भगीरथजी" इत्यनेन महाम्बापुर्यां
'गुजराती' मुद्रणालये मुद्रितम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–कालिकादेवी रोड़–रामवाड़ी–मुंबई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ इत्यध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितेऽरण्यकाण्डं समाप्तम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितकिष्किन्धाकांडप्रारंभः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

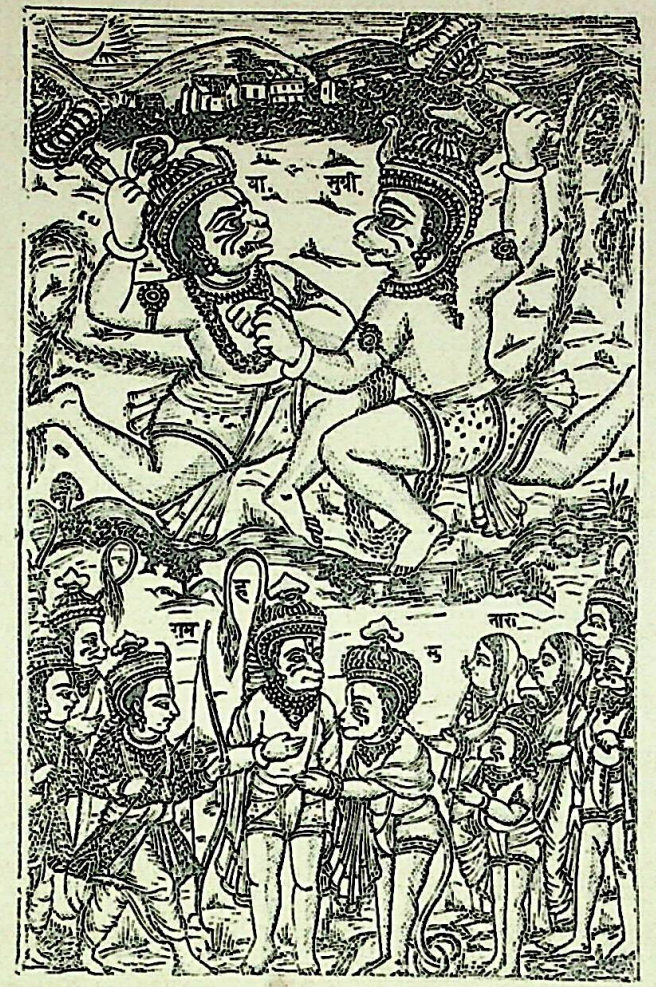

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीशिवजी बोले कि—हे पार्वति ! तदनन्तर लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी धीरे धीरे पम्पासरके तटपर पहुँचे, उस श्रेष्ठ सरोवरको देखकर बड़े आश्चर्य्यको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ उस सरोवरकी चौड़ाई एक कोशकी थी, और उसमें निर्म्मल अगाध जल था, और वह सरोवर कमल, कल्हार, और बबूले आदि अनेक पुष्पोंकरके मंडित था ॥ २ ॥ और हंस, कारण्डव तथा चक्रवाक इत्यादि पक्षियोंसे शोभायमान था, और जलकुक्कुट (जलमुर्ग) तथा कोयष्टि (कोयल) व क्रौञ्च अर्थात् कुररपक्षीके जिस सरोवरमें शब्द होरहे थे ॥ ३ ॥ और वह सरोवर अनेक प्रकारके पुष्पोंकी वेलोंसे भरा हुआ था, और वह पम्पासर तरह तरहके फूलोंसे युक्त वृक्षोंकरके चारों ओर घिरा हुआथा, और जिस प्रकार महात्माओंका निर्मल चित्त होता है,

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ ततः सलक्ष्मणो रामः शनैः पम्पासरस्तटम् ॥ आगत्य सरसां श्रेष्ठं दृष्ट्वा विस्मयमाययौ ॥ १ ॥ क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णमगाधामलशम्बरम् ॥ उत्फुल्लाम्बुजकह्लारकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ २ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकादिशोभितम् ॥ जलकुक्कुट-कोयष्टिक्रौञ्चनादोपनादितम् ॥ ३ ॥ नानापुष्पलताकीर्णं नानाफलसमावृतम् ॥ सतां मनःस्वच्छजलं पद्मकिञ्जल्कवासितम् ॥ ४ ॥ तत्रोपस्पृश्य सलिलं पीत्वा श्रमहरं विभुः ॥ सानुजः सरसस्तीरे शीतलेन पथा ययौ ॥ ५ ॥ ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ ॥ धनुर्बाणकरौ दान्तौ जटावल्कलमण्डितौ ॥ पश्यन्तौ विविधान्वृक्षान् गिरेः शोभां सुविक्रमौ ॥ ६ ॥ सुग्रीवस्तु गिरेर्मूर्ध्नि चतुर्भिः सह वानरैः ॥ स्थित्वा ददर्श तौ यान्तावारुरोह गिरेः शिरः ॥ ७ ॥ भयादाह हनूमन्तं कौ तौ वीरवरौ सखे ॥ गच्छ जानीहि भद्रं ते बटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः ॥ ८ ॥

तिसप्रकार उस पम्पासरका जल था, और कमलोंके परागसे जिस सरोवरका जल सुगन्धित था ॥ ४ ॥ श्रमको दूर करनेके अर्थ तिस सरोवरमें लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजी स्नान करनेके अनंतर जलपान करके तिस सरोवरके तटपर शीतल मार्गसे चले ॥ ५ ॥ जटा और वल्कलसे शोभित धनुर्धारी महापराक्रमी जितेन्द्रिय श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ऋष्यमूक पर्वतके समीप धीरे धीरे चलतेहुए अनेक प्रकारके वृक्षोंकी और पर्वतकी शोभाको देखने लगे ॥ ६ ॥ सुग्रीव, हनुमान आदि चार वानरोंसहित उस पर्वतपर बैठाथा, उसने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणको सामने आता हुआ देखा और भयके कारण पर्वतके शिखरपर चढा गया ॥ ७ ॥ और भयसे घबडाकर हनुमानसे कहने लगा कि—हे मित्र ! वीरोंमें उत्तम ये दोनों कौन हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह तुम ब्राह्मणका वेष धारण करके जाओ और देखो ॥ ८ ॥ क्या यह दोनो मेरे नाश करनेके अर्थ वालीके भेजे हुए तो मरे सन्मुख नहीं आ रहे हैं, सो तुम संभाषण कर इन दोनोंके चित्तकी बातको जानो ॥ ९ ॥ यदि उनके चित्तमें कुछ कपट मालूम होय तो मुझको अंगुलीसे संकेत करदेना. तुम विनयपूर्वक नम्र होकर उनके चित्तकी बात ठीक ठीक जान आओ ॥ १० ॥ हनुमान सुग्रीवके वाक्यको श्रवण कर वैसेही ब्राह्मणवेष धारणकर श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख गये और विनयपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! वीरोंमें सन्मानको प्राप्त होने योग्य तरुण अवस्थावाले ! आप दोनों कौन हैं? दो सूर्य मण्डलके समान आपके शरीरकी कान्तिसे दशों दिशा शोभायमान होरहीं हैं

वालिना प्रेषितौ किं वा मा हन्तुं समुपागतौ ॥ ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ॥ ९ ॥ यदि तौ तुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः ॥ विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम् ॥ १० ॥ तथेति बटुरूपेण हनुमान् समुपागतः ॥ विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत् ॥११॥ कौ युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसम्मतौ ॥ द्योतयन्तौ दिशः सर्वाः प्रभया भास्करविव ॥ १२ ॥ युवां त्रैलोक्यकर्तारा-विति भाति मनो मम ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ १३ ॥ मायया मानुषाकारौ चरन्ताविव लीलया ॥ भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च ॥ १४ ॥ अवतीर्णाविह परौ चरन्तौ क्षत्रियाकृती ॥ जगत्स्थितिलयौ सर्गे लीलया कर्तुमुद्यतौ ॥ १५ ॥ स्वतंत्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थाविहेश्वरौ ॥ नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥ १६ ॥ श्रीरामो लक्ष्मणं प्राह पश्यैनं बटुरूपिणम् ॥ शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ मुझे ऐसा मालूम होता है कि आप त्रिलोकीको रचनेवाले जगत्के कारण जगदोद्धार प्रधान पुरुष हो ॥ १३ ॥ माया करके पृथ्वीके भारके हरनेके लिये लीलासे भक्तोंके पालनके वास्ते मनुष्यरूपसे विचरण करते हो ॥ १४ ॥ मुझे प्रतीत होता है, कि आप परम पुरुष हो और इस लोकमें क्षत्रियका अवतार लेकर बिचरते हुए, लीलाकरकेही सम्पूर्ण जगत्का पालन और राक्षसोंका नाश करनेके अर्थ उद्यत हुए हो ॥ १५ ॥ तुम स्वतंत्र सम्पूर्ण जगत्को प्रेरणा करनेवाले, सबको अंतर्यामी और नरनारायण रूपको धारण करके इस लोकमें विचरते हो, ऐसा मुझे प्रतीत होता है ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे, कि हे लक्ष्मण ! ब्रह्मचारी ब्राह्मणको देखो, निश्चयकरके इसने अनेकवार व्याकरण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शास्त्र सुना है ॥ १७ ॥ इस ब्राह्मणने इतना भाषण किया, परन्तु कोईभी अशुद्ध नहीं निकला; तदनन्तर ज्ञानस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी हनुमानसे बोले ॥ १८ ॥ कि हे ब्राह्मण ! मैं दशरथराजाका पुत्र रामचन्द्र हूँ, और यह मेरा लघुभ्राता लक्ष्मण है, मैं पिताके वचनको पालनेकेअर्थ अपनी स्त्री सहित आयाथा और तिस दण्डकवनमें रहताथा ॥ १९ ॥ तहांपर मेरी स्त्री सीताको किसी राक्षसने हरलिया. तिस सीताको ढुढंनेकेलिये मैं यहां आयाहूँ. हे ब्राह्मण ! तुम यह तो बताओ कि तुम किसके पुत्र हो ? और तुह्मारा नाम क्या है ? ॥ २०॥ ब्राह्मण वेषधारी हनुमानजी कहने लगे; कि—परमप्रवीण सुग्रीव जो चारमंत्रियोंसहित इस पर्वतके शिखरपर बैठाहै ॥ २१ ॥ वह वालिका छोटा भ्राता है, तिस दुष्टात्मा वालिने उसे

अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम् ॥ ततः प्राह हनूमन्तं राघवो ज्ञानविग्रहः ॥ १८ ॥ अहं दाशरथी रामस्त्वयं मे लक्ष्मणोऽनुजः ॥ सीतया भार्यया सार्धं पितुर्वचनगौरवात् ॥ १९ ॥ आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽहं दण्डके द्विज ॥ तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम ॥ २० ॥ तामन्वेष्टुमिहायातौ त्वं को वा कस्य वा वद ॥ बटुरुवाच ॥ सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः ॥ चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति ॥ २१ ॥ भ्राता कनीयान् सुग्रीवो वालिनः पापचेतसः ॥ तेन निष्कासितो भार्या हृता तस्येह वालिना ॥ २२ ॥ तद्भयादृष्यमूकाख्यं गिरिमाश्रित्य संस्थितः ॥ अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते ॥ २३ ॥ हनूमान्नाम विख्यातो ह्यञ्जनीगर्भसंभवः ॥ तेन सख्यं त्वया युक्तं सुग्रीवेण रघूत्तम ॥ २४ ॥ भार्यापहारिणं हन्तुं सहायस्ते भविष्यति ॥ इदानीमेव गच्छाम आगच्छ यदि रोचते ॥ २५ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ अहमप्यागतस्तेन सख्यं कर्तुं कपीश्वर ॥ सख्युस्तस्यापि यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥

निकाल दिया है और स्त्री छीन लीहै ॥ २२ ॥ सो उस दुष्टात्मा वालीके भयसे वह इस ऋष्यमूक पर्वतपर रहताहै, हे परम प्रवीण ! मैं सुग्रीवका मंत्री पवनकुमार हूँ ॥ २३ ॥ अंजनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, और मेरा प्रसिद्ध नाम हनुमान है, हे रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी ! उस सुग्रीवके साथ आपकी मित्रता होना योग्य है (क्योंकि स्त्रीका हरण होनेसे तुम दोनोंकी इस समय एकसीही दशा है) ॥ २४ ॥ आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले का वध करनेमें वह सहायक होयगा, वहाँपर इसीसमय चलें, यदि आपकी इच्छा होय तो आइये ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले, कि-हे हनुमन् !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं भी तिस सुग्रीवके संग मित्रता करनेको आया हूँ, और मैं भी उसकी मित्रताका जो कार्य है सो निःसन्देह करूँगा ॥ २६ ॥ तदनन्तर हनुमान्‌जी अपने स्वरूपको प्रकट करके श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे, कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप दोनों मेरे कन्धोंपर चढ़ जाइये मैं पर्वतके ऊपर ले चलूँगा ॥ २७ ॥ वालिके भयसे चार मंत्रियोंसहित सुग्रीव रहता है, इसके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी उन हनुमानजीके कन्धोंपर चढ़गये ॥ २८ ॥ तब महाबलवान् हनुमान् क्षणमात्रमें उन श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको पर्वतके उपर लेगये, और वृक्षकी छायामें उन दोनोंको बैठालदिया ॥ २९ ॥ फिर हनुमान्‌जी सुग्रीवके पास जाकर हाथ जोड़ कहने लगे, कि—हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी आये

हनूमान् स्वस्वरूपेण स्थितो राममथाब्रवीत् ॥ आरोहतां मम स्कन्धौ गच्छामः पर्वतोपरि ॥ २७ ॥ यत्र तिष्ठति सुग्रीवो मन्त्रिभिर्वालिनो भयात् ॥ तथेति तस्यारुरोह स्कन्धं रामोऽथ लक्ष्मणः ॥२८॥ उत्पपात गिरेर्मूर्ध्नि क्षणादेव महाकपिः ॥ वृक्षच्छायां समाश्रित्य स्थितौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥ हनूमानपि सुग्रीवमुपगम्य कृताञ्जलिः ॥ व्येतु ते भयमायातौ राजन् श्रीरामलक्ष्मणौ ॥३०॥ शीघ्रमुत्तिष्ठ रामेण सख्यं ते योजितं मया ॥ अग्निं साक्षिणमारोप्य तेन सख्यं द्रुतं कुरु ॥ ३१ ॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवः समागम्य रघूत्तमम् ॥ वृक्षशाखां स्वयं छित्त्वा विष्टराय ददौ मुदा ॥ ३२ ॥ हनूमाल्लँक्ष्मणायादात्सुग्रीवाय च लक्ष्मणः ॥ हर्षेण महताविष्टाः सर्व एवावतस्थिरे ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वं रामवृत्तान्तमादितः ॥ वनवासाभिगमनं सीताहरणमेव च ॥३४॥ लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥ अहं करिष्ये राजेन्द्र सीतायाः परिमार्गणम् ॥ ३५ ॥

हैं आप भयभीत मत हूजिये ॥ ३० ॥ और शीघ्र उठिये. मैंने श्रीरामचन्द्रजीसे मित्रता करनेका योग ठहराया है, आप अग्निको साक्षी देकर उनसे शीघ्र मित्रता करो ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सुग्रीव अति हर्षसे उठे, और श्रीरामचन्द्रजीके समीप आकर एक वृक्षकी शाखाको स्वयं तोड़कर रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामजीको आसनके अर्थ देतेहुए ॥ ३२ ॥ और हनुमानजी लक्ष्मणजीके अर्थ देतेहुए, और लक्ष्मणजीभी सुग्रीवके अर्थ देतेहुए, सब जने स्थिर होकर अतिहर्षसे बैठे ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीका वनवास होना, सीताजीका हरण होना, यह संपूर्ण वृत्तांत आदिसे अंततक कह सुनाया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार लक्ष्मणजीके कहेहुए वचनोंको सुनकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, हे राजेन्द्र ! मैं सीताकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोध करूँगा ॥ ३५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं शत्रुओंके नाश करनेके समयमें आपकी सहायता करूँगा; और मैंने जो कुछ देखा है सो हे श्रीरामचन्द्रजी ! श्रवण करो, मैं कहताहूँ ॥ ३६ ॥ मैं एक समयमें मंत्रियोंसहित पर्वतके शिखरपर बैठाथा, उससमय कोई राक्षस उत्तम स्त्रीको लिये आकाश मार्गमें जाताथा ॥ ३७ ॥ और उसके मुखसे " राम राम " ऐसा शब्द निकलता था; उसने हम सबको पर्वतके शिखरपर बैठा हुआ देखकर शीघ्रही आभूषणोंको उतार अपने दुपट्टेमें बांधा और हमारी ओर देखकर नीचेको डालदिया, और विलाप करतीही रही, वह राक्षस उसको लेकर चलागया. हे स्वामिन् ! मैने वह आभूषण शीघ्रही गुहामें डालदिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ अब आप उन आभूषणोंको देखकर पहिचान लीजिये

साहाय्यमपि ते राम करिष्ये शत्रुघातिनः ॥ शृणु राम मया दृष्टं किञ्चित्ते कथयाम्यहम् ॥ ३६ ॥ एकदा मन्त्रिभिः सार्धं स्थितोऽहं गिरिमूर्धनि ॥ विहायसा नीयमानां केनचित्प्रमदोत्तमाम् ॥ ३७ ॥ क्रोशन्तीं रामरामेति दृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि ॥ आमुच्याभरणान्याशुस्वोत्तरीयेण भामिनी ॥ ३८ ॥ निरीक्ष्याधः परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा ॥ नीताहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो ॥३९॥ इदानीमपि पश्य त्वं जानीहि तव वा न वा ॥ इत्युक्त्वानीय रामाय दर्शयामास वानरः ॥४०॥ विमुच्य रामस्तद्दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः ॥ हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद प्राकृतो यथा ॥ ४१ ॥ आश्वास्य राघवं भ्राता लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ अचिरेणैव ते राम प्राप्यते जानकी शुभा ॥ वानरेन्द्रसहायेन हत्वा रावणमाहवे ॥ ४२ ॥ सुग्रीवोऽप्याह हे राम प्रतिज्ञां करवाणि ते ॥ समरे रावणं हत्वा तव दास्यामि जानकीम् ॥४३॥ ततो हनूमान्प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीपतः ॥ तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति ॥ ४४ ॥

कि वह आपके हैं या नहीं. इसप्रकार कहकर तिस सुग्रीवने आभूषण लाकर श्रीरामचन्द्रजीको दिखाये ॥ ४० ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन आभूषणोंको वस्त्रमेंसे खोलके देखकर बारंबार हा सीता ! इसप्रकार कहने लगे और उन आभूषणोंको अपनी छातीपर रखकर सांसारिक पुरुषके समान रुदन करने लगे ॥ ४१ ॥ उससमय भाई लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीको धीर बँधाकर कहने लगे कि हे भ्राता ! थोड़े कालमेंही सुग्रीवकी सहायतासे संग्राममें रावणका वध करके पतिव्रता जानकी आपको मिलेंगी ॥ ४२ ॥ सुग्रीवभी कहने लगा कि हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि संग्राममें रावणका वध करके आपको जानकी समर्पण करूँगा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उन दोनोंके समीपमें हनुमानजीने अग्निको प्रज्वलित किया, तब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव यह दोनों अग्निको साक्षी करके तथा निष्कपटपनेसे भुजाओंको उठाकर परस्पर आलिंगन करके मिले, फिर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके समीपमें बैठा और श्रीरामचन्द्रजीके विषे प्रेम होनेके कारण इनसे अपना वृत्तान्त कहने लगा; कि हे सखे! मेरा वृत्तान्त सुनो; जो कि वालिने मेरे साथ पहिले वर्त्ताव किया है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ एकसमय मय दैत्यका पुत्र बड़ा मदोन्मत्त मायावी नामक एक दैत्य किष्किन्धामें आकर बड़ा सिंहनाद करके वालिसे कहने लगा कि मुझसे युद्ध कर. वाली इसप्रकार उस दैत्यके कहनेको न सहसका और क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके निकल आया, और उस दैत्यको बडी जोरसे एक घूंसा मारा ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वह दैत्य उस प्रहारसे घबड़ागया और दौड

बाहू प्रसार्य चालिङ्ग्य परस्परमकल्मषौ ॥ समीपे रघुनाथस्य सुग्रीवः समुपाविशत् ॥ ४५ ॥ स्वोदन्तं कथयामास प्रणयाद्रघुनायके ॥ सखे शृणु ममोदन्तं वालिना यत्कृतं पुरा ॥ ४६ ॥ मयपुत्रोऽथ मायावी नाम्ना परमदुर्मदः ॥ किष्किन्धां समुपागत्य वालिनं समुपाह्वयत् ॥ ४७ ॥ सिंहनादेन महता वाली तु तदमर्षणः ॥ निर्ययौ क्रोधताम्राक्षो जघान दृढमुष्टिना ॥ ४८ ॥ दुद्राव तेन संविग्नो जगाम स्वगुहां प्रति ॥ अनुदुद्राव तं वाली मायाविनमहं तथा ॥ ततः प्रविष्टमालोक्य गुहां मायाविनं रुषा ॥ ४९ ॥ वाली मामाह तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम् ॥ इत्युक्त्वाविश्य स गुहां मासमेकं न निर्ययौ ॥ ५० ॥ मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु ॥ तद्दृष्ट्वा परितप्ताङ्गो मृतो वालीति दुःखितः ॥ ५१ ॥ गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः ॥ ततोऽब्रुवं मृतो वाली गुहायां रक्षसा हतः ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत ॥ राज्येऽभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः ॥ ५३ ॥ शिष्टं तदा मया राज्यं किंचित्कालमरिंदम ॥ ततः समागतो वाली मामाह परुषं रुषा ॥ ५४ ॥

अपनी गुहाकी ओरको चला, तब वाली और मैंभी उसके पीछे दोडा, परन्तु वालीने इस मायावीको गुहामें घुसा देखकर क्रोधपूर्वक मुझसे कहा कि तू बाहर खड़ा रहो और मैं गुहाके भीतर जाताहूँ; इसप्रकार कहकर वह वाली अनन्तर गुहामें घुसगया और एकमास पर्यन्त न निकला ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ एक मासके अनन्तर गुहामेंसे बहुतसा रुधिर निकला, मैंने उसको देख वालीके मरणका निश्चय करके अत्यन्त दुःख माना ॥ ५१ ॥ तदनन्तर एक पत्थरसे गुहाके मुखको ढंककर स्थानको लौट आया और तहाँ सबोंको कहा कि गुहामें वालीका राक्षसने प्राणान्त करदिया ॥ ५२ ॥ यह सुनकर सब अत्यन्त दुःखित हुए, मेरी इच्छा न होनेपरभी मंत्रियोंने मुझे राज्यतिलक करदिया ॥ ५३ ॥ हे शत्रुसूदन! मैं कुछकालपर्यन्त राज्यका पालन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता रहा, तदन्तर वालीने आकर क्रोधपूर्वक मुझसे कठोर वाक्य कहे ॥ ५४ ॥ और अनेक प्रकारसे मेरा तिरस्कार करके मुष्टिप्रहार किया, तब मैं भयके मारे नगरसे निकलकर भागआया ॥ ५५ ॥ सब लोकोंमें घूमकर इस ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करताहूँ; वह वाली ऋषिके शापसे इस पर्वतपर नहीं आसक्ता है ॥ ५६ ॥ हे प्रभो! वह मूढबुद्धि उस दिनसे मेरी स्त्रीको स्वयं भोगता है, इसकारण मैं स्त्रीहीन और स्थानभ्रष्ट होकर अत्यन्त दुःखित होरहाहूँ ॥ ५७ ॥ अब आपके चरणकमलोंका स्पर्श करनेसे कुछ दुःख दूर हो जायगा, राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजी मित्रके दुःखको सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए ॥ ५८ ॥ और कहने लगे कि हे मित्र ! मैं शीघ्रही स्त्रीका हरण करनेवाले तुम्हारे शत्रुको नष्ट करदूंगा; इसप्रकार सुग्री-

बहुधा भर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः ॥ ततो निर्गत्य नगरादधावं परया भिया ॥ ५५ ॥ लोकान् सर्वान्परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः ॥ ऋषेः शापभयात्सोऽपि नायातीमं गिरिं प्रभो ॥ ५६ ॥ तदादि मम भार्यां स स्वयं भुङ्क्ते विमूढधीः ॥ अतो दुःखेन सन्तप्तो हृतदारो हृताश्रयः ॥ ५७ ॥ वसाम्यद्य भवत्पादसंस्पर्शात्सुखितोऽस्म्यहम् ॥ मित्रदुःखेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचनः ॥५८॥ हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम् ॥ इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा ॥ ५९ ॥ सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र वाली बलवतां बली ॥ कथं हनिष्यति भवान्देवैरपि दुरासदम् ॥ ६० ॥ शृणु ते कथयिष्यामि तद्बलं बलिनांवर ॥ कदाचिद्दुन्दुभिर्नाम महाकायो महाबलः ॥६१॥ किष्किन्धामगद्राम महामहिषरूपधृक् ॥ युद्धाय वालिनं रात्रौ समाह्वयत भीषणः ॥६२॥ तच्छ्रुत्वाऽसहमानोऽसौ वाली परमकोपनः ॥ महिषं शृङ्गयोर्धृत्वा पातयामास भूतले ॥ ६३ ॥ पादेनैकेन तत्कायमाक्रम्यास्य शिरो महत् ॥ हस्ताभ्यां भ्रामयंश्छित्त्वा तोलयित्वाक्षिपद्भुवि ॥ ६४ ॥

वके सन्मुख श्रीरामचन्द्रजीने प्रतिज्ञा करी ॥ ५९ ॥ तब सुग्रीव कहने लगा कि हे राजेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ! वाली वीरोंके समूहमें अद्वितीय बलवान् है, देवताभी उसका पराजय करनेको समर्थ नहीं होते हैं, फिर आप उस वालीका वध किस प्रकार करेंगे ॥ ६० ॥ हे वीरशिरोमणि ! मैं वाली के बलवीर्य्यका थोडासा विषय आपसे कहताहूँ, श्रवण करिये. एकसमय दुन्दुभिनामक एक महाबली महाशरीरवाला भयंकर दैत्य भैंसका रूप धारण करके रात्रिके समय किष्किन्धामें आया, और हे श्रीरामचन्द्रजी ! युद्ध करनेके निमित्त वालीको बुलाने लगा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ वाली उसके घमण्डको न सहनकर अत्यन्त क्रोधमें भरगया, और उस भैंसेका रूप धारण करनेवाले दैत्यके दोनों सींगोंको पकडकर पृथ्वीपर फेंक दिया ॥६३॥ तदनन्तर एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरणसे उसके शरीरको दबाकर और दोनों हाथोंसे उसके बडे शिरको तोडकर घुमाके पृथ्वीपर पटक दिया ॥ ६४ ॥ वह शिर एक योजन दूर पर मातंग ऋषिके आश्रमके समीपमें जाकर गिरा; हे श्रीरामचन्द्रजी ! वह शिर योजनभरसे आनकर गिराया, इसकारण मुनिके आश्रममें रुधिरकी अत्यन्त वृष्टि हुई, उसको देखकर मातंग ऋषि क्रोधसे अधीर होकर वालीसे कहने लगे कि, यदि तू आजसे इस पर्वतपर आवेगा तो निःसन्देह तेरा शिर कटजायगा, इसलिये सो वाली मातंगमुनिके शापके भयसे तिस समयसे ऋष्यमूक पर्वतपर नहीं आता है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ मैंभी इस वार्ताको जानकर निर्भय इसपर्वतपर निवास करताहूँ. हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह देखो दुन्दुभिका पर्वतके तुल्य मस्तक पड़ा है ॥ ६८ ॥

पपात तच्छिरो राम मातङ्गाश्रमसन्निधौ ॥ योजनात्पतितं तस्मान्मुनेराश्रममण्डले ॥ ६५ ॥ रक्तवृष्टिः पपातोच्चैर्दृष्ट्वा तां क्रोधमूर्छितः ॥ मातङ्गो वालिनं प्राह यद्यागन्तासि मे गिरिम् ॥ ६६ ॥ इतः परं भग्नशिरा मरिष्यसि न संशयः ॥ एवं शप्तस्तदारभ्य ऋष्यमूकं न यात्यसौ ॥ ६७ ॥ एतज्ज्ञात्वाहमप्यत्र वसामि भयवर्जितः ॥ राम पश्य शिरस्तस्य दुन्दुभेः पर्वतोपमम् ॥ ६८ ॥ तत्क्षेपणे यदा शक्तः शक्तस्त्वं वालिनो वधे ॥ इत्युक्त्वा दर्शयामास शिरस्तद्गिरिसन्निभम् ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वा रामः स्मितं कृत्वा पादाङ्गुष्ठेन चाक्षिपत् ॥ दशयोजनपर्यंतं तदद्भुतमिवाभवत ॥ ७० ॥ साधुसाध्विति तं प्राह सुग्रीवो मन्त्रिभिः सह ॥ पुनरप्याह सुग्रीवो रामं भक्तपरायणम् ॥ ७१ ॥ एते तालाः महासाराः सप्त पश्य रघूत्तम ॥ एकैकं चालयित्वासौ निष्पत्रान्कुरुतेऽञ्जसा ॥ ७२ ॥ यदि त्वमेकबाणेन विद्ध्वा छिद्रं करोषि चेत् ॥ हतस्त्वया सदा वाली विश्वासो मे प्रजायते ॥ तथेति धनुरादाय सायकं तन्न संदधे ॥ ७३ ॥

आप यदि इसको दूर फेंक देनेमें समर्थ होवोगे तो निःसन्देह वालीका वध कर सकोगे; इसप्रकार कहकर सुग्रीवने वह पर्वतके समान दुन्दुभिका शिर दिखाया ॥ ६९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी दुन्दुभिका शिर देखकर कुछ मुस्कुराये और चरणके अंगूठेसे उसको दशयोजन दूर फेंक दिया यह बड़ा अद्भुत चरित्र हुआ ॥७०॥ सुग्रीव यह चरित्र देखकर मंत्रियोंके साथ 'वाह वाह' करके फिर भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ ७१ ॥ हे रघुकुलतिलक! यह देखो सामने महासार (बड़े मजबूत) सात तालके वृक्ष स्थित हैं, वाली अपनी भुजाओंके बलसे इनमेंसे हरएकको हिलाकार पत्रहीन कर सकता है; आप यदि इन सातों तालके वृक्षोंको एकबाणसे वेधकर छेद कर सकोगे तो मुझे विश्वास होजायगा कि, आप वालीका वध कर सकेंगे. श्रीराम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चंद्रजीने सुग्रीवके इस कथनको स्वीकार करके धनुषको उठाकर उसपर बाण चढालिया ॥७२॥७३॥ और अनायासमेंही तिन सातों तालके वृक्षोंको एक-बारमेंही वेध दिया. महाबली श्रीरामचन्द्रजीका छोडा हुआ बाण सातों तालके वृक्षोंको और पर्वत तथा पृथ्वीको भेदन करके फिर आकर श्रीरामचन्द्रजी के तरकसमें पहिलेके समान स्थित होगया, तब सुग्रीवको बडा आश्चर्य्य हुआ, और अत्यन्त आनन्दमें होकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ ७४ ॥७५॥ हे देव ! निःसंदेह आप जगत्के स्वामी परमात्मा हो मेरे पूर्व जन्मोंमें इकट्ठे किये हुए पुण्योंके प्रभावसे आज आपसे मेरा समागम हुआ है ॥ ७६ ॥ महात्मा पुरुष संसारबन्धनसे छूटनेके निमित्त आपका भजन करते हैं, उन्होंको मोक्षके देनेवाले आपको प्राप्त होकर मैं मोक्षकी याचना करताहूँ

बिभेद च तदा रामः सप्त तालान्महाबलः ॥ तालान्सप्त विनिर्भिद्य गिरिं भूमिं च सायकः ॥ ७४ ॥पुनरागत्य रामस्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः ॥ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मितः ॥ ७५ ॥ देव त्वं जगतां नाथः परमात्मा न संशयः ॥ मत्पूर्वकृतपुण्यौघैः सङ्गतोऽद्य मया सह ॥ ७६ ॥ त्वां भजन्ति महात्मानः संसारविनिवृत्तये ॥ त्वां प्राप्य मोक्षसचिवं प्रार्थयेऽहं कथं भवम् ॥ ७७ ॥ दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वं त्वन्मायया कृतम् ॥ अतोऽहं देवदेवेश नाकाङ्क्षेऽन्यत्प्रसीद मे ॥ ७८ ॥ आनन्दानुभवं त्वाद्य प्राप्तोऽहं भाग्यगौरवात् ॥ मृदर्थं यतमानेन निधानमिव सत्पते ॥ ७९ ॥ अनाद्यविद्यासंसिद्धं बन्धनं छिन्नमद्य नः ॥ यज्ञदानतपःकर्मपूर्तेष्टादिभिरप्यसौ ॥ ८० ॥ न जीर्यते पुनर्दार्ढ्यं भजते संसृतिः प्रभो ॥ त्वत्पाददर्शनात्सद्यो नाशमेति न संशयः ॥ ८१ ॥

सांसारिक विषयोंकी नहीं ॥ ७७ ॥ स्त्री, पुत्र, धन और राज्य, सम्पूर्ण आपकी मायाका रचा हुआ है; हे देवदेवेश ! मैं और कुछ याचना नहीं करता केवल आप मेरे ऊपर प्रसन्न होजाय इतनीही प्रार्थना है ॥ ७८ ॥ मृत्तिकाके निमित्त पृथ्वीको खोदते खोदते बहुतसे रत्नोंके समूहको प्राप्त होकर पुरुष जिसप्रकार आनन्दित होता है तिसीप्रकार आज भाग्यके उदयसे आपको प्राप्त होकर मैं अनिर्वचनीय आनन्दको प्राप्त होरहाहूँ ॥ ७९ ॥ आज मायासे उत्पन्न होनेयाला विषयोंकी वासनारूप मेरा बंधन नष्ट होगया; यज्ञ, दान, तप, जलाशयोत्सर्ग आदि करनेपरभी जो शिथिल नहीं होताहै किन्तु दृढ़ होताहै, वही भयानक संसारबन्धन आपके चरणकमलोंका स्पर्श करनेसे शीघ्रही नष्ट होजाताहै. हे प्रभो ! इसमें कुछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संदेह नहीं है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ जिस पुरुषका चंचल चित्त तुम्हारे विषे चंचलतारहित होकर क्षणमात्रभी स्थित होता है उस पुरुषका अनेक प्रकारके अनर्थोंको उत्पन्न करनेवाला अज्ञान तत्काल दूर होजाता है ॥ ८२ ॥ इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरा मन अन्यत्र न रहकर सर्वदा तुम्हारे विषे ही लगा रहै ॥ ८३ ॥ जो पुरुष मधुर स्वरसे राम राम कहकर क्षणमात्रभी भजन करता है वह ब्रह्महत्यारा अथवा मद्यपान करनेवाला होय तोभी क्षणमात्रमेंही उन सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ ८४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं शत्रुको जीतनेकी अथवा स्त्री पुत्रादिका सुख भोगनेकी इच्छा नहीं करता, किन्तु संसारबन्धनसे छुडानेवाली आपकी भक्ति सदा प्राप्त रहे; यही इच्छा है ॥ ८५ ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ ! मैं आपका अंश और आपकी मायाकरके संसारमें लिप्त होरहाहूँ इसकारण मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति देकर संसारदुःखसे छुटाइये ॥ ८६ ॥ पहिले मेरा चित्त आपकी मायासे ढकाहुआ था, इसकारण किसीको मित्र, किसीको शत्रु और किसी पुरुषको उदासीन मानकर बर्ताव करताथा; और हे श्रीरामचन्द्रजी ! इससमय आपके चरणकमलोंका दर्शन होनेसे सम्पूर्ण पदार्थ मुझे ब्रह्मरूप प्रतीत होतेहैं; अब मेरा कोई न शत्रु है, और न कोई मित्र है; पुरुष जबतक आपकी मायाके बशीभूत रहतेहैं तबतक जगत्में किसीको मित्र, किसीको शत्रु और किसीको उदासीन जानकर व्यवहार करते हैं और जबतक शत्रु मित्रादि भाव दूर नहीं होताहै तबतकही मृत्युका भय रहता है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ इसकारण जो पुरुष तिस मायाका

क्षणार्धमपि यच्चित्तं त्वयि तिष्ठत्यचञ्चलम् ॥ तस्याज्ञानमनर्थानां मूलं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ८२ ॥ तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा ॥ ८३ ॥ रामरामेति यद्वाणी मधुरं गायति क्षणम् ॥ सब्रह्महा सुरापो वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ८४ ॥ न काङ्क्षेविजयं राम न च दारसुखादिकम् ॥ भक्तिमेव सदा काङ्क्षे त्वयि बन्धविमोचनीम् ॥ ८५ ॥ त्वन्मायाकृतसंसारस्त्वदंशोऽहं रघूत्तम ॥ स्वपादभक्तिमादिश्य त्राहि मां भवसङ्कटात् ॥ ८६ ॥ पूर्वं मित्रार्युदासीनास्त्वन्मायावृतचेतसः ॥ आसन्मेऽद्य भवत्पाददर्शनादेव राघव ॥ ८७ ॥ सर्वं ब्रह्मैव मे भाति क्व मित्रं क्व च मे रिपुः ॥ यावत्त्वन्मायया बद्धस्तावद्गुणविशेषता ॥ ८८ ॥ सा यावदस्ति नानात्वं तावद्भवति नान्यथा ॥ यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतं भयम् ॥ ८९ ॥ अतोऽविद्यामुपास्ते यः सोऽन्धे तमसि मज्जति ॥ मायामूलमिदं सर्वं पुत्रदारादिबन्धनम् ॥ अतोत्सारय मायां त्वं दासीं तव रघूत्तम ॥ ९० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेवन करते हैं वह सदा संसाररूप महाअंधकारमें डूबे रहते हैं, यह सम्पूर्ण स्त्रीपुत्रादिरूप बन्धन मायाकाही रचा हुआ है; हे रघुकुलश्रेष्ठ! वह माया आपकी दासी है, इसकारण मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप इस मायारूप बंधनको दूर करो ॥ ९० ॥ मेरे चित्तकी वृत्ति आपके चरणकमलोंमें लगी रहै; और मेरी वाणी आपके नामकीर्त्तनमें तथा आपकी लीला वर्णन करनेमें लगी रहै; मेरे हाथ आपके भक्तोंकी सेवा करनेमें तत्पर रहैं; मेरा शरीर आपके अंगके स्पर्शको प्राप्त हो ॥ ९१ ॥ मेरे नेत्र आपकी मूर्ति और आपके भक्त तथा गुरुदेवके दर्शन करनेमें लगे रहैं; मेरे कर्ण निरंतर आपके जन्मकर्मोंको श्रवण करनेमें लगे रहैं; मेरे चरण निरंतर आपके मंदिरोंको जानेके कार्यमें आवे ॥ ९२ ॥ हे गरुड़ध्वज ! मेरे शरीरके अंग आपके चरणोंकी रजसे मिले हुए तीर्थोंको धारण करैं; हे श्रीरामचन्द्रजी ! मेरा शिर निरंतर शिव और ब्रह्माआदिसे सेवन किये हुए आपके

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासु वाणी ॥ त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम् ॥ ९१ ॥ त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स शृणोतु कर्णः ॥ त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि ॥ ९२ ॥ अङ्गानि ते पादरजोविमिश्रतीर्थानि बिभ्रत्वहिशत्रुकेतो ॥ शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाद्यैर्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्रम् ॥ ९३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ इत्थं स्वात्मपरिष्वङ्गनिर्धूताशेषकल्मषम् ॥ रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ मायां मोहकरीं तस्मिन्वितन्वन् कार्यसिद्धये ॥ सखे त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः ॥ २ ॥ किंतु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनन्दनः ॥ कृतवान्किं कपीन्द्राय सत्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ३ ॥

चरणकमलोंमें प्रणाम करता रहै ॥ ९३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको अपने शरीरके आलिंगनसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त देखकर मुस्कुराते हुए अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त तिस सुग्रीवके उपर मोहित करनेवाली अपनी मायाको फैलाते हुए इसप्रकार कहने लगे कि हे मित्र ! तुमने मुझसे रावणका वध आदि कार्य करनेकी जो प्रतिज्ञा करी है वह निःसन्देह कदापि मिथ्या नहीं होयगी ॥ १ ॥ २ ॥ परन्तु मुझे सब पुरुष कहेंगे कि रामचन्द्रने जो अग्निको साक्षी करके सुग्रीवका कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करी सो क्या किया ? ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हारा कार्यसिद्ध होनेमें विलंब होनेपर निःसन्देह लोकमें मेरी निन्दा होयगी इसकारण तुम शीघ्रही जाकर युद्धके निमित्त वालीको बुलाओ, निःसंदेह तुम्हारी जय होयगी ॥ ४ ॥ मैं एकबाणसे वालीका वध करके किष्किन्धाके राज्यका तुमको अभिषेक करूंगा, सुग्रीव इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेको अंगीकार करके शीघ्रही किष्किंधाके बगीचेमें गया और महाभयंकर शब्द करके वालीको बुलाने लगा. परम पराक्रमी वाली भ्राताके तिस भयंकर शब्दको सुनकर क्रोधमें भरगया और नेत्र लाल होगये ॥ ५ ॥ ६ ॥ शीघ्रही घरसे निकलकर जहाँ सुग्रीव था तहाँ आया, महाबली सुग्रीवने वालीको आताहुआ देखकर उसके वक्षस्थलपर प्रहार किया ॥ ७ ॥ महावीर वालीनेभी क्रोधान्ध होकर सुग्रीवके

इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः ॥ तस्मादाह्वय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम् ॥ ४ ॥ बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये ॥ तथेति गत्वा सुग्रीवः किष्किन्धोपवनं द्रुतम् ॥ ५ ॥ कृत्वा शब्दं महानादं तमाह्वयत वालिनम् ॥ तच्छ्रुत्वा भातृनिनदं रोषताम्रविलोचनः ॥ ६॥ निर्जगाम गृहाच्छीघ्रं सुग्रीवो यत्र वानरः ॥ तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत् ॥७॥ सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्छितः ॥ वाली तमपि सुग्रीव एवं क्रुद्धौ परस्परम् ॥ ८ ॥ अयुद्धयेतामेकरूपौ दृष्ट्वा रामोऽतिविस्मितः ॥ न मुमोच तदा बाणं सुग्रीववधशङ्क्या ॥ ९ ॥ ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः ॥ वाली स्वभवनं यातः सुग्रीवो राममब्रवीत् ॥ १० ॥ किं मां घातयसे राम शत्रुणा भातृरूपिणा ॥ यदि मद्धननेवाञ्छा त्वमेव जहि मां विभो ॥ ११ ॥

हृदयपर मुष्टिप्रहार किया, फिर सुग्रीवनेभी क्रुद्ध होकर वालीके हृदयमें घूंसा मारा, इसप्रकार परस्पर दोनोंका युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार युद्ध करते हुए दोनों वानरोंमेंसे सुग्रीवको अच्छीतरह नहीं पहिंचान सके, इसीकारण सुग्रीवके बधकी शंकासे बालीका वध करनेके लिये बाण नहीं छोंडा ॥ ९ ॥ तदनन्तर सुग्रीव महाबली वालीके मुष्टिप्रहारको सहनेमें असमर्थ होकर रुधिर वमन करताहुआ भयसे व्याकुल होकर भाग आया, वालीभी अपने स्थान चला गया; तदनन्तर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम क्या भ्रातारूपी शत्रुके द्वारा मेरा प्राणान्त करना चाहते हो ? यदि मुझे नष्ट करनेकी इच्छा होरही है ता हे प्रभो ! आपही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे मार डालिये ॥ ११ ॥ हे शरणागतवत्सल ! हे सत्यवादिन् ! हे रघूत्तम ! तुमने पहिले वाक्य देकर मुझे विश्वास करादिया था कि मैं अवश्य-ही बालीका बध करूंगा, फिर किसकारण मेरी उपेक्षा करते हो ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवके इस कहनेको सुनकर नेत्रोंमें जल भरेहुए सुग्रीव-को हृदयसे लगाकर कहने लगे कि हे सखे ! तुम भयभीत मत हो, मैंने तुम दोनोंकी एकसी आकृति देखकर विशेष रूपसे बालीको न पहिंचाननेके कारण तुम्हारे बधकी शंकासे बाण नहीं छोड़ा, अब भ्रान्तिको दूर करनेके निमित्त तुम्हारे शरीरपर कुछ चिह्न कर देताहूँ, तुम फिर उसही स्थानपर जाकर वालीको बुलाओ मैं तत्कालही बालीका बध तुमारे देखते देखते करूंगा. हे भ्रातः ! मैं रामचंद्र शपथ करके कहताहूँ कि क्षणमात्रमें

एवं मे प्रत्ययं कृत्वा सत्यवादिन् रघूत्तम ॥ उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल ॥ १२ ॥ श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः ॥ आ-लिङ्ग्य मास्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ ॥ १३ ॥ मित्रघातित्वमाशङ्क्य मुक्तवान्सायकं नहि ॥ इदानीमेव ते चिह्नं करिष्ये भ्रमशा-न्तये ॥ १४ ॥ गत्वाह्वय पुनः शत्रुं हतं द्रक्ष्यसि वालिनम् ॥ रामोऽहं त्वां शपे भ्रातर्हनिष्यामि रिपुं क्षणात् ॥ १५ ॥ इत्याश्वास्य स सुग्री-वं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ सुग्रीवस्य गले पुष्पमालामामुच्य पुष्पिताम् ॥ १६ ॥ प्रेषयस्व महाभाग सुग्रीवं वालिनं प्रति ॥ लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा गच्छगच्छेति सादरम् ॥ १७ ॥ प्रेषयामास सुग्रीवं सोऽपि गत्वा तथाकरोत् ॥ पुनरप्यद्भुतं शब्दं कृत्वा वालिनमाह्वयत् ॥ १८ ॥ त-च्छ्रुत्वा विस्मितो वाली क्रोधेन महतावृतः ॥ बद्ध्वा परिकरं सम्यग्गमनायोपचक्रमे ॥१९॥ गच्छन्तं वालिनं तारा गृहीत्वा निषिषेध तम् ॥ न गन्तव्यं त्वयेदानीं शङ्का मेऽतीव जायते ॥ २० ॥

तुम्हारे शत्रुका प्राणान्त कर दूंगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवको इसप्रकार समझाकर लक्ष्मणसे कहने लगे कि हे भ्रातः ! तुम सुग्रीव के कंठमें सुन्दर पुष्पोंकी माला पहिनाकर वालीसे युद्ध करनेके निमित्त भेजो, श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार सुग्रीवके गलेमें पुष्पोंकी माला पहिनाकर आदरपूर्वक कहा कि हे वानर ! अब तुम युद्ध करनेके लिये जाओ ॥ १६ ॥ १७ ॥ लक्ष्मणजीका भेजा हुआ सुग्रीव युद्धके निमित्त पहिले स्थानमें जाकर पहिलेके समान अति घोर चीत्कार शब्द करके वालीको बुलाने लगा ॥ १८ ॥ महाबली वाली फिर सुग्रीवके अद्भुत शब्दको सुनकर आश्चर्य और क्रोधसे भरगया, और युद्धका वेश धारण करके रणभूमिमें जानेकेलिये तयार हुआ ॥ १९ ॥ तब बालीकी परम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रिया स्त्री तारा पतिका हाथ पकड़कर अनेक प्रकारसे युद्ध करनेका निषेध करके कहनेलगी कि हे नाथ! तुम युद्ध करनेकेलिये मत जाओ, मुझे इसकारण अत्यन्त शंका होती है कि सुग्रीवको कुछकाल पहिलेही तुमने पराजित करदियाथा और वह भाग गयाथा, परन्तु फिर अत्यन्त शीघ्रही युद्ध करनेके निमित्त आया है, इससे निःसन्देह मालूम होताहै कि सुग्रीव इससमय इकला नहीं है कोई बड़ा प्रबल सहायक उसके साथ युद्ध करनेको आया है ॥ २० ॥ २१ ॥ तब वाली तारासे कहने लगा कि हे सुभ्रु! तुम सुग्रीवके विषयमें कुछ शंका मत करो, हे प्रिये! इस समय मेरे हाथको छोड़कर अलग हटजा, मैं रणभूमिमें जाकर शीघ्रही शत्रुका वध करके लौटूँगा, उस दुष्टात्माकी सहायता कौन करेगा? यदि कोई

इदानीमेव ते भग्नः पुनरायाति सत्वरः ॥ सहायो बलवांस्तस्य कश्चिन्नूनं समागतः ॥२१॥ वाली तामाह हे सुभ्रु शङ्का ते व्येतु तद्गता ॥ प्रिये करं परित्यज्य गच्छ गच्छामि तं रिपुम् ॥ २२ ॥ हत्वा शीघ्रं समायास्ये सहायस्तस्य को भवेत् ॥ सहायी यदि सुग्रीवस्ततो हत्वो- भयं क्षणात् ॥ २३ ॥ आयास्ये माशुचः शूरः कथं तिष्ठेद्गृहे रिपुम् ॥ ज्ञात्वाप्याह्वयमानं हि हत्वायास्यामि सुन्दरि ॥ २४ ॥ तारोवाच ॥ मत्तोऽन्यच्छृणु राजेन्द्र श्रुत्वा कुरु यथोचितम् ॥ आह मामङ्गदः पुत्रो मृगयायां श्रुतं वचः ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दा- शरथिः किल ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥२६॥ आगतो दण्डकारण्यं तत्र सीता हता किल ॥ रावणेन सह भ्रात्रा मा- र्गमाणोऽथ जानकीम् ॥ २७ ॥ आगतो ऋष्यमूकाद्रिं सुग्रीवेण समागतः ॥ चकार तेन सुग्रीवः सख्यं चानलसाक्षिकम् ॥ २८ ॥

उसकी सहायता करेगा तो दोनोंको क्षणमात्रमें नष्ट करके शीघ्रही लौटकर आऊंगा, हे सुन्दरि! क्या कोई वीर पुरुष शत्रुके बुलानेपर कदापि घरमें बैठ सक्ता है इसकारण तू शोक मत कर, मैं शीघ्रही शत्रुका प्राणान्त करके लौटूँगा ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तारा कहने लगी कि- हे राजेन्द्र! मुझे कुछ औरभी कहनाहै, उसको सुनकर आप जैसा उचित समझे वैसा करैं. अंगदने एकदिन शिकारसे लौटकर मुझसे कहा कि हे मातः! मैने शिकारको जाकर सुनाहै कि अयोध्यापति दशरथराजकुमार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीता सहित दण्डकारण्यमें आयेथे, तहाँ राक्षसपति रावणने छलकरके उनकी स्त्रीको हरलिया, इससमय वह श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण ऋष्यमूक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर्वतपर आकर सुग्रीवसे मिले हैं, और सुग्रीवनेभी उनके साथ अग्निको साक्षी करके मित्रता करी है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणने सुग्रीवके मित्रभावमें बंधकर अग्निको साक्षी करके सुग्रीवसे प्रतिज्ञा करी है, कि रणभूमिमें वालीका वध करके किष्किन्धाका राज्य तुमको देंगे ॥ २९ ॥ हे नाथ ! ऐसा निश्चय करके वह दोनों सुग्रीवके साथ निःसन्देह आये होंगे, नहीं तो अबहीं पराजित भागा हुआ सुग्रीव फिर युद्ध करनेके निमित्त किसप्रकार आता ॥ ३० ॥ हे महाराज ! मेरे कहनेसे वैरभावको छोड़कर शीघ्रही सुग्रीवको बुलाओ और युवराजपदमें उसका अभिषेक करके श्रीरामचन्द्रजीको शरणागत जाओ ॥ ३१ ॥ हे कपीन्द्र ! मेरा, पुत्र अंगदका, राज्यका और वंशका रक्षण

प्रतिज्ञां कृतवान् रामः सुग्रीवाय सलक्ष्मणः ॥ वालिनं समरे हत्वा राजानं त्वां करोम्यहम् ॥ २९ ॥ इति निश्चित्य तौ यातौ निश्चितं शृणु मद्वचः ॥ इदानीमेव ते भग्नः कथं पुनरुपागतः ॥ ३० ॥ अतस्त्वं सर्वथा वैरं त्यक्त्वा सुग्रीवमानय ॥ यौवराज्येऽभिषिञ्चाशु रामं त्वं शरणं व्रज ॥ ३१ ॥ पाहि मामङ्गदं राज्यं कुलं च हरिपुङ्गव ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखी तारा पादयोः प्रणिपत्य तम् ॥ ३२ ॥ हस्ताभ्यां चरणौ धृत्वा रुरोद भयविह्वला ॥ तामालिङ्ग्य तदा वाली सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ स्त्रीस्वभावाद्भिभेषि त्वं प्रिये नास्ति भयं मम ॥ रामो यदि समायातो लक्ष्मणेन समं प्रभुः ॥ ३४ ॥ तदा रामेण मे स्नेहो भविष्यति न संशयः ॥ रामो नारायणः साक्षादवतीर्णोऽखिलप्रभुः ॥ ३५ ॥ भूभारहरणार्थाय श्रुतं पूर्वं मयानघे ॥ स्वपक्षः परपक्षो वा नास्ति तस्य परात्मनः ॥ ३६ ॥

करो; तारा विनयके वचनोंसे इसप्रकार समझाकर नेत्रोंमें जल भरके वालीके चरणोंमें गिरपड़ी ॥ ३२ ॥ फिर अपने दोनों हाथोंसे वालीके दोनों चरण पकड़कर भयसे अंतःकरणमें व्याकुल होकर रुदन करनेलगी. तब वाली ताराको हृदयसे लगाकर स्नेहपूर्वक इसप्रकार कहनेलगा ॥ ३३ ॥ हे प्रिये ! तुम स्त्रीस्वभाव हो इसकारण भयभीत होती हो, परन्तु मुझे किसीप्रकारका भय नहीं है; परमप्रभु श्रीरामचन्द्रजी यदि लक्ष्मणजी सहित आये होंगे तो निःसन्देह उनका मेरे साथ सुग्रीवसेभी अधिक स्नेह हो जायगा, क्योंकि सुग्रीवकी अपेक्षा मुझसे उनका अधिक कार्य सिद्ध होयगा; हे अनघे ! मैने पहिले सुना है कि अखिलब्रह्माण्डके स्वामी भगवान् नारायणने पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये श्रीरामचन्द्ररूपसे अवतार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिया है, तिन परमात्माको कोई अपना और पराया नहीं है॥ ३४॥३५ ॥ ३६ ॥ हे साध्वि! मैं तुझसे निश्चयकरके कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें प्रणाम करके अपने स्थानको लाऊंगा क्योंकि भक्तवत्सल देवदेव दशरथराजकुमार श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तोंकी अभिलाषाको पूर्ण करते हैं॥३७॥ यदि सुग्रीव इकला आया होगा तो क्षणमात्रमेंही उसका प्राणान्त करदूंगा, हे प्रिये! तुमने जो कहा कि सुग्रीवको लाकर उसको युवराजपदका अभिषेक करना चाहिये सो हे सुलक्षणे! मैं सब लोकसमाजोंमें शूरशब्दसे प्रसिद्ध हूँ सो शत्रुके युद्धकरनेकेलिये बुलानेपर किसप्रकार भयको सूचित करनेवाले तुम्हारे इस कहनेके अनुसार कार्य करूं? हे सुन्दरि! तुम शोकको त्यागकर घरमें बैठो मैं युद्ध करनेकेलिये जाताहूँ॥ ३८॥ ३९॥ ४०॥ तदनन्तर महाबली वाली

आनेष्यामि गृहं साध्वि नत्वा तच्चरणांबुजम् ॥ भजतोऽनुभजत्येष भक्तिगम्यः सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥ यदि स्वयं समायाति सुग्रीवो हन्मि तं क्षणात् ॥ यदुक्तं यौवराज्याय सुग्रीवस्याभिषचेनम् ॥ ३८ ॥ कथमाहूयमानोऽहं युद्धाय रिपुणा प्रिये ॥ शूरोऽहं सर्वलोकानां संमतः शुभलक्षणे ॥ ३९ ॥ भीतभीतमिदं वाक्यं कथं वाली वदेत्प्रिये ॥ तस्माच्छोकं परित्यज्य तिष्ठ सुन्दरि वेश्मनि ॥ ४० ॥ एवमाश्वास्य तारां तां शोचन्तीमश्रुलोचनाम् ॥ गतो वाली समुद्युक्तः सुग्रीवस्य वधाय सः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा वालिनमायान्तं सुग्रीवो भीमविक्रमः ॥ उत्पपात गले बद्धपुष्पमालः पतङ्गवत् ॥ ४२ ॥ मुष्टिभ्यां ताडयामास वालिनं सोऽपि तं तथा ॥ अहन्वाली च सुग्रीवं सुग्रीवो वालिनं तथा ॥ ४३ ॥ रामं विलोकयन्नेव सुग्रीवो युयुधे युधि ॥ इत्येवं युध्यमानौ तौ दृष्ट्वा रामः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥ बाणमादाय तूणीरादैन्द्रे धनुषि सन्दधे ॥ आकृष्य कर्णपर्यन्तमदृश्यो वृक्षखण्डगः ॥ ४५ ॥

शोकके कारण जिसके नेत्रोंमें जल भर आया है ऐसी ताराको इसप्रकार समझाकर सुग्रीवका वध करनेकेनिमित्त तयार होकर चलदिया॥४१॥ पुष्पमालासे शोभायमान भीमपराक्रम सुग्रीव वालीको आयाहुवा देखकर पतंगके समान उछला॥४२॥और दोनों मुष्ठियोंसे ताड़ना किया, वालीनेभी सुग्रीवके उपर मुष्टिप्रहार किया इसप्रकार दोनोंके परस्पर घोर प्रहार होनेलगे॥४३॥सुग्रीव युद्ध करते करते बीचमें श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखने लगताथा, परम प्रतापी श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार युद्ध करते इन दोनोंको देखकर तरकसमेंसे ऐन्द्रबाण निकालकर धनुषपर चढ़ालिया,तदनन्तर वृक्षोंके झुण्डमें छुपकर बैठे हुए भगवान श्रीरामचन्द्रजीने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वालीके हृदयको लक्ष्य (निशान) करके वह बाण कानपर्यन्त खैंचकर छोड़ा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वज्रकेसमान वीर्यवान् उस बाणने बड़े जोरसे जाकर वालीके हृदयको भेदन किया, तदनन्तर महावीर वाली हृदयमें बाण लगनेसे बड़ा घोर चीत्कार शब्द करता हुआ पृथ्वीपर गिरपड़ा; बालीके गिरनेके वेगको न सहकर पृथ्वी कम्पायमान होनेलगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ वाली दोघड़ीपर्यन्त अचेतन (बेहोस) रहा, तदन्तर कुछ होसमें हुआ तब देखा कि जटामुकुटधारी, विशाल हृदयसे शोभायमान, वनमालासे विभूषित और चीरवसन धारण कियेहुए, जंघाओंपर्यंत जिनकी मनोहर पीनभुजा लंबायमान होरही हैं, ऐसे नवीन दूबके समान श्यामवर्ण कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी वामहस्तमें धनुष और दाहिने हाथमें बाण धारण किये

निरीक्ष्य वालिनं सम्यग्लक्ष्यं तद्धृदयं हरिः ॥ उत्ससर्जाशनिसमं महावेगं महाबलः ॥ ४६ ॥ बिभेद स शरो वक्षो वालिनः कम्पयन्महीम् ॥ उत्पपात महाशब्दं मुञ्चन्स निपपात ह ॥ ४७ ॥ तदा मुहूर्तं निःसंज्ञो भूत्वा चेतनमाप सः ॥ ततो वाली ददर्शाग्रे रामं राजीवलोचनम् ॥ धनुरालम्ब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम् ॥ ४८ ॥ बिभ्राणं चीरवसनं जटामुकुटधारिणम् ॥ विशालवक्षसं भ्राजद्वनमालाविभूषितम् ॥ ४९ ॥ पीनचार्वायतभुजं नवदूर्वादलच्छविम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां च प्रार्श्वयोः परिसेवितम् ॥ ५० ॥ विलोक्य शनकैः प्राह वाली रामं विगर्हयन् ॥ किं मयापकृतं राम तव येन हतोऽस्म्यहम् ॥ ५१ ॥ राजधर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम् ॥ वृक्षखण्डे तिरोभूत्वा त्यजता मयि सायकम् ॥ ५२ ॥ यशः किं लप्स्यसे राम चोरवत्कृतसङ्गरः ॥ यदि क्षत्रियदायादो मनोर्वंशसमुद्भवः ॥ ५३ ॥ युद्धं कृत्वा समक्षं मे प्राप्स्यसे तत्फलं तदा ॥ सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु ॥ ५४ ॥

सन्मुख खड़े हैं और सुग्रीव तथा लक्ष्मण दोनों ओर खड़े होकर सेवा कररहे हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वाली श्रीरामचन्द्रजीको देखतेही निंदा करता हुआ कोमल वचनोंसे कहने लगा कि मैंने आपका कौनसा अपराध कियाथा, कि जिस अपराधसे आपने मुझे मारा ॥ ५१ ॥ मालूम होताहै कि आपने राजनीतिको न जानकर यह निन्दित कर्म कियाहै, हे श्रीरामचंद्रजी तुमने चोरके समान वृक्षोंके बीचमें छुपकर मेरेऊपर बाण छोड़ा, इस अधर्मयुद्धसे क्या आपको यशकी प्राप्ति होयगी ? तुम क्षत्रियसंतान तिसपरभी मनुके बंशमें उत्पन्न हुएहो, तुमको ऐसा उचित नहीं था, यदि मेरे सन्मुख आकर युद्ध करके मेरा प्राणान्त करते तो तुमको यशकी प्राप्ति होती; हे रघुनंदन ! सुग्रीवने आपका कौनसा काम किया और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैंने कौनसा नहीं किया ? ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैंने सुनाहै कि दण्डकारण्यमें रावणने आपकी स्त्रीका हरण करलिया, उसको प्राप्त होनेकेलिये तुमने सुग्रीवकी शरण ली क्या यह कार्य मुझसे नहीं होता ? ॥ ५५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! मालूम होताहै कि आप मेरे संसार प्रसिद्ध पराक्रमको नहीं जानतेहो ? मैं यदि इच्छा करूँ तो घड़ीभरमें कुटुम्बसहित रावणको लंकासहित इस स्थानमें लासक्ताहूँ. हे रघुकुलशिरोमणि रामचन्द्रजी ! तुम जगत्में धर्मात्मा नामसे प्रसिद्ध हो, देखो व्याधिके समान छुपकर वानरका वध करनेसे क्या धर्मकी प्राप्ति होयगी, और भक्षण करनेके अयोग्य वानरका मांस क्या आपके किसी कार्यमें आसक्ता है ? ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वालीके इसप्रकार बहुत कथन

रावणेन हृता भार्या तव राम महावने ॥ सुग्रीवं शरणं यातस्तदर्थमिति शुश्रुम ॥ ५५ ॥ बत राम न जानीषे मद्बलं लोकविश्रुतम् ॥ रावणं सकुलं बद्ध्वा ससीतं लङ्कया सह ॥ ५६ ॥ आनयामि मुहूर्तार्धाद्यदि चेच्छामि राघव ॥ धर्मिष्ठ इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन ॥ ५७ ॥ वानरं व्याधवद्धत्त्वा धर्मं कं लप्स्यसे वद ॥ अभक्ष्यं वानरं मांसं हत्वा मां किं करिष्यसि ॥ ५८ ॥ इत्येवं बहु भाषन्तं वालिनं राघवोऽब्रवीत् ॥ धर्मस्य गोप्ता लोकेऽस्मिंश्चरामि सशरासनः ॥ ५९ ॥ अधर्मकारिणं हत्वा सद्धर्मं पालयाम्यहम् ॥ दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा ॥ ६० ॥ समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः ॥ पातकी स तु विज्ञेयः स वध्यो राजभिः सदा ॥ ६१ ॥ त्वं तु भ्रातुः कनिष्ठस्य भार्यायां रमसे बलात् ॥ अतो मया धर्मविदा हतोऽसि वनगोचर ॥ ६२ ॥ त्वं कपित्वान्न जानिषे महान्तो विचरन्ति यत् ॥ लोकं पुनाना सच्चरैरतस्तान्नातिभाषयेत् ॥ ६३ ॥

करनेके अनन्तर श्रीरामचंद्रजी कहने लगे कि हे वानरराय ! मैं धर्मका रक्षण करनेके निमित्त धनुषको धारण कियाहुआ इस जगत्में विचरताहूँ, अधर्म करनेवाले पुरुषोंको नष्ट करके धर्मात्मा पुरुषोंका पालन करना मेरा कार्य है; हे कपीन्द्र ! कन्या, बहिन, भ्राताकी स्त्री और पुत्रकी स्त्री यह चारों समान हैं, इन चारोंमेंसे एककेभी साथ जो पुरुष रमण करता है, वह मूढ़बुद्धि महापातकी, धर्मात्मा राजाओंका वध्य (मारनेयोग्य) होताहै यह निःसन्देह वार्ता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे वानरराज ! तुमभी लघुभ्राताकी स्त्रीको बलपूर्वक भोगते हो, इसकारण धर्मशास्त्रके अनुसार मैंने तुमको नष्ट किया ॥ ६२ ॥ तुम बानरजाति होनेके कारण कुछ नहीं जानते हो, महात्मा पुरुष अपने चरणोंसे जगत्को पवित्र क-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रतेहुए विचरते रहते हैं, इसकारण उनके कार्यकी निंदा न करै ॥ ६३ ॥ वाली श्रीरामचन्द्रजीके इसप्रकार कथनको सुनतेही उनको साक्षात् विष्णु-भगवान्का अवतार जानकर भयभीत होगया, फिर प्रणाम करके परमआनन्दित हो श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ ६४ ॥ हे श्रीरामचन्द्र ! हे महाभाग ! इससमय आपको मैंने साक्षात् परमेश्वर जाना, इससे पहिले अज्ञानसे मैंने आपको जो कुछ कठोर वचन कहे उनको आप क्षमा करिये ॥ ६५ ॥ हे भगवन् ! आपके बाणके प्रहारसे आपकेही सन्मुख इससमय प्राणत्याग करूँगा, ऐसा समय फिर कदापि नहीं मिलेगा; क्योंकि आपका दर्शन बड़े योगियोंको भी दुर्लभ है ॥ ६६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जो पुरुष मरणके समय विवश होकर भी तुम्हारे नामका जप करते हैं वह

तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्तो ज्ञात्वा रामं रमापतिम् ॥ वाली प्रणम्य रभसाद्रामं वचनमब्रवीत् ॥ ६४ ॥ राम राम महाभाग जाने त्वां परमेश्वरम् ॥ अजानता मया किञ्चिदुक्तं तत्क्षन्तुमर्हसि ॥ ६५ ॥ साक्षात्त्वच्छरघातेन विशेषेण तवाग्रतः ॥ त्यजाम्यसून्महायोगिदुर्लभं तव दर्शनम् ॥ ६६ ॥ यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम् ॥ याति साक्षात्स एवाद्य सुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः ॥ ६७ ॥ देव जानामि पुरुषं त्वां श्रियं जानकीं शुभाम् ॥ रावणस्य वधार्थाय जातं त्वां ब्रह्मणार्थितम् ॥ ६८ ॥ अनुजानीहि मां राम यान्तं त्वत्पदमुत्तमम् ॥ मम तुल्यबले बाले अङ्गदे त्वं दयां कुरु ॥ ६९ ॥ विशल्यं कुरु मे राम हृदयं पाणिना स्पृशन् ॥ तथेति बाणमुद्धृत्य रामः पस्पर्श पाणिना ॥ त्यक्त्वा तद्वानरं देहममरेन्द्रोऽभवत्क्षणात् ॥ ७० ॥

मरणके अनन्तर वैकुण्ठ धामको जाते हैं, वही आप आज मेरे मरणके समय सन्मुख विराजमान हो रहे हो और इससे अधिक मेरा क्या भाग्य होगा ॥ ६७ ॥ हे देव ! तुम परम पुरुष हो रावणके वधके निमित्त ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर आपने अवतार लिया है, और जानकीभी साक्षात् शुभलक्षणा लक्ष्मीका अवतार है, यह मैं जानताहूँ ॥ ६८ ॥ इस समय आज्ञा दीजिये, मैं आपके वैकुण्ठ धामको जाताहूँ, और मेरे तुल्य भुजबलयुक्त अंगदके ऊपर कृपादृष्टि रखना ॥ ६९ ॥ हे दशरथराजकुमार श्रीरामचन्द्रजी ! आप अपने कमलरूपी हाथोंसे मेरे वक्षस्थलको स्पर्श करके घावको दूर करिये. श्रीरामचन्द्रजी वानरराज वालीके विनयपूर्वक वचनोंसे संतुष्ट हुए और अपने हाथसे उसके हृदयको स्पर्श करके विशल्य किया. वानर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राज वालीनेभी वानरदेहको छोड़कर क्षणमात्रमें देवेन्द्रदेह धारण किया, तदनन्तर मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ शिवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे पीडित वाली, देखो रघुनाथजीके सुधाकर (चंद्रमा) के समान शीतलहाथका स्पर्श होनेपर क्षणमात्रमें वानरदेहको त्यागकर परमहंसोंकोभी दुष्प्राप्य किन्तु रामभक्तोंकोही प्राप्त होनेयोग्य वैकुण्ठधामको चलागया ॥ ७१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे मुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

॥ महादेवजी बोले कि हे पार्वति ! जब वानरेन्द्र वालीका परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे रणभूमिमें प्राणान्त होगया तब उसके सेवक वानरोंके समूह भयसे चित्तमें व्याकुल होकर दौड़ते हुए

वाली रघूत्तमशराभिहतो विसृष्टो रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ॥ सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यं प्राप्तः परं परमहंसगणैर्दुरापम् ॥ ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद० उमामहे० किष्किन्धाकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना ॥ दुद्रुवुर्वानराः सर्वे किष्किन्धां भयविह्वलाः ॥ १ ॥ तारामूचुर्महाभागे हतो वाली रणाजिरे ॥ अङ्गदं परिरक्षाद्य मन्त्रिणः परिनोदय ॥ २ ॥ चतुर्द्वारकपाटादीन् बद्ध्वा रक्षामहे पुरीम् ॥ वानराणां तु राजानमङ्गदं कुरु भामिनि ॥ ३ ॥ निहतं वालिनं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्छिता ॥ अताडयत्स्वपाणिभ्यां शिरो वक्षश्च भूरिशः ॥ ४ ॥ किमङ्गदेन राज्येन नगरेण धनेन वा ॥ इदानीमेव निधनं यास्यामि पतिना सह ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा त्वरिता तत्र रुदती मुक्तमूर्धजा ॥ ययौ तारातिशोकार्ता यत्र भर्तृकलेवरम् ॥ ६ ॥

किष्किन्धामें आये और तारासे कहने लगे कि हे महाभागे ! महाराजवालीका आज रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे प्राणान्त होगया, तुम अब मंत्रियोंसे कहकर अंगदकी रक्षा करो ॥ १ ॥ २ ॥ हम चारों द्वारके किवाड़ोंको बन्द करके नगरीकी रक्षा करैंगे, हे भामिनी ! अंगदको वानरोंका राजा करो ॥ ३ ॥ तदन्तर तारा वानरराज वालीका अशुभ संवाद सुनकर शोकसे मूर्छित होगई, और वारंवार दोनों हाथोंसे शिर और छातीको पीट पीटकर कहने लगी ॥ ४ ॥ कि हे वानरो ! मुझे पुत्र, राज्य, नगर और धनसे कुछ प्रयोजन नहीं है इससमयही मैं पतिके साथ यमलोकको जाऊँगी ॥ ५ ॥ तारा शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो कर मृत पतिके शरीरको देखनेके निमित्त उसी रणभूमिमें बाल खोलेहुए पहुँची,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और बानरराज बालिके धूलिसे लपटे हुए और रुधिरसे भीगे हुए शरीरको देखकर उसके चरणोंमें गिरपड़ी और हा नाथ ! हा नाथ ! इसप्रकार कहतीहुई अत्यन्त विलाप करनेलगी ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनंतर सन्मुख आये हुए रघुनाथजीको देखकर कहनेलगी कि हे रामचन्द्रजी ! जिस बाणसे आपने महाराज बालीका प्राणान्त किया है उसी बाणसे मुझेभी यमलोकको पहुँचाइये ॥ ८ ॥ मैं शीघ्रही पतिके समीप जाऊंगी, क्योंकि प्राणपति मेरी वाट देखते होंगे, हे रघुनंदन ! महाराज बालीको मेरे विना स्वर्गलोकमेंभी सुख नहीं होयगा॥९॥आपसे अधिक क्या कहूं स्त्रीके वियोगका दुःख आपने स्वयं अनुभव कियाही है शीघ्रही मेरा प्राणान्त करके महाराजके समीप पहुँचादोगे तो आपको स्त्रीके दान करनेका फल मिलैगा ॥ १० ॥ तदनन्तर सुग्रीवकी

पतितं वालिनं दृष्ट्वा रक्तैः पांसुभिरावृतम् ॥ रुदती नाथनाथेति पतिता तस्य पादयोः ॥ ७ ॥ करुणं विलपन्ती सा ददर्श रघुनन्दनम् ॥ राम मां जहि बाणेन येन वाली हतस्त्वया ॥ ८ ॥ गच्छामि पतिसालोक्यं पतिर्मामभिकाङ्क्षते ॥ स्वर्गेऽपि न सुखं तस्य मां विना रघुनन्दन ॥ ९ ॥ पत्नीवियोगजं दुःखमनुभूतं त्वयानघ ॥ वालिने मां प्रयच्छाशु पत्नीदानफलं भवेत् ॥ १० ॥ सुग्रीव त्वं सुखं राज्यं दापितं वालिघातिना ॥ रामेण रुमया सार्धं भुङ्क्ष्व सापत्नवर्जितम् ॥ ११ ॥ इत्येवं विलपन्तीं तां तारां रामो महामनाः ॥ सान्त्वया मास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥ १२ ॥ किं भीरु शोचसि व्यर्थं शोकस्याविषयं पतिम् ॥ पतिस्तवायं देहो वा जीवो वा वद तत्त्वतः ॥ १३ ॥ पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान् ॥ कालकर्मगुणोत्पन्नः सोऽप्यास्तेऽद्यापि ते पुरः ॥ १४ ॥

ओरको देखकर कहने लगी कि हे सुग्रीव ! अब तुम बालिके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने दियेहुए निष्कंटक राज्य और अपनी स्त्री रुमा-सहित पूर्ण सुख भोगो ॥ ११ ॥ परम बुद्धिवान् श्रीरामचन्द्रजीको इसप्रकार विलाप करती हुई ताराके वचनोंको सुनकर दया आगई, सो तत्व-ज्ञानका उपदेश करके उसको समझानेलगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे भीरु ! तुम शोक करनेके अयोग्य पतिका वृथा शोक क्यों करती हो ? भला बता तो सही रणभूमिमें शयन करता हुआ देह और जीव इन दोनोंमें तूने किसको पति समझा है ॥ १३ ॥ यदि देहको पति कहै तो किसी प्रकारभी शोक न करना चाहिये, क्योंकि चर्म मांस रुधिर और हड्डियों करके युक्त पंचभूतरूप यह जड़ देह काल, प्रारब्ध और सत्वादिगु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णोंके योगसे उत्पन्न होता है सो इस समयभी तेरे सामने पड़ाहै, यदि जीवको पति कहै तो भी कुछ शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि जीव निर्विकार है, जन्ममरणरहित है और वह न कहीं जाता है, न स्थित रहता है ॥१४॥१५॥ जीव स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है और नपुंसकभी नहींहै, किन्तु आकाशके समान सर्वव्यापी, अविनाशी, दूसरे पुरुषके संबन्धसे रहित, निर्लेप और नित्य, ज्ञानमय, निर्मल, एक पदार्थ, सब भूतोंमें समान भावसे विराजमान है; उसके निमित्त क्यों शोक करती है वह कदापि शोकके योग्य नहीं है॥१६॥तारा कहने लगी कि हे श्रीरामचन्द्रजी! यह देह काष्ठके समान अचेतन और जीवात्मा ज्ञानमय नित्य पदार्थ है, तो सुखदुःखादिको भोगनेवाला कौन है ? यह मेरा संदेह दूर करिये ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे कि जिस समयपर्यन्त जीवात्मा अज्ञानके बशमें होकर देह और इंद्रियादिके विषे ममत्व बुद्धिका त्याग नहीं करताहै तबतक ही उसको सुख-

मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः ॥ न जायते न म्रियते न तिष्ठति न गच्छति ॥ १५ ॥ न स्त्री पुमान्वा षण्ढो वा जीवः सर्वगतोऽव्ययः ॥ एक एवाद्वितीयोऽयमाकाशवदलेपकः ॥ नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः स कथं शोकमर्हति ॥ १६ ॥ ॥ तारोवाच ॥ ॥ देहोऽचित्काष्ठवद्राम जीवो नित्यश्चिदात्मकः ॥ सुखदुःखादिसम्बन्धः कस्य स्याद्राम मे वद ॥ १७ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ अहंकारादिसम्बन्धो यावद्देहेन्द्रियैः सह ॥ संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥ १८ ॥ मिथ्यारोपितसंसारो न स्वयं विनिवर्तते ॥ विषयान्ध्यायमानस्य स्वप्ने मिथ्यागमो यथा ॥ १९ ॥ अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तत्कार्याहंकृतेस्तथा ॥ संसारोऽपार्थकोऽपि स्याद्रागद्वेषादिसंकुलः ॥ २० ॥ मन एव हि संसारो बन्धश्चैव मनः शुभे ॥ आत्मा मनः समानत्वमेत्य तद्गतबन्धभाक् ॥ २१ ॥

दुःखादिरूप संसार भोगना पड़ताहै ॥ १८ ॥ हे सुन्दरि ! मनुष्यको विषयोंका ध्यान करते करते निद्राको प्राप्त होकर जिसप्रकार स्वप्नकी अबस्थामें उनही ध्यान किये हुए विषयोंकी मिथ्या प्राप्ति होती है और वह असत् वस्तुभी सत्यसी प्रतीत होती है परन्तु जाग्रत् अवस्थामें ज्ञान होनेसे वह सब स्वप्नावस्थाके पदार्थ मिथ्या प्रतीत होने लगतेहैं, तिसीप्रकार जीव देहाभिमानकी अवस्थामें मिथ्या संसारको सत्यसा जाननेलगे हैं, सो संसार अपने आप दूर नही होताहै किन्तु तत्वज्ञान होनेपर दूर होजाता है ॥ १९ ॥ हे पुत्री ! जीवात्मा अनादि अविद्याके प्रभावसे रागद्वेषादियुक्त होकर संसारबंधनको प्राप्त होजाता है ॥ २० ॥ हे शुभे ! अन्तःकरण ही संसार है और अन्तःकरणही बन्धन है, अन्तःकरणके साथ मिलकर उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुखदुःखादिको भोगनेलगता है ॥ २१ ॥ जिसप्रकार स्फटिकमणि स्वभावसे निर्मल और श्वेत होता है, परन्तु लाख आदिकी समीपता होनेसे लाल वर्ण प्रतीत होनेलगता है इसीप्रकार निर्लेप आत्मा अन्तःकरण और इंद्रियादिकी समीपतासे संसारी प्रतीत होने लगता है, आत्मा अनुमानका साधन जो मन तिसको स्वीकार करता है और अज्ञानी होकर तिस मनसे उत्पन्न होनेवाले विषयोंको भोगता है और इसकारणही राग द्वेषादि रूप अंतःकरणके गुणोंमें बँधकर पराधीन हो संसारमें लिप्त होजाता है. जीवात्मा प्रथम रागद्वेषादिरूप अंतःकरणके गुणोंको उत्पन्न करके तिन रागद्वेषादिके कारण असत् कार्य करने लगता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तिन सत् असत् कार्योंके तीन भेद हैं, एक शुक्ल (हिंसा रहित जप ध्यान आदि)

यथा विशुद्धः स्फटिकोऽलक्तकादिसमीपगः ॥ तत्तद्वर्णयुगाभाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम् ॥ २२ ॥ बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनः संसृतिर्बलात् ॥ आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य तदुद्भवान् ॥ २३ ॥ कामान् जुषन् गुणैर्बद्धः संसारे वर्ततेऽवशः ॥ आदौ मनोगुणान् सृष्ट्वा ततः कर्माण्यनेकधा ॥ २४ ॥ शुक्ललोहितकृष्णानि गतयस्तत्समानतः ॥ एवं कर्मवशाज्जीवो भ्रमत्याभूतसंप्लवम् ॥ २५ ॥ सर्वापसंहृतौ जीवो वासनाभिः स्वकर्मभिः ॥ अनाद्यविद्यावशगस्तिष्ठत्यभिनिवेशतः ॥ २६ ॥ सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनामानसैः सह ॥ जायते पुनरप्येवं घटीयन्त्रमिवावशः ॥ २७ ॥ यदा पुण्यविशेषेण लभते सङ्गतिं सताम् ॥ मद्भक्तानां सुशान्तानां तदा मद्विषया मतिः ॥ २८ ॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा दुर्लभा जायते ततः ॥ ततः स्वरूपविज्ञानमनायासेन जायते ॥ २९ ॥

दूसरा लोहित (हिंसायुक्त यज्ञादि) और तीसरा कृष्ण (पापकर्म) इन कर्मोंकी गतिभी प्रत्येककी भिन्न भिन्न उत्तम मध्यम और अधम है इनही कर्म्मोंके वशमें होकर जीवात्मा खण्डप्रलयपर्यन्त भ्रमता रहता है ॥ २५ ॥ और खण्डप्रलयके समय वासना तथा अदृष्टसहित अन्तःकरणमें मिलकर अनादिअविद्याकेविषे लीन होजाता है ॥ २६ ॥ फिर सृष्टिकालके समय पूर्व वासना और अदृष्टसहित जन्म लेता है, इसीप्रकार जीवात्मा विवश होकर वारंवार घटीयन्त्रके समान घूमता रहता है ॥ २७ ॥ फिर जिससमय जीव पूर्वजन्मोंमें किएहुए पुण्योंके प्रभावसे मेरी भक्ति करनेवाले शान्तस्वभाव सत्पुरुषोंकी संगतिको प्राप्त होता है तब मेरी भक्ति होती है ॥ २८ ॥ तदनन्तर मेरी लीलाओंको श्रवण करनेपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुर्लभ श्रद्धाकी प्राप्ति होती है, तदनन्तर अनायासमेंहि आत्मतत्त्वका ज्ञान होजाता है ॥ २९ ॥ आत्मतत्त्वका ज्ञान होतेही गुरुके पढ़ायेहुए शास्त्रका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करनेसे जीवात्मा अपनेको सत्य आनंदमय अद्वितीय आत्मासे अभिन्न और देह इन्द्रिय मन प्राण तथा अहंकारसे भिन्न जानने लगता है, इसप्रकार ज्ञान होतेही जीवात्मा तत्काल मुक्त होजाता है यह यथार्थ उपदेश मैंने तेरे अर्थ वर्णन किया है ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ जो पुरुष इस संपूर्ण मेरे कहेहुए उपदेशको ग्रहण करके रात्रिदिन मनहीमनमें विचार करता है उसको संसारके दुःखोंका कदापि स्पर्शभी नहीं होता है ॥ ३२ ॥ हे भामिनी ! तुमभी अंतःकरणको पवित्र करके मेरे कहे हुए इस सम्पूर्ण उपदेशका विचार करो, तब संसाररूप दुःखजाल

तदाचार्यप्रसादेन वाक्यार्थज्ञानतः क्षणात् ॥ देहेन्द्रियमनःप्राणाहंकृतिभ्यः पृथक् स्थितम् ॥ ३० ॥ स्वात्मानुभवतः सत्यमानन्दात्मानमद्वयम् ॥ ज्ञात्वा सद्यो भवेन्मुक्तः सत्यमेव मयोदितम् ॥ ३१ ॥ एवं मयोदितं सम्यगालोचयति योऽनिशम् ॥ तस्य संसारदुःखानि न स्पृशन्ति कदाचन ॥ ३२ ॥ त्वमप्येतन्मया प्रोक्तमालोचय विशुद्धधीः ॥ न स्पृश्यसे दुःखजालैः कर्मबन्धाद्विमोक्ष्यसे ॥ ३३ ॥ पूर्वजन्मनि ते सुभ्रु कृता मद्भक्तिरुत्तमा ॥ अतस्तव विमोक्षाय रूपं मे दर्शितं शुभे ॥ ३४ ॥ ध्यात्वा मद्रूपमनिशमालोचय मयोदितम् ॥ प्रवाहपतितं कार्यं कुर्वत्यपि न लिप्यसे ॥ ३५ ॥ श्रीरामेणोदितं सर्वं श्रुत्वा तारातिविस्मिता ॥ देहाभिमानजं शोकं त्यक्त्वा नत्वा रघूत्तमम् ॥ ३६ ॥ आत्मानुभवसन्तुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह ॥ क्षणसङ्गममात्रेण रामेण परमात्मना ॥ ३७ ॥

तुमको स्पर्श नहीं कर सकैगा, और कर्मोंके बन्धनसे छूट जाओगी ॥ ३३ ॥ हे सुभ्रु ! पूर्वजन्ममें तैनें मेरी अत्यन्त भक्ति करी है इसकारण ही तुझे मुक्त करनेके निमित्त मैंने अपने रामचन्द्ररूपका दर्शन दिया है ॥ ३४ ॥ हे शुभे ! तू इससमय मेरे इस रूपको ध्यान करतीहुई मेरे उपदेश किये हुए सम्पूर्ण वाक्योंका मनहीमनमें विचार कर तब संसारके सम्पूर्ण कार्योंको करकेभी संसारबन्धनको नहीं प्राप्त होयगी ॥ ३५ ॥ तारानें विस्मयपूर्वक श्रीरामचंद्रजीके उपदेश कियेहुए वाक्योंको सुनकर देहाभिमानसे उत्पन्न हुए शोकको त्यागकर श्रीरामचंद्रजीके अर्थ प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार सर्वोपरि ब्रह्मानंदका अनुभव करतीहुई जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हुई. श्रीरामचन्द्रजीने क्षणमात्रमें ताराके संसारबन्धनको छेदन करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निष्पाप करदिया और निर्वाण मुक्तिको पहुँचादिया. महात्मा सुग्रीवभी श्रीरामचंद्रजीके मुखसे निकलेहुए उपदेशको सुनकर अज्ञानके जालसे छूटगया और स्वस्थचित्त हुआ. तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवको बुलाकर इसप्रकार कहने लगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे मित्र ! तुम भ्राताका पुत्र जो अंगद तिसके द्वारा ज्येष्ठ भ्राता वालीके पारलौकिक संस्कार आदि संपूर्ण कर्मोंको मेरी आज्ञासे विधिपूर्वक कराओ ॥ ४० ॥ सुग्रीवभी श्रीरामचंद्रजीके इस कहनेको स्वीकार करके कुछ प्रधान वानरोंके द्वारा वालीके मृतकशरीरको उठवाकर पुष्पकके समान विमानमें रखवाया सुग्रीवकी आज्ञासे राजाके समान तिस मृतकदेहकी परिचर्या होने लगी ॥ ४१ ॥ वानरोंके समूहोंने चारों दिशाओंमें नौबत और नगाडों-

अनादिबन्धं निर्धूय मुक्ता सापि विकल्मषा ॥ सुग्रीवोऽपि च तच्छ्रुत्वा रामवक्त्रात्समीरितम् ॥ ३८ ॥ जहावज्ञानमखिलं स्वस्थचित्तोऽभवत्तदा ॥ ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानरपुङ्गवम् ॥ ३९ ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्तं सांपरायिकम् ॥ कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाज्ञया ॥ ४० ॥ तथेति बलिभिर्मुख्यैर्वानरैः परिणीय तम् ॥ वालिनं पुष्पके क्षिप्त्वा तर्वराजोपचारकैः ॥ ४१ ॥ भेरीदुन्दुभिनिर्घोषै ब्राह्मणैर्मन्त्रिभिः सह ॥ यूथपैर्वानरैः पौरैस्तारया चाङ्गदेन च ॥ ४२ ॥ गत्वा चकार तत्सर्वं यथाशास्त्रं प्रयत्नतः ॥ स्नात्वा जगाम रामस्य समीपं मन्त्रिभिः सह ॥ ४३ ॥ नत्वा रामस्य चरणौ सुग्रीवः प्राह हृष्टधीः ॥ राज्यं प्रशाधि राजेन्द्र वानराणां समृद्धिमत् ॥ ४४ ॥ दासोऽहं ते पादपद्मं सेवे लक्ष्मणवच्चिरम् ॥ इत्युक्तो राघवः प्राह सुग्रीवं सस्मितं वचः ॥ ४५ ॥

की ध्वनीसे किष्किन्धा नगरीको परिपूर्ण करदिया; तदनन्तर सुग्रीव कुछ ब्राह्मण और मंत्रियोंका समूह तारा तथा अंगदके साथ विमानमें रक्खेहुए वालीके मृतक शरीरके पीछे २ चलने लगे ॥ ४२ ॥ कुछ दूर जाकर सुन्दर स्थानमें अंगदके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे यत्नपूर्वक तिस मृतकशरीरके संस्कारादि कर्म करवाये तदनंतर सुग्रीव स्नानआदि कर्मोंसे निवट कर कुछ मंत्रियोंकेसहित श्रीरामचंद्रजीके समीप गये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके सुग्रीव प्रसन्न होकर कहने लगे कि हे राजराज ! आपही इस सम्पत्तियुक्त वानरोंके राज्यकी रक्षा करिये ॥ ४४ ॥ मैं लक्ष्मणके तुल्य आपकी आज्ञाके अनुसार चिरकालपर्यन्त आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँगा. श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके इसप्रकार भक्तियुक्त वचनोंको सुनकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुछ मुस्कुराते हुए कहनेलगे कि हे मित्र ! निःसन्देह तुममें और मुझमें कुछ भेद नहीं है, इसकारण शीघ्रही जाकर मेरी आज्ञासे किष्किन्धा पुरीके राज्यमें अपना अभिषेक करो ॥४५॥४६॥ हे मित्र ! मैं पिताकी आज्ञाके अनुसार चौदह वर्षपर्यन्त नगरमें प्रवेश नहीं करूंगा, इसकारण किष्किन्धामें मैं तो नहीं आऊंगा परन्तु लक्ष्मणको भेजूँगा भ्राता लक्ष्मण तुम्हारे यहाँ अवश्य आवेंगे ॥ ४७ ॥ हे मित्र ! तुम अंगदको युवराजपदमें आदरपूर्वक अभिषिक्त करो, इतना होयगा कि इससमय मैं लक्ष्मणसहित समीपमें पर्वतके शिखरपर एकवर्षपर्यन्त निवास करूंगा, तुम नगरीमें जाकर कुछ कालके अनंतरही सीताके ढूँढनेका यत्न करो ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम करके कहने लगा कि हे देव ! जो आज्ञा

त्वमेवाहं न सन्देहः शीघ्रं गच्छ ममाज्ञया ॥ पुरराज्याधिपत्ये त्वं स्वात्मानमभिषेचय ॥ ४६ ॥ नगरं न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समाः सखे ॥ आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मणः पत्तनं तव ॥४७॥ अङ्गदं यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम् ॥ अहं समीपे शिखरे पर्वतस्य सहानुजः॥४८॥ वत्स्यामि वर्षदिवसांस्ततस्त्वं यत्नवान् भव ॥ किञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा सीतायाः परिमार्गणे ॥ ४९ ॥ साष्टाङ्गं प्रणिपत्याह सुग्रीवो रामपादयोः ॥ यदाज्ञापयसे देव तत्तथैव करोम्यहम् ॥ ५० ॥ अनुज्ञातस्तु रामेण सुग्रीवस्तु सलक्ष्मणः ॥ गत्वा पुरं तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः ॥ ५१ ॥ सुग्रीवेण यथान्यायं पूजितो लक्ष्मणस्तदा ॥ आगत्य राघवं शीघ्रं प्रणिपत्योपतस्थिवान् ॥ ५२ ॥ ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ प्रवर्षणगिरेरूर्ध्वं शिखरं भूरि विस्तरम् ॥ ५३ ॥ तत्रैकं गह्वरं दृष्ट्वा स्फाटिकं दीप्तिमच्छुभम् ॥ वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम् ॥ वासाय रोचयामास तत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ ५४ ॥

करतेहैं मैं उसके अनुसारही वर्ताव करूँगा ॥ ५० ॥ तदनंतर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मणजीसहित किष्किन्धा नगरीमें गया और श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके अनुसार सम्पूर्ण कार्य किए ॥ ५१ ॥ महावीर लक्ष्मण सुग्रीवसे यथोचित सत्कारको प्राप्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये और प्रणाम करके बैठे, फिर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसहित प्रवर्षणनामक पर्वतके ऊपर बड़े चौंडे शिखरपर गये ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तहाँ सुन्दर फलवाले वृक्षोंके समीपमें वर्षा वायु और धूपसे बचानेवाली प्रकाशयुक्त सुंदर स्फटिककी गुहाको देख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर लक्ष्मणजीसहित तहाँ निवास करनेकी इच्छा करतेहुए ॥ ५४ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! जिस पर्वतपर श्रीरामचन्द्रजीने जाकर निवास किया वह पर्वत अनेक प्रकारके सुन्दर फल, मूल, फूल और मोतियोंके समान निर्म्मल जलसे परिपूर्ण और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले अनेक वर्णके पक्षियोंकरके शोभायमान था ॥ ५५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकांडे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ श्रीशिवजी बोले हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी तिस प्रवर्षणपर्वतके शिखरपर मणिमय गुहाओंमें विचरते हुए सुन्दर पकेहुए फलमूलोंका भोजन करके तृप्त होते हुए लक्ष्मणजीसहित परम सुखपूर्वक एकवर्षपर्यन्त रहे ॥ १ ॥ तहां एकदिन

दिव्यमूलफलपुष्पसंयुते मौक्तिकोपमजलौघपल्वले ॥ चित्रवर्णमृगपक्षिशोभिते पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीम० रा० उमामहे० किष्किन्धाकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ तत्र वार्षिकदिनानि राघवो लीलया मणिगुहासु सञ्चरन् ॥ पक्वमूलफलभोगतोषितो लक्ष्मणेन सहितोऽवसत्सुखम् ॥ १ ॥ वातनुन्नजलपूरितमेघानन्तरस्तनितवैद्युतगर्भान् ॥ वीक्ष्य विस्मयमगाद्गजयूथान्यद्ददाहितसुकाञ्चनकक्षान् ॥ २ ॥ नवघासं समास्वाद्य हृष्टपुष्टमृगद्विजाः ॥ धावन्तः परितो रामं वीक्ष्य विस्फारितेक्षणाः ॥ ३ ॥ न चलन्ति सदा ध्याननिष्ठा इव मुनीश्वराः ॥ रामं मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु ॥४॥ चरन्तं परमात्मानं ज्ञात्वा सिद्धगणा भुवि ॥ मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे ॥ ५ ॥ सौमित्रिरेकया राममेकान्ते ध्यानतत्परम् ॥ समाधिविरमे भक्त्या प्रणयाद्विनयान्वितः ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बिजलीसे युक्त और शब्दायमान वायुसे उड़ायेहुए जलयुक्त मेघमंडलको देखकर सुवर्णमय झूलसे शोभायमान हाथियोंके यूथके भ्रमसे चकित होगये ॥ २ ॥ और तिस स्थानमें नवीन घास भक्षण करनेसे हृष्टपुष्टाङ्ग मृगपक्षियोंके समूह इधर उधर फिरनेके समय मार्गमें श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके ध्यानमें स्थित मुनियोंके समान निश्चल होकर नेत्रोंके पलकोंको विना लगाए नेत्र खोलेहुएही खड़े रहतेथे ॥ ३ ॥ और सिद्धोंके समूह फिरनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको मनुष्यरूपधारी परमात्मा समझकर मृग और पक्षियोंका रूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजीके पीछे पीछे फिरनेलगते थे ॥ ४ ॥५॥ एकसमय ध्यानमें तत्पर श्रीरामचन्द्रजीके समाधिसे विराम होकर निर्जनस्थानमें बैठनेपर भक्ति और प्रणयपूर्वक लक्ष्मणजी नम्रताके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वचनोंसे कहने लगे कि हे देव ! आपने मेरे अर्थ पहिले जो ज्ञानका उपदेश किया तिससे मेरे हृदयका अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला सन्देह नष्ट होगया ॥ ६ ॥ ७ ॥ परन्तु योगी पुरुष जिसप्रकार लौकिक पूजाकी विधिसे आपकी आराधना करते हैं, तिस पूजाकी विधिको जाननेकी इच्छा है ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! नारद, व्यास, कमलयोनि ब्रह्मा यह सम्पूर्ण योगीगण पूजाकी विधिसे आपकी आराधनाको मुक्तिका साधन कहते हैं ॥ ९ ॥ हे दयालो ! ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम तथा स्त्री और शूद्रोंको भी अनायासमेंही मुक्तिका देनेवाला, अधिक क्या कहूँ सब प्राणियोंकाही उपकार करनेवाला वह पूजाका विधान अपने भक्त इस छोटे भ्राताके अर्थ वर्णन करिये ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्र-

अब्रवीद्देव ते वाक्यात्पूर्वोक्ताद्विगतो मम ॥ अनाद्यविद्यासम्भूतः संशयो हृदि संस्थितः ॥७॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्रियामार्गेण राघव ॥ भवदाराधनं लोके यथा कुर्वन्ति योगिनः ॥ ८ ॥ इदमेव सदा प्राहुर्योगिनो मुक्तिसाधनम् ॥ नारदोऽपि तथा व्यासो ब्रह्मा कमलसम्भवः ॥ ९ ॥ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णानामाश्रमाणां च मोक्षदम् ॥ स्त्रीशूद्राणां च राजेन्द्र सुलभं मुक्तिसाधनम् ॥ तव भक्ताय मे भ्रात्रे ब्रूहि लोकोपकारकम् ॥ १० ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ मम पूजाविधानस्य नान्तोऽस्ति रघुनन्दन ॥ तथापि वक्ष्ये संक्षेपाद्यथावदनुपूर्वशः ॥ ११ ॥ स्वगृह्योक्तप्रकारेण द्विजत्वं प्राप्य मानवः ॥ सकाशात्सद्गुरोर्मन्त्रं लब्ध्वा मद्भक्तिसंयुतः ॥ १२ ॥ तेन सन्दर्शितविधिर्मामेवाराधयेत्सुधीः ॥ हृदये वाऽनले वार्चेत्प्रतिमादौ विभावसौ ॥ १३ ॥ शालग्रामशिलायां वा पूजयेन्मामतन्द्रितः ॥ प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत प्रथमं देहशुद्धये ॥ १४ ॥ वेदतन्त्रोदितैर्मन्त्रैर्मृल्लेपनविधानतः ॥ सन्ध्यादि कर्म यन्नित्यं तत्कुर्याद्विधिना बुधः ॥ १५ ॥

जी कहनेलगे कि हे भ्रातः ! मेरी पूजाकी विधिकी कुछ अवधि नहीं है तथापि संक्षेपसे क्रमपूर्वक कुछ विधि वर्णन करताहूँ सो सुनो ॥ ११ ॥ मनुष्यको योग्य है कि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यके यहां जन्म लेकर शास्त्रमें कही हुई रीतिके अनुसार भक्तिपूर्वक गुरूसे मंत्र ले ॥ १२ ॥ तदनंतर गुरुकी बताई विधिके अनुसार मेरा पूजन करे, पुरुष आलस्यको त्यागकर हृदयमें, अग्निमें, सुवर्णादिकी प्रतिमामें, ब्राह्मणमें अथवा शालिग्रामकी प्रतिमामें मेरा पूजन करै; प्रातःकालके समय देहशुद्धिके अर्थ प्रथम स्नान करै ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण ! बुद्धिमान् पुरुष वेद और तंत्रोंमें कहेहुए मंत्रोंकरके मृत्तिकालेपनादि स्नानकी विधिसे शुद्ध होकर नित्यका जो संध्यादि कर्म है उसको विधिपूर्वक करै ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदन्तर कर्मसिद्धिके निमित्त बुद्धिमान् पहिले संकल्प करै, मुझसे अभेदबुद्धि करके अर्थात् मेरा रूप मानकर गुरूका पूजन करै ॥ १६ ॥ तदनन्तर शिलाके विषे प्रतिष्ठा करीहुई मेरी मूर्तिको स्नान करावै, मृत्तिकाकी मूर्ति होय तो उसका मार्जन करै, फिर स्मृतिआदिमें कही हुई सामग्रीसे तिस प्रतिमामें मेरा पूजन करै तब मनुष्य अपनी अभिलाषाके फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ परन्तु पाखण्डको त्यागकर इन्द्रियोंको वश करके गुरुकी बताई हुई विधिके अनुसार पूजन करनेसे ही अभिलाषा पूर्ण होतीहै अन्यथा नहीं. हे लक्ष्मण ! प्रतिमाको आभूषणचढ़ाना मुझको महा प्रिय है ॥ १८ ॥ प्रतिमामें पूजन करना होय तो पुष्प आदि सामग्रीकी अवश्यकता है; और अग्नि सूर्य तथा चित्रमें पूजन करै

संकल्पमादौ कुर्वीत सिद्धयर्थं कर्मणा सुधीः ॥ स्वगुरुं पूजयेद्भक्त्या मद्बुद्धया पूजको मम ॥ १६ ॥ शिलायां स्नपनं कुर्य्यात्प्रतिमासु प्रमार्जनम् ॥ प्रसिद्धैर्गन्धपुष्पाद्यैर्मत्पूजा सिद्धिदायिका ॥ १७ ॥ अमायिकोऽनुवृत्त्या मां पूजयेन्नियतव्रतः ॥ प्रतिमादिष्वलंकारः प्रियो मे कुलनन्दन ॥१८॥ अग्नौ यजेत हविषा भास्करे स्थण्डिले यजेत् ॥ भक्तेनोपहृतं प्रीत्यै श्रद्धया मम वार्यपि ॥ १९ ॥ किं पुनर्भक्ष्यभोज्यादि गन्धपुष्पाक्षतादिकम् ॥ पूजाद्रव्याणि सर्वाणि सम्पाद्यैवं समारभेत् ॥ २० ॥ चैलाजिनकुशैः सम्यगासनं परिकल्पयेत् ॥ तत्रोपविश्य देवस्य सम्मुखे शुद्धमानसः ॥ २१ ॥ ततो न्यासं प्रकुर्वीत मातृकाबहिरान्तरम् ॥ केशवादि ततः कुर्यात्तत्त्वन्यासं ततः परम् ॥ २२ ॥ मन्मूर्तिपञ्जरन्यासं मन्त्रन्यासं ततो न्यसेत् ॥ प्रतिमादावपि तथा कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥ २३ ॥

तो घृतकी आवश्यकता है अर्थात् घृतसे हवन करै. हे भ्रातः ! अधिक क्या कहूँ भक्तपुरुष श्रद्धापूर्वक केवल जलसेभी यदि मेरा पूजन करै तो मैं प्रसन्न होताहूँ और भक्तिपूर्वक भक्ष्य भोज्य गंध पुष्प और अक्षतादि पूजाके सम्पूर्ण द्रव्य इसप्रकार इकट्ठे करके मेरा पूजन करै तो कहनाही क्या है ? ॥ १९ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण ! पूजन करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण पूजाकी सामग्रीको इकट्ठी करके पहिले कुशके आसनपर मृगछाला बिछावै उसके ऊपर ऊनका आसन बिछावै, तब शुद्धचित्त होकर भगवान्की प्रतिमाके सामने तिस आसनपर बैठे ॥ २१ ॥ फिर मातृकान्यास और बहार भीतर करै, तदनन्तर केशवादिन्यास, तदनन्तर तत्वन्यास, फिर विष्णुपंजरन्यास और मन्त्रन्यास करै. इसीप्रकार सावधान होकर प्रतिमामें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी न्यास करै, और पूजा करनेवाला पुरुष भगवान्‌के सामने अपने वामभागमें जलपूर्ण कलश स्थापन करै और दाहिनी ओर अर्घ्य पाद्य देनेके निमित्त तथा आचमन देनेके निमित्त मधुपर्क देनेके निमित्त चार पात्र और पुष्प रक्खै और हृदयकमलमें सूर्यके समान निर्मल जीवरूप मेरी कलाका ध्यान करै. हे लक्ष्मण ! जिस कलासे यह सम्पूर्ण देह व्याप्त होरहा है और उसही मेरी कलाका प्रतिमा आदिमें आवाहान करै ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ तदनन्तर दम्भको त्यागकर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, वस्त्र और आभूषण आदि सामग्रीसे यथाशक्ति मेरा पूजन करै ॥ २७ ॥ यदि पूजन करनेवाला सम्पत्तिमान् होय तो कर्पूर, केशर, अगर, चंदन, सुंदर सुगन्धियुक्त पुष्प, धूप, दीप, अनेकप्रकारके नैवेद्य

कलशं स्वपुरो वामे क्षिपेत्पुष्पादिदक्षिणे॥अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमेव च॥२४॥तथैवाचमनार्थं तु न्यसेत्पात्रचतुष्टयम्॥हृत्पद्मे भानुविमले मत्कलां जीवसंज्ञिताम् ॥२५॥ ध्यायेत्स्वदेहमखिलं तया व्याप्तमरिन्दम ॥ तामेवावाहयेन्नित्यं प्रतिमादिषु मत्कलाम्॥ २६ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवस्त्रविभूषणैः ॥ यावच्छक्योपचारैर्वा त्वर्चयेन्माममायया ॥ २७ ॥ विभवे सति कर्पूरकुङ्कुमागुरुचन्दनैः ॥ अर्चयेन्मन्त्रवन्नित्यं सुगन्धकुसुमैः शुभैः ॥ २८ ॥ दशावरणपूजां वै ह्यागमोक्ता प्रकारयेत् ॥ नीराजनैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥ २९॥ श्रद्धयोपहरेन्नित्यं श्रद्धाभुगहमीश्वरः ॥ होमं कुर्यात्प्रयत्नेन विधिना मन्त्रकोविदः ॥ ३० ॥ अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः ॥ ३१ ॥ अथवौपासनाग्नौ वा चरुणा हविषा तथा ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं दिव्याभरणभूषितम् ॥ ३२ ॥

और पांचप्रकारके नीराजन आदिके द्वारा मंत्रोंको पढ़ताहुआ मेरा पूजन करै और अगस्त्य संहितामें कहीहुई रीतिके अनुसार दश आवरणदेवताओंकाभी पूजन करै ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे भ्रातः ! पूजा करनेवाला पुरुष यदि श्रद्धासे यह सम्पूर्ण सामग्री मेरे अर्थ समर्पण करै तो मैं ग्रहण करताहूँ, इसकारण मैं श्रद्धाके वशीभूत हूँ. हे भ्रातः ! मंत्रोंको जाननेवाला पूजक पुरुष पूजाके अनन्तर मेरी प्रसन्नताके अर्थ यत्नपूर्वक विधिसे हवन करै ॥ ३० ॥ हे लक्ष्मण ! होम करनेके समय कुण्डकी आवश्यकता है, इस कुण्डको पुरुष अगस्त्यसंहितामें कहीहुई रीतिसे बनावै, तदनन्तर मेरे मूलमंत्रको अथवा पुरुषसूक्तको पढ़कर हवन करै ॥३१॥ हे भ्रातः ! यह जो कुण्डमें हवन करनेकी विधि कही सो शूद्रादि और अग्निहोत्र न करनेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणोंको अपनी उपास्य अग्निमें घृतसे अथवा चरुसे हवन करना चाहिये, उनको कुण्ड बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है, बुद्धिमान् पुरुष हवन करतेसमय अग्निमें तपायेहुए सुवर्णके समान दैदीप्यमान और दिव्य आभूषणोंसे शोभित मेरे रूपका ध्यान करै तदनन्तर हनुमानआदि मेरे पार्षदोंके अर्थ बलि देकर हवनको समाप्त करै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे भ्रातः ! तदनन्तर पूजन करनेवाला पुरुष मौन होकर मेरा ध्यान करता हुआ मेरे मूलमंत्रका जप करे और मेरा स्मरण करै फिर प्रसन्न मनसे मेरे अर्थ कर्पूरसे सुगंधित किया हुआ ताम्बूल समर्पण करै ॥३४॥ मेरी प्रसन्नताके अर्थ अपने आप नृत्य गीत और स्तोत्रादि पाठ करै, फिर हृदयमें मेरा ध्यान करताहुआ पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करै, फिर मेरे प्रसाद-के पुष्पादिको मेरी भावनासे मस्तकपर धारण करै और मनमें भक्तिपूर्वक यह विचारै कि हे इष्टदेव ! तुम्हारे चरणकमलोंको अपने दोनों हाथोंसें

ध्यायेदनलमध्यस्थं होमकाले सदा बुधः ॥ पार्षदेभ्यो बलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ॥ ३३ ॥ ततो जपं प्रकुर्वीत ध्यायन्मां यतवाक् स्मरन् ॥ मुखवासं च ताम्बूलं दत्त्वा प्रीतिसमन्वितः ॥ ३४ ॥ मदर्थे नृत्यगीतादि स्तुतिपाठादि कारयेत् ॥ प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ हृदये मां निधाय च ॥ ३५ ॥ शिरस्याधाय मद्दत्तं प्रसादं भावनामयम् ॥ पाणिभ्यां मत्पदे मूर्ध्नि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः ॥ ३६ ॥ रक्ष मां घोरसं-सारादित्युक्त्वा प्रणमेत्सुधीः ॥ उद्वासयेद्यथापूर्वं प्रत्यग्ज्योतिषि संस्मरन् ॥ ३७ ॥ एवमुक्तप्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि ॥ इहामुत्र च संसिद्धिं प्राप्नोति मदनुग्रहात् ॥ ३८ ॥ मद्भक्तो यदि मामेवं पूजां चैव दिनेदिने ॥ करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥३९॥ इदं रहस्यं परमं च पावनं मयैव साक्षात्कथितं सनातनम् ॥ पठत्यजस्रं यदि वा शृणोति यः स सर्वपूजाफलभाङ् न संशयः ॥ ४० ॥

पकड़कर शिरपै धारण करताहूं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर पूजन करनेवाला हाथ जोड़कर हे भगवन् ! मेरा घोर संसारसे रक्षण करो, इसप्रकार प्रार्थना करके प्रणाम करै, फिर परमज्ञानी पुरुष हृदयमें स्थित जीवसे आवाहान करीहुई मेरी कलाका स्मरण करता हुआ विसर्जन करै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार कही हुई रीतिसे यदि विधिपूर्वक पूजन करै तो पूरुष मेरे अनुग्रहसे इस लोक और परलोकमें सुखको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ यदि मेरा भक्त रोजके रोज इस रीतिसे मेरा पूजन करै तो मेरे सारूप्यको निःसन्देह प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ हे भ्रातः ! तुम्हारे संमुख मैंनें जो यह अतिपवित्र परम गुप्त सनातन पूजनकी विधि कही इसको जो पुरुष निरंतर पाठ करैंगे अथवा श्रवण करैंगे वह निःसन्देह पूजन करनेके फलको प्राप्त होंगे ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्रजीने जिज्ञासा करनेवाले परमभक्त महात्मा लक्ष्मणजीके अर्थ इसप्रकार पूजन करनेकी विधि वर्णन करी ॥ ४१ ॥ तदनंतर प्राकृतमनुष्यके समान मायाका अवलंबन करके अतिदुःखपूर्वक हा सीते ! हा सीते ! इसप्रकार विलाप करते हुए अतिकठिनतासे निद्राको प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ इस अंतरमेंही तिस किष्किन्धानगरीमें परमबुद्धिमान् हनुमान् एकान्तमें वानरराज सुग्रीवसे कहने लगे ॥ ४३ ॥ कि हे महाराज ! मैं आपके परमहितकी एक वार्ता कहताहूँ सो सुनो. पहिले आपके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त उपकार किया है अब आपको जो कुछ करना चाहिये उसको भूलकर आप निश्चिन्त बैठे हैं. हे महाभाग ! वह उपकार सामान्य नहीं है, देखो श्रीरामचंद्रजीने जगत्विख्यात महावीर वालिका तुमारे निमित्त

एवं परात्मा श्रीरामः क्रियायोगमनुत्तमम् ॥ पृष्टः प्राह स्वभक्ताय शेषांशाय महात्मने ॥४१॥ पुनः प्राकृतवद्रामो मायामालम्ब्य दुःखितः ॥ हा सीतेति वदन्नेव निद्रां लेभे कथञ्चन ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र किष्किन्धायां सुबुद्धिमान् ॥ हनूमान्प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम् ॥ ४३ ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम् ॥ रामेण ते कृतः पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तमः ॥ ४४ ॥ कृतघ्नवत्त्वया नूनं विस्मृतः प्रतिभाति मे ॥ त्वत्कृते निहतो वाली वीरस्त्रैलोक्यसम्मतः ॥ ४५ ॥ राज्ये प्रतिष्ठितोऽसि त्वं तारां प्राप्तोऽसि दुर्लभाम् ॥ स रामः पर्वतस्याग्रे भ्रात्रा सह वसन्सुधीः ॥ ४६ ॥ त्वदागमनमेकाग्रमीक्षते कार्यगौरवात् ॥ त्वं तु वानरभावेन स्त्रीसक्तो नावबुद्ध्यसे ॥ ४७ ॥ करोमीति प्रतिज्ञाय सीतायाः परिमार्गणम् ॥ न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे वालिवद् द्रुतम् ॥४८॥हनूमद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः ॥ प्रत्युवाच हनूमन्तं सत्यमेव त्वयोदितम् ॥ ४९ ॥

रणभूमिमें प्राणान्त करके तुम्हैं किष्किन्धाके राज्यमें अभिषिक्त किया था, और उनकीही सहायतासे तुम्हैं परमदुर्लभ तारा मिली है इससमय वही श्रीरामचंद्रजी छोटे भ्रातासहित पर्वतके शिखरपर निवास करतेहुए बड़ा भारी कार्य करनेके निमित्त तुम्हारे आनेकी बाट देख रहेहैं तुम वानर जाति होनेके कारण स्त्रीकेविषे आसक्त होकर कुछभी विचार नहीं करते हो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तुमने श्रीरामचंद्रजीसे सीताको ढूँढ़नेकी प्रतिज्ञा करी थी और इससमय तुम कुछ नहीं करतेहो; हे महाराज ! तुम परमकृतघ्नीके समान व्यवहार करते हो, इसकारण श्रीरामचन्द्रजी बहुतही शीघ्र वालिके समान तुम्हैं कोभी नष्ट करदेंगे ॥ ४८ ॥ सुग्रीव इसप्रकार हनुमान्जीके कथनको सुनकर भयसे व्याकुल होकर कहनेलगा, कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे कपिश्रेष्ठ ! तुमने जो कुछ कहा यह सत्य है ॥ ४९ ॥ इसकारण शीघ्रही मेरी आज्ञाके अनुसार तुम महावीर दश सहस्रवानरोंकी सेनाको शीघ्रही दशों दिशाको भेजो ॥ ५० ॥ बस अब वह सब जाकर सातोंद्वीपोंके सम्पूर्ण वानरोंको पंद्रहदिनके भीतर यहाँ लिवालावें ॥ ५१ ॥ और वानरों-की सेनामें मेरी यह आज्ञा सुनादें कि एक पक्षके भीतर अपने अपने कार्योंसे निवटकर सब यहाँ आजायँ, जो पक्षभरके भीतर नहीं आवेंगे निःस-न्देह मैं उनको प्राणदण्ड दूँगा. इसप्रकार हनुमानको आज्ञा देकर सुग्रीव घरमें चलेगये ॥ ५२ ॥ मंत्रियोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् हनुमानजीने उसी समय सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार वानरोंकी सेनाको दशोंदिशाओंमें भेजदिया ॥ ५३ ॥ पवनकुमार श्रीहनुमान्जीने परमगुणी और परम-

शीघ्रं कुरु ममाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम् ॥ सहस्राणि दशेदानीं प्रेषयाशु दिशो दश ॥५०॥सप्तद्वीपगतान्सर्वान्वानरानानयन्तु ते ॥ पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुङ्गवाः ॥ ५१ ॥ ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न संशयः ॥ इत्याज्ञाप्य हनूमन्तं सुग्रीवो गृहमाविशत् ॥ ५२ ॥ सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्य हनूमान्मन्त्रिसत्तमः ॥ तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन्दश दिशः सुधीः ॥ ५३ ॥ अगणितगुणसत्त्वान्वायुवे-गप्रचारान्वनचरगणमुख्यान् पर्वताकाररूपान् ॥ पवनहितकुमारः प्रेषयामास दूतानतिरभसतरात्मा दानमानादितृप्तान् ॥ ५४ ॥ इति श्रीम० रा० उमामहेश्वरसं० किष्किन्धाकाण्डे चतुर्थः सर्गः॥ ४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ रामस्तु पर्वतस्याग्रे मणिसानौ निशामुखे ॥ सीताविरहजं शोकमसहन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ पश्य लक्ष्मण मे सीता राक्षसेन हृता बलात् ॥ मृताऽमृता वा निश्चेतुं न जानेऽद्यापि भामिनीम् ॥ २ ॥

पराक्रमी वायुके समान वेगसे चलनेवाले और पर्वतके समान हैं शरीरोंके आकार जिनके ऐसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ वानरोंके समूहोंको धन और सन्मानसे संतुष्ट करके दूत बनाकर भेजा ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किंधाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादबास्तव्य पंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ श्रीमहादेवजी कहनेलने कि हे पार्वति ! इधर श्रीरामचन्द्रजी तिस पर्वतके शिखरपर मणिमय गुहामें बैठे हुए रात्रिका समय आनेपर सीताके वियोगको न सहकर लक्ष्मणजीसे इसप्रकार कहने लगे कि ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! मेरी प्राणप्रिया जानकीको राक्षस जबरदस्तीसे हरकर लेगया सो इतने दिनोंपर्यंत जीती रही होगा या नहीं, यह निश्चय करनेको मैं समर्थ नहीं हूं ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि कोई पुरुष मुझे यह खबर सुनादेगा कि सीता जीती है, उस पुरुषको मैं परमप्रियबन्धु समझूँगा; यदि मुझे कोई यह खबर देगा, कि सीता इसप्रकार ले आऊंगा, जिसप्रकार देवताओंने समुद्रमेंसे अमृत लियाथा. हे भ्रातः ! सुनों मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, जिस दुष्टात्माने मेरी परम-प्रिया जानकीको हरा है उसको मैं पुत्रादि कुटुंब सेना और वाहनों सहित भस्म करदूंगा; हा जनकनंदिनि सीते ! हा चंद्रमुखि ! तुम राक्षसके स्थानमें निवास करतीहुई मेरा दर्शन न होनेके दुःखको भोगती हुई किसप्रकार प्राणोंको धारण करती होगी ! हे प्रिये ! मैं तुम्हारे विरहमें व्याकुल होरहा हूँ, अधिक क्या कहूँ तुम्हारे विरहमें शीतलकिरण चन्द्रमाभी मुझे प्रचंडकिरण सूर्यकेसमान प्रतीत होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे

जीवतीति मम ब्रूयात्कश्चिद्धा प्रियकृत्स मे ॥ यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्र वा ॥ ३ ॥ हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः ॥ प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा ॥ ४ ॥ नीता तं भस्मसात्कुर्यां सपुत्रबलवाहनम् ॥ हे सीते चंद्रवदने वसन्ती राक्षसालये ॥ ५ ॥ दुःखार्ता मामपश्यन्ती कथं प्राणान् धरिष्यसि ॥ चन्द्रोऽपि भानुवद्भाति मम चन्द्राननां विना ॥ ६ ॥ चन्द्र त्वं जानकीं स्पृष्ट्वा करैर्मां स्पृश शीतलैः ॥ सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति ॥ ७ ॥ राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतो रहः ॥ कृतघ्नो दृश्यते व्यक्तं पानासक्तोऽतिकामुकः ॥ ८ ॥ नायाति शरदं पश्यन्न मे मार्गयितुं प्रियाम् ॥ पूर्वोपकारिणं दुष्टः कृतघ्नो विस्मृतो हि माम् ॥ ९ ॥ हन्मि सुग्रीवमप्येवं सपुरं सहबान्धवम् ॥ वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत् ॥ १० ॥

चंद्र ! तुम जिन शीतल किरणोंसे जानकीके शरीरका स्पर्श करतेहो उनही सम्पूर्ण किरणोंसे मेरे शरीरका स्पर्श करो, सुग्रीवही दयाहीन होकर मुझे दुःखितको नहीं देखता है, और निष्कंटक राज्यको प्राप्त होकर एकान्तस्थानमें स्त्रियोंके साथ सम्भोगके सुखको भोगताहै मेरे दुःखको एकबारभी नहीं देखता. हे भ्रातः ! मद्यपानमें आसक्त अतिकामी वह सुग्रीव मालूम होताहै. कृतघ्नी होगया, इसकारणही शरत्कालको आयाहुआ जानकरभी सीताको ढूंढ़नेके निमित्त वह पापात्मा यत्न नहीं करताहै, मालूम होताहै वह कृतघ्नी मेरे पहिले किये हुए उपकारको भूल गया ॥ ७ ॥ ८ ॥९॥ हे लक्ष्मण ! जिसप्रकार मैंने वालीका प्राणान्त किया था, तिसीप्रकार सकुटुंब सुग्रीवकोभी किष्किन्धासहित नष्ट कर देताहूं जैसे मेरे हाथसे वालीका प्राणान्त हुआथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैसेही आज सुग्रीवकाभी अन्त होयगा ॥ १० ॥ तदनन्तर इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीको क्रुद्ध देखकर लक्ष्मणजी कहने लगे, कि हे देव ! आप आज्ञा करिये मैं इस घड़ीही किष्किन्धामें जाताहूँ, दुष्टात्मा सुग्रीवको नष्ट करके शीघ्रही आपके पास लौटकर आताहूँ इप्रसकार कहकर धनुष तलवार और तरकसको लेकर किष्किन्धाको जानेकेलिये तयारहुए लक्ष्मणजीको देखकर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे, कि तुम मेरे प्रिय मित्र सुग्रीव को वालीके समान नष्ट मत करदेना ॥११॥१२॥१३॥ किन्तु उसको भय दिखलाना, भय दिखलानेपर सुग्रीव जो कुछ कहै वह यहाँ आनकर मुझसे कहो, तब जो कुछ करना होयगा वह निःसन्देह करूँगा; भीमपराक्रम लक्ष्मणजी तथास्तु कहकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार मानो वानरोंके

इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥ इदानीमेव गत्वाहं सुग्रीवं दुष्टमानसम्॥११॥ मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम्॥ इत्युक्त्वा धनुरादाय स्वयं तूणीरमेव च ॥ १२ ॥ गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा ॥ १३ ॥ किन्तु भाषय सुग्रीवं वालिवन्न हनिष्यसे ॥ इत्युक्त्वा शीघ्रमादाय सुग्रीवप्रतिभाषितम् ॥ १४ ॥ आगत्य पश्चाद्यत्कार्यं तत्करिष्याम्यसंशयम् ॥ तथेति लक्ष्मणोऽगच्छत्त्वरितो भीमविक्रमः ॥ १५ ॥ किष्किन्धां प्रति कोपेन निर्दहन्निव वानरान् ॥ सर्वज्ञो नित्यलक्ष्मीको विज्ञानात्मापि राघवः ॥ १६ ॥ सीतामनुशुशोचार्तः प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिनः ॥ १७ ॥ रागादिरहितस्यास्य तत्कार्यं कथमुद्भवेत् ॥ ब्रह्मणोक्तमृतं कर्तुं राज्ञो दशरथस्य हि ॥ १८ ॥ तपसः फलदानाय जातो मानुषवेषधृक् ॥ मायया मोहिताः सर्वे जना अज्ञानसंयुताः ॥ १९ ॥ कथमेषां भवेन्मोक्ष इति विष्णुर्विचिन्तयन् ॥ कथां प्रथयितुं लोके सर्वलोकमलापहाम् ॥ २० ॥

समूहको क्रोधरूपी अग्निसे भस्म करनेके अभिप्रायसे किष्किंधाको चल दिये, इधर सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मीरूप अपनी शक्तिसे निरंतर मिले हुए और विज्ञानमय होकरभी प्राकृतमनुष्यके समान दुःखपूर्वक सीताके निमित्त शोक करने लगे; श्रीमहादेवजी कहतेहैं, कि हे पार्वति ! बुद्धि आदिके साक्षी मायासे पर रागद्वेषादिरहित परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके चित्तमें इसप्रकारके विकार कदापि उत्पन्न नहीं होसक्ते, परन्तु वह वैकुण्ठनाथ नारायण ब्रह्माजीकी प्रार्थनाको और राजा दशरथकी तपस्याको सफल करनेके निमित्त मनुष्य रूपसे प्रकट हुए, और मनुष्यके समान व्यवहार किया. एक समय विष्णु भगवानने ऐसा विचार किया, कि सम्पूर्ण प्राणी मेरी मायासे मोहित होरहे हैं इन अज्ञानी मनुष्योंकी मुक्ति किसप्रकार होय ? फिर निश्चय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर लिया, कि सम्पूर्ण लोकोंको पापोंके दूर करनेवाली परम पुनीत रामायण नामक मेरी कथाका जगत्में प्रचार होनेपर अवश्यही अज्ञानियोंकी मुक्ति होजायगी, सो इससमय विष्णु भगवान् मनुष्यावतारको धारण करके लौकिक व्यवहारोंका उपदेश करनेके निमित्त समय समयके अनुसार क्रोध मोह और कामको अंगीकार करतेहैं और सत्वादिगुणोंके वशीभूत प्रजाओंको मोहित करतेहैं और विज्ञानस्वरूप शक्तियुक्त तथा स्वयं विज्ञान स्वरूप सम्पूर्ण जगत्के शुभ और अशुभ कर्मोंके साक्षी भगवान् श्रीरामचन्द्र निर्गुण होकर भी प्रीतिपूर्वक सत्वादि तीनों गुणोंका कार्य करतेहैं, परन्तु जिसप्रकार आकाश वायुके उड़ायेहुए धूलि आदिके संयोगको प्राप्त होकरभी उससे लिप्त नहीं होताहै तिसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी भी कामक्रोधादिसे लिप्त नहीं होते

रामायणाभिधां रामो भूत्वा मानुषचेष्टकः ॥ क्रोधं मोहं च कामं च व्यवहारार्थसिद्धये ॥ २१ ॥ तत्तत्कालोचितं गृह्णन् मोहयत्यवशाः प्रजाः ॥ अनुरक्त इवाशेषगुणेषु गुणवर्जितः ॥ २२ ॥ विज्ञानमूर्तिर्विज्ञानशक्तिः साक्ष्यगुणान्वितः ॥ अतः कामादिभिर्नित्यमविलिप्तो यथा नभः ॥ २३ ॥ विन्दन्ति मुनयः केचिज्जानन्ति जनकादयः ॥ तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग् जानन्ति नित्यदा ॥ २४ ॥ भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानजः ॥ लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरान्तिकम् ॥ २५ ॥ ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान् ॥ तं दृष्ट्वा प्राकृतास्तत्र वानरा वप्रमूर्धनि ॥ २६ ॥ चक्रुः किलकिलाशब्दं धृतपाषाणपादपाः ॥ तान्दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो वानरान् लक्ष्मणस्तदा ॥ २७ ॥

हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ कोई कोई महर्षि कभी तिस अद्वितीय पुरषके साक्षात्कारको प्राप्त होतेहैं, हरिभक्तिपरायण सनकादि ऋषि सदाही परमात्माका साक्षात्कार करतेहैं. क्योंकि भक्तवत्सल भगवान् भक्त पुरुषोंके चित्तोंकी वृत्तिके अनुसार होकर उनके हृदयमें प्रकट होतेहैं, भगवद्भक्तिसे निर्मल अन्तःकरणवाले वह भक्तिही भगवत्तत्वको भलीप्रकार जानतेहैं; इधर वीरशिरोमणि लक्ष्मणजीभी उससमय किष्किन्धा नगरीके समीप जाकर सम्पूर्ण वानरोंको भयभीत करनेके निमित्त भयङ्कर प्रचण्ड प्रत्यंचाका शब्द करनेलगे, साधारण वानर लक्ष्मणजीको देखकर किष्किन्धाकी चारोंओरका प्राकार (छारदिवारी—शहरके चारोंओरके परकोटे) पर चढ़गये और वृक्ष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा पत्थर उठा उठा कर किल किल शब्द करनेलगे; तब तो उन वानरोंको देखकर महावीर लक्ष्मणजीके नेत्र क्रोधके कारण लाल लाल होगये ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ और वानरोंको नष्ट करनेके निमित्त भयंकर धनुषकी प्रत्यंचाको खेंचने लगे, इतनेहीमें लक्ष्मणजीको आये हुए जानकर मंत्रिश्रेष्ठ अंगद तहाँ शीघ्रही आये, और वानरोंको रोंका, फिर लक्ष्मणजीके समीप आकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ तदनन्तर प्रीतिके बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी अंगदको हृदयसे लगाकर कहने लगे, कि हे पुत्र ! तुम शीघ्रही जाओ, और अपने पितृव्य (चाचा) से कहो ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने शुद्ध होकर लक्ष्मणको किष्किन्धामें भेजा है; अंगद 'तथास्तु' कहकर शीघ्रही गया और सुग्रीवके समीप जाकर यह सब वार्ता सुनादी ॥ ३१ ॥ कि हे महाराज ! क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये हुए महावीर लक्ष्मणजी नगरके बाहरके द्वारपर खड़े

निर्मूलान्कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान् ॥ ततः शीघ्रं समाप्लुत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम् ॥ २८ ॥ निवार्य वानरान् सर्वानङ्गदो मन्त्रिसत्तमः ॥ गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दण्डवत् ॥ २९ ॥ ततोऽङ्गदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः ॥ उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय ॥ ३० ॥ मामागतं राघवेण चोदितं रौद्रमूर्तिना॥तथेति त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ लक्ष्मणः क्रोधताम्राक्षःपुरद्वारि बहिः स्थितः ॥ तच्छ्रुत्वातीव सन्त्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः॥३२॥आहूय मन्त्रिणां श्रेष्ठं हनूमन्तमथाऽब्रवीत् ॥ गच्छ त्वमङ्गदेनाशु लक्ष्मणं विनयान्वितः ॥३३॥सान्त्वयन्कोपितं वीरं शनैरानय मन्दिरम् ॥ प्रेषयित्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः ॥ ३४ ॥ त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः ॥ शान्तमन्तःपुरं नीत्वा पश्चाद्दर्शय मेऽनघे॥३५॥ भवत्विति ततस्तारा मध्यकक्षं समाविशत् ॥ हनूमानंगदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम् ॥ ३६ ॥ गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत् ॥ एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशङ्कितम् ॥ ३७ ॥

हुए हैं. वानरराज सुग्रीव अंगदके इसप्रकार कहनेको सुनकर अत्यन्त भयभीत होगया ॥ ३२ ॥ और शीघ्रही श्रेष्ठ मंत्री हनुमान्को बुलाकर कहने लगा कि हे मंत्रिन् ! तुम शीघ्रही अंगदके साथ नगरके द्वारपर जाकर क्रुद्ध महावीर लक्ष्मणजीको नम्रता पूर्वक कोमल वचनोंसे शांति करके यहाँ लिवालाओ; सुग्रीवने इसप्रकार हनुमान्जीको तो भेजदिया फिर वालिकी स्त्री तारासे कहनेलगा, कि हे अनघे ! तूभी जा और महावीर लक्ष्मणजीको कोमल और मधुर वचनोंसे शान्ति करके रणवासमें लाकर मुझे दर्शन करावो ॥ ३३॥३४॥३५ ॥ तारा 'बहुत अच्छा' कहकर बीचकी ड्योढ़ीमें जाकर बैठगई, हनुमान्जीने अंगदके साथ लक्ष्मणजीके समीप जाकर परमभक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके शुभ समाचार बुझा और कहने लगे, कि हे महाभाग !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे परमपराक्रमी ! आप चलिये निःसन्देह यह स्थान आपकाही है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ आप चलकर राजपरिवार और सुग्रीवको दर्शन दीजिये; तदनन्तर हे प्रभो ! आप जो आज्ञा करेंगे सो किया जायगा ॥ ३८ ॥ पवनकुमार हनुमान्‌जी इसप्रकार कहकर भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजीका हाथ पकड़ेहुए नगरके बीचमें होकर राजमंदिरमें लाये ॥ ३९ ॥ लक्ष्मणजी चारों ओर वानरसेनापतियोंके बड़े बड़े महलोंको देखकर इन्द्रके भवनके समान राजभवनमें गए ॥ ४० ॥ मदसे लाल हैं नेत्र जिसके सम्पूर्ण आभूषणोंको धारण कियेहुए चन्द्रमुखी ताराने लक्ष्मणजीको बीचकी ड्योढ़ीमें आयाहुआ देख कुछ मुस्कुराकर कहा, कि हे देवर ! आइये, तुम्हारा कल्याण हो, हे महाबाहो ! तुम तो परोपकार करनेवाले और भक्तवत्सल हो ॥४१॥४२॥

प्रविश्य राजदारादीन् दृष्ट्वा सुग्रीवमेव च ॥ यदाज्ञापयसे पश्चात्तत्सर्वं करवाणि भो ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणं भक्त्या करे गृह्य स मारुतिः ॥ आनयामास नगरमध्याद्राजगृहं प्रति ॥ ३९ ॥ पश्यंस्तत्र महासौधान् यूथपानां समन्ततः ॥ जगाम भवनं राज्ञः सुरेन्द्रभवनोपमम् ॥ ४० ॥ मध्यकक्षे गता तत्र तारा ताराधिपानना ॥ सर्वाभरणसम्पन्ना मदरक्तान्तलोचना ॥ ४१ ॥ उवाच लक्ष्मणं नत्वा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ याहि देवर भद्रं ते साधुस्त्वं भक्तवत्सलः ॥ ४२ ॥ किमर्थं कोपमाकार्षीर्भक्ते भृत्ये कपीश्वरे ॥ बहुकालमनाश्वासं दुःखमेवानुभूतवान् ॥ ४३ ॥ इदानीं बहुदुःखौघाद्भवद्भिरभिरक्षितः ॥ भवत्प्रसादात्सुग्रीवः प्राप्तसौख्यो महामतिः ॥ ४४ ॥ कामासक्तो रघुपतेः सेवार्थं नागतो हरिः ॥ आगमिष्यन्ति हरयो नानादेशगताः प्रभो ॥ ४५ ॥ प्रेषिता दशसाहस्रा हरयो रघुसत्तम ॥ आनेतुं वानरान् दिग्भ्यो महापर्वतसन्निभान् ॥ ४६ ॥ सुग्रीवः स्वयमागत्य सर्ववानरयूथपैः ॥ वधयिष्यति दैत्यौघान् रावणं च हनिष्यति ॥ ४७ ॥

फिरभी परमभक्त अपने दास कपिराज सुग्रीवके ऊपर किसकारण कोप किया; हे देवर ! देखो कपिराज सुग्रीवने निरास होकर बहुत काल पर्यन्त दुःख भोगाथा, इस समय आपनेही उनका परमदुःखके समूहसे रक्षण किया है आपके ही अनुग्रहसे इससमय परम प्रवीण सुग्रीव सुखको प्राप्त होकर काम वासनामें आसक्त होनेके कारण रघुनाथजीकी सेवा करनेके निमित्त नहीं गये, परन्तु रघुनाथजीके कार्यमें कदापि उदासीनता नहीं करेंगे; हे रघुकुलशिरोमणि ! इससे पहिलेहि नानादेशोंके वानरसमूहोंको बुलानेके निमित्त उन्होंने दशसहस्र वानरोंकी सेना भेजी है; सो बड़े बड़े पर्वतोंके समान शरीरवाले वानरोंके समूह बहुतही शीघ्र सम्पूर्ण दिशा और देशोंसे यहाँ आवेंगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उन वानरोंके समूहोंके आतेही कपिराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुग्रीव उनको साथ लेकर जायँगेः और राक्षसाधम रावण तथा उनके अनुचर राक्षसोंके समूहोंको नष्ट करेंगे ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! वानरराज सुग्रीव इस समयही श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेके निमित्त जायँगे, परन्तु इतना होना चाहिये, कि इससमय आप रणवासमें जाकर स्त्रीपुरुष और बान्धवोंसहित सुग्रीवको दर्शन देकर अभयदान दीजिये. और अपने साथही श्रीरामचन्द्रजीके पास लिवाजाइये; दयालु लक्ष्मणजीने इसप्रकार ताराके वचनोंसे प्रसन्न होकर क्रोधको त्याग दिया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तदन्तर रणवासमें जाकर सुग्रीवके मंदिरमें गये तो क्या देखते हैं कि वानरराज सुग्रीव अपनी प्यारी स्त्री रुमाको आलिङ्गन किये हुए शय्यापर लेटाहुआ है, सो सुग्रीव लक्ष्मणजीको देखकर अत्यन्त भयभीतके तुल्य शय्यासे

त्वयैव सहितोऽद्यैव गन्ता वानरपुङ्गवः ॥ पश्यान्तर्भवनं तत्र पुत्रदारसुहृद्वृतम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा सुग्रीवमभयं दत्त्वा नय सहैव ते ॥ तारायाः वचनं श्रुत्वा कृशक्रोधोऽथ लक्ष्मणः ॥ ४९ ॥ जगामान्तःपुरं यत्र सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ रुमामालिङ्ग्य सुग्रीवः पर्यङ्के पर्यवस्थितः ॥ ५० ॥ दृष्ट्वा लक्ष्मणमत्यर्थमुत्पपाताऽतिभीतवत् ॥ तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः क्रुद्धो मदविह्वलितेक्षणम् ॥ ५१ ॥ सुग्रीवं प्राह दुर्वृत्त विस्मृतोऽसि रघूत्तमम् ॥ वाली येन हतो वीरः स बाणोऽद्य प्रतीक्षते ॥ ५२ ॥ त्वमेव वालिनो मार्गं गमिष्यसि मया हतः ॥ एवमत्यन्तपरुषं वदन्तं लक्ष्मणं तदा ॥ ५३ ॥ उवाच हनूमान् वीरः कथमेवं प्रभाषसे ॥ त्वत्तोऽधिकतरो रामे भक्तोऽयं वानराधिपः ॥ ५४ ॥ रामकार्यार्थमनिशं जागर्ति न तु विस्मृतः ॥ आगताः परितः पश्य वानराः कोटिशः प्रभो ॥ ५५ ॥

बहुत जोरसे कूदा. लक्ष्मणजी, मद्यपान करनेसे उन्मत्त हुए सुग्रीवको देखकर कहने लगे, कि अरे दुराचार ! क्या तू इससमय रघुनाथजीको भूलगया ? अरे वानर वाली जिसबाणसे यमलोकको सिधारा था वही बाण तेरे प्राणान्तकी वाट देख रहा है; इससमय ही तू मेरे हाथसे मृत्युको प्राप्त होकर वालीके मार्गको जायगा. वीरशिरोमणि हनुमान्ने इसप्रकार अति कठोर भाषण करते हुए लक्ष्मणजीसे कहा, कि हे महाभाग! आप किसकारण सुग्रीवको ऐसे कठोर वाक्य कह रहे हैं ! यह तो श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तुमसेभी अधिक भक्ति रखते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ और दिनरात श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके निमित्त जागते रहते हैं, किसीसमयभी श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको नहीं भूलते हैं; हे प्रभो ! यह देखो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक दिशा और देशोंसें आयेहुए करोडों वानर चारोंओर किष्किन्धामें भर रहे हैं थोडे समयमें ही सम्पूर्ण वानरोंके समूह सीताजीको ढूंढनेके निमित्त जायँगे, महाराज सुग्रीवभी श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको अवश्यही पूरा करदेंगे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी हनुमान्जीके इसप्रकार वचनोंको सुनकर लज्जित होगये; तदनन्तर सुग्रीवने पाद्यअर्घादिसे लक्ष्मणजीका विधिपूर्वक पूजन करके हृदयसे लगाया, और हृदयसे लगाकर कहने लगा, कि हे वीरेन्द्र ! मैं रामचन्द्रजीका दास हूँ, इन्होंने ही मेरी रक्षा करी है, इसकारण मुझे क्षमा कीजिये. हे प्रभो ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे आधे क्षणके बीचमेंही चौदह लोकोंको जीत सक्ते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! मैं और वानरोंके समूह तो नाममात्रके सहायक हैं; इसप्रकार सुग्रीवके

गमिष्यन्त्यचिरेणैव सीतायाः परिमार्गणम् ॥ साधयिष्यति सुग्रीवो रामकार्यमशेषतः ॥ ५६ ॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् ॥ सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्याद्यैर्लक्ष्मणं संप्रपूजयत् ॥ ५७ ॥ आलिङ्ग्य प्राह रामस्य दासोऽहं तेन रक्षितः ॥ रामः स्वतेजसा लोकान् क्षणार्धेनैव जेष्यति ॥ ५८ ॥ सहायमात्रमेवाहं वानरैः सहितः प्रभो ॥ सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किञ्चिन्मयोदितम् ॥ ५९ ॥ तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भाषितं मया ॥ गच्छामोऽद्यैव सुग्रीव रामस्तिष्ठति कानने ॥ ६० ॥ एक एवातिदुःखार्तो जानकीविरहात्प्रभुः ॥ तथेति रथमारुह्य लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ ६१ ॥ वानरैः सहितो राजा राममेवान्वपद्यत ॥ ६२ ॥ भेरीमृदंगैर्बहुऋक्षवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः ॥ नीलांगदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः ॥ ६३ ॥ इति श्रीम० उमामहेश्वर० किष्किन्धाकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

नम्रवचनोंसे संतुष्ट होकर लक्ष्मणजी कहनेलगे ॥ ५९ ॥ कि हे महाभाग ! मैंने आपसे प्रेमयुक्त कोपसे जो कुछ कहा उसको क्षमा करो; हे वानरराज ! तयार होकर मेरे साथ अभी श्रीरामचन्द्रजीके समीप चलो क्योंकि सीताके वियोगसे व्याकुल श्रीरघुनाथजी वनमें इकले बैठे हैं. सुग्रीव इस प्रकार लक्ष्मणजीके कहनेको स्वीकार करके तत्काल लक्ष्मणजीसहित रथपर सवार होगये, और वानरोंके समूहोंको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पासको चलदिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ जिससमय हनुमान् नील और अंगद आदि वानरसमूह और रीछोंके समूहसहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वानराज सुग्रीव चलने लगा तबतक चारों दिशाओंमें बहुतसी भेरी और मृदंगोंकी ध्वनि होती रही, और वानरोंमेंसे कोई श्वेतछत्र लिये हुए थे, कोई चमरोंसे सुग्रीवका वीजना कररहे थे ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! सुग्रीव और लक्ष्मणने रथपर चढ़कर तिस पर्वतपर आकर देखा तो जटाजूटकरके विराजमान मृगचर्मको ओढे हुए विशालनेत्र सुहास्यवदन नवदूर्वादलश्याम श्रीरामचन्द्रजी सीताके विरहसे व्याकुल होकर गुहाके द्वारपर पड़ीहुई शिलापर बैठकर इधर ऊधर फिरतेहुए मृगपक्षियोंकी आकृतियोंको देखकर किसी प्रकारसे अपने चित्तको बहला रहेथे, इतनेहीमें दोनों जने दूरसेही रथसे उतरकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप गये और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया ॥१॥२॥३॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ दृष्ट्वा रामं समासीनं गुहाद्वारि शिलातले ॥ चैलाजिनधरं श्यामं जटामौलिविराजितम् ॥ १ ॥ विशालनयनं शान्तं स्मितचारुमुखाम्बुजम् ॥ सीताविरहसन्तप्तं पश्यन्तं मृगपक्षिणः ॥ २ ॥ रथाद्दूरात्समुत्पत्य वेगात्सुग्रीवलक्ष्मणौ ॥ रामस्य पादयोरग्रे पेततुर्भक्तिसंयुतौ ॥ ३ ॥ रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य पृष्ट्वानामयमन्तिके ॥ स्थापयित्वा यथान्यायं पूजयामास धर्मवित् ॥ ४ ॥ ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो भक्तिनम्रधीः ॥ देव पश्य समायान्तीं वानराणा महाचमूम् ॥ ५ ॥ कुलाचलाद्रिसम्भूता मेरुमन्दरसन्निभाः ॥ नानाद्वीपसरिच्छैलवासिनः पर्वतोपमाः ॥ ६ ॥ असंख्याताः समायान्ति हरयः कामरूपिणः ॥ सर्वे देवांशसम्भूताः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ७ ॥ अत्र केचिद्गजबलाः केचिद्दशगजोपमाः ॥ गजायुतबलाः केचिदन्येऽमितबलाः प्रभो ॥ ८ ॥

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर शुभसमाचार बूझा और समीप बैठाकर तिस सुग्रीवका विधिपूर्वक सत्कार किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर परम भक्तिमान् सुग्रीव नम्रतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा, कि हे देव ! आप देखिये यह सम्पूर्ण कुलाचल पर्वतपर उत्पन्न हुई मेरु और मंदराचलके समान शरीरधारी और अनेक द्वीप अनेक नद नदी और पर्वतोंपर निवास करनेवाले यथेष्टरूप धारणकरनेवाले पर्वतोंके समान शरीरधारी वानरोंकी सेना चली आरही है, यह सब देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए और युद्ध करनेमें प्रवीण हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! इन वानरोंमें कोई वानर एक हस्तीके समान, कोई वानर दश हस्तीके समान और कोई वानर दशहजार हस्तीके समान बलवान् हैं, और कोई तो ऐसे हैं कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिनके बलका वर्णन ही नहीं होसक्ता ॥ ८ ॥ और इनमें कोई वानर अंजनके समूहके समान कृष्णवर्ण, कुछ वानर सुवर्णके समूहके समान पीतवर्ण हैं और कुछ वानरोंके मुख लालवर्ण, कुछ वानरोंके रोम अत्यन्त बड़े बड़े हैं ॥ ९ ॥ और कोई वानर निर्मल स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल और शुक्लवर्ण, और कोई वानर राक्षसोंके आकारके हैं; देखो यह वानरोंका समूह युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ चारों ओर भ्रमण कर रहा है ॥१०॥ हे रघुनाथजी ! यह वानरोंकी सेना वनके फल मूलादिकोंको भक्षण करनेवाली है, और सब आपकी आज्ञाका पालन करनेवाली है और हे प्रभो ! यह ऋक्षराज परमपराक्रमी बुद्धिमान् जाम्बवान् करोड़ रीछोंकी सेनाका मालिक है ॥११॥ और अतितेजस्वी परम प्रसिद्ध पवनकुमार यह हनुमान्भी मेरे मंत्रियोंमें

केचिदञ्जनकूटाभाः केचित्कनकसन्निभाः ॥ केचिद्रक्तान्तवदना दीर्घवालास्तथापरे ॥ ९ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशाः केचिद्राक्षससन्निभाः ॥ गर्जन्तः परितो यान्ति वानरा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १० ॥ त्वदाज्ञाकारिणः सर्वे फलमूलाशनाः प्रभो ॥ ऋक्षाणामधिपो वीरो जाम्बवान्नाम बुद्धिमान् ॥ ११ ॥ एष मे मन्त्रिणां श्रेष्ठः कोटिभल्लूकवृन्दपः ॥ हनूमानेष विख्यातो महासत्त्वपराक्रमः ॥ १२ ॥ वायुपुत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमतां वरः ॥ नलो नीलश्च गवयो गवाक्षो गन्धमादनः ॥ १३ ॥ शरभो मैन्दवश्चैव गजः पनस एव च ॥ वलीमुखो दधिमुखः सुषेणस्तार एव च ॥ १४ ॥ केसरी च महासत्त्वः पिता हनुमतो बली ॥ एते मे यूथपा राम प्राधान्येन मयोदिताः ॥ १५ ॥ महात्मानो महावीर्याः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ एते प्रत्येकतः कोटिकोटिवानरयूथपाः ॥ १६ ॥ तवाज्ञाकारिणः सर्वे सर्वे देवांशसम्भवाः ॥ एष वालिसुतः श्रीमानङ्गदो नाम विश्रुतः ॥ १७ ॥ वालितुल्यबलो वीरो राक्षसानां बलान्तकः ॥ एते चान्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १८ ॥

श्रेष्ठ है, और नल, नील, गय, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ, मैन्दव, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार और हनुमान्के पिता परमपराक्रमी केसरी, यह मेरे सेनापति हैं. हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह सब मैंने प्रधान प्रधान गिनाए औरभी अनेक हैं और यह सब इन्द्रके समान पराक्रमी महाबलवान् परमयशस्वी और प्रत्येक करोड़ करोड़ वानरोंके अधिपति हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे रघुनाथजी ! देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए इन सम्पूर्ण वानरोंके समूहोंको आप अपना आज्ञाकारी जानिये. हे प्रभो ! यह परमप्रसिद्ध वालिकुमार वालिके तुल्य परम पराक्रमी महावीर और राक्ष-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सौंकी सेनाको नष्ट करनेवाला श्रीमान् अंगद आपके सन्मुख खडा है; यह सब और अन्य अन्यभी बहुतसे महावीर सेनापति वानर आपके निमित्त प्राणपर्यन्त त्यागनेको तयार हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ यह सब महावीर पर्वतोंके शिखरोंके द्वारा युद्ध करके शत्रुको नष्ट करनेमें परमप्रवीण हैं. हे रघुकुलशिरोमणि ! आप इन सबको अपने अधीन जानकर आज्ञा दीजिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार कहनेके अनंतर श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको हृदयसे लगाकर आनन्दके कारण नेत्रोंमें जलभर कहने लगे कि हे मित्र ! मैं जानता हूँ कि तुम इस बड़े भारी कार्यको पूर्णरीतिसे जानते हो ॥ २० ॥ अब जानकीको ढूँढ़नेके निमित्त यदि तुम्हारी इच्छा होय तो इस कार्यकेलिये वानरोंको आज्ञा दीजिये. श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर वानरश्रेष्ठ

योद्धारः पर्वताग्रैश्च निपुणाः शत्रुघातने ॥ आज्ञापय रघुश्रेष्ठ सर्वे ते वशवर्तिनः ॥ १९ ॥ रामः सुग्रीवमालिङ्ग्य हर्षपूर्णा श्रुलोचनः ॥ प्राह सुग्रीव जानासि सर्वं त्वं कार्यगौरवम् ॥ २० ॥ मार्गणार्थं हि जानक्या नियुङ्क्ष्व यदि रोचते ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः प्रीतमानसः ॥ २१ ॥ प्रेषयामास बलिनो वानरान् वानरर्षभः ॥ दिक्षु सर्वासु विविधान्वानरान् प्रेष्य सत्वरम् ॥ २२ ॥ दक्षिणां दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान् ॥ युवराजं जाम्बवन्तं हनूमन्तं महाबलम् ॥ २३ ॥ नलं सुषेणं शरभं मैन्दं द्विविदमेव च ॥ प्रेषयामास सुग्रीवो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २४ ॥ विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवन्तो जानकीं शुभाम् ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वं मच्छासनपुरःसराः ॥ २५ ॥ सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत् ॥ तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः ॥ २६ ॥ इति प्रस्थाप्य सुग्रीवो वानरान् भीमविक्रमान् ॥ रामस्य पार्श्वे श्रीरामं नत्वा चोपविवेश सः ॥ २७ ॥

सुग्रीवने प्रसन्न होकर महाबली परमपराक्रमी वानरोंको चारोंओर भेज दिये, और दक्षिण दिशामें नल, सुषेण, शरभ, मैन्द, द्विविद और महाबली अंगद, जाम्बवान्, हनुमान्, आदिको यत्नपूर्वक भेजा और यह कहदिया ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ कि हे वानरो ! शुभलक्षणा सीताजीको तुम यत्नपूर्वक ढूँढ़ो, और मेरी आज्ञाके अनुसार एक महीनेके भीतर लौट आओ ॥ २५ ॥ यदि सीताको विना देखे या एकमासके अनंतर एक दिन व्यतीत करके आओगे तो मैं तुमको प्राणदण्ड दूँगा ॥ २६ ॥ सुग्रीवने इसप्रकार परमपराक्रमी वानरोंको भेजकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उनके समीपमें बैठगया ॥ २७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी जातेहुए हनुमान्जीसे कहनेलगे कि हे पवनकुमार ! मेरे नामसे अंकित इस उत्तम अँगूठीको विश्वासके अर्थ एकान्तमें बैठीहुई सीताको देना ॥ २८ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! इस कार्यमें तुमही सहायक होओगे, मैं तुम्हारे सम्पूर्ण पराक्रमको जानताहूँ, अब तुम जाओ, मेरे आशीर्वादसे दुर्गम मार्गभी तुम्हैं सुगम होयगा ॥ २९ ॥ इसप्रकार वानरराज सुग्रीवके भेजेहुए अंगद आदि वानर सीताको ढूँढनेके निमित्त इधर उधर घूमने लगे ॥ ३० ॥ और घूमते घूमते उन्होंने विन्ध्याचल पर्वतके समान भयानक आकृतिवाला मृग और हस्तियोंको भक्षण करताहुआ एक राक्षस देखा ॥ ३१ ॥ कुछ वानर उस राक्षसका बड़ा शरीर देखकर यही रावण

गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ अभिज्ञानार्थमेतन्मे ह्यङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥ २८ ॥ मन्नामाक्षरसंयुक्तं सीतायै दीयतां रहः ॥ अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम ॥ जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव ॥ २९ ॥ एवं कपीनां राज्ञा ते विसृष्टाः परिमार्गणे ॥ सीताया अङ्गदमुखा बभ्रमुस्तत्र तत्र ह ॥ ३० ॥ भ्रमन्तो विन्ध्यगहने ददृशुः पर्वतोपमम् ॥ राक्षसं भीषणाकारं भक्षयन्तं मृगान् गजान् ॥ ३१ ॥ रावणोऽयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुंगवाः ॥ जघ्नुः किलकिलाशब्दं मुञ्चन्तोमुष्टिभिः क्षणात् ॥ ३२ ॥ नायं रावण इत्युक्त्वा ययुरन्यन्महद्वनम् ॥ तृषार्ताः सलिलं तत्र नाविन्दन् हरिपुंगवाः ॥ ३३ ॥ विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥ ददृशुर्गह्वरं तत्र तृणगुल्मावृतं महत् ॥ ३४ ॥ आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहंसान्निःसृतान्ददृशुस्ततः ॥ अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः ॥ सर्वे परस्परं धृत्वा बाहून्बाहुभिरुत्सुकाः ॥ ३६ ॥

है, ऐसा अनुमान करके तत्काल किल किल शब्द करके उसके ऊपर मुष्टियोंका प्रहार करने लगे ॥ ३२ ॥ रावण अति पराक्रमी है इसकारण इस साधारण मुष्टियोंके प्रहारसे उसको क्या क्लेश होयगा और वह कब सह सकैगा ? इसकारण यह रावण नहीं है ऐसा विचारकर वह वानर दूसरे बड़े वनमें चले गये. उन वानरोंने तहाँ प्याससे व्याकुल होकर तहाँ जल नहीं पाया उस महावनमें इधर उधर फिरने लगे कंठ और तालु सूख गया फिर तहाँ तृण लता आदिसे ढ़कीहुई एक भयानक गुहा देखी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उस गुहामेंसे गीले पंखवाले क्रौंच और हंसोंको निकलतेहुए देखकर तिन वानरोंने अनुमान किया कि इसके भीतर निःसन्देह जल है इसकारण हम अवश्यही इसके भीतर जाँय ॥ ३५ ॥ ऐसा विचार करके पहिले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो हनुमान् घुसे, तदनंतर सब वानर एकका एक हाथ पकड़ शृंखला बांधकर उत्कंठासे तिस गुहामें घुसे ॥ ३६ ॥ उन वानरोंने तिस महा अंधकार युक्त गुहामें जाते जाते बहुत दूरपर स्फटिक मणिके समान निर्मल सरोवर और पके हुए सुन्दर फलोंके बोझेसे ढके हुए कल्पवृक्षके समान अनेक वृक्ष देखे ॥ ३७ ॥ मणि वस्त्रादिसे परिपूर्ण मनुष्योंसे रहित नानाप्रकारके भोजनके द्रव्योंसे युक्त स्थानोंको और तिन वृक्षोंको देखकर वह सब आश्चर्यमें होगये, और एक गृहमें होगये, और एक गृहमें विचित्र सुवर्णके आसनपर बैठी हुई वल्कलधारिणी योगिनीको देखकर भयभीत हो सबने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया; कान्तिसे प्रकाशमान तिस योगिनीने ध्यानसे चित्तको हटाकर इन वानरोंसे कहा, कि हे वानरो ! तुम किसकारण और

अन्धकारे महद्दूरं गत्वाऽपश्यन् कपीश्वराः ॥ जलाशयान्मणिनिभतोयान् कल्पद्रुमोपमान् ॥ ३७ ॥ वृक्षान्पक्वफलैर्नम्रान्मधुद्रोणसमन्वितान् ॥ गृहान् सर्वगुणोपेतान् मणिवस्त्रादिपूरितान् ॥ ३८ ॥ दिव्यभक्ष्यान्नसहितान्मानुषैः परिवर्जितान् ॥ विस्मितास्तत्र भवने दिव्ये कनकविष्टरे ॥ ३९ ॥ प्रभया दीप्यमानां तु ददृशुः स्त्रियमेकलाम् ॥ ध्यायन्तीं चीरवसनां योगिनीं योगमास्थिताम् ॥ ४० ॥ प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः ॥ दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूयं किमागताः ॥ ४१ ॥ कुतो वा कस्य दूता वा मत्स्थानं किं प्रधर्षथ ॥ तच्छ्रुत्वा हनुमानाह शृणु वक्ष्यामि देवि ते ॥ ४२ ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् राजा दशरथः प्रभुः ॥ तस्य पुत्रो महाभागो ज्येष्ठो राम इति श्रुतः ॥ ४३ ॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य सभार्यः सानुजो वनम् ॥ गतस्तत्र हृता भार्या तस्य साध्वी दुरात्मना ॥ ४४ ॥ रावणेन ततो रामः सुग्रीवं सानुजो ययौ सुग्रीवो मित्रभावेन रामस्य प्रियवल्लभाम् ॥ ४५ ॥ मृगयध्वमिति प्राह ततो वयमुपागताः ॥ ततो वनं विचिन्वन्तो जानकीं जलकाङ्क्षिणः ॥ ४६ ॥

किस स्थानसे यहां आये हो ? और तुम्हें किसने भेजा है किसकारण विघ्नकर रहे हो ? तिस योगिनीके इसप्रकार कथनको सुनकर हनुमान्‌जी बोले, कि हे देवि ! मैं बताता हूँ सुनो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अयोध्यापति महाराज दशरथ प्रसिद्ध राजा थे उनके बड़े पुत्र श्रीरामचन्द्रजी परम प्रसिद्ध हैं ॥ ४३ ॥ वह पिताकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त स्त्री जानकी और छोटे भ्राता लक्ष्मणसहित इस वनको आए हैं; इस वनमें श्रीरामचन्द्रजीकी पतिव्रता सीताको दुष्टात्मा रावणने हरलिया, तब छोटे भ्राता लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवके पास आकर उससे मित्रता करी, सो मित्रताके कारण सुग्रीवने वानरोंको आज्ञा दी है, कि हे वानरो ! श्रीरामचन्द्रजीकी परमप्रिया सीताको ढूँढो, सो हम इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वनमें इधरउधर सीताको ढूँढ़तेढूँढ़ते जलकी इच्छासे इस भयानक गुफामें प्रारब्धवशसे आगए हैं, हे देवि ! तुम कौन हो ? और किसकारणसे इस स्थानमें निवास करती हो ? सो सब हमसे कहो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसप्रकार कहनेपर वह योगिनी प्रसन्न होकर तिन वानरोंसे पिपासासे व्याकुल देखकर कहने लगी कि हे वानरो ! तुम अपनी इच्छाके अनुसार फल मूल खाओ, और अमृतके समान जलपान करके आओ, तब मैं आद्योपान्त सम्पूर्ण वृत्तान्त कहूँगी. वानर योगिनीके कहनेको स्वीकार करके गये और फल मूल खाकर तथा जलपान करके योगिनीके समीप आये और हाथ जोड़कर खड़े होगये तब दिव्य है दर्शन जिसका ऐसी वह योगिनी इसप्रकार हनुमान्जीसे कहने लगी ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

प्रविष्टा गह्वरं घोरं दैवादत्र समागताः ॥ त्वं वा किमर्थमत्रासि का वा त्वं वद नः शुभे ॥ ४७ ॥ योगिनी च तथा दृष्ट्वा वानरान् प्राह तद्दृष्टधीः ॥ यथेष्टं फलमूलानि जग्ध्वा पीत्वामृतं पयः ॥ ४८ ॥ आगच्छत ततो वक्ष्ये मम वृत्तान्तमादितः ॥ तथेति भुक्त्वा पीत्वा च तद्दृष्टास्ते सर्ववानराः ॥ ४९ ॥ देव्याः समीपं गत्वा ते बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिताः ॥ ततः प्राह हनूमन्तं योगिनी दिव्यदर्शना ॥ ५० ॥ हेमानाम पुरा दिव्यरूपिणी विश्वकर्मणः ॥ पुत्री महेशं नृत्येन तोषयामास भामिनी ॥ ५१ ॥ तुष्टो महेशः प्रददाविदं दिव्यपुरं महत् ॥ अत्र स्थिता सा सुदती वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५२॥ तस्या अहं सखी विष्णुतत्परा मोक्षकाङ्क्षिणी ॥ नाम्ना स्वयंप्रभा दिव्यगन्धर्वतनया पुरा ॥ ५३ ॥ गच्छन्ती ब्रह्मलोकं सा मामाहेदं तपश्चर ॥ अत्रैव निवसन्ती त्वं सर्वप्राणिविवर्जिते ॥ ५४ ॥ त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः ॥ भूभारहरणार्थाय विचरिष्यति कानने ॥ ५५ ॥

॥ ५० ॥ कि हे हनुमान् ! पूर्वकालमें परममनोहर दिव्य रूपवती हेमानामक विश्वकर्माकी कन्याने नृत्य गीत आदिसे महादेवजीको प्रसन्न किया था ॥ ५१ ॥ शीघ्रही प्रसन्न होकर महादेवजीने हेमाको यह परम सुन्दर नगरी दीथी, तब सुन्दरी हेमाने इस पुरीमें हजारों वर्षपर्यन्त निवास किया था ॥ ५२ ॥ तिस समय मैं मोक्षकी अभिलाषा करनेवाली और विष्णुभगवान्की सेवामें तत्पर होकर तिस हेमासे सखीभाव रखतीथी, मैं गन्धर्वकी पुत्री हूँ, मेरा नाम स्वयंप्रभा है ॥ ५३ ॥ हेमा ब्रह्मलोकको जातेसमय कहगई थी कि तू प्राणीमात्रसे रहित इसस्थानमें निवास करतीहुई तपस्या कर ॥ ५४ ॥ अविनाशी परमात्मा त्रेता युगमें राजादशरथके यहां जन्म लेकर पृथ्वीका भार दूर करनेके अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वनमें आवेंगे ॥ ५५ ॥ वानरोंके समूह तिन श्रीरामचन्द्रजीकी मायाके ढूँढ़नेके अर्थ यहाँ प्रवेश करेंगे, तू उनका सत्कार और प्रयत्नपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करके योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य विष्णुभगवानके सनातन पदको प्राप्त होयगी, सो हे वानरो! इसकारण शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करनेके निमित्त जानेको मेरी इच्छा है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तुम नेत्र मीचकर गुहाके बाहर चलो. वानरोंने यह वाक्य सुनकर शीघ्रतासे पहिले ही वनमें आगमन किया ॥ ५८ ॥ यह योगिनीभी तत्काल गुहाको त्यागकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप गइ और लक्ष्मणजी तथा सुग्रीव सहित श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन किया, और परमबुद्धिमान् तिस योगिनीने प्रदक्षिणा करके श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ वारंवार प्रणाम किया, उससमय उकसे शरीरपर रोमांच खड़े होगए, और गदगद वाणीसे कहने लगी, कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपकी दासी आपका दर्शन करनेके निमित्त आई हूँ,

मार्गन्तो वानरास्तस्य भार्यामायान्ति ते गुहाम् ॥ पूजयित्वाथ तान् गत्वा रामं स्तुत्वा प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥ यातासि भवनं विष्णोर्योगिगम्यं सनातनम् ॥ इतोऽहं गन्तुमिच्छामि रामं द्रष्टुं त्वरान्विता ॥ ५७ ॥ यूयं पिदध्वमक्षीणि गमिष्यथ बहिर्गुहाम् ॥ तथैव चक्रुस्ते वेगाद्गताः पूर्वस्थितं वनम् ॥ ५८ ॥ सापि त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम् ॥ तत्र रामं ससुग्रीवं लक्ष्मणं च ददर्श ह ॥ ५९ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं रामं प्रणम्य बहुशः सुधीः ॥ आह गद्गदया वाचा रोमाञ्चिततनूरुहा ॥ ६० ॥ दासी तवाहं राजेन्द्र दर्शनार्थमिहागता ॥ बहुवर्षसहस्राणि तप्तं मे दुश्चरं तपः ॥ ६१ ॥ गुहायां दर्शनार्थं ते फलितं मेऽद्य तत्तपः ॥ अद्य हि त्वां नमस्यामि मायायाः परतः स्थितम् ॥ ६२ ॥ सर्वभूतेषु चालक्ष्यं बहिरन्तरवस्थितम् ॥ योगमायाजवनिकाच्छन्नो मानुषविग्रहः ॥ ६३ ॥ न लक्ष्यसेऽज्ञानदृशां शैलूष इव रूपधृक् ॥ महाभागवतानां त्वं भक्तियोगविधित्सया ॥ ६४ ॥ अवतीर्णोऽसि भगवन् कथं जानामि तामसी ॥ लोके जानातु यः कश्चित्तव तत्त्वं रघूत्तम ॥ ६५ ॥

मैंने आपके दर्शन करनेके निमित्त हजारों वर्षपर्यन्त परम दुष्कर तप किया, आज वह मेरा तप सफल हुआ; अब मैं मायासे पर रहनेवाले आपको प्रणाम करतीहूँ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर और भीतर अदृश्यरूपसे निवास करते हो, तुम्हारी मायारूप परदेसे मनुष्य ढक रहे हैं, और तुमने योगमायासे अच्छिन्न होकर यह मनुष्यरूप धारण किया है ॥ ६३ ॥ जिसप्रकार स्त्रीवेषधारी पुरुष अज्ञपुरुषोंके जाननेमें नही आवै है, तिसीप्रकार मनुष्यका रूप धारण करनेवाले आपका वास्तविक स्वरूप अज्ञपुरुषोंके जाननेमें नहीं आवै है. हे भगवन् ! तुम परमभागवत पुरुषोंकी भक्तिरूप योगको विधान करनेकी इच्छासे इस पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए हो, अज्ञानसे ढकीहुई मैं आपको किसप्रकार जान-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सक्ती हूँ, क्योंकि त्रिलोकीमें कोई पुरुषही भक्तियोगके द्वारा आपको ईश्वर रूपसे जानता होगा ? ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मुक्तिके देनेवाले आपके चरणकमलोंका मैंने दर्शन किया, तुम्हारा यह रूप मेरे हृदयमें सदा विराजमान होवो ॥ ६६ ॥ संसार समुद्रके मिटानेवाले उत्तममार्गके दिखानेवाले और निष्किंचन पुरुषके धनरूप आपको धन, पुत्र, कलत्रादि विभूतियोंसे गर्वित जन नहीं देख सक्ता ॥ ६७ ॥ गुणसृष्टिसे निवृत्त, निष्किंचनधन, आत्माराम, निर्गुण व गुणात्मा आपके अर्थ नमस्कार हैं. मैं आपको कालरूपी, ईशान, आदि मध्य अंत इन करके रहित, सर्वत्र समभावसे विचरनेवाले परपुरुष मानती हूँ. हे देव ! मनुष्यदेहकी विडम्बनामात्र करनेवाले आपके चरितको कोई नहीं जानता ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

ममैतदेव रूपं ते सदा भातु त्वदालये ॥ राम ते पादयुगलं दर्शितं मोक्षदर्शनम् ॥ ६६ ॥ अदर्शनं भवार्णानां सन्मार्गपरिदर्शनम् ॥ धनपुत्रकलत्रादिविभूतिपरिदर्पितः ॥ अकिञ्चनधनं त्वाद्य नाभिधातुं जनोऽर्हति ॥ ६७ ॥ निवृत्तगुणमार्गाय निष्किञ्चनधनाय ते ॥ ६८ ॥ नमः स्वात्माभिरामाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ कालरूपिणमीशानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ६९ ॥ समं चरन्तं सर्वत्र मन्ये त्वां पुरुषं परम् ॥ देव ते चेष्टितं कश्चिन्न वेद नृविडम्बनम् ॥ ७० ॥ न तेऽस्ति कश्चिद्दयितो द्वेष्यो वा पर एव च ॥ त्वन्मायापिहितात्मानस्त्वां पश्यन्ति तथाविधम् ॥ ७१ ॥ अजस्याकर्तुरीशस्य देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ जन्मकर्मादिकं यद्यत्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ७२ ॥ त्वामाहुरक्षरं जातं कथाश्रवणसिद्धये ॥ केचित्कोसलराजस्य तपसः फलसिद्धये ॥ ७३ ॥ कौसल्यया प्रार्थ्यमानं जातमाहुः परे जनाः ॥ दुष्टराक्षसभूभारहरणायार्थितो विभुः ॥७४॥ ब्रह्मणा नररूपेण जातोऽयमिति केचन ॥ शृण्वन्ति गायन्ति च ये कथास्ते रघुनन्दन ॥७५॥

आपके न कोई प्यारा है, न कोई शत्रु है, न कोई पराया है परन्तु आपकी मायासे आवृत चित्तवाले आपको वैसा देखते हैं ॥ ७१ ॥ अजन्म, अकर्ता, और ईश्वर आपका जो देवता, तिर्यक्, मनुष्यादिदेहमें जो जन्मकर्मादिक सो अत्यन्त विडम्बना है ॥ ७२ ॥ और अक्षर अर्थात् अविनाशी आपको कोई तो कथाश्रवणसिद्धिके उत्पन्न हुये कहते हैं, कोई कोसलराजराजा दशरथकी तपस्याके फलकी सिद्धिके लिये उत्पन्न हुये हो ऐसा कहते हैं ॥ ७३ ॥ अन्य जन कौसल्याकी प्रार्थनासे उत्पन्न हुये कहते हैं, कोई ऐसा कहते हैं कि दुष्ट व राक्षसरूप पृथ्वीका भार हरनेके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे प्रभुने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नरदेह धारण किया है. इसप्रकार हे रघुनन्दन ! जो आपकी कथाओंको सुनते हैं व गाते हैं वे संसारसमुद्रसे तारनेवाले आपके चरणारविंदको देखते हैं, और आपकी मायाके गुणोंसे बँधीहुई मैं इनसे व्यतिरिक्त, गुणाश्रय, सबके अविषय और विभु आपको कैसे जान सक्ती हूं व कैसे स्तुति करसक्ती हूं, सो रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ, धनुषबाण धारण किये, सुग्रीवादिकोंसे युक्त, छोटे भाई लक्ष्मणसहित, आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥ इसप्रकार स्तुति किये गये, प्रणत जनोंके पाप हरनेवाले, रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर, अपनी भक्त उस योगिनीसे बोले कि तेरा क्या मनोरथ है ॥ ७८ ॥ वह योगिनी भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीसे बोली कि हे भक्तवत्सल ! हे प्रभो ! मैं चाहै जहां उत्पन्न होऊं

पश्यन्ति तव पादाब्जं भवार्णवसुतारणम् ॥ त्वन्मायागुणबद्धाहं व्यतिरिक्तं गुणाश्रयम् ॥ ७६ ॥ कथं त्वां देव जानीयां स्तोतुं वाऽविषयं विभुम् ॥ नमस्यामि रघुश्रेष्ठं बाणासनशरान्वितम् ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सुग्रीवादिभिरन्वितम् ॥ ७७ ॥ एवं स्तुतो रघुश्रेष्ठः प्रसन्नः प्रणताघहृत् ॥ उवाच योगिनीं भक्तां किं ते मनसि काङ्क्षितम् ॥ ७८ ॥ सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल ॥ यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो ॥ ७९ ॥ त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न ॥ जिह्वा मे रामरामेति भक्त्या वदतु सर्वदा ॥ ८० ॥ मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ ८१ ॥ अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः ॥ भान्तं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो ॥ ८२ ॥ श्रीराम उवाच ॥ भवत्वेवं महाभागे गच्छ त्वं बदरीवनम् ॥ तत्रैव मां स्मरंती त्वं त्यक्त्वेदं भूतपञ्चकम् ॥ मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ॥ ८३ ॥

परंतु आप सर्वत्र मुझे अपनी अचल भक्ति देवो ॥ ७९ ॥ और मेरा सदा आपके भक्तोंहीमें संग रहै; प्राकृत पुरषोंमें नहीं, तथा मेरी जिव्हा 'राम राम' ऐसा भक्तिपूर्वक सर्वदा कहा करै ॥ ८० ॥ और मेरा मन सीतालक्ष्मणसहित, धनुषबाण धारण किये, पीताम्बरधारे, उज्ज्वल मुकुटधारे, अंगद (बजुल्ला) नूपुर मोतियोंका हार, कौस्तुभमणि वं कुण्डलोंसे शोभायमान, श्यामस्वरूपका स्मरण करता रहे. हे राम ! हे प्रभो ! दूसरा वर मैं नहीं मागती ॥८१॥८२॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे महाभागे ! ऐसाही होवे, अब तू बदरिकाश्रमको जा, वहां हमारा स्मरण करती हुई तू थोडेही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालसे पञ्चभूतमय इस शरीरको त्यागकर मेरेको प्राप्त होगी ॥ ८३ ॥ अमृतवत् मीठा श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुन तत्काल बैरेकी वृक्षसमूहसे युक्त बदरिकाश्रम तीर्थको जाकर उसी समय रघुपति श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करती वह योगिनी शरीरको छोड परम पदको प्राप्त होती भई ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किंधाकाण्डे पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि इसके अनन्तर सीताजीके ढूंढनेसे दुबले वे वीरनर वृक्षसमूहमें बैठकर दुःखित होने लगे ॥ १ ॥ तहां वानरश्रेष्ठ अंगदनामक कोई वानर उन वानरोंसे बोला, कि वनमें घूमते २ हम लोगोंको एक महीना बीत गया ॥ २ ॥ परंतु सीता हम लोगोंको मिली नहीं रा-

श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पं गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम् ॥ तीर्थं तदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती त्यक्त्वा कलेवरमवाप परं पदं सा ॥ ८४ ॥ इति श्रीमद० उमामहेश्वरसं० किष्किन्धाकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अथ तत्र समासीना वृक्षखण्डेषु वानराः ॥ चिन्तयन्तो विमुह्यन्तः सीतामार्गणकर्शिताः ॥१॥ तत्रोवाचांगदः कश्चिद्वानरान् वानरर्षभः ॥ भ्रमतां गह्वरेऽस्माकं मासो नूनं गतोऽभवत् ॥ २ ॥ सीता नाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम् ॥ यदि गच्छाम किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति ॥ ३ ॥ विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति ॥ मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः ॥ ४ ॥ इदानीं रामकार्यं मे न कृतं तन्मिषं भवेत् ॥ तस्य मद्धनने नूनं सुग्रीवस्य दुरात्मनः ॥ ५ ॥ मातृकल्पां भ्रातृभार्यां पापात्मानुभवत्यसौ ॥ न गच्छेयमतः पार्श्वं तस्य वानरपुंगवाः ॥ ६ ॥ त्यक्ष्यामि जीवितं चात्र येन केनापि मृत्युना ॥ इत्यश्रुनयनं केचिद्दृष्ट्वा वानरपुंगवाः ॥ ७ ॥ व्यथिताः साश्रुनयना युवराजमथाब्रुवन् ॥ ८ ॥

जाकी आज्ञा पूरी करी नहीं अब यदि किष्किंधाको जायँगे तो सुग्रीव हमें मारैगा ॥ ३ ॥ विशेषकरके शत्रुपुत्र मुझको इसी बहानेसे मारैगा, क्यों कि मुझपर उसकी प्रीति कहां थी, मेरा तो श्रीरामचन्द्रजीने रक्षण किया है ॥ ४ ॥ इससमय मैंने रामकाज किया नहीं यही उस दुष्टात्मा सुग्रीवका मेरे मारनेमें बहना हो जायगा ॥ ५ ॥ यह पापी सुग्रीव माताके सदृश भाईकी स्त्रीको भोग करता है, इसकारण हे वानर श्रेष्ठो ! उसके पास न जायँगे ॥ ६ ॥ यहाँपर जिस किसीप्रकारकी मौतसे देह त्याग दूंगा इसप्रकार आसूं भरे दुःखित अंगदको देख कोई २ वानरश्रेष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीडित हुये, और आखोंमें आंसू भरकर अंगदजीसे बोले ॥ ७ ॥ ८ ॥ कि हे अंगद ! इसमें आप किसलिये शोक करते हो ? हम लोग आपके प्राणरक्षक होंगे और भयरहित इसीगुहामें रहैंगे ॥ ९ ॥ यह पुर सर्व सौभाग्यसहित देवलोकके समान है परस्पर धीरे धीरे ऐसे कहते हुये वानरोंका वचन सुन नीतिविशारद मारुतनन्दन हनुमानजी अंगदको आलिंगन कर बोले कि आप यह बुरा विचार क्यों विचारते हैं ऐसा हो नहीं सक्ता ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ हे अङ्गद ! तू ताराको अति प्रियपुत्र हो तथापि महाराज सुग्रीवको निःसंदेह अत्यंत प्रिय हो, और श्रीरामचन्द्रजीके विषे तो लक्ष्मणसे भी अधिक प्रीति है, और प्रतिदिन वृद्धिकोही प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ इसकारण श्रीरामचन्द्रजीसे और विशेष करके सुग्रीवसे

किमर्थं तव शोकोऽत्र वयं ते प्राणरक्षकाः ॥ भवामो निवसामोऽत्र गुहायां भयवर्जिताः ॥ ९ ॥ सर्वसौभाग्यसहितं पुरं देवपुरोपमम् ॥ शनैः परस्परं वाक्यं वदतां मारुतात्मजः ॥ १० ॥ श्रुत्वाङ्गदं समालिङ्ग्य प्रोवाच नयकोविदः ॥ विचार्यते किमर्थं ते दुर्विचारो न युज्यते ॥ ११ ॥ राज्ञोऽत्यन्तप्रियस्त्वं हि तारापुत्रोऽतिवल्लभः ॥ रामस्य लक्ष्मणात्प्रीतिस्त्वयि नित्यं प्रवर्धते ॥ १२ ॥ अतो न राघवाद्प्रीतिस्तव राज्ञो विशेषतः ॥ अहं तव हिते सक्तो वत्स नान्यं विचारय ॥ १३ ॥ गुहावासश्च निर्भेद्य इत्युक्तं वानरैस्तु यत् ॥ तदेतद्रामबाणानामभेद्यं किं जगत्त्रये ॥ १४ ॥ ये त्वां दुर्बोधयन्त्येते वानरा वानरर्षभ ॥ पुत्रदारादिकं त्यक्त्वा कथं स्थास्यन्ति ते त्वया ॥ १५ ॥ अन्यद्गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं शृणु मे सुत ॥ रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १६ ॥

तो तुझको कदापि भय नहीं करना चाहिये. हे पुत्र ! मैं सदा तुम्हारा हित करनेमें ही लगा रहा हूँ, तुम्हैं और किसी प्रकारका विचार न करना चाहिये ॥ १३ ॥ और वानरोंने जो कहा, कि हम निर्भय होकर इस गुहामें निवास करेंगे अर्थात् कदापि सुग्रीवके पास नहीं जायँगे, सो हे अंगद ! तुम जरा विचार कर तो देखो ? भला वानरोंका इस प्रकार कहना क्यों कर ठीक हो सक्ता है ? त्रिलोकीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, कि जिसको श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणसे भेदन न कर सकैं ? ॥ १४ ॥ और हे वानरश्रेष्ठ अंगद ! यह जो सम्पूर्ण वानर तुमको खोटी सलाह दे रहे हैं सो यह अपने स्त्री पुत्रादिको त्यागकर किसप्रकार तुम्हारे पास रह सकेंगे ॥१५॥ हे पुत्र! और एक गुप्त वार्ता मैं तुमसे कहता हूँ सो सुनो. श्रीरा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मचन्द्रजी मनुष्य नहीं हैं किन्तु जन्ममरणरहित साक्षात् नारायण देव हैं, और सीताजी साक्षात् मायाके गुणोंसे संसारको मोहित करनेवाली महामाया हैं और लक्ष्मणजी पृथ्वीको धारण करनेवाले साक्षात् सर्पराज शेषजीका अवतार हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ यह सब ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर राक्षसोंके समूहोंका नाश करनेकेलिये मायासे मनुष्यरूपसे प्रकट हुए हैं. वास्तवमें यह त्रिलोकीके रक्षक हैं ॥ १८ ॥ और हम सब वैकुंठमें निवास करनेवाले विष्णु भगवान्के पार्षद हैं, जब परमात्माने अपनी इच्छासे मनुष्यका अवतार धारण किया, तब हमभी उनकी ही मायासे वानररूपसे उत्पन्न हुए हैं, और हम सब पूर्वकालमें तपस्याके द्वारा उनही त्रिलोकीके स्वामीकी आराधना करके उनके अनुग्रहसेही पार्षदपदको प्राप्त

सीता भगवती माया जनसम्मोहकारिणी ॥ लक्ष्मणो भुवनाधारः साक्षाच्छेषः फणीश्वरः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे रक्षोगणविनाशने ॥ मायामानुषभावेन जाता लोकैकरक्षकाः ॥ १८ ॥ वयं च पार्षदाः सर्वे विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः ॥ मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि ॥ १९ ॥ वयं वानररूपेण जातास्तस्यैव मायया ॥ वयं तु तपसा पूर्वमाराध्य जगतां पतिम् ॥ २० ॥ तेनैवानुगृहीताः स्मः पार्षदत्वमुपागताः ॥ इदानीमपि तस्यैव सेवां कृत्वैव मायया ॥ २१ ॥ पुनर्वैकुण्ठमासाद्य सुखं स्थास्यामहे वयम् ॥ इत्यङ्गदमथाश्वास्य गता विन्ध्यं महाचलम् ॥२२॥ विचिन्वन्तोऽथ शनकैर्जानकीं दक्षिणाम्बुधेः ॥ तीरे महेन्द्राख्यगिरेः पवित्रं पादमाययुः ॥२३॥ दृष्ट्वा समुद्रं दुष्पारमगाधं भयवर्धनम् ॥ वानरा भयसन्त्रस्ताः किं कुर्म इति वादिनः ॥२४॥ निषेदुरुदधेस्तीरे सर्वे चिन्तासमन्विताः ॥ मन्त्रयामासुरन्योन्यमंगदाद्या महाबलाः ॥२५॥ भ्रमतो मे वने मासो गतोऽत्रैव गुहान्तरे ॥ न दृष्टो रावणो वाद्य सीता वा जनकात्मजा ॥ २६ ॥

हुए थे, इससमय भी वानररूप करके तिनही परमात्माका सेवन करके फिर वैकुण्ठलोकको प्राप्त होंगे. इसप्रकार हनुमान्जीने अंगदको समझाया, फिर सब वानर विन्ध्याचल पर्वतपर गए ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ तहाँ जानकीजीको ढूँढते हुए, धीरे २ दक्षिणसमुद्रके तटपर महेन्द्राचल पर्वतके पास एक परमपवित्र छोटेसे पर्वतपर पहुँचे ॥ २३ ॥ तहाँ बेथाह और कठिनसे पार होनेहोग्य समुद्रको देखकर सम्पूर्ण वानर भयभीत होगये और कहने लगे कि अब हम क्या करैं ॥ २४ ॥ और चिन्तासे व्याकुल होकर सब समुद्रके तटपर बैठगये और अंगद आदि महाबली वह सब वानर आपसमें सलाह करने लगे ॥ २५ ॥ कि इस पर्वतकी गुहाओंमें फिरतेही फिरते हमको एकमास वीत गया, अबतक न रावणही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखा और न सीताही देखी ॥ २६ ॥ बड़ा कठोर है दंड जिनका ऐसे महाराज सुग्रीव निःसंदेहही हमको प्राणदंड देंगे, सो सुग्रीवके हाथसे मरनेकी अपेक्षा तो हमको स्वयं अन्नजलका त्याग करके प्राणोंको त्याग देना ही श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥ ऐसा निश्चय करके वहाँ ही सबने चारों ओर कुश बिछाये और मरणका निश्चय करके तिन कुशोंपर बैठगये ॥ २८ ॥ इसी अंतरमें तहाँ धीरेसे महेन्द्राचलपर्वतकी गुहामेंसे निकलकर पर्वतके समान शरीरवाला एक गृध्र आया ॥ २९ ॥ और अन्नजलको त्यागकर मरणका निश्चय करके बैठेहुए तिन वानरोंको देखकर धीरेसे कहने लगा, कि आज तो मुझे बहुतसा भोजन मिला, अब क्रमसे प्रतिदिन एक एक करके सबको भक्षण करूंगा; इसप्रकार उस गृध्रके कहनेको सुनकर सम्पूर्ण वान-

सुग्रीवस्तीक्ष्णदण्डोऽस्मान्निहन्त्येव न संशयः ॥ सुग्रीववधतोऽस्माकं श्रेयः प्रायोपवेशनम् ॥ २७ ॥ इति निश्चत्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥ उपाविवेशुस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र महेन्द्राद्रिगुहान्तरात् ॥ निर्गत्य शनकैरागाद्गृध्रः पर्वतसन्निभः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रायोपवेशेन स्थितान्वानरपुंगवान् ॥ उवाच शनकैर्गृध्रः प्राप्तो भक्षोऽद्य मे बहुः ॥ ३० ॥ एकैकशः क्रमात्सर्वान् भक्षयामि दिनेदिने ॥ श्रुत्वा तद्गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः ॥ ३१ ॥ भक्षयिष्यति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः ॥ रामकार्यं च नास्माभिः कृतं किंचिद्धरीश्वराः ॥ ३२ ॥ सुग्रीवस्यापि च हितं न कृतं स्वात्मनामपि॥वृथानेन वधं प्राप्ता गच्छामो यमसादनम्॥ ३३ ॥ अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः ॥ मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिन्दम ॥ ३४॥ सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम् ॥ के वा यूयं मम भ्रातुः कर्णपीयूषसन्निभम् ॥ ३५॥ जटायुरिति नामाद्य व्याहरन्तः परस्परम् ॥ उच्यतां वो भयं माभून्मत्तः प्लवगसत्तमाः ॥३६॥

रोंके मनमें भय उत्पन्न होगया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और आपसमें कहने लगे कि हे वानरो ! यह गृध्र निःसंदेह हम सबको भक्षण करलेगा, सो अब हमसे श्रीरामचन्द्रजीका कुछ कार्य न हुआ, और सुग्रीवकाभी कुछ हितसाधन न हुआ, तथा अपनाभी कुछ हित न हुआ, अब हम बेकारणही इस गृध्रके द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर यमलोकको जायँगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हाय ! परम बुद्धिमान् जटायुही धन्य था जो श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ प्राणोंको त्यागकर योगियोंको भी कठिनसे प्राप्त होने योग्य मोक्षपदको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ तब तो वह संपाती गृध्र इसप्रकार वानरोंके परस्पर भाषणको सुनकर कहने लगा, कि अरे तुम कौन हो जो कानोंको अमृतके समान सुख देनेवाले जटायु इस मेरे भ्राताके नामको उच्चारण करके इससमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परस्पर वार्तालाप कर रहे हो, सो मुझसे कहो, और मुझसे तुम किसी प्रकारका भय मत करो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तब तो श्रीमान् अंगद उठकर गृध्रके पास गये और कहने लगे, कि हे महात्मन् ! दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी और श्रीमान् लक्ष्मण और अपनी स्त्री सीतासहित दण्डकारण्यमें निवास करतेथे, सो एक दिन पर्णकुटीमें सीताजीको बैठाकर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी मृगया (शिकार) के निमित्त बाहर वनमें गये थे, इतनेहीमें दुष्टात्मा रावण सीताजीको हरकर लेगया, उससमय महाबली परम पराक्रमी पक्षिराज जटायुने आकाशमार्गमें हा राम ! हा रघुनाथ ! इस प्रकार करुणायुक्त विलापको सुनकर आकाशमार्गसें जाती हुई सीताजीकी रक्षण करनेके निमित्त रावणके साथ भयंकर

तमुवाचाङ्गदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ ॥ रामो दाशरथिः श्रीमान् लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ ३७ ॥ सीतया भार्यया सार्धं विचचार महावने ॥ तस्य सीता हृता साध्वी रावणेन दुरात्मना ॥ ३८ ॥ मृगयां निर्गते रामे लक्ष्मणे च हृता बलात् ॥ रामरामेति क्रोशन्ती श्रुत्वा गृध्रः प्रतापवान् ॥ ३९ ॥ जटायुर्नाम पक्षीन्द्रो युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ रावणेन हतो वीरो राघवार्थं महाबलः ॥ ४० ॥ रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत्क्षणात् ॥ रामः सुग्रीवमासाद्य सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ४१ ॥ सुग्रीवचोदितो हत्वा वालिनं सुदुरासदम् ॥ राज्यं ददौ वानराणां सुग्रीवाय महाबलः ॥ ४२ ॥ सुग्रीवः प्रेषयामास सीतायाः परिमार्गणे ॥ अस्मान्वानरवृन्दान्वै महासत्त्वान्महाबलः ॥ ४३ ॥ मासादर्वाङ्निवर्तध्वं नोचेत्प्राणान्हरामि वः ॥ इत्याज्ञया भ्रमन्तोऽस्मिन्वने गह्वरमध्यगाः ॥ ४४ ॥

युद्ध किया, और श्रीरामचन्द्रजीके निमित्त वह महात्मा जटायु रावणके हाथसे मारागया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं जटायुका दाह किया तिससे वह श्रीरामचंद्रजीके सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुआ; फिर श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके पास गये और अग्निको साक्षी करके सुग्रीवसे मित्रता करी ॥ ४१ ॥ फिर सुग्रीवके कहनेसे परम पराक्रमी बालीका प्राणान्त करके वानरोंका राज्य तिन परम पराक्रमी श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवको दे दिया, फिर महाबली महाराज सुग्रीवने सीताजीको ढूँढ़नेके निमित्त बड़े बड़े बलवान् हम वानरोंको भेजा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और यह आज्ञा दी, कि तुम एक मासके भीतर सीताको ढूँढ़कर नहीं लौटेगे तो तुम सबको प्राणदण्ड दूंगा; सो हम इस बनमें गुहाओंके विषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सीताको ढूँढ़नेके निमित्त घुमते रहे, इतनेहीमें एकमास व्यतीत होगया और हमको मालूम न हुआ परन्तु रावण और सीताकी वार्ताभी सुननेमें न आई, सो हम इस समुद्रके तटपर अन्नजलका त्यागकरके प्राणत्याग करनेके निमित्त बैठे हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हे पक्षिराज ! यदि तुम माता सीताको जानते हो, कि रावण किस स्थानमें हरकर लेगया तो हमैं बता दीजिये; इसप्रकार अंगदके वचनको सुनकर सम्पाती प्रसन्नचित्त हो कहने लगा कि हे वानरो ! बहुत दिनोंके अनंतर हजारों वर्षोंमें मैंने अपने परम प्रिय भ्राता जटायुका वृत्तान्त सुना है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ सो हे वानरो ! मैं पता बताकर सीताके ढूँढ़नेमें तुम्हारी सहायता करूंगा, परन्तु पहिले मुझे परम प्रिय भ्राता जटायुके निमित्त जलदान (तर्पण) करनेके लिये जला-

गतो मासो न जानीमः सीतां वा रावणं च वा ॥ मर्तुं प्रायोपविष्टाः स्मस्तीरे लवणवारिधेः ॥ ४५ ॥ यदि जानासि हे पक्षिन्सीतां कथय नः शुभाम् ॥ अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः ॥ ४६ ॥ उवाच मत्प्रियो भ्राता जटायुः प्लवगेश्वराः ॥ बहुवर्षसहस्रान्ते भ्रातृवार्ता श्रुता मया ॥ ४७ ॥ वाक्साहाय्यं करिष्येऽहं भवतां प्लवगेश्वराः ॥ भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम् ॥ ४८ ॥ पश्चात्सर्वं शुभं वक्ष्ये भवतां कार्यसिद्धये ॥ तथेति निन्युस्ते तीरं समुद्रस्य विहंगमम् ॥ सोऽपि तत्सलिले स्नात्वा भ्रातुर्दत्त्वा जलाञ्जलिम् ॥ ४९ ॥ पुनः स्वस्थानमासाद्य स्थितो नीतो हरीश्वरैः ॥ सम्पातिः कथयामास वानरान्परिहर्षयन् ॥ ५० ॥ लंकानाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि ॥ तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ ५१ ॥ समुद्रमध्ये सा लङ्का शतयोजनदूरतः ॥ दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते ॥ ५२ ॥

शयके समीप लेचलो, फिर तुम्हारा कार्य सिद्ध होनेके निमित्त सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहूँगा. इसप्रकार पक्षिराजके कहनेको स्वीकार करके वानर तिस सम्पातीको समुद्रके तटपर लैगये, तब उसने समुद्रके जलमें स्नान करके जलांजलि देकर भ्राताका तर्पण किया, फिर वानर तिस सम्पातीको उसही स्थानपर ले आये, तदनन्तर सम्पाती वानरोंके हर्षको बढ़ाता हुआ कहनेलगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ कि हे वानरो ! समुद्रके मध्यमें त्रिकूट पर्वतके ऊपर एक लंकानामनगरी है, उसमें अशोकवाटिकामें राक्षसियोंसे रक्षण करी हुई श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा सीता निवास करती है, गृध्रोंको बहुत दूरकी वस्तुभी दृष्टिगोचर होजाती है इसकारण यहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके बीचमें स्थित लंका और सीताजी मुझे दीखती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसमें तुम किसीप्रकारका संदेह मत करो, जो इस सौ योजन चौड़े समुद्रको उल्लंघन कर सकैगा वह निःसन्देह सीताजीका दर्शन करकेही लौटैगा क्या करूं मैं पक्षहीन हूँ नहीं तो भ्राता जटायुका प्राणान्त करनेवाले दुष्टात्मा रावणको मैं इकलाही यमलोकको पहुंचादेता ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ॥ ५४ ॥ हे वानरो ! तुम इस समुद्रको उल्लंघन करनेका यत्न करो तब श्रीरामचन्द्रजी दुष्टात्मा राक्षसपति रावणका प्राणान्त करेंगे ॥ ५५ ॥ अब तुम हे वानरो ! यह विचार करो, कि सौ योजन चौडे समुद्रको उल्लंघनकरके लंकापुरीमें जाकर तहाँ जानकीजीका दर्शन और उनसे संभाषण करके फिर समुद्रके इस पारको लौट आवै ऐसा तुम्हारेमें कौन है ? ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा-

गृध्रत्वाद्दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम् ॥ शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लङ्घयेत् ॥ ५३ ॥ स एव जानकीं दृष्ट्वा पुनरायास्यति ध्रुवम् ॥ अहमेव दुरात्मानं रावणं हन्तुमुत्सहे ॥ ५४ ॥ भ्रातुर्हन्तारमेकाकी किन्तु पक्षविवर्जितः ॥ यतध्वमतियत्नेन लङ्घितुं सरितां पतिम् ॥ ततो हन्ता रघुश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ५५ ॥ उल्लङ्घ्य सिन्धुं शतयोजनायतं लङ्कां प्रविश्याथ विदेहकन्यकाम् ॥ दृष्ट्वा समाभाष्य च वारिधिं पुनस्तर्तुं समर्थः कतमो विचार्यताम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहे० किष्किन्धाकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अथ ते कौतुकाविष्टा सम्पातिं सर्ववानराः ॥ पप्रच्छुर्भगवन् ब्रूहि स्वमुदन्तं त्वमादितः ॥ १ ॥ स म्पातिः कथयामास स्ववृत्तान्तं पुरा कृतम् ॥ अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ ॥ २ ॥ बलेन दर्पितावावां बलजिज्ञासया खगौ ॥ सूर्य-मण्डलपर्यन्तं गन्तुमुत्पतितौ मदात् ॥ ३ ॥ बहुयोजनसाहस्रं गतौ तत्र प्रतापितः ॥ जटायुस्तं परित्रातुं पक्षैराच्छाद्य मोहतः ॥ ४ ॥

दाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! जब सम्पातीने इसप्रकार कहा तब तो सब वानर आश्चर्यमें होगए और तिस सम्पातीसे बूझने लगे, कि हे भगवन् ! आप अपना आदिसे लेकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये ॥ १ ॥ तब तो सम्पाती अपना पहिला सम्पूर्ण वृत्तान्त कहने लगे कि हे वानरो ! पहिले मैं और जटायु दोनों भ्राता युवावस्थाको प्राप्त होकर बलसे बडे गर्वको प्राप्त हुए, और हम दोनों अपने बलकी जांच करनेके निमित्त सूर्यनण्डलपर्यन्त जानेके निमित्त बड़े घमंडके साथ उड़े ॥ २ ॥ ३ ॥ बहुत हजार योजनपर्यन्त जब पहुँचे तब भ्राता जटायु तो सूर्यके तेजसे संतापको प्राप्त होगया, तब मैंने स्नेहके कारण भ्राताको अपने पक्षोंसे ढकलिया तब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो सूर्यके किरणोंसे मेरे पक्ष (पंख) जलगये और इस विंध्याचल पर्वतके शिखरपर गिरगया, और हे वानरो ! दूरसे गिरनेके कारण उस समयमें मूर्च्छित होगया, यह नहीं मालूम हुआ कि मैं अपने देशमें हूं या पर्वतके शिखरोंपर पड़ा हूं पंखोंके जलनेसे भ्रान्त होरहा है मन जिसका ऐसा मैं तीन दिनके अनंतर कुछ होसमें हुआ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ और धीरेसे नेत्रोंको खोला तो समीपमें एक बड़ा रमणीय आश्रम दीखा, तब मैं धीरे धीरे उस आश्रमके समीप गया ॥ ७ ॥ तब तो तहां चन्द्रमा नामक मुनीश्वर मुझे देखकर आश्चर्य्यमें होगए, और कहनेलगे कि हे सम्पाते ! यह क्या हुआ ? और तुम्है विरूप किसने करदिया ॥ ८ ॥ मैं तुमको जानताहूँ, तुम तो पहिले बड़े बलवान् थे, तुम्हारे पंख किसप्रकार जलगए सो यदि

स्थितोऽहं रश्मिभिर्दग्धपक्षोऽस्मिन्विन्ध्यमूर्धनि ॥ पतितो दूरपतनान्मूर्च्छितोऽहं कपीश्वराः ॥ ५ ॥ दिनत्रयात्पुनः प्राणसहितो दग्धपक्षकः ॥ देशं वा गिरिकूटान्वा न जाने भ्रान्तमानसः ॥ ६ ॥ शनैरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा तत्राश्रमं शुभम् ॥ शनैः शनैराश्रमस्य समीपं गतवानहम् ॥ ७ ॥ चन्द्रमा नाम मुनिराट् दृष्ट्वा मां विस्मितोऽवदत् ॥ सम्पाते किमिदं तेऽद्य विरूपं केन वा कृतम् ॥ ८ ॥ जानामि त्वामहं पूर्वमत्यन्तं बलवानसि ॥ दग्धौ किमर्थं ते पक्षौ कथ्यतां यदि मन्यसे ॥ ९ ॥ ततः स्वचेष्टितं सर्वं कथयित्वातिदुःखितः ॥ अब्रुवं मुनिशार्दूलं दह्येऽहं दाववह्निना ॥ १० ॥ कथं धारयितुं शक्तो विपक्षो जीवितं प्रभो ॥ इत्युक्तोऽथ मुनिर्वीक्ष्य मां दयार्द्रविलोचनः ॥ ११ ॥ शृणु वत्स वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥ देहमूलमिदं दुःखं देहः कर्मसमुद्भवः ॥ १२ ॥ कर्म प्रवर्तते देहेऽहंबुद्ध्या पुरुषस्य हि ॥ अहंकारस्त्वनादिः स्यादविद्यासंभवो जडः ॥ १३ ॥

उचित समझो तो मुझसे कहो ॥ ९ ॥ तब मैंने अपना सब चेष्टित कह सुनाया, फिर दुःखित होकर कहने लगा कि हे मुने ! वडवानलके समान बड़ी भारी चिन्तासे मेरा चित्त महाव्याकुल होरहा है ॥ १० ॥ कि मै पंखोंके विना अपने जीवनको किसप्रकार व्यतीत करूँगा, जब मैंने इसप्रकार कहा तब तो वह दयालु मुनि नेत्रोंमें जल भरकर मेरी ओर देखकर कहने लगे ॥ ११ ॥ कि हे पुत्र ! मैं अब जो कहताहूं सो सुन, फिर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा करना. हे सम्पाते ! यह जो कुछ दुःख है सो देहमूलक है अर्थात् जबतक शरीरोपाधि है तबतकही दुःख है, और देह कर्म्मोंके द्वारा उत्पन्न हुआ है, और देहके विषे " अहंबुद्धि—मैं देह हूँ ऐसी बुद्धि " होनेपर पुरुषकी कर्म्मोंमें प्रवृत्ति होती है, और अहंबुद्धि अहंकार (मैं देहहूँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी बुद्धि) अनादि जड़ परविद्यासे उत्पन्न होनेवाली है, वह अहंकार चैतन्यके प्रतिबिम्बसे इसप्रकार युक्त रहता है, जिसप्रकार लोहेके गोलेमें वास्तवमें अग्नि नहीं होती परन्तु वह गोला तपाकर लाल करनेसे अग्निके समान दीखने लगता है और दाहादि अग्निका कार्यभी करता है. इसीप्रकार उस अहंकारका देहके साथ तादात्म्य सम्बन्ध (जो भिन्न होकर भी अभिन्नसा दीखै उसे तादात्म्य कहते हैं) होनेसे देहभी चेतनयुक्तसा प्रतीत होने लगता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अहंकार अर्थात् मैं करताहूँ इसप्रकारकी बुद्धि होनेसे मैं देह हूँ ऐसी बुद्धि होती है उस बुद्धिसे ही सुखदुःखादिका कारण यह संसार अर्थात् शरीर धारण होता है ॥ १५ ॥ निर्विकार जीवात्माको मिथ्या तादात्म्य संबन्ध होनेसे मैं देह हूँ, मैं कर्म्मोंका करनेवाला हूँ ऐसा सदा प्रतीत होता है ॥ १६ ॥ इसकारणही जीव पापपुण्यरूप कर्म्मोंको करता है और तिन कर्म्मोंके फलके वशीभूत होकर

चिच्छायया सदा युक्तस्तप्तायःपिण्डवत्सदा ॥ तेन देहस्य तादात्म्याद्देहश्चेतनवान्भवेत् ॥ १४ ॥ देहोऽहमिति बुद्धिः स्यादात्मनोऽहं कृतेर्बलात् ॥ तन्मूल एष संसारः सुखदुःखादिसाधकः ॥ १५ ॥ आत्मनो निर्विकारस्य मिथ्यातादात्म्यतः सदा ॥ देहोऽहं कर्मकर्ताहमिति सङ्कल्प्य सर्वदा ॥ १६ ॥ जीवः करोति कर्माणि तत्फलैर्बध्यतेऽवशः ॥ ऊर्ध्वाधो भ्रमते नित्यं पापपुण्यात्मकः स्वयम् ॥ १७ ॥ कृतं मयाधिकं पुण्यं यज्ञदानादि निश्चितम् ॥ स्वर्गं गत्वा सुखं भोक्ष्य इति सङ्कल्पवान्भवेत् ॥ १८ ॥ तथैवाध्यासतस्तत्र चिरं भुक्त्वा सुखं महत् ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कर्मचोदितः ॥ १९ ॥ पतित्वा मण्डले चेन्दोस्ततो नीहारसंयुतः ॥ भूमौ पतित्वा व्रीह्यादौ तत्र स्थित्वा चिरं पुनः ॥ २० ॥

बंधनको प्राप्त होता है, फिर यदि पापकर्म करै तो चिरकालपर्यन्त अधोगतिको प्राप्त होता है; और पुण्य कर्म करै तो स्वर्गमें निवास करता है ॥ १७ ॥ जीवात्मा ऐसी अभिलाषा करता है, कि मैंने बहुत पुण्य और यज्ञदानादि कर्म किये हैं इसकारण मैं निःसन्देह स्वर्गलोकमें जाकर सुख भोगूंगा ॥ १८ ॥ परन्तु वह जीवात्मा इस अपने अध्यास (अन्यथाबुद्धि) से स्वर्गलोकमें चिरकालपर्यन्त अत्यन्त सुख भोगकर फिर पुण्यका क्षय होनेके कारण इच्छा न करनेपरभी कर्मके वशीभूत होकर नीचेको गिरता है, और गिरकर वह सूक्ष्मशरीर धारी जीव चन्द्रमण्डलको प्राप्त होता है,तहाँ नीहार (कुहर) संयुक्त होकर पृथ्वीतलमें आता है और धान्योंमें प्रवेश करताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिस धान्यमें बहुतकालतक स्थिर रहकर तिस धान्यके बनाए हुए चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय; उस चारप्रकारके द्रव्यके रूपमें परिणामको प्राप्त होताहै, तदनन्तर पुरुषोंसे भोजन कियाजाता है, फिर उस पुरुषका वीर्यरूप होकर ऋतुकालमें स्त्रीकी योनिमें सींचा जाताहै, फिर स्त्रीकी योनिके रुधिरमें मिलकर जरायु (जेल) में लिपटता है, फिर एक दिनके अनंतर कललरूप होकर दृढताको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर पांचरात्रिके अनंतर बुद्बुदेके आकारको होजाता है, और सात रात्रिके अनंतर मांसकी थैलीके आकारको प्राप्त होजाता है ॥ २३ ॥ पंद्रहदिनमें वह थैली रुधिरसे भरजाती है, पच्चीस रात्रिके अनंतर उस मांसकी थैलीसेही अंकुर उत्पन्न होनेलगते हैं ॥ २४ ॥ और एकमासतक

भूत्वा चतुर्विधं भोज्यं पुरुषैर्भुज्यते ततः ॥ रेतो भूत्वा पुनस्तेन ऋतौ स्त्रीयोनिंसिञ्चितः ॥ २१ ॥ योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम् ॥ दिनेनैकेन कललं भूत्वा रूढत्वमाप्नुयात् ॥ २२ ॥ तत्पुनः पञ्चरात्रेण बुद्बुदाकारतामियात् ॥ सप्तरात्रेण तदपि मांसपेशित्वमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ पक्षमात्रेण सा पेशीरुधिरेण परिप्लुता ॥ तस्या एवाङ्कुरोत्पत्तिः पञ्चविंशतिरात्रिषु ॥ २४ ॥ ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथोदरम् ॥ पञ्चधाङ्गानि चैकैकं जायन्ते मासतः क्रमात् ॥ २५ ॥ पाणिपादौ तथा पार्श्वः कटिर्जानु तथैव च ॥ मासद्वयात्प्रजायन्ते क्रमेणैव न चान्यथा ॥ २६ ॥ त्रिभिर्मासैः प्रजायन्ते अङ्गानां सन्धयः क्रमात् ॥ सर्वाङ्गुल्यः प्रजायन्ते क्रमान्मासचतुष्टये ॥ २७ ॥ नासा कर्णौ च नेत्रे च जायन्ते पञ्चमासतः ॥ दन्तपङ्क्तिर्नखा गुह्यं पञ्चमे जायते तथा ॥ २८ ॥ अर्वाक्षण्मासतश्छिद्रं कर्णयोर्भवति स्फुटम् ॥ पायुर्मेढ्रमुपस्थं च नाभिश्चापि भवेन्नृणाम् ॥ २९ ॥

क्रमसे उस मांसकी थैलीमें ग्रीवा शिर कंधे, पींठ और पेट, यह पांच अंग उत्पन्न होजाते हैं ॥ २५ ॥ दूसरे महीनेमें क्रमसे हाथ, पैर, पसली, कमर और जानु (घुटुए) यह पांच अंग उत्पन्न होते हैं; और तीसरे महीनेमें क्रमसे सब अंगोंकी संधियें (जोड़) उत्पन्न होते हैं, चौथे महीनेमें क्रमसे सब अंगुलिये उत्पन्न होती हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ पांचवे महीनेमें नासिका, कर्ण, नेत्र, दांतोंकी पंक्ति, नख और गुह्यस्थान (मूत्रस्थान) यह अंग उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥ छठे महीनेके भीतर कर्णोंमें स्पष्ट छिद्र होजाते हैं और गुदा, मेढ्र, उपस्थ और नाभि प्रकट होती हैं ॥ २९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सातवे महीनेमें रोम तथा शिरके केश उत्पन्न होते हैं, आठवे महीनेमें सम्पूर्ण अंग अलग अलग स्पष्ट तयार होजातेहैं. हे पक्षिराज ! इसप्रकार स्त्रीके उदरमें गर्भ वृद्धिको प्राप्त होता है और पांचवे महीनेमें जीव सब प्रकारसे चेतनताको प्राप्त होजाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और इस गर्भकी नाभिमें लिपटेहुए नालके सूक्ष्म छिद्रमें होकर माताके भोजन किये हुए अन्नका रस जाता है, तिससे वह बालक पुष्टिको प्राप्त होता है और अपने कर्मके योगसे मृत्युको भी नहीं प्राप्त होता ॥ ३२ ॥ और अपने सम्पूर्ण पहिले जन्म और कर्मोंको स्मरण करताहुआ माताके उदरकी अग्निसे संतापको प्राप्त होकर कहता है ॥ ३३ ॥ कि हाय मैंनें नाना प्रकारकी सहस्रों योनियोंमें जन्म लेकर पुत्र स्त्री आदि संबन्ध और करोडों, पशु, बांधव और

सप्तमे मासि रोमाणि शिरः केशास्तथैव च ॥ विभक्तावयवत्वं च सर्वं सम्पद्यतेऽष्टमे ॥ ३० ॥ जठरे वर्धते गर्भः स्त्रिया एवं विहंगम ॥ पञ्चमे मासि चैतन्यं जीवः प्राप्नोति सर्वशः ॥ ३१ ॥ नाभिसूत्राल्परन्ध्रेण मातृभुक्तान्नसारतः ॥ वर्धते गर्भगः पिण्डो न म्रियेत स्वकर्मतः ॥ ३२ ॥ स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्वकर्माणि सर्वशः ॥ जठरानलतप्तोऽयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥ नानायोनिसहस्रेषु जायमानोऽनुभूतवान् ॥ पुत्रदारादिसम्बन्धं कोटिशः पशुबान्धवान् ॥ ३४ ॥ कुटुम्बभरणासक्त्या न्यायान्यायैर्धनार्जनम् ॥ कृतं नाकरवं विष्णुचिन्ता स्वप्नेऽपि दुर्भगः ॥ ३५ ॥ इदानीं तत्फलं भुञ्जे गर्भदुःखं महत्तरम् ॥ अशाश्वते शाश्वतवद्देहे तृष्णासमन्वितः ॥ ३६ ॥ अकार्याण्येव कृतवान्न कृतं हितमात्मनः ॥ इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः ॥ ३७ ॥ कदा निष्क्रमणं मे स्याद्गर्भान्निरयसन्निभात् ॥ इत ऊर्ध्वं नित्यमहं विष्णुमेवानुपूजये ॥ ३८ ॥

कुटुम्बका पालन करनेकी आसक्ति करके न्याय और अन्यायसे धन पैदा करना इन सब वार्ताओंका पूर्ण रीतिसे अनुभव किया, परन्तु मुझ हतभाग्यने स्वप्नमें भी विष्णुभगवान्का चिंतवन न किया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अब मैं उसका फल भोग रहा हूँ कि मुझे गर्भमें निवास करके यह बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ा है ॥ ३६ ॥ हाय ! मैंने नाशवान् देहको नित्य जानकर तृष्णायुक्त हो अनेक न करनेयोग्य कार्य्य किये, और भगवान्का चिन्तवन करके अपना हितसाधन न किया इसकारणही अपने कर्म्मोंके वशीभूत होकर अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगरहा हूँ ॥ ३७ ॥ इस नरकके समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गर्भसे मेरा निकलना कब होयगा, अब मैं आगेको गर्भसे निकलकर नित्य विष्णुभगवान्का पूजन करूंगा ॥ ३८ ॥ इत्यादि अनेक प्रकारके विचार करताहुआ यह जीव तबतक योनिरूप यंत्रसे पीडित होता रहता है जबतक उत्पन्न होता है और उत्पन्न होतेसमय नरकसे छूटतेहुए पुरुषके समान दुःखको प्राप्त होता है, फिर पीबसे भरे हुए घावसे निकलकर गिरे हुए कीड़ेके समान यह जीव चेष्टा करता है अर्थात् कुलवलाने लगता है, फिर अनेक प्रकारके बाल्यावस्थाके दुःख भोगता है, इसप्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंको दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे गृध्र ! यह दुःख तुमनेभी भोगे होंगे और सर्वत्र विदित हैं, इसकारण मैंने युवावस्था आदिके दुःख वर्णन नहीं करे ॥ ४१ ॥ मैं देह हूँ इसप्रकार अभ्यास होनेसे नरक आदिकी प्राप्ति

इत्यादि चिन्तयन् जीवो योनियन्त्रप्रपीडितः ॥ जायमानोऽतिदुःखेन नरकात्पातकी यथा ॥ ३९ ॥ पूतिव्रणान्निपतितः कृमिरेष इवापरः ॥ ततो बाल्यादिदुःखानि सर्वे एवं विभुञ्जते ॥ ४० ॥ त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानि च ॥ न वर्णितानि मे गृध्र यौवनादिषु सर्वतः ॥ ४१ ॥ एवं देहोऽहमित्यस्मादभ्यासान्नरयादिकम् ॥ गर्भवासादिदुःखानि भवन्त्यभिनिवेशतः ॥ ४२ ॥ तस्माद्देहद्वयादन्यमात्मानं प्रकृतेः परम् ॥ ज्ञात्वा देहादिममतां त्यक्त्वात्मज्ञानवान् भवेत् ॥ ४३ ॥ जाग्रदादिविनिर्मुक्तं सत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥ शुद्धं बुद्धं सदा शान्तमात्मानमवधारयेत् ॥ ४४ ॥ चिदात्मनि परिज्ञाते नष्टे मोहेऽज्ञसम्भवे ॥ देहः पततु वारब्धकर्मवेगेन तिष्ठतु ॥ ४५ ॥ योगिनो नहि दुःखं वा सुखं वाज्ञानसम्भवम् ॥ तस्माद्देहेन सहितो यावत्प्रारब्धसंक्षयः ॥ ४६ ॥

होती है, और गर्भवास आदि दुःखभी इस अहंबुद्धिके वशीभूत होकरही भोगने पड़ते हैं ॥ ४२ ॥ तिसकारण स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहोंसे पृथक् मायासे पर अपने आत्मस्वरूपको जानकर और देहादिकी ममताको त्यागकर ज्ञानवान् होय ॥ ४३ ॥ जाग्रत आदि अवस्थाओंसे रहित सत्य ज्ञान आदि स्वरूप शुद्ध बुद्ध सदा शान्तरूप आत्माका चिंतवन करै ॥ ४४ ॥ चैतन्यस्वरूप आत्माका ज्ञान होनेपर और अविद्यासे उत्पन्न होनेवाले मोहका नाश होनेपर देह नष्ट होजाय अथवा प्रारब्धकर्मके बलसे स्थित रहै, ज्ञानीको उससे कुछ प्रयोजन नहीं ॥ ४५ ॥ क्योंकि ज्ञानीको शरीरके त्यागसे दुःख और शरीरके रहनेसे सुख नहीं होता है, इसमें कारण यह है कि सुख और दुःख अज्ञानसे उत्पन्न होते हैं, सो जबतक प्रारब्धकर्मोंका नाश नहीं होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है तबतक जीव ज्ञानको प्राप्त होकरभी शरीरको धारण कर रहता है ॥ ४६ ॥ सो हे पक्षिराज ! जबतक तेरा प्रारब्धकर्म है तबतक तू कैंचलीसे युक्त सर्पके समान शरीरको धारण कर. अब मैं तेरे परम हितकी और वार्ता कहताहूं उसको श्रवण कर ॥ ४७ ॥ त्रेतायुगमें अविनाशी नारायण दशरथराजकुमार श्रीरामचन्द्रका अवतार धारण करके रावणका वध करनेके निमित्त स्त्री सीता और भ्राता लक्ष्मणसहित दण्डकारण्यमें आवेंगे ॥ ४८ ॥ और तिस दण्डकारण्यके विषे आश्रममें दोनों भ्राताओंके न होनेपर रावण सीताको चोरके समान हरण करके लंकामें लेजाकर रक्खैगा, फिर सुग्रीवकी आज्ञासे तिस सीताको ढूँढनेके निमित्त समुद्रके तटपर वानर आवेंगे, तहाँ तुह्मारा

तावत्तिष्ठ सुखेन त्वं धृतकञ्चुकसर्पवत् ॥ अन्यद्वक्ष्यामि ते पक्षिन् शृणु मे परमं हितम्॥४७॥ त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः॥ रावणस्य वधार्थाय दण्डकानागमिष्यति ॥ ४८ ॥ सीतया भार्यया सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ तत्राश्रमे जनकजां भ्रातृभ्यां रहिते वने ॥ ४९ ॥ रावणश्चोरवन्नीत्वा लङ्कायां स्थापयिष्यति ॥ तस्याः सुग्रीवनिर्देशाद्वानराः परिमार्गणे ॥ ५० ॥ आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरं तत्र समागमः ॥ त्वया तैः कारणवशाद्भविष्यति न संशयः ॥ ५१ ॥ तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः ॥ तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ ॥ ५२ ॥ सम्पातिरुवाच ॥ बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः ॥ पश्यन्तु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ ॥ ५३ ॥ स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम् ॥ यत्नं कुरुध्वं दुर्लङ्घ्यसमुद्रस्य विलङ्घने ॥५४॥ यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम् ॥ तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः ॥५५॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥८॥

उनके साथ कारणवशसे निःसंदेह समागम होगा ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तब तुम उन वानरोंसे सीताके रहनेका स्थान यथार्थ कहोगे तब तत्कालही तुम्हारे दोनों पक्ष नवीन उत्पन्न होजायँगे ॥ ५२ ॥ सम्पाती कहने लगा कि हे वानरो ! उन चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरने मुझसे इस प्रकार कहा था सो देखो अब मेरे कोमल नवीन पंख निकल आये हैं ॥५३ ॥ हे वानरो ! तुम्हारा कल्याण होय, मैं तो अब जाताहूँ, और तुम्हैं निःसंदेह सीताका दर्शन होयगा; कठिनसे उल्लंघन करनेयोग्य समुद्रको उल्लंघन करनेका यत्न करो ॥ ५४ ॥ जिन श्रीरामचंद्रजीके नामका स्मरण करने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्रहीसे संसाररूप समुद्रको उत्तीर्ण होकर पापात्मा पुरुषभी सनातन विष्णुपदको प्राप्त होजाताहै, उनही जगत्के रक्षक श्रीरामचंद्रजीके परम-प्रिय भक्त होकर क्या तुम इस क्षुद्र समुद्रके उल्लंघन करनेको समर्थ नहीं होओगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ महादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! जब इसप्रकार कहकर गृध्रराज सम्पाती आकाशमार्गको चलागया, तब तो वानर बड़ेही हर्षसे युक्त हुए, और सीता-जीके दर्शनकी अभिलाषा करनेलगे ॥ १ ॥ और समुद्रको देखकर परस्पर इसप्रकार कहने लगे कि नक्रादि जलचर समूहोंसे भयंकर तरंगोंकरके ऊपरको बढ़नेवाले और आकाशके समान अपार कठिनसे उल्लंघन करनेयोग्य इस समुद्रको हम किसप्रकार उल्लंघन

श्रीमहादेव उवाच ॥ गते विहायसा गृध्रराजे वानरपुंगवाः ॥ हर्षेण महताविष्टाः सीतादर्शनलालसाः ॥ १ ॥ ऊचुः समुद्रं पश्यन्तो नक्रचक्रभयङ्करम् ॥ तरङ्गादिभिरुन्नद्धमाकाशमिव दुर्ग्रहम् ॥ २ ॥ परस्परमवोचन्वै कथमेनं तरामहे ॥ उवाच चाङ्गदस्तत्र शृणुध्वं वानरोत्तमाः ॥ ३ ॥ भवन्तोऽत्यन्तबलिनः शूराश्च कृतविक्रमाः ॥ को वाऽत्र वारिधिं तीर्त्वा राजकार्यं करिष्यति ॥ ४ ॥ एतेषां वानराणां स प्राणदाता न संशयः ॥ अतोत्तिष्ठतु मे शीघ्रं पुरतो यो महाबलः ॥ ५ ॥ वानराणां च सर्वेषां रामसुग्रीवयोरपि ॥ स एव पालको भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥ इत्युक्ते युवराजेन तूष्णीं वानरसैनिकाः ॥ आसन्नोचुः किञ्चिदपि परस्परविलोकिनः ॥ ७ ॥ अङ्गद उवाच ॥ उच्यतां वै बलं सर्वैः प्रत्येकं कार्यसिद्धये ॥ केन वा साध्यते कार्यं जानीमस्तदनन्तरम् ॥ ८ ॥

करै, तब उनमेंसे अंगद कहने लगे कि हे वानरो ! सुनो. तुम सब अत्यन्त बलवान् हो, शूर हो और तुमने बड़े बड़े पराक्रम किये हैं, अब यह बताओ कि तुममें ऐसा कौन है जो इस समुद्रका उल्लंघन करके राजकार्य्यको करैगा ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ निःसन्देह वह महात्मा सम्पूर्ण वानरोंको प्राणदान देगा, इसकारण जो महाबली इस कार्य्यको करनेका साहस रखता हो वह शीघ्रही मेरे सामने आवै ॥ ५ ॥ निःसन्देह जो इस कार्य्यको करैगा वही सम्पूर्ण वानरोंको क्या श्रीरामचन्द्र और सुग्रीवका रक्षक होयगा ॥ ६ ॥ जब इसप्रकार युवराज अंगदने कहा, तब तो सम्पूर्ण वानरोंकी सेना चुप होगई, और कुछभी न बोले एक एकका मुख देखने लगे ॥ ७ ॥ तब तो अङ्गद बोले कि हे वानरो ! इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कार्य्यको सिद्ध करनेकेलिये सब अपना अपना बल वर्णन करो; फिर हम विचार करके समझ लेंगे कि कौन इस कार्य्यको कर सकैगा ॥ ८ ॥ इसप्रकार अंगदके कहनेको सुनकर सब वानर अपने अपने बलका अलग अलग वर्णन करने लगे, दश योजनसे लेकर दश २ योजन आगेको अधिक अपना अपना बल सबने कहा ॥ ९ ॥ परन्तु सबने सौ योजनके भीतरही जानेको अपना बल बताया, परन्तु इनमें जाम्बवान्ने कहा कि मैं अपने बलसे नव्वै योजन कूद सक्ताहूँ, और जाम्बवान् कहनेलगे कि पहिले वामनावतारमें जब वामनजीने सम्पूर्ण पृथ्वीको एकही चरणसे नाप लिया, तब मैंने उनकी इक्कीस प्रदक्षिणा कि थीं, इसकारण उससमय इक्कीस प्रदक्षिणा पृथ्वीकी करी, परन्तु इस समय मैं वृद्धावस्थासे ग्रस्त होरहा हूँ, इसकारण समुद्रके पार सौ योजन जानेकी भी अब मुझमें सामर्थ्य नहीं रही है ॥ १० ॥ ११ ॥ फिर युवराज अंग-

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रोचुर्वीरा बलं पृथक् ॥ योजनानां दशारभ्य दशोत्तरगुणं जगुः ॥ ९ ॥ शतादर्वाग्जाम्बवांस्तु प्राह मध्ये वनौकसाम् ॥ पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलक्षणम् ॥ १० ॥ त्रिःसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः ॥ इदानीं वार्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलङ्घितुम् ॥ ११ ॥ अङ्गदोऽप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः ॥ पुनर्लङ्घनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा ॥ १२ ॥ तमाह जाम्बवान्वीरस्त्वं राजा नो नियामकः ॥ न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोऽसि यद्यपि ॥ १३ ॥ अङ्गद उवाच ॥ एवं चेत्पूर्ववत्सर्वे स्वप्स्यामो दर्भविष्टरे ॥ केनापि न कृतं कार्यं जीवितुं च न शक्यते ॥ १४ ॥ तमाह जाम्बवान्वीरो दर्शयिष्यामि ते सुत ॥ येनास्माकं कार्यसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेण च ॥ १५ ॥

दभी कहनेलगे, कि समुद्रके पार जानेको तो मैंभी समर्थ हूँ परन्तु यह नहीं कहसक्ता कि फिर लौटकर आसकूँगा या नहीं ॥ १२ ॥ अब अंगदसे जाम्बवान् कहनेलगे कि हे वीर ! तुम तो आज्ञा देनेवाले राजा हो, यद्यपि तुम इस कार्यके करनेमें समर्थ हो, तथापि हम आपको इस कार्यके निमित्त भेजना नहीं चाहते ॥ १३ ॥ अब अंगद कहने लगे, कि यदि ऐसा है तब तो हम सब पहिलेके समान कुशाओंको बिछाकर प्राणोंको त्यागनेके निमित्त शयन करेंगे, क्योंकि यदि कोईभी इस कार्यको नहीं करैगा तो फिर किसप्रकार हम जीवित रह सकेंगे ? ॥ १४ ॥ तब फिर जाम्बवान् अंगदसे कहने लगे कि हे पुत्र ! कि जिसके द्वारा हमारा कार्य शीघ्रही सिद्ध होयगा. उस विरको मैं तुम्हैं दिखाताहूँ ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार कहकर जाम्बवान् एकान्तमें बैठेहुए हनुमान्जीसे बोले कि हे पवनकुमार ! इस भारी कार्यको उपस्थित होनेपरभी तुम एकान्तमें किसप्रकार मौन बैठे हो ? ॥ १६ ॥ हे महाबल ! तुम वायुके पुंत्र और वायुके तुल्य पराक्रमी हो, तथा इस कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त ही तुमने जन्म धारण किया है; जिसप्रकार अज्ञानी पुरुष ज्ञानको प्राप्त होकर अपनी सामर्थ्यको प्रकट करताहै. हे महात्मन् ! जिससमय तुम उत्पन्न हुए थे तत्कालही उदय होते हुए सूर्यको देखकर, " पकाहुआ फल है " मैं इसको ग्रहण कर लूँ, ऐसा कहकर तुम पांचसौ योजन ऊपरको बालचेष्टासे अनायास हीमें कूदकर पृथ्वीतलसे आये थे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसकारण तुम्हारे बलका वर्णन करनेको कौन समर्थ हो सक्ता है. हे दृढ़प्रतिज्ञ ! ब्रह्मचा-

इत्युक्त्वा जाम्बवान्प्राह हनुमन्तमवस्थितम् ॥ हनूमन्किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे ॥ १६ ॥ प्राप्तेऽज्ञेनेव सामर्थ्यं दर्शयाद्य महाबल ॥ त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः ॥ १७ ॥ रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना ॥ जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम् ॥ १८ ॥ पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया ॥ योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ॥ १९ ॥ अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् ॥ उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ॥ २० ॥ श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमानतिहर्षितः ॥ चकार नादं सिंहस्य ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव ॥ २१ ॥ बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः ॥ लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् ॥ २२ ॥ रावणं सकुलं हत्वानेष्ये जनकनन्दिनीम् ॥ यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना ॥ २३ ॥ लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम् ॥ यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥ २४ ॥

रिन् ! उठो श्रीरामचन्द्रजीका कार्य करके हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥ इस प्रकार जाम्बवान्के कहनेको सुनकर हनुमान् बड़े प्रसन्न हुए, और सिंहके समान गर्जना करी, कि मानो ब्रह्माण्डको तोड़ही डालेंगे ॥ २१ ॥ और अपने शरीरको पर्वतके समान बढाकर ऐसे प्रतीत होने लगे, कि मानो दूसरा वामनावतार ही होगया, और कहने लगे कि हे वानरो ! समुद्रको उल्लंघन करके और लंकाको भस्म करके, सकुटुंब रावणका नाश करके जानकीजीको लाऊं अथवा रावणके गलेमें रस्सी बांधकर और त्रिकूटाचलसहित लंकाको ठाम हाथपर रखके ले आऊं और श्रीरामचन्द्रजीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सामने डालदूं अथवा मैं शुभलक्षण माता जानकीजीको देखकर ही लौट आऊं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इसप्रकार हनुमान्‌जीके कहनेको सुनकर जाम्बवान् यह बोले कि हे पवनकुमार ! तुम्हारा कल्याण होय, तुम शुभलक्षणा माता जानकीको जीवतीहुई देखकरही लौट आओ ॥ २५ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीके साथ अपना पुरुषार्थ दिखाना. हे पवनकुमार ! अब तुम आकाशमार्गसे जाओ, मार्गमें तुम्हारा मंगल होय ॥२६॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्य्यके निमित्त जातेहुए मार्गमें परमपराक्रमी वायु तुम्हारा अनुगामी (सहायक) होय, इसप्रकार आशीर्वाद देकर वानरसेनापतियोंने हनुमान्‌जीको

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत् ॥ दृष्ट्वैवागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ॥ २५ ॥ पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् ॥ कल्याणं भवताद्भद्र गच्छतस्ते विहायसा ॥ २६ ॥ गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु ॥ इत्याशीर्भिः समामन्त्र्य विसृष्टः प्लवगाधिपैः ॥ २७ ॥ महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ २८ ॥ महानगेन्द्रप्रतिमो महात्मा सुवर्णवर्णोऽरुणचारुवक्त्रः ॥ महाफणीन्द्राभसुदीर्घबाहुर्वातात्मजोऽदृश्यत सर्वभूतैः ॥ २९ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

बिदा किया ॥ २७ ॥ तब हनुमान्‌जीने महेन्द्राचलके शिखरपर जाकर अपना अद्भुत स्वरूप बनालिया ॥ २८ ॥ उससमय महापर्वताकार शरीरधारी, सुवर्णके समान गौरवर्ण, और अरुणके समान लाल मनोहर मुखवाले तथा शेषजीके समान बड़े लम्बे भुजदण्डयुक्त ऐसा हनुमान्‌जीका स्वरूप सब प्राणियोंके देखनेमें आया ॥ २९ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे किष्किन्धाकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यगौडवंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजभारद्वाजरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

॥ इति किष्किन्धाकाण्डं समाप्तम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितसुन्दरकाण्डप्रारम्भः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि हे पार्वति ! मच्छ मगर आदिसे भरेहुए सौ योजन चौडे समुद्रको उल्लंघन करनेकी इच्छा करनेवाले आनंदके समूहसे परिपूर्ण पवनकुमार श्रीहनुमान्जीने परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके इस प्रकार कहा, कि सम्पूर्ण वानर देखैं मैं अब आकाशमार्गसे जाताहूं ॥ १ ॥ २ ॥ जैसे कि श्रीरामचंद्रजीका अमोघ बाण, हे वानरो ! मैं अबही जाकर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिया जानकीजीको देखूँगा और उनके दर्शन करनेसे कृतार्थ होकर फिर लौटकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करूँगा, जिनके नामको देहान्तके समय एकवारभी स्मरण करताहुआ मनुष्य संसाररूपी अपारसमुद्रको तिरकर उनकेही लोक (वैकुण्ठको) प्राप्त होताहै, फिर उनही श्रीरामचन्द्रजीका दूत तिसपरभी उनके शरीरकी धारण करी हुई मुद्रि-

श्रीमहादेव उवाच ॥ शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम् ॥ लिलङ्घयिषुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः ॥ १ ॥ ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥ २ ॥ अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः ॥ पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥ ३ ॥ कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम् ॥ प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन् ॥ ४ ॥ नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम्॥ किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्गाङ्गुलिमुद्रिकः ॥५॥ तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम् ॥ इत्युक्त्वा हनुमान्बाहू प्रसार्यायतवालधिः ॥ ६ ॥ ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टिः सन्नाकुञ्चितपदद्वयः॥ दक्षिणाभिमुखस्तूर्णं पुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥ ७ ॥ आकाशात्त्वरितं देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः ॥ दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः ॥ ८ ॥ परीक्षणार्थं सत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन् ॥ गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः॥९॥लङ्कां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम्॥ एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम्॥१०॥

काको लियेहुए और उनकाही हृदयमें ध्यान करताहुआ मैं छोटेसे समुद्रको उल्लंघन करूँगा, इसमें संदेहही क्या है ? इसप्रकार कहकर श्रीहनुमान्जीने अपनी भुजाओंको फैलाया, और पूंछको लंबा किया, गर्दनको सीधा किया, दृष्टि ऊपरको लगाई, और दोनो चरणोंको सिकोड़कर दक्षिणकी ओरको मुखकरके वायुकी तुल्य गतिसे क्षणमात्रमें समुद्रको कूद गये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ तदनंतर महाबली परमपराक्रमी पवनकुमार श्रीहनुमान्जीको आकाशमार्गमें वायुके समान वेगसे जाताहुआ देखकर इन हनुमान्जीके बलकी परीक्षा करनेके निमित्त देव इसप्रकार कहने लगे, कि यह महाबली और पवनकी तुल्य गतिवाला जो वानर जारहा है यह लंकामें प्रवेश करनेका सामर्थ्य रखता है या नहीं? इस बातको जान-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेके लिये हम इसकी परीक्षा करैं; इस प्रकार विचार कर वह देवता आश्चर्यमें हुएसे सुरसानामक नागोंकी मातासे कहने लगे, कि हे सुरसे ! यह जो बड़े मेघमंडलके समान वानर जारहा है सो परकोटेसे घिरीहुई और हजारों वीरोंसे रक्षा करीहुई लंकापुरीमें प्रवेश करसकैगा या नहीं ? इसबातकी परीक्षा करनेके निमित्त तुम जाओ और इस वानरके गमनमें कुछ विघ्न करो ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ इस वानरके बल बुद्धि और पराक्रमकी परीक्षा करके शीघ्रही लौटकर आओ, सुरसा इसप्रकार देवताओंके कहनेको सुनकर हनुमान्जीके कार्यमें विघ्न करनेके निमित्त शीघ्रही गई ॥ १२ ॥ और आगेसे हनुमान्जीके मार्गको रोकतीहुई खड़ी होकर हनुमान्जीसे कहने लगी, कि हे महामते ! आओ मेरे मुखमें तुम शीघ्रही प्रवेश

अब्रवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः ॥ गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्नं समाचर ॥ ११ ॥ ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता ॥ इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात् ॥ १२ ॥ आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत् ॥ एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते ॥ १३ ॥ देवैस्त्वं कल्पितो भक्षः क्षुधासंपीडितात्मनः ॥ तामाह हनुमान्मातरहं रामस्य शासनात् ॥ १४ ॥ गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः ॥ रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम् ॥ १५ ॥ निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोस्तु ते ॥ इत्युक्त्वा पुनरेवाह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥ १६ ॥ प्रविश्य गच्छ मे वक्त्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम् ॥ इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय ॥ १७ ॥ प्रविश्य वदनं तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वितः ॥ इत्युक्त्वा योजनायामदेहो भूत्वा पुरः स्थितः ॥ १८ ॥

करो ॥ १३ ॥ क्योंकि मैं भूंखसे बड़ी व्याकुल होरही हूँ सो आज तुम्हैं ही देवताओंने मेरा भोजन कल्पना किया है, तबतौ हनुमान्जी उस नागमाता सुरसासे कहने लगे, कि हे माता ! मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे जानकीजीको देखनेके निमित्त जाताहूँ सो शीघ्रही लौटकर और तिन जानकीजीका कुशल श्रीरामचंद्रजीके अर्थ निवेदन करके फिर आऊंगा और तुह्मारे मुखमें प्रवेश करूँगा, इससमय तुम मेरा मार्ग छोड़ दो. हे सुरसे ! मैं तुमको नमस्कार करताहूँ. इसप्रकार श्रीहनुमान्जीके कहनेपर सुरसा फिर बोली, कि अरे वानर ! मैं भूँखी हूँ मेरे मुखमें प्रवेश करजा नहीं तो मैं अपने आप भक्षण कर लेतीहूँ. इसप्रकार कहनेपर हनुमान्जी बोले कि अच्छा शीघ्रही मुखको फैला ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ तेरे मुखमें प्रवेश करके फिर मैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभी जल्दीसे जाऊंगा; इसप्रकार कहकर हनुमान्‌जी एकयोजन लंबा शरीर धारण करके सुरसाके आगे खड़े होगए ॥ १८ ॥ सुरसानेभी हनुमान्‌जीके स्वरूपको देखकर अपने मुखको पांच योजनका करलिया, तबतो हनुमान्‌जीने उससेभी दूना अर्थात् दशयोजनका अपना शरीर कर लिया ॥ १९ ॥ तब सुरसाने अपने मुखको वीस योजनका किया, ऐसा देख हनुमान्‌जीने भी अपना शरीर तीस योजनका करलिया ॥ २० ॥ फिर सुरसाने अपने मुखको पचास योजन चौंड़ा किया, ऐसा देख हनुमान्‌जीने अपना शरीर अँगूठेके तुल्य करलिया, और उसके मुखमें प्रवेश कर फिर बाहर आकर सन्मुखही कहने लगे कि हे सुरसे ! मैंने तेरे मुखमें प्रवेश किया और बाहरभी निकल आया अब तेरे प्रणाम करताहूँ, इसप्रकार कहतेहुए हनुमान्‌जीको देखकर वह सुरसा बोली;

दृष्ट्वा हनूमतो रूपं सुरसा पञ्चयोजनम् ॥ मुखं चकार हनुमान् द्विगुणं रूपमादधत् ॥ १९ ॥ ततश्चकार सुरसा योजनानां च विंशतिम् ॥ वक्त्रं चकार हनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥२०॥ ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम् ॥ वक्त्रं तदा हनूमांस्तु बभूवांगुष्ठसन्निभः ॥२१॥ प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः ॥ प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः ॥ २२ ॥ एवं वदन्तं दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर ॥ २३ ॥ देवैः संप्रेषिताहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे ॥ दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः ॥ जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट् ॥ २५ ॥ समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाञ्चनपर्वतम् ॥ गच्छत्येष महासत्त्वो हनूमान्मारुतात्मजः ॥ २६ ॥ रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थं तस्य त्वं सचिवो भव ॥ सगरैर्वर्धितो यस्मात्पुराहं सागरोऽभवम् ॥ २७ ॥

कि हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! जाओ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको सिद्ध करो ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे हनुमान् ! मुझे देवताओंने तुम्हारे बलकी परीक्षा करनेके निमित्त भेजा था, अब तुम जाओ सीताजीको देखकर फिर लौटकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करो ॥ २४ ॥ इसप्रकार कहकर सुरसा देवलोकको चलीगई. फिर पवनकुमार हनुमान्‌जीभी पवनमार्गसे इसप्रकार चले, कि जैसे पक्षिराज गरुड़ ॥ २५ ॥ उससमय समुद्रभी मणि और सुवर्णमय मैनाकपर्वतसे कहने लगा, कि हे मित्र ! यह महाबली पवनकुमार हनुमान् श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त जारहेहैं, तुम इनको विश्राम देकर सहायक बनों क्योंकि पूर्वकालमें मुझे सगरके पुत्रोंने बढ़ाया था इसकारणही मेरा नाम सागर हुआ है ॥ २६ ॥२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस ही राजा सगरके कुलमें वह दशरथ राजकुमार प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हैं उनहीका कार्य सिद्ध करनेके अर्थ यह कपीश्वर हनुमान् जारहा है ॥ २८ ॥ इसकारण तुम बहुत शीघ्र जलमेंसे ऊपरको उठो जिससे कि हनुमान् तुम्हारे ऊपर विश्राम करके गमन करैं. वह मैनाकपर्वत इसप्रकार समुद्रके कहनेको स्वीकार करके नानाप्रकारकी मणियोंके शिखरोंसे युक्त बड़े ऊँचे आकारको धारण कर जलमेंसे प्रकट हुआ और उस पर्वतके ऊपर मनुष्यरूपसे स्थित होकर आकाशमार्गमें पवनके समान वेगसे जातेहुए हनुमान्जीसे कहने लगा, कि हे पवनकुमार ! मैं मैनाक हूँ और समुद्रकी आज्ञासे तुम्हैं विश्राम देनेके अर्थ जलमेंसे उठा हूँ, सो तुम यहाँ आकर अमृतके समान स्वाद युक्त पकेहुइ फलमूलादिको भोजन कर कुछकाल विश्राम

तस्यान्वये बभूवासौ रामो दाशरथिः प्रभुः ॥ तस्य कार्यार्थसिद्ध्यर्थं गच्छत्येष महाकपिः ॥ २८ ॥ त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूर्णं त्वयि विश्राम्य गच्छतु ॥ स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥ २९ ॥ नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृतिः ॥ प्राह यान्तं हनूमन्तं मैनाकोऽहं महाकपे ॥ ३० ॥ समुद्रेण समादिष्टस्त्वद्विश्रामाय मारुते ॥ आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि मे ॥ ३१ ॥ विश्राम्यात्र क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् ॥ एवमुक्तोऽथ तं प्राह हनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥ गच्छतो रामकार्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत् ॥ विश्रामो वा कथं मे स्याद्गन्तव्यं त्वरितं मया ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वा स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः ॥ किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ॥ ३४ ॥ सिंहिकानाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा ॥ आकाशगामिनां छायामाक्रम्याकृष्य भक्षयेत् ॥ ३५ ॥

करके सुखपूर्वक जाओ, इसप्रकार कहनेंपर पवनकुमार हनुमान्जी तिस मैनाकसे बोले कि हे मैनाक ! श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धिके निमित्त जातेहुए मुझको भोजन करनेका और विश्राम करनेका अवसर कहाँ मिलसक्ता है ? क्योंकि मुझे शीघ्रही जाना है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कहकर और सन्मानार्थ अपने हाथसे मैनाकके शिखरका स्पर्श करके हनुमान्जी चलदिये, तदनन्तर कुछ दूर जानेपर सिंहिकानाम जो छायाके द्वारा खैंचनेवाली राक्षसी थी, उसने इन हनुमान्जीको भी छायाके द्वारा खेंचकर पकड लिया ॥ ३४ ॥ वह भयंकर स्वरूप सिंहिका नाम राक्षसी सदा समुद्रके जलके मध्यमें रहती थी और उस मार्गसे उड़कर आकाशमें जो पक्षीआदि जाते थे उनको छायाके द्वारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खेंचकर भक्षण करलेतीथी ॥ ३५ ॥ जब उसने इन महाबली पवनकुमारकोभी छायाके द्वारा खैंचा तब तो यह विचार करनेलगे, कि यह किस विघ्नकर्त्ताने चलतेहुए मेरा वेग रोका है ॥ ३६ ॥ यहाँ कोई देखनेमें नहीं आता, इसकारण मुझे आश्चर्य्यसा होरहा है, ऐसा विचारते नीचेको दृष्टि डाली ॥ ३७ ॥ तहाँ परम भयंकररूप बड़े आकारवाली सिंहिकाको देखकर जलके भीतरको गिरे और शीघ्रही क्रोधमें हो चरणोंसे कुचलकर उसका प्राणान्त करदिया ॥ ३८ ॥ और फिर हनुमान्‌जी कूदकर दक्षिणकी ओरको चल दिये, और समुद्रके दक्षिणतटपर पहुंचकर तहाँ नानाप्रकारके पुष्पित वृक्ष, नानाप्रकारके पक्षी और मृगोंके समूह, तथा पुष्पयुक्त लता देखीं, फिर कुछ आगेको बढ़कर त्रिकूटाचलपर्वतके शिखरपर बहुत तरहके

तया गृहीतो हनुमांश्चिन्तयामास वीर्यवान् ॥ केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥ ३६ ॥ दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते ॥ एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयत् ॥ ३७ ॥ तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम् ॥ पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥ ३८ ॥ पुनरुत्प्लुत्य हनुमान्दक्षिणाभिमुखो ययौ ॥ ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्रुमम् ॥ ३९ ॥ नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम् ॥ ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि ॥ ४० ॥ प्राकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः ॥ प्रवेक्ष्यामि कथं लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४१ ॥ रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लङ्कां रावणपालिताम् ॥ एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्कां जगाम सः ॥ ४२ ॥ धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान् ॥ तत्र लङ्कापुरी साक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥ ४३ ॥ प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत् ॥ कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम् ॥ ४४ ॥ प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान्कर्तुमिच्छति ॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम् ॥ ४५ ॥

परकोटोंसे युक्त और चारों ओर जिसके खाई है ऐसी लंकापुरी देखी, तब तो विचार करने लगे, कि मैं किसप्रकार उस लंकापुरीमें प्रवेश करूं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर यह निश्चय किया, कि इस रावणकी रक्षा करी हुई लंकापुरीमें प्रवेश करूँगा, ऐसा विचार कर उससमय तो तहाँही रहे, जब रात्रिका समय आया तब लंकापुरीमें जानेको तयार हुए ॥ ४२ ॥ और प्रतापी हनुमान् छोटासा रूप धारण करके लंकापुरीके द्वारमें घुसे, तहाँ साक्षात् लंकापुरी राक्षसीका रूप धारण कियेहुई उस नगरीकी देवताने प्रवेश करतेहुए हनुमान्‌जीको देखकर ललकारा, और कहने लगी, कि तू कौन है ? जो मुझ लंकिनीसे विना बूझे वानरके रूपसे रात्रिके समय चोरके समान नगरीमें घुसकर तू क्या करना चाहता है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार कहकर और क्रोधसे नेत्रोंको लाल लाल करके उस राक्षसीने हनुमान्‌जीके ऊपर लाथका प्रहार किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हनुमान्‌जीनेभी उसको कुछ न समझकर एक बांये हाथका घूंसा मारा, उसी समय वह मुखसे बहुतसा रुधिर डालती हुई पृथ्वीमें गिरपड़ी ॥ ४६ ॥ और उठकर वह लंका हनुमान्‌जीसे कहने लगी कि हे पवनकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो, हे पुण्यपुरुष ! जाओ अब तुमने लंकाको जीतलिया ॥ ४७ ॥ क्योंकि पूर्वकालमें मुझसे ब्रह्माजीने कहाथा, कि जब अट्ठाईसवीं चौकड़ीमें त्रेतायुग आवैगा तब अविनाशी नारायण राजा दशरथके यहां श्रीरामरूपसे अवतार धारण करेंगे; और तिन भगवान्‌की योगमाया राजा जनकके यहाँ सीतारूपसे उत्पन्न होयगी, सो मेरी प्रार्थनाके अनुसार पृथ्वीका

हनुमानपि तां वाममुष्टिनावज्ञयाहनत् ॥ तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम् ॥ ४६ ॥ उत्थाय प्राह सा लङ्का हनूमन्तं महाबलम् ॥ हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लङ्का त्वयानघ ॥ ४७ ॥ पुराऽहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये ॥ त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ॥ ४८ ॥ जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि ॥ भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽयं मया क्वचित् ॥ ४९ ॥ सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम् ॥ तत्र सीतां महामायां रावणोऽपहरिष्यति ॥ ५० ॥ पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति ॥ सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान्प्रेषयिष्यति ॥ ५१ ॥ तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम् ॥ त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना ॥ ५२ ॥ तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदानघे ॥ तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥ ५३ ॥ तस्मात्त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयानघ ॥ रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥ ५४ ॥

भार हरण करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजी कुछ समय अयोध्यामें वास करनेके अनन्तर अपनी स्त्री सीता और लक्ष्मणजीसहित दण्डकारण्यको जाँयगे, तहाँ महामाया सीताको रावण हरैगा ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके साथ सुग्रीवकी मित्रता होयगी, तब सुग्रीव जानकीको ढूंढ़नेके निमित्त वानरोंको भेजैगा ॥ ५१ ॥ उनमेंसे एक वानर रात्रिके समय तेरे समीप आवैगा, और तेरे ललकारनेपर वह मुष्टिसे घूंसा मारेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे ! उसके प्रहार करनेपर जब तू पीड़ित होगी, निःसन्देह उसकालमेंही रावणका अन्त होगा ॥ ५३ ॥ तिसकारण हे पुण्यपुरुष पवनकुमार ! तुमने अब लंकाको क्या रावणके सर्वस्वकाही जीतलिया; रावणके रणवासमें एक परम रमणीय क्रीड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वन है ॥५४॥ उसके मध्यमें दिव्यवृक्षोंसे युक्त एक अशोकवाटिका है; उसके मध्यमें एक शिंशपा (सीसम) का वृक्ष है ॥ ५५॥ उस वृक्षके नीचे भयंकर रूपवाली राक्षसियोंके पहरेमें सीता है, सो तुम शीघ्रही तिन जानकीजीका दर्शन करके लौटौ और श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ निवेदन करो ॥ ५६ ॥ और मैं भी आज धन्य हूँ, जो बहुत कालके अनन्तर मुझे संसारबंधनसे छुड़ानेवाला उनका स्मरण और अत्यंत दुर्लभ उनके भक्तका समागम हुआ वह श्रीरामचन्द्रजी मेरे ऊपर प्रसन्न होयँ, और सदा मेरे हृदयमें निवास करै॥५७॥ जिस समय पवनकुमार हनुमान्‌जीने समुद्रको उल्लंघन किया उस समय सीताका (शुभसूचक) और रावणका (अशुभसूचक) वामनेत्र तथा वामभुजा फड़की और अतीन्द्रिय श्रीरामचन्द्रजीका शुभसूचक दाहना अंग फड़का

तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कुला ॥ अस्ति तस्या महावृक्षः शिंशपानाम मध्यगः ॥ ५५ ॥ तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ दृष्ट्वैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥ ५६ ॥ धन्याहमप्यद्य चिराय राघवस्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचनी ॥ तद्भक्तसंगोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥ ५७ ॥ उल्लङ्घितेऽब्धौ पवनात्मजेन धरासुतायाश्च दशाननस्य ॥ पुस्फोर वामाक्षिभुजश्च तीव्रं रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद० उमामहेश्वरसं० सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम् ॥ रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम् ॥ १ ॥ सीतान्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम् ॥ तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान्कपिः ॥ २ ॥ नापश्यज्जानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काभिभाषितम् ॥ जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम् ॥ ३ ॥ सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम् ॥ नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्णप्रासादशोभिताम् ॥ ४ ॥

॥ ५८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! तदनन्तर हनुमान्‌जी परम शोभायमान लंकापुरीमें गये; और तिस रात्रिके समयमेंही छोटासा रूप धारण करके चारों ओर लंकापुरीमें घूमे ॥ १ ॥ और सीताके ढूंढ़नेकी इच्छासे रावणके राजमंदिरमें गये; तहाँ चारोंओर ढूँढ़ा, परन्तु हनुमान्‌जीको कहीं भी जगन्माता सीताजीका दर्शन नहीं हुआ, इतनेहीमें लंका राक्षसीने जो कहाथा उसकी याद आई, सो तत्कालही हनुमान्‌जी परमरमणीय अशोकवनिकाको गये ॥ २ ॥ ३ ॥ जहाँ कल्पवृक्षोंके समूहके समूह थे, और रत्नजटित बावड़ी थीं, अनेक प्रकारके पक्षी और मृग फिर रहेथे; चारों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओर सुवर्णके महल बने हुए थे; और फलोंकरके नम रही हैं शाखा जिनकीं ऐसे अनेक वृक्ष शोभायमान हो रहे थे, उस अशोकवाटिकामें पवन कुमार हनुमान्‌जीने एक एक वृक्षके नीचे सीताको ढूँढा ॥ ४ ॥ ५ ॥ तदनंतर उसी अशोक वाटिकामें एक बड़ा ऊंचा राजमंदिर देखा, उस मणियों करके जड़े हुए खंभोंसे शोभायमान महलको देखकर हनुमान्‌जी आश्चर्य्यमें होगये ॥ ६ ॥ उसको उल्लंघन करके हनुमान्‌जी कुछ भागको चले, तहाँ अत्यन्त सघन पत्तोंवाला एक शिंशपाका वृक्ष देखा ॥ ७ ॥ जिस वृक्षके नीचे कहींभी धूप देखनेमें नहीं आतीथी और सुवर्णके रंगके अनेक पक्षी फिर रहेथे, उसही शिंशपावृक्षकी जडमें वीर हनुमानजीने देखा, कि जानकीजी राक्षसियोंके बीचमें पृथ्वीतल

फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम् ॥ विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्षं मरुत्सुतः ॥ ५ ॥ ददर्शाभ्रंलिहं तत्र चैत्यप्रासादमुत्तमम् ॥ दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो मणिस्तम्भशतान्वितम् ॥ ६ ॥ समतीत्य पुनर्गत्वा किञ्चिद्दूरं स मारुतिः ॥ ददर्श शिंशपावृक्षमत्यन्तनिबिडच्छदम् ॥ ७ ॥ अदृष्टातपमाकीर्णं स्वर्णवर्णविहंगमम् ॥ तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थिता जनकनन्दिनीम् ॥ ८ ॥ ददर्श हनुमान् वीरो देवतामिव भूतले ॥ एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ॥ ९ ॥ भूमौ शयाना शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् ॥ त्रातारं नाभिगच्छन्तीमुपवासकृशा शुभाम् ॥ १० ॥ शाखान्तच्छदमध्यस्थो ददर्श कपिकुञ्जरः ॥ कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥ ११ ॥ मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः ॥ ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तःपुराद्बहिः ॥ १२ ॥

के ऊपर देवताके समान शयन कर रही है, जिनके सम्पूर्ण केशोंकी वेणी हरण दिनसे संस्कार रहित है, देह अतिकृश है, मुख दीनतायुक्त है, मलिनवस्त्र धारण कियेहुए हैं, शोकमें मग्न होकर 'रामराम' इसप्रसार उच्चारण कर रही हैं, उपवास (निराहारव्रत) से अत्यन्य दुर्बल होरही हैं, और किसी रक्षा करनेवालेको नहीं प्राप्त होती हैं, तिन पतिव्रता जानकीजीका हनुमान्‌ने वृक्षकी शाखाओंके बीचमें छिपकर दर्शन किया, और मनमें कहने लगे, कि आज मैं कृतार्थ हूँ, धन्य हूँ, जो जानकीजीका दर्शन मिला ॥८॥९॥१०॥११॥ और मुझे आशा होती है, कि अब परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीका कार्य मैं सिद्ध करसकूँगा, इतनेहीमें रणवासके द्वारपर कुछ किलकिलाहटका शब्द सुना सो विचारने लगे, कि यह कोलाहल किसकारण होरहाहै, ऐसा विचार हनुमान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृक्षके पत्तोंमें औरभी छुपगये, इतनेहीमें स्त्रियों सहित रावणको तहाँ आताहुआ देखा, जिसके दशमुख थे, बीस भुजा थीं, और अंजनके ढेरके समान शरीर था, सो हनुमान्‌जी देखकर परमआश्चर्य्यको प्राप्त हो पत्तोंके समूहमें औरभी छुप गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अब रावण अपने यहाँ यह विचार करताथा कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मरण शीघ्र किस प्रकार होय ? न जाने रामचन्द्र सीताको ढूँढ़नेके लिये क्यों नहीं आते हैं ! ॥ १५ ॥ इसप्रकार निरंतर चिंता करता हुआ रावण सदा हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान रखताथा, उसदिन (जिसदिन हनुमान्‌जीने लंकामें प्रवेश किया) आधी रातके अनन्तर राक्षसपति रावणने स्वप्नमें देखा, कि कोई वानर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लंकापुरीमें आकर

किमेतदिति सँल्लीनो वृक्षपत्रेषु मारुतिः ॥ आयान्तं रावणं तत्र स्त्रीजनैः परिवारितम् ॥ १३ ॥ दशास्यं विंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ दृष्ट्वा विस्मयमापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत ॥ १४ ॥ रावणो राघवेणाशु मरणं मे कथं भवेत् ॥ सीतार्थमपि नायाति रामः किं कारणं भवेत् ॥ १५ ॥ इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि ॥ तस्मिन्दिने पररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः ॥ १६ ॥ स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः ॥ कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥ १७ ॥ इति दृष्ट्वाद्भुतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः ॥ स्वप्नः कदाचित्सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम् ॥ १८ ॥ जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्य दुःखितां नितरामहम् ॥ करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानरः ॥ १९ ॥ इत्येवं चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् ॥ नूपुराणां किङ्किणीनां श्रुत्वा सिञ्जितमङ्गना ॥ २० ॥ सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा ॥ अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा ॥ २१ ॥ रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याह सुमध्यमे ॥ मां दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे ॥ २२ ॥

अपनी इच्छाके अनुसार बहुत छोटा रूप धारणकरके बृक्षकी शाखापर बैठाहुआ सब वृत्तान्त देखरहा है ॥ १६ ॥ १७ ॥ इसप्रकार अद्भुत स्वप्न देखकर वह रावण अपने मनमें विचार करने लगा कि कदाचित् यह स्वप्न सत्य होजाय तो मैं ऐसा करूं, कि जानकीको अभी जाकर अपनी वाणीरूपी बाणोंसे वेधकर अत्यन्त दुःखित करताहूँ, जिससे वह वानर देखकर रामचन्द्रजीसे कहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ इसप्रकार विचारता हुआ शीघ्रही सीताके समीप गया, उस समय जो रावणके साथ बहुतसी स्त्रियें थीं, उनकी पायजेबोंकी डनकारको सुनकर सीताजी भयभीत हो अपने शरीरहीमें सिमट रही और नीचेको मुख करके रोदन करती हुई और हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करतीहुई बैठगई ॥ २० ॥ २१ ॥ उससमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रावणभी सीताजीको देखकर बोला, कि हे सुमध्यमे ! हे सुभ्रु ! मुझको देखकर तुम अपने शरीरहीमें वृथा क्यों सुकडती हो ॥ २२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी छोटेभाई लक्षणसहित वनचरोंमें रहते हैं, सो किसीको दीखता है किसीको नहीं दीखता ॥ २३ ॥ मैंने तो उसको ढूँढ़नेके निमित्त बहुत से दूत भेजे, उन्होंने बहुत कुछ यत्नसे चारोंओर रामचन्द्रको ढूँढ़ा परन्तु कहींभी नहीं पाया, और यदि कहीं होयभी तो कभी तेरी खबर नहीं लेता है, इसकारण तिस प्रेमहीन रामचन्द्रका तू क्या करैगी ! और देख रामचन्द्रने तुझे सदा हृदयसे लगाया और सदा समीपमें रहा, परन्तु उस रामचन्द्रके हृदयमें तेरा किंचिन्मात्रभी स्नेह नहीं है, देख उस रामचन्द्रने तेरे कारणसे सब प्रकारके भोग भोगे और अनेकप्रकारके तेरे गुणोंसे

रामो वनचराणां हि मध्ये तिष्ठति सानुजः ॥ कदाचिद्दृश्यते कैश्चित्कदाचिन्नैव दृश्यते ॥ २३ ॥ मया तु बहुधा लोकाः प्रेषितास्तस्य दर्शने ॥ न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणाः समन्ततः ॥ २४ ॥ किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्वयि ॥ त्वया सदालिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा ॥ २५ ॥ त्हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते ॥ त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्च त्वङ्गुणानपि राघवः ॥ २६ ॥ भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः ॥ त्वमानीता मया साध्वी दुःखशोकसमाकुला ॥ २७ ॥ इदानीमपि नायाति भक्तिहीनः कथं व्रजेत् ॥ निःसत्त्वो निर्ममो मानी मूढः पण्डितमानवान् ॥ २८ ॥ नराधमं त्वद्धिमुखं किं करिष्यसि भामिनि ॥ त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम् ॥ २९ ॥ देवगन्धर्वनागानां यक्षकिन्नरयोषिताम् ॥ भविष्यसि नियोक्त्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे ॥ ३० ॥

आनंदको प्राप्त हुआ, तथापि इससमय ऐसा होगया मानो तुझे बिलकुलही नहीं जानता है; देख विचार तो कर वह कैसा कृतघ्नी, निर्गुण और अधम है; हे पतिव्रते ! तू बड़े दुःख और शोकसे व्याकुल होरहीथी, सो मुझसे नहीं देखागया इसकारण मैं तुझे यहाँ ले आया ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ और देख रामचन्द्र इससमयतकभी नहीं आया, क्योंकि उसको तो तेरा प्रेम है ही नहीं फिर काहेको आता ! वास्तवमें वह रामचन्द्र पराक्रमरहित निर्मोही और बड़ा घमंड़ी तथा मूढ़ होकरभी अपनेको बड़ा पंडित माननेवाला है ॥ २८ ॥ हे भामिनि ! उस मनुष्योंमें अधम और तुझसे प्रीति न करनेवाले रामचन्द्रका क्या करैगी अब तू तेरे विषे अत्यन्त आसक्ति करनेवाले मुझ रावणके उपर प्रेम कर ॥ २९ ॥ यदि मुझसे प्रेम करैगी तो देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अप्सरा इन सबके ऊपर आज्ञा करनेवाली होजायगी ॥ ३० ॥ (यद्यपि "रामो वनचराणाम् " इत्यादि रावणका कहना निंदासे भराहुआ दीखता है, परन्तु गूढ़रीतिसे इसमें श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति है, सोही अर्थ लिखते हैं, कि श्रीरामचन्द्र वनमें निवास करनेवाले तपस्वियोंके साथ रहतेहैं, वनवासी निर्लिप्तयोगी उनका विष्णुरूपसे अथवा अनंतरूपसे ध्यान करते हैं, उनकोभी वास्तविक रूपका कभी दर्शन होताहै कभी नहीं, इसकारणही नारदजीको दासीपुत्रावस्थामें समाधिमें एकवार दर्शन होकर फिर नहीं हुआ, यह कथा श्रीमद्भागवतके प्रथमस्कंधमें प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ और रावणनें यह जो कहा, कि "मैंने उसको ढूँढनेके निमित्त बहुतसे दूत भेजे उनको प्रयत्न करनेसेभी रामचंद्र कहीं नहीं मिले" इसका तात्पर्य यह है, कि इस श्लोकमें लोकशब्दसे इन्द्रिय और इन्द्रियोंके देवता लिये जातेहैं, क्योंकि जिसके द्वारा देखाजाय या जिसके द्वारा जानाजाय, यह व्याकरणकी रीतिसे लोकशब्दका अर्थ है, इसकारण रावणका अभिप्राय यह है कि मैंने देवताओंसहित अपनी इन्द्रियोंको परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके देखनेके निमित्त वारंवार प्रवृत्त करके भी उनका दर्शन नहीं करसकीं, क्योंकि श्रीरामचंद्रजी तो बुद्धिसे पर हैं, उनका दर्शन रजोगुण युक्त इन्द्रिय किसप्रकार कर सक्तीहैं ? और सीताजीसे रावणने यह जो कहा, कि "प्रेमहीन रामचंद्रका तू क्या करैगी ! " इसका तात्पर्य्य यह है, कि श्रीरामचंद्रजी तो आत्माराम है अपने आत्माके सिवाय अन्य पदार्थमें उनकी स्वभावसेही रति नहीं है और सीताजी तो प्रकृतिरूप है फिर उनके विषे उनकी आसक्ति किसप्रकार होसक्ती है ॥ २४ ॥ और रावणने यह जो कहा, कि "उस रामने तुझे सदा हृदयसे आलिंगन किया, और सदा समीप रहा, तथापि उसके हृदयमें तेरा किंचिन्मात्रभी प्रेम नहीं है" इसका अभिप्राय यह है, कि शक्ति और शक्तिमान्का अभेद होनेके कारण परमात्मा शक्तिकरके सदा आलिंगितसा और समीपमें स्थितसा भी है, परन्तु वास्तवमें आत्माराम होनेके कारण परिपूर्णकाम है, अतएव सांसारिक पदार्थोंमें उसका स्नेह नहीं है, और शक्तिकी प्रतीति कार्यके द्वाराही होतीहै, और परमेश्वरकी शक्तिका कार्य है जगत्, इसकारण यदि परमात्माका जगत्में स्नेह होय तो प्रकृतिरूप शक्तिमें भी स्नेहकी प्रतीति होय, सो कदापि परमात्मा जीवके समान जगत्में स्नेह करताही नहीं, इस अभिप्रायसे ही रावणने कहा, कि तुझमें श्रीरामचंद्रका स्नेह नहीं है और रावणने वह जो कहा कि "उस रामचंद्रने तेरे कारणसे सब प्रकारके भोग भोगे और तेरे गुणोंको भी भोगा, तथापि महीं जानता, कि मैंने कोई भोग भोगा इसकारण वह निर्गुण और अधम है," इसका अभिप्राय यह है, कि वह रामचन्द्रजी प्रकृतिके गुणोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या प्रकृतिके उत्पन्न किये भोगोंके भोक्ता है, तथापि "जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः" इस श्रुतिके अनुसार "मैं भोगकरनेवाला हूँ" ऐसा अभिमान नहीं करता है, और इस कारणही वह कृतघ्न (कृतानि हन्ति कृतघ्नः) अर्थात् प्रकृतिके किये हुए कर्म्मोंका नाशक है, अथवा भक्तोंके संसारबन्धनमें डालनेवाले कर्म्मोंको ज्ञानरूपी अग्निके द्वारा भस्म करते हैं, इसकारण उन परमात्माका नाम कृतघ्न (कृतानि निजभक्तकर्माणि ज्ञानाग्निना भस्मसात् करोतीति कृतघ्नः) है, अर्थात् उनपरमात्मा श्रीरामचंद्रका दर्शन होतेही भक्तोंके संचित और क्रियमाण कर्म्म नष्ट होजाते हैं ! और सच्चिदानंदस्वरूप होनेके कारण जब उनके सन्मुख मायाही स्थित नहीं होसक्ती, फिर उसके गुणोंका तो कहनाही क्या है ? इसकारण परमात्मा श्रीरामचंद्रजी निर्गुण अर्थात् सत्वादि गुणोंसे रहित हैं और अधम (न धमति शब्दविषयो न भवतीत्यधमः) अर्थात् धम जो शब्द तिसकरके प्रतिपादन करनेके अयोग्य अर्थात् वाणीको अगोचर हैं. और रावणने यह जो कहा, कि "हे पतिव्रते ! तुझे दुःख और शोक करके व्याकुल देखकर मैं यहाँ ले आया और रामचंद्र इससमयतकभी नहीं आया, क्योंकि उसको तो तेरा प्रेम है ही नहीं फिर वह काहेको आता, वास्तवमें वह रामचंद्र पराक्रमरहित निर्मोही और बड़ा घमंडी तथा मूढ़ होकरभी अपनेको बड़ा पंडित माननेवाला है," इसका अभिप्राय यह है, कि रावणने तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न करके सम्पूर्ण लोक वशमें कर लियेथे, यह वार्ता प्रसिद्ध ही है, तहाँ ब्रह्मा प्रकृतिका कार्य जो जगत् तिसके स्वामी हैं, और सीता प्रकृतिरूप और परमात्मा श्रीरामचंद्रजीकी शक्ति है; अतएव सदा श्रीरामचन्द्रजीके ही वशीभूत रहती है, सम्पूर्ण देवता उसके वशीभूत हैं, और सम्पूर्ण जगत् प्रकृतिरूप सीताका स्वरूप है, तहाँ ब्रह्माजीके वरदानसे रावणने जो जगत्को अपने वशमें किया, यही प्रकृतिरूप सीताका उसके कार्यके द्वारा लेआना है, और रावणके अन्यायसे सब प्राणी दुःखित और शोकयुक्त रहे, यही प्रकृतिरूप सीताका दुःख और शोकयुक्त होना है, और परमात्मा पूर्णकाम होनेके कारण किसी सांसारिक विषयमें स्नेह नहीं करते हैं, वही सीताजीके विषे स्नेहका न करना है, और व्यापक परमात्माका गमन आगमन नहीं होसक्ता ? इसकारणही रावणने कहा कि रामचंद्र नहीं आया, और वह कहा, कि रामचन्द्र निस्सत्त्व (पराक्रमहीन) है, इसका अभिप्राय यह है, कि रामचन्द्र ईश्वरभावकरके किसीभी प्राणीसे पृथक् नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण प्राणियोंमें उनकी सत्ता है. और निर्मम कहिये वह किसी प्राणीमें ममता नहीं करते हैं अर्थात् वह सबके विषे समदृष्टि रखनेवाले और नित्यमुक्तस्वरूप हैं. और मानी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहिये सम्पूर्ण भक्तोंका सन्मान करनेवाले हैं. और मूढ़ कहिये बालकके समान निरभिमान है, अथवा मूढ कहिये (मू—ब्रह्मा, उः—शिवः । मूच उश्च मू ताभ्यां ऊढः नियामकत्वेन अभिमतः) ब्रह्मा और शिव यह दोनों आपको अपना नियामक मानते हैं. और अधम कहिये (नराः अधमाः यस्मादसौ नराधमः) सम्पूर्ण मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ अर्थात् मनुष्योंके समान मायाके वशीभूत होनेवाले नहीं हो और रावणने यह जो कहा कि "वह पंडित मानवान् है" इसका अभिप्राय यह है कि पंडितोंका कियाहुआ जो सत्कार तिसको श्रीरामचन्द्रजी प्राप्त होतेहैं. और यह जो कहा, कि "वह त्वद्विमुख अर्थात् तुझसे विमुख है उसका तू क्या करैगी?" इसका अभिप्राय यह है, कि वह श्रीरामचन्द्रजी तुझ (प्रकृतिसे विमुख अर्थात् पर हैं, तू उनके विषे किसी प्रकारभी अपना मोह नहीं डालसक्ती है. इसप्रकार रावणने जो श्रीरामचन्द्रजीकी निंदा करी परन्तु सरस्वतीने रावण-

रावणस्य वचः श्रुत्वा सीतामर्षसमन्विता ॥ उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥ ३१ ॥ राघवाद्भिभ्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम् ॥ रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥ ३२ ॥ हृतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् ॥ यदा रामशरौघेण विदारितव पुर्भवान् ॥ ३३ ॥ ज्ञास्यसे मानुषं रामं गमिष्यसि यमान्तिकम् ॥ समुद्रं शोषयित्वा वा शरैर्बद्ध्वाथ वारिधिम् ॥ ३४ ॥

के कंठपै बैठकर इन निंदाके वचनों करके भी श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिही करी) ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ इसप्रकार परमकठोर रावणके वचनोंको सुनकर सीताजी क्रोधमें भरगई और नीचेको मुख करके और तृण[1] मात्रका बीचमें अन्तर करके रावणसे कहने लगीं ॥ ३१ ॥ कि अरे नीच! निःसंदेह तैनें श्रीरामचन्द्रजीसे भयभीत होकर भिक्षुक(संन्यासी)का रूप धारण कियाथा तिस परभी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणके न होनेके समय तू मुझे इस प्रकार ले आया कि जिसप्रकार यज्ञके भागको लेकर कुत्ता भागताहै ॥ ३२ ॥ हे नीच ! तू जो मुझे हरणकरके लाया है इसका फल शीघ्रही पावैगा, जिससमय श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंके प्रहारसे तेरा शरीर विदीर्ण होयगा, तब जानैगा कि श्रीरामचन्द्रजी ऐसे मनुष्य हैं, देख शीघ्रही तुझे

१ सीताजीने तृणको बीचमें इसकारण किया, कि पतिव्रता स्त्रीको परपुरुषसे साक्षात् वार्ता नहीं करनी चाहिये, अथवा तृण बीचमें करनेका यह प्रयोजन है, कि सीता रावणको सूचित करती है, कि हे रावण ! तू श्रीरामचन्द्रजीके आगे तृणके समान है.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यमराजके समीप पहुँचावेंगे, अपने बाणोंसे समुद्रको सुखाकर अथवा समुद्रको सेतु (पुल) बांधकर तेरा संग्राममें प्राणान्त करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसहित निःसंदेह आवेंगे. हे नीच राक्षस! तब तू देखैगा कि क्या होरहाहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वह श्रीरामचन्द्रजी तुझको पुत्र और सेनासहित संग्राममें प्राणहीन करके मुझे अयोध्यापुरीको ले जायँगे. इस प्रकार जानकीजीके कठोर अक्षरोंको सुनकर राक्षसपति रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥ ३६ ॥ और क्रोधमें भरके शीघ्रही तलवारको उठाकर लाल लाल नेत्र करताहुआ जानकीजीको मारनेको उद्यत हुआ ॥ ३७ ॥ उससमय रावणका हित चाहनेवाली मंदोदरी समझाकर कहनेलगी, कि हे स्वामिन्! इस दुःखित, अति दुर्बल, दीन और कृपण मनुष्यजातीकी स्त्रीको

हन्तुं त्वां समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ॥ आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम ॥ ३५ ॥ त्वां सपुत्रं सहबलं हत्वा नेष्यति मां पुरम् ॥ श्रुत्वा रक्षःपतिः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम् ॥ ३६ ॥ वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्य सत्वरः ॥ हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनः ॥ ३७ ॥ मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता ॥ त्यजैनां मानुषीं दीनां दुःखितां कृपणां कृशाम् ॥ ३८ ॥ देवगन्धर्वनागानां बह्व्यः सन्ति वराङ्गनाः ॥ त्वामेव वरयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥ ३९ ॥ ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः ॥ यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना ॥ तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥ ४० ॥ द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत् ॥ तदा सर्वसुखोपेता राज्यं भोक्ष्यति सा मया ॥ ४१ ॥ यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाभिनन्दति ॥ तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्तःपुरालयम् ॥ राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्यः स्वतर्जनैः ॥ ४३ ॥

त्यागदो ॥ ३८ ॥ तुम्हारे यहाँ तो देव गन्धर्व और नागोंकी सुन्दरी हैं, जिनके कामदेवके मदकरके नेत्र उन्मत्त होरहे हैं और जो सब प्रकारसे तुम्हारे समागमकी इच्छा करती हैं ॥ ३९ ॥ उससमय रावणने मंदोदरीके कहनेपर तो कुछ ध्यान न दिया, किन्तु भयंकर हैं मुख जिनके ऐसी राक्षसियोंके प्रति दशोंमुखोंसे कहनेलगा, जिसप्रकार सीता अपने इच्छासे मेरे वशमें होजाय तुम सब भय दिखाकर अथवा आदर करके इसका यत्न करो ॥ ४० ॥ यदि दो महीनेके भीतर सीता मेरे बशीभूत होजायगी, तो सब प्रकारसे मेरे साथ राज्यको भोगैगी ॥ ४१ ॥ और यदि दो मासके अनंतर सीता मेरी शय्यापर न आवै तो इसका प्राणान्त करके इसके मांसको मेरे प्रातःकालके भोजनके निमित्त पकाओ ॥ ४२ ॥ इसप्रकार कहकर रावण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रियों सहित रणवासको चलागया, और राक्षसियें जानकीजीके समीप आकर अनेक प्रकारकी अपनी तर्जनाओंसे भय दिखानेलगीं ॥ ४३ ॥ उनमेंसे एक जानकीजीसे कहने लगी, कि तेरा यौवन अबतक वृथाही गया, अबभी यदि रावणसे तेरा समागम होय तो सफल होजाय ॥ ४४ ॥ दूसरी राक्षसी क्रोधकरके जानकीसे कहने लगी, कि अरी विलम्ब क्यों करती हो ? अबही इसके अंगको काटकर अलग २ टुकड़े करडालो ॥ ४५ ॥ और अन्य एक राक्षसी तलवार उठाकर जानकीके मारनेको उद्यत हुई, और एकने अपना भयंकर मुख फैलाकर जानकीजीको भय दिखाया ॥ ४६ ॥ इसप्रकार वह भयंकर मुखवाली राक्षसियें जानकीजीको भय दिखारहींथीं, सो एक त्रिजटा नामवाली वृद्धा राक्षसीने उन सब राक्षसियोंको एकान्तमें बुला-

तत्रैका जानकीमाह यौवनं ते वृथा गतम् ॥ रावणेन समासाद्य सफलं तु भविष्यति ॥ ४४ ॥ अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि ॥ इदानीं छेद्यतामङ्गं विभज्य च पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥ अन्या तु खड्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता ॥ अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ॥ ४६ ॥ एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः ॥ निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत् ॥ ४८ ॥ न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् ॥ इदानीमेव मे स्वप्ने रामः कमललोचनः ॥ ४९ ॥ आरुह्यैरावतं शुभ्रं लक्ष्मणेन समागतः ॥ दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वां हत्वा रावणमाहवे ॥ ५० ॥ आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्धनि ॥ रावणे गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥ ५१ ॥ अगाहत्पुत्रपौत्रैश्च कृत्वा बदनमालिकाम् ॥ बिभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानसः ॥ ५२ ॥ सेवां करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ॥ सर्वथा रावणं रामो हत्वा सकुलमञ्जसा ॥ ५३ ॥

कर मनाकरके इसप्रकार कहनेलगी ॥ ४७ ॥ कि अरी दुष्टराक्षसियों ! मेरे कहनेको सुनोगे तो तुम्हारा हित होगा ॥ ४८ ॥ अरी ! इस रोदन करतीहुई जानकीको भय मत दिखाओ, किन्तु इनको प्रणाम करो, इसी समय मैंने स्वप्नमें देखा है कि कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसहित श्वेतवर्ण ऐरावत हस्तीके ऊपर चढ़कर आए हैं, और सम्पूर्ण लंकापुरीको जलाकर तथा पुत्रपौत्रादिसाहित रावणको संग्राममें मारकर और सीताजीको अपनी गोदमें बैठालकर पर्वतके ऊपर विराजमान होरहेहैं; और रावण शरीरको तैल मलेहुए, नग्न, हाथोंमें मुण्डोंकी माला लिये, पुत्रपौत्रादिसहित गोबरके गारमें पड़ाहुआ है, और बिभीषण श्रीरामचन्द्रजीके समीप बैठाहुआ प्रसन्नचित्तसे भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा कररहा है, सो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे राक्षसियों ! निःसन्देह श्रीरामचन्द्रजी सकुटुम्ब रावणका सब प्रकारसे नाश करके और बिभीषणको लङ्कापुरीका राज्य देकर, तथा सुमुखी सीताजीको अपने साथ लेकर अपने नगरको जायँगे, इसमें किञ्चिन्मात्रभी सन्देह मत करो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इसप्रकार त्रिजटाके कहनेको सुनकर वह सम्पूर्ण राक्षसोंकी स्त्रियें भयभीत होगईं, और चुप होकर जहाँकी तहाँ निद्राको प्राप्त होगईं ॥ ५५ ॥ तिन राक्षसियोंसे अत्यन्त तर्जना करी हुई वह सीताजी अत्यन्त व्याकुल हुई, और किसीको अपना रक्षक न देखकर दुःखकेकारण मूर्च्छित होगई ॥ ५६ ॥ और फिर कुछ चेतन होकर चिन्ता करती हुई नेत्रोंमें जल भरकर इसप्रकार कहने लगी कि निःसन्देह प्रातःकालके समय यह राक्ष-

बिभीषणायाधिपत्यं दत्त्वा सीतां शुभाननाम् ॥ अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न संशयः ॥५४॥ त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रियः ॥ तूष्णीमासंस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागताः ॥ ५५ ॥ तर्जिता राक्षसीभिः सा सीता भीतातिविह्वला ॥ त्रातारं नाधिगच्छन्ती दुःखेन परिमूर्छिता ॥ ५६ ॥ अश्रुभिः पूर्णनयना चिन्तयन्तीदमब्रवीत् ॥ प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मां न संशयः इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥ ५७ ॥ एवं सुदुःखेन परिप्लुता सा विमुक्तकण्ठं रुदती चिराय ॥ आलम्ब्य शाखां कृतनिश्चया मृतौ न जानती कञ्चिदुपायमङ्गना ॥ ५८ ॥ इति श्रीम० उमामहे० सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ उद्बन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीरं राघवं विना ॥ जीवितेन फलं किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यतः ॥ १ ॥

सियें मुझे भक्षण कर जायँगी, सो किसी उपायसे इसीसमय मेरा मरण होजाय तो अच्छा है ॥ ५७ ॥ इसप्रकार अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुई वह सीताजी बहुतकालपर्य्यन्त मुक्तकण्ठ होकर (चिल्लाकर) रोदन करती रहीं, फिर कुछ कालके अनन्तर वह सुन्दरी और कोई उपाय न जानकर मरणके निमित्त निश्चयकरके वृक्षकी शाखाको पकड़को खड़ी होगई ॥ ५८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! उस समय सीताजी इसप्रकार विचार करनेलगीं, कि मैं श्रीरामचन्द्रजीके विना राक्षसोंके मध्यमें जीवन धारण करनेसे मुझे कौन लाभ है? अब मैं फाँसी खाकर अपने प्राणोंको छोड़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूंगी ॥ १ ॥ इस मेरी लंबी बेणी (केशोंकी चोटी) की फांसीभी बहुत ठीक बनजायगी, इसप्रकार अपनी बुद्धिसे निश्चय करके जानकीजीको मरणके निमित्त उद्यत देखकर हनुमानजी कुछ बिचार करके धीरे धीरे जानकीजीके कानमें पहुँचनेके योग्य महीन स्वरसे इसप्रकार कहनेलगे ॥२॥३॥ कि इक्ष्वाकुवंशमें जन्मधारण करनेवाले अयोध्यापुरीके स्वामी महानुभाव राजा श्रीदशरथजी थे, उसके त्रिलोकीमें प्रसिद्ध, सबदेवताओं-के समान और सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न यह चार पुत्र हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ तिनमेंसे ज्येष्ठपुत्र श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे भ्राता लक्ष्मण और स्त्री सीतासहित दण्डकारण्यको आये थे ॥ ६ ॥ और उदारचित्त तिस दण्डकारण्यमें गौतमी (गोदावरी) नदीके

दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति ॥ एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥ २ ॥ विलोक्य हनुमान्किञ्चिद्विचार्यैतद-भाषत ॥ शनैः शनैः सूक्ष्मरूपो जानक्याः श्रोत्रगं वचः ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो राजा दशरथो महान् ॥ अयोध्याधिपतिस्तस्य च-त्वारो लोकविश्रुताः ॥ ४ ॥ पुत्रा देवसमाः सर्वे लक्षणैरुपलक्षिताः ॥ रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥ ५ ॥ ज्येष्ठो रामः पितुर्वा-क्याद्दण्डकारण्यमागतः ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥ ६ ॥ उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्यां महामनाः ॥ तत्र नीता महा-भागा सीता जनकनन्दिनी ॥ ७ ॥ रहिते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥ ततो रामोऽतिदुःखार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम् ॥ ८ ॥ जटायुषं पक्षिराजमपश्यत्पतितं भुवि ॥ तस्मै दत्त्वा दिवं शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥ ९ ॥ सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मनः ॥ तद्भार्याहारिणं हत्वा वालिनं रघुनन्दनः ॥१०॥ राज्येऽभिषिच्य सुग्रीवं मित्रकार्यं चकार सः॥सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान्वानरप्रभुः॥११॥

तटपर पञ्चवटीमें निवास करतेथे, तहाँ एकदिन श्रीरामचंद्र और लक्ष्मण नहीं थे, सो दुष्टात्मा रावण महाभागा जनकनन्दिनी सीताको उनके पीछे हर लेगया तबतौ श्रीरामचंद्रजी दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो जानकीजीको ढूँढ़नेके निमित्त चल दिये ॥ ७ ॥ ८ ॥ सो एकजगह पृथ्वीमें पडाहुआ पक्षिराज जटायुको देखा, तिसको स्वर्गलोकमें भेजकर शीघ्रही ऋष्यमूक पर्वतपर आये ॥ ९ ॥ तहाँ अपना सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन करके श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवके साथ मित्रता करी और उस सुग्रीवकी स्त्रीको हरनेवाले वालीका प्राणान्त करके और किष्किन्धाके राज्यमें सुग्रीवको अभिषेक करके श्रीरामचं-द्रजीने मित्रका कार्य किया, तब वानरराज सुग्रीवने देश देश और दिशादिशाके वानरोंको बुलवाया ॥ १० ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उन सम्पूर्ण वानरोंको सीताके ढूँढ़नेके निमित्त भेजा, उनमेंसे सुग्रीवका मंत्री एक वानर मैं हूँ ॥ १२ ॥ सम्पातीके कहनेसे शीघ्रही सौयोजन चौड़े समुद्रको उल्लंघन करके इस लंकापुरीमें शुभलक्षणा जानकीको ढूँढ़ता ढूँढ़ता ॥१३॥ इस अशोक वनिकामें धीरे धीरे आनकर शिंशिपा वृक्षको ढूँढ़ा, सो यहाँ शोच करतीहुई अत्यंत दुःखित श्रीरामचंद्रजीकी रानी सीतादेवीको देखा है, इसकारण मैं यहाँ आकर कृतकृत्य होगया, इसप्रकार कहकर परमबुद्धिवान् हनुमान्जी मौन होगये ॥ १४ ॥ १५ ॥ सीताजी क्रमसे यह सब वृत्तान्त सुनकर बड़े आश्चर्यमें होगई और अपने मनमें इसप्रकार कहने लगी कि क्या मैंनें यह आकाशमें वायुका कहाहुआ वचन सुनाहै ? ॥ १६ ॥ या स्वप्न देखा है ? या मेरे मनको भ्रम होरहा है ? अथवा यह सत्यही है ? यह

प्रेषयामास परितो वानरान्परिमार्गणे ॥ सीतायास्तत्र चैकोऽहं सुग्रीवसचिवो हरिः ॥ १२ ॥ सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लङ्घ्य शतयोजनम् ॥ समुद्रं नगरीं लंकां विचिन्वन् जानकीं शुभाम् ॥ १३ ॥ शनैरशोकवनिकां विचिन्वन् शिंशपातरुम् ॥ अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसंप्लुताम् ॥ १४ ॥ रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः ॥ इत्युक्त्वोपरराम अथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥ १५ ॥ सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमाययौ ॥ किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम् ॥ १६ ॥ स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत् ॥ निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत्कुतो भ्रमः ॥ १७ ॥ येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम् ॥ स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान्पत्रखण्डतः ॥ अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः ॥ १९ ॥ कलविङ्कप्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः ॥ ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥ २० ॥

स्वप्न तो है नहीं क्योंकि मुझे दुःखके कारण निद्राही नहीं आतीहै और यह भ्रमभी नहीं है क्योंकि इससमय मेरा चित्त सब प्रकारसे स्वस्थ है, और सब पदार्थोंको यथार्थ रूपसे जानरही हूँ ॥ १७ ॥ सो यह वार्त्ता सत्यही मालूम होती है, इसप्रकार सीताजी निश्चयकरके कहनेलगी, कि जिसने यह मेरे कानोंको अमृतके तुल्य प्रिय प्रतीत होनेवाला वचन कहा है वह प्रियवचन बोलनेवाला महाभाग मेरे सन्मुख आकर दर्शन देय ॥ १८ ॥ इसप्रकार जानकीजीके कहनेको सुनकर हनुमान्जी पत्तोंके समूहमेंसे धीरेसे उतरकर सीताजीके सन्मुख आकर स्थित होगये ॥ १९ ॥ उससमय हनुमान्जीका आकार कलविक (चटकपक्षी अर्थात् चिडिया) के समान था मुख लाल और वर्ण पीत था, उसरूपसेही हनुमान्जीने आगे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थित हो हाथ जोडकर धीरेसे सीताजीके अर्थ प्रणाम किया॥२०॥ उसको देखकर जानकीजी भयभीत होगई और यह जाना कि—मुझे मोहित करनेके निमित्त मायासे यह छोटासा वानरका रूप धारण करके रावणही आया है॥२१॥ इसप्रकार विचारकर सीताजीने मौन होकर नीचेको मुख कर लिया तबतो हनुमान्जी सीताजीसे फिर कहनेलगे कि हे देवी! तुम जो अपने चित्तमें संदेह कर रही हो, मातः! वह कपटी रावण मैं नहीं हूँ, इसकारण मेरे विषयमें संदेह मत करो, मैं अयोध्यापति परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका दास हूँ॥२२॥२३॥ हे कल्याणकारिणि! मैं वानरराज सुग्रीवका मंत्री हूँ, और हे शोभने! सबका प्राणरूप जो वायु तिसका पुत्र हूँ॥२४॥ जानकीजी इसकाप्रकार वचनोंको सुनकर हाथ जोड़कर आगे खडेहुए हनुमान्जीसे कहने लगी, कि मनु-

दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः ॥ मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः ॥ २१ ॥ इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीदधोमुखी ॥ पुनरप्याह तां सीतां देवि यत्त्वं विशङ्कसे ॥ २२ ॥ नाहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मयि स्थिताम् ॥ दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः ॥ २३ ॥ सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे ॥ वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम् ॥ वानराणां मनुष्याणां संगतिर्घटते कथम् ॥ २५ ॥ यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे ॥ तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः ॥ २६ ॥ ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः ॥ सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ ॥ २७ ॥ भीतो मां प्रेषयामास ज्ञातुं रामस्य हृद्गतम् ॥ ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वा गतोऽहं रामसन्निधिम् ॥ २८ ॥ ज्ञात्वा रामस्य सद्भावं स्कन्धोपरि निधाय तौ ॥ नीत्वा सुग्रीवसामीप्यं सख्यं चाकरवं तयोः ॥ २९ ॥

ष्योंका और वानरोंका समागम होना किसप्रकार सम्भव होसक्ता है॥२५॥ और तुमने इसप्रकार जो कहा, कि मैं श्रीरामचंद्रजीका दास हूँ यह वार्त्ता विना परस्पर मेलके हो नहीं सक्ती? तब तो आगे खडे हुए हनुमानजी प्रसन्न होकर जानकीजीसे कहने लगे॥ २६॥ कि परमबुद्धिमान् श्रीरामचंद्रजी शबरीके कहनेसे ऋष्यमूकपर्वतपै गये, तब सुग्रीवने ऋष्यमूकपर्वतपै बैठेहुएही श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीको आता देखा॥ २७॥ तब भयभीत होकर श्रीरामचंद्रजीके चित्तका अभिप्राय जाननेके निमित्त मुझे भेजा, मैं ब्रह्मचारीका वेश धारण करके श्रीरामचंद्रजीके पास गया॥ २८॥ और उनके हृदयका सद्भाव (निष्कपट वृत्तान्त) जानकर और उन दोनोंको अपने कंधोंपर चढ़ाकर सुग्रीवके समीप ले आया, और सुग्रीवकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके साथ मित्रताभी करादी ॥२९॥ सुग्रीवकी स्त्रीको वालीने हर लियाथा, सो उसको श्रीरामचंद्रजीने एक बाणसेही यमपुरीको पहुँचादिया, फिर किष्किन्धाके राज्यमें सुग्रीवका अभिषेक करा दिया, तब तिस वानरराज सुग्रीवने तुम्हारी सुध लेनेकेनिमित्त बडे बडे बली वानरोंको सब दिशाओंमें भेजा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ श्रीरामचंद्रजी मुझे जाताहुआ देखकर आदरपूर्वक कहने लगे ॥ ३२ ॥ हे पवनकुमार! मेरा सम्पूर्ण कार्य तुम्हारेही ऊपर है तुम जाकर सीतासे मेरी और लक्ष्मणकी सर्व प्रकारसे कुशल कहो ॥ ३३ ॥ और पहिंचानके निमित्त यह मेरी उत्तम अँगूठी लो, यह सीताको दे देना इसके ऊपर स्पष्टरीतिसे मेरे नामके अक्षर खुदेहुए हैं ॥ ३४ ॥ इसप्रकार कहकर मुझे अंगुलीमेंसे उतारकर अँगूठी दी सो हे देवि! मैं

सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना तं रघूत्तमः ॥ जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ३० ॥ सुग्रीवं वानराणां स प्रेषयामास वानरान् ॥ दिग्भ्यो महाबलान्वीरान् भवत्याः परिमार्गणे ॥ ३१ ॥ गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा मामभाषत सादरम् ॥ ३२ ॥ त्वयि कार्यमशेषं मे स्थितं मारुतनन्दन ॥ ब्रूहि मे कुशलं सर्वं सीतायै लक्ष्मणस्य च ॥ ३३ ॥ अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम् ॥ सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम् ॥ प्रयत्नेन मयानीतं देवि पश्याङ्गुलीयकम् ॥३५॥ इत्युक्त्वा प्रददौ देव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः ॥ नमस्कृत्वा स्थितो दूराद्बद्धाञ्जलिपुटो हरिः ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्कितां तदा ॥ मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्ववदानन्दनेत्रजा ॥ ३७ ॥ कपे मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे ॥ भक्तोऽसि प्रियकारी त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि ॥ ३८ ॥ नो चेन्मत्सन्निधिं चान्यं पुरुषं प्रेषयेत्कथम् ॥ हनूमन्दृष्टमखिलं मम दुःखादिकं त्वया ॥ ३९ ॥

बड़े प्रयत्नसे इस अँगूठीको लाया हूँ सो तुम देखलो ॥ ३५ ॥ इसप्रकार कहकर पवनकुमारने सीताजीको वह मुद्रिका दी और नमस्कार करके हनुमानजी हाथ जोड़ेहुए दूरको खड़े होगये ॥ ३६ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजीके नामसे अंकित मुद्रिकाको देखकर परमप्रसन्न हुई, और अपना अहोभाग्य समझकर शिरपर धारण किया, उससमय सीताजीके नेत्रोंमेंसे आनंदके आंसू टपकने लगे ॥ ३७ ॥ और कहने लगीं कि हे पवनकुमार! तुम परमबुद्धिमान् हो, जो तुमने मुद्रिका लाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा करी, और तुम अवश्यही श्रीरामचंद्रजीके भक्त और उनके हितकारक हो, इसकारणही श्रीरामचंद्रजीके निःसंदेह सम्पूर्ण वानरोंमें तुम्हाराही विश्वास है ॥ ३८ ॥ नहीं तो मेरे पास तुम्हैं अन्य पुरुष होनेके कारण क्यों भेजते? अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास होनेके कारणही यद्यपि तुम पुरुषजाति हो तथापि तुम्हैं मेरे पास भेजदिया. हे हनुमन् ! तुम्हैं मेरा दुःखआदि देखही लिया ॥ ३९ ॥ यह सम्पूर्ण श्रीरामचन्द्रजीसे इसप्रकार कहना कि जिसप्रकार मेरे ऊपर उनकी दयादृष्टि होजाय. हे साधो ! मैं दो मासपर्य्यन्त तो अपने प्राणोंको धारण करूंगी ॥ ४० ॥ और यदि दो महीनेके भीतर श्रीरामचन्द्रजी नहीं आवेंगे तो यह दुष्ट रावण मुझे भक्षणकर जायगा, इसकारण यदि शीघ्रही वानरराज सुग्रीवकरके और अन्य वानरोंकी सेनाके स्वामियोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी जब संग्राममें पुत्रपौत्रादि और सेनासहित रावणका बध करके मुझे इस कष्टसे छुडावेंगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ तब तो वह पराक्रम श्रीरामचन्द्रजीके योग्य होयगा और हे वीर हनुमान् ! ऋषियोंसे वर्णन

सर्वं कथय रामाय यथा मे जायते दया ॥ मासद्वयावधि प्राणाः स्थास्यन्ति मम सत्तम ॥ ४० ॥ नागमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मां खलः ॥ अतः शीघ्रं कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वितः ॥ ४१ ॥ वानरानीकपैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे ॥ सपुत्रं सबलं रामो यदि मां मोचयेत्प्रभुः ॥ ४२ ॥ तत्तस्य सदृशं वीर्यं वीर वर्णय वर्णितम् ॥ यथा मां तारयेद्रामो हत्वा शीघ्रं दशाननम् ॥ ४३ ॥ तथा यतस्व हनुमन्वाचा धर्ममवाप्नुहि ॥ हनूमानपि तामाह देवि दृष्टो यथा मया ॥ ४४ ॥ रामः सलक्ष्मणः शीघ्रमागमिष्यति सायुधः ॥ सुग्रीवेण ससैन्येन हत्वा दशमुखं बलात् ॥ ४५ ॥ समानेष्यति देवि त्वामयोध्यां नात्र संशयः ॥ तमाह जानकी रामः कथं वारिधिमाततम् ॥ ४६ ॥ तीर्त्वायास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह ॥ हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥ आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥ विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥ ४८ ॥

किये हुए उनके पहिले पराक्रमोंको उनके संमुख वर्णन करो, जिससे श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही रावणका प्राणान्त करके मुझे कष्टसे छुडावें ॥ ४३ ॥ हे हनुमन् ! तुम अपने वचनोंसे प्रेरणा करके ऐसा यत्न अवश्यही करो, तब तुमको बडा धर्म होगा. इसप्रकार सुनकर हनुमान्जीभी सीताजीसे कहने लगे, कि हे मातः ! जिसप्रकार मैंने देखा है सो मैं सब जानताहूँ ॥ ४४ ॥ शस्त्रोंको धारण कियेहुए श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सेनासहित वानरराज सुग्रीव शीघ्रही आवेंगे, और इस रावणको अपने बलसे यमपुरीको पहुँचाकर तुम्हैं अयोध्यापुरीको ले जायँगे. हे देवि ! इस मेरे कहनेमें कुछभी सन्देह न करना. फिर सीताजी हनुमान्जीसे कहने लगी, कि श्रीरामचन्द्रजी इस बडे चौंडे समुद्रको किसप्रकार पार उतरकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वानरोंकी सेनासहित आवेंगे तब तो हनुमान्जी कहने लगे, कि मेरे कंधोंके ऊपर चढ़कर वह दोनों पुरुषश्रेष्ठ आवेंगे और सेनासहित वानरराज सुग्रीव क्षणमात्रमें आकाशमार्गसे होकर इस चौंडे समुद्रको भी उल्लंघन कर आवेंगे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ और तुम्हारे निमित्त निःसन्देह राक्षसोंके समूहोंका भस्म कर डालेंगे. हे मातः ! अब मुझे आज्ञा दीजिये जो शीघ्रतासे जाऊँ, क्योंकि शीघ्रही लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके फिर तुम्हारे पास आनेकी भी मुझे बहुत शीघ्रता है, अब हे मातः ! मुझे कुछ पहिचानकी वस्तु दीजिये जिससे श्रीरामचन्द्रजीको विश्वास आजाय. तब मैं यत्नसे उत्कंठापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाऊंगा. हनुमान्जीके इसप्रकार कहनेपर कमलनयना सीताजीने कुछ देर विचार किया ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ फिर केशपाश (वेणी) में बँधीहुई चूड़ामणि खोलकर हनुमान्जीको दी और कहा कि इसको देखकर लक्ष्मणजीसहित श्री-

निर्दहिष्यति रक्षौघांस्त्वत्कृते नात्र संशयः ॥ अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छामि त्वरयान्वितः ॥ ४९ ॥ द्रष्टुं रामं सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम् ॥ देवि किञ्चिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः ॥ ५० ॥ विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुकः ॥ ततः किञ्चिद्विचार्याथ सीता कमललोचना ॥ ५१ ॥ विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ ॥ अनेन विश्वसेद्रामस्त्वां कपीन्द्र सलक्ष्मणः ॥ ५२ ॥ अभिज्ञानार्थमन्यच्च वदामि तव सुव्रत ॥ चित्रकूटगिरौ पूर्वमेकदा रहसि स्थितः ॥ मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दनः ॥ ५३ ॥ ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत् ॥ मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया ॥ ५४ ॥ ततो रामः प्रबुद्धश्चाथ दृष्ट्वा पादं कृतव्रणम् ॥ केन भद्रे कृतं चैतद्विप्रियं मे दुरात्मना ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वा पुरतोऽपश्यद्वायसं मां पुनः पुनः ॥ अभिद्रवन्तं रक्तास्यनखतुण्डं चुकोप ह ॥ ५६ ॥

रामचन्द्रजी तुम्हारा विश्वास करलेगें ॥ ५२ ॥ और हे साधो ! और एक वार्त्ता तुम्है पहिचाँनके निमित्त बताती हूँ, कि पहिले एकसमय चित्रकूट पर्वतपर एकान्तमें श्रीरामचन्द्रजी मेरी गोदीमें शिर रखकर शयन कररहे थे ॥ ५३ ॥ उस समय इन्द्रका पुत्र जयन्त काकका रूप धारण करके आया और मांसकी इच्छा करके वारंवार अपनी चोंच और नखोंसे अतिलाल वर्ण है जिसका ऐसे मेरे पैरके अँगूठेसे विदीर्ण करने लगा ॥ ५४ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने जागकर मेरे चरणमें उसके कियेहुए घावको देखकर कहा, कि हे भद्रे ! यह मेरे विपरीत कार्य्य किस दुष्टात्माने किया है ? ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर मेरे आगे वारंवार आतुर हुए उस काकके नख और चोंचको रुधिरसे भीगाहुआ देखकर बड़े क्रुद्ध हुए ॥ ५६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और एक तृण (सींक) उठाकर अपने दिव्य धनुषपर मंत्र पढ़कर चढ़ाया, और अनायासही लीलासे उस काकके ऊपरको छोड़दिया, तब तो वह सींक उसको चारोंओरसे अग्निके समान जलाने लगी ॥ ५७ ॥ सो काक भयभीत होकर भागा, और सब लोकोंमें भ्रमता फिरा, परन्तु उस तृणने उसका पीछा नहीं छोडा, तब तो इन्द्र और ब्रह्मादिकके पास गया, परन्तु वहभी उसकी रक्षा नहीं करसके, तबतो फिर आकर भयभीत हो कृपासागर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिरपड़ा, तब तो श्रीरामचन्द्रजी जयन्तको शरणमें आयाहुआ देखकर इसप्रकार कहने लगे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ कि—अरे जयन्त ! यह मेरा अस्त्र निष्फल नहीं होसक्ता, सो इसको अपना एक नेत्र देकर यहाँसे चलाजा, तब वह काकरूप जयन्त

तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत् ॥ चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलत् ॥ ५७ ॥ अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन्पुनः ॥ इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ॥ ५८ ॥ रामस्य पादयोरग्रेऽपतद्भीत्या दयानिधेः ॥ शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज ॥ सद्यं दत्त्वा ततः काक एवं पौरुषवानपि ॥ ६० ॥ उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः ॥ हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ॥ ६१ ॥ देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः ॥ करिष्यति क्षणाद्भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ॥ ६२ ॥ जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः ॥ अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत् ॥ मेरुमन्दरसंकाशं रक्षोगणबिभीषणम् ॥ ६४ ॥

अपना वामनेत्र देकर तहाँसे गया. सो हे हनुमान् ! तुम उनसे कहना कि—सीताने कहा है ऐसे पराक्रमी होकर वह श्रीरामचन्द्र इससमय किसकारण मेरी उपेक्षा कर रहे हैं; इसप्रकार सीताजीके कथनको सुनकर हनुमान्जी कहनेलगे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ कि हे मातः ! यदि श्रीरामचंद्रजी जानलेते कि तुम यहाँ स्थित हो तो क्षणमात्रमें राक्षसोंसहित इस लंकाको भस्म कर डालते ॥ ६२ ॥ फिर जानकीजी कहने लगी कि हे पुत्र ! इन राक्षसोंसे तुम किप्रकार युद्ध करोगे, तुम्हारा तो बहुतही छोटा शरीर है, और अन्य वानरों भी तुम्हारेहीसे शरीर होंगे, और यह राक्षस तो बड़े बड़े शरीरधारी हैं; ॥ ६३ ॥ इसप्रकार सीताजीके कहनेको सुनकर हनुमान्जीने अपना पहिलारूप सीताजीको दिखाया, जो मेरु और मन्दराचलके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समान राक्षसोंकोभी भयभीत करनेवाला था ॥ ६४ ॥ सीताजी इसप्रकार हनुमान्‌जीका बड़े पर्वतके समान आकार देखकर बड़े हर्षमें भरगई, और तिन कपिराज हनुमानसे कहने लगी ॥ ६५ ॥ कि हे महाबल! मैंने जानलिया कि तुम समर्थ हो अब राक्षसियें तुम्हारे इस महापराक्रमी आकारको देखलेंगी इसकारण अब तुम श्रीरामचन्द्रजीके समीपको शीघ्रही चलेजाओ, मार्गमें तुम्हारा मंगल होय ॥ ६६ ॥ इसप्रकार जानकीजीने तो जानेकी आज्ञा देदी, परन्तु हनुमान्‌जीको भूँख लगरहीथी सो कहनेलगे कि हे देवि! अब मेरा व्रत पूरा होगया, जो तुम्हारा दर्शन हुआ, सो अब मैं पारणा (व्रतके अनन्तरका भोजन) करना चाहताहूं, यदि आज्ञा होय तो तुम्हारे सामने लगेहुए इन सम्पूर्ण फलोंको भक्षण करके भूँखको दूर करूं

दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम् ॥ हर्षेण महताविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम् ॥ ६५ ॥ समर्थोऽसि महासत्त्व द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम् ॥ राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम् ॥ ६६ ॥ बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात्पारणं मम ॥ भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे ॥ ६७ ॥ तथेत्युक्तः स जानक्या भक्षयित्वा फलं कपिः ॥ ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य सः ॥ किंचिद्दूरमथोगत्वा स्वात्मन्येवानुचिन्तयत् ॥ ६८ ॥ कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः ॥ अन्यत्किंचिदसंपाद्य गच्छत्यधम एव सः ॥ ६९ ॥ अतोऽहं किञ्चिदन्यच्च कृत्वा दृष्ट्वाथ रावणम् ॥ संभाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥ इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान्महाबलः ॥ उत्पाट्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात् ॥ ७१ ॥

॥ ६७ ॥ इसप्रकार कहनेपर सीताजीने आज्ञा दी तब हनुमान्‌जीने फल खाए, फिर सीताजीने बिदा किया तब महाराणीको प्रणाम करके चलदिये, फिर दूरपै जाकर अपने चित्तमें विचार करनेलगे ॥ ६८ ॥ कि जो दूत कार्य्य करनेके निमित्त आया हो, और उस स्वामीके कार्य्यको सिद्ध करके यदि स्वामीके हितकारक दूसरे (विना आज्ञा कियेहुए) कार्य्यको विना सिद्ध करेही चलाजाता है तो वह अधम दूत कहाता है ॥ ६९ ॥ इसकारण मैं अभी कुछ और कार्य्य करके तथा रावणको भी देखकर और उससे कुछ संभाषण करके फिर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेकेलिये जाऊँगा ॥ ७० ॥ इसप्रकार मनमें विचार करके महाबली हनुमान्‌जीने वृक्षोंके समूहोंको उखाड़कर क्षणमात्रमें अशोकवाटिकाको वृक्षरहित करादिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहींभी वृक्ष रहने दिया नहीं ॥ ७१ ॥ केवल जिस वृक्षके नीचे सीताजी थी उस वृक्षको छोड़कर सम्पूर्ण बगीचा शून्य करदिया, राक्षसियें उस वाटिकाको उखाड़ता हुआ देखकर, जानकीजीसे बूझने लगीं, कि अरी ! यह वानररूप धारण कियाहुआ कौन वीर है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तबतो जानकीजी बोली कि इस राक्षसोंकी रचीहुई मायाको तुमही जानती होओगी, मैं तौ अपने दुःख और शोकसेही व्याकुल होरही हूँ, मैं इसको क्या जानूँ, यह कौन है ? ॥ ७४ ॥ जब इसप्रकार जानकीजीने कहा तब तो भयसे व्याकुल हुई राक्षसियोंने शीघ्रही जाकर हनुमान्‌जीका सब कर्त्तब रावणको निवेदन किया ॥ ७५ ॥ कि हे देव ! वानरके आकारका देह धारण किया हुआ कोई महाबली आगया है, उसने सीतासे कुछ बातचीत करके सम्पूर्ण

सीताश्रयणगं त्यक्त्वा वनं शून्यं चकार सः ॥ उत्पाटयन्तं विपिनं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः ॥ ७२ ॥ अपृच्छन् जानकीं कोऽसौ वानराकृति रुद्भटः ॥ ७३ ॥ जानक्युवाच ॥ भवत्य एव जानन्ति मायां राक्षसनिर्मिताम् ॥ नाहमेनं विजानामि दुःखशोकसमाकुला ॥ ७४ ॥ इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा राक्षस्यो भयपीडिताः ॥ हनूमता कृतं सर्वं रावणाय न्यवेदयन् ॥ ७५ ॥ देव कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत् ॥ सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात् ॥ उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितविक्रमः ॥ ७६ ॥ प्रासादरक्षिणः सर्वान्हत्वा तत्रैव तस्थिवान् ॥ तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्गं महाप्रियम् ॥ ७७ ॥ किङ्करान्प्रेषयामास नियतं राक्षसाधिपः ॥ निर्भग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसंस्थितः ॥ ७८ ॥ हनुमान्पर्वताकारो लोहस्तम्भकृतायुधः ॥ किञ्चिल्लाङ्गूलचलनो रक्तास्यो भीषणाकृतिः ॥ ७९ ॥ आपतन्तं महासङ्घं राक्षसानां ददर्श सः ॥ चकार सिंहनादं च श्रुत्वा ते मुमुहुर्भृशम् ॥ ८० ॥

अशोकवाटिकाको उखाड़ डाला, और ऐसा बड़ा पराक्रमी है कि उसने वह बड़ा ऊँचा आपका महलभी तोड़डाला ॥ ७६ ॥ और उस राजमन्दिरके सब रक्षकोंको भी मारडाला, और अभीतक वहाँही स्थित था, अशोकवाटिकाके नष्ट होनेकी अतिदुःखदायक वार्त्ताको सुनकर रावण शीघ्रही उठा ॥ ७७ ॥ और अपने दशहजार नौकरों (सेनाके मनुष्यों) को भेजा; सो तोडेहुए राजमन्दिकरके पहिले चौकमें बैठेहुए, पर्वतके समान है आकार जिनका, लोहेके खम्भेको ही बनाया है शस्त्र जिन्होंने ऐसे लाल मुख, भयंकर मूर्त्ति, कुछ कुछ पूंछको हिलाते हुए तिन हनुमान्‌जीने आता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ राक्षसोंका बडा भारी समूह देखा, सो सिंहके समान बड़े जोरसे गरजे, तिस गर्जनाको सुनकर वह राक्षस अत्यन्त मोहितसे होगए ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ फिर हनुमान्‌जीका भयंकर आकार देखकर राक्षस तिन राक्षसकुलघातक हनुमान्‌जीके ऊपर अनेक प्रकार अस्त्रशस्त्रोंके समूहोंसे प्रहार करने लगे ॥ ८१ ॥ तब तो हनुमान्‌जीने उठकर अपने मुद्गरसे क्षणमात्रमें चारों ओरके राक्षसोंको इसप्रकार कुचल डाला, जिस प्रकार मतवाला गजराज मच्छरोंको कुचल डालता है ॥ ८२ ॥ तदनन्तर रावण अपने सेवकोंका मरण सुनकर क्रोधमें भरगया, और तहाँ सेनासहित बड़े घमण्डी पाँच सेनापतियोंको भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमान्‌जीने उनको भी लोहेके खम्भेसे कुचलकर यमपुरीको पहुँचादिया, तब

हनूमन्तमथो दृष्ट्वा राक्षसा भीषणाकृतिम् ॥ निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैः सर्वराक्षसघातिनम् ॥ ८१ ॥ तत उत्थाय हनुमान्मुद्गरेण समन्ततः ॥ निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथपः ॥ ८२ ॥ निहतान्किङ्करान् श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ पञ्च सेनापतींस्तत्र प्रेषयामास दुर्मदान् ॥ ८३ ॥ हनूमानपि तान्सर्वांल्लोहस्तम्भेन चाहनत् ॥ ततः क्रुद्धो मन्त्रिसुतान्प्रेषयामास सप्त सः ॥ ८४ ॥ आगतानपि तान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वरः ॥ क्षणान्निःशेषतो हत्वा लोहस्तम्भेन मारुतिः ॥ ८५ ॥ पूर्वस्थानमुपाश्रित्य प्रतीक्षन् राक्षसान् स्थितः ॥ ततो जगाम बलवान्कुमारोऽक्षः प्रतापवान् ॥ ८६ ॥ तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाकाशे समुद्गरः ॥ गगनात्त्वरितो मूर्ध्नि मुद्गरेण व्यताडयत् ॥ ८७ ॥ हत्वा तमक्षं निःशेषं बलं सर्वं चकार सः ॥ ८८ ॥ ततः श्रुत्वा कुमारस्य वधं राक्षसपुङ्गवः ॥ क्रोधेन महताविष्ट इन्द्रजेतारमब्रवीत् ॥ ८९ ॥ पुत्रगच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते पुत्रहा रिपुः ॥ हत्वा तमथवा बद्ध्वा आनयिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ९० ॥

तो रावण अत्यन्तही क्रुद्ध हुआ, और सेना लेकर सात मंत्रिकुमारोंको भेजा ॥ ८४ ॥ जब वह आए तब पवनकुमारने उन सबको भी क्षणमात्रमें लोहेके खम्भेसे कुचलडाला ॥ ८५ ॥ और फिर पहिले स्थानमें आकर राक्षसोंकी प्रतीक्षा करतेहुए बैठगए, इतनेहीमें परमप्रतापी बलवान् अक्षकुमार (रावणका पुत्र) आया ॥ ८६ ॥ उसको देखकर हनुमान्‌जी मुद्गर लियेहुए आकाशमें कूदे, फिर शीघ्र आकाशसे आकर उसके मस्तकपर मुद्गरका प्रहार किया ॥ ८७ ॥ इसप्रकार तिस अक्षकुमारको और उसकी सम्पूर्ण सेनाको मारकर निःशेष करदिया ॥ ८८ ॥ तब राक्षसपति रावण अक्षकुमारके मरणको सुनकर बड़े क्रोधमें भरगया, और अपने पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) से कहने लगा ॥ ८९ ॥ कि हे पुत्र ! अब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ मैंही जाताहूँ जहाँ मेरे पुत्रका वध करनेवाला शत्रु है, उसका प्राणान्त करके अथवा उसको बाँधकर तेरे समीप लाऊँगा ॥ ९० ॥ ऐसा सुनकर मेघनाद पितासे कहनेलगा कि हे पितः ! आप शोक मत करो, मेरे जीतेहुए आप किसकारण ऐसे दुःखयुक्त वचनोंको कहते हो ॥ ९१ ॥ हे पितः ! मैं थोड़ेही कालमें उस वानरको ब्रह्मपाशसे बाँधकर लेआऊँगा, इसप्रकार कहकर रथपर सवार होगया, और परमपराक्रमी यह वीर मेघनाद बहुतसे राक्षसोंकी सेनाको साथ लेकर पवनकुमारके समीपको चललिया, और जाकर गर्जा, तब तो इस भयंकर गर्जनाको सुनकर महाबली हनुमान्‌जी लोहके खम्भेको उठाकर आकाशमें इसप्रकार उछले, जिसप्रकार साक्षात् गरुडजी, तब आकाशमें घूमते हुए

इन्द्रजित्पितरं प्राह त्यज शोकं महामते ॥ मयि स्थिते किमर्थं त्वं भाषसे दुःखितं वचः॥९१॥बद्धानेष्ये द्रुतं तात वानरं ब्रह्मपाशतः ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥९२॥ जगाम वायुपुत्रस्य समीपं वीरविक्रमः ॥ ततोऽतिगर्जितं श्रुत्वा स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥ ९३ ॥ उत्पपात नभोदेशं गरुत्मानिव मारुतिः ॥ ततो भ्रमन्तं नभसि हनूमन्तं शिलीमुखैः ॥ ९४ ॥ विद्ध्वा तस्य शिरोभागमिषुभिश्चाष्टभिः पुनः ॥ हृदयं पादयुगलं षड्भिरेकेन वालधिम् ॥ ९५ ॥ भेदयित्वा ततो घोरं सिंहनादमथाकरोत् ॥ ततोऽतिहर्षाद्धनुमास्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥९६॥ जघान सारथिं साश्वं रथं चाचूर्णयत्क्षणात् ॥ ततोऽन्यं रथमादाय मेघनादो महाबलः ॥ ९७ ॥ शीघ्रं ब्रह्मास्त्रमादाय बद्ध्वा वानरपुङ्गवम् ॥ निनाय निकटं राज्ञो रावणस्य महाबलः ॥ ९८ ॥ यस्य नाम सततं जपन्ति येऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात् ॥ सद्य एव परिमुच्य तत्पदं यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम् ॥ ९९ ॥

हनुमान्‌जीके मस्तकको मेघनादने बाणोंसे वेधकर, फिर आठ बाणोंसे हनुमान्‌जीके हृदयको, छः बाणोंसे दोनों चरणोंको और एक बाणसे पूछको वेधा, और फिर सिंहनादके समान भयंकर गर्जना करी, तब परमपराक्रमी हनुमान्‌जीने बडी जोरसे किलकारी मारकर अपना लोहेका खम्भा उठाया ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ और क्षणमात्रमें रथ, घोडे और सारथीको कुचलकर चूराचूरा कर दिया, तब महाबली मेघनादने दूसरा रथ मंगवाया ॥ ९७ ॥ और शीघ्रही ब्रह्मास्त्रसे पवनकुमारको बाँधकर राक्षसपति रावणके समीप लेआया ॥ ९८ ॥ जिन श्रीरामचन्द्रजीके नामको निरन्तर जपनेवाले पुरुष क्षणमात्रमें अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले कर्म्मोंके बन्धनसे छूटकर शीघ्रही करोडों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूर्य्योंके समान प्रकाशवान् कल्याणरूप ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं ॥ ९९ ॥ तिनही श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको निरन्तर अपने हृदय-कमलमें स्थापन करके हनुमान्जी सदा सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त रहते हैं, फिर उनको इन बन्धनो और पाशोंसे क्या दुःख होसक्ता है ॥ १०० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि पार्वति ! जब मेघनाद हनुमान्जीको ब्रह्मपाशमें बांधकर लेचला उससमय पवनकुमार लंकापुरीको देख-तेहुए भयभीतके समान चलने लगे, उससमय पुरवासी राक्षस पवनकुमारको देखनेके निमित्त चारोंओरसे आकर कोपयुक्त हो मुष्टिप्रहार करनेलगे ॥ १ ॥

तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः ॥ सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीमद० उमामहेश्वरसं० सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ यान्तं कपीन्द्रं धृतपाशबन्धनं विलोकयन्तं नगरं विभीतवत् ॥ अताडयन्मुष्टितलैः सुकोपनाः पौराः समन्तादनुयान्त ईक्षितुम् ॥ १ ॥ ब्रह्मास्त्रमेनं क्षणमात्रसंगमं कृत्वा गतं ब्रह्मवरेण सत्वरम् ॥ ज्ञात्वा हनूमानपि फल्गुरज्जुभिर्धृतो ययौ कार्यविशेषगौरवात् ॥ २ ॥ सभान्तरस्थस्य च रावणस्य तं पुरो निधायाह बलारि जित्तदा ॥ बद्धो मया ब्रह्मवरेण वानरः समागतोऽनेन हता महासुराः ॥ ३ ॥ यद्युक्तमत्रार्य विचार्य मन्त्रिभिर्विधीयतामेष न लौकिको हरिः ॥ ततो विलोक्याह स राक्षसेश्वरः प्रहस्तमग्रे स्थितमञ्जनाद्रिभम् ॥ ४ ॥ प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः किमत्र कार्यं कुत एव वानरः ॥ वनं किमर्थं सकलं विनाशितं हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ॥ ५ ॥

ब्रह्माजीके वरदानसे ब्रह्मपाश क्षणमात्रको पवनकुमारका स्पर्श करके तत्काल अंतर्धान होगया हनुमान्जी ब्रह्मपाशको अंतर्धान हुआ जानकर भी अपना कार्य्य साधनेके निमित्त अर्थात् रावणको देखनेके निमित्त उन निःसार रस्सियोंमेंही बंधेहुए चलेगये ॥ २ ॥ मेघनाद सभाके बीचमें बैठेहुए रावण-के आगे हनुमान्जीको लेजाकर कहनेलगे, कि मैं इस वानरको ब्रह्मपाशसे बांधकर लाया हूँ, इसनेही बड़े बड़े राक्षसोंका प्राणान्त किया है ॥ ३ ॥ हे पितः ! इसकारण मंत्रियोंके साथ विचार करके जो उचित हो सो कीजिये, परन्तु इस वानरको साधारण मत समझिये, तब राक्षसपति रावण हनुमान्जीकी ओरको देखकरके सन्मुख बैठेहुए अंजनके समूहके समान कृष्णवर्ण प्रहस्तसे कहनेलगे ॥ ४ ॥ कि हे प्रहस्त! इस वानरसे पूछो, कि यह यहाँ किसकारण आया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, इसका यहाँ क्या कार्य है, और कहाँसे आया है, तथा किसकारणसे सम्पूर्ण अशोक वाटिकाको उजाड दिया, और किस कारणसे बलकरके मेरे राक्षसोंका प्राणान्त किया ॥ ५ ॥ तब प्रहस्त मत्री सत्कारपूर्वक हनुमान्जीसे पूछने लगा कि हे वानर ! तुझे किसने भेजा है, तू भयभीत मत हो, जो कुछ वार्त्ता है सो महाराज रावणके आगे सत्य सत्य कहदे, मैं तुझे बंधनसे छुटवादूँगा ॥ ६ ॥ तबतो हनुमान्जी बडी प्रसन्नतासे त्रिलोकीके कंटकरूप अपने शत्रु रावणके ओर देखकर और वारंवार चित्तसे श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके प्रारंभसेही श्रीरामचन्द्रजीकी सत्कथा कहने लागे ॥ ७ ॥ हे राक्षसपते! जिन जगदीश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री जगज्जननी सीताको जैसे कुत्ता यज्ञके हविको लेकर भागता है, इसप्रकार

ततः प्रहस्तो हनुमन्तमादरात्पप्रच्छ केन प्रहितोऽसि वानर ॥ भयं च ते मास्तु विमोक्ष्यसे मया सत्यं वदस्वाखिलराजसन्निधौ ॥ ६ ॥
ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजो रिपुं निरीक्ष्य लोकत्रयकण्टकासुरम् ॥ वक्तुं प्रचक्रे रघुनाथसत्कथां क्रमेण रामं मनसा स्मरन्मुहुः ॥ ७ ॥
शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ॥ यस्याखिलेशस्य हृताधुना त्वया भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः ॥ ८ ॥ स राघवोऽभ्येत्य मतङ्गपर्वतं सुग्रीवमैत्रीमनलस्य सन्निधौ ॥ कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिनं सुग्रीवमेवाधिपतिं चकार तम् ॥ ९ ॥
स वानराणामधिपो महाबली महाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ॥ रामेण सार्धं सह लक्ष्मणेन भो प्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥ १० ॥ सञ्चोदितास्तेन महाहरीश्वरा धरासुतां मार्गयितुं दिशो दश ॥ तत्राहमेकः पवनात्मजः कपिः सीतां विचिन्वञ्छनकैः समागतः ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा मया पद्मपलाशलोचना सीता कपित्वाद्विपिनं विनाशितम्॥दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागतान्मां हन्तुकामान् धृतचापसायकान्॥१२॥

तू अपना नाश करनेके निमित्त ले आया है, उनही श्रीरामचन्द्रजीका मैं दूत हूँ ॥ ८ ॥ वह श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूकपर्वतपै आये और अग्निकी साक्षीपूर्वक सुग्रीवके साथ मित्रता करके केवल एक बाणसेही वालीका प्राणान्त करके सुग्रीवको किष्किन्धाके राज्यका अधिपति करादिया ॥ ९ ॥ वह वानरराज महाबली परमपराक्रमी सुग्रीव बड़े बड़े बली करोडों वानरोंके समूहोंसहित तथा श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीसहित प्रवर्षण पर्वतके ऊपर बड़ा क्रोध कियेहुए स्थित हैं ॥ १० ॥ और उसने सीताजीकी सुध लेनेके निमित्त बडे बडे वानर दशों दिशाओंमें भेजे हैं, उनमेंसे मैं एक पवनकुमार हनुमान् नामक वानर सीताको ढूँढ़ताहुआ धीरे २ यहाँ आगया हूँ ॥ ११ ॥ सो मैने कमलदलनयनी सीताको देखा और वानरस्वभावसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशोक वाटिकाको उखाड डाला, फिर मेरे मारनेको धनुषबाण धारण किये हुए वेगसे आते हुए राक्षसोंको मैंने देखा ॥ १२ ॥ तब मैंने उनको मारकर अपने शरीरकी रक्षा करी, और हे राजन्! यह आप जानतेही हैं कि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना देह प्यारा होता है, फिर मेघनाद नामक राक्षस मुझे ब्रह्मपाशसे बांधकर ले आया ॥ १३ ॥ हे रावण! यह ब्रह्मपाश ब्रह्माके वरदानके प्रभावसे मुझे स्पर्श करते ही निःसार होगया, यह मैं जानताथा, तथापि तुझको हितकारक उपदेश देनेके निमित्त चित्तमें दया आगई इसकारण निःसार पाशमें बंधाहुआही तेरेपास चला आया हूँ ॥ १४ ॥ हे रावण! तू विवेककी बुद्धिसे संसारकी गतिको विचार कर इस अनर्थ करनेवाली राक्षसी बुद्धिको त्याग दे, और संसारसे छुडानेवाली

मया हतास्ते परिरक्षितं वपुः प्रियो हि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो ॥ ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मां ततः समागमन्मेघनिनादनामकः ॥ १३ ॥ स्पृष्ट्वैव मां ब्राह्मवरप्रभावतस्त्यक्त्वा गतं सर्वमवैमि रावण ॥ तथाप्यहं बद्ध इवागतो हितं प्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः ॥ १४ ॥ विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिं न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण ॥ दैवीं गतिं संसृतिमोक्षहैतुकीं समाश्रयात्यन्तहिताय देहिनः ॥ १५ ॥ त्वं ब्राह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः ॥ देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो नहि ॥ १६ ॥ शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसन्ततिर्न ते न च त्वं तव निर्विकारतः ॥ अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्ततेरसत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत् ॥ १७ ॥ इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया विकारहेतुर्न च तेऽव्ययत्वतः ॥ यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते तथा भवान्देहगतोऽपि सूक्ष्मकः ॥ देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गतस्त्वामेति बुद्ध्याखिलबन्धभाग्भवेत् ॥ १८ ॥

जो दैवी सम्पत्तिकी बुद्धि तिसको अपना हित जानकर ग्रहण कर ॥ १५ ॥ हे रावण! तू ब्राह्मणजाति तिसपरभी उत्तम पुलस्त्यऋषिके कुलमें जन्मा है कुबेरसा तेरा भ्राता है और यदि देहात्मबुद्धिकरके देखो तोभी राक्षस नहीं है और आत्मविचारकी दृष्टिसे यदि देखो तब तो कहनाही क्या है? ॥ १६ ॥ और शरीर बुद्धि इंद्रियादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःखोंका समूह तुमको नहीं होता है, क्योंकि दुःखका आश्रय जो चित्त सो तुम नहीं हो तुम निर्विकारस्वरूप हो और "मैं दुःखी हूँ" इसप्रकारकी जो प्रतीति है सो स्वप्नमें देखेहुए पदार्थोंके समान अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली और मिथ्या है ॥ १७ ॥ हे रावण! मैं सत्य कहता कि हूँ तुम्हारा वास्तविक स्वरूप जो आत्मा उसमें किसीप्रकारका विकार नहीं है, और विकारका हेतु जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अज्ञान वह मिथ्या है, क्योंकि वेदमें आत्माको अद्वितीय कहा है, जिसप्रकार आकाश पृथ्वीआदि सम्पूर्ण पदार्थोंमें व्याप्त होकर भी किसीके विकारसे लिप्त नहीं होताहै, तिसीप्रकार आत्मा सूक्ष्मरूप और देहमें स्थित होकरभी इस देहके विषे लिप्त नहीं होताहै, परन्तु मैं देह हूँ, मैं प्राण हूँ, मैं इन्द्रिय हूँ, मेरा शरीर है, इसप्रकार मिथ्या बुद्धि करके आत्मा देह इन्द्रियआदिसे उत्पन्न हुए सुखदुःखादिको भोगता है, और कर्म्मजालरूपी बंधनको प्राप्त होता है ॥१८॥ और जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब ऐसी भावना करता है कि मैं अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप जन्मरहित, अविनाशी और आनन्दस्वरूप हूँ, तबहीं संसारबंधनसे मुक्त होजाता है, और देहतो चैतन्यादि धर्मरहित होनेके कारण आत्मा नहीं होसक्ता, किन्तु पृथ्वीके विकारसे उत्पन्न हुआ है, और प्राण भी आत्मा नहीं होसक्ता, क्योंकि प्राण दृश्य पवनरूप जड़ पदार्थ है ॥ १९ ॥ और मनभी आत्मा नहीं होसक्ता क्योंकि

चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते ॥ देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो न प्राण आत्मानिल एष एव सः ॥ १९ ॥ मनोऽप्यहंकारविकार एव नो न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा ॥ आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवान्देहादिसङ्घाद्व्यतिरिक्त ईश्वरः ॥ २० ॥ निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते ॥ अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनं वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ॥ २१ ॥ विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धियस्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् ॥ विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥ २२ ॥

मन अहंकारका विकाररूप है, और अहंकारभी आत्मा नहीं होसक्ता, क्योंकि अहंकार प्रकृतिका विकार जो महत्तत्त्व तिससे उत्पन्न हुआ है, इसकारण आत्मा चैतन्यस्वरूप, आनन्दमय, अविकारी और देहादि समूहसे भिन्न, सर्वशक्तिमान, निर्लेप और उपाधियोंसे सर्वदा मुक्त है, इसप्रकार ज्ञानके प्रभावसे आत्माके स्वरूपको जानकर पुरुष इस संसारबंधनसे मुक्त होजाता है इसकारण हे बुद्धिमान् रावण! मैं अब मोक्षका सर्वोपरि साधन कहताहूँ तिसको तू सावधान होकर श्रवण कर ॥ २० ॥ २१ ॥ विष्णु भगवान्की भक्तिही चित्तको शुद्ध करनेका परम उपाय है, और जब अन्तःकरण शुद्ध होजाता है तब निर्म्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है, और ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे आत्माका साक्षात्कार होजाता है, और पूर्ण रीतिसे तत्वज्ञान होतेही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष परमपदको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ इसकारण हे रावण! प्रकृतिसे पर सर्वव्यापी पुराणपुरुष लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजीका भजन करो; हे रावण! अब मूर्खताको और हृदयके शत्रुभावको त्यागकर शरणागतोंके हितकारक श्रीरामचंद्रजीका भजन कर, और सीताको आगे करके पुत्रबांधवसहित श्रीरामचंद्रजीको नमस्कार करके भयसे छूटजाओ ॥ २३ ॥ हे रावण! हृदयके विषे स्थित सुखस्वरूप परमात्मा श्रीरामचंद्रजीका भक्तिपूर्वक विना ध्यान करै पुरुष दुःखकी तरंगोंसे युक्त संसारसमुद्रको किसप्रकार पार होसक्ता है? ॥२४॥ हे रावण! यदि तुम श्रीरामचंद्रजीके शरणमें नहीं जाओगे और अज्ञानरूपी अग्निसे जलतेहुए अपने अंतःकरणकी रक्षा नहीं करोगे, और अपने कियेहुए परस्त्रीहरण ऋषिवधआदि पातकोंके द्वारा अपनेको अधोगतिकोही प्राप्त करोगे तो

अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् ॥ विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ॥ सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥ २३ ॥ रामं परात्मानमभावयन् जनो भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम् ॥ कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो भवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥ २४ ॥ नोचेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना ज्वलन्तमात्मानमरक्षितारिवत् ॥ नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकैर्विमोक्षशङ्का न च मे भविष्यति ॥ २५ ॥ श्रुत्वामृतास्वादसमानभाषितं तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुरः ॥ अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वरं जगाद रक्तान्तविलोचनो ज्वलन् ॥ २६ ॥ कथं ममाग्रे विलपस्यभीतवत् प्लवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधीः ॥ क एष रामः कतमो वनेचरो निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम् ॥ २७ ॥ त्वां चाद्य हत्वा जनकात्मजां ततो निहन्मि रामं सहलक्ष्मणं ततः ॥ सुग्रीवमग्रे बलिनं कपीश्वरं सवानरं हन्म्यचिरेण वानर ॥ श्रुत्वा दशग्रीववचः स मारुतिर्विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम् ॥ २८ ॥

निःसंदेह तुम अपने आत्माके शत्रु हो, और इस संसारबंधनसे तुम्हारी कदापि मुक्ति नहीं होयगी ॥२५॥ राक्षसपति रावण इसप्रकार अमृतके समान स्वादयुक्त पवनकुमारके कथनको सुनकर सहन नहीं करसका, और जलतीहुई अग्निके समान नेत्रोंको लाल करके अत्यन्त क्रोधपूर्वक हनुमान्‌जीसे कहने लगा॥ २६॥ अरे वानरोंमें अधम! नीचबुद्धि! तू मेरे सामने निर्भय हुआ सा क्या बकरहा है? अरे! वह रामचन्द्र कौन है? और वह वनचर सुग्रीव क्या वस्तु है? मैं सुग्रीव सहित उस अधम मनुष्य रामचन्द्रको क्षणमात्रमें नष्ट करदूँगा ॥२७॥ अरे अभी तुझै मारकर फिर सीताको, फिर लक्ष्मण सहित रामको, और तदनन्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही वानरोंकी सेनासहित वानरराज सुग्रीवको नष्ट करदूँगा ! इसप्रकार रावणके कहनेको सुनकर हनुमानजीका इतना कोप बढगया, मानो इसी समय रावणको भस्म कर डालैंगे ॥ २८ ॥ और कहनेलगे कि अरे नीच ! मैं श्रीरामचंद्रजीका दास अपारपराक्रमी हूँ, तुझसे करोड रावण आजायँ, तबभी मेरी तुल्यता नहीं करसक्ते, इसप्रकार अतिकोपयुक्त हनुमानजीके वचनको सुनकर रावण एक राक्षससे बोला ॥ २९ ॥ अरे ! इस समीपमें स्थित वानरको टुकडे टुकडे करके मारडाल, आज इस कौतुकको मेरे मित्र और बाँधव आदि सब राक्षस देखैं, इसप्रकार रावणके कहनेसे जब वह राक्षस शस्त्र उठाकर हनुमानजीके मारनेको उद्यत हुआ, तो तत्कालही बिभीषणने रोंका, और रावणसे कहा कि हे राजन् ! यह परराज कहिये शत्रुराजाका (परराजशब्दसे बिभीषणका वास्तविक अभिप्राय यह है कि श्रेष्ठराजाका) दूत वानर मारनेके योग्य नहीं है, क्योंकि जो प्रता-

न मे समा रावणकोट्योऽधम रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः ॥ श्रुत्वातिकोपेन हनूमतो वचो दशाननो राक्षसमेकमब्रवीत् ॥ २९ ॥ पार्श्वे स्थितं मारय खण्डशः कपिं पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवाः ॥ निवारयामास ततो बिभीषणो महासुरं सायुधमुद्यतं वधे ॥ राजन्वधार्हो न भवेत्कथंचन प्रतापयुक्तैः परराजवानरः ॥ ३० ॥ हतेऽस्मिन्वानरे दूते वार्ता को वा निवेदयेत् ॥ रामाय त्वं यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थितः ॥ ३१ ॥ अतो वधसमं किञ्चिदन्यच्चिन्तय वानरे ॥ सचिन्हो गच्छतु हरिर्यं दृष्ट्वायास्यति द्रुतम् ॥ ३२ ॥ रामः सुग्रीवसहितस्ततो युद्धं भवेत्तव ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा रावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥ ३३ ॥

पी राजा होते हैं, वह शत्रुके दूतके विषयमें मारनेकी संभावनाभी नहीं करते हैं, और मारते नहीं है इसमें तो कहनाही क्या है ? और यहाँ बिभीषणका भीतरका अभिप्राय यह है कि (यह वानर प्रतापयुक्त जो इन्द्रादि तिनके द्वाराभी वधको नहीं प्राप्त होसक्ता और तुम्हारा तो कहनाही क्या है ?) ॥ ३० ॥ हे राजन् रावण ! यदि तुम इस दूत वानरका प्राणान्त करदोगे तो, जिनके वधके लिये तुम उद्यत हो उन रामसे जाकर यह सब वार्त्ता कौन कहैगा, (इस श्लोकके मूलपाठसे बिभीषणका भीतर अभिप्राय यह टपकता है कि जिन श्रीरामचंद्रजीसे तुम अपना वध करनेके निमित्त उद्यत बैठे हो उनको जाकर, यह सब संवाद कौन सुनावैगा) ॥ ॥ ३१ ॥ इसकारण इसवानरके निमित्त बधके समान कोई दूसरा दण्ड विचारिये, जो यह वहाँसे अपने शरीरपर कुछ दण्डका चिन्ह लेकर जाय, जिसको देखकर शीघ्रही रामचन्द्र सुग्रीवसहित आवै, और तुम्हारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका युद्ध होय, इसप्रकार बिभीषणके कहनेको सुनकर रावण यह कहने लगा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कि यह निश्चय बात है कि वानरोंको अपनी पूँछमें बडी ममता होतीही है, इसकारण इसकी पूँछको यत्नपूर्वक वस्त्र आदिसे लपेटकर, और उसमें अग्नि लगाकर फिर चारों ओर नगरमें घुमाकर छोड़ दो, तब इसकी दशाको सब वानरोंके सभापति देखेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार रावणके कहतेही राक्षसोंने हाँमें-हाँ मिलाई और पवनकुमार हनुमान्जीकी पूँछको तत्कालही तैलसे भीगेहुए सनके वस्त्र (टाट) और अनेक प्रकारके रुई आदिके वस्त्रोंसे ल-पेटा ॥ ३६ ॥ और रस्सियोंसे खूब दृढ बाँधकर हनूमान्जीको बडे बडे बलवान् राक्षसोंने पकडलिया, फिर पूँछके अग्रभागको कुछ अग्निसे

वानराणां हि लांगूले महामानो भवेत्किल ॥ अतो वस्त्रादिभिः पुच्छं वेष्टयित्वा प्रयत्नतः ॥ ३४ ॥ वह्निना योजयित्वैनं भ्रामयित्वा पुरेऽभितः ॥ विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपाः ॥ ३५ ॥ तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकशः ॥ तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लांगूलं मारुतेर्दृढम् ॥ ३६ ॥ पुच्छाग्रे किञ्चिदनलं दीपयित्वाथ राक्षसाः ॥ रज्जुभिः सुदृढं बद्ध्वा धृत्वा तं बलिनोऽसुराः ॥ ३७ ॥ समन्ताद् भ्रामयामासु-श्चोरोऽयमिति वादिनः ॥ तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ हनूमतापि तत्सर्वं सोढं किञ्चिच्चिकीर्षुणा ॥ गत्वा तु पश्चिम-द्वारसमीपं तत्र मारुतिः ॥ ३९ ॥ सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ ॥ बभूव पर्वताकारस्तत उत्प्लुत्य गोपुरम् ॥ ४० ॥ तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् ॥ विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम् ॥ ४१ ॥

जलाकर " यह चोर है " इसप्रकार कहतेहुए चारों ओर घुमाने लगे, कोई राक्षस पीछे २ ढ़ोल बजानेलगे, और कोई लात तथा घूँसोंके प्रहार करने लगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ परन्तु हनुमान्जीने अपना कुछ कार्य्य सिद्ध करनेके निमित्त यह सब तिरस्कार सह लिया फिर जब पश्चिमकी ओर के द्वारके समीप पहुँचे, तहां हनुमान्जीने अपना सूक्ष्म (छोटासा) रूप धारण करलिया, और सम्पूर्ण बन्धसे भी निकलगए, और निकलकर फिर पर्वतके समान रूप धारण करके कूदकर नगरके द्वारपर चढ़गए ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और उसमेंका एक खम्भा उखाडकर क्षणमात्रमें तिन के साथके राक्षसोंको कुचलकर मारडाला, फिर कुछ थोडासा कार्य्य बाकी रहाजानकर एक महलसे दूसरे महलपर, उसपरसे अन्य स्थानके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर कूदकूदकर हनुमान्‌जी जलतीहुई अपनी पूँछसे अटारी महल और नगरके द्वारोंसहित सम्पूर्ण लंकाको भस्म करने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस समय महलोंकी अटारियों और शिखरोंपर चढीहुई राक्षसोंकी स्त्रियें हा तात! हा पुत्र! हा नाथ! इसप्रकार चारों ओरसे पुकारने लगीं ॥ ४३ ॥ उस समय अग्निसे भुलसभुलसकर ऊँचे ऊँचे महलोंसे गिरती हुई राक्षसी ऐसी प्रतीत होतीथीं, मानो आकाशसे सम्पूर्ण देवता आरहे हैं, एक बिभीषणके स्थानको छोड़कर सम्पूर्ण नगर भस्म करादिया ॥ ४४ ॥ फिर पवनकुमार हनुमान्‌जी कूदकर समुद्रमें गए, और उसमें पूँछको बुझाकर स्वस्थचित्त हुए ॥ ४५ ॥ सीताजीकी प्रार्थना करनेसे और अपने प्रियमित्र पवनका पुत्र होनेके कारण अग्निने हनुमान्‌जीकी पूँछको नहीं जलाया

उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ॥ ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥ ४२ ॥ हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ॥ व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ॥ ४३ ॥ देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः ॥ बिभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् ॥ ४४ ॥ तत उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान्मारुतात्मजः ॥ लांगूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः ॥ ४५ ॥ वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः ॥ न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः ॥ ४६ ॥ यन्नामसंस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः ॥ तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः सन्तप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद० उमामहेश्वरसं० सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः ॥ आज्ञापयतु मां देवी भवती रामसन्निधिम् ॥ १ ॥ गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः ॥ इत्युक्त्वा त्रिःपरिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः ॥ २ ॥

किन्तु अत्यन्त शीतल होगया ॥ ४६ ॥ जिन श्रीरामचन्द्रजीके नामका स्मरण करनेसे पुरुष समस्त पापोंसे छूटकर आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिकरूप त्रिविध तापों (अग्नियों) से छूटजाते हैं, फिर तिनही रघुनाथजीके मुख्य दूत इस प्राकृत अग्निसे किसप्रकार तापको प्राप्त होसक्ते ॥ ४७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! फिर हनुमान् सीताजीके समीप जाय नमस्कार करके कहने लगे कि हे मातः ! अब मुझे तुम श्रीरामचन्द्रजीके समीप जानेकी आज्ञा दो ॥ १ ॥ अब मैं जाता हूँ, लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रही आवैंगे, इसप्रकार कहकर और जानकीजीकी तीन परिक्रमा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके हनुमान्‌जीने प्रणाम किया, और चलनेको उद्यत होकर इसप्रकार कहा कि हे मातः! अब मैं जाता हूँ, तुम्हारा मंगल हो, अब तुम शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी और करोडों वानरोंसहित सुग्रीव यहाँ आये हैं ऐसा देखोगी. तदनन्तर दुःखकरके अति दुर्बल जानकी हनुमान्‌जीसे कहने लगी॥२॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥ कि हे पवनकुमार! तुमको देखकर मैं सम्पूर्ण दुःखोंको भूलगई थी, अब तुम जाओगे, सो अब आगेको मैं श्रीरामचन्द्रजीकी वार्त्ता विना सुने किस प्रकार रहूँगी ॥५॥ हनुमान्‌जी बोले कि हे मातः! यदि ऐसा है तो मेरे कन्धेपर चढ़जाओ, मैं क्षणमात्रमें श्रीरामचन्द्रजीसे मिलादूँगा, यदि इस वार्त्ताको स्वीकार करो तो ॥६॥ सीताजी कहनेलगी कि श्रीरामचन्द्रजी बाणोंसे समुद्रको सुखाकर अथवा बाणोंकेही जालसे पुल बाँधकर वानरोंसहित आकर

प्रणम्य प्रस्थितो गन्तुमिदं वचनमब्रवीत् ॥ देवि गच्छामि भद्रं ते तूर्णं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ ३ ॥ लक्ष्मणं च ससुग्रीवं वानरायुतकोटिभिः ॥ ततः प्राह हनूमन्तं जानकी दुःखकर्शिता ॥ ४ ॥ त्वां दृष्ट्वा विस्मृतं दुःखमिदानीं त्वं गमिष्यसि ॥ इतः परं कथं वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना ॥ ५ ॥ मारुतिरुवाच ॥ यद्येवं देवि मे स्कंधमारोह क्षणमात्रतः ॥ रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ॥ ६ ॥ सीतोवाच ॥ रामः सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपञ्जरैः ॥ आगत्य वानरैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे ॥ ७ ॥ मां नयेद्यदि रामस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती ॥ अतो गच्छ कथं चापि प्राणान्सन्धारयाम्यहम् ॥ ८ ॥ इति प्रस्थापितो वीरः सीतया प्रणिपत्य ताम् ॥ जगाम पर्वतस्याग्रे गन्तुं पारं महोदधेः ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा महासत्त्वः पादाभ्या पीडयन् गिरिम् ॥ जगाम वायुवेगेन पर्वतश्च महीतलम् ॥ १० ॥ ततो महीसमानत्वं त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ॥ मारुतिर्गगनान्तस्थो महाशब्दं चकार सः ॥ ११ ॥

और संग्राममें रावणको मारकर॥७॥यदि मुझे लेजायँगे तौ श्रीरामचन्द्रजी सदाँके लिये बड़ी भारी कीर्त्ति होयगी, इसकारण अब तुम जाओ, जिसप्रकार हो सकेगा मैं अपने प्राणोंको धारण करूँगी॥८॥इसप्रकार सीताजी करके बिदाकिये हुए हनुमान्‌जी तिन सीताजीको प्रणाम करके समुद्रके पार जानेके निमित्त पर्वतके शिखरपर गए॥९॥तहाँ जाकर महाबली पवनकुमार चरणोंसे पर्वतको दबाकर पवनके समान वेगसे चलदिये और पर्वतभी धरातलमें घुसगया॥१०॥ उससमय तीस योजन(१२०कोश)ऊँचापर्वत हनुमान्‌जीके चरणकी दाबसे पृथ्वीके बराबर होगया, और हनुमान्‌जीने बीचमार्गमें आकर आकाशमेंही बड़े

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जोरसे शब्द किया॥११॥उस शब्दको सुनकर सम्पूर्ण वानरोंने हनुमानजीको लौटकर आयाहुआ जानकर परमप्रसन्न होकर बडे जोरसे गर्जना करी॥१२॥ और परस्पर कहने लगे कि हमै शब्दसेही प्रतीत होता है कि पवनकुमार कार्य्य सिद्ध करके आया है, अरे वानरो! देखो वह हमारा शिरोमणि आगया ॥ १३ ॥ इसप्रकार तिन वीर वानरोंके वार्त्तालाप करते हुएही पवनकुमार आकाशसे पर्वतके शिखरपर उतरकर वानरोंसे इसप्रकार कहनेलगे, ॥१४॥कि अरे वानरो! मैंने सीताजीका दर्शन किया, वाटिकासहित लंकापुरी उजाडदी, और रावणसे वार्त्तालाप किया, तब फिर मैं यहाँ आयाहूँ॥१५॥ चलो इससमयही श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवके समीप चलैंगे, इसप्रकार कहनेके अनन्तर वानरोंने प्रसन्न होकर पवनकुमारको हृदयसे लगाया॥१६॥

तं श्रुत्वा वानराः सर्वे ज्ञात्वा मारुतिमागतम् ॥ हर्षेण महताविष्टाः शब्दं चक्रुर्महास्वनम् ॥१२॥ शब्देनैव विजानीमः कृतकार्यः समागतः ॥ हनूमानेव पश्यध्वं वानरा वानरर्षभम् ॥ १३ ॥ एवं ब्रुवत्सु वीरेषु वानरेषु स मारुतिः ॥ अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्नि वानरानिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ दृष्टा सीता मया लङ्का धर्षिता च सकानना ॥ सम्भाषितो दशग्रीवस्ततोऽहं पुनरागतः ॥१५॥ इदानीमेव गच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम् ॥ इत्युक्त्वा वानराः सर्वे हर्षेणालिङ्ग्य मारुतिम् ॥ १६ ॥ केचिच्चुचुम्बुर्लांगूलं ननृतुः केचिदुत्सुकाः ॥ हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम् ॥ १७ ॥ गच्छन्तो ददृशुर्वीरा वनं सुग्रीवरक्षितम् ॥ मधुसंज्ञं तदा प्राहुरङ्गदं वानरर्षभाः ॥ १८ ॥ क्षुधिताः स्मो वयं वीर देह्यनुज्ञां महामते ॥ भक्षयामः फलान्यद्य पिबामोऽमृतवन्मधु ॥ १९ ॥ सन्तुष्टा राघवं द्रष्टुं गच्छामोऽद्यैव सानुजम् ॥ २० ॥ अङ्गद उवाच ॥ हनूमान्कृतकार्योऽयं पिबतैतत्प्रसादतः ॥ जक्षध्वं फलमूलानि त्वरितं हरिसत्तमाः ॥ २१ ॥

कोई उनमेंसे हनुमान्जीके पूँछका चुम्बन करने लगे, कोई बडी प्रसन्नताके साथ नृत्य करनेलगे, फिर हनुमान्जीसहित वह सब वानर प्रवर्षणपर्वतको चलदिये ॥ १७ ॥ और चलते २ उन वीर वानरोंने सुग्रीवका रक्षा कियाहुआ मधुनामक वन देखा, तब सब वानर अंगदसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे वीर! हे प्रवीण! हम बुभुक्षित होरहेहैं, सो हमै आज्ञा दो, जो अब हम अमृतके समान स्वादु मधुको पान करैं और इनफलोंको भक्षण करैं ॥ १९ ॥ फिर सन्तुष्ट होकर अभी लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेके निमित्त चलैंगे ॥ २० ॥ अंगद बोला कि—यह पवनकुमार हनुमान्जी कार्य्यको सिद्ध करके आये हैं, सो इनके प्रसादसे हे वानरो! शीघ्रही जलपान करके फलमूल भक्षण करलो ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब इसप्रकार अंगदने कहा तबतौ वानर घुसकर सुग्रीवके मामा दधिमुखके भेजेहुए रक्षा करनेवालोंकी कुछ न सुनकर मधुपान करने लगे ॥२२॥ तब तो पान करतेहुए उन वानरोंको रक्षा करनेवाले ताड़ना करने लगे, तब सब वानर उन रक्षाकरनेवालोंको मुष्टि और लातोंके प्रहोंरोसे कुचलकर फिर मधु पीनेलगे ॥ २३ ॥ तबतौ दधिमुख सुग्रीवका मामा क्रुद्ध होकर रक्षकोंके साथ जहाँ राजा सुग्रीव थे तहाँ गया ॥ २४ ॥ और जाकर सुग्रीवसे कहा कि हे राजन्! बहुतकालसे रक्षा कियाहुआ आपका मधुवन आज पवनकुमार हनुमान्ने नष्ट करदिया ॥ २५ ॥ इसप्रकार दधिमुखके कहनेको सुनकर सुग्रीव चित्तमें बड़ा प्रसन्न हुआ, और कहने लगा कि—पवनकुमार सीताजीका दर्शन करके आया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है,

ततः प्रविश्य हरयः पातुमारेभिरे मधु ॥ रक्षिणस्ताननादृत्य दधिवक्त्रेण नोदितान् ॥ २२ ॥ पिबतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभाः ॥ ततस्तान्मुष्टिभिः पादैश्चूर्णयित्वा पपुर्मधु ॥२३॥ ततो दधिमुखः क्रुद्धः सुग्रीवस्य स मातुलः ॥ जगाम रक्षिभिः सार्धं यत्र राजा कपीश्वरः ॥ २४ ॥ गत्वा तमब्रवीद्देव चिरकालाभिरक्षितम् ॥ नष्टं मधुवनं तेऽद्य कुमारेण हनूमता ॥ २५ ॥ श्रुत्वा दधिमुखेनोक्तं सुग्रीवो हृष्टमानसः ॥ दृष्ट्वागतो न सन्देहः सीतां पवननन्दनः ॥२६॥ नोचेन्मधुवनं द्रष्टुं समर्थः को भवेन्मम ॥ तत्रापि वायुपुत्रेण कृतं कार्यं न संशयः ॥ २७ ॥ श्रुत्वा सुग्रीववचनं हृष्टो रामस्तमब्रवीत् ॥ किमुच्यते त्वया राजन्वचः सीताकथान्वितम् ॥ २८ ॥ सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्यं देव दृष्टावनीसुता ॥ हनूमत्प्रमुखाः सर्वे प्रविष्टा मधुकाननम् ॥ २९ ॥ भक्षयन्तिस्म सकलं ताडयन्तिस्म रक्षिणः ॥ अकृत्वा देव कार्यं ते द्रष्टुं मधुवनं मम ॥३०॥ न समर्थास्ततो देवी दृष्टा सीतेति निश्चितम् ॥ रक्षिणो वो भयं मास्तु गत्वा ब्रूत ममाज्ञया ॥३१॥

॥२६॥ नहीं तो मेरे मधुवनकी ओरको देखनेकी भी, किसकी सामर्थ्य थी, सो निःसन्देह उन वानरोंमें पवनकुमार कार्य्यको सिद्ध करके आया है ॥ २७ ॥ इसप्रकार सुग्रीवके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर तिससे कहने लगे कि हे राजन् सुग्रीव! सीताकी कथासे युक्त तुमने इस समय क्या कहा? ॥ २८ ॥ तब सुग्रीव बोला कि—हे देव! पवनकुमार सीताको देख आया, जो हनुमान् आदि सम्पूर्ण वानर मधुवनमें घुसगए, और वनके सम्पूर्ण फलोंको भक्षण करलिया, तथा रक्षकोंको भी ताडना दी, आपके कार्य्यको विना करै मेरे मधुवनकी ओरको वह देखभी नहीं सक्ते, इससे निश्चय होता है कि हनुमान् सीतादेवीको देखकर आया है; और सुग्रीव मधुवनके रक्षकोंसे कहने लगा कि अरे! तुम भय मत करो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और तहाँ जाकर मेरी आज्ञासे अंगदआदि सब वानरोंको मेरे समीप लिवालाओ, इसप्रकार सुग्रीवके कहनेको सुनकर वह मधुवनके रक्षक पवनके समान वेगसे गए ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और वानरराज सुग्रीवकी आज्ञाके अनुसार हनुमान् आदि वानरों-से कहने लगे कि लक्ष्मणजीसहित महाराज श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीव तुम सबको देखना चाहते हैं ॥ ३३ ॥ वह परमप्रसन्न होरहे हैं और तुमको बहुत शीघ्र बुलाया है, इस वार्ताको स्वीकार करके वह वीर वानर आकाशमार्गसे गए ॥ ३४ ॥ और सबसे आगे हनुमान्जी तथा युवराज अंगदको करके सब श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवके आगे आकर शीघ्रतासे पृथ्वीपर उतरे ॥३५॥ तब हनुमान्जीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा

वानरानङ्गदमुखानानयध्वं ममान्तिकम् ॥ श्रुत्वा सुग्रीववचनं गत्वा ते वायुवेगतः ॥ ३२ ॥ हनूमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छति सुग्रीवः सरामो लक्ष्मणान्वितः ॥ ३३ ॥ युष्मानतीव हृष्टास्ते त्वरयन्ति महाबलाः ॥ तथेत्यम्बरमासाद्य ययुस्ते वानरोत्त-माः ॥ ३४॥ हनूमन्तं पुरस्कृत्य युवराजं तथाङ्गदम् ॥ रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम् ॥ ३५ ॥ हनूमान् राघवं प्राह दृष्ट्वा सीता निरामया ॥ साष्टाङ्गं प्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम् ॥ ३६ ॥ कुशलं प्राह राजेन्द्र जानकी त्वां शुचाऽन्विता ॥ अशोकवनिकामध्ये शिंशपामूलमाश्रिता ॥ ३७ ॥ राक्षसीभिः परिवृता निराहारा कृशा प्रभो ॥ हा राम राम रामेति शोचन्ती मलिनाम्बरा ॥ ३८ ॥ एकवेणी मया दृष्टा शनैराश्वासिता शुभा ॥ वृक्षशाखान्तरे स्थित्वा सूक्ष्मरूपेण ते कथाम् ॥ ३९ ॥ जन्मारभ्य तवात्यर्थं दण्डकागमनं तथा ॥ दशानेन हरणं जानक्या रहिते त्वयि ॥ ४० ॥

कि महाराज ! मैंने सीताजीको नीरोग देखा, फिर श्रीरामचन्द्रजीको और सुग्रीवके आगे प्रणाम करके कहा कि हे महाराज श्रीरामचन्द्रजी ! शोकसे व्याकुल हुई जानकीजीने आपको कुशल कही है, हे प्रभो ! अशोकवाटिकाके विषे शिंशपावृक्षकी जडमें बैठीं थीं, राक्षसी उनको चारों ओरसे घेरेहुए थीं, और भोजन न करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं, और मलिन वस्त्र धारण किये हुए हा राम ! हा राम ! इसप्रकार कहकर शोक कर रहीं थीं, एकवेणी बँधी हुई थी, सो मैंने उनकी यह दशा देखकर, तिन शुभलक्षण जानकीजीको धीरे धीरे सावधान किया, और छोटेसे रूपमें वृक्षकी शाखाओंके विषे बैठकर जन्मसे लेकर आपकी कथा कही, फिर दण्डकारण्यका आगमन, फिर आपके न होनेपर सीताका हरण, तद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तन्तर सुग्रीवके साथ मित्रता करके वालिका मारना, फिर सीताकी सुध लेनेके निमित्त सुग्रीवने महाबली और परम पराक्रमी संग्रामोंके जीतने वाले वानर भेजे, वह सब चारों ओरको गए, उनमेंसे एक मैं यहां आया हूँ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मैं सुग्रीवका मंत्री और श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ, सो मैंने भाग्यसे जानकीजीका दर्शन किया, इसकारण मेरा परिश्रम सफल होगया ॥ ४३ ॥ इसप्रकार मेरे कहनेको सुनकर सीताजी नेत्रोंको फैलाकर देखने लगीं कि किसने यह मेरे कर्णोंको अमृतके समान शुभ अक्षर सुनाए हैं ॥ ४४ ॥ यदि यह सत्य-वार्ता है तो वह मेरे दृष्टिके सामने आवै तबतो मैं सूक्ष्मरूप वानरके आकारसे जानकीजीको प्रणाम करके और हाथ जोड़कर ! मैं दूरको

सुग्रीवेण यथा मैत्रीं कृत्वा वालिनिबर्हणम् ॥ मार्गणार्थं च वैदेह्याः सुग्रीवेण विसर्जिताः ॥ ४१ ॥ महाबला महासत्त्वा हरयो जितकाशिनः ॥ गताः सर्वत्र सर्वे वै तत्रैकोऽहमिहागतः ॥ ४२ ॥ अहं सुग्रीवसचिवो दासोऽहं राघवस्य हि ॥ दृष्टा यज्जानकी भाग्यात्प्रयासः फलितोऽद्य मे ॥ ४३ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य सीता विस्फारितेक्षणा ॥ केन वा कर्णपीयूषं श्रावितं मे शुभाक्षरम् ॥ ४४ ॥ यदि सत्यं तदायातु मद्दर्शनपथं तु सः ॥ ततोऽहं वानराकारः सूक्ष्मरूपेण जानकीम् ॥ ४५ ॥ प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा दूरादेव स्थितः प्रभो ॥ पृष्टोऽहं सीतया कस्त्वमित्यादि बहुविस्तरम् ॥ ४६ ॥ मया सर्वं क्रमेणैव विज्ञापितमरिंदम ॥ पश्चान्मयार्पितं देव्यै भवदत्ताङ्गुलीयकम् ॥ ॥ ४७ ॥ तेन मामतिविश्वस्ता वचनं चेदमब्रवीत् ॥ यथा दृष्टास्मि हनुमन्पीड्यमाना दिवानिशम् ॥ ४८ ॥ राक्षसीनां तर्जनैस्तत्सर्वं कथय राघवे ॥ मयोक्तं देवि रामोऽपि त्वच्चिन्तापरिनिष्ठितः ॥ ४९ ॥ परिशोचत्यहोरात्रं त्वद्वार्तां नाधिगम्य सः ॥ इदानीमेव गत्वाहं स्थितिं रामाय ते ब्रुवे ॥ ५० ॥

खड़ा होगया, तब सीताजीने मुझसे बूझा कि—तू कौन है ? तब हे प्रभो ! मैंने सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक क्रमसे वर्णन किया, और पीछेसे मैंने देवीको आपकी दीहुई अँगूठी समर्पण करी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ तब मेरा पूर्ण विश्वास करके इसप्रकार कहनेलगीं कि—हे हनूमन् ! तुमने मुझे जिसप्रकार रात्रिदिन पीड़ित देखा है, और राक्षसियोंने मुझे तर्जना दी है, सो सब श्रीरामचन्द्रजीसे कहदेना, तब मैंने कहा कि हे देवि ! श्रीरामचन्द्रजीभी तुम्हारीही चिन्तामें मग्न रहते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ और तुम्हारी किसी प्रकारकी कुशलवार्त्ताको न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाकर रात्रिदिन शोकमें रहते हैं, सो मैं इसी समय जाकर तुम्हारी सम्पूर्ण दशा श्रीरामचन्द्रजीको निवेदन करदूँगा ॥ ५० ॥ और सुनतेही श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और वानरोंकी सेनासहित सुग्रीव तुम्हारे समीप आवैंगे ॥ ५१ ॥ और सकुटुम्ब रावणको नष्ट करके तुम्है अपनी नगरीको लेजायँगे, अब तुम मुझे कुछ पहिचानकी वस्तु दो जिससे श्रीरामचन्द्रजीकोभी विश्वास हो जाय ॥ ५२ ॥ ऐसा कहनेपर उन्होंने चूडापाशमेंका रखाहुआ परमप्रिय अपना चूडामणी देकर, चित्रकूट पर्वतपर जयन्तने काकरूप धारण करके जो कौतुक पहिले किया था सो कहा, और फिर नेत्रोंमें जलभर कर कहा कि जाओ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल कहो, और लक्ष्मणजीसे कहना कि मैंने पहिले तुमसे जो कुछ अनुचित वाक्य अज्ञानतासे कहे उसकी

रामः श्रवणमात्रेण सुग्रीवेण सलक्ष्मणः ॥ वानरानीकपैः सार्धमागमिष्यति तेऽन्तिकम् ॥ ५१ ॥ रावणं सकुलं हत्वा नेष्यति त्वां स्वकं पुरम् ॥ अभिज्ञां देहि मे देवि यथा मां विश्वसेद्विभुः ॥ ५२ ॥ इत्युक्ता सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम् ॥ दत्त्वा काकेन यद्वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा ॥ ५३ ॥ तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम् ॥ लक्ष्मणं ब्रूहिमे किञ्चिदुरुक्तं भाषितं पुरा ॥ ५४ ॥ तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन ॥ तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वा रुदती सीता दुःखेन महतावृता ॥ मयाप्याश्वासिता राम वदता सर्वमेव ते ॥ ५६ ॥ ततः प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागतः ॥ तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम् ॥ ५७ ॥ उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून्हत्वा क्षणादहम् ॥ रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च ॥ ५८ ॥ लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यगमं क्षणात् ॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामोऽत्यन्तप्रहृष्टधीः ॥ ५९ ॥

क्षमा करो, क्योंकि हे कुलनन्दन! वह सब अज्ञानसे कहा है, और जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी कृपायुक्त होकर मुझे इस कष्टसे छुडावै सो यत्न करो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इसप्रकार कहकर सीताजी रुदन करती हुई बड़ी दुःखित हुई, और हे श्रीरामचन्द्रजी! मैंने भी सब कुछ आपकी ओरसे कहकर उन्हैं समझाया ॥ ५६ ॥ फिर मुझे बिदा करादिया, तब हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ, और आते समय रावणकी परमप्यारी अशोकवाटिकाको उखाडकर और बहुतसे राक्षसोंको क्षणमात्रमें मारकर, तथा रावणके पुत्रको संग्राममें मारकर, रावणसे संभाषण करके, फिर लंकापुरीको भस्म करके क्षणमात्रमें यहां आगया हूँ, इसप्रकार हनुमान्‌जीके कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी चित्तमें अत्यन्तही प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ ५८ ॥ ५९ ॥ और कहने लगे किहे पवनकुमार ! तुमने देवताओंकरके भी सिद्ध न होनेयोग्य कार्य्यको सिद्ध किया, इसकारण तुम्हारे उपकारके समान मुझे कोईभी वस्तु नहीं दीखती, जिसको देकर तुमसे उद्धार होऊँ ॥ ६० ॥ इसकारण हे पवनकुमार ! अब मैं तुमको अपना सर्वस्व तुमको देता हूँ, इसप्रकार कहकर पवनकुमारको समीप खैंचकर हृदयसे लगाया ॥ ६१ ॥ और रघुकुलमणि भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी नेत्रोंमें जल भरकर परमप्रसन्न होकर हनुमान्‌जीसे कहने लगे ॥ ६२ ॥ कि हे पवनकुमार ! संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन परमदुर्लभ है, इसकारण हे पवनकुमार ! तुम मेरे प्रिय

हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम् ॥ उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः ॥६०॥ इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते ॥ इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम् ॥ ६१ ॥ सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः ॥ हनूमन्तमुवाचेदं राघवो भक्तवत्सलः॥६२॥ परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः ॥ अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥६३॥ यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति ॥ तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः॥६४॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ सुन्दरकाण्डे सर्गाः पञ्चैवाध्यात्मिकशब्दिते ॥ प्रोक्तास्त्रीणि शतानि श्लोकास्त्रिभुवनपापहराः ॥

भक्त हो, जो मैंने तुम्हैं अपना आलिंगन दिया ॥ ६३ ॥ जिन परमात्माके दोनों चरणकमलोंको तुलसीदलादिकेद्वारा पूजन करके भी पुरुष अनुपम विष्णुपद (वैकण्ठ) को प्राप्त होतेहैं, तिनही श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्तिके आलिंगनको प्राप्त होनेवाले पवनकुमार हनुमान्‌जीके पुण्यसमूहोंका तो वर्णनही कौन करसक्ते हैं ॥ ६४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजभारद्वाजरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

॥ इत्यध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते सुन्दरकाण्डः समाप्तः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदं पुस्तकं पण्डित "हरिप्रसाद भगीरथजी" इत्यनेन महाम्बापुर्यां
'गूजराती' मुद्रणालये मुद्रितम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—कालकादेवी रोड़ रामवाड़ी मुंबई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ इत्यध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहितं सुन्दरकाण्डं समाप्तम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते लङ्काकाण्डप्रारम्भः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

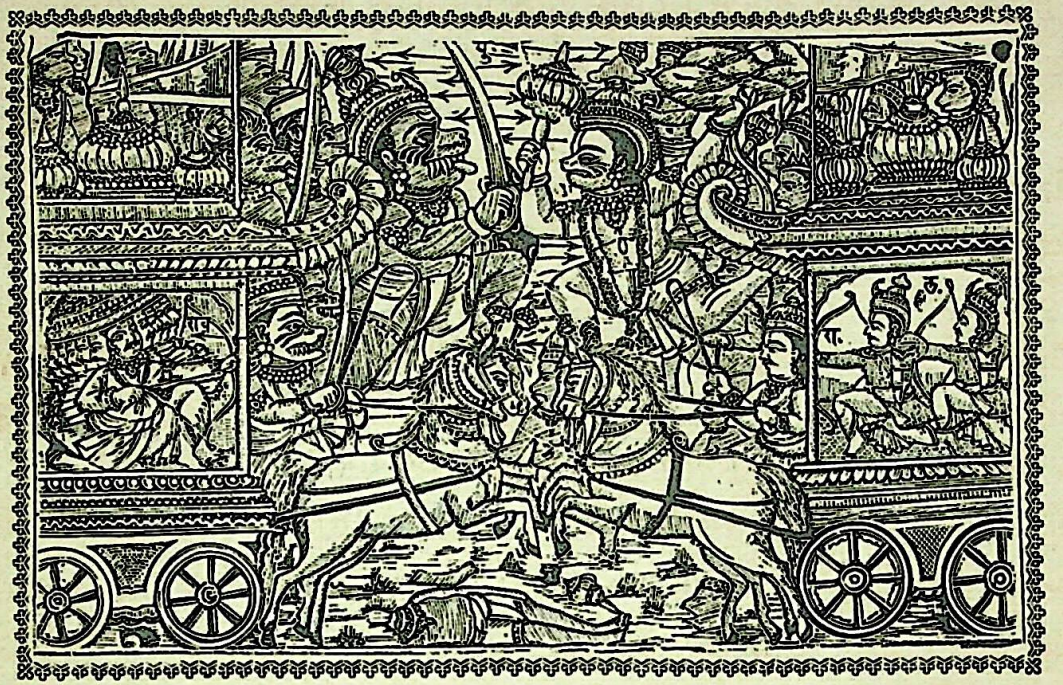

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीने जो कुछ कहा उसको पूर्णरीतिसे सुनकर [illegible] हुए, और फिर यह वाक्य कहने लगे ॥ १ ॥ कि पवनकुमारने वह कार्य्य किया है, जो देवताओंको भी करना कठिन है, और भूतलपर तो इस कार्य्यके करनेका कोई मनसे स्मरणभी नहीं करसक्ता, [illegible] सौयोजन (चारसौकोश) चौड़े समुद्रको कौन उल्लंघन करेगा, और राक्षसोंकरके रक्षा करीहुई लंकाको भस्म करनेकी किसकी सामर्थ्य है ॥ ३ ॥ पवनकुमारने दूतका सम्पूर्ण कार्य पूर्णरीतिसे किया, [illegible] ऐसा दूसरा भृत्य न हुआ और न होगा ॥ ४ ॥ आज जानकीका दर्शन करके हनुमान्ने मेरी और लक्ष्मणकी क्या सम्पूर्ण रघुवंशकी और सुग्रीवकी रक्षा करी ॥ ५ ॥ जानकीका ढूँढनारूप कार्य्य पवनकुमारने तो भली-

॥ श्रीमदादेव उवाच ॥ यथावद्भाषितं वाक्यं श्रुत्वा रामो हनूमतः ॥ उवाचानन्तरं वाक्यं हर्षेण महतावृतः ॥ १ ॥ कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम् ॥ मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले ॥ २ ॥ शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत्कः पयोनिधिम् ॥ लङ्कां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः ॥ ३ ॥ भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः ॥ सुग्री[illegible]दृशो लोके न भूतो न भविष्यति ॥ ४ ॥ अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः ॥ जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिताः स्मो हनूमता प्रस्थ[illegible] ॥ सर्वथा सुकृतं कार्यं जानक्याः परिमार्गणम् ॥ समुद्रं मनसा स्मृत्वा सीदतीव मनो मम ॥ ६ ॥ कथं नक्रझषाकीर्णं समुद्रं श[illegible]म् ॥ लङ्घयित्वा रिपुं हन्यां कथं द्रक्ष्यामि जानकीम् ॥ ७ ॥ श्रुत्वा तु रामवचनं सुग्रीवः प्राह राघवम् ॥ समुद्रं लङ्घयिष्यामो [illegible]नक्रझषाकुलम् ॥ ८ ॥ लङ्कां च विधमिष्यामो हनिष्यामोऽद्य रावणम् ॥ चिन्तां त्यज रघुश्रेष्ठ चिन्ता कार्यविनाशिनी ॥ ९ ॥ एतान्पश्य महासत्वान् शूरान्वानरपुङ्गवान् ॥ त्वत्प्रियार्थं समुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥ १० ॥

प्रकार किया, परन्तु मनमें समुद्रका स्मरण करके मेरा चित्त खिन्न होजाता है ॥ ६ ॥ कि नाके और मत्स्योंसे भरेहुए और सौयोजन चौड़े समुद्रको किसप्रकार उल्लंघन करके मैं शत्रुका प्राणान्त करूँगा? और जानकीको देखूंगा ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके इसप्रकार कथनको सुनकर सुग्रीव कहने लगा, कि हे रघुकुलशिरोमणे! हम सब बड़े बड़े नाके और मत्स्योंसे भरेहुए समुद्रको उल्लंघन करैंगे ॥ ८ ॥ लंकाको फिर भस्म करेंगे, और रावणको शीघ्रही जाकर यमपुरीमें पहुँचावेंगे. हे रघुनाथजी! आप चिन्ताको त्यागिये क्योंकि चिंता कार्यको नष्ट करदेती है ॥ ९ ॥ इन महाबली परमशूर वानरश्रेष्ठोंको देखिये यह आपका हितकारक कार्य्य करनेके निमित्त अग्निमें भी प्रवेश करनेको उद्यत हैं ॥ १० ॥ अब पहिले समुद्रको उल्लंघन करनेके विषयमें सम्मति करिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिर लंकाको जहाँ देखा कि रावणका मरण हुआही समझते हैं ॥ ११ ॥ हे रघुनाथजी ! मैं तीनों लोकमें किसीको भी ऐसा नहीं देखता, कि तुम्हारे धनुष धारण करनेपर संग्राममें सन्मुख खड़ा रहै ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! निःसंदेह हमारी सबप्रकारसे जय होयगी, क्योंकि इस समय मुझे सब प्रकारसे जयको सूचित करनेवाले ही शकुन दीखते हैं ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने भक्ति और पराक्रमकरके युक्त सुग्रीवका कथन सुनकर अंगीकार किया; और अपने सन्मुख बैठेहुए हनुमान्‌जीसे कहने लगे ॥ १४ ॥ कि हे पवनकुमार! हम जिस किसीप्रकारसे समुद्रको उल्लंघन करेंगे, तुम लंकापुरीका स्वरूप मुझसे कहो, क्योंकि तहाँ देवता और दानवभी अति कठिनसे प्रवेश करसक्ते हैं ॥१५॥ उस लंकापुरीके स्वरूपको जानकर हे पवनकुमार! मैं कुछ उपाय

समुद्रतरणे बुद्धिं कुरुष्व प्रथमं ततः ॥ दृष्ट्वा लङ्कां दशग्रीवो हत इत्येव मन्महे ॥ ११ ॥ नहि पश्याम्यहं कञ्चित्त्रिषु लोकेषु राघव ॥ गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥१२॥ सर्वथा नो जयो राम भविष्यति न संशयः ॥ निमित्तानि च पश्यामि तथाभूतानि सर्वशः ॥ १३ ॥ सुग्रीववचनं श्रुत्वा भक्तिवीर्यसमन्वितम् ॥ अङ्गीकृत्याब्रवीद्रामः [illegible] स्थितम् ॥ १४ ॥ येन केन प्रकारेण लङ्घयामो महार्णवम् ॥ लङ्कास्वरूपं मे ब्रूहि दुःसाध्यं देवदानवैः ॥ १५ ॥ ज्ञात्वा [illegible] करिष्यामि कपीश्वर ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्विनयान्वितः ॥ १६ ॥ उवाच प्राञ्जलिर्देव यथा दृष्टं ब्रवीमि ते ॥ लङ्का दिव्या पुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥ १७ ॥ स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता ॥ परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥ १८ ॥ नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता ॥ गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः ॥ १९॥ पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः ॥ उत्तरे द्वारि तिष्ठन्ति साश्ववाहाः सपत्तयः ॥२०॥

करूंगा. इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर हनुमान् नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहनेलगे, कि हे देव! जो कुछ मैंने देखा है, सो आपके सन्मुख निवेदन करताहूँ. वह दिव्य लंकापुरी त्रिकूटपर्वतके शिखरपर वसीहुई है ॥ १६ ॥ १७ ॥ चारे ओर सुवर्णका परकोटा है, नगरमें सुवर्णके ऊंचे ऊंचे महल बनेहुए हैं; उस लंकाके चारों ओर निर्म्मल जलसे भरीहुई अनेक खाई हैं ॥१८॥ नगरके भीतर सुन्दर सुन्दर अनेक बगीचे हैं, अनेक स्थानोंपर बावडी बनी हुई हैं, मणिजटित स्तम्भोंकी शोभाकरके युक्त ग्रहोंकी विचित्रही शोभा है ॥१९॥ पश्चिमके द्वारपर हजारों हाथियोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले योद्धा रहतेहैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तरके द्वारपर घोड़ोंके सवार और पैदल रहते हैं पूर्वके द्वारपरभी वीर राक्षस स्थित रहते हैं, और दक्षिणके द्वारपरभी बड़े बड़े वीर राक्षस रक्षा करनेके निमित्त रहते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ और हे श्रीरामचन्द्रजी! लंकाके बीचके चौकमेंभी हाथी और घोड़ोंपर चढ़नेवाले तथा पैदल अनागिन योधा सदा लंकाकी रक्षा करते रहते हैं, वह सम्पूर्ण योद्धा नानाप्रकारके शस्त्रोंको चलानेमें परम प्रवीण हैं ॥ २२ ॥ तिस लंकापुरीमें आने जानेके मार्गों-पर जहाँ तहाँ पैरे खड़ेहुए हैं, और जहाँ तहाँ तोपैं चढ़ीहुई हैं. हे रघुनाथजी! ऐसी दशा होनेपरभी मैंने तहाँ जो चरित्र किया उसको सुनिये॥ २३॥ मैंने रावणकी सेनाके समूहको चतुर्थांश नष्ट करदिया, और लंकापुरीको भस्म करके सुवर्णका राजमहल ढादिया ॥ २४ ॥ और हे रघुनाथजी! मैंने

तिष्ठन्त्यर्बुदसङ्ख्याकाः प्राच्यामपि तथैव च ॥ रक्षिणो राक्षसा वीरा द्वारं दक्षिणमाश्रिताः ॥ २१ ॥ मध्यकक्षेऽप्यसङ्ख्याता गजाश्वरथ-पत्तयः ॥ रक्षयन्ति सदा लङ्कां नानास्त्रकुशलाः प्रभो ॥ २२ ॥ संक्रमैर्विविधैर्लङ्का शतघ्नीभिश्च संयुता ॥ एवं स्थितेऽपि देवेश शृणु मे तत्र चेष्टितम् ॥ २३ ॥ दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः ॥ दग्ध्वा लङ्कां पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया ॥ २४ ॥ शतघ्न्यः संक्र-माश्चैव नाशिता मे रघूत्तम ॥ देव त्वद्दर्शनादेव लङ्का भस्मीकृता भवेत् ॥ २५ ॥ प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणाम्बुधेः ॥ तीरं सह महावीरैर्वानरौघैः समन्ततः ॥ २६ ॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ सुग्रीव सैनिकान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ॥ २७ ॥ इदानीमेव विजयो मुहूर्तः परिवर्तते ॥ अस्मिन्मुहूर्ते गत्वाहं लङ्कां राक्षससङ्कुलाम् ॥२८॥ सप्राकारां सुदुर्धर्षां नाशयामि सरावणाम् ॥ आनेष्यामि च सीतां मे दक्षिणाक्षि स्फुरत्यधः॥२९॥प्रयातु वाहिनी सर्वा वानराणां तरस्विनाम् ॥ रक्षन्तु यूथपाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः॥३०॥

तोपोंको तोड़ डाला, और यत्र तत्र परकोटेको गिरकर आनेजानेके छोटे मार्गोंको बड़ा करदिया, और टूटेहुए पत्थरोंसे खाइयोंको पाट दिया, फिर लंकापुरीको भस्म किया, सो आपके दर्शनकाही प्रताप है ॥ २५ ॥ हे देव! अब आप प्रस्थान करिये, हम सब शूरवीर वानरोंसहित समुद्रके तट-पर चलैं ॥२६ ॥ रघुनाथजी पवनकुमारके इसप्रकार कथनको सुनकर कहने लगे, कि हे सुग्रीव! सम्पूर्ण सेनापतियोंको चलनेके लिये प्रेरणा करो ॥ २७ ॥ इस समयही विजयनामक मुहूर्त्त है, इस मुहूर्त्तमें जाकर राक्षसोंसे भरी हुई परकोटेकरके युक्त कठिनसे नाश होनेयोग्य ही लंकापुरीको रावणसहित नष्ट करदूँगा, और सीताको लेआऊंगा, क्योंकि इससमय मेरे दाहिने नेत्रके भाग फड़क रहा है ॥ २८ ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण बलवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वानरोंकी सेना चलै, और उस सेनाके आगे पीछे तथा दोनों ओर रक्षा करनेके निमित्त सेनापति चलैं ॥ ३० ॥ पहिले मैं हनुमान्‌के ऊपर चढ़कर आगे जाताहूँ, फिर अंगदके ऊपर चढ़कर लक्ष्मणजी चलैं, और हे सुग्रीव! तुम मेरे साथ चलो ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द और द्विविद, नल, नील, सुषेण, और जाम्बवान्, तथा औरभी सम्पूर्ण शत्रुओंको नष्ट करनेवाले सेनापति अपनी सेनाके साथ चलैं, इसप्रकार वानरोंको आज्ञा देकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी सहित चल दिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सुग्रीवसहित परमप्रसन्न श्रीरामचन्द्रजी सेनाके मध्यमें चलरहेथे, और गजराजोंके समान शरीरधारी सम्पूर्ण वानर अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करके कूदतेहुए और गरजतेहुए दक्षिणदिशाकी ओरको चले, और

हनूमन्तमथारुह्य गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ॥ आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह ॥ ३१ ॥ गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च ॥ नलो नीलः सुषेणश्च जांबवांश्च तथापरे ॥ ३२ ॥ सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शत्रुघातिनः ॥ इत्याज्ञाप्य हरीन् रामः प्रतस्थे सहलक्ष्मणः ॥ ३३ ॥ सुग्रीवसहितो हर्षात्सेनामध्यगतो विभुः ॥ वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥ ३४ ॥ क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम् ॥ भक्षयन्तो ययुः सर्वे फलानि च मधूनि च ॥ ३५ ॥ ब्रुवन्तो राघवस्याग्रे हनिष्यामोऽद्य रावणम् ॥ एवं ते वानरश्रेष्ठा गच्छन्त्यतुलविक्रमाः ॥ ३६ ॥ हरिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते रघूत्तमौ ॥ नक्षत्रैः सेवितौ यद्वच्चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥ ३७ ॥ आवृत्य पृथिवीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ॥ प्रस्फोटयन्तः पुच्छाग्रानुद्वहन्तश्च पादपान्॥३८॥शैलानारोहयन्तश्च जग्मुर्मारुतवेगतः ॥ असङ्ख्याताश्च सर्वत्र वानराः परिपूरिताः॥३९॥दृष्टास्ते जग्मुरत्यर्थं रामेण परिपालिताः॥गता चमूर्दिवारात्रं क्वचिन्नासज्जत क्षणम् ॥४०॥

मार्गमें मधुपान तथा फलभक्षण करतेहुए जातेथे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके आगे कहते जातेथे, कि आज हम रावणका नाश करेंगे, इसप्रकार वह वीर परमपराक्रमी वानर जारहे थे ॥ ३६ ॥ उससमय पवनकुमार और अंगदके ऊपर विराजमान श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी इसप्रकार शोभायमान होतेथे, जैसे आकाशमें तारागणोंसे युक्त सूर्य और चन्द्रमा ॥ ३७ ॥ वह बड़ी भारी सम्पूर्ण सेना पृथ्वीको घेरकर चली, सम्पूर्ण वानर अपनी पूछोंके अग्रभागको फटकारते युद्ध करनेके निमित्त वृक्षोंको उखाड़कर लेते हुए, पवनके समान वेगसे चले, उससमय सर्वत्र असंख्यात वानर भर रहेथे ॥३८॥३९॥ वह सम्पूर्ण वानर बड़े प्रसन्न होकर चलरहेथे, श्रीरामचन्द्रजी उनके रक्षक थे, वह सेना रात्रिदिन बराबर चलती रही, क्षण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्रभी कहीं नहीं ठहरी ॥ ४० ॥ आगे जाकर श्रीरामचंद्रजीने मलय और सह्यपर्वतके परम रमणीय वन देखे, सम्पूर्ण वानर सह्य और मलय पर्वतको उल्लंघन करके क्रमसे भयंकर है शब्द जिसका ऐसे समुद्रके तटपर पहुँचगये. तहाँ श्रीरामचंद्रजी पवनकुमारके ऊपरसे उतरकर सुग्रीव-सहित जलके समीप आकर कहने लगे, कि हम सब मगरमत्स्योंसे भरेहुए समुद्रके तटपर आगये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे वानरो ! अब यहांसे विना उपाय कर चलना अति कठिन है, इसकारण यहां सम्पूर्ण सेना ठहर जाय; और हम इस समुद्रको तरनेकी सम्मति करते हैं ॥ ४४ ॥ श्रीरामचंद्रजीके इसप्रकार कथनको सुनकर समुद्रके समीपमें शीघ्रतासे सम्पूर्ण सेनाको ठहरादिया; और रक्षा करनेके निमित्त वीर वानरोंको नियत करादिया

कानननानि विचित्राणि पश्यन्मलयसह्ययोः ॥ ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च तथा गिरीन् ॥ ४१ ॥ आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥ अवतीर्य हनूमन्तं रामः सुग्रीवसंयुतः ॥ ४२ ॥ सलिलाभ्याशमासाद्य रामो वचनमब्रवीत् ॥ आगताः स्वो वयं सर्वे समुद्रं मकरालयम् ॥४३ ॥ इतो गन्तुमशक्यं नो निरुपायेन वानराः ॥ अत्र सेनानिवेशोऽस्तु मन्त्रयामोऽस्य तारणे ॥ ४४ ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः सागरान्तिके ॥ सेनां न्यवेशयत्क्षिप्रं रक्षितां कपिकुञ्जरैः ॥४५॥ ते पश्यन्तो विषेदुस्तं सागरं भीमदर्शनम् ॥ महोन्नततरङ्गाढ्यं भीमनक्रभयंकरम् ॥४६॥ अगाधं गगनाकारं सागरं वीक्ष्य दुःखिताः ॥ तरिष्यामः कथं घोरं सागरं वरुणालयम् ॥४७॥ हन्तव्योऽस्माभिरद्यैव रावणो राक्षसाधमः ॥ इति चिन्ताकुलाः सर्वे रामपार्श्वे व्यवस्थिताः ॥४८॥ रामः सीतामनुस्मृत्य दुःखेन महता वृतः ॥ विलप्य जानकीं सीतां बहुधा कार्यमानुषः ॥४९॥ अद्वितीयश्चिदात्मैकः परमात्मा सनातनः ॥ यस्तु जानाति रामस्य स्वरूपं तत्त्वतो जनः ॥५०॥

॥ ४५ ॥ वह सम्पूर्ण वानर भयंकर समुद्रको देखकर चित्तमें खिन्न हुए और बड़ी ऊंची २ तरंगोंसे युक्त तथा भयंकर नाकोंसे भरेहुए अगाध और आकाशके समान अपार समुद्रको देखकर परम दुःखित हुए, और परस्पर कहने लगे कि हम इस वरुणके स्थानरूप इस घोर समुद्रको किसप्रकार उल्लंघन करेंगे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ हमें तो शीघ्रही जाकर राक्षसाधम रावणका नाश करना है, इसप्रकार चिंतासे व्याकुल होकर श्रीरामचंद्रजीके समीप चारोंओर बैठगये ॥ ४८ ॥ कार्यवश मनुष्यावतार धारण करनेवाले सीताका स्मरण करके परमदुःखको प्राप्त हो, जानकीके निमित्त बहुत विलाप करतेहुए ॥ ४९ ॥ वास्तवमें श्रीरामचंद्रजीको किसी प्रकारका दुःख नहीं था, क्योंकि वेदमें ऐसी श्रुति है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि "द्वितीयाद्धि भयं भवति" इस श्रुतिके अनुसार भय और दुःख तो द्वैतभावमें होता है, और श्रीरामचंद्रजी तो अद्वितीय चैतन्यस्वरूप केवल सनातन परमात्मा हैं, जो पुरुष 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्योंके द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपको जानलेता है, वह भी दुःख भय आदिसे मुक्त होजाता है, फिर स्वयं आनंदस्वरूप तिन भगवान्को दुःख होता है, यह कथन तो बनही नहीं सकता. तिन श्रीरामचन्द्रजीको दुःख भयादि कदापि स्पर्श नहीं करते हैं, क्योंकि वह तो सर्वदा आनन्दस्वरूप अविनाशी हैं; दुःख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि सब अज्ञानके चिन्ह हैं, सो चैतन्यस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके विषे किसप्रकार होसक्ते हैं ! दुःखकी प्राप्ति देहाभिमानीको होती है, और देहाभिमानरहित चैतन्यस्वरूप परमा-

तं न स्पृशति दुःखादि किमुतानन्दमव्ययम् ॥ दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः ॥ ५१ ॥ अज्ञानलिङ्गान्येतानि कुतः सन्ति चिदात्मनि ॥ देहाभिमानिनो दुःखं न देहस्य चिदात्मनः ॥ ५२ ॥ संप्रसादे द्वयाभावात्सुखमात्रं हि दृश्यते ॥ बुद्ध्याद्यभावात्संशुद्धे दुःखं तत्र न दृश्यते ॥ अतो दुःखादिकं सर्वं बुद्धेरेव न संशयः ॥ ५३ ॥ रामः परात्मा पुरुषः पुराणो नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः ॥ तथापि मायागुणसङ्गतोऽसौ सुखीव दुःखीव विभाव्यतेऽबुधैः ॥५४॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणेउमामहेश्वर० युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

त्माको नहीं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ जैसे सुषुप्ति अवस्थामें द्वितीयकी प्रतीति नहीं होती है केवल सुखमात्रकी प्रतीति होती है, क्योंकि—उससमय बुद्धि आदिके न होनेसे शुद्ध आत्माके विषे दुःखादिकीभी प्रतीति नहीं होती है इससे प्रतीत होता है कि—निःसन्देह दुःखादि सम्पूर्ण धर्म्म बुद्धिके ही हैं आत्माके नहीं ॥५३॥ श्रीरामचंद्रजी प्रकृतिसे पर आत्मस्वरूप, पुराण पुरुष, सर्वान्तर्यामी, नित्य प्रकाशवान्, अविनाशी, निरीह (किसी प्रकारकी इच्छा न करनेवाले) और सुखरूप हैं, तथापि मायाके गुणोंको अंगीकार करके अज्ञानी पुरुषोंको सुखी और दुखको प्राप्त हुएसे प्रतीत होते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि—हे पार्वति ! इधर लङ्कापुरीमें रावणने जिसको देवताभी कठिनसे करसकैं ऐसे हनुमान्‌जीके कियेहुए कर्मको देखकर लज्जासे कुछ नीचेको मुख करलिया ॥ १ ॥ और सम्पूर्ण मंत्रियोंको बुलाकर इसप्रकार कहा—हनुमान्‌ने जो कुछ कर्म किया सो तुमने सब देखही लिया ॥ २ ॥ वह वानर कठिनसे प्रवेश करने योग्य लङ्कामें घुसकर, अनेक प्रकारसे रक्षा करी हुई सीताको देखकर वीर राक्षसोंको नष्ट करके, मंदोदरीके प्रियपुत्र अक्षकुमारका प्राणान्त करके, सम्पूर्ण लङ्कापुरीको भस्म करके, और फिर समुद्रको लांघकर तुम सबोंका तिरस्कार करके आनन्दसे स्वस्थतापूर्वक लौटगया ॥ ३ ॥ ४ ॥ अब आगेको हमैं क्या करना उचित है सो कहो ? क्योंकि—तुम सब सम्मति देनेमें

श्रीमहादेव उवाच ॥ लङ्कायां रावणो दृष्ट्वा कृतं कर्म हनूमता ॥ दुष्करं दैवतैर्वापि ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥ आहूय मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥ हनूमता कृतं कर्म भवद्भिर्दृष्टमेव तत् ॥ २ ॥ प्रविश्य लङ्कां दुर्धर्षां दृष्ट्वा सीतां दुरासदाम् ॥ हत्वा च राक्षसान्वीरानक्षं मन्दोदरीसुतम् ॥ ३ ॥ दग्ध्वा लङ्कामशेषेण लङ्घयित्वा च सागरम् ॥ युष्मान्सर्वानतिक्रम्य स्वस्थोऽगात्पुनरेव सः ॥ ४ ॥ किं कर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयं मन्त्रविशारदाः ॥ मन्त्रयध्वं प्रयत्नेन यत्कृतं मे हितं भवेत् ॥ ५ ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा राक्षसास्तमथाब्रुवन् ॥ देव शङ्का कुतो रामात्तव लोकजितो रणे ॥ ६ ॥ इन्द्रस्तु बद्ध्वा निक्षिप्तः पुत्रेण तव पत्तने ॥ जित्वा कुबेरमानीय पुष्पकं भुज्यते त्वया ॥ ७ ॥ यमो जितः कालदण्डाद्भयं नाभूत्तव प्रभो ॥ वरुणो हुंकृतेनैव जितः सर्वेऽपि राक्षसाः ॥ ८ ॥ मयो महासुरो भीत्या कन्यां दत्त्वा स्वयं तव ॥ त्वद्वशे वर्ततेऽद्यापि किमुतान्ये महासुराः ॥ ९ ॥

परम प्रवीण हो इसकारण यत्नपूर्वक ऐसी सम्मति करो, जिसके करनेसे मेरा हित होय ॥ ५ ॥ इसप्रकार रावणके कथनको सुनकर वह सब राक्षस कहने लगे, कि—हे देव ! तुमने तो सम्पूर्ण लोकोंको जीतलिया, फिर संग्राममें रामचंद्रसे क्या संदेह करतेहो ॥ ६ ॥ इन्द्रको तो तुम्हारे पुत्रने बांधकर लङ्कापुरीमें डाल रक्खाहै, कुबेरको जीतकर उसके पुष्पकविमानको लाकर आप भोग रहे हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! आपने यमराजको जीतलिया, और उसके कालदंडसे भी आपको भय नहीं हुआ, और वरुणको तो हुंकारमात्रसे ही जीतलिया, और सम्पूर्ण राक्षस तो जीतेहुए हैं ही ॥ ८ ॥ और मयनामक महाअसुर भयसे आपको अपनी कन्या देगया, और अबभी आपके वशमें ही रहता है, फिर और असुरोंका तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहनाही क्या है ॥ ९ ॥ और हनुमान्के विषयमें जो आप कहते हैं, कि हनुमान्ने हमारा तिरस्कार किया, सो वह वानर था, उसमें पुरुषार्थ दिखलानेसेही हमको क्या फल प्राप्त होता ? ॥ १० ॥ इसकारण हमने उपेक्षा करदी, सो उसके तिरस्कार करनेसे होताही क्या है ? इसकारणही हम असावधान रहे, और वह वानर हमैं ठगकर गया ॥ ११ ॥ यदि हम ऐसा जानते होते तो क्या वह जीता चलाजाता ? अब आप आज्ञा दीजिये, तो सम्पूर्ण संसारको मनुष्य और वानररहित करसक्तेहैं ॥ १२ ॥ और इससमय सम्पूर्ण संसारको सब जने वानर और मनुष्यरहित करके आवेंगे, आप इसही समय प्रत्येकको आज्ञा करिये. उससमय राक्षसपति रावणसे कुंभकर्ण कहनेलगा ॥ १३ ॥ कि हे रावण ! जब तूने केवल

हनूमद्धर्षणं यत्तु तदवज्ञाकृतं च न ॥ वानरोऽयं किमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥ १० ॥ इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणं तेन किं भवेत् ॥ वयं प्रमत्ताः किं तेन वञ्चिताः स्मो हनूमता ॥ ११ ॥ जानीमो यदि तं सर्वे कथं जीवन् गमिष्यति ॥ आज्ञापय जगत्कृत्स्नमवानरमानुषम् ॥ १२ ॥ कृत्वा यास्यामहे सर्वे प्रत्येकं वा नियोजय ॥ कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १३ ॥ आरब्धं यत्त्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम् ॥ न दृष्टोऽसि तदा भाग्यात्त्वं रामेण महात्मना ॥ १४ ॥ यदि पश्यति रामस्त्वां जीवन्नायासि रावण ॥ रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ १५ ॥ सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी ॥ राक्षसानां विनाशाय त्वयानीता सुमध्यमा ॥ १६ ॥ विषपिण्डमिवागीर्य महामीनो यथा तथा ॥ आनीता जानकी पश्चात्त्वया किंवा भविष्यति ॥ १७ ॥ यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता ॥ सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥ १८ ॥

अपना नाश करनेके लिये सीताका हरणरूप कार्य आरंभ किया, उससमय कोई तुम्हारा प्रारब्धही था जो महात्मा श्रीरामचंद्रजीने नहीं देखा ॥ १४ ॥ हे रावण ! यदि श्रीरामचंद्रजी तुम्हैं देखलेते तो तुम जीतेहुए लौट कर नही आते, श्रीरामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं किन्तु साक्षात् अविनाशी दिव्यरूप नारायण हैं ॥ १५ ॥ भगवती लक्ष्मीही सीतारूपसे श्रीरामचंद्रजीकी कीर्तिमती स्त्री हैं, उनही जगन्माता सीताको तुम राक्षसोंका नाश करनेके निमित्त ले आये हो ॥ १६ ॥ हे रावण ! जिसप्रकार कोई बड़ा भारी मत्स्य विषयुक्त पिंडको अपने नाशके लिये निगल जाय, तिसही प्रकार अपना नाश करनेके निमित्त तुम जानकीको लाये हो, अब न मालूम आगे क्या होगा ॥१७॥ यद्यपि तुमने विना जाने यह अनुचित कर्म्म करलिया है, तथापि हे प्रभो !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं सब सँभाल दूँगा, तुम चित्तको सावधान करो ॥ १८ ॥ इसप्रकार कुंभकर्णके कथनको सुनकर रावणका पुत्र मेघनाद इसप्रकार कहने लगा, कि— हे देव! मुझे आज्ञा दीजिये, अबही लक्ष्मणसहित रामचन्द्रको तथा सुग्रीव और सम्पूर्ण वानरोंको मारकर फिर तुम्हारे पास आता हूँ ॥ १९ ॥ इतने-हीमें तहाँ भगवद्भक्तोंमें प्रधान बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके चरण कमलोंमें निरंतर भक्ति करनेवाला बिभीषण आया, और राक्षसपति राव-णको प्रणाम करके बैठगया ॥ २० ॥ और अत्यन्त मदोन्मत्त कुम्भकर्ण आदि दैत्योंको आश्चर्य्यपूर्वक देखकर और रावणको कामातुर देखकर निर्मलबुद्धि बिभीषण सावधानतासे रावणके प्रति कहने लगा ॥ २१ ॥ हे राजन्! यह कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत (मेघनाद), महापार्श्व, महो-

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा वाक्यमिन्द्रजिदब्रवीत् ॥ देहि देव ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ॥ सुग्रीवं वानरांश्चैव पुनर्यास्यामि तेऽन्तिक-म् ॥ १९ ॥ तत्रागतो भागवतप्रधानो बिभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ श्रीरामपादद्वय एकतानः प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः ॥ २० ॥ वि-लोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्यान्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ॥ विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥ २१ ॥ न कुम्भकर्णे-न्द्रजितौ च राजंस्तथा महापार्श्वमहोदरौ तौ ॥ निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ २२ ॥ सीताभिधानेन महाग्रहेण ग्रस्तोऽसि राजन् न च ते विमोक्षः ॥ तामेव सत्कृत्य महाधनेन दत्त्वाभिरामाय सुखी भव त्वम् ॥ २३ ॥ यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम् ॥ छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि ॥२४॥ यावन्न-गाभाः कपयो महाबला हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः ॥ लङ्कां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते तावद्द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥ २५ ॥

दर, निकुम्भ, कुम्भ तथा अतिकाय इनमेंसे एकभी युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख खड़े होनेको समर्थ नहीं होयगा, फिर औरोंकी तो गणनाही क्या है ॥ २२ ॥ हे राजन्! तुम्हे सीतानामक बडेभारी ग्राहने ग्रस लिया है, इससे तुम्हारा छूटना नहीं होगा, इसकारण तिस सीताकाही सत्कार करके, और बहुत कुछ रत्नादि धन लेकर श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण करके सुखी होओ ॥ २३ ॥ हे राजन्! जबतक श्रीरामचन्द्रजीके तीक्ष्ण बाण लंकामें आकर एक साथ सम्पूर्ण राक्षसोंके शिरोंको नहीं काटते हैं, तिससे प्रथमही तुम श्रीरामचन्द्रजीकी वह जानकी देदो, यहही इस समय उचित है ॥ २४ ॥ जिससमयपर्य्यन्त नख और दाढ़ोंसे युद्ध करनेवाले पर्वतोंके समान शरीरधारी सिंहोंके समान महाबली वानर तुम्हारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लंकाको चारोंओरसे घेरकर नष्ट नहीं करतेहैं तिससे प्रथमही तुम शीघ्रतासे रघुनाथजीको जानकी देदो ॥ २५ ॥ और यदि जानकी नहीं दोगे तो, क्या हे रावण! कुबेरादि लोकपाल और शिव तुम्हारी रक्षा करैं, क्या इन्द्रकी गोदमें जाकर बैठजाओ क्या चाहे मृत्युकी गोदमें जाय बैठो, और चाहे पातालके लोकोंमें प्रवेश करो, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी तुम्हैं जीवित नहीं छोडैंगे ॥ २६ ॥ जिसप्रकार मरणको प्राप्त हुआ भी प्राणी औषधिको स्वीकार नहीं करता है तिसप्रकार इस शुभ हितकारक और परम पवित्र बिभीषणके वचनको दुष्ट रावणने ग्रहण नहीं किया ॥ २७ ॥ और बिभीषणके कथनके अनन्तर मृत्युसे प्रेराहुआ वह राक्षस रावण बिभीषणसे कहने लगा कि—अरे ! मेरे दिये हुए भोगोंसे पुष्ट होकर मेरेही

जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शंकरेण ॥ न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः पाताललोकानपि संप्रविष्टः ॥ २६ ॥ शुभं हितं पवित्रं च बिभीषणवचः खलः ॥ प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम् ॥२७॥ कालेन नोदितो दैत्यो बिभीषणमथाब्रवीत् ॥ मद्दत्तभोगैः पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि ॥२८॥ प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिणः ॥ मित्रभावेन शत्रुर्मे जातो नास्त्यत्र संशयः ॥२९॥ अनार्येण कृतघ्नेन सङ्गतिर्मे न युज्यते ॥ विनाशमभिकाङ्क्षन्ति ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा॥३०॥योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेकं निशाचरः॥हन्मि तस्मिन् क्षणे एव धिक् त्वां रक्षःकुलाधमम् ॥ ३१ ॥ रावणेनैवमुक्तः सन्परुषं स बिभीषणः ॥ उत्पपात सभामध्याद्गदापाणिर्महाबलः ॥ ३२ ॥ चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गगनस्थोऽब्रवीद्वचः ॥ क्रोधेन महताविष्टो रावणं दशकन्धरम् ॥ मा विनाशमुपैहि त्वं प्रियवादिनमेव माम् ॥३३॥

पास निवास करता हुआ भी मुझ हितकारीकाही प्रतिकूल कार्य्य करता है, इसकारण तू निःसन्देह मेरा मित्र बना हुआ शत्रु है ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ और तुझ दुष्ट कृतघ्नीके साथ मुझ संगति करनाभी योग्य नहीं है; सत्य है, कुटुम्बी कुटुम्बीयोंका सदा नाश होनाही चाँहते हैं ॥ ३० ॥ यदि कोई दूसरा राक्षस इसप्रकारका एक वाक्यभी कहता तो मैं उसको तत्कालही यमपुरीको पहुँचा देता, अरे राक्षसकुलमें नीच ! तुझे धिक्कार है, ॥ ३१ ॥ जब रावणने इसप्रकार कठोर वाक्य कहे तब तो परम पराक्रमी बिभीषण हाथमें अपनी गदा लिये हुए सभामेंसे चार मंत्रियोंसहित आकाशमार्गको उड़ा, और आकाशमें ही स्थित होकर बड़े क्रोधमें होकर दशकण्ठ रावणसे कहने लगा कि—हे रावण! मेरे विनाही अब तुम आनन्दको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोगना, प्रिय और हितकारक वार्त्ता कहनेपर भी तुमने मुझे धिक्कार दिया है, परन्तु कुछ खेदकी वार्त्ता नहीं क्योंकि तू मेरे बड़े भ्राता होनेके कारण पिताके समान हो. काल श्रीरामरूप दशरथके यहां उत्पन्न हुआ है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और काली सीतानाम करके जनकके यहाँ उत्पन्न हुई है, और वह दोनोही इस पृथिवीका भार दूर करनेके निमित्त यहाँ आए हैं ॥ ३५ ॥ और उनकीही प्रेरणासे तुम मेरे हितकारक वचनकोभी नहीं सुनते हो. श्रीरामचन्द्रजी सदा मायासे पर स्थित रहते हैं ॥३६॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर भीतर सर्वत्र भगवान् समानभावसे स्थित हैं, और वह निर्मलस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीही नामरूपके भेदकरके नानाभाँतिके प्रतीत होते हैं ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार एकही महाअग्नि नानाप्रकारके छोटे बड़े वृक्षोंके

धिक्करोषि तथापि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ॥ कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये ॥ ३४ ॥ काली सीताभिधानेन जाता जनकनन्दिनी ॥ तावुभावागतावत्र भूमेर्भारापनुत्तये ॥ ३५ ॥ तेनैव प्रेरितस्त्वं तु न शृणोषि हितं मम ॥ श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदा स्थितः ॥ ३६ ॥ बहिरन्तश्च भूतानां समः सर्वत्र संस्थितः ॥ नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामलः ॥ ३७ ॥ यथा नानाप्रकारेषु वृक्षेष्वेको महानलः ॥ तत्तदाकृतिभेदेन भिद्यते ज्ञानचक्षुषाम् ॥ ३८ ॥ पञ्चकोशादिभेदेन तत्तन्मय इवाबभौ ॥ नीलपीतादियोगेन निर्मलः स्फटिको यथा ॥ ३९ ॥ स एव नित्यमुक्तोऽपि स्वमायागुणबिम्बितः ॥ कालः प्रधानं पुरुषोऽव्यक्तं चेति चतुर्विधः ॥ ४० ॥ प्रधानपुरुषाभ्यां स जगत्कृत्स्नं सृजत्यजः ॥ कालरूपेण कलनां जगतः कुरुतेऽव्ययः ॥ ४० ॥ कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्धधार्थमिहागतः ॥ तदन्यथा कथं कुर्यात्सत्यसंकल्प ईश्वरः ॥ ४३ ॥

आकारका प्रतीत होता है; तिसीप्रकार परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीभी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशोंके भेदकरके तिसातिस आकारका प्रतीत होता है; और जिसप्रकार स्वच्छ स्फटिकभी नील पीत आदिके योगसे नील पीतसा प्रतीत होनेलगता है तिसीप्रकार नित्यमुक्तभी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायाके गुणोंके विषे प्रतिबिम्बित होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वह अजन्मा श्रीरामचन्द्रजी प्रधान (प्रकृति) और पुरुषरूपसे संसारको रचते हैं, और वही अविनाशी परमात्मा कालरूपसे सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं ॥ ४१ ॥ वह कालस्वरूप भगवान् मायाके द्वारा रामरूप धारण करके, ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तुम्हारा वध करनेके निमित्त यहाँ आए हैं, वह सत्यसङ्कल्प ईश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी वार्त्ताको किसीप्रकार अन्यथा करैंगे ? अर्थात् अन्यथा नहीं करैंगे, किन्तु अवश्यही तुम्हारा संहार करैंगे. अरे ! श्रीरामचन्द्रजी तुझे पुत्र और सेना तथा वाहनो सहित यमपुरी पहुँचावेंगे, सो हे रावण! तेरे विषे स्वामीपनेकी बुद्धि और कुटुंबीपनेकी बुद्धि रखकर और राक्षसोंके विषे निजत्वकी बुद्धि रखकर इस सम्पूर्ण राक्षसकुलका बध मुझसे नहीं देखाजायगा, इसकारण तेरेमें और इन राक्षसोंमें उस निजत्वकी बुद्धिको त्यागकर और श्रीरामचन्द्रके विषे तथा वानरोंके विषे निजत्व (अपनेपन) की बुद्धि करके मैं श्रीरामचन्द्रजीकोही शरणागत जाताहूँ, मेरे जानेके अनन्तर तुम चिरकालपर्य्यंत सुखपूर्वक अपने स्थानपर आनन्द करना ॥४२॥४३॥४४॥४५॥ इसप्रकार कहकर बिभीषण रावणके कठोर वाक्योंसे क्षणमात्रमें अपने धन—पुत्र—कलत्र आदि सम्पूर्ण सामग्रीयुक्त स्थानको त्यागकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंको सेवन करनेकी पूर्ण इच्छा करके चिरकालके

हनिष्यति त्वा रामस्तु सपुत्रबलवाहनम् ॥ हन्यमानं न शक्नोमि द्रष्टुं रामेण रावण ॥ ४४ ॥ त्वां राक्षसकुलं कृत्स्नं ततो गच्छामि राघवम् ॥ मयि याते सुखी भूत्वा रमस्व भवने चिरम् ॥ ४५ ॥ बिभीषणो रावणवाक्यतः क्षणाद्विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम् ॥ जगाम रामस्य पदारविन्दयोः सेवाभिकाङ्क्षी परिपूर्णमानसः ॥ ४६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरा० उमामहे० युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ बिभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह ॥ आगत्य गगने रामसम्मुखे समवस्थितः ॥ १ ॥ उच्चैरुवाच भोः स्वामिन् राम राजीवलोचन ॥ रावणस्यानुजोऽहं ते दारहर्तुर्बिभीषणः ॥ २ ॥ नाम्ना भ्रात्रा निरस्तोऽहं त्वामेव शरणं गतः ॥ हितमुक्तं मया देव तस्य चाविंदितात्मनः ॥ ३ ॥ सीतां रामाय वैदेहीं प्रेषयेति पुनःपुनः ॥ उक्तोऽपि न शृणोत्येष कालपाशवशं गतः ॥ ४ ॥

अपने मनोरथ पूर्ण करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजीके समीपकोंही चलदिया ॥४६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः॥ २॥श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि हे पार्वति ! महाभाग बिभीषण चार मंत्रियोंसहित आकर आकाशमेंही श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख खड़ा होगया ॥१॥ और ऊँचे स्वरसे कहने लगा कि हे स्वामिन्! हे कमलनेत्र ! हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपकी स्त्रीका हरण करनेवाले रावणका छोटा भ्राता बिभीषणनामक हूँ ॥२॥ भ्राताके तिरस्कार करनेपर मैं आपके शरणागत आया हूँ. हे देव ! अपने स्वरूपको भूलेहुए रावणसे मैंने हितकारक वार्त्ता कही थी॥३॥कि विदेहपुत्री सीताको तू श्रीरामचन्द्रजीके समीप भेज दे,परन्तु कालरूप फाँसीसे बँधेहुए उस रावणने वारंवार कह-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने परभी नहीं सुना ॥ ४ ॥ किन्तु और उलटा वह राक्षसाधम खड्ग लेकर मुझे मारनेको दौड़ा, तब मैं भयभीत होकर शीघ्रही चार मंत्रियों सहित मुमुक्षु होकर संसारबन्धनसे मुक्त होनेके लिये आपके शरणमें आया हूँ. इसप्रकार बिभीषणके कथनको सुनकर सुग्रीव कहने लगा कि—हे श्रीरामचन्द्रजी ! माया करनेवाला नीच राक्षस विश्वास करनेके योग्य नहीं है, तिसपर सीताको हरनेवाले रावणका छोटा भ्राता परम बलवान् है ॥ ५ ॥ ६ ॥७॥ यह किसी न किसी समय अवसर पाकर शस्त्र धारण करेहुए अपने मंत्रियोंके द्वारा हमैं मरवादेगा, इसकारण आप मुझे आज्ञा दें तो इसको वानरोंसे मरवादूँ ॥ ८ ॥ मुझे तो ऐसाही ठीक प्रतीत होताहै, अब आपने अपनी बुद्धिसे क्या निश्चय किया है सो कहिये. इसप्रकार सुग्रीवके कथनको सुनकर श्री-

हन्तुं मां खड्गमादाय प्राद्रवद्राक्षसाधमः ॥ ततोऽचिरेण सचिवैश्चतुर्भिः सहितो भयात् ॥ ५ ॥ त्वामेव भवमोक्षाय मुमुक्षुः शरणं गतः ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ विश्वासार्हो न ते राम मायावी राक्षसाधमः ॥ सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्यानुजो बली ॥ ७ ॥ मन्त्रिभिः सायुधैरस्मान् विवरे निहनिष्यति ॥ तदाज्ञापय मे देव वानरैर्हन्यतामयम् ॥ ८ ॥ ममैवं भाति ते राम बुद्ध्या किं निश्चितं वद ॥ श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः सस्मितमब्रवीत् ॥ ९ ॥ यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ लोकान्सर्वान्सहेश्वरान् ॥ निमिषार्धेन संहन्यां सृजामि निमिषार्धतः ॥ १० ॥ अतो मयाभयं दत्तं शीघ्रमानय राक्षसम् ॥ ११ ॥ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ १२ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानसः ॥ बिभीषणमथानाय्य दर्शयामास राघवम् ॥ १३ ॥

रामचन्द्रजी मुसकुराते हुए यह बोले ॥ ९ ॥ हे वानरराज सुग्रीव ! यदि इच्छा करूँ तो आधे पलमेंही लोकपालोंसहित सम्पूर्ण लोकोंको नष्ट करदूँ और आधे पलमेंही फिर रचदूँ ॥ १० ॥ इसकारण मैंने अभय दिया, इस राक्षसको शीघ्रही बुलालाओ ॥ ११ ॥ क्योंकि मेरा व्रत है कि जो प्राणी मेरे सामने आकर एकवारभी "तवास्मि—तुम्हारा हूँ" इसप्रकार कहता है और मेरी शरणागत आता है तथा अभय माँगता है, तो कोई भी अधमसे अधम प्राणी हो मैं उसको अभय देताहूँ. सो यदि मैं इसको अभय नहीं दूँगा तो मेरा व्रत भङ्ग होजायगा, इसकारण तुम इसको लिवालाओ ॥ १२ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर सुग्रीव चित्तमें परम प्रसन्न हुए, और बिभीषणको लाकर श्रीरामचन्जीके दृष्टिगोचर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया ॥ १३ ॥ बिभीषणभी श्रीरघुनाथजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके हर्षके कारण गद्गद वाणीसे परम भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर श्यामवर्ण विशाल नेत्र और प्रसन्न है मुखकमल जिनका ऐसे धनुषबाणधारी लक्ष्मणजीसहित शान्तस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगा ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे राजराज श्रीरामचन्द्रजी ! आपके अर्थ नमस्कार है, हे सीताके चित्तको प्रसन्न करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है, हे प्रचण्ड धनुषधारिन् ! आपके अर्थ नमस्कार है, हे भक्तवत्सल ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे अनन्त ! शान्तस्वरूप ! परमतेजस्विन् ! श्रीरामचन्द्रजी ! आपके अर्थ नमस्कार है, हे सुग्रीवके मित्र ! रघुकुलशिरोमणे ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे जगत्की उत्प-

बिभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य रघूत्तमम् ॥ हर्षगद्गदया वाचा भक्त्या च परयान्वितः ॥ १४ ॥ रामं श्यामं विशालाक्षं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ॥ धनुर्बाणधरं शान्तं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ १५ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ १६ ॥ बिभीषण उवाच ॥ नमस्ते राम राजेन्द्र नमः सीतामनोरम ॥ नमस्ते चण्डकोदण्ड नमस्ते भक्तवत्सल ॥ १७ ॥ नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायामिततेजसे ॥ सुग्रीवमित्राय च ते रघूणां पतये नमः ॥१८॥ जगदुत्पत्तिनाशानां कारणाय महात्मने ॥ त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमोनमः ॥१९॥ त्वमादिर्जगतां राम त्वमेव स्थितिकारणम्॥त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि ॥२०॥चराचराणां भूतानां बहिरन्तश्च राघव ॥ व्याप्यव्यापकरूपेण भवान् भाति जगन्मयः ॥ २१ ॥ त्वन्मायया हृतज्ञाना नष्टात्मानो विचेतसः ॥ गतागतं प्रपद्यन्ते पापपुण्यवशात्सदा ॥ २२ ॥

त्ति और नाशके कारण ! हे महात्मन् ! हे त्रिलोकीके गुरु ! हे अनादि गृहस्थ (सदाकाल अपनी शक्तिरूप मायासे युक्त)! आपके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुमही इस जगत्को उत्पन्न करनेवाले हो, तुमही स्थितिके कारण हो अर्थात् पालन करनेवाले हो, और तुमही अन्तमें प्रलयके करनेवाले हो. हे भगवन् ! इसकारण तुम अपनी इच्छाके अनुसारही चलनेवाले हो, पराधीन नहीं हो ॥ २० ॥ हे रघुनाथजी ! तुमही चर और अचर प्राणियोंके बाहर तथा भीतर व्याप्यव्यापकरूपसे प्रतीत होते हो इसकारण हे भगवन् ! तुम जगद्रूप हो ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! आपकी मायाके जालसे मोहित पुरुष ज्ञानहीन होनेके कारण अर्थात् जगद्रूप तुमही हो इसप्रकार न जाननेके कारण कण्ठमें स्थित मणिके समान अपने

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वास्तविक स्वरूपको न जानते हुए इसकारणही प्रवृत्तिमार्गमें है चित्त जिनका ऐसे अज्ञानी पुरुष जन्ममरणरूप संसारको सदा पुण्यपापके वशीभूत होकर प्राप्त होते रहते हैं ॥ २२ ॥ जबतक अन्यविषयोंकी भावनासे रहित और ज्ञानस्वरूप आपके विषे लगे हुए चित्तके द्वारा आप नहीं जाने जाते हो, तबकही यह जगत् सत्य प्रतीत होता है. जिसप्रकार जबतक शुक्ति (सीपी) के स्वरूपका ज्ञान नहीं होय है तबतकही उसमें रजतकी प्रतीति सत्य मालूम होती है और जब सीपीके स्वरूपका ज्ञान होजाता है तब मिथ्या प्रतीत होने लगता है, इसीप्रकार हे भगवन्! आपके स्वरूपका ज्ञान होनेपर जब सर्वरूपसे आपकी ही प्रतीति होनेलगती है तब यह सम्पूर्ण जगत् मिथ्या प्रतीत होनेलगता है ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे वास्तविक स्वरूपका ज्ञान न होनेसे प्राणी संसारकोही सत्य मानकर सदा पुत्र स्त्री गृह आदिके विषे ही रमण करते रहते हैं, और अन्तमें दुःख देनेवाले सम्पूर्ण विषयोंमें

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ॥ यावन्न ज्ञायते ज्ञानचेतसा नान्यगामिना ॥ २३ ॥ त्वदज्ञानात्सदा युक्ताः पुत्रदारगृहादिषु ॥ रमन्ते विषयान्सर्वानन्ते दुःखप्रदान्विभो ॥ २४ ॥ त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमो रक्षो वरुणश्च तथानिलः ॥ कुबेरश्च तथा रुद्रस्त्वमेव पुरुषोत्तम ॥ २५ ॥ त्वमणोरप्यणीयांश्च स्थूलात् स्थूलतरः प्रभो ॥ त्वं पिता सर्वलोकानां माता धाता त्वमेव हि ॥ २६ ॥ आदिमध्यान्तरहितः परिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः ॥ त्वं पाणिपादरहितश्चक्षुः श्रोत्रविवर्जितः ॥ २७ ॥ श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्वं खरान्तकः ॥ कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्वं निर्गुणो निरुपाश्रयः ॥ २८ ॥

भी सत्यत्व बुद्धि करके रमते रहते हैं ॥ २४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! हे पुरुषोत्तम ! इन्द्र तुमही हो, अग्नि तुमही हो, यम तुमही हो, राक्षसरूप तुमही हो, वरुण तुमही हो, वायु तुमही हो, कुबेर तुमही हो और रुद्ररूपभी तुमही हो ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! तुम सूक्ष्मसे सूक्ष्म हो, और स्थूलसे स्थूल हो, सम्पूर्णलोकोंके माता पिता तुमही हो, और तुमही सबका पालन करनेवाले हो ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! तुम आदि मध्य और अन्तकरके रहित हो, सर्वव्यापी हो, और अच्युत कहिये सर्वशक्तिमान् हो और अव्यय कहिये न्यूनाधिकभावसे रहित हो, तुम हस्तचरणादिरहित हो तथा नेत्र और कर्णोंसे रहित हो, सोई "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता" इस श्रुतिमेंभी तुम्हारे स्वरूपका निरूपण किया है ॥ २७ ॥ हे भगवन्! तथापि तुम श्रवण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते हो, देखते हो, ग्रहण करते हो, और वेगपूर्वक गमन करते हो, और संसारबंधनका मूलरूप जो खर राक्षसके समान अहंकार तिसको नष्ट करनेवाले हो, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय इन पांचों कोशोंके दोष आपका स्पर्श नहीं करसक्ते हैं, क्योंकि तुम निर्गुण और निराधार हो, अर्थात् आप किसीके आश्रय नहीं हो ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! वास्तवमें आपके विषे किसी प्रकारका भेद नहीं है, इसप्रकार आप निर्विकल्प हो, विकाररहित हो, निराकार हो, आपका कोई पूज्य ईश्वर नहीं है, वेदान्त शास्त्रमें जो " जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति " अर्थात् उत्पन्न होना, सद्भावको प्राप्त होना, वृद्धिको प्राप्त होना, परिणामको प्राप्त होना, क्षीण होना और नाशको प्राप्त होना, यह छः विकार कहे हैं, शुभ आपके विषे नहीं, आप अनादि हो, पुराण पुरुष हो और प्रकृतिसे पर हो ॥ २९ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! मायाको ग्रहण करके

निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः ॥ षड्भावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ २९ ॥ मायया गृह्यमाणस्त्वं मनुष्य इव भाव्यसे ॥ ज्ञात्वा त्वा निर्गुणमजं वैष्णवा मोक्षगामिनः ॥ ३० ॥ अहं त्वत्पादसद्भक्तिनिःश्रेणिं प्राप्य राघव ॥ इच्छामि ज्ञानयोगाख्यं सौधमारोढुमीश्वर ॥ ३१ ॥ नमः सीतापते राम नमः कारुणिकोत्तम ॥ रावणारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां भवसागरात् ॥ ३२ ॥ ततः प्रसन्नः प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सलः ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥ ३३ ॥ बिभीषण उवाच ॥ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव ॥ त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः ॥ ३४ ॥

मनुष्य रूपको धारण करे हुएसे प्रतीत होते हो. जो विष्णुभक्त आपको निर्गुण और अजन्मा जानते हैं, वह अन्तमें मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! अब मैं आपके चरणारविंदोंकी सद्भक्तिरूप सीडीको प्राप्त होकर ज्ञान और योगरूप महलके ऊपर चढ़नेकी इच्छा करता हूँ; हे प्रभो ! यह कार्य आपकी कृपादृष्टीसे ही होगा ॥ ३१ ॥ हे सीतापते ! आपके अर्थ नमस्कार है, हे सर्वश्रेष्ठ दयालु श्रीरामचन्द्रजी ! आपके अर्थ नमस्कार है, हे गर्वरूप रावणके नष्ट करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है, हे भगवन् ! संसाररूपी समुद्रसे मेरी रक्षा करिये ॥ ३२ ॥ इसप्रकार बिभीषणकी स्तुतिको सुनकर भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि हे बिभीषण ! तेरा कल्याण होय, अब तू अपना वांछित वर मांग, मैं वर देनेको उद्यत हूँ ॥ ३३ ॥ बिभीषण बोला कि हे रघुनाथजी ! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगये और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निःसंदेह आपके चरणकमलोंका दर्शन करनेसे मैं मुक्त होगया ॥३४॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी मूर्त्तिका दर्शन करनेके कारण मेरे समान धन्य और पवित्र कोई दूसरा पुरुष नहीं है, और संसारमें कोई मेरे समान भाग्यशाली भी नहीं है ॥ ३५ ॥ हे रघुनाथजी ! कर्मबंधनसे मुक्त होनेके निमित्त मुझे आपकी भक्ति ही है साधन जिसका ऐसा ज्ञान और परमार्थरूप अपना ध्यान दीजिये ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ! मैं विषयोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखको नहीं याचना करता हूँ, मुझे आप यही वरदान दीजिये, कि सदा आपके चरणकमलोंसे मेरी भक्ति लगी रहै ॥ ३७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने यही वरदान दिया, और फिर प्रसन्न होकर बिभीषणसे कहने लगे, कि हे बिभीषण ! अपनी निश्चय करी हुई कल्याणकारक एक

नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृशः शुचिः ॥ नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात् ॥ ३५ ॥ कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ॥ त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥३६॥ न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम् ॥ त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥३७॥ओमित्युक्त्वा पुनः प्रीतो रामः प्रोवाच राक्षसम् ॥ शृणु वक्ष्यामि ते भद्र रहस्यं मम निश्चितम् ॥३८॥ मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम् ॥ हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्र न संशयः॥३९॥तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः॥ मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात् ॥ ४० ॥ स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु लिखेद्यः शृणुयादपि ॥ मत्प्रीतये ममाभीष्टं सारूप्यं समवाप्नुयात् ॥४१॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान् ॥ पश्यत्विदानीमेवैष मम संदर्शने फलम् ॥ ४२ ॥ लङ्काराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात् ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ ४३ ॥

रहस्य वार्ता तुझसे कहता हूँ श्रवण कर ॥ ३८ ॥ हे बिभीषण ! मैं शान्तचित्त रागद्वेषादिरहित, मेरी भक्तिरूप योगको साधन करनेवाले अपने भक्तोंके हृदयमें निःसंदेह नित्य निवास करताहूँ ॥ ३९ ॥ तिसकारण हे बिभीषण ! तुम सदा शान्तभावसे सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर नित्य मेरा ध्यान करके इस घोर संसारसागरसे छूटजाओगे ॥ ४० ॥ हे बिभीषण ! मेरी प्रसन्नताके अर्थ मेरे प्रिय इस स्तोत्रको जो पढ़ैगा, और जो लिखैगा, तथा जो श्रवणभी करैगा, वह मेरे सायुज्यको प्राप्त होयगा ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहकर अपने भक्तोंके विषे प्रीति करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहनेलगे, कि तुम अबही मेरे दर्शनका फल देखो ॥ ४२ ॥ जाओ समुद्रमेंसे जल लेआओ मैं लंकाके राज्यमें अभिषेक करताहूँ; इसप्रकार कहकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और लक्ष्मणजीके द्वारा कलशमें जल मँगवाकर लंकाके राज्यके स्वामित्वके अर्थ उस बिभीषणका उसके मंत्रियोंके द्वारा और विशेष करके लक्ष्मणजीके हाथसे लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीने अभिषेक करवाया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उससमय वह सम्पूर्ण वानर साधुवाद (वाह वाह) करने लगे, और श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रशंसा करी, और सुग्रीवभी बिभीषणको हृदयसे लगाकर कहने लगे ॥ ४६ ॥ कि हे बिभीषण ! हम सब परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके सेवक हैं, और तिन सबमें तुम मुख्य हो, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीने तुम्हैं प्रीतिपूर्वक ग्रहण किया है ॥ ४७ ॥ अब तुम्हैं रावणके नाश करनेमें सहायता करना उचित है. बिभीषण कहने लगा कि हे सुग्रीव ! मैं परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी क्या सहाय कर सक्ता हूँ ? परन्तु हाँ अपनी निष्कपट

यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्यसौ ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम् ॥ ४४ ॥ लङ्काराज्याधिपत्यार्थमाभिषेकं रमापतिः ॥ कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषतः ॥४५॥ साधुसाध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ॥ सुग्रीवोऽपि परिष्वज्य बिभीषणमथाब्रवीत्॥४६॥बिभीषण वयं सर्वे रामस्य परमात्मनः ॥ किङ्करास्तत्र मुख्यस्त्वं भक्त्या रामपरिग्रहात् ॥ रावणस्य विनाशे त्वं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥४७॥ बिभीषण उवाच ॥ अहं कियान्सहायत्वे रामस्य परमात्मनः ॥ किन्तु दास्यं करिष्येऽहं भक्त्या शक्त्यात्ममायया ॥४८॥ दशग्रीवेण संदिष्टः शुको नाम महासुरः ॥ संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ त्वामाह रावणो राजा भ्रातरं राक्षसाधिपः॥ महाकुलप्रसूतस्त्वं राजाऽसि वनचारिणाम् ॥ ५० ॥ मम भ्रातृसमानस्त्वं तव नास्त्यर्थविप्लवः ॥ अहं यदहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥ ५१ ॥ किष्किन्धां याहि हरिभिर्लङ्का शक्या न दैवतैः ॥ प्राप्तुं किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥ ५२ ॥

भक्ति और शक्तिसे महाराजकी सेवकाई करूँगाही ॥ ४८ ॥ रावणका भेजा हुआ एक शुकनामक महाराक्षस उसी समयमें आकाशमें आकर सुग्रीवसे यह वाक्य कहनेलगा कि हे सुग्रीव ! राक्षसपति रावणने तुमको भ्राता समझकर यह कहा है कि हे सुग्रीव ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो और वानरोंके राजा हो, तथा तुम मेरे भ्राताके समान हो, मैंने कुछ तुम्हारा धन नहीं लेलिया है, और न कोई तुम्हारा कार्य बिगाड़ा है, और जो मैं राजपुत्र रामचन्द्र की स्त्रीको हरलाया हूँ उसमें तुम्हारी क्या हानि है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इसकारण अपने वानरोंको लेकर किष्किन्धामें चले जाओ, क्योंकि लंका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में प्रवेश करनेकी देवताओंकोभी सामर्थ्य नहीं है, फिर थोड़ीसी शक्तिवाले मनुष्य और वानरसेनापतियोंका तो कहनाही क्या है ? ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कहते हुए शुकनामा राक्षसको वानरोंने शीघ्रही कूदकर पकड़ लिया, और उसको जोर जोरसे घूँसोंसे मारने लगे ॥ ५३ ॥ वानरोंकरके पीटता हुआ शुकराक्षस श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा कि हे राजेंद्र ! दूतोंको मारना अनुचित है, इसकारण आप वानरोंको रोकिये ॥ ५४ ॥ श्रीरामचंद्रजी उससमय शुक राक्षसके विलापयुक्त वाक्यको सुनकर वानरोंको निषेध करतेहुए कहनेलगे कि हे वानरो ! इसको मत मारो ॥ ५५ ॥ फिर शुक राक्षस आकाशमें जाकर सुग्रीवसे कहने लगा कि हे राजन् ! अब मैं जाताहूँ और रावणसे क्या कहूँ सो बताओ ॥ ५६ ॥ सुग्रीव कहनेलगा कि हे शुक ! रावणसे यह कहना कि जिसप्रकार मेरा भ्राता वाली मारागया, तिसी प्रकार तुझको मैं यत्नकरके पुत्र, सेना और वाहनों-

तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः ॥ प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं निहन्तुं दृढमुष्टिभिः ॥ ५३ ॥ वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत् ॥ न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान्वारय प्रभो ॥ ५४ ॥ रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम् ॥ मावधिष्टेति रामस्तान्वारयामास वानरान् ॥ ५५ ॥ पुनरम्बरमासाद्य शुकः सुग्रीवमब्रवीत् ॥ ब्रूहि राजन्दशग्रीवं किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम् ॥ ५६ ॥ सुग्रीव उवाच ॥ यथा वाली मम भ्राता तथा त्वं राक्षसाधम ॥ हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः ॥ ५७ ॥ ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि ॥ ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बद्ध्वान्वरक्षयत् ॥ ५८ ॥ शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत् ॥ यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षसः ॥ ५९ ॥ दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे ॥ ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः ॥ ६० ॥

सहित नष्ट करदूँगा ॥ ५७ ॥ मेरे स्वामी श्रीरामचंद्रजीकी भार्याको हरकर कहाँ जायगा. तदनंतर सुग्रीवने श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे उस शुकराक्षसको बांधकर वानरोंके पहरेमें रखदिया, इसका अभिप्राय यह है कि श्रीरामचंद्रजीने यह विचार किया कि यदि अभी इस शुकराक्षसको जाने देंगे तो रावण इसके द्वारा यह जान जायगा कि सुग्रीवका रामचंद्रसे भेद कराया परंतु नहीं हुआ, यह जानकर वानरोंको नष्ट करनेकी कोई युक्ति विचारैगा ॥ ५८ ॥ एक शार्दूलनामक राक्षस रावणने और भेजा, सो वह तो पहिलेही वानरोंकी बड़ी भारी सेनाको देखकर लौटगया, और रावणको सब वृत्तान्त यथावत् कह सुनाया ॥ ५९ ॥ तब तो रावण चिंतासे अत्यन्त व्याकुल होकर स्वासें भरताहुआ, अपने मंदिरमें पड़ा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा, इधर समुद्रको देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधसे नेत्रोंको लाललाल करके लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ६० ॥ कि हे लक्ष्मण ! देखो यह दुष्टात्मा समुद्र मुझे अपने तटपर आया हुआ जानकरभी मेरा दर्शन करनेके निमित्त नहीं आया ॥६१॥ यह जानता है कि यह मनुष्य है और वानरोंके द्वारा मेरा क्या कर सक्तेहैं ? हे महाबाहो लक्ष्मण ! देखो अभी इस समुद्रको सुखाये देताहूँ ॥ ६२ ॥ तब अनायासमेंही वानर पैदल उतर जायँगे. इसप्रकार कहकर क्रोधसे लाल लाल हुए हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीरामचन्द्रजी धनुषको उठाकर और तरकसमेंसे प्रलयकालकी अग्निके समान बाणको निकालकर धनुषपर चढ़ाया, और प्रत्यंचाको खैंचकर कहने लगे ॥६३॥६४॥ कि अब सम्पूर्ण प्राणी रामचंद्रके बाणके पराक्रमको देखैं, इसी समय नदीपति समुद्रको भस्म कर

पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् ॥ नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥ ६१ ॥ जानाति मानुषोऽयं मे किं करिष्यति वानरैः ॥ अद्य पश्य महाबाहो शोचयिष्यामि वारिधिम् ॥ ६२ ॥ पादैनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः ॥ इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः ॥ ६३ ॥ तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम् ॥ सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् ॥ इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ॥ ६५ ॥ एवं ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना ॥ चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसावृताः ॥ ६६ ॥ चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ॥ तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः ॥ ६७ ॥ एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक् ॥ दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः ॥ ६८ ॥ स्वान्तस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः ॥ पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु ॥ ६९ ॥

देता हूँ॥६५॥इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेपर पर्वत और वनोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी डगमगा गई, आकाश और सब दिशाओंमें अंधकार छागया ॥६६॥ समुद्र भयके कारण चलायमान होकर एक योजन तटको छोड़कर आगे बढ़गया, और समुद्रमेंके तिमिनामक मत्स्य, नाके, मच्छ तथा अन्य मत्स्य, तापको प्राप्त होकर अत्यन्त भयभीत हुए॥६७॥ऐसी दशा होतेही साक्षात् समुद्र दिव्यरूप धारण करके दिव्य आभूषणोंको धारण करे हुए अपने भीतरके दिव्य रत्नोंको दोनों हाथोंमें लेकर अपनी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ आया, और श्रीरामचन्द्रजीके आगे चरणोंमें बहुतसी भेंट रखकर और दण्डवत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रणाम करके लाल लाल हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा कि हे त्रिलोकीनाथ ! हे संसारके पालक ! मेरी रक्षा करिये ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ हे रघुनाथजी ! आपने जगत्की रचना करते समय मुझे जड़ बनाया, फिर आपके रचनाकरेहुए मेरे स्वभावको कौन पलट सक्ता है ॥ ७१ ॥ स्थूलपंचभूतोंको आपने स्वभावसे जड रचा है, और यह आकाश आदि पंचभूत आपकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं करतेहैं ॥ ७२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तमोगुण है प्रधान जिसमें ऐसे अहंकारसे आकाश आदि पंच भूत उत्पन्न होतेहैं, और तिस कारणरूप अहंकारका जड़त्वरूप धर्म्म कार्यरूप पंचभूतोंमें स्वाभाविकही आजाताहै ॥ ७३ ॥ हे भगवन् ! तुम निर्गुण और निराकार हो, तथापि जिससमय लीलाकरके मायाके गुणोंको

दण्डवत्प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम् ॥ त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक ॥ ७० ॥ जडोऽहं राम ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत् ॥ स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम् ॥७१॥ स्थूलानि पञ्च भूतानि जडान्येव स्वभावतः ॥ सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न ॥ ७२ ॥ तामसादहमो राम भूतानि प्रभवन्ति हि ॥ कारणानुगमात्तेषां जडत्वं तामसं स्वतः ॥ ७३ ॥ निर्गुणस्त्वं निराकारो यदा मायागुणान्प्रभो ॥ लीलयाङ्गीकरोषि त्वं तदा वैराजनामवान् ॥ ७४ ॥ गुणात्मनो विराजश्च सत्त्वादेवा बभूविरे ॥ रजोगुणात्प्रजेशाद्या मन्योर्भूतपतिस्तव ॥ ७५ ॥ त्वामहं मायया छन्नं लीलया मानुषाकृतिम् ॥ ७६ ॥ जडबुद्धिर्जडो मूर्खः कथं जानामि निर्गुणम् ॥ दण्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो ॥ ७७ ॥ भूतानाममरश्रेष्ठ पशूनां लगुडो यथा ॥ शरणं ते व्रजामीश शरण्यं भक्तवत्सल ॥ अभयं देहि मे राम लङ्कामार्गं ददामि ते ॥ ७८ ॥

अंगीकार करतेहो तब तुम्हारा बैराज नाम होताहै, तिस सगुणरूप आपके बैराजस्वरूपके सत्वगुणसे देवता उत्पन्न हुए हैं, और रजोगुणसे मनुआदि और इन्द्रादि उत्पन्न हुए हैं, तथा तमोगुणसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं ॥७४॥७५॥ हे भगवन् ! लीलाकरके मनुष्यरूपधारी मायासे ढकेहुए आपको मैं जानता हूँ ॥ ७६ ॥ परंतु जड़बुद्धि और स्वरूपकरकेभी जड़ ऐसा जो मैं मूर्ख सो आपके निर्गुण स्वरूपको किसप्रकार जानसक्ता हूँ ? हे प्रभो ! दंड देनाही मूर्खोंको श्रेष्ठ मार्गमें लेजाना है ॥ ७७ ॥ हे देवेन्द्र ! जैसे कि प्राणियोंमें पशुओंको दंड ही मार्गपर चलाता है. हे ईश ! हे शरणागतरक्षक ! हे भक्तवत्सल श्रीराम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीराम उवाच ॥ अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम् ॥ लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यामोघपातिनः ॥७९॥रामस्य वचनं श्रुत्वा करे दृष्ट्वा महाशरम् ॥ महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८० ॥ रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः ॥ प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम्॥८१॥बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः ॥ रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमण्डलम्॥८२॥हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः ॥ ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरो विनयान्वितः ॥ ८३ ॥ नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः ॥ सुतो धीमान् समर्थोऽस्मिन्कार्ये लब्धवरो हरिः ॥८४॥ कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम् ॥ इत्युक्त्वा राघवं नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम् ॥ ८५ ॥ ततो रामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ॥ नलमाज्ञापयच्छीघ्रं वानरैः सेतुबन्धने॥८६॥ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपैर्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नलः ॥ बबन्ध सेतुं शतयोजनायतं सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम् ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमाम० युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चन्द्रजी ! मुझे अभय दीजिये, मैं आपको लंकापुरीमें जानेके निमित्त मार्ग देताहूँ ॥ ७८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहनेलगे कि यह मेरा बाण निष्फल नहीं होसक्ता; अब इसको किसके ऊपर छोडूं वह निशाना मेरे अमोघ बाणको शीघ्रही दिखाओ ॥ ७९ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर और हाथमें अमोघ बाणको देखकर महातेजस्वी समुद्र श्रीरामचन्द्रजीसे यह वाक्य बोला, कि हे रघुनाथजी ! उत्तरकी ओर द्रुमकुल्य नामक प्रसिद्ध देश हैं, तहाँ बहुतसे पापात्मा मुझे रातदिन पीडा देते हैं सो आप उस देशके ऊपरही इस बाणको छोड़िये. तदनंतर श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ यह बाण क्षणमात्रमें उस भीलोंके समूहको नाश करके फिर लौट आया और पहिलेके समान तरकसमें स्थित होगया, तब समुद्र नम्रतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कि हे रघुनाथजी ! इस मेरे जलपर परम बुद्धिवान् विश्वकर्माका पुत्र नल नामक वानर पूल बांधनेको समर्थ है क्योंकि उसको इसकार्यके विषे वर दान मिलचुका है ॥ ८४ ॥ सेतु बांधनेपर सम्पूर्ण लोग पापोंको दूर करनेवाली आपकी कीर्तिको जानेंगे. इसप्रकार कहकर और रघुनाथजीको प्रणाम करके समुद्र अंतर्धान होगया ॥ ८५ ॥ तदनंतर सुग्रीव और लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीने शीघ्रही सेतु बांधनेके निमित्त वानरोंसहित नलको आज्ञा करी ॥ ८६ ॥ तब पर्वतके तुल्य शरीरधारी यूथपति वानरोंसहित नलने पर्वत और वृक्षोंके द्वारा अत्यन्त दृढ़ सौयोजन लम्बा और बहुत चौंड़ा पूल बांधा ॥ ८७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि—हे पार्वति ! सेतुका आरम्भ करतेसमय श्रीरामचन्द्रजीने तहाँ जगत्के हितकी इच्छासे विधिपूर्वक रामेश्वरनामक शिवकी स्थापना करके पूजन किया और यह वचन कहा ॥ १ ॥ कि जो मनुष्य सेतुबन्धरामेश्वर शिवको प्रणाम करैगा वह मेरे अनुग्रहसे ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण पापोंसे छूटजायगा ॥ २ ॥ सेतुबन्धपर स्नान करके और रामेश्वर शिवका दर्शन करके जो मनुष्य संकल्पपूर्वक उसके अनन्तरही वाराणसी (काशी-पुरी) को जाकर, तहाँसे गङ्गाजल लाकर सेतुबन्धरामेश्वरको स्नान करावै और स्नान करानेके अनन्तर जल लानेके पात्रोंको समुद्रमें डालैगा, वह निःसन्देह ब्रह्मको प्राप्त होयगा ॥३॥४॥ नलने पहिले दिन चौदह योजनपर्य्यन्त सेतु बनाया, दूसरे दिन बीस योजन, तिसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम्॥ संस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोकहिताय च ॥ १ ॥ प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥ सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् ॥ सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नरः ॥ ३ ॥ आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ॥ समुद्रे क्षिप्ततद्धारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥ कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ॥ द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ॥ ५ ॥ तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविंशतिः ॥ चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति श्रुतम् ॥ ६ ॥ पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः ॥ बबन्ध सागरे सेतुं नलो वानरसत्तमः ॥ ७ ॥ तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् ॥ असंख्याताः सुवेलाद्रिं रुरुधुः प्लवगोत्तमाः ॥ ८ ॥ आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गदं तथा ॥ दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचलं महत् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वा लङ्कां सुविस्तीर्णां नानाचित्रध्वजाकुलाम्॥ चित्रप्रासादसम्बाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ॥ १० ॥

दिन बाईस योजन और पाँचवे दिन तेईस योजन सेतु बनाया. इसप्रकार वानरश्रेष्ठ नलने समुद्रमें सम्पूर्ण पूल बाँध दिया ॥ ५॥६॥७ ॥ तिसही पूलपर होकर असंख्य वानर थोडीसी देरमेंही सौयोजन चौंडे समुद्रके परलेपार उतरगए और उन सम्पूर्ण वीर वानरोंने जाकर सुवेलनामक पर्वतको घेर लिया ॥ ८ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजी पवनकुमारके ऊपर और लक्ष्मणजी अंगदके ऊपर चढ़कर लङ्काको देखनेकी इच्छा करके उस बडे पर्वतके उपर चढ़े ॥ ९ ॥ सो नानाप्रकारके चित्रविचित्रवर्णोंकी पताकाओंसे भरी हुई, नानाप्रकारके विचित्र २ महलोंसे युक्त और सुवर्णका है परकोटा तथा नगरका द्वार जिसका, और खाइयोंकरके तथा तोपोंकरके और फाटक बन्दियोंकरके शोभायमान बड़ी लम्बी चौंड़ी लङ्काको देखकर, एक महलके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर बहुत चौंड़े स्थानमें देखा कि बड़े बड़े वीर मंत्रियोंसे सहित, प्रकाशवान् दशमुकुटोंको धारण करताहुआ, नीलपर्वतके शिखरके समान शरीरधारी, प्रलयकालके मेघके समान कान्तियुक्त और रत्नजटित दण्डोंवाले अनेक श्वेतछत्रोंकी छायामें रावण बैठा हुआ है उसीसमय श्रीरामचन्द्रजीने उस बँधेहुए शुकराक्षसको छोड़दिया ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ वानरोंने खुब पीटाहुआ, वह शुक राक्षस रावणके समीप आया, सो रावण हँसताहुआ कहने लगा कि हे शुक ! क्या तुझे शत्रुओंने पीड़ा दी है ? ॥ १४ ॥ इसप्रकार रावणके वचनको सुनकर शुक कहनेलगा कि हे राजन् ! समुद्रके उत्तरकी ओरके तटपर जाकर मैंने तुम्हारे कहनेके अनुसार वचन कहे, सो वानरोंने कूदकर मुझे क्षणमात्रमें पकड लिया

परिखाभिः शतघ्नीभिः संक्रमैश्च विराजिताम् ॥ प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरः ॥ ११ ॥ मन्त्रिभिः सहितो वीरः किरीटदशकोज्ज्वलः ॥ नीलाद्रिशिखराकारः कालमेघसमप्रभः ॥१२॥ रत्नदण्डैः सितच्छत्रैरनेकैः परिशोभितः ॥ एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुकः ॥१३॥ वानरैस्ताडितः सम्यक् दशाननमुपागतः ॥ प्रहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक ॥१४॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत् ॥ सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रुवं ते वचनं यथा ॥ तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्ततः ॥१५॥ मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तुं लोप्तुं प्रचक्रमुः ॥ ततो मां राम रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुङ्गवः ॥१६॥ विसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोऽहं कपीश्वरैः ॥ ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद्वानरं बलम् ॥१७॥ राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ॥ नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥१८॥ पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ॥ सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु युद्धं वा दीयतां प्रभो॥१९॥मामाह रामस्त्वं ब्रूहि रावणं मद्वचः शुक ॥ यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ॥२०॥

॥ १५ ॥ और घूँसोंसे मारनेलगे, नखोंसे वकोटने लगे, दाढ़ोंसे काटने लगे, जब उन्होंने मेरी बहुत दुर्दशा करी तब मैंने पुकारकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि हे रामचन्द्र ! मेरी रक्षा करो, तब उन्होने कहा कि छोडदो. तब उन वानरोंने मेरा पीछा छोड़ा, तब मैं भयभीत होकर उस वानरोंकी सेनाको देखकर आया हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! राक्षसोंकी सेनाके समूहकी और सुग्रीवके वानरोंकी सेनाकी देवता और दानवोंके समान परस्पर संधि (सुलह) कदापि नहीं होयगी ॥ १८ ॥ और अब वानर लङ्कापुरीके परकोटेपर आयाही चाहतेहैं, सो हे प्रभो ! या तो रामचन्द्रजीको जानकी देदो, नहीं तो शीघ्रही युद्ध करो ॥ १९ ॥ और मुझसे यहाँको आतेसमय रामचन्द्रजीने कहदिया था कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रावणसे यह मेरा वाक्य कह देना कि जिस बलके भरोसेसे तू मेरी सीताको हरकर लेगया है ॥ २० ॥ अब उस बलको सेना और बान्धवोंसे सहित दिखा, कल प्रातःकाल होतेही परकोटा और तोरण (शहरपनाह) सहित लङ्कापुरीको तथा सम्पूर्ण राक्षसोंकी सेनाको मेरे बाणोंसे विध्वंस हुआ देखैगा, अब मैं अपने घोर क्रोधको छोडूंगा, अब हे रावण ! तूभी अपने बलको धारण कर ॥ २१ ॥ २२ ॥ इसप्रकार कहकर कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजी चूप होगए. हे राजन् ! श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण, सुग्रीव और बिभीषण, यह चारों वीर जहाँ एकत्र होकर आए कि यही लङ्कापुरीको नष्ट कर-डालैंगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ चाहे सम्पूर्ण वानर और लक्ष्मण, सुग्रीव तथा बिभीषण यह तीनोभी बैठेही रहैं, जैसा मैने श्रीरामचन्द्रका बल, रुप तथा

तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः ॥ श्वः काले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ॥ २१ ॥ राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥ घोररोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वोपररामाथ रामः कमललोचनः ॥ एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥ श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च बिभीषणः ॥ एत एव समर्थास्ते लङ्कां नाशयितुं प्रभो ॥ २४ ॥ उत्पाट्य भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥ तस्य यादृग् बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च ॥ २५ ॥ वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥ पश्य वानरसेनां तामसंख्यातां प्रपूरिताम् ॥ २६ ॥ गर्जन्ति वानरास्तत्र पश्य पर्वतसन्निभाः ॥ न शक्यास्ते गणयितुं प्राधान्येन ब्रवीमि ते ॥ २७ ॥ एष योभिऽमुखो लङ्कां नदंस्तिष्ठति वानरः ॥ यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः ॥ २८ ॥ सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलो नामाग्निनन्दनः ॥ एष पर्वत-शृङ्गाभः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ॥ २९ ॥ स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः ॥ युवराजोऽङ्गदो नाम वालिपुत्रोऽतिवीर्यवान् ॥३०॥

शस्त्र देखे हैं, उससे प्रतीत होता है कि वह इकलेही लंकापुरीको उखाड़कर भस्म करदेंगे, और सम्पूर्ण पुरवासियोंका संहार कर डालैंगे. देखो ! वह असंख्यात वानरोंकी सेना चारों ओर भररही है ॥ २५ ॥ २६ ॥ देखो तहाँ पर्वतोंके समान शरीरधारी बानर गरज रहेहैं, उन सबकी गणना तो नहीं होसक्ती, परन्तु मैं तुमको प्रधान प्रधान वानर बताता हूँ ॥ २७ ॥ यह जो वानर लङ्काके संमुख बैठाहुआ गरज रहा है, और जिसके चारों-ओर सहस्रों सेनापति वानर बैठे हैं, वह सुग्रीवकी सेनाका अधिपति अग्निका पुत्र नील है. और यह पर्वतके शिखरके समान शरीरधारी कमलके केशरके समान वर्णवाला वानर अत्यन्त क्रोधमें होकर वारंवार पूँछको पटक रहा है वह अतिपराक्रमी वालिका पुत्र युवराज अंगद है॥२८॥२९॥३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और जिसने रामचंद्रकी परमप्रिया सीताको आनकर देखा था, और तुम्हारे प्रसिद्ध पुत्र अक्ष कुमारको माराथा वह हनुमान् है, और जो सुग्रीवके पास आकर फिर शीघ्रही लौटकर जारहा है वह रजत (चाँदी) के समान कान्तिमान् परमपराक्रमी श्वेतनामक सुग्रीवका सेनापति है ॥३१॥ ३२॥ और यह जो सिंहके समान परमपराक्रमी महाबली वानर देखरहा है इसका नाम रंभ है, यह इकलाही लंकाको नष्ट करनेको समर्थ है ॥ ३३ ॥ और यह जो वानर लंकापुरीको इसप्रकार देख रहा है मानो भस्मही करडालैगा, हे राजन् ! इसका नाम शरभ है, और यह एक करोड़ वानरोंकी सेनाका स्वामी है ॥ ३४ ॥ और वह महावीर पनस मैन्द और द्विविद बैठे हैं और वह जो नलनामक वानर बैठा है सो विश्वकर्म्माका पुत्र है, और इसनेही

येन दृष्टा जनकजा रामस्यातीव वल्लभा ॥ हनूमानेष विख्यातो हतो येन तवात्मजः ॥ ३१ ॥ श्वेतो रजतसंकाशो महाबुद्धिपराक्रमः ॥ तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः ॥ ३२ ॥ यस्त्वेष सिंहसंकाशः पश्यत्वतुलविक्रमः ॥ रम्भो नाम महासत्त्वो लङ्कां नाशयितुं क्षमः ॥ ३३ ॥ एष पश्यति वै लङ्कां दिधक्षन्निव वानरः ॥ शरभो नाम राजेन्द्र कोटियूथपनायकः ॥ ३४ ॥ पनसश्च महावीर्यो मैन्दश्च द्विविदस्तथा ॥ नलश्च सेतुकर्तासौ विश्वकर्मसुतो बली ॥ ३५ ॥ वानराणां वर्णने वा सङ्ख्याने वा क ईश्वरः ॥ शूराः सर्वे महाकायाः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः ॥ ३६ ॥ शक्ताः सर्वे चूर्णयितुं लङ्कां रक्षोगणैः सह ॥ एतेषां बलसङ्ख्यानं प्रत्येकं वच्मि ते शृणु ॥ ३७ ॥ एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च ॥ तथा शङ्खसहस्राणि तथार्बुदशतानि च ॥ ३८ ॥ सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ अन्येषां तु बलं नाहं वक्तुं शक्तोऽस्मि रावण ॥ ३९ ॥ रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः ॥ सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका ॥ ४० ॥

समुद्रका पूल बाँधा है, यहभी बड़ा ही बलवान् है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण वानरोंका वर्णन करनेको अथवा गणना करनेको कौन समर्थ होसक्ता है ? यह सबही वानर शूर बडे २ देहधारी हैं, और सबही युद्ध करनेकी इच्छा कररहे हैं ॥ ३६ ॥ और सबही राक्षसगणोंसे सहित लंकाको चूर्ण करनेको समर्थ हैं, अब इनमेंसे प्रत्येक सेनापतिकी सेनाकी संख्या तुमसे कहताहूँ सो सुनो ॥ ३७ ॥ इनमेंसे सुग्रीवके मंत्रियोंके अधिकारमें इक्कीस सहस्र करोड, हजार शंख और सो अर्बुद, सेना है, यह सुग्रीवके नल,नील,हनुमान्,अंगद,श्वेत,रंभ,शरभ, पनस, मैन्द और द्विविद इन दश मंत्रियोंकी सेना है. हे रावण ! औरोंके अधिकारकी सेनाका वर्णन करनेको तो मेरी सामर्थ्य है नहीं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और हे रावण ! श्रीरामचन्द्रजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्य नहीं हैं किन्तु साक्षात् आदिदेव परमात्मा नारायण हैं, और सीता साक्षात् जगत्की हेतुभूत जगत्स्वरूप चित्शक्ति हैं ॥ ४० ॥ इन दोनोंसेही सम्पूर्ण स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है, तिसकारण वह सीता और श्रीरामचन्द्रजी स्थावर जंगमरूप संसारके माता पिता हैं, फिर उन दोनोंका पृथिवी और पातालमें कोई किसप्रकार शत्रु होसक्ता है ? तुम बिना जानेही जगत्की माता जानकीको लेआए हो ॥ ४१ ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! क्षणमात्रमें नष्ट होनेवाले संसारमें पञ्चभूतात्मक चोवीसतत्त्वोंके रचेहुए, मल- मांस- अस्थि- और दुर्गन्धकरके भरेहुए और अहंकारके स्थान क्षणभङ्गुर इस जडभूत शरीरके विषे, चेतनस्वरूप होकर तुम क्या विश्वास करते हो ? ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जिस देहके निमित्त तुमने इस संसारमें ब्रह्महत्यादि पाप करेहैं सो यह भोगोंका भोगनेवाला शरीर इस संसारमेंही नष्ट होजायगा ॥ ४५ ॥ और सुखदुःखके कारणभूत जो पुण्य पाप

ताभ्यामेव समुत्पन्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ तस्माद्रामश्च सीता च जगतस्तस्थुषश्च तौ ॥ ४१ ॥ पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत् ॥ अजानता त्वयाऽऽनीता जगन्मातैव जानकी ॥ ४२ ॥ क्षणनाशिनि संसारे शरीरे क्षणभङ्गुरे ॥ पञ्चभूतात्मके राजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥ ४३ ॥ मलमांसास्थिदुर्गन्धभूयिष्ठेऽहंकृतालये ॥ कैवास्था व्यतिरिक्तस्य काये तव जडात्मके ॥ ४४ ॥ यत्कृते ब्रह्महत्यादिपातकानि कृतानि ते ॥ भोगभोक्ता तु यो देहः स देहोऽत्र पतिष्यति ॥ ४५ ॥ पुण्यपापे समायातो जीवेन सुखदुःखयोः ॥ करणे देहयोगादि नाऽऽत्मनः कुरुतोऽनिशम् ॥ ४६ ॥ यावद्देहोऽस्मि कर्तास्मीत्यात्माऽहंकुरुतेऽवशः ॥ अध्यासात्तावदेव स्याज्जन्मनाशादिसम्भवः ॥ ४७ ॥

वहही जीवात्माके साथ परलोकको जातेहैं, वास्तवमें वह पुण्यपापभी जीवात्माके नहीं हैं, परन्तु देहके सम्बन्धसे आत्माके विषे प्रतीत होतेहैं, और देहसम्बन्धरहित केवल चैतन्यस्वरूप आत्माको पाप पुण्य नहीं स्पर्श कर सक्ते हैं ॥ ४६ ॥ जबतक आत्मा मायाके वशीभूत हुआ "मैं देह हूँ, मैं कर्त्ता हूँ" इसप्रकार अहंकार करता है तबतकही अहंकारके तादात्म्याध्याससे आत्माको जन्म और मरणकी प्राप्ति होतीहै, इससे यह सिद्ध हुआ कि देहसम्बन्धमात्रही सुखदुःखादिकोंके प्राप्तिका मुख्य कारण नहीं है, किन्तु अध्यासही मुख्य कारण है, इसकारणही ज्ञानीको प्रारब्धवशसे देहका सम्बन्ध रहनेपरभी सुखदुःखादिकोंकी प्राप्ति नहीं होती है, क्योंकि उसका अध्यास अर्थात् जड जो शरीरादि और चेतन आत्मा इन दोनोंमें परस्पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकाकार बुद्धि दूर होजाती है ॥ ४७ ॥ इसकारण हे परमप्रवीण रावण ! तुम देहादिके अभिमानको त्याग दो, क्योंकि तुम्हारा आत्मा अत्यन्त निर्मल, शुद्ध, विज्ञानस्वरूप अचल, और अविनाशी है ॥ ४८ ॥ इस अपने स्वरूपको न जाननेके कारणही पुरुष बन्धनको प्राप्त होकर मोहित होजाताहै, अर्थात् वारंवार कर्म्ममार्गमें प्रवृत्त होताहै, इसकारण हे रावण ! सर्व शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव अपने आत्माके स्वरूपको जानकर स्मरण करो ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! पुत्र-कलत्र-स्थान आदि सम्पूर्ण वस्तुओंमें आसक्ति न करके वैराग्यको धारण करो, क्योंकि यह विषयभोग तो नरकमें और कुत्ता शूकर आदिका शरीर धारण करनेपर भी प्राप्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ और ज्ञानकी प्राप्ति करनेके योग्य मनुष्य देह तिसपरभी विशेषकरके ब्राह्म-

तस्मात्त्वं त्यज देहादावभिमानं महामते ॥ आत्मातिनिर्मलः शुद्धो विज्ञानात्माऽचलोऽव्ययः ॥ ४८ ॥ स्वाज्ञानवंशतो बन्धं प्रतिपद्य विमुह्यति ॥ तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वात्मानं सदा स्मर ॥ ४९ ॥ विरतिं भज सर्वत्र पुत्रदारगृहादिषु ॥ निरयेष्वपि भोगः स्याच्छूसूकरतनावपि ॥ ५० ॥ देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः ॥ तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम् ॥ ५१ ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा देहं भोगानुगो भवेत् ॥ अतस्त्वं ब्राह्मणो भूत्वा पौलस्त्यतनयश्च सन् ॥५२॥ अज्ञानीव सदा भोगाननुधावसि किं मुधा॥ इतः परं वा त्यक्त्वा त्वं सर्वं सङ्गं समाश्रय ॥५३॥ राममेव परात्मानं भक्तिभावेन सर्वदा ॥ सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ॥५४॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं प्रयास्यसि ॥ नोचेद्गमिष्यसेऽधोधः पुनरावृत्तिवर्जितः ॥ अङ्गीकुरुष्व मद्वाक्यं हितमेव वदामि ते ॥५५॥

णशरीर और तिसपरभी कर्म्मभूमि जो भारतवर्ष तिसके विषे परमदुर्लभ जन्मको प्राप्त होकर कौन बुद्धिमान् अपने अधीन हुए देहसे विषयोंको भोगैगा ! तिसकारण तुम ब्राह्मणजाति, तिसपरभी पौलस्त्यके पुत्र होकर सदा अज्ञानीके समान इन मिथ्याभूतभोगोंके पीछे क्यों वृथा दौड़ते हो, अब आगे तुम सब संगको त्याग कर सदा भक्तिपूर्वक परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीका ही ध्यान करो, और सीता श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण करके उनकेही चरणोंकी सेवा करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तब तुम सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होओगे, नहीं तो उत्तम लोकोंसे दूर होकर नीचे नीचेके लोकोंको (अधोगतिको) प्राप्त होओगे, मेरे कहनेको स्वीकार कर लो, मैं तुम्हारे हितकी वार्त्ता कहरहा हूँ ॥ ५५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे रावण ! सत्संगति करो, और शरणागतरक्षक, मरकतमणिको समान श्यामवर्ण, सीतासहित, सदा धनुष्यबाणधारी, सुग्रीव-लक्ष्मण और बिभीषणकरके सेवित हैं चरण जिनके ऐसे साक्षात् नारायणरूप श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥५६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! अज्ञानको नष्ट करनेवाले इन शुकके मुखसे निकलेहुए वाक्योंको सुनकर रावणने क्रोधसे ऐसे लाल नेत्र करलिये मानो इस शुकको भस्मही कर डालैगा, और कहने लगा कि ॥१॥ अरे दुर्बुद्धे ! मेरा सेवक होकर मुझे गुरुके समान उपदेश कैसे करताहै ? हे निर्लज्ज ! त्रिलोकीको तो मैं शिक्षा देताहूँ और तू मुझे शिक्षा देताहै ॥२॥ अरे इसी

सत्सङ्गतिं कुरु भजस्व हरिं शरण्यं श्रीराघवं मरकतोपलकान्तिकान्तम् ॥ सीतासमेतमनिशं धृतचापबाणं सुग्रीवलक्ष्मणबिभीषणसेविताङ्घ्रिम् ॥५६॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥४॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ श्रुत्वा शुकमुखोद्गीतं वाक्यमज्ञाननाशनम् ॥ रावणः क्रोधताम्राक्षो दहन्निव तमब्रवीत् ॥ १ ॥ अनुजीव्य सुदुर्बुद्धे गुरुवद्भाषसे कथम् ॥ शासिताऽहं त्रिजगतां त्वं मां शिक्षन्न लज्जसे ॥ २ ॥ इदानीमेव हन्मि त्वां किंतु पूर्वकृतं तव ॥ स्मरामि तेन रक्षामि त्वां यद्यपि वधोचितम् ॥ ३ ॥ इतो गच्छ विमूढ त्वमेवं श्रोतुं न मे क्षमम् ॥ महाप्रसाद इत्युक्त्वा वेपमानो गृहं ययौ ॥४॥ शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ॥ वानप्रस्थविधानेन वने तिष्ठन् स्वकर्मकृत् ॥ ५ ॥

समय तुझे यमपुरी पहुँचा देता, परन्तु पहिले तूने मेरे बहुत कार्य्य सिद्ध करेहैं, उनको स्मरण करके, मारनेके योग्य होनेपरभी तुझे नहीं मारता हूँ ॥२॥ अरे मूढ ! यहाँसे चला जा, मैं तेरे इन वचनोंको सुनकर नहीं सह सक्ता. इस प्रकार रावणके कहनेपर वह शुक राक्षस "आपने मेरे उपर बडा अनुग्रह किया" इसप्रकार कहकर गृहको चलागया अर्थात् राक्षसभावको त्याग शुद्धब्राह्मणभावको प्राप्त होकर तप करनेके निमित्त अपने पहिले वैखानस आश्रमरूप गृहको चलागया ॥ ४ ॥ क्योंकि यह शुक पहिले ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण था और ब्रह्मविचारमें तत्पर होकर वनमें वेदोक्त वानप्रस्थकी विधिसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपना कर्म्म करताथा ॥ ५ ॥ इस बुद्धिमान् शुकने देवताओंकी वृद्धिके अर्थ और राक्षसोंका नाश होनेके निमित्त निरन्तर बहुतसे यज्ञ किये ॥ ६ ॥ तब तो देवताओंका हित करनेमें उद्यत इस शुकके साथ राक्षसोंको बड़ा विरोध बढ़गया, तब तो उनमेंसे वज्रदंष्ट्र नामसे प्रसिद्ध एक महाराक्षस उस शुक ब्राह्मणका तिरस्कार करनेके निमित्त उद्यत होकर छिद्र देखनेमें तत्पर रहने लगा, सो एकसमय तिस शुक ब्राह्मणके आश्रमको अगस्त्य-मुनि आए ॥ ७ ॥ ८ ॥ सो शुक ब्राह्मणने अगस्त्यजीका सत्कार किया. और भोजन करनेके निमित्त निमन्त्रण किया तब अगस्त्य मुनि तो स्नान करने गए, सो इस राक्षस वज्रदंष्ट्रने छिद्र पाकर अगस्त्यका रूप धारण किया, और आकर शुक ब्राह्मणसे कहने लगा कि हे विप्र ! यदि मुझे

देवानामभिवृद्ध्यर्थं विनाशाय सुरद्विषाम् ॥ चकार यज्ञवितातिमविच्छिन्नां महामतिः ॥ ६ ॥ राक्षसानां विरोधोऽभूच्छुको देवहितोद्यतः ॥ वज्रदंष्ट्र इति ख्यातस्तत्रैको राक्षसो महान् ॥७॥ अन्तरं प्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः ॥ कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदं मुनेः ॥ ८ ॥ तेन सम्पूजितोऽगस्त्यो भोजनार्थं निमन्त्रितः ॥ गते स्नातुं मनौ कुम्भसम्भवे प्राप्य चान्तरम् ॥९॥ अगस्त्यरूपधृक् सोऽपि राक्षसः शुक-मब्रवीत् ॥ यदि दास्यसि मे ब्रह्मन् भोजनं देहि सामिषम् ॥१०॥ बहुकालं न भुक्तं मे मांसं छागाङ्गसम्भवम् ॥ तथेति कारयामास मांस-भोज्यं सविस्तरम् ॥११॥ उपविष्टे मुनौ भोक्तुं राक्षसोऽतीव सुन्दरम् ॥ शुकभार्यावपुर्धृत्वा तां चान्तर्मोहयन् खलः ॥ १२ ॥ नरमांसं ददौ तस्मै सुपक्वं बहुविस्तरम् ॥ दत्त्वैवान्तर्दधे रक्षस्ततो दृष्ट्वा चुकोप सः ॥ १३ ॥ अमेध्यं मानुषं मांसमगस्त्यः शुकमब्रवीत् ॥ अभक्ष्यं मानुषं मांसं दत्तवानसि दुर्मते ॥ १४ ॥

भोजन देनेकी इच्छा है तो मांसयुक्त दो ॥ ९ ॥ १० ॥ मैंने बहुत दिनोंसे छाग (बकरे) के शरीरका मांस भोजन नहीं किया है, सो शुक ब्राह्मणने इस कथनको स्वीकार करके मांसयुक्त अनेक प्रकारका भोजन बनवाया ॥११॥ सो जब स्नान करके अगस्त्य मुनि आए और भोजन करनेके निमित्त बैठे, उसी समय उस वज्रदंष्ट्र राक्षसने अति सुन्दर स्त्रीका रूप धारण किया, और शुककी स्त्रीको मायाकरके ऐसा मोहित करदिया कि वह भोजन परोसनेको नहीं आई, सो अपने आप उस शुकस्त्रीके वेषसे तिन अगस्त्य मुनिको बहुतसा खूब पका हुआ मनुष्यका मांस परोस दिया, और परोसनेके अनन्तर तत्कालही वह राक्षस अन्तर्धान होगया, तब तो अगस्त्य मुनि उस अपवित्र मनुष्यके मांसको देखकर बड़े क्रुद्ध हुए और उस शुक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणसे कहने लगे कि अरे दुष्ट! मतिहीन! तैने मुझे अभक्ष्य मनुष्यका मांस दिया है, सो तू राक्षस होजा और सदा मनुष्यकाही मांस भक्षण करता रह. जब इसप्रकार अगस्त्यमुनिने शाप देदिया तब तो शुकब्राह्मण भयभीत होकर अगस्त्यमुनिसे कहने लगा कि हे मुने! आपने मुझसे अबही कहा था कि मुझे आज बहुतसा मांस दे, सो हे देव! मैंने आपके कहनेके अनुसार मांस परोस दिया है, फिर मुझे किस कारण शाप देतेहो ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ इसप्रकार शुकके कथनको सुनकर अगस्त्यमुनिने एक मुहूर्तपर्य्यन्त ध्यान किया सो यह सब कार्य्य राक्षसका कियाहुआ जानकर परम प्रवीण अगस्त्यजी शुक ब्राह्मणसे कहने लगे ॥ १७ ॥ कि—हे शुक! यह सब कार्य्य तेरे शत्रु राक्षसने कियाहै और हे साधो! मैंने

मह्यं त्वं राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्वं मानुषाशनः ॥ इति शप्तः पुरो भीत्या प्राहागस्त्यं मुने त्वया ॥ १५ ॥ इदानीं भाषितं मेऽद्य मांसं देहीति विस्तरम् ॥ तथैव दत्तं मे देव किं मे शापं प्रदास्यसि ॥ १६॥ श्रुत्वा शुकस्य वचनं मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ॥ ज्ञात्वा रक्षःकृतं सर्वं ततः प्राह शुकं सुधीः ॥ १७ ॥ तवापकारिणा सर्वं राक्षसेन कृतं त्विदम् ॥ अविचार्यैव मे दत्तः शापस्ते मुनिसत्तम ॥ १८ ॥ तथापि मे वचोऽमोघमेवमेव भविष्यति ॥ राक्षसं वपुरास्थाय रावणस्य सहायकृत् ॥ १९ ॥ तिष्ठ तावद्यदा रामो दशाननवधाय हि ॥ आगमिष्यति लङ्कायाः समीपं वानरैः सह ॥ २० ॥ प्रेषितो रावणेन त्वं चारो भूत्वा रघूत्तमम् ॥ दृष्ट्वा शापाद्विनिर्मुक्तो बोधयित्वा च रावणम् ॥ २१ ॥ तत्त्वज्ञानं ततो मुक्तः परं पदमवाप्स्यसि ॥ इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिना शुको ब्राह्मणसत्तमः ॥ २२ ॥ बभूव राक्षसः सद्यो रावणं प्राप्य संस्थितः ॥ इदानीं चाररूपेण दृष्ट्वा रामं सहानुजम् ॥ २३ ॥

विना विचारेही तुझे शाप देदिया ॥१८॥ तथापि यह मेरा वचन निष्फल हो नहीं सक्ता, परंतु तुम तबतक राक्षसका शरीर धारण करके रावणकी सहाय करते रहो, जबतक रावणका वध करनेके निमित्त श्रीरामचंद्रजी वानरोंकेसाहित लंकाके समीप आवैं. जब वह रघुनाथजी आवैंगे तब रावण दूत बनाकर तुम्है श्रीरामचंद्रजीके पास भेजैगा, उस समय तुम श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करके शापसे छूट जाओगे, और लौटकर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश करके इस शरीरसे छूटकर परंपदको प्राप्त होओगे. इसप्रकार अगस्त्यमुनिने शुक ब्राह्मणसे कह दियाथा ॥ १९ ॥२०॥२१ ॥२२ ॥ सो वह ब्राह्मण तत्कालही राक्षस हो रावणके समीप आकर रहा, और इस समय दूतरूपसे लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करके और रावणको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वज्ञानका उपदेश करके फिर शीघ्रही पहिलेके समान ब्राह्मण होकर वैखानस (वानप्रस्थ) ब्राह्मणोंसहित रहने लगा ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनंतर माल्यवान् नामक बड़ाभारी एक वृद्ध राक्षस आया, वह परमबुद्धिमान् नीतिमें निपुण और रावणकी माताका पिता (नाना) होनेके कारण रावणको अत्यंत प्रिय था ॥२५॥ वह माल्यवान् शान्तचित्तसे तिस वीर रावणके प्रति कहने लगा कि हे राजन्! जो मैं कहता हूँ उसको सुनो फिर जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करना ॥ २६ ॥ हे रावण ! जिस समयसे रामवल्लभा जानकीका लंकापुरीमें प्रवेश हुआ है तबसेही नाशको सूचित करनेवाले बडे भयानक अशुभ शकुन दीखते हैं, सो मैं कहता हूँ तुम श्रवण करो, सदा लंकामें कठोर गर्जना करनेवाले विजलीकरके युक्त अतिभयंकर मेघ गरम-

रावणं तत्त्वविज्ञानं बोधयित्वा पुनर्द्रुतम् ॥ पूर्ववद्ब्राह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसैः सह ॥ २४ ॥ ततः समागमद्वृद्धो माल्यवान् राक्षसो महान् ॥ बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातुः प्रियः पिता ॥२५॥ प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनान्तरात्मना ॥ शृणु राजन्वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥ २६ ॥ यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा ॥ तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानि दशानन ॥२७॥ घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु ॥ खरस्तनितनिर्घोषा मेघा अतिभयङ्कराः ॥ २८ ॥ शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा ॥ रुदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च ॥ २९ ॥ कालिका पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसत्यग्रतः स्थिता ॥ खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलैः सह ॥३०॥ मार्जारेण तु युध्यन्ति पन्नगा गरुडेन तु ॥ करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ॥ ३१ ॥

रुधिरकी वर्षा करतेहैं, देवताओंकी प्रतिमा रुदन करती हैं, और वारंवार पसीनेमें भीगकर स्थापन करेहुए स्थानसे चलायमान हो जातीहैं ॥२७॥२८॥ ॥२९॥ और काले वर्णकी अपूर्व स्त्रीका रूप धारण करनेवाली देवी श्वेत दाँतोंको निकालकर राक्षसोंके आगे खड़ीहुई हँसती है, गौओंसे गर्दभ उत्पन्न होते हैं, नकुल और मूसे बिडालों (बिल्लियों) से युद्ध करते हैं, सर्प गरुडके साथ युद्ध करतेहैं. इसका अभिप्राय यह है, कि जब नकुल और चूहे बिड़ालोंका भोजनरूप होकर भी बिडालोंको मारने लगे, तबतो हमारे भोजनरूप मनुष्य अवश्यही हम राक्षसोंको नष्ट करदेंगे, और यही वार्ता गरुड और सर्पके युद्धसे प्रतीत होतीहै और एक कराल विकटरूप और काला पीला है वर्ण जिसका ऐसे मुंड (शिररहित) पुरुषका रूप धारण करेहुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल समय समय अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल सब राक्षसोंके स्थानोंमें आकर दिखाई देताहै, हे राजन् ! यह तथा औरभी बहुत अपशकुन होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इसकारण हे राजन् ! अपने कुलकी रक्षा करनेके निमित्त शान्तिकर्म (इन अपशकुनोंने सूचित दुःखको नष्ट करनेवाला कर्म्म) करो, हे प्रभो ! वह शांतिकर्म्म यह है कि सीताका सत्कार करके धनसहित जानकी शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीको देदो, हे रावण ! श्रीरामचन्द्रजीको नारायणरूप जान, और तिन रघुनाथजीके साथ द्वेषको त्याग दे, जिन श्रीरामचन्द्रजीके चरणरूपी नौकाका आश्रय लेकर भक्ति करके पवित्र हुआ है अंतःकरण जिनका ऐसे ज्ञानी पुरुष संसारसमुद्रको तरजाते हैं इसकारण श्रीरामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं, ऐसा जानकर तुम भक्तिपूर्वक सबके

कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते ॥ एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च ॥ ३२ ॥ अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन ॥ सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः ॥३३॥ रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे ॥ यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम् ॥ ३४ ॥ तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुषः ॥ भजस्व भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम् ॥ ३५ ॥ यद्यपि त्वं दुराचारो भक्त्या पूतो भविष्यसि ॥ मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे ॥ ३६ ॥ तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ॥ न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ ३७ ॥ मानवं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ॥ समर्थं मन्यसे केन हीनं पित्रा मुनिप्रियम् ॥ ३८ ॥ रामेण प्रेषितो नूनं भाषसे त्वमनर्गलम् ॥ गच्छ वृद्धोऽसि बन्धुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम् ॥ ३९ ॥

घटघटवासी श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यद्यपि तुम दुराचारी हो तथापि भक्तिकरके पवित्र होजाओगे, हे राजेन्द्र ! यदि कुलकी कुशल चाहते हो तो यह मेरा कहना करो ॥ ३६ ॥ रावण इस हितकारक भी माल्यवान्के कथनको न सहसका, क्योंकि वह दुष्टात्मा तो कालके वशीभूत होरहाथा ॥ ३७ ॥ सो कहने लगा कि हे माल्यवान् ! जिसको पिताने निकाल दिया है, जिसने वानरोंका आश्रय लिया है, ऐसे इकले कृपण, दीन, मनुष्य रामचन्द्रजीको तुम किसकारणसे समर्थ जानते हो, वह तो सदा वनवासी मुनियोंसेही प्रेम रखता है, किसप्रकार मुझसे जीत सकैगा ॥ ३८ ॥ अरे माल्यवान् ! प्रतीत होता है, कि तुझे उस रामचन्द्रनेही भेजा है, जो ऐसा अनर्गल बकवाद कररहा है, जा तू

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृद्ध है और नातेमें भी मेरी माताका पिता है, इसकारण तेरा कहाहुआ मैंने सब सहलिया ॥ ३९ ॥ अब तेरा कहाहुआ वचन मेरे कर्णोंको भस्म करता है. इसप्रकार कहकर रावण अपने मंत्रियोंसहित उठकर चलदिया ॥ ४० ॥ और महलके ऊपर चढ़के ऊंची अटारीपै बैठकर वानरोंकी सेनाको देख युद्धके निमित्त पास बैठेहुए सम्पूर्ण राक्षसोंको आज्ञा करी ॥ ४१ ॥ इधर श्रीरामचन्द्रभी लक्ष्मणजीके लायेहुए धनुषको लेकर सिंहासनके ऊपर बैठे हुए रावणको देखकर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥ ४२ ॥ और अर्द्धचन्द्राकार एक बाणसेही रघुनाथजीने किरीट धारण कियेहुए मंत्रियोंसहित बेठेहुए रावणके हजारों श्वेत छत्र और दशों मुकुटोंको क्षण मात्रमें काटकर पृथ्वीपर गिरादिया, यह एक आश्चर्य्यसा होगया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इतो मत्कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव ॥ इत्युक्त्वा सर्व सचिवैः सहितः प्रस्थितस्तदा ॥४०॥ प्रासादाग्रे समासीनः पश्यन्वानरसैनिकान् ॥ युद्धायायोजयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ॥ ४१ ॥ रामोऽपि धनुरादाय लक्ष्मणेन समाहृतम् ॥ दृष्ट्वा रावणमासीनं कोपेन कलुषीकृतः ॥ ४२ ॥ किरीटिनं समासीनं मन्त्रिभिः परिवेष्टितम् ॥ शशाङ्कार्धनिभेनैव बाणेनैकेन राघवः ॥ ४३ ॥ श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा ॥ चिच्छेद निमिषार्धेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४४ ॥ लज्जितो रावणस्तूर्णं विवेश भवनं स्वकम् ॥ आहूय राक्षसान् सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान् खलः ॥ ४५ ॥ वानरैः सह युद्धाय नोदयामास सत्वरः ॥ ततो भेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः ॥ ४६ ॥ महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः ॥ खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः ॥४७॥ लक्षिताः सर्वतो लङ्कां प्रतिद्वारमुपाययुः ॥ तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः ॥ ४८ ॥ उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च ॥ तरूंश्चोत्पाट्य विविधान्युद्धाय हरियूथपाः ॥ ४९ ॥

तब रावण लज्जित होकर चुपचाप शीघ्रही अपने मंदिरमें चलागया, और उस दुष्ट रावणने प्रहस्त है मुख्य जिनमें ऐसे सम्पूर्ण राक्षसोंको बुलाकर शीघ्रही वानरोंके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा करी. तबतो भेरी, मृदंग, पणव और नफारी आदि बाजे बजातेहुए भैंसे, ऊंट, गधे, सिंह और व्याघ्रोंपर चढ़कर खड्ग, शूल धनुष, पाश, भाले, तोमर और शक्तिआदि शस्त्रोंको धारण करेहुए अनेक राक्षस लंकाके चारोंओर सम्पूर्ण द्वारोंपर आगये, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके प्रेरणा करेहुए वीर वानर इससे प्रथमही पर्वतोंके शिखरोंको उखाड़कर और अनेकप्रकारके वृक्षोंको उखाड़कर हाथमें लियेहुए युद्ध करनेके निमित्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिन रावणकी सेनाओंकी वाट देखतेहुए अपनी सेनाका विभाग करके सम्पूर्ण लंकाके द्वारोंपर पहुँच गयेथे और श्रीरामचन्द्रजीका प्रिय कार्य सिद्ध करनेके अर्थ उससमय लंकाके ऊपर चढ़गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ वह वानर वृक्षोंकरके पर्वतोंके शिखरोंकरके और मुष्टिप्रहारोंकरके राक्षसोंके मारनेको उद्यत बैठेथे, कहीं हजार वानरोंका यूथ, और कहीं सेनापतियोंकरके सहित करोड़ वानरोंका यूथ, और कहीं सैंकड़ों करोड़ वानरोंका यूथ था, इसप्रकार उन करोड़ों वानरोंने लंकापुरीको चारों ओरसे खूब घेर लिया, कोई वानर ऊपरको कूदने लगे, कोई वानर नीचेको कूदने लगे, और कोई किलकिलाकर गर्जने लगे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उनमेंसे कोई कहते थे, कि—अतिबलवान् श्रीरामचंद्रजीकी जय

प्रेक्षमाणा रावणस्य तान्यनीकानि भागशः ॥ राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ ५० ॥ ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः ॥
ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ॥५१॥ कोटीशतयुताश्चान्ये रुरुधुर्नगरं भृशम् ॥ आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः॥५२॥
रामो जयत्यतिबिलो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥ राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः ॥ ५३ ॥ इत्येवं घोषयन्तश्च समं युयुधिरेऽरिभिः ॥
हनूमानङ्गदश्चैव कुमुदो नील एव च ॥ ५४ ॥ नलश्च शरभश्चैव मैन्दो द्विविद एव च ॥ जाम्बवान्दधिवक्त्रश्च केसरी तार एव च॥५५॥
अन्ये च बलिनः सर्वे यूथपाश्च प्लवङ्गमाः ॥ द्वाराण्युत्प्लुत्य लङ्कायाः सर्वतो रुरुधुर्भृशम् ॥ तदा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानरः ॥५६॥
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः ॥ राक्षसाश्च तदा भीमा द्वारेभ्यः सर्वतो रुषा ॥५७॥ निर्गत्य भिन्दिपालैश्च खड्गैः शूलैः परश्वधैः ॥
निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥५८॥ राक्षसांश्च तथा जघ्नुर्वानराजितकाशिनः ॥ तदा बभूव समरो मांसशोणितकर्दमः॥५९॥

हो, कोई कहते थे परमपराक्रमी लक्ष्मणजीकी जय होय, और कोई वानर कहते थे कि श्रीरामचंद्रजीकरके रक्षा करेहुए महाराज सुग्रीवकी जय हो, ॥ ५३॥ इसप्रकार जय जय शब्द करतेहुए वह वानर अपने शत्रु राक्षसोंके साथ युद्ध करनेलगे, और हनुमान्, अंगद, कुमुद, नील, नल, शरभ, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, दधिमुख, केशरी, तार तथा और भी बलवान् सम्पूर्ण सेनापति वानरोंने कूदकूदकर चारोंओरसे लंकाके द्वारोंको खूब रोंकलिया, उससमय बड़े बड़े शरीरधारी वानर पर्वतोंके शिखरोंसे राक्षसोंको कुचलने लगे, कोई नखोंसे वकोटने लगे, और कोई जल्दी २ दांतोंसे काटने लगे, उससमय भयानक राक्षस अत्यंत क्रोधमें हो लंकाके सम्पूर्ण द्वारोंमेंसे निकल निकलकर भिन्दिपाल, खड्ग, शूल और फरसोंकी धारोंसे वानरोंकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेनाके ऊपर प्रहार करने लगे, और बड़े बड़े शरीरधारी महाबली समरजीत वानरभी राक्षसोंको मारने लगे, उससमय रणभूमिमें मांस और रुधिरकी कींच होगई ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ वह राक्षस और वानरोंका संग्राम अत्यंतही अद्भुत हुआ, मानो पहिले जो संसारमें घोर युद्ध होगये और जो आगैके होयँगे उन सबका यह युद्ध दृष्टान्तरूप होगया. वह वीर राक्षस घोड़े, हाथी और सुवर्णके समान प्रकाशवान् रथोंपर चढ़चढकर युद्ध करने लगे, परस्पर जयकी इच्छा करनेवाले वानर और राक्षसों गरजगरजकर दशोंदिशाओंको शब्दायमान करदिया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ उससमय राक्षसों ऊपर वानर प्रहार करतेथे, और वानरोंके ऊपर राक्षस प्रहार करतेथे, उससमयमें साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीने तिनदेवताओंके अंशरूप वानरोंके ऊपर दृष्टिपात किया, सो वह संपूर्ण वानर उस समय ऐसे प्रसन्न और बलवान् होगये मानो अमृतही पान कर लिया, और सीताको दुष्टभावसे

रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥ ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः काञ्चनसन्निभैः ॥ ६० ॥ रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ॥
राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिणः ॥६१॥ राक्षसान्वानरा जघ्नुर्वानरांश्चैव राक्षसाः ॥ रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दिविजांशजाः॥६२॥
बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव ॥ सीताभिमर्शपापेन रावणेनाभिपालितान् ॥ ६३ ॥ हतश्रीकान्हतबलान् राक्षसान् जघ्नुरोजसा ॥
चतुर्थांशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥६४॥ स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादोऽथ दुष्टधीः ॥ ब्रह्मदत्तवरः श्रीमानन्तर्धानं गतोऽसुरः ॥६५॥
सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः ॥ नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन् ॥ ६६ ॥ ववर्ष शरजालानि तदद्भुतमिवाभवत् ॥
रामोऽपि मानयन्ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥६७॥ क्षणं तूष्णीमुवासाथ ददर्श पतितं बलम् ॥ वानराणां रघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसंनिभः ॥६८॥

स्पर्श करनेके कारण परम पापी रावणकरके रक्षा करेहुए श्रीहीन और बलहीन राक्षसोंको बडे बलसे मारनेलगे, इसप्रकार युद्ध होनेपर राक्षसोंकी सम्पूर्ण सेना मारीगई केवल चतुर्थभाग सेना बची ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तबतो ब्रह्माजीसे प्राप्त हुआ है वरदान जिसको ऐसा कान्तिमान् दुष्टात्मा मेघनाद अपनी सेनाको नष्ट हुई देखकर अंतर्धान होगया ॥ ६५ ॥ और संपूर्ण अस्त्रोंकी विद्यामें चतुर वह मेघनाद आकाशमें जाकर ब्रह्मास्त्र सहित अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे वानरोंकी सेनाको पीडित करनेलगा, और बाणोंके समूहोंकी वर्षा करनेलगा, यह एक आश्चर्य्य होगया, यद्यपि श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण अस्त्रविद्याके जाननेवालोंमें अग्रगण्य थे, तथापि ब्रह्मास्त्रका सन्मान किया ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ और क्षणमात्रको मौन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होकर बैठगये. फिर सौ वानरोंकी सेनाको गिराहुआ देख श्रीरामचंद्रजी क्रोधकरके प्रलयकालकी अग्निसमान होगये, और कहने लगे कि—हे रघुकुलशिरोमणे लक्ष्मण ! मेरा धनुष लाओ, देखो मेरे बलको. क्षणमात्रमें राक्षसोंकी सेनाको ब्रह्मास्त्रसे भस्म कर देताहूँ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ मेघनादभी रामचन्द्रजीके इस वाक्यको सुनकर सावधान हो शीघ्रही मायाकरके लंकापुरीको चलागया, क्योंकि यह राक्षस मेघनाद तो बड़ा मायावी था ॥ ७० ॥ तब तो श्रीरामचन्द्रजी वानरोंकी सेनाको गिराहुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, और हनुमान्जीसे कहने लगे, कि—तुम शीघ्रही क्षीरसमुद्रमें जाकर तहाँ जो दिव्य औषधियोंके उत्पन्न होनेका स्थान द्रोणगिरिनामक पर्वत है, उसको शीघ्रही जाकर लेआओ, और हे महामते !

चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरं क्षणात् ॥ भस्मीकरोमि मे पश्य बलमद्य रघूत्तम ॥ ६९ ॥ मेघनादोऽपि तच्छ्रुत्वा रामवाक्यमतन्द्रितः ॥ तूर्णं जगाम नगरं मायया मायिकोऽसुरः ॥ ७० ॥ पतितं वानरानीकं दृष्ट्वा रामोऽतिदुःखितः ॥ उवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीरमहोदधिम् ॥ ७१ ॥ तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः ॥ तमानय द्रुतं गत्वा सञ्जीवय महामते ॥ ७२ ॥ वानरौघान्महासत्त्वान्कीर्तिस्ते सुस्थिरा भवेत् ॥ आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा जगामानिलनन्दनः ॥ ७३ ॥ आनीय च गिरिं सर्वान्वानरान्वानरर्षभः ॥ जीवयित्वा पुनस्तत्र स्थापयित्वा ययौ द्रुतम् ॥ ७४ ॥ पूर्ववद्भैरवं नादं वानराणां बलौघतः ॥ श्रुत्वा विस्मयमापन्नो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ राघवो मे महान् शत्रुः प्राप्तो देवविनिर्मितः ॥ हन्तुं तं समरे शीघ्रं गच्छन्तु मम यूथपाः ॥ ७६ ॥

इन महाबली वानरोंके समूहोंको जीवित करो, यह कार्य करनेसे संसारमें तुम्हारी बड़ी भारी कीर्ति होयगी तबतो पवनकुमार कहने लगे, कि—हे महाराज ! आप जो आज्ञा करै सो मुझे स्वीकार है, ऐसा कहकर पवनकुमार चलेगए, और उस द्रोणगिरिको लाकर संपूर्ण वानरोंको जीवित किया. और फिर तहाँही उस पर्वतके स्थापन करके शीघ्रतासे लौट आये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ तबतो वानरोंकी सेनाके समूहसे फिर पहिलेके समान बड़ा भयंकर शब्द निकलने लगा, उसको सुनकर रावण अतिआश्चर्यको प्राप्त हुआ, और इसप्रकार कहने लगा ॥ ७५ ॥ कि—अरे सेनापतियों ! यह रामचंद्र तो देवताओंका रचाहुआ मेरा बड़ाभारी शत्रु आगया है, उसके मारनेके निमित्त रणमें शीघ्रही जाओ ॥ ७६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंत्री, बांधव और जो मेरे हितकारक शूर हैं वह शीघ्रही मेरी आज्ञासे युद्ध करनेके निमित्त जायँ ॥ ७७ ॥ और जो डरपोक अपने प्राणोंके नाशके भयसे मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके युद्ध करनेके निमित्त नहीं जांयगे, उन सबोंका मैं प्राणान्त करँदूगा ॥ ७८ ॥ इसप्रकार रावणके कथनको सुनकर रावणसे भयभीत हुए, युद्ध करनेमें परम प्रवीण अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर, देवशत्रु, निकुम्भ, देवांतक और नरांतक, तथा अन्यभी बहुतसे बली राक्षस सब इकट्ठे होकर वानरोंसे युद्ध करनेके निमित्त गये ॥ ७९ ॥ ८० ॥ यह सब तथा अन्यभी बहुतसे सैंकड़ों और हजारों बलके घमंडी शूर राक्षस वानरोंकी सेनामें जाकर वानरोंको दहीके समान मथने लगे ॥ ८१ ॥ वह राक्षस भुशुण्डी, भिन्दिपाल, बाण

मन्त्रिणो बान्धवाः शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिणः ॥ सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरितं मम शासनात् ॥ ७७ ॥ ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविप्लवात् ॥ तान्हनिष्याम्यहं सर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः ॥ अतिकायः प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ ॥ ७९ ॥ देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥ अपरे बलिनः सर्वे ययुर्युद्धाय वानरैः ॥ ८० ॥ एते चान्ये च बहवः शूराः शतसहस्रशः ॥ प्रविश्य वानरं सैन्यं ममन्थुर्बलदर्पिताः ॥८१॥ भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च बाणैः खड्गैः परश्वधैः ॥ अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥ ८२ ॥ ते पादपैः पर्वताग्रैर्नखदंष्ट्रैश्च मुष्टिभिः ॥ प्राणैर्विमोचयामासुः सर्वराक्षसयूथपान् ॥ ८३ ॥ रामेण निहताः केचित्सुग्रीवेण तथापरे ॥ हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना ॥ यूथपैर्वानराणां ते निहताः सर्वराक्षसाः ॥ ८४ ॥ रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन् ॥ रामशक्तिविहीनानामेवं शक्तिः कुतो भवेत् ॥ ८५ ॥

और फरसोंकी धारैं तथा औरभी अनेक प्रकारके अस्त्रोंकरके वानरोंके सेनापतियोंको मारने लगे ॥ ८२ ॥ उन वानरोंनेभी तिन सम्पूर्ण राक्षसोंके सेनापतियोंको पर्वतोंके शिखरोंसे कुचलकर नखोंसे वकोटकर, दाढ़ोंसे काटकर, और घूंसोंसे गुथलकर मारडाला ॥ ८३ ॥ किन्हींको श्रीरामचंद्रजीने यमपुरी पहुँचाया, और किन्हींका सुग्रीवने प्राणान्त किया, कुछ राक्षसोंका पवनकुमारने बध किया कुछ राक्षसोंको अंगदने कुचला और किन्हीं राक्षसोंको महात्मा लक्ष्मणजीने बाणोंसे वेध दिया. इसप्रकार वह सम्पूर्ण राक्षस वानरोंके सेनापतियोंसे मारेगये ॥ ८४ ॥ सो उचितही है, क्योंकि, वानर तो श्रीरामचंद्रजीके तेजको प्राप्त होकर बलवान् हो रहेथे, और राक्षस रामचंद्रजीकी शक्तिसे हीन थे, फिर उनको किसप्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शक्ति होसक्ती थी ॥ ८५ ॥ सर्वेश्वर, सर्वरूप, सबके कर्त्ता और त्रिकालमें चिदानंदस्वरूप, श्रीरामचन्द्रजी अपनी मायासे मनुष्योंका अनुकरण करके उस मनुष्यत्वके ही अनुसार युद्ध आदि लीलारूप अपनी मायाको फैलारहेथे ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तर देशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि—हे पार्वति ! रावण युद्धमें अतिकाय आदि बड़ी भारी सेनाकाभी मरण सुनकर अत्यन्त दुःखित हुआ और बड़े क्रोधमें भरगया ॥ १ ॥ और अपने पुत्र मेघनादको लंकाकी रक्षाका भार सौंपकर वह परम कान्तिमान् राक्षस रावण श्रीरामचन्द्रजीसे स्वयं युद्ध करनेको गया ॥ २ ॥ उस महाबली राक्षसपति रावणने सम्पूर्ण शस्त्र

सर्वेश्वरः सर्वमयो विधाता मायामनुष्यत्वविडम्बनेन ॥ सदा चिदानन्दमयोऽपि रामो युद्धादिलीलां वितनोति मायाम् ॥ ८६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ श्रुत्वा युद्धे बलं नष्टमतिकायमुखं महत् ॥ रावणो दुःखसन्तप्तः क्रोधेन महता वृतः ॥ १ ॥ निधायेन्द्रजितं लङ्कारक्षणार्थं महाद्युतिः ॥ स्वयं जगाम युद्धाय रामेण सह राक्षसः ॥ २ ॥ दिव्यं स्यन्दनमारुह्य सर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् ॥ राममेवाभिदुद्राव राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ ३ ॥ वानरान्बहुशो हत्वा बाणैराशीविषोपमैः ॥ पातयामास सुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥ ४ ॥ गदापाणिं महासत्त्वं तत्र दृष्ट्वा बिभीषणम् ॥ उत्ससर्ज महाशक्तिं मयदत्तां बिभीषणे ॥ ५ ॥ तामापतन्तीमालोक्य बिभीषणविघातिनीम् ॥ दत्ताभयोऽयं रामेण वधार्हो नायमासुरः ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणो भीमं चापमादाय वीर्यवान् ॥ बिभीषणस्य पुरतः स्थितोऽकम्प इवाचलः ॥ ७ ॥

और अस्त्रोंकरके युक्त दिव्य रथमें बैठकर श्रीरामचन्द्रजीके ही ऊपरको धावा किया ॥ ३ ॥ सर्पोंके समान अपने बाणोंकरके बहुतसे वानरोंको मारकर गिरादिया और सुग्रीव आदि सेनापतियोंको भी गिरादिया, हाँ रावणने हाथमें गदा लिये हुए महाबली बिभीषणको देखकर उसको मारनेके निमित्त मयदैत्यकी दीहुई बड़ीभारी शक्ति छोड़ी ॥ ४ ॥ ५ ॥ तब तो बिभीषणका नाश करनेके निमित्त आतीहुई उस अमोघ शक्तिको देखकर महाबली लक्ष्मणजीने विचार किया कि श्रीरामचन्द्रजीने बिभीषणको अभयदान देदिया है, इसकारण यह वधके योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर अतिवीर्यवान् लक्ष्मणजी अपने भयानक धनुषको लेकर अचलपर्वतके समान बिभीषणके आगे खड़े होगये ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह शक्ति अमोघ होनेके कारण लक्ष्मणजीके शरीरमें प्रवेश करगई, संसारमें जितनी शक्ति हैं सब मायाकी रचीहुई हैं ॥ ८ ॥ तिन सब शक्तियोंके आधाररूप शेषावतार विष्णुभगवान्के शरीररूप महात्मा लक्ष्मणजीका मायाकरके रचीहुई शक्तिसे कुछभी नहीं होसक्ता ॥ ९ ॥ तथापि मनुष्यभावको प्राप्त हुए लक्ष्मणजी मनुष्यस्वभावकेही अनुसार मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े रावण उनको उठानेके निमित्त आया ॥ १० ॥ परन्तु अपने हाथोंसे हिलाभी न सका और बड़े आश्चर्य्यमें होगया, सो ठीकही है, क्योंकि सम्पूर्ण जगत्के सारभूत परमेश्वर जगदाधार विष्णुभगवान्को एक जरासा राक्षस किसप्रकार हिलासक्ता है ? पवनकुमार रावणको लक्ष्मणजीके उठानेकी इच्छा करताहुआ देखकर बड़े क्रुद्ध हुए, और जाकर रावणकी छातीपर

सा शक्तिर्लक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्तितः ॥ यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्ति हि ॥८॥ तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ मायाशक्त्या भवेत्किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः ॥ ९ ॥ तथापि मानुषं भावमापन्नस्तदनुव्रतः ॥ मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः ॥ १० ॥ हस्तैस्तोलयितुं शक्तो न बभूवातिविस्मितः ॥ सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम् ॥ ११ ॥ कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः ॥ ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः ॥ १२ ॥ आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि ॥ १३ ॥ आस्यैश्च नेत्रश्रवणैरुद्धमन् रुधिरं बहु ॥ विघूर्णमाननयनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १४ ॥ अथ लक्ष्मणमादाय हनूमान् रावणार्दितम् ॥ आनयद्रामसामीप्यं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥ १५ ॥ हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वरः ॥ लघुत्वमगमद्देवो गुरूणां गुरुरप्यजः ॥ १६ ॥

वज्रके समान एक घूंसा मारा, तिस घूंसेके लगनेसे रावण घुटुओंके बल पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ उससमय रावणके सम्पूर्ण मुख, नेत्र और कानोंमेंसे बहुतसा रुधिर निकलनेलगा, और नेत्रोंको चलायमान करताहुआ रावण जैसे तैसे अपने रथमें जाकर बैठगया ॥ १४ ॥ तब पवनकुमार रावणकी शक्तिसे पीडाको प्राप्त हुए लक्ष्मणजीको अपनी भुजाओंसे उठाकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप लेआये ॥ १५ ॥ उससमय अजन्मा, सर्वशक्तिमान्, दिव्यरूप, परमेश्वर लक्ष्मणजी यद्यपि भारीसे भारी थे, परन्तु पवनकुमारकी मित्रता और भक्तिके कारण हलके होगये ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह शक्तिभी लक्ष्मणजीको नारायणके अंशसे उत्पन्न हुआ जानकर त्यागकर फिर रावणके रथहीमें जाकर प्राप्त होगई ॥ १७ ॥ इतनेमें रावणभी धीरे चेतन हुआ तबतो धनुष बाण उठाया, और क्रोधकरके श्रीरामचन्द्रजीके संमुख दौड़ा. त्रिलोकीनाथ श्रीरामचन्द्रजीभी क्रोधकरके आतेहुए रावणको देखकर महाबली हनुमान्‌के ऊपर चढ़े, और रावणको रथमें बैठाहुआ देखकर रावणके संमुखको दौडगये ॥१८॥१९॥ और रघुनाथजीने बिजलीके गिरनेके समान महाभयंकर और परमकठोर धनुषकी प्रत्यंचाका शब्द किया, तथा गंभीरवाणीसे राक्षसपति रावणके प्रति कहनेलगे ॥ २० ॥ कि अरे नीच ! राक्षस ! अब मेरे सामने खड़ा रह, मेरे आगेसे कहाँ जायगा, मैं सर्वत्र समानरूपसे रहताहूँ, इसकारण यहाँसे चलागया तोभी मुझसे छुपा नहीं रहैगा,

सा शक्तिरपि तं त्यक्त्वा ज्ञात्वा नारायणांशजम् ॥ रावणस्य रथं प्रागाद्रावणोऽपि शनैस्ततः ॥ १७ ॥ संज्ञामवाप्य जग्राह बाणासनमथो रुषा ॥ राममेवाभिदुद्राव दृष्ट्वा रामोऽपि तं क्रुधा ॥ १८ ॥ आरुह्य जगतां नाथो हनूमन्तं महाबलम् ॥ रथस्थं रावणं दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघवः ॥ १९ ॥ ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ रामो गम्भीरया वाचा राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥ २० ॥ राक्षसाधम तिष्ठाद्य क्व गमिष्यसि मे पुरः ॥ कृत्वापराधमेवं मे सर्वत्र समदर्शिनः ॥ २१ ॥ येन बाणेन निहता राक्षसास्ते जनालये ॥ तेनैव त्वां हनिष्यामि तिष्ठाद्य मम गोचरे ॥ २२ ॥ श्रीरामस्य वचः श्रुत्वा रावणो मारुतात्मजम् ॥ वहन्तं राघवं सङ्ख्ये शरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥ २३ ॥ हतस्यापि शरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोः स्वतेजसा ॥ व्यवर्धत पुनस्तेजो ननर्द च महाकपिः ॥ २४ ॥

और यद्यपि मैं समदर्शी हूँ अर्थात् संसारके प्राणीमात्रमें समानदृष्टि रखताहूँ, तथापि मेरा अपराध करके तेरा जीवन दुर्लभ है, क्योंकि मेरा समदर्शीपना यही है कि कर्म्मोंके अनुसार फल देताहूँ, इसीकारण मैं सदा दुष्टोंका नाश और साधुओंकी रक्षा करताहूँ,और तेरी दुष्टता संसारमें प्रसिद्धही है ॥२१॥ सो अरे रावण ! जिस बाणोंसे जनस्थानमें तेरे खर दूषणादि राक्षसोंका नाश कियाथा, उसही बाणसे अब तेराभी प्राणान्त करूँगा, आज मेरे आगे खडा रह॥ २२॥ रणभूमिमें इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेको सुनकर रावणने श्रीरघुनाथजीको उठानेवाले पवनकुमारको अति तीखे बाणोंसे ताडना दी॥ २३॥तीक्ष्णबाणोंक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रके विंधे हुएभी हनुमान्‌जी अपने रौद्र तेजको स्मरण करके अति बढ़ेहुए तेजयुक्त होकर अत्यन्त गरजने लगे ॥ २४ ॥ तब रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको बाणोंसे विंधाहुआ देखकर प्रलयकालके रुद्रके समान अति क्रोधको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ और शीघ्रही रावणके घोडे, रथ, ध्वजा, सारथी, शस्त्रोंका समूह, धनुष, छत्र और पताका इन सबको तीखे बाणोंसे काटडाला ॥ २६ ॥ फिर रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अपने वज्रके समान महाबाणसे शी[illegible] रावणके ऊपर ऐसा प्रहार किया जैसे इन्द्र पर्वतके ऊपर वज्रका प्रहार करता है ॥ २७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे ताड़न कियाहुआ वीर रावण चलायमान होगया और मूर्च्छितभी होगया; और रघुनाथजीको देखकर रावणके हाथमेंसे धनुष छूटकर गिरपडा ॥ २८ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने अर्धचन्द्राकार

ततो दृष्ट्वा हनूमन्तं सव्रणं रघुसत्तमः ॥ क्रोधमाहारयामास कालरुद्र इवापरः ॥ २५ ॥ साश्वं रथं ध्वजं सूतं शस्त्रौघं धनुरञ्जसा ॥ छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकैः ॥ २६ ॥ ततो महाशरेणाशु रावणं रघुसत्तमः ॥ विव्याध वज्रकल्पेन पाकारिरिव पर्वतम् ॥ २७ ॥ रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च ॥ हस्तान्निपतितश्चापस्तं समीक्ष्य रघूत्तमः ॥ २८ ॥ अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम् ॥ अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडितः ॥ २९ ॥ प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलं मम ॥ रामबाणेन संविद्धो हतदर्पोऽथ रावणः ॥ ३० ॥ महत्या लज्जया युक्तो लङ्कां प्राविशदातुरः ॥ रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि ॥ ३१ ॥ मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह ॥ ततः प्राह हनूमन्तं वत्स जीवय लक्ष्मणम् ॥ ३२ ॥ महौषधीः समानीय पूर्ववद्वानरानपि ॥ तथेति राघवेणोक्तो जगामाशु महाकपिः ॥ ३३ ॥

बाणसे रावणका सूर्य्यके समान प्रकाशवान् किरीट काटकर गिरादिया, और महाराज कहने लगे कि हे रावण ! अब मैं तुझे आज्ञा देताहूँ, जा इस समय यहाँसे चलाजा, क्योंकि बाणके प्रहारसे पीडित हो रहा है ॥ २९ ॥ लङ्कामें जाकर आराम करके कल आनकर फिर मेरे बलको देखना, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके अनन्तर नष्ट होगया है अभिमान जिसका ऐसा श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे विंधाहुआ रावण शीघ्रही लज्जित हो लङ्कापुरीमें चलागया, इधर श्रीरामचन्द्रजीभी लक्ष्मणजीको मूर्छित होकर पृथ्वीपर पडाहुआ देखकर मनुष्य स्वभावको स्वीकार करके शोक करनेलगे, और हनुमान्‌जीसे बोले कि हे पुत्र ! लक्ष्मणको जीवित करो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तिस द्रोणगिरि फिर पहलेके समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संजीविनी औषधिको लाकर लक्ष्मणको और इन वानरोंको भी जीवित करो, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको स्वीकार करके पवनकुमार तत्कालही चलेगये ॥ ३३ ॥ सो हनुमान्जी पवनके समान बेगसे क्षणमात्रमेंही समुद्रको उल्लंघन करके आगे चले, इतनेहीमें दूतोंने जाकर रावणसे कहा ॥ ३४ ॥ कि हे राजन्! रामचन्द्रजीने हनुमान्को क्षीरसमुद्रके पार भेजा है, वह लक्ष्मणको जीवित करनेके निमित्त महौषधि (संजीविनी) लेनेको गया ॥ ३५ ॥ इसप्रकार दूतोंके वचनोंको सुनकर रावण चिन्तासे व्याकुल होगया, और रात्रिके समयमें इकलाही क्षणभरमें कालनेमिराक्षसके स्थानको गया ॥ ३६ ॥ कालनेमि रावणको देखकर आश्चर्य्यमें होगया, और अर्घ्यादिसे पूजन करके रावणके सन्मुख खड़ा हुआ,

हनूमान्वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोदधिम् ॥ एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन् ॥ ३४ ॥ रामेण प्रेषितो देव हनूमान् क्षीरसागरम् ॥ गतो नेतुं लक्ष्मणस्य जीवनार्थं महौषधीः ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा तच्चारवचनं राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥ जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात् ॥ ३६ ॥ गृहागतं समालोक्य रावणं विस्मयान्वितः ॥ कालनेमिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्भयह्वलः ॥ अर्घ्यादिकं ततः कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ ३७ ॥ किं ते करोमि राजेन्द्र किमागमनकारणम् ॥ कालनेमिमुवाचेदं रावणो दुःखपीडितः ॥ ३८ ॥ ममापि कालवशतः कष्टमेतदुपस्थितम् ॥ मया शक्त्या हतो वीरो लक्ष्मणः पतितो भुवि ॥ ३९ ॥ तं जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गतः ॥ यथा तस्य भवेद्विघ्नं तथा कुरु महामते ॥ ४० ॥ मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम् ॥ कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वेहि मन्दिरे ॥ ४१ ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम् ॥ रावणेश वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वतः ॥ ४२ ॥

भयभीतहो हाथ जोड़कर इसप्रकार कहने लगा कि हे राजेन्द्र ! इससमय आपके आनेका क्या कारण है ? और मुझे क्या आज्ञा है ? जिसको मैं पूर्ण करूँ. इसप्रकार कालनेमिके कहनेपर दुःखसे पीडित रावण यह बोला ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कि हे मित्र ! कालकी विकराल गतिसे मुझेभी वह दुःख आनकर प्राप्त होगया है कि मैंने मेरी शक्ति लगनेसे वीर लक्ष्मण पृथ्वीपर गिरपड़ाथा, सो अब उसको जीवित करनेके निमित्त हनुमान् औषधि लेनेगया है, सो हे महामते ! जिसप्रकार हो सकै तुम उस कार्य्यमें विघ्न करो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मायासे मुनिका वेष धारण करके उस पवनकुमार हनुमान्को मोहितकर. अभिप्राय यह है कि जिसप्रकार औषधि लानेमें हनुमान्को देरी लगै सो कार्य्य करो ॥ ४१ ॥ इसप्रकार रावणका वचन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनकर उससे कालनेमि कहनेलगा कि हे प्रभो रावण ! अब तुम मेरा वचन सुनो और उसका तत्त्व विचारो ॥ ४२ ॥ और मैं तो आपकी प्रसन्नताका कार्य्य करूँगा ही, मेरे प्राण रहैं चाहें जायँ, हे रावण ! पहिले वनमें जो दशा मृगरूपधारी मारीचकी हुई थी, निःसन्देह वही दशा मेरी भी होयगी, तुम्हारे पुत्र पौत्र बान्धव तथा और जो कुछ राक्षस थे वह प्रायः सबही मारेगये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हे रावण ! यदि सम्पूर्ण राक्षसकुल मरवाकर तुम जीवित भी रहे तो तुम्हारे जीवनका क्या फल है, और इस राज्य करके, सीताकरके, तथा तुम्हारे जड देहकरके फिर क्या प्रयोजन निकलेगा ॥ ४५ ॥ इसकारण हे रावण ! अब तुम सीता तो श्रीरामचन्द्रजीको दे दो और लङ्काका राज्य बिभीषणको देकर, हे महाबाहो ! जहाँ मुनियोंके समूह निवास

प्रियं ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम् ॥ मारीचस्य यथारण्ये पुराभून्मृगरूपिणः ॥ ४३ ॥ तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन ॥ हताः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते ॥ ४४ ॥ घातयित्वाऽसुरकुलं जीवितेनापि किं तव ॥ राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना ॥ ४५ ॥ सीतां प्रयच्छ रामाय राज्यं देहि बिभीषणे ॥ वनं याहि महाबाहो रम्यं मुनिगणाश्रयम् ॥ ४६ ॥ स्नात्वा प्रातः शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः ॥ तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रहः ॥ ४७ ॥ विसृज्य सर्वतः सङ्गमितरान्विषयान्बहिः ॥ बहिःप्रवृत्ताक्षगणं शनैः प्रत्यक् प्रवाहय ॥ ४८ ॥ प्रकृतेर्भिन्नमात्मानं विचारय सदानघ ॥ चराचरं जगत्कृत्स्नं देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥ ४९ ॥ आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं दृश्यते श्रूयते च यत् ॥ सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥ ५० ॥ सर्गस्थितिविनाशानां जगद्वृक्षस्य कारणम् ॥ लोहितश्वेतकृष्णादि प्रजाः सृजति सर्वदा ॥ ५१ ॥

करते हैं ऐसे बनमें चलेजाओ ॥ ४६ ॥ तहाँ प्रातःकालके समय पवित्र जलमें स्नान करके और तदनन्तर संध्या आदि क्रियायें करके फिर एकान्तमें सुखासनको अंगीकार करो ॥ ४७ ॥ और बाहरके सम्पूर्ण विषयोंका संग त्यागकर फिर बाहरके विषयोंमें प्रवृत्त होनेवाले इन्द्रियोंके समूहको धीरे धीरे परमात्माके विषे लगाओ ॥ ४८ ॥ हे अनघ ! प्रकृतिसे भिन्न आत्माको विचार. स्थावर जङ्गम सम्पूर्ण संसार और बुद्धि इन्द्रिय आदि ब्रह्मासे लेकर स्तम्भपर्य्यन्त जो कुछ दीखता है, और श्रवण करनेमें आता है, सो सब प्रकृति कहाती है, और यही माया नामसे कहा जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ संसाररूपी वृक्षकी सृष्टि स्थिति और प्रलयका कारण यही माया है, यही प्रकृति सदा लोहित कहिये तमोगुण प्रधान, श्वेत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहिये रजोगुणप्रधान और कृष्ण कहिये तमोगुणप्रधान प्रजाओंको उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ हे राजन्! यही प्रकृति कामक्रोधादि रूप पुत्रोंको, और हिंसा तृष्णा आदि कन्याओंको उत्पन्न करती है, और यही सर्वदा दिव्यस्वरूप आत्माको अपने गुणोंसे मोहित करती है, अर्थात् प्राणी जो अपने वास्तविक स्वरूपको भूलकर 'अहं, मम' इत्यादि अध्यासयुक्त होय है, इसका कारणभी प्रकृति है ॥ ५२ ॥ यह प्रकृतिही कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि अपने गुणोंको आत्माके विषे आरोपण करनेके द्वारा आत्माको अपनी वशमें करके सदा उसके साथ क्रीड़ा करती है ॥ ५३ ॥ शुद्ध आत्माभी जिस प्रकृतिसे युक्त होकर अपने स्वरूपको भूलकर मायाके गुणोंसे मोहित होताहुआ, बाहरके विषयोंको देखताहुआसा प्रतीत होने

कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिंसातृष्णादिकन्यकाः ॥ मोहयत्यनिशं देवमात्मानं स्वैर्गुणैर्विभुम् ॥ ५२ ॥ कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे ॥ आरोप्य स्ववशं कृत्वा तेन क्रीडति सर्वदा ॥ ५३ ॥ शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्तः पश्यतीव सदा बहिः ॥ विस्मृत्य च स्वमात्मानं मायागुणविमोहितः ॥ ५४ ॥ यदा सद्गुरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा ॥ निवृत्तदृष्टिरात्मानं पश्यत्येव सदा स्फुटम् ॥ ५५ ॥ जीवन्मुक्तः सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणैः ॥ त्वमप्येवं सदात्मानं विचार्य नियतेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ प्रकृतेरन्यमात्मानं ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि ॥ ध्यातुं यद्यसमर्थोऽसि सगुणं देवमाश्रय ॥ ५७ ॥ हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते ॥ मृदुश्लक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् ॥ ५८ ॥

लगता है ॥ ५४ ॥ और वह मायासे मोहित प्राणी जब ज्ञानवान् परम दयालु सत्गुरुके द्वारा ज्ञानको प्राप्त होता है; तब बाह्यविषयोंमेंसे दृष्टिको हटाकर सदा अपने निर्मल आत्मस्वरूपको देखता है ॥ ५५ ॥ फिर वह आत्माका ध्यान करताहुआ जीवन्मुक्त प्राणी सदाकाल मायाके गुणोंसे मुक्त होजाता है, हे राजन्! तुमभी इसीप्रकार सदा जितेन्द्रिय होकर और आत्माका विचार करके आत्माको मायासे अलग जानकर मुक्त होजाओगे, और यदि निर्गुण परमात्माका ध्यान करनेकी तुम्हारी शक्ति नहीं होय तो सगुण परमात्माका सेवन करो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हृदयरूपी कमलकी कलीके विषे मणियोंकरके जड़ेहुए कोमल और अतिचिकने सुवर्णके सिंहासनपर जानकीसहित वीरासनसे बैठेहुए, बिशालनेत्र,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विजलीके पुंजकी समान पीतपटधारी, मुकुट, हार, बाजूबन्द और कौस्तुभ आदि मणियोंको धारण कियेहुए, पावटे—खंडुवोंकरके शोभायमान, वनमालाधारी, और द्विभुज धनुर्धारी लक्ष्मणजीकरके सेवित, सदा हृदयके विषे स्थित रहनेवाले, परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको परमभक्तिपूर्वक ध्यान करके पुरुष निःसन्देह संसारबन्धनसे मुक्त होजाता है, सो तुमभी उनही श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करो ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ और हे रावण ! फिर एकाग्रचित्त होकर सदा श्रीरामचन्द्रजीके भक्तोंके द्वारा उनके पवित्र चरित्रको श्रवण करो, इसप्रकार वर्त्ताव करनेसे पूर्वजन्मोंमें कियेहुए बडे पापभी क्षणमात्रमेंही इसप्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे कि अग्निसे रुईके ढेर ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! वैरभावको त्यागकर सर्वव्यापी, अद्वितीय, नामरूप

वीरासनं विशालाक्षं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥ किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ नूपुरैः कटकैर्भातं तथैव वनमालया ॥ लक्ष्मणेन धनुर्द्धन्द्धकरेण परिसेवितम् ॥ ६० ॥ एवं ध्यात्वा सदात्मानं रामं सर्वहृदि स्थितम् ॥ भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥ शृणु वै चरितं तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधीः ॥ एवं चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ॥ क्षणादेव विनश्यन्ति यथाऽग्नेस्तूलराशयः ॥ ६२ ॥ भजस्व रामं परिपूर्णमेकं विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः ॥ हृदा सदा भावितभावरूपमनामरूपं पुरुषं पुराणम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम् ॥ जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत् ॥ १ ॥ निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम् ॥ परैः किञ्चिद्गृहीत्वा त्वं भाषसे रामकिङ्करः ॥ २ ॥

रहित, पुराणपुरुष श्रीरामचन्द्रजीको अपनी भक्तिसे हृदयके विषे सदाकाल ध्यान करो, और उनकाही भजन करो ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! रावण इसप्रकार अमृतके तुल्य कालनेमिके वचनको सुन क्रोधसे लाल २ नेत्र करके ऐसा भभक उठा जैसे अग्निसे लपायाहुआ घृत जलकी बूँदोंके पडनेसे प्रज्वलित होजाता है ॥ १ ॥ और कहने लगा कि अरे दुष्टात्मा मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, कहै तो अभी तेरा प्राणान्त कर दूँ, प्रतीत होता है कि शत्रुओंने तुझे कुछ धन आदि दे दिया है, जिससे रामका किंकर होताहुआसा इसप्रकार बक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाद कर रहा है ॥ २ ॥ तब कालनेमि यह कहने लगा कि हे राजन् ! क्रोध क्यों करते हो, यदि आपको मेरा कहना अच्छा नहीं लगता है तो मैं जाकर आपके कहनेके अनुसार ही कार्य्य करताहूँ ॥३॥ कालनेमि नामक महाराक्षस इसप्रकार कहकर शीघ्रही तहाँसे चलदिया, और हनुमान्के कार्य्यमें विघ्न करनेके लिये रावणने जो कहाथा, सो जाकर हिमालयके समीपमें एक तपोवन रचा, वह दुष्ट कालनेमि राक्षस तिस अपने रचे हुए तपोवनमें मुनिका वेष धारण करके शिष्योंसहित, हनुमान्जीके जानेके मार्गमें स्थित होगया, सो इतनेहीमें महात्मा हनुममान्जीने तहाँ आकर वह रमणीय आश्रम देखा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब तो श्रीमान् पवनकुमार मनमें विचार करने लगे, कि यह सुन्दर मुनियोंका तपोवन पहिले तो मैंने नहीं

कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रुधा ॥ न रोचते मे वचसं यदि गत्वा करोमि तत् ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं कालनेमिर्महासुरः ॥ नोदितो रावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥ स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥ तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः ॥ ५ ॥ गच्छतो मार्गमासाद्य वायुसूनोर्महात्मनः ॥ ततो गत्वा ददर्शाथ हनूमानाश्रमं शुभम् ॥६॥ चिन्तयामास मनसा श्रीमान्पवननन्दनः ॥ पुरा न दृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम् ॥ ७ ॥ मार्गो विभ्रंशितो वा मे भ्रमो वा चित्तसम्भवः ॥ यद्धाविश्याश्रमपदं दृष्ट्वा मुनिमशेषतः ॥ ८ ॥ पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सर्वतो योजनायतम् ॥ ९ ॥ आश्रमं कदलीशालखर्जूरपनसादिभिः ॥ समावृतं पक्वफलैर्नम्रशाखैश्च पादपैः ॥१०॥ वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मललक्षणम् ॥ तस्मिन्महाश्रमे रम्ये कालनेमिः स राक्षसः ॥ ११ ॥ इन्द्रयोगं समास्थाय चकार शिवपूजनम् ॥ हनूमानभिवाद्याह गौरवेण महासुरम् ॥ १२ ॥

देखाथा, ॥ ७ ॥ सो मैं मार्गको भूलगया, या मेरे चित्तको भ्रम होरहा है, खैर जो हो सो हो इस आश्रममें जाके सम्पूर्ण मुनियोंका दर्शन करके और जलपान करके फिर उस अत्युत्तम द्रोणाचल पर्वतको जाऊंगा इसप्रकार कहकर हनुमान्जी उस आश्रममें घुसे, तो क्या देखते हैं कि वह आश्रम सब ओरसे एक योजन चौडा है, और पकेहुए फलोंसे झुकी हुई है शाखा जिनकी ऐसे केला, साल, खजूर और पनस आदिके वृक्ष चारों और गछेहुए हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ और वैरभावको छोडकर बनके जीव विचर रहे हैं, ऐसा शुद्ध और निर्म्मलस्वरूप जो वह रमणीय आश्रम तिसमें वह कालनेमि राक्षस कपट योगको साधकर शिवपूजन कर रहाथा, हनुमान्जी तिस कालनेमि राक्षसको बडे गौरवके सोथ प्रणाम करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोले ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि हे भगवन् ! मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ, और मेरा नाम हनुमान् है, श्रीरामचन्द्रजीके बड़े भारी कार्यके निमित्त क्षीरसमुद्रको जानेको उद्यत हुआ हूँ ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे पिपासा पीडित कर रही है, सो मुझे बताईयें, कि जल कहाँ है ? हे मुनीश्वर ! जल होय तो मैं यथेष्ट पान करूँ ॥ १४ ॥ इसप्रकार पवनकुमारके वाक्यको सुनकर कालनेमि कहनेलगा कि हे पवनकुमार ! यह जो मेरे कमंडलुमें जल है तिसको तुम पियो ॥ १५ ॥ और फिर इन पकेहुए फलोंको भोजन करके यहाँ सुखसे निवास करो, और निद्रा लो, शीघ्रता मत करो ॥ १६ ॥ भूत, भविष्यत और वर्त्तमान सब कालकी वार्त्ताको मैं अपने तपके प्रभावसे जानता हूँ, इससमय रामचन्द्रजीके देखनेमात्रसे ही लक्ष्मण-

भगवन् रामदूतोऽहं हनूमान्नाम नामतः ॥ रामकार्येण महता क्षीराब्धिं गन्तुमुद्यतः ॥ १३ ॥ तृषा मां बाधते ब्रह्मन्नुदकं कुत्र विद्यते ॥ यथेच्छं पातुमिच्छामि कथ्यतां मे मुनीश्वर ॥१४॥ तच्छ्रुत्वा मारुतेर्वाक्यं कालनेमिस्तमब्रवीत् ॥ कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि ॥ १५ ॥ भुङ्क्ष्व चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम् ॥ निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा ॥ १६ ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम् ॥ उत्थितो लक्ष्मणः सर्वे वानरा रामवीक्षिताः ॥१७॥ तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे ॥ न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम् ॥ १८ ॥ तथेत्याज्ञापयामास बटुं मायाविकल्पितम् ॥ बटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ॥ १९ ॥ निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वागच्छ ममान्तिकम् ॥ उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः ॥२०॥ तथेति दर्शितं शीघ्रं बटुना सलिलाशयम् ॥ प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः ॥ २१ ॥

जी और सम्पूर्ण वानर उठखड़े हुए हैं ॥ १७ ॥ इस वार्ताको सुनकर हनुमान्जी कहने लगे, कि इस कमण्डलुमात्रसे मेरी प्यास शान्ति नहीं होयगी, इसकारण बहुतसा जल बताइये ॥ १८ ॥ हनुमान्जीके इस वचनको सुनकर वह कालनेमि राक्षस मायासे रचेहुए शिष्यके प्रति कहनेलगा, कि हे बटो ! पवनकुमारको वह बहुत चौंड़ा सरोवर दिखादो ॥ १९ ॥ और हनुमान्जीसे बोला, कि हे पवनकुमार ! तुम नेत्रोंको मींचकर यथेष्ट जलपान करके मेरे समीप आओ, तब मैं मंत्रका उपदेश करूँगा; जिसके प्रभावसे तुम शीघ्रही औषधियोंको देखलोगे ॥ २० ॥ हनुमान्जी 'तथास्तु' कहकर उस ब्रह्मचारी शिष्यके साथ गये, और उसने शीघ्रही सरोवर दिखादिया, हनुमान्जी उसमें घुसके नेत्र मूंदकर जलपान किया ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतनेहीमें बड़ी मायाके जाननेवाली घोररूप मछली बडे वेगसे आकर पवनकुमारको ग्रसने लगी ॥ २२ ॥ तब हनुमान्‌जीने ग्रसतीहुई उस मछलीको क्रोधसे, पकड़कर दोनों हाथोंसे उसका मुख चीरडाला, जिससे वह उसी समय मरणको प्राप्त होगइ ॥ २३ ॥ इतनेहीमें क्या देखते हैं कि आकाशमें एक दिव्यरूपवती धान्यमाली नामसे प्रसिद्ध स्त्री हनुमान्‌जीसे कहनेलगी ॥ २४ ॥ कि हे पवनकुमार ! आपके अनुग्रहसे मैं छूटगई, मुझे पूर्वकालमें अप्सरायोनिके विषे एक मुनिने किसीकारणसे शाप दियाथा, कि जा तू मछली होजा ॥ २५ ॥ और आपने जो आश्रममें कालनेमिनामक महाराक्षसको मुनिवेषमें देखा है, वह रावणका भेजाहुआ तुम्हारे मार्गमें विघ्न करनेके निमित्त आया है ॥ २६ ॥ यह वास्तवमें मुनि

ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् ॥ अग्रसत्तं महावेगान्मारुतिं घोररूपिणी ॥ २२ ॥ ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा ॥ दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह ॥ २३ ॥ ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपवराङ्गना ॥ धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥ त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर ॥ शप्ताहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥ २५ ॥ आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ॥ रावणप्रहितो मार्गे विघ्नं कर्तुं तवानघ ॥ २६ ॥ मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः ॥ जहि दुष्टं गच्छ शीघ्रं द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥२७॥ गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धूतकल्मषा ॥ इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्यथाश्रमम् ॥२८॥ आगतं तं समालोक्य कालनेमिरभाषत ॥ किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम ॥ २९ ॥ गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम् ॥ इत्युक्तो हनुमान्मुष्टिं दृढं बद्ध्वाह राक्षसम् ॥ ३० ॥ गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम् ॥ विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमिर्महासुरः ॥ ३१ ॥

नहीं हैं, किन्तु मुनिके वेषमें ब्राह्मणोंको नष्ट करनेवाला राक्षस है, तुम इस दुष्टको मारडालो, और शीघ्रही द्रोणाचल पर्वतको चले जाओ ॥ २७ ॥ और मैं तुम्हारे स्पर्शसे पापरहित होकर ब्रह्मलोकको जातीहूँ इस प्रकार कहकर वह धान्यमाली अप्सरा स्वर्गलोकको चलीगई, और हनुमान्‌जीभी आश्रममें चले आये ॥ २८ ॥ वह मुनि वेषधारी कालनेमि राक्षस इनको आयाहुआ देखकर कहने लगा, कि हे पवनकुमार ! तुम्हें इतना विलम्ब किसकारणसे हुआ ॥ २९ ॥ अब तुम मुझसे मन्त्रका उपदेश लो, और मुझे गुरुदक्षिणा दो; इसप्रकार कालनेमिके कहनेपर हनुमान्‌जी एक बड़ा दृढ़ घूंसा बनाकर उस राक्षससे कहने लगे ॥ ३० ॥ कि यह ले दक्षिणा ! इसप्रकार कहकर हनुमान्‌जीने उसके घूंसा मारा, तब तो वह कालनेमि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राक्षस मुनिके वेषको त्यागकर हनुमान्जीके साथ युद्ध करनेलगा, उस कालनेमिने अनेक प्रकारकी माया करी, परन्तु हनुमान्जीभी सम्पूर्ण जगत्की आदिकारण महामायावी जिनके वशीभूत है, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके दूत और माया करनेवाले राक्षसोंके परम शत्रु थे, सो उसके मस्तकमें एक घूंसा मारा, जिससे उस कालनेमिका शिर फटकर मरण होगया, तब पवनकुमारने क्षीरसमुद्रके तटपर द्रोणाचलपर्वतपर औषधि नहीं देखी, तब तो उस द्रोणाचल पर्वतको ही शीघ्रतासे उखाडकर हाथमें लेलिया, और वायुकी समान वेगसे श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाकर हनुमान्जी कहने लगे, कि हे रघुनाथजी ! मैं उस महापर्वतको लेआया, अब जो उचित होय सो करिये, हे देवदेव ! अब विलम्ब करना

युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानतः ॥ महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिनां रिपुः ॥३२॥ जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार सः॥ ततः क्षीरनिधिं गत्वा दृष्ट्वा द्रोणं महागिरिम् ॥ ३३ ॥ अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः ॥ गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम् ॥ ३४ ॥ उवाच हनुमान् राममानीतोऽयं महागिरिः ॥ यद्युक्तं कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते ॥३५॥ श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामः सन्तुष्टमानसः ॥ गृहीत्वा चौषधीः शीघ्रं सुषेणेन महामतिः ॥ ३६ ॥ चिकित्सां कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने ॥ ततः सुप्तोत्थित इव बुद्ध्वा प्रोवाच लक्ष्मणः ॥ ३७ ॥ तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन ॥ इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघवः ॥ ३८ ॥ मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे ॥ निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वा वानरैः सार्धं सुग्रीवेण समन्वितः ॥ बिभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थितः ॥ ४० ॥

योग्य नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इसप्रकार पवनकुमारके कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मनमें परम प्रसन्न हुए, और शीघ्रही उस द्रोणगिरिके ऊपरसे औषधि लेकर परम प्रवीण श्रीरामचन्द्रजीने सुषेणके द्वारा महात्मा लक्ष्मणजीकी चिकित्सा करवाई, तबतो शयन करनेके अनन्तर उठेहुएसे लक्ष्मणजी कहने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अरे रावण ! खडा रह ! खडा रह ! कहाँ जायगा, अभी तुझे मारताहूँ, लक्ष्मणजीको इसप्रकार कहता हुआ देखकर श्रीरामचन्द्रजीने मस्तकमें चुम्बन किया ॥ ३८ ॥ और पवनकुमारसे कहनेलगे कि हे पुत्र ! आज तुम्हारेही अनुग्रहसे मैने अपने भ्राता लक्ष्मणको नीरोग देखा है ॥ ३९॥ इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण वानरों और सुग्रीव सहित, बिभीषणकी बताईहुई रीतिके अनुसारही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युद्ध करनेके निमित्त लङ्कापुरीको गए (क्योंकि बिभीषणको लङ्कापुरीका सब भेद मालूम था) ॥ ४० ॥ सम्पूर्ण वानर युद्ध करनेकी इच्छासे पत्थर वृक्ष और पर्वतोंके शिखर लेलेकर रणभूमिमें युद्ध करनेको उद्यत होकर आगए ॥ ४१ ॥ इधर रावण श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंकरके घायल हुआ, जैसे सिंहके प्रहारसे हाथी और गरुड़के प्रहारसे सर्प पीड़ित होता है ॥ ४२ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीकरके तिरस्कारको प्राप्तहुआ राजा रावण सिंहासन पर बैठके राक्षसोंसे इसप्रकार कहने लगा ॥ ४३ ॥ कि हे राक्षसों ! पूर्वकालमें ब्रह्माने मनुष्योंके द्वाराही मेरी मृत्यु कहीथी, सो भूतलपर कोई मनुष्य तो मेरे मारनेको समर्थ है नहीं ॥ ४४ ॥ इसकारण निःसन्देह साक्षात् नारायण मनुष्यका अवतार धारण करके दशरथकुमार श्रीराम-

पाषाणैः पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानराः ॥ युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययुः सर्वे युयुत्सवः ॥ ४१ ॥ रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुरः ॥ मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ॥ ४२ ॥ अभिभूतोऽगमद्राजा राघवेण महात्मना ॥ सिंहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥४३॥ मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्वं पितामहः ॥ मानुषो हि न मां हन्तुं शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन ॥ ४४ ॥ ततो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः ॥ रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हन्तुं समुपस्थितः ॥ ४५ ॥ अनरण्येन यत्पूर्वं शप्तोऽहं राक्षसेश्वराः ॥ उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः ॥ ४६ ॥ तेन त्वं पुत्रपौत्रैश्च बान्धवैश्च समन्वितः ॥ हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मां दिवं गतः ॥४७॥ स एव रामः सञ्जातो मदर्थे मां हनिष्यति ॥ कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावशं गतः ॥४८॥ तं विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम् ॥ इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्णं गत्वा तु यत्नतः ॥ ४९ ॥ विबोध्य कुम्भश्रवणं निन्यू रावणसन्निधिम् ॥ नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि संस्थितः ॥ ५० ॥

चन्द्ररूपसे मुझे मारनेको निमित्त आए हैं ॥ ४५ ॥ हे राक्षसों ! पूर्वकालमें अनरण्य राजाने मुझे शाप दिया था कि मेरे वंशमें साक्षात् सनातन परमात्मा अवतार धारण करैंगे ॥ ४६ ॥ तिनको द्वारा तुम निःसन्देह पुत्र पौत्र और बान्धवोंसहित मरणको प्राप्त होओगे, और इसप्रकार कहकर वह स्वर्गलोकको चलागया था ॥ ४७ ॥ सो वहही परमात्माने मेरे निमित्त श्रीरामचन्द्र अवतार धारण किया है, सो मेरा वध करैंगे, और मूढबुद्धि कुम्भकर्ण सदा निद्राकेही वशीभूत रहताहै ॥ ४८ ॥ सो तुम उस महापराक्रमीको जगाकर मेरे समीप लाओ, इसप्रकार रावणके कहनेपर वह बडे २ शरीरधारी राक्षस शीघ्रही जाकर और यत्नपूर्वक कुम्भकर्णको जगाकर रावणके समीप लिवालाए, वह आकर रावणको नमस्कार करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आसनके ऊपर बैठगया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राजा रावण भ्राता कुम्भकर्णसे दीनवाणी कहनेलगा, कि हे भ्रातः कुम्भकर्ण ! निद्राको छोडकर चेतन होओ, इससमय बड़ाभारी कष्ट आकर प्राप्त हुआ है ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रने पुत्र, पौत्र, बाँधव और बड़े २ शूर राक्षसोंको मारडाला, अब मुझे क्या करना उचित है ? मृत्युका समय आकर प्राप्त होगया ॥ ५२ ॥ यह दशरथका पुत्र बलवान् रामचन्द्र, सुग्रीव और सम्पूर्ण वानरोंकी सेना सहित समुद्रके इस पार उतर आया है, और हमारी जड़को काटरहा है ॥ ५३ ॥ जो मुख्य २ राक्षस थे वह सब संग्राममें वानरोंने मारडाले, और मैंने संग्राममें वानर एकभी मरताहुआ किसी समय नहीं देखा ॥ ५४ ॥ हे महाबाहो ! तुम्हे इसी प्रयोजनसे जगाया है कि तुम इन शत्रुओंका

तमाह रावणो राजा भ्रातरं दीनया गिरा॥कुम्भकर्ण निबोध त्वं महत्कष्टमुपस्थितम् ॥५१॥रामेण निहताः शूराः पुत्राः पौत्राश्च बान्धवाः॥ किं कर्तव्यमिदानीं मे मृत्युकाल उपस्थिते ॥ ५२ ॥ एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली ॥ समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥ ५३ ॥ ये राक्षसा मुख्यतमास्ते हता वानरैर्युधि ॥ वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥ ५४ ॥ नाशयस्व महाबाहो यदर्थं परिबोधितः ॥ भ्रातुरर्थे महासत्त्व कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥ ५५ ॥ श्रुत्वा तद्रावणेन्द्रस्य वचनं परिदेवितम् ॥ कुम्भकर्णो जहासोच्चैर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ पुरा मन्त्रविचारे ते गदितं यन्मया नृप ॥ तदद्य त्वामुपगतं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ५७ ॥ पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः ॥ सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे ॥५८॥ एकदाहं वने सानौ विशालायां स्थितो निशि ॥ दृष्टो मया मुनिः साक्षान्नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ५९ ॥ तमब्रुवं महाभाग कुतो गन्तासि मे वद ॥ इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मन्त्रणे स्थितः ॥ ६० ॥

नाश करो, हे महापराक्रमी अब मुझ भ्राताके निमित्त इस दुष्कर कर्म्मको करो ॥ ५५ ॥ इसप्रकार राक्षसपति रावणके विलापके वचनोंको सुनकर कुम्भकर्ण जोरसे हँसा, और यह वचन बोला ॥ ५६ ॥ कि हे राजन् ! पहिले सम्मति करनेके समय जो मैंने कहाथा, सो इस समय तुमको पापकर्म्मका फल प्राप्त होगया ॥ ५७ ॥ पहिलेही मैंने कहा था, कि रामचन्द्र साक्षात् परमात्मा नारायण हैं, और सीता योगमाया है, सो तुम समझानेपरभी नहीं समझते हो ॥५८॥ एक समय मैं वनमें पर्वतके शिखरपर विशाल शिलाके ऊपर रात्रिके समय बैठाहुआथा, सो मैंने साक्षात् दिव्यदर्शन नारदमुनिको देखा ॥५९॥ और उनसे कहा कि हे महाभाग ! इस समय कहाँसे आरहेहो सो मुझे बताओ, मेरे इसप्रकार कहनेपर नारदजी बोले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि मैं देवताओंकी गुप्तसम्मतिमें बैठाथा ॥ ६० ॥ उस गुप्तसम्मतिमें जो वृत्तान्त निश्चय हुआ है, सो मैं तुझसे कहता हूँ, उसको सुनो, और तत्व विचार लो, जब तुम दोनो भ्राताओंने देवताओंको अधिक पीड़ा दी, तब वह सब मिलकर विष्णुभगवान्के पास गए ॥६१॥ और वह देवदेव सर्वेश्वर विष्णुभगवान्की सावधानीसे भक्तिपूर्वक स्तुति करके कहनेलगे, कि हे देव ! यह रावण त्रिलोकीका कण्टक (दुःख देनेवाला) है, और इसका कोई भी बाल बांका नहीं करसक्ता है, आप इसका संहार करिये ॥ ६२ ॥ और पूर्व कालमें ब्रह्माजीने उसका मरण मनुष्यके हाथसे रचा है इसकारण आप मनुष्यका अवतार धारण करके, इस कण्टक रावणका संहार करिये ॥६३॥ सर्वशक्तिमान् सत्यसंकल्प विष्णुभगवान्ने उस देवताओंकी प्रार्थनाको

तत्रोत्पन्नमुदन्तं ते वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ युवाभ्यां पीडिता देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः ॥६१॥ ऊचुस्ते देवदेवेशं स्तुत्वा भक्त्या समाहिताः ॥ जहि रावणमक्षोभ्यं देव त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ ६२ ॥ मानुषेण मृतिस्तस्य कल्पिता ब्रह्मणा पुरा ॥ अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि रावणकण्टकम् ॥ ६३ ॥ तथेत्याह महाविष्णुः सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥ जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुतः ॥ ६४ ॥ स हनिष्यति वः सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनिः ॥ अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम्॥६५॥त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम् ॥ भजतो भक्तिभावेन प्रसीदति रघूत्तमः ॥ ६६ ॥ भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ॥ भक्तिहीनेन यत्किंचित्कृतं सर्वमसत्समम् ॥ ६७ ॥ अवताराः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः ॥ तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः ॥ ६८ ॥

स्वीकार कर लिया, सो वह देव अब रघुकुलमें परम प्रसिद्ध रामचन्द्रनामसे प्रकट हुए हैं ॥ ६४ ॥ और तुम सबको नष्ट करैंगे, इसप्रकार कहकर नारदमुनि चलेगए, इसकारण तुम श्रीरामचन्द्रजीको सनातन परब्रह्मरूप जानो ॥ ६५ ॥ वैरभावको त्याग दो, और मायाकरके मनुष्यरूपधारी भगवान्का भजन करो, भक्तिपूर्वक भजन करतेहुए पुरुषके ऊपर रघुनाथजी प्रसन्न होजाते हैं ॥ ६६ ॥ भक्तिही ज्ञानकी उत्पन्न करनेवाली है, और भक्तिही मोक्ष देनेवाली है, भक्तिहीन पुरुषका कियाहुआ सम्पूर्ण कर्म्म न करेकी समान होता है ॥ ६७ ॥ लीलाकरके अनेक प्रकारसे अनुकरण करनेवाले विष्णुभगवान्के हजारों अवतार हैं, तिन सब अवतारोंमें ज्ञानमय शान्तस्वरूप यह रामावतार सहस्रों अवतारोंकी तुल्य सबमें मुख्य है ॥ ६८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो प्रवीण पुरुष मन वाणी और कर्म्मकरके निरन्तर रात्रिदिन श्रीरामचन्द्रजीका भजन करते हैं, वह अनायासमेंही संसारसमुद्रको तरकर विष्णु-भगवान्‌के परमपद (वैकुण्ठ) को प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥ पृथ्वीतलमें शुद्धान्तःकरणवाले जो सत्‌पुरुष निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकाही ध्यान करते हैं, और तिन श्रीरामचन्द्रजीके ही चरित्रोंको पढ़ते हैं, वह पुरुषही संसारके भोगरूप बड़े २ सर्पोंके फाँसियोंसे छूटेहुए हैं अथवा वही पुरुष संसार है शरीर जिसका ऐसे कालरूपी सर्पसे मुक्त हैं, और अन्तमें सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके अनन्त सुखरूप पद (शुद्धब्रह्म) को प्राप्त होते हैं ॥७०॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसाऽनिशम् ॥ अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम् ॥ ६९ ॥ ये राममेव सततं भुवि शुद्धसत्त्वा ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्तः ॥ मुक्तास्त एव भवभोगमहाहिपाशैः सीतापतेः पदमनन्तसुखं प्रयान्ति ॥ ७० ॥ इति श्रीमद्-ध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा भ्रुकुटीविकटाननः ॥ दशग्रीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥ १ ॥ त्वमानीतो न मे ज्ञानबोधनाय सुबुद्धिमान् ॥ मया कृतं समीकृत्य युद्ध्यस्व यदि रोचते ॥ २ ॥ नोचेद्गच्छ सुषुप्त्यर्थं निद्रा त्वां बाधतेऽधुना ॥ रावणस्य वचः श्रुत्वा कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३ ॥ रुष्टोऽयमिति विज्ञाय तूर्णं युद्धाय निर्ययौ ॥ स लङ्घयित्वा प्राकारं महापर्वतसन्निभः ॥ ४ ॥ निर्ययौ नगरात्तूर्णं भीषयन्हरिसैनिकान् ॥ स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि पार्वति ! कुम्भकर्णके ऐसे कथनको सुनकर विकराल मुखपर भ्रुकुटी चढ़ाए हुए रावण क्रोधके कारण आसनपरसे उछलताहुआसा इसप्रकार कहनेलगा ॥ १ ॥ कि अरे बुद्धिमान् ! मैंने तुझे ज्ञानका उपदेश लेनेके निमित्त नहीं बुलवाया है, यदि अच्छा लगै तो मेरे कहनेको अंगीकार करके युद्ध करो ॥ २ ॥ नहीं तो सोनेके निमित्त जाओ, मालूम होताहै इससमय तुझै निद्रा बहुत पीडित कररही है ? महाबली कुम्भकर्णने इसप्रकार रावणके वचनको सुनकर जाना कि यह रुष्ट होगया, सो इसीसमय युद्ध करनेके निमित्त चलदिया, वह महापर्वतकी समान शरीरधारी कुम्भकर्ण परकोटेको लाँघकर शीघ्रही नगरसे बाहर निकल आया, और वानरोंकी सेनाको भय दिखाता हुआ बड़े

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जोरके शब्दसे गरजनेलगा, जिसमें समुद्रमेंसेभी प्रतिशब्द निकलने लगा ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ और दोनो हाथोंसे भक्षण करताहुआ वानरोंको पीड़ा देनेलगा, तबतौ पक्षधारी पर्वतकी समान अतिक्रोधयुक्त जो कुम्भकर्ण तिसको देखकर सम्पूर्ण इसप्रकार भागने लगे, जिसप्रकार काल अथवा यमको देखकर सम्पूर्ण प्राणी भागते हैं, और वह महाबली वानरोंकी सेनामें मुद्गर लेकर घूमने लगा ॥ ६ ॥ ७ ॥ वानरोंको पीड़ा देतेहुए, और चारोंओरसे जल्दी २ भक्षण करतेहुए, मुद्गरसे, हाथोंसे, पैरोंसे, तथा औरभी अनेक प्रकारसे वानरोंको नष्ट करतेहुए कुम्भकर्णको उस समय हाथमें गदालियेहुए बुद्धिमान् विभीषणने देखकर तिस ज्येष्ठभ्राताके चरणोंमें प्रणाम करा ॥ ८ ॥ ९ ॥ और विभीषण कहने लगा कि हे महामते! मुझ भ्रा-

वानरान्कालयामास बाहुभ्यां भक्षयन् रुषा ॥ कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा सपक्षमिव पर्वतम् ॥ ६ ॥ दुद्रुवुर्वानराः सर्वे कालान्तकमिवाखिलाः ॥ भ्रमन्तं हरिवाहिन्यां मुद्गरेण महाबलम् ॥ ७ ॥ कालयन्तं हरीन्वेगाद्भक्षयन्तं समन्ततः ॥ चूर्णयन्तं मुद्गरेण पाणिपादैरनेकधा ॥ ८ ॥ कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा गदापाणिर्बिभीषणः ॥ ननाम चरणौ तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य बुद्धिमान् ॥ ९ ॥ विभीषणोऽहं भ्रातुर्मे दयां कुरु महामते ॥ रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः ॥ १० ॥ सीतां देहीति रामाय रामः साक्षाज्जनार्दनः ॥ न शृणोति च मां हन्तुं खड्गमुद्यम्य चोक्तवान् ॥ ११ ॥ धिक् त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः ॥ चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं रामं शरणमागतः ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा कुम्भकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम् ॥ समालिङ्ग्य च वत्स त्वं जीव रामपदाश्रयात् ॥ १३ ॥ कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च ॥ महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम् ॥ १४ ॥

ताके ऊपर दया करो, हे भ्रातः! देखो मैंने रावणको अनेकबार समझाया, कि—श्रीरामचंद्रजी साक्षात् विष्णु भगवान्का रूप हैं, तुम उनको सीता देदो, परन्तु उसने मेरी एक न सुनी, और उलटा खड्ग उठाकर मेरे मारनेको उद्यत होगया, और कहने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ तुझे धिक्कार है, तथा पापियोंकरके युक्त उस रावणने मेरेको एक लातभी मारी, तब मैं चार मंत्रियोंको साथ लेकर श्रीरामचंद्रजीकी शरणमें आगया ॥ १२ ॥ इसप्रकार विभीषणके कथनको सुनकर और भ्राताको पास आयाहुआ जानकर कुम्भकर्णने हृदयसे लगा लिया, और कहा कि हे भ्रातः! तुम श्रीरामचन्द्रजीके चरणके आश्रयसे बहुतकालपर्य्यन्त जीवित रहो ॥ १३ ॥ और मैंने पहिले नारदजीके मुखसे सुना है कि तुम कुलकी रक्षा करनेके निमित्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और राक्षसोंका हित करनेके निमित्त हमारे कुलमें परम भगवद्भक्त उत्पन्न हुवे हो ॥ १४ ॥ हे तात ? अब इस समय मेरे आगे से चलेजाओ ! क्योंकि मेरे नेत्रोंमें वीर रसका मद छाजानेके कारण इस समय मुझे अपना बिराना कुछ नहीं सूझता है ॥ १५ ॥ जब इसप्रकार कुम्भकर्णने कहा तब तौ विभीषणकों नेत्रोंमेंसे आँसुओंका प्रवाह बहनेलगा, सो इस दशामेंही विभीषण भ्राताके चरणोंमें प्रणाम करके लौट आया, और श्रीरामचन्द्रजीके समीप चिन्तासे व्याकुल होताहुआ बैठरहा ॥ १६ ॥ इधर कुम्भकर्णभी हाथों और चरणोंसे वानरोंको मसलताहुआ और मदोन्मत्त हस्तीकी समान वानरोंकी सेनाको पीडित करताहुआ विचरने लगा ॥ १७ ॥ कुम्भकर्णकी यह दशा देखकर क्रुद्ध होकर रघुनाथजीने सम्हालकर वा-

गच्छ तात ममेदानीं दृश्यते न च किञ्चन ॥ मदीयो वा परो वापि मदमत्तविलोचनः ॥ १५ ॥ इत्युक्तोऽश्रुमुखो भ्रातुश्चरणावभिवन्द्य सः ॥ रामपार्श्वमुपागत्य चिन्तापर उपस्थितः ॥ १६ ॥ कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पादाभ्यां पेषयन्हरीन् ॥ चचार वानरीं सेनां कालयन् गन्धहस्तिवत् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा तं राघवः क्रुद्धो वायव्यं शस्त्रमादरात् ॥ चिक्षेप कुम्भकर्णाय तेन चिच्छेद रक्षसः ॥ १८ ॥ समुद्गरं दक्षहस्तं तेन घोरं ननाद सः ॥ स हस्तः पतितो भूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥ १९ ॥ पर्यन्तमाश्रिताः सर्वे वानरा भयवेपिताः ॥ रामराक्षसयोर्युद्धं पश्यन्तः पर्यवस्थिताः ॥ २० ॥ कुम्भकर्णश्छिन्नहस्तः शालमुद्यम्य वेगतः ॥ समरे राघवं हन्तु दुद्राव तमथोऽच्छिनत् ॥ २१ ॥ शालेन सहितं वामहस्तमैन्द्रेण राघवः ॥ छिन्नबाहुमथायान्तं नर्दन्तं वीक्ष्य राघवः ॥ २२ ॥ द्वावर्धचन्द्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम् ॥ चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ ॥ २३ ॥

यव्य अस्त्रको कुम्भकर्णके ऊपर छोडा, उस वायव्यबाणसे कुम्भकर्णका मुद्गरसहिक दाहिना हाथ काटदिया, तब कुम्भकर्ण बड़ा भयंकर शब्द करके गर्जा, और उस कुम्भकर्णके हाथने भूमिपर गिरतेमेंभी अनेक वानरोंको पीचदिया ॥१८॥ १९ ॥ सम्पूर्ण वानर उस गिरती हुई भुजासे कम्पायपान होकर चारों ओरको अलग हटकर खडे होगए, और अलगको खड़े हुए ही श्रीरामचन्द्र और कुम्भकर्णका मुख देखनेलगे ॥२०॥ अब कटगया है दाहिना हाथ जिसका ऐसा कुम्भकर्ण वामहाथसे शालका वृक्ष उखाडकर रणभूमिमें श्रीरामचन्द्रजीके मारनेको बडे वेगसे दौडा, सो श्रीरामचन्द्रजीने शालके वृक्षकरके सहित वामहाथको भी ऐन्द्रबाणसे काटडाला, तबतौ बिना भूजाओंके ही. कुम्भकर्णको गरजताहुआ आता देखकर श्रीरघुनाथजीने अर्द्धचन्द्राकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतितीक्ष्ण दो बाण लेकर इसके दोनो चरणभी काट दिये, वह दोनो चरण बडे शब्दके साथ लंकाके द्वारपै जाकर गिरे ॥२१॥२२॥२३॥ हाथपैर कट-जानेपरभी वह अतिभयंकर कुम्भकर्ण वडवानल अग्निके समान सौ योजन चौडे मुखको फैलाकर गरजताहुआ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर इसप्रकार दौडा, जैसे चन्द्रमाके ऊपर राहु दौडताहै, तब तो श्रीरामचन्द्रजीने तीक्ष्ण हैं अग्रभाग जिनके ऐसे बाणोंसे कुम्भकर्णके सम्पूर्ण मुखको वेध दिया ॥२४॥२५॥ तबतो कुम्भकर्ण बाणोंसे विधेहुए मुखसेही अतिभयंकर शब्द करके चिल्लाने लगा, तबतो श्रीरामचन्द्रजीने सूर्य्यकी समान प्रकाशवान्अत्युत्तम, वज्रकी तुल्य ऐन्द्रबाणको तिस कुम्भकर्णका संहार करनेके निमित्त छोड़ा, उस बाणने राक्षसपति कुम्भकर्णका प्रकाशवान् कुण्डल और दाढोंकरके युक्त पर्वताकार

निकृत्तपाणिपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषणः ॥ वडवानलवद्व्यक्तं व्यादाय रघुनन्दनम् ॥ २४ ॥ अभिदुद्राव निनदन् राहुश्चन्द्रमसं यथा ॥ अपूरयत्सिताग्रैश्च सायकैस्तद्घनुत्तमः ॥ २५ ॥ शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयङ्करः ॥ अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्रं शरमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ व-ज्राशनिसमं रामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ॥ स तत्पर्वतसङ्काशं स्फुरत्कुण्डलदंष्ट्रकम् ॥ २७ ॥ चकर्त रक्षोधिपतेः शिरो वृत्रमिवाशनिः ॥ तच्छिरः पतितं लङ्काद्वारि कायो महोदधौ ॥ २८ ॥ शिरोऽस्य रोधयद्द्वारं कायो नक्राद्यचूर्णयत् ॥ ततो देवाः सऋषयो गन्धर्वाः पन्नगाः खगाः ॥ २९ ॥ सिद्धा यक्षा गुह्यकाश्च अप्सरोभिश्च राघवम् ॥ ईडिरे कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाभिनन्दिताः ॥ ३० ॥ आजगाम तदा रामं द्रष्टुं देवमु-नीश्वरः ॥ नारदो गगनात्तूर्णं स्वभासा भासयन्दिशः ॥ ३१ ॥

शिर इसप्रकार काटडाला, जैसे कि इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरके शिरको काटाथा, वह कटाहुआ कुम्भकर्णका शिर लंकाके द्वारपै जाकर गिरा, और शरीर स-मुद्रमें जाकर गिरा ॥२६॥ २७ ॥ २८ ॥ उस शिरने जाकर लंकाके द्वारका मार्ग रोकदिया, और शरीरने समुद्रमें नक्रादिका चूरा कर दिया, तब तो देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, यक्ष, गुह्यक अप्सराओ सहित आकाशमें आकर श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे, और परम प्रसन्न होकर आका-शमें पुष्पोंकी धारा वर्षाने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ उससमय शीघ्रही देवर्षि मुनिवर नारदजी आकाशसे उतरकर अपनी कान्तिसे दशोंदिशाओंको प्रकाशित करतेहुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके निमित्त " श्रीमन्नारायण ! नारायण ! नारायण ! " इसप्रकार गान करते हुए आए ॥ ३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और नीलकमलकी तुल्य श्यामवर्ण, सुन्दर है शरीर जिनका, धनुषधारी, कुछ एक लाल और विशाल हैं नेत्र जिनके, ऐन्द्र अस्त्रोंकरके शोभायमान है भुजा जिनकी ऐसे, कृपायुक्त दृष्टिसे बाणोंकरके पीडित वानरोंकी ओर देखतेहुए श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके भक्तिपूर्वक गद्गदवाणीसे स्तुति करनेलगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले, कि हे देवदेव ! जगन्नाथ? परमात्मन् ! सनातन नारायण ! सर्वाधार ! विश्वसाक्षिन् ! आपके अर्थ नमस्कार है ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! वास्तवमें तुम विशुद्ध ज्ञानरूप हो, तथापि अपनी मायाकरके सब लोकोंको मोहित करतेहुए मायासेही मनुष्यावतारको धारण करके सुखदुःखादिमान्से प्रतीत होते हो ॥ ३५ ॥ हे भगवन् ! सबके हृदयोंके विषे स्थितभी आप मायासे आच्छादित होनेके

रामिन्दीवरश्यामुदाराङ्गं धनुर्धरम् ॥ ईषत्ताम्रविशालाक्षमैन्द्रास्त्राञ्चितबाहुकम् ॥ ३२ ॥ दयार्द्रदृष्ट्या पश्यन्तं वानरान् शरपीडितान् ॥ दृष्ट्वा गद्गदया वाचा भक्त्या स्तोतुं प्रचक्रमे ॥३३॥ नारद उवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन ॥ नारायणाखिलाधार विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥ विशुद्धज्ञानरूपोऽपि त्वं लोकानतिवञ्चयन् ॥ मायया मनुजाकारः सुखदुःखादिमानिव ॥ ३५ ॥ त्वं मायया गुह्यमानः सर्वेषां हृदि संस्थितः ॥ स्वयंज्योतिःस्वभावस्त्वं व्यक्त एवामलात्मनाम् ॥ ३६ ॥ उन्मीलयन् सृजस्येतन्नेत्रे राम जगत्त्रयम् ॥ उपसंह्रियते सर्वं त्वया चक्षुर्निमीलनात् ॥३७॥ यस्मिन्सर्वमिदं भाति यतश्चैतच्चराचरम् ॥ यस्मान्न किञ्चिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ ३८ ॥ प्रकृतिं पुरुषं कालं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ॥ यं जानन्ति मुनिश्रेष्ठास्तस्मै रामाय ते नमः ॥ ३९ ॥ विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ ॥ त्वां सर्वजगदाकारमूर्तिं चाप्याह सा श्रुतिः ॥ ४० ॥

कारण किसीको प्रतीत नहीं होते हो, और अपने ज्योतिःस्वरूप करके शुद्धान्तःकरणवाले पुरुषोंके अनुभवसे आते हो ॥ ३६ ॥ हे भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजी ! तुम योगनिद्रासे नेत्रोंको खोलतेहुए इस त्रिलोकीको रच देतें हो, और योगनिद्राके समय नेत्रोंको मींचतेहुए तुम इस सम्पूर्ण त्रिलोकीका संहार करदेते हो ॥३७॥ जिसके विषे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रतीत होरहा है, और जिससे उत्पन्न हुआ है, तथा जिसके कारणसे प्रलयकालमें इस त्रिलोकीमें कुछभी नहीं रहता है, ऐसे मायासे परब्रह्मरूप आपके अर्थ नमस्कार है ॥३८॥ मुनीश्वर जिन आपको ही प्रकृति, पुरुष, काल, व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप जानते हैं, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तिन आपके अर्थ नमस्कार है ॥३९॥ हे भगवन् ! वेद आपको निर्विकार, शुद्ध, ज्ञान-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूपकरके वर्णन करता है, और वही वेद आपको सम्पूर्ण जगत्के आकार मूर्तिमान् (विराट्स्वरूप) भी कहता है ॥ ४० ॥ हे देव ! वेदवेत्ताओंको वेदमें परस्पर विरोध दिखाई देता है, इसकारण विद्वान्भी आपकी कृपादृष्टिके विना निश्चयको नहीं प्राप्त होते हैं, और जिनके ऊपर आपकी कृपादृष्टि होती है उनको तो किसीप्रकार विरोध नहीं दीखता है, क्योंकि जो कुछ विकार देखनेमें आता है वह सब जगत्का है, और आप तो निर्विकार हैं ॥ ४१ ॥ हे देव ! मायाकरके क्रीड़ा करतेहुए आपके विषे किञ्चिन्मात्रभी विरोध नहीं है, और जगत्के आकारसे जो आपकी प्रतीति है, वह मायाके कारण है जैसे मरु (निर्जल) देशमें सूर्य्यकी किरणैं मृगोंको भ्रमके कारण जलरूप प्रतीत होनेलगती हैं, तिसीप्रकार जगत्रूपसे आपकी जो प्रतीति है सो भी भ्रममूलक है, आप तो सदा मायासे पर आनन्दस्वरूप हो ॥ ४२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! भ्रमात्मक ज्ञानसे जि-

विरोधो दृश्यते देव वैदिको वेदवादिनाम् ॥ निश्चयं नाधिगच्छन्ति त्वत्प्रसादं विना बुधाः ॥४१॥ मायया क्रीडतो देव न विरोधो मनागपि ॥ रश्मिजालं खेर्यद्वद्दृश्यते जलवद् भ्रमात् ॥४२॥ भ्रान्तिज्ञानात्तथा राम त्वयि सर्वं प्रकल्प्यते ॥ मनसोऽविषयो देव रूपं ते निर्गुणं परम् ॥ ४३ ॥ कथं दृश्यं भवेद्देव दृश्याभावे भजेत्कथम् ॥ अतस्तवावतारेषु रूपाणि निपुणा भुवि ॥ ४४ ॥ भजन्ति बुद्धिसंपन्नास्तरन्त्येव भवार्णवम् ॥ कामक्रोधादयस्तत्र बहवः परिपन्थिनः ॥ ४५ ॥ भीषयन्ति सदा चेतो मार्जारा मूषकं यथा ॥ त्वन्नाम स्मरतां नित्यं त्वद्रूपमपि मानसे ॥ ४६ ॥ त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम् ॥ त्वद्भक्तसङ्गिनां राम संसारो गोष्पदायते ॥ ४७ ॥

सप्रकार सीपीमें रजतकी कल्पना होजातीहै, तिसीप्रकार आपके विषे जो जगत्की कल्पना है सोभी भ्रमात्मक ज्ञानसेही है, और हे देव ! आपका जो मायासे पर निर्गुण रूप है उसकी प्रतीति तो शुद्ध अन्तःकरणसे ही होतीहै ॥४३॥ सो वह आपका निर्गुणरूप इन स्थूल नेत्रोंको गोचर नहीं होसक्ता, इसकारण प्रवीण भक्तपुरुष अवतारोंके विषे धारण की हुई आपकी सगुणमूर्त्तियोंका भजन करते हैं, और वह प्रवीण पुरुष उस भजनके प्रभावसे संसाररूपी समुद्रको तरही जाते हैं, परन्तु उस आपके भजनमेंभी काम क्रोध आदि बहुतसे विघ्नकर्त्ता हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह भक्तोंके चित्तोंको इसप्रकार भय दिखाते हैं जिसप्रकार चूहोंको बिल्लियें, परन्तु जो पुरुष अपने चित्तमें नित्य आपके नाम और रूपका स्मरण करते हैं, आपकी पूजा करनेमें तत्पर रहते हैं, आपकी कथारूपी अमृतको पान करनेमें मनको लगाए रखते हैं, और तुम्हारे भक्तोंकी संगति करते हैं, हे श्रीरामचन्द्रजी !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन आपके भक्तोंको यह संसाररूपी समुद्र गौके चरणके समान हो जाता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसकारणही हे श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपके सगुण-रूपका सदा हृदयमें ध्यान करके संसारबन्धनसे मुक्त होकर सम्पूर्ण देवताओंको पूज्य होकर त्रिलोकीमें विचरताहूं ॥ ४८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपने देवताओंके हितकी इच्छाकरके बड़ाभारी कार्य्य सिद्ध किया, जो आज कुंभकर्णका संहार करके भूमिका भार दूर किया ॥ ४९ ॥ अब कलको लक्ष्मणजी संग्राममें मेघनादका वध करैंगे, और परसौंको[1] हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम रावणका संहार करोगे ॥ ५० ॥ और मैं सिद्धोंसहित आकाशमें स्थित होकर

अतस्ते सगुणं रूपं ध्यात्वाहं सर्वदा हृदि ॥ मुक्तश्चरामि लोकेषु पूज्योऽहं सर्वदैवतैः ॥ ४८ ॥ राम त्वया महत्कार्यं कृतं देवहितेच्छया ॥ कुम्भकर्णवधेनाद्य भूभारोऽयं गतः प्रभो॥४९॥श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे ॥ हनिष्यसेऽथ राम त्वं परश्वो दशकन्धरम् ॥५०॥ पश्यामि सर्वं देवेश सिद्धैः सह नभोगतः ॥ अनुगृह्णीष्व मां देव गमिष्यामि सुरालयम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य नारदो भगवा-नृषिः ॥ ययौ देवैः पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥ ५२ ॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ रावणः शोकसन्तप्तो रामेणाक्लिष्ट-कर्मणा ॥ ५३ ॥ मूर्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह ॥ पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चातिविह्वलम् ॥ ५४ ॥ इन्द्रजित्प्राह शोकार्तं त्यज शोकं महामते ॥ मयि जीवति राजेन्द्र मेघनादे महाबले ॥ ५५ ॥

देखूँगा, और हे देवेश ! अब मुझे अनुग्रह करके आज्ञा दीजिये, मैं देवलोकको जाऊँगा ॥ ५१ ॥ इसप्रकार कहकर और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर भगवान् नारदऋषि देवताओंसे पूजित होतेहुए परम पावन ब्रह्मलोकको चले गए ॥ ५२ ॥ इधर रावण अनायाससे (विनापरिश्रमके) ही श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे महाबली भ्राता कुम्भकर्णका मरण सुन मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरपड़ा, और फिर उठकर विलाप करनेलगा, इतनेहीमें पितृव्य (चचा) का मरण और पिताको अत्यन्त शोकाकुल सुनकर मेघनाद आया, और शोकसे घबड़ाएहुए पितासे कहने लगा,

[1] यहां कलपरसों शब्दसे नारदजीका शीघ्रतासे तात्पर्य्य है, क्योंकि वाल्मीकि और अग्निवेशरामायण (जिसका हमने सान्वयभाषानुवाद किया है) के देखनेसे तो वह प्रतीत होता है कि लक्ष्मणजीने निरन्तर तीन दिन संग्राम करके मेघनादको मारा है, यही वार्त्ता इस अध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डके नवमसर्गके ५७ सत्तावनवे श्लोकसे प्रतीत होती है और वाल्मीकि तथा अग्निवेशमें रावणका अठारह दिन संग्राम हुआ ऐसा लिखा है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि हे पितः! आप तो परम बुद्धिमान् हो, शोक किसकारण करतेहो! अब शोकको त्यागो, और हे राजेन्द्र! मुझ महाबली मेघनादको विना जीते हुए हे देवान्तक! हेमहामते! आपको दुःख करनेका क्या अवसर है? हे राजन्! अब आप सब दुःखको त्यागकर स्वस्थ हूजिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ॥५५॥५६॥ हे पितः! मैं आपके सम्पूर्ण दुःखको दूर कर दूँगा, क्योंकि अभी जाकर शत्रुओंका संहार करताहूँ. मैं शीघ्रही निकुम्भिला नामक गुफामें जाकर अग्निको विधिपूर्वक तृप्त करके और तिस अग्निसेही रथादि युद्धकी सामग्री लेकर शत्रुको अजेय (न जीतनेयोग्य) हो जाऊँगा. इसप्रकार कह मेघनाद शीघ्रही निकुम्भिला गुफामें पहुँचा, और लालवर्णकी माला तथा लाल वस्त्र और लालही चन्दन धारण करके तिस निकुम्भिलागुफामें मौन

दुःखस्यावसरः कुत्र देवान्तक महामते ॥ व्येतु ते दुःखमखिलं स्वस्थो भव महीपते॥५६॥सर्वं समीकरिष्यामि हनिष्यामि च वै रिपून् ॥ गत्वा निकुम्भिलां सद्यस्तर्पयित्वा हुताशनम् ॥५७॥ लब्ध्वा रथादिकं तस्मादजेयोऽहं भवाम्यरेः ॥ इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा निर्दिष्टं हवनस्थलम् ॥५८॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ॥ निकुम्भिलास्थले मौनी हवनायोपचक्रमे ॥५९॥ बिभीषणोऽथ तच्छ्रुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम् ॥ प्राह रामाय सकलं होमारम्भं दुरात्मनः ॥ ६० ॥ समाप्यते चेद्धोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः ॥ तदाऽजेयो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः॥६१॥अतः शीघ्रं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ॥ आज्ञापय मया सार्धं लक्ष्मणं बलिनां वरम् ॥ हनिष्यति न सन्देहो मेघनादं तवानुजः॥६२॥श्रीरामचन्द्र उवाच ॥ अहमेवागमिष्यामि हन्तुमिन्द्रजितं रिपुम् ॥ आग्नेयेन महास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना ॥६३॥

होकर हवन करना प्रारम्भ करदिया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ बिभीषण मेघनादके इस चरित्रको सुनकर श्रीरामचंद्रजीके पास आया और उस दुष्टात्मा मेघनादका हवन करना आदि सब चरित्र कह सुनाया ॥६०॥ और कहने कगा कि हे भगवन्! दुष्टात्मा मेघनादका यह हवन यदि सम्पूर्ण सिद्ध होजायगा, तब हे श्रीरामचन्द्रजी! तिस मेघनादको देवता दैत्य आदि कोईभी नहीं जीत सकैगा ॥ ६१॥ इसकारण मैं शीघ्रही जाकर लक्ष्मणजीके हाथसे उस मेघनादको मरवादूँगा, सो आप लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेके निमित्त आज्ञा दीजिये, यह बलवानोंमें अग्रगण्य आपके भ्राता लक्ष्मणजी निःसन्देह तिस मेघनादका संहार करैंगे ॥६२॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे बिभीषण! सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार करनेवाले आग्नेय महाअस्त्रसे तिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शत्रु मेघनादका वध करनेके निमित्त मैंही जाऊँगा ॥ ६३ ॥ तब तो बिभीषण श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगा कि हे भगवन् ! यह लक्ष्मणके सिवाय और किसीसे नहीं मारा जायगा, क्योंकि पहिले ब्रह्माने कह दिया है कि इस दुष्टात्माका वध वही करसकैगा, जो बारह वर्षपर्य्यन्त निद्रा और भोजनका त्याग करके रहैगा, सो हे भगवन्! लक्ष्मणजी जबसे आपके साथ अयोध्यापुरीसे निकल कर आए हैं, हे रघुनाथजी! उस दिनसे आपकी सेवा करनेमें तत्पर होकर निद्राभोजन आदिको जानतेभी नहीं, यह सब मैं जानताहूँ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ सो हे भगवन्! शीघ्रतासे लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये, यह साक्षात् पृथ्वीके भारको धारण करनेवाले शेषजी (लक्ष्मण) निःसन्देह उसका वध करैंगे

बिभीषणोऽपि तं प्राह नासावन्यैर्निहन्यते ॥ यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः ॥६४॥ तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः ॥ लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्त्वया सह ॥ ६५ ॥ तदादि निद्राहारादीन्न जानाति रघूत्तम ॥ सेवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया ॥ ६६ ॥ तदाज्ञापय देवेश लक्ष्मणं त्वरया मया ॥ हनिष्यति न सन्देहः शेषः साक्षाद्धराधरः ॥ ६७ ॥ त्वमेव साक्षाज्जगतामधीशो नारायणो लक्ष्मण एव शेषः ॥ युवां धराभारनिवारणार्थं जातौ जगन्नाटकसूत्रधारौ ॥ ६८ ॥ इति श्रीम० रा० उमामहे० युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ जानामि तस्य रौद्रस्य माया कृत्स्ना बिभीषण ॥ १ ॥ स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबलः ॥ जानामि लक्ष्मणस्याऽपि स्वरूपं मम सेवनम् ॥ २ ॥

॥ ६७ ॥ हे भगवन्! आप साक्षात् जगत्पति नारायण हैं, और लक्ष्मणजी साक्षात् शेष हैं आप दोनों पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त संसाररूपी नाटकके सूत्रधार (मुख्य कारण) हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि हे पार्वति! श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार बिभीषणके वचन सुनकर कहने लगे, कि हे बिभीषण! मैं उस तामसी मेघनादकी संपूर्ण मायाको जानता हूँ वह शूर महाबली मेघनाद ब्रह्मास्त्रका जाननेवाला और बडा मायावी है, और जिसप्रकार मेरी सेवा करनेके निमित्त लक्ष्मणने निद्रा भोजन आदिको त्याग रक्खा है, सोभी मैं जानता हूँ ॥ १ ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और यह वार्ता जानकरही होनहार कार्यकी कठिनाईके कारण मैं मौन होकर बैठा हूँ, इसप्रकार बिभीषणसे कहकर परम ज्ञानी श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे कहने लगे, कि हे साधो लक्ष्मण ! बहुतसी वानरोंकी सेनाको लेकर और हनुमान् आदि संपूर्ण सेनापतियोंको साथमें लेकर जाओ, और रावणके पुत्र मेघनादका संहार करो ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह रीछोंका राजा जाम्बवान् अपनी सेना सहित और बिभीषण अपने मंत्रियों सहित तुम्हारे साथ जाँयगे ॥ ५ ॥ क्योंकि—बिभीषण उस स्थानकी गुफाके मार्गको भलीप्रकारसे जानतेहैं; इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर भीमपराक्रम लक्ष्मणजी बिभीषणको साथ लेकर और अपने दूसरे श्रेष्ठ धनुषको धारण करके फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका स्पर्श करके परमप्रसन्न लक्ष्मणजी कहने लगे, कि हे भगवन् ! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण मेघनादके शरीरको विदीर्ण करते हुए दूसरीओरको निकलकर भोगा-

ज्ञात्वैवासमहं तूष्णीं भविष्यत्यार्यगौरवात् ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः ॥ ३ ॥ गच्छ लक्ष्मण सैन्येन महता जहि रावणिम् ॥ हनूमत्प्रमुखैः सर्वैर्यूथपैः सह लक्ष्मण ॥ ४ ॥ जाम्बवानृक्षराजोयं सहसैन्येन संवृतः ॥ बिभीषणश्च सचिवैः सह त्वामभियास्यति ॥५॥ अभिज्ञस्तस्य देशस्य जानाति विवराणि सः ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः सबिभीषणः ॥६॥ जग्राह कार्मुकं श्रेष्ठमन्यद्धीमपराक्रमः ॥ रामपादाम्बुजं स्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥७॥ अद्य मत्कार्मुकान्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ॥ गमिष्यन्ति हि पातालं स्नातुं भोगावतीजले ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वा स सौमित्रिः परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ इन्द्रजिन्निधनाकाङ्क्षी ययौ त्वरितविक्रमः ॥ ९ ॥ वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ बिभीषणश्च सहितो मन्त्रिभिस्त्वरितं ययौ ॥१०॥ जाम्बवत्प्रमुखा ऋक्षाः सौमित्रिं त्वरयान्वयुः ॥ गत्वा निकुम्भिलादेशं लक्ष्मणो वानरैः सह ॥ ११ ॥ अपश्यद्बलसङ्घातं दूराद्राक्षससंकुलम् ॥ धनुरायम्य सौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रमः ॥ १२ ॥

वती नामक पातालगंगामें स्नान करनेके निमित्त पाताललोकको जायँगे, इसप्रकार कहकर तिन सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा करके प्रणाम किया और मेघनादका संहार करनेके निमित्त शीघ्रतासे चरण बढ़ातेहुए चलदिये ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ बहुत सहस्र वानरोंको साथमें लेकर हनुमान्जी और अपने मंत्रियों सहित बिभीषणभी लक्ष्मणजीके पीछे पीछे गये ॥ १० ॥ जाम्बवान् आदि रीछभी अति शीघ्रतासे लक्ष्मणजीके पीछे चलदिये, इसप्रकार लक्ष्मणजी वानरोंकी सेनाके साथ निकुम्भिला गुफाके समीपमें गये, वहां मेघनादकी रक्षा करनेके निमित्त स्थित राक्षसोंकी सेनाको देखकर दूरसेही धनुषको बढ़ाकर परमपराक्रमी लक्ष्मणजी तयार होगये, और वीर अंगदसहित जाम्बवान् भी तयार होगया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब राक्षसपति बिभीषण लक्ष्मणजीसे कहने लगा, कि हे वीर ! मेघनादके रक्षक राक्षसोंको देखिये, यह जो मेघके समान श्यामवर्ण राक्षसोंकी सेना दीख रही है, इस बड़ी भारी सेनाको नष्ट करनेका प्रयत्न करिये ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ इस राक्षसोंकी सेनाको नष्ट करनेपर वह रावणका पुत्र मेघनादभी देखनेमें आवैगा, जबतक मेघनादका यज्ञ समाप्त नहीं होताहै तिससे प्रथमही उसके सन्मुख जाकर युद्ध करनेका प्रारंभ करदीजिये ॥ १५ ॥ हे वीर ! हिंसाकोही धर्म माननेवाले इस दुष्टात्माका संहार करिये. शुभलक्षण लक्ष्मणजी इसप्रकार बिभीषणके कथनको सुनकर मेघनादकी सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे, और वानर तथा सेनापतिभी पत्थर. पर्वतोंके शिखर तथा वृक्ष चारोंओरसे फेंककर राक्षसोंको कुचलने

अङ्गदेन च वीरेण जाम्बवान् राक्षसाधिपः ॥ तदा बिभीषणः प्राह सौमित्रिं पश्य राक्षसान् ॥१३॥ यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ॥ अस्यानीकस्य महतो भेदने यत्नवान् भव ॥१४॥ राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यस्मिन् भिन्ने दृश्यो भविष्यति ॥ अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥१५॥ जहि वीर दुरात्मानं हिंसापरमधार्मिकम् ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥१६॥ ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति॥ पाषाणैः पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च हरियूथपाः ॥१७॥ निर्जघ्नुः सर्वतो दैत्यांस्तेऽपि वानरयूथपान् ॥ परश्वधैः शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥ १८ ॥ निर्जघ्नुर्वानरानीकं तदा शब्दो महानभूत् ॥ स संप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥ १९ ॥ इन्द्रजित्स्वबलं सर्वमर्द्यमानं विलोक्य सः ॥ निकुम्भिलां च होमं च त्यक्त्वा शीघ्रं विनिर्गतः ॥ २० ॥ रथमारुह्य सधनुः क्रोधेन महतागमत् ॥ समाह्वयित्वा सौमित्रिं युद्धाय रणमूर्धनि ॥२१॥ सौमित्रे मेघनादोऽहं मया जीवन्न मोक्ष्यसे ॥ तत्र दृष्ट्वा पितृव्यं स प्राह निष्ठुरभाषिणम् ॥ २२ ॥

लगे, तबतो राक्षसभी वानरोंको फरसोंकी धारोंसे, तीक्ष्ण बाणोंसे, तलवारोंसे, भालोंसे और तोमरोंसे मारनेलगे, उससमय बड़ा घोर शब्द हुआ, और वह वानर और राक्षसोंका संग्रामभी बड़ा भयंकर हुआ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ उस समय मेघनाद अपनी सम्पूर्ण सेनाको नष्ट होताहुआ देखकर हवनको त्यागके शीघ्रही निकुम्भिलागुफाके बाहर निकल आया ॥ २० ॥ और रथपर चढ़ हाथमें धनुष लेकर बडे क्रोधको प्राप्त हुआ, और रणभूमिमें युद्ध करनेके निमित्त लक्ष्मणजीको बुलाकर कहने लगा ॥ २१ ॥ कि हे लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूँ अब मुझसे तुम जी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेहुए छूटछर न जाओगे, इतनेहीमें तहाँ बिभीषणको देखकर बड़े कठोर वचनोंसे कहनेलगा, कि हे बिभीषण! तू राक्षसकुलमें पैदाहुआ, और तहाँहीं वृद्धिको प्राप्तहुआ, तिसपरभी मेरे पिताका साक्षात् भ्राता होकर तू अपने सम्पूर्ण परिवारको छोड़कर शत्रुओंका सेवक बन गयाहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ अरे दुष्टबुद्धि ! पापी ! तू मुझै पुत्र जानकरके भी क्यों द्रोह करता है ? इसप्रकार कहकर मेघनाद लक्ष्मणजीके पीछे खड़ेहुए पवनकुमार हनुमानजीको देखकर प्रकाशमान हैं अनेक शस्त्र और खड्ग जिसमें ऐसे बड़ेभारी रथपर बैठाहुआ अपने बड़े भारी धनुष्यको उठाकर उसकी प्रत्यंचाको खैंचकर बड़ा घोर शब्द करने लगा ॥ २४ ॥ २५ ॥ और इसप्रकार बोला कि हे वानरो ! आज मेरे बाण तुम्हारे प्राणोंको पियेगें, तबतो दुष्टोंको नष्ट करनेवाले

इहैव जातः संवृद्धः साक्षाद भ्राता पितुर्मम ॥ यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥२३॥ कथं द्रुह्यसि पुत्राय पापीयानसि दुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणं दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठतः स्थितम् ॥२४॥ उद्यदायुधनिस्त्रिंशे रथे महति संस्थितः ॥ महाप्रमाणमुद्यम्य घोरं विस्फारयन्धनुः ॥२५॥ अद्य वो मामका बाणाः प्राणान्पास्यन्ति वानराः ॥ ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्शनः ॥ २६ ॥ ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥ इन्द्रजिद्रक्तनयनो लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥ २७ ॥ शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ॥ मुहूर्तमभवन्मूढः पुनः प्रत्याहृतेन्द्रियः ॥ ॥२८॥ ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ॥ सोऽभिचक्राम सौमित्रिं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २९ ॥ शरान्धनुषि सन्धाय लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मे पराक्रमः ॥३०॥ अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥ इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ॥ ३१ ॥ दशभिश्च हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥ ततः शरशतेनैव संप्रयुक्तेन वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

दशरथकुमार लक्ष्मणजीने धनुषके ऊपर बाण चढ़ाकर क्रोधी सर्पके समान स्वास लेकर मेघनादके ऊपर बाण छोड़ा, तबतो मेघनादने लक्ष्मणजीकी ओरको देखा ॥ २६ ॥ २७ ॥ और इंद्रके वज्रके समान चोट करनेवाले लक्ष्मणजीके बाणोंसे घायल होकर क्षणमात्र मूर्च्छित होगया, और फिर सावधान होकर क्रोधसे लाल लाल नेत्र करके मेघनाद लक्ष्मणजीके सन्मुख आया और धनुषमें बाणोंको चढ़ाकर लक्ष्मणजीसे इसप्रकार बोला कि अरे लक्ष्मण ! यदि तैंने पहिले युद्धमें मेरा पराक्रम नहीं देखा है, तो ले आज तुझको दिखाताहूँ, अब मेरे सामने युद्धमें खड़ा रह, इसप्रकार कहकर मेघनादने लक्ष्मणजीके ऊपर सात बाण छोड़े ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और तीखी धारवाले दश बाणोंसे हनुमान्जीको ताड़न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया, फिर तिस महाबलीने दुगुने क्रोधमें होकर बिभीषणके ऊपर सौ बाण छोड़े, और लक्ष्मणजीने भी शत्रु मेघनादको बाणोंकी वर्षासे ढ़कदिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणजीके बाणोंसे विधाहुआ उस मेघनादका कांचनके समान कान्तिमान् कवच (वखतर) कटगया और तिल तिल होकर रथके ऊपर तथा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥ तब तो मेघनादने क्रोधमें होकर संग्राममें भीमपराक्रम वीर लक्ष्मणको हजार बाणोंसे वेध दिया ॥ ३५ ॥ तब तो लक्ष्मणजीकाभी दिव्य कवच टुकड़ेटुकड़े होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, इसप्रकार वह दोनों परस्पर बदला लेनेलगे ॥ ३६ ॥ दोनों क्रोधके मारे वारंवार स्वासें लेतेहुए भयंकर युद्ध करनेलगे, दोनोंके शरीर बाणोंसे भरगये और रुधिरसे भीग गये ॥ ३७ ॥ वह दोनों वीर बहुत

क्रोधद्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद बिभीषणम् ॥ लक्ष्मणोऽपि तथा शत्रुं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३३ ॥ तस्य बाणैः सुसंविद्धं कवचं काञ्चनप्रभम् ॥ व्यशीर्यत रथोपस्थे तिलशः पतितं भुवि ॥३४॥ ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः ॥ बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमम् ॥३५॥ व्यशीर्यतापतद्दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च ॥ कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥३६॥ अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युद्ध्येता तुमुलं पुनः ॥ शरसंवृतसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥ ३७ ॥ सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ॥ अयुध्येतां महासत्वौ जयाजयविवर्जितौ ॥ ३८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ॥ रावणेः सारथिं साश्वं रथं च समचूर्णयत् ॥ ३९ ॥ चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ सोऽन्यत्तु कार्मुकं भद्रं सज्यं चक्रे त्वरान्वितः ॥ ४० ॥ तच्चापमपि चिच्छेद लक्ष्मणस्त्रिभिराशुगैः ॥ तमेव छिन्नधन्वानं विव्याधानेकसायकैः ॥ ४१ ॥ पुनरन्यत्समादाय कार्मुकं भीमविक्रमः ॥ इन्द्रजिल्लक्ष्मणं बाणैः शितैरादित्यसन्निभैः ॥ ४२ ॥

समयतक तीक्ष्ण बाणोंसे परस्पर युद्ध करतेरहे, परन्तु उन दोनों महाबलवानोंमेंसे किसीकीभी जय पराजय (जीत हार) नहीं हुई ॥ ३८ ॥ इस अवसरमेंही वीर लक्ष्मणजीने पांच बाण छोड़कर मेघनादके सारथी, घोड़े और रथका चूर्ण करदिया ॥ ३९ ॥ और अपने हाथका लाघव (शीघ्रताकी सफाई) दिखलाकर मेघनादका धनुष काट दिया, तब तो मेघनादने तत्कालही दूसरा मजबूत धनुष लेकर प्रत्यंचा चढ़ाई, लक्ष्मणजीने तीन बाणोंसे उसको भी काट दिया; और धनुष कटनेके अनंतर उस मेघनादको भी अनेक बाणोंसे घायल करदिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तबतो परमपराक्रमी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेघनादने फिर दूसरा धनुष लेकर सूर्यके तुल्य प्रकाशमान तीक्ष्ण बाणोंसे लक्ष्मणजीको वेध दिया ॥४२॥ फिर बहुतसे बाणोंको लेकर मेघनादने सम्पूर्ण वानरोंको घायल करके दिशाओंको भी बाणोंसे तर दिया, तब तो लक्ष्मणजीने मेघनादका संहार करनेके निमित्त ऐन्द्र बाण लिया और उस बाणको चढ़ाकर अपने दृढ़ और कठोर धनुषको कान पर्यन्त खैंच लिया, और उससमय वीर लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्मरण करतेहुए कहने लगे; कि यदि धर्मात्मा दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ और त्रिलोकीमें अद्वितीय हैं, तो हे बाण ! तू इस रावणके पुत्र मेघनादका संहार कर ॥४३॥४४॥४५॥ इसप्रकार कहकर वीर लक्ष्मणजीने कानपर्यन्त खेंचेहुए उस कुटिल बाणको संग्राममें मेघनादके ऊपर छोड़ा ॥ ४६ ॥ उस बाणने प्रकाशवान् कुंडलोंसे युक्त

बिभेद वानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिशः ॥ तत ऐन्द्रं समादाय लक्ष्मणो रावणिं प्रति ॥४३॥ सन्धायाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं दृढनिष्ठुरम् ॥ उवाच लक्ष्मणो वीरः स्मरन् रामपदाम्बुजम् ॥ ४४ ॥ धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ॥ त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥ ४५ ॥ इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाद्विकृष्य तमजिह्मगम् ॥ लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥ ४६ ॥ स शरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥ ४७ ॥ ततः प्रमुदिता देवाः कीर्तयन्तो रघूत्तमम् ॥ ववर्षुः पुष्पवर्षाणि स्तुवन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥ ४८ ॥ जहर्ष शक्रो भगवान्सहदेवैर्महर्षिभिः ॥ आकाशेऽपि च देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ॥ ४९ ॥ विमलं गगनं चार्वात्स्थिराभूद्विश्वधारिणी ॥ निहतं रावणिं दृष्ट्वा जयजल्पसमन्वितः ॥ ५० ॥ गतश्रमः स सौमित्रिः शङ्खमापूरयद्रणे ॥ सिंहनादं ततः कृत्वा ज्याशब्दमकरोद्विभुः ॥ ५१ ॥

और मुकुटसहित मेघनादके शिरको काटकर शरीरपरसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥४७॥ तब तो देवता प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका कीर्तन करनेलगे और वारंवार लक्ष्मणजीकी प्रशंसा करके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४८ ॥ देवता और महर्षियों सहित भगवान् इन्द्र उससमय बड़े हर्षको प्राप्त हुए, आकाशमें देवताओंके नगाड़ेका शब्द सुनाई देनेलगा ॥४९॥ आकाश निर्म्मल होगया, विश्वको धारण करनेवाली पृथ्वी स्थिरताको प्राप्त हुई, चारों ओर जिनके जय जय शब्द होरहा है ऐसे लक्ष्मणजीने मेघनादका मरण हुआ देखकर संग्राममें श्रमरहित होकर शंखकी ध्वनि करी, फिर प्रभु लक्ष्मणजीने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिंहके समान गर्जकर धनुषकी प्रत्यंचामें टंकोर देकर बडाभारी शब्द किया ॥५०॥५१॥ तिस शब्दको सुनकर वानर परम प्रसन्न और श्रमरहित होगये, फिर प्रसन्न है मन जिनका ऐसे स्तुति करतेहुए वानरोंसहित, और सेनापतियोंसहित लक्ष्मणजी चित्तमें प्रसन्न होतेहुए श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये, और हनुमान् बिभीषणसहित लक्ष्मणजीने ज्येष्ठ भ्राता रघुवंशशिरोमणि साक्षात् सर्वव्यापी नारायणरूप श्रीरामचन्द्रजीको नम्रतापूर्वक प्रणाम किया, और कहनेलगे कि हे रघुकुलशिरोमणि! आपके अनुग्रहसे आज संग्राममें रावणका पुत्र मेघनाद मारागया ॥५२॥५३॥५४॥ ऐसा लक्ष्मणजी-से सुनकर रघुनाथजीने उनको प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगाया, और मस्तकमें चुम्बन कर प्रसन्न होके स्नेहपूर्वक इसप्रकार कहने लगे ॥५५॥ कि हे

तेन नादे न संत्रष्टा वानराश्च गतश्रमाः ॥ वानरेन्द्रैश्च सहितः स्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥५२॥ लक्ष्मणः परितुष्टात्मा ददर्शाऽभ्येत्य राघवम् ॥ हनूमद्राक्षसाभ्यां च सहितो विनयान्वितः ॥५३॥ ववन्दे भ्रातरं रामं ज्येष्ठं नारायणं विभुम् ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हतो रावणिराहवे ॥५४॥ श्रुत्वा तल्लक्ष्मणाद्भक्त्या तमालिङ्ग्य रघूत्तमः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय मुदितः सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म ते दु-ष्करं कृतम् ॥ मेघनादस्य निधने जितं सर्वमरिन्दम ॥ ५६ ॥ अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद्विनिपातितः ॥ निःसपत्नः कृतोऽस्म्यद्य निर्या-स्यति हि रावणः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकान्मया योद्धुं तं हनिष्यामि रावणम् ॥ मेघनादं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महाबलम् ॥ ५८ ॥ रावणः प-तितो भूमौ मूर्छितः पुनरुत्थितः ॥ विललापातिदीनात्मा पुत्रशोकेन रावणः ॥५९॥ पुत्रस्य गुणकर्माणि संस्मरन्पर्यदेवयत् ॥ अद्य देव-गणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः ॥ ६० ॥

लक्ष्मण! तुझे धन्यवाद है, यह तूने बड़ा दुष्कर कर्म्म सिद्ध किया, मैं तुझपर बड़ा प्रसन्न हूँ, हे शत्रुनाशक! तूने मेघनादको क्या परंतु सम्पूर्ण संग्रामही जीतलिया ॥५६॥ जो तीन दिन तीन रात्रि युद्ध करके तूने उस वीर मेघनादका अतिकठिनसें संहार किया, आज मैं शत्रुहीन होगया, अब केवल शत्रु रावण पुत्रका शोक होनेके कारण लंकामेंसे निकलकर मुझसे युद्ध करनेको आवैगा, तब मैं उस दुष्ट रावणका संहार करूँगा, इधर अब रावण लक्ष्मणजीके हाथसे महाबली मेघनादका मरण सुनकर मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा और फिर उठकर पुत्रके शोकसे अतिदीनताको प्राप्त हुआ रावण विलाप करनेलगा ॥५७॥५८॥५९॥ पुत्रके गुणकर्म्मोंको स्मरण करके वारंवार विलाप करताहुआ कहने लगा, कि आज सम्पूर्ण देवगण, लोकपाल और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि मेघनादका मरण सुनकर सुखपूर्वक निर्भय शयन करैंगे, इत्यादि अनेप्रकारसे पुत्रका स्मरण कर करके विलाप करनेलगा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ फिर कुछ देरके अनन्तर राक्षसपति रावण बडा क्रोधित होकर संग्राममें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छाकरके सम्पूर्ण राक्षसोंसे युद्धके निमित्त कहने लगा ॥ ६२ ॥ फिर वह पुत्रके मरणसे अतिदुःखित हुआ शूर रावण क्रोधवशीभूत हो कुछ बुद्धिमें विचार कर सीताको मारनेके निमित्त दौडा ॥ ६३ ॥ तबतो हाथमें तलवार लेकर क्रोधित रावणको आताहुआ देखकर राक्षसियोंके मध्यमें बैठीहुई सीता भय और शोकसे व्याकुल होगई ॥ ६४ ॥ इसी अवसरमें परमबुद्धिमान् शुद्धान्तःकरण रावणका सुपार्श्वनाम धारण कर्ता बुद्धिवाला मंत्री रावणसे इसप्रकार कहने लगा ॥ ६५ ॥ कि हे राजन् ! तुम साक्षात् कुबे-

हतमिन्द्रजितं ज्ञात्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ॥ इत्यादि बहुशः पुत्रलालसो विललाप ह॥६१॥ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥ उवाच राक्षसान्सर्वान्निनाशयिषुराहवे ॥६२॥ स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ॥ संवीक्ष्य रावणो बुद्ध्या हन्तुं सीतां प्रदुद्रुवे ॥६३॥ खड्गपाणिमथायान्तं क्रुद्धं दृष्ट्वा दशाननम् ॥ राक्षसीमध्यगा सीता भयशोकाकुलाभवत् ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तस्य सचिवो बुद्धिमान् शुचिः ॥ सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥ ननु नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुजः ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥ ६६ ॥ अनेकगुणसम्पन्नः कथं स्त्रीवधमिच्छसि ॥ अस्माभिः सहितो युद्धे हत्वा रामं च लक्ष्मणम् ॥ प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः स न्यवर्तत ॥ ६७ ॥ ततो दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ॥ गृहं जगामाशु शुचा विमूढधीः पुनः सभा च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

रके भ्राता, वेदविद्याके पारङ्गम, यज्ञान्त स्नान करनेवाले, अपने कर्म्म करनेमें तत्पर, अनेक गुणसम्पन्न, तिसपरभी रावणनामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होकर यह क्या अनुचित निन्दनीय कर्म्म करतेहो जो स्त्रीका वध करनेको तयार होगये ! आप तो हमलोगोंके साथ युद्धमें राम और लक्ष्मणको मारकर शीघ्रही सीताको पाओगे, इसप्रकार सुपार्श्व मंत्रीके कहनेसे रावण लौटआया ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ फिर वह दुष्टात्मा मित्र मंत्रीके धर्मानुकूल वचनको सुनकर शीघ्रही शोक करताहुआ अपने स्थानको चलागया, और फिर वह मूढबुद्धि रावण मंत्रिगणोंसहित सभास्थानमें आया ॥ ६८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! वह रावण सभामें राक्षसमंत्रियोंके साथ विचार करके जो कुछ राक्षस बचे थे तिनको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे इसप्रकार युद्ध करनेको चल दिया, जैसे पतङ्ग बहुतसे पतङ्गोंको साथ लेकर दीपककी ज्वालाके ऊपरको जाता है. सो श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसों करके सहित रावणको आताहुआ देखकर वह जो कुछ राक्षस थे सबको संग्राममें मारडाला ॥ १ ॥ २ ॥ और अपने आप रावणभी हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका बाण लगनेसे घायल होकर शीघ्रही अपने दशोंमुख नीचेको करेहुए लंकामें चलागया ॥३॥ और श्रीरामचन्द्रजीका और हनुमानका बडाभारी अमानुष पुरुषार्थ देखकर रावण शीघ्रही शुक्राचार्य्यके समीप गया ॥४॥ और नमस्कार करके हाथ जोड़कर रावण शुक्राचार्य्यसे कहने लगा,

श्रीमहादेव उवाच ॥ स विचार्य सभामध्ये राक्षसैः सह मन्त्रिभिः ॥ निर्ययौ येऽवशिष्टास्ते राक्षसैः सह राघवम् ॥१॥ शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्वलन्तमिवानलम् ॥ ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि ॥ २ ॥ स्वयं रामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेन वक्षसि ॥ व्यथितस्त्वरितं लङ्कां प्रविवेश दशाननः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा रामस्य बहुशः पौरुषं चाप्यमानुषम् ॥ रावणो मारुतेश्चैव शीघ्रं शुक्रान्तिकं ययौ ॥ ४ ॥ नमस्कृत्य दशग्रीवः शुक्रं प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ भगवन् राघवेणैवं लङ्का राक्षसयूथपैः ॥ ५ ॥ विनाशिता महादैत्या निहताः पुत्रबान्धवाः ॥ कथं मे दुःखसन्दोहस्त्वयि तिष्ठति सद्गुरौ ॥ ६ ॥ इति विज्ञापितो दैत्यगुरुः प्राह दशाननम् ॥ होमं कुरु प्रयत्नेन रहसि त्वं दशानन ॥ ७ ॥ यदि विघ्नो न चेद्धोमे तर्हि होमानलोत्थितः ॥ ८ ॥ महान् रथश्च वाहाश्च चापतूणीरसायकाः ॥ सम्भविष्यन्ति तैर्युक्तस्त्वमजेयो भविष्यसि ॥ ९ ॥ गृहाण मन्त्रान्मदत्तान् गच्छ होमं कुरु द्रुतम् ॥ इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा रावणो राक्षसाधिपः ॥ १० ॥

कि हे भगवन्! रामचन्द्रने इसप्रकार राक्षसोंके समूहों सहित लंका नष्ट करदी, बड़ेबड़े बली राक्षस और मेरे पुत्र बान्धव सब मारडाले, हे भगवन्! आपसे दयालु सत्गुरु होनेपरभी यह दुःखका समूह मुझै किसकारणसे प्राप्त होता है! इसप्रकार निवेदन करनेपर दैत्य गुरु शुक्राचार्यजी रावणसे बोले, कि हे रावण! तू एकान्तमें जाकर यत्नपूर्वक हवन कर॥५॥६॥७॥यदि तेरे हवन करनेमें विघ्न नहीं होयगा तो अग्निमेंसे बडाभारी रथ—घोडे—धनुष—तरकस—और बाण उत्पन्न होंगे, इनको प्राप्त होकर तू अजेय (किसीके भी जीतनेमें न आनेवाला) होजायगा ॥८॥९॥ और मेरे उपदेश करेहुए मंत्रोंको ग्रहण कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीघ्रही जाकर हवन कर. इसप्रकार शुक्राचार्य्यके कहनेपर राक्षसपति रावणने शीघ्रही जाकर अपने स्थानमेंही एकपातालके समान गुफा बनवाई, और लङ्काके चारोंओरके दरवाजोंके यत्नपूर्वक किवाड बन्द करवादिये ॥१०॥११॥ और अभिचारकर्म्म (मारणउच्चाटनादि) में जो कुछ सामग्री कही है, उन सबको होम करनेके निमित्त इकट्ठा करके, गुफामें चलागया और एकान्तमें चूपचाप बैठकर हवन करनेलगा ॥ १२॥ रावणका भ्राता बिभीषण बडाभारी धूम उठताहुआ देखकर भयसे व्याकुल होगया, और वह धूम श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया॥१३॥ और कहने लगा कि हे श्रीरामचन्द्रजी! देखो रावणने होम करनेका प्रारम्भ किया है, सो यदि हवनको समाप्त कर लेगा तो उसको कोईभी नहीं जीत सकैगा ॥१४॥ इसकारण शीघ्रही हवनमें विघ्न करनेके निमित्त वानरोंको भेजिये, सो श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार बिभीषणके कहनेको अंगीकार करके सुग्रीवकी संमतिसे अंगद

गुहां पातालसदृशीं मन्दिरे स्वे चकार ह ॥ लङ्काद्वारकपाटादि बद्ध्वा सर्वत्र यत्नतः ॥११॥ होमद्रव्याणि सम्पाद्य यान्युक्तान्याभिचारिके॥ गुहां प्रविश्य चैकान्ते मौनी होमं प्रचक्रमे ॥ १२ ॥ उत्थितं धूममालोक्य महान्तं रावणानुजः ॥ रामाय दर्शयामास होमधूमं भयाकुलः ॥ १३ ॥ पश्य राम दशग्रीवो होमं कर्तुं समारभत् ॥ यदि होमः समाप्तः स्यात्तदाऽजेयो भविष्यति ॥ १४ ॥ अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाशु हरीश्वरान् ॥ तथेति रामः सुग्रीवसम्मतेनाङ्गदं कपिम् ॥ १५ ॥ हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेश महाबलान् ॥ प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम् ॥ १६ ॥ दशकोट्यः प्लवङ्गानां गत्वा मन्दिररक्षकान् ॥ चूर्णयामासुरश्वांश्च गजांश्च न्यहनन् क्षणात् ॥ १७ ॥ ततश्च सरमा नाम प्रभाते हस्तसंज्ञया ॥ बिभीषणस्य भार्या सा होमस्थानमसूचयत् ॥ १८॥ गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनैः ॥ चूर्णयित्वा महासत्वः प्रविवेश महागुहाम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा दशाननं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम् ॥ ततोऽङ्गदाज्ञया सर्वे वानरा विविशुर्द्रुतम् ॥ २० ॥

और हनुमान् आदि महाबली वानरोंको आज्ञा दी, सो वह दशकरोड़ वानर चल दिये, और उन्होंने लंकाके परकोटेको उलांघकर रावणके मन्दिरमें जाकर पहिले तो क्षणमात्रमें रावणके मंदिरको रक्षा करनेवाले राक्षसोंका नाशकर दिया फिर हाथी और घोंडोंका प्राणान्त करडाला यह सब कौतुक तो रात्रि २ मेंही होचुका ॥१५॥१६॥१७॥ इतनेहीमें प्रातःकालके समय सरमानामक बिभीषणकी स्त्रीने हाथके संकेत (इशारे) से हवनका स्थान बतादिया ॥१८॥ सो अंगदने गुफाके ऊपर ढकेहुए पत्थरको पैरोंसे कुचलकर चूरा कर दिया, और वह महाबली अंगद गुहाके भीतर चलागया ॥ १९ ॥ और भी सब वानर अंगदकी आज्ञाके अनुसार शीघ्रतासे घुसगए, और तहाँ नेत्रोंको मींचे हुए दृढ़ आसन मारकर बैठेहुए रावणको देखकर, तहाँ वानर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बडा कोलाहल करने लगे, रावणके सेवकोंको मारने लगे; और हवनकुण्डके चारोंओर धरीहुई सामग्रीको इधर उधर फेंकने लगे ॥२०॥२१॥ वानरोंमें अग्रगण्य महाबली हनुमान्जीने क्रोध पूर्वक रावणके हाथमेंसें बलपूर्वक (जबरदस्ती) स्रुवा छीन लिया, और स्रुवेसे जल्दी जल्दी रावणके ऊपर प्रहार करनेलगे ॥ २२ ॥ सम्पूर्ण वानर दाँतोंसे काटने लगे, हवनकी लकडियें उठाउठाकर रावणके चारोंओरसे मारने लगे, परन्तु रावणने जयकी इच्छासे अपने ध्यानको नहीं छोड़ा ॥ २३ ॥ इतनेहीमें अंगद रणवासके महलमें जाकर अत्यन्तही शीघ्र रावणकी स्त्री मंदोदरीकी चोटी पकड़कर खैंचलाया ॥ २४ ॥ और रावणके सामनेही अनाथके समान विलाप करतीहुई तिस मन्दोदरीकी रत्नजटित (जरीके कामकी) चोली

तत्र कोलाहलं चक्रुस्ताडयन्तश्च सेवकान् ॥ सम्भारांश्चिक्षिपुस्तत्र होमकुण्डे समन्ततः ॥ २१ ॥ स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलादृषा ॥ तेनैव संजघानाशु हनूमान् प्लवगाग्रणीः ॥ २२ ॥ घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः ॥ न जहौ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया ॥ २३ ॥ प्रविश्यान्तःपुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तरः ॥ समानयत्केशबन्धे धृत्वा मन्दोदरीं शुभाम् ॥ २४ ॥ रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत् ॥ विददाराङ्गदस्तस्याः कञ्चुकीं रत्नभूषिताम् ॥२५॥ मुक्ता विमुक्ताः पतिताः समन्ताद्रत्नसञ्चयैः ॥ श्रोणिसूत्रं निपतितं त्रुटितं रत्नचित्रितम् ॥ २६ ॥ कटिप्रदेशाद्विस्रस्ता नीवी तस्यैव पश्यतः ॥ भूषणानि च सर्वाणि पतितानि समन्ततः ॥ २७ ॥ देवगन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टैः प्लवङ्गमैः ॥ मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम् ॥ २८ ॥ क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम् ॥ निर्लज्जोऽसि परैरेवं केशपाशे विकृष्यते ॥ २९ ॥

अंगदने फाड डाली ॥ २५ ॥ उस चोलीमें लगाये हुए रत्नोंके समूह और मोती छूटकर गिरपडे, तथा नानाप्रकारके रत्नोंसे जडीहुई मन्दोदरीकी कमरकी जंजीर टूटकर गिरगई ॥ २६ ॥ और रावणके सामनेही मन्दोदरीकी कमरके लहँगे कानाडा (खैंचाखैंचीमें) खुलगया, सम्पूर्ण आभूषण चारोंओर टूटटूटकर गिरपडे ॥ २७ ॥ और रावणके यहाँ जो देवकन्या और गन्धर्वकन्या थीं, उनकीभी रावणके सामने लाकर प्रसन्नमुख अंगदने वही दशा करी जो मन्दोदरीकी करी थी, उससमय मन्दोदरी रावणके सन्मुख बडा रुदन करनेलगी ॥ २८ ॥ और दीन हो करुणस्वरसे विलाप करतीहुई रावणसे कहने लगी, कि अरे! तू बडा निर्लज्ज है, जो तेरे सामनेही तेरे शत्रु तेरी स्त्रीके चोटीको पकडकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खैंच रहे हैं, तथापि तुझे लज्जा नहीं आती और अपना हवन करनेमेंही लगरहा है, अरे ! जिसके देखतेहुए दुष्ट शत्रु जिसकी स्त्रीको ताडन करैं उसका तो वहाँही मरण है, क्योंकि ऐसे जीवित रहनेसे तो मरण होजानाही श्रेष्ठ है. हा ! मेघनाद ! कष्ट है जो तेरी माताको वानर क्लेश दे रहे हैं ॥२९॥३०॥३१॥ यदि तू जीवित रहता तो यह दुःख मुझे काहेको उठानापडता ! और मेरे पतिने तो केवल एक अपने जीवनकी आशा करके स्त्री और लज्जा दोनोंको त्याग दिया ॥३२॥ राजा रावण इसप्रकार मंदोदरीका विलाप सुनकर खडा होगया, और खड्ग लेकर " मंदोदरीको छोड दे " इसप्रकार कहा और फिर रावणने सावधान होकर अंगदकी कमरमें खड्गका प्रहार किया, तबतो सब वानर छोड छोड कर भाग गए, और

भार्या तवैव पुरतः किं जुहोषि न लज्जसे ॥ हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभिः ॥३०॥ मर्तव्यं तेन तत्रैव जीवितान्मरणं वरम् ॥ हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते बत वानरैः ॥ ३१ ॥ त्वयि जीवति मे दुःखमीदृशं च कथं भवेत् ॥ भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया ॥ ३२ ॥ श्रुत्वा तद्देवितं राजा मन्दोदर्या दशाननः ॥ उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन् ॥ ३३ ॥ जघानाङ्गदमव्यग्रः कटिदेशे दशाननः ॥ ततोत्सृज्य ययुः सर्वे विध्वंस्य हवनं महत्॥३४॥रामपार्श्वमुपागम्य तस्थुः सर्वे प्रहर्षिताः ॥ रावणस्तु ततो भार्यामुवाच परिसान्त्वयन् ॥३५॥ दैवाधीनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते ॥ त्यज शोकं विशालाक्षि ज्ञानमालम्ब्य निश्चितम् ॥ ३६ ॥ अज्ञानप्रभवः शोकः शोको ज्ञानविनाशकृत् ॥ अज्ञानप्रभवाहंधीः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३७ ॥

उस बडे भारी हवनको विध्वंस करगए ॥ ३३ ॥३४ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर सब वानर प्रसन्न होकर बैठगए. इधर जब वानर चले गए तब रावण अपनी स्त्रीको समझाताहुआ कहनेलगा ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! यह जगत् दैवाधीन है इस कारण जीवताहुआ पुरुष क्या नहीं देखता है ? अर्थात् जबतक प्राणी जीवित रहताहै, तबतक प्रारब्धानुकूल दुःख सुख सबही देखनेमें आतेहैं, हे विशालनेत्रे ! जो कुछ भवितव्य है उसको कोई नहीं दूर कर सक्ता, ऐसा विचार कर शोकको त्याग दो ॥३६॥ हे प्रिये ! यह शोक अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला और ज्ञानको नष्ट करनेवाला है, और इन शरीरआदि अनात्म (असत्) पदार्थोंके विषे अहंबुद्धि (मैं शरीर हूँ, इत्यादिरूप अहंकार) भी अज्ञानसे ही होती है ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उस अहंबुद्धिसेही पुत्र-स्त्री-आदि संबन्ध होताहै, फिर संसारबन्धनके हेतुभूत कर्म्मोंकी उत्पत्ति होतीहै, हर्ष-शोक-भय-क्रोध-लोभ-मोह-इच्छा-जन्म-मरण-और वृद्धा आदि अवस्था यह सब अज्ञानसेही होतेहैं, और आत्मा तो केवल-शुद्ध-मुक्त-निर्लेप-आनन्दस्वरूप और सम्पूर्ण सुखदुःखादि भावोंकरके रहित तथा सर्वव्यापी है. तिस सत्स्वरूप आत्माका न किसीसे संयोग होताहै और न किसीसे वियोग होताहै ॥३८॥ ३९॥४०॥ इस-कारण हे सुन्दरि ! अपने आत्माका इसप्रकार वास्तविक रूप जानकर शोकको त्याग दे, मैं अभी जाता हूँ, सो यातो मैं ही रामलक्ष्मणको मारकर आऊंगा, नहीं तो वहही अपने वज्रके समान बाणोंसे मुझे विदीर्ण करैंगे तोभी मैं उनके परमपदको ही प्राप्त होऊंगा ॥४१॥४२॥ और हे प्रिये !

तन्मूलः पुत्रदारादिसंबन्धः संसृतिस्ततः ॥ हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः॥३८॥अज्ञानप्रभवा ह्येते जन्ममृत्युजरादयः॥ आत्मा तु केवलः शुद्धो व्यतिरिक्तो ह्यलेपकः ॥३९॥ आनन्दरूपो ज्ञानात्मा सर्वभावविवर्जितः ॥ न संयोगो वियोगो वा विद्यते केनचित्सतः॥४०॥ एवं ज्ञात्वा स्वमात्मानं त्यज शोकमनिन्दिते ॥ इदानीमेव गच्छामि हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ॥४१॥ आगमिष्यामि नोचेन्मां दारयिष्यति सायकैः ॥ श्रीरामो वज्रकल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पदम् ॥४२॥ तदा त्वया मे कर्तव्या क्रिया मच्छासनात्प्रिये ॥ सीतां हत्वा मया सार्धं त्वं प्रवेक्ष्यसि पावकम् ॥ ४३ ॥ एवं श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्यातिदुःखिता ॥ उवाच नाथ मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु ॥ ४४ ॥ शक्यो न राघवो जेतुं त्वया चान्यैः कदाचन ॥ रामो देववरः साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४५॥ मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनुं वैवस्वतं प्रभुः ॥ ररक्ष सकलापद्भ्यो राघवो भक्तवत्सलः ॥ ४६ ॥

जब मेरा श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे प्राणान्त होजायगा, तब तू सीताको मारकर मेरी पारलौकिकक्रिया (प्रेतक्रिया) करना, और फिर तेरी इच्छा होय तो मेरे मृतकशरीरके साथ चितामें प्रवेश करके अपने भी प्राणोंको त्याग देना ॥ ४३ ॥ इसप्रकार तिस रावणके वचनको सुनकर मंदोदरी अत्यन्त दुःखित हुई, और कहने लगी कि हे नाथ ! मेरा सत्य वाक्य सुनो और उसके ही साथ वर्त्ताव करो ॥ ४४ ॥ हे नाथ ! रघुनाथजी तुमसे और अन्य राक्षसोंसेभी कभी नहीं जीतनेमें आवेंगे, श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् देववर्य और प्रकृति तथा जीवोंके प्रेरक हैं ॥ ४५ ॥ और यही श्रीरामचन्द्रजी पहिले कल्पमें मत्स्यरूप धारण करके वैवस्वतमनुकी संपूर्ण आपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले हुए थे, क्योंकि रघुनाथजी सदाही भक्तोंकी रक्षा करते हैं ॥ ४६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और इनही श्रीरामचंद्रजीने पहिले समुद्र मथनके समयमें सौयोजन चौड़ा कच्छपका रूप धारण करके मन्दराचल पर्वतको पीठपर धारण कियाथा ॥४७॥ इनही महात्मा श्रीरामचंद्रजीने किसी समयमें पृथ्वीका उद्धार करनेके निमित्त वराहावतार धारण करके अतिदुराचारी हिरण्याक्षका वध किया था ॥ ४८ ॥ इनही रघुनाथजीने पूर्वकालमें नृसिंहावतार धारण करके त्रिलोकीके कण्टक (शत्रु) हिरण्यकशिपु दैत्यका संहार किया था ॥ ४९ ॥ इनही श्रीरामचंद्रजीने वामनावतार धारण करके तीन चरणोंसे त्रिलोकीको नापकर और राजा बलिको बांधकर वह त्रिलोकी अपने सेवक इंद्रको समर्पण करदी थी, जब क्षत्रियरूपधारी राक्षसोंका बहुतसा पृथ्वीपर भार होगयाथा तब इनही श्रीरामचंद्रजीने परशुरामावतार धारण करके अनेक

रामः कूर्मोऽभवत्पूर्वं लक्षयोजनविस्तृतः ॥ समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम् ॥४७॥ हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना ॥ क्रोड रूपेण वपुषा क्षोणीमुद्धरता क्वचित् ॥ ४८ ॥ त्रिलोककण्टकं दैत्यं हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ हतवान्नारसिंहेन वपुषा रघुनन्दनः ॥ ४९ ॥ विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलिं बद्ध्वा जगत्त्रयम् ॥ आक्रम्यादात्सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तमः ॥५०॥ राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भरावहाः॥ तान्हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः ॥५१॥ स एव साम्प्रतं जातो रघुवंशे परात्परः ॥ भवदर्थं रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागतः॥५२॥ तस्य भार्यां किमर्थं वा हृता सीता वनाद्बलात् ॥ मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्याऽपि निधनाय च ॥ ५३ ॥ इतःपरं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे ॥ बिभीषणाय राज्यं तु दत्त्वा गच्छामहे वनम् ॥ ५४ ॥ मन्दोदरीवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ कथं भद्रे रणे पुत्रान् भ्रातॄन् राक्षसमण्डलम् ॥ ५५ ॥

वार पृथ्वीको जीतके कश्यप मुनिको देदीथी ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उनही प्रकृतिसे पर परमात्माने इस समय तुम्हारा संहार करनेके निमित्त रघुकुलमें जन्म लेकर मनुष्यभाव स्वीकार किया है ॥ ५२ ॥ सो तुमने उनही श्रीरामचंद्रजीकी स्त्री सीता वनमेंसे बलपूर्वक (जबरदस्ती) क्यों हरण करी थी? प्रतीत होता है कि तुमने पुत्र मेघनादका और अपना नाश करनेके निमित्तही सीताका हरण किया था॥५३॥ अब तुम सीताको तो श्रीरामचंद्रजीके पास भेज दो, और लंकाका राज्य बिभीषणको देकर दोनोजन वनको चलैं ॥ ५४ ॥ इसप्रकार मंदोदरीका वचन सुनकर रावण कहने लगा, कि हे सुन्दरी! संग्राममें रामचंद्रके हाथसे पुत्र, भ्राता और राक्षसोंके समूहको मरवाकर वनमें रहता हुआ किसप्रकार जीवनको धारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करूंगा? इस कारण अब तो मैं श्रीरामचंद्रके साथ युद्धही करूँगा; क्योंकि यदि मैं रामचंद्रके अत्यंत शीघ्र चलनेवाले बाणोंसे विदीर्ण होकर, मरणको प्राप्त होऊँगा, तबभी विष्णुके परमपद (वैकुंठ) को ही जाऊँगा, मैं जानता हूँ कि रघुनाथजी साक्षात् विष्णुरूप हैं, और यहभी जानता हूँ कि जानकी साक्षात् लक्ष्मीरूप है, और जानकर ही जनककुमारी सीताको मैं बलपूर्वक हरण करके लाया हूँ ॥५५॥५६॥५७॥ और हे प्रिये ! श्रीरामचंद्रजीके हाथसे मरणको प्राप्त होकर तुमको और संपूर्ण संसारको त्यागकर अपने मृतकबांधवोंके साथ परमपदको प्राप्त होऊँगा ॥ ५८ ॥ जिस परमानंदरूप शुद्धगतिको मुमुक्षु पुरुष सेवन करते हैं उसही गतिको मैं श्रीरामचंद्रजीके हाथसे संग्राममें मरण होनेके अनंतर प्राप्त होऊंगा ॥५९॥ हे प्रिये ! इस संसारमें राक्षस-

घातयित्वा राघवेण जीवामि वनगोचरः ॥ रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः ॥ ५६ ॥ विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ॥ ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात् ॥ ५७ ॥ रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम् ॥ विमुच्य त्वां तु संसारान्नमिष्यामि सह प्रिये ॥ ५८ ॥ परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः ॥ तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे ॥ ५९॥ प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम् ॥६०॥ क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुगं भ्रमाढ्यं दारात्मजा-प्तधनबन्धुझषाभियुक्तम् ॥ और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि ॥ ६१ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमा-महेश्वरसं० युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

देहसे किऐ हुए पापोंका अंतकालमें श्रीरामचंद्रजीका स्मरण और उनकी मूर्तिका दर्शन करनेसे दूर करके परम दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त होऊँगा ॥ ६० ॥ हे प्रिये ! अविद्या (अपने वास्तनिक स्वरूपका विस्मरण) १ अस्मिता (असत्शरीरआदिकोही आत्मा जानना) २, राग ३, द्वेष ४ और अभिनिवेश (मरणका त्रास) ५, यह पांच क्लेशही हैं तरंगैं जिसमें, और सुखदुःखरूप हैं भवँर जिसमें और स्त्री, पुत्र, बान्धव, धन, तथा कुटुंबी ही हैं मत्स्यआदि जिसमें, और क्रोधही है वड़वानल अग्नि जिसमें, और कामदेवही है जल जिसमें, ऐसे इस असार समुद्रको तरकर मैं श्रीरामचंद्रजीकोही प्राप्त होऊंगा ॥६१॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! उस समय इसप्रकार प्रेमयुक्त वचनोंसे राणीमंदोदरीको समझाकर रावण संग्राममें श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध करनेके निमित्त चल दिया, दृढ़ रथमें बैठकर रावणने अनेक राक्षस साथमें लेलिये, उस रथमें सोलह पहिये थे, और वह रथ रक्षा करनेके निमित्त चर्म्मसे मढाहुआ और कूबर (घाडोंको बांधनेकी दांडी) सहित था, पिशाचोंके समान मुखवाले भयंकर गर्दभ उसमें जुतेहुए थे, अतएव उसको देखकर सबको भय लगता था, वह रथ सब प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसहित और सबप्रकारकी युद्धकी सामग्रीसे युक्त था ॥१॥२॥३॥ उस रथपर बैठकर महाभयानक है आकार जिसका ऐसा वह रावण रणभूमिमें चलदिया, सो उस अतिनिर्दयी भयंकर रावणको आताहुआ देखकर श्रीरामचन्द्रजीकी वानरोंकी सेना उससमय भयभीत होगई ॥४॥५॥

श्रीमहादेव उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा राज्ञीं मन्दोदरीं तदा ॥ रावणः प्रययौ योद्धुं रामेण सह संयुगे ॥ १ ॥ दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः ॥ चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूबरम् ॥ २ ॥ पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तं भयावहम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रसहितं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ३ ॥ निश्चक्रामाथ सहसा रावणो भीषणाकृतिः ॥ आयान्तं रावणं दृष्ट्वा भीषणं रणकर्कशम् ॥ ४ ॥ सन्त्रस्ताभूत्तदा सेना वानरी रामपालिता ॥५॥ हनूमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ ॥ आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥ ६ ॥ मुष्टिबन्धं दृढं बद्ध्वा ताडयामास वेगतः ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्रथे ॥ ७ ॥ मूर्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः ॥ उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः ॥ ८ ॥ हनूमानाह तं धिङ्मां यस्त्वं जीवसि रावण ॥ त्वं तावन्मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण ॥ ९ ॥ पश्चान्मया हतः प्राणान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः ॥ तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनाऽपि ताडितः ॥ १० ॥

इतनेहीमें हनुमान्‌जी कूदकर रावणसे युद्ध करनेके निमित्त आगये, और आतेही परमपराक्रमी हनुमान्‌जीने रावणके हृदयमें बड़ी जोरसे एक दृढ़ घूंसा मारा उस घूंसेके लगनेसे रावण घुटुओंके बल रथमें गिरगया; और मूर्च्छित होगया, फिर दो घडीके अनंतर उठकर हनुमान्‌जीसे कहने लगा, कि मैं जानता हूँ तुम बड़े शूर हो ॥६॥७॥८॥ तब तो हनुमान्‌जी कहने लगे, कि अरे रावण! मेरी शूरताको धिक्कार है जो तू अबभी जीता रहगया. अच्छा, हे रावण! अब पहिले तू मेरे हृदयमें एक घूंसा मार, फिर पीछेसे मैं तेरे एक घूंसा मारूंगा, तिस घूंसेके प्रहारसे निःसन्देह तू अपने प्राणोंको यहाँही छोड़देगा, रावणने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस बातको स्वीकार किया, और पहिले हनुमान्जीके हृदयमें एक घूंसा मारा ॥९॥१०॥ तिस घूंसेके लगनेसे हनुमान्जीके नेत्र घूमने लगे और किंचिन्मात्रमूर्च्छा आगई, फिर चेतन होकर, हनुमान्जी रावणके मारनेके निमित्त उद्यत हुए ॥११॥तब तो राक्षसपति रावण भयभीत होकर हनुमान्जीके आगेसे दूसरे स्थानपर युद्ध करनेको चलागया, फिर हनुमान्, अंगद, नल, और नील, ये चारों इकट्ठे हुए और अपने सन्मुख अग्निवर्ण, सर्परोमक, खड्गरोमक तथा वृश्चिकरोमक, इन चार वीर राक्षसोंको देखकर मारने लगे, और एक एकने क्रमसे एक एकको मारा, इस प्रकार उन चारों वानरोंने परम पराक्रमी उन चारों राक्षसोंको मारकर अलग २ सिंहके समान गर्जना करी, फिर श्रीरामचन्द्रजीके समीप आगये, तबतो अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ अपने ओंठो-

विघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ ॥ संज्ञामवाप्य कपिराट् रावणं हन्तुमुद्यतः ॥११॥ ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः॥ हनूमानङ्गदश्चैव नलो नीलस्तथैव च ॥ १२ ॥ चत्वारः समवेताग्रे दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवान् ॥ अग्निवर्णं तथा सर्परोमाणं खड्गरोमकम् ॥ १३ ॥ तथा वृश्चिकरोमाणं निर्जघ्नुः क्रमशोऽसुरान् ॥ चत्वारश्चतुरो हत्वा राक्षसान् भीमविक्रमान् ॥ १४ ॥ सिंहनादं पृथक्कृत्वा रामपार्श्वमुपागताः ॥ ततः क्रुद्धो दशग्रीवः संदश्य दशनच्छदम् ॥१५॥ विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत ॥ दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥१६॥ आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ॥ रामस्य पुरतः सर्वान्वारानपि विव्यथे ॥१७॥ ततः पावकसंकाशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥१८॥ रथस्थं रावणं दृष्ट्वा भूमिष्ठं रघुनन्दनम् ॥ आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

को काटता हुआ, और नेत्रोंको फैलाताहुआ दुष्ट रावण श्रीरामचन्द्रजीके ही ऊपरको दौड़ा और रथपर स्थित तिस रावणने श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर महाभयंकर, वज्रके समान सौबाणोंकी इसप्रकार वर्षा करी, जैसे मेघ धाराओंसे जलको वर्षाता है, और श्रीरामचन्द्रजीके आगे खडेहुए संपूर्ण वानरोंकोभी पीडित करने लगा ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥ तब तो श्रीरामचन्द्रजी सावधान होकर रावणके ऊपर रणमें सुवर्णसे भूषित अग्निके समान प्रकाशवान् बाणोंकी वर्षा करने लगे॥१८॥इस समय रावणको रथपर स्थित और श्रीरामचन्द्रजीको पृथ्वीपर स्थित देखकर इंद्रजी,मातलिनामक अपने सारथीको बुलाकर यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वचन बोला ॥ १९ ॥ कि हे मातले ! शीघ्रही हमारा रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाओ, और पृथ्वीपर यह (रथपर श्रीरामचन्द्रजीको बैठानारूप) मेरा बडाभारी कार्य्य करो ॥२०॥ जब इसप्रकार इन्द्रजीने कहा तब तो उस मातलिनामक इन्द्रजीके सारथीने उनको नमस्कार करके शीघ्रही श्रेष्ठ रथमें हरे घोडोंको जोत लिया ॥ २१ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीकी जयके निमित्त मातलि रथको लेकर स्वर्गलोकसे चलदिया, और पृथ्वीतलपर आकर उस अचानक आएहुए रथपर बैठाहुआ हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगा, कि हे रघुकुलशिरोमणे ! मुझे इन्द्रने भेजा है ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! महाराज इन्द्रने आपकी जयके निमित्त यह अपना रथ भेजा है, और हे महाराज ! शोभायमान ऐन्द्र धनुष अभेद्य (जिसको कोई न तोड़ सकै)

रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम् ॥ त्वरितं भूतलं गत्वा कुरु कार्यं ममानघ ॥ २० ॥ एवमुक्तोऽथ तं नत्वा मातलिर्देवसारथिः ॥ ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥ २१ ॥ स्वर्गाज्जयार्थं रामस्य ह्युपचक्राम मातलिः ॥ अब्रवीच्च ततो राममप्रतर्क्यरथे स्थितः ॥ प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ॥ २२ ॥ रथोऽयं देवराजस्य विजयाय तव प्रभो ॥ प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्रं च भूषितम् ॥ २३ ॥ अभेद्यं कवचं खड्गं दिव्यतूणीयुगं तथा ॥ आरुह्य च रथं राम रावणं जहि राक्षसम् ॥२४॥ मया सारथिना देव वृत्रं देवपतिर्यथा ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥ २५ ॥ आरुरोह रथं रामो लोकान्लक्ष्म्या नियोजयन् ॥ ततोऽभवन्महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम् ॥२६॥ महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमतः ॥ आग्नेयेन च आग्नेयं दैवं दैवेन राघवः ॥ २७ ॥

कवच–दिव्य खड्ग–और दोनो तरकस यह सब युद्धकी सामग्री आपके लिये भेजी है, सो हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप इस रथके ऊपर बैठकर राक्षस रावणका संहार करिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे देव ! जिसप्रकार मुझ सारथीके साथ महाराज इन्द्रजीने वृत्रासुरका संहार कियाथा, इसीप्रकार आप इस रावणका संहार करिये, इसप्रकार मातलिके कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस सर्वोत्तम रथको परिक्रमा करके नमस्कार किया ॥ २५ ॥ और फिर उस रथपर श्रीरामचन्द्रजी चढे, उससमय सम्पूर्ण लोकोंके प्राणी रावणका मरणकाल निकटही जानकर अति आनन्दित हुए, फिर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी और परम प्रवीण रावणका रोमाञ्चोंको खडा करनेवाला बडा भयंकर युद्ध हुआ, अस्त्रविद्यामें परम प्रवीण जो श्रीरामचन्द्रजी तिन्होने रावणके आग्नेय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्त्रको आग्नेय अस्त्रसे काट दिया, और रावणने जिस देवताके मंत्रसे अभिमंत्रित करके बाणको छोडा, श्रीरामचन्द्रजीने उस बाणको उसी देवताके मंत्रसे अभिमंत्रित किये हुए अपने बाणसे काट दिया, तब तो अस्त्रविद्यामें परम प्रवीण क्रोधमें भरेहुए राक्षस रावण मंत्रसे अभिमंत्रित किया-हुआ महाघोर अस्त्र श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर छोड़ने लगा, वह रावणके छोडे हुए सुवर्णके पुंखोंसे शोभायमान बाण महाविषधारी सर्प होकर श्रीरामचन्द्रजीके चारोंओर गिरने लगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ उससमय तिस रणभूमिमें सर्पके मुखके समान अग्रभागवाले और अग्निको उगलतेहुए तिन रावणके बाणोंसे सम्पूर्ण दिशा और विदिशा व्याप्त होगई ॥३०॥ तब तो श्रीरामचन्द्रजी सर्पके समान तिन बाणोंको चारों ओर व्याप्त देखकर रावणके सन्मुख

अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥ ततस्तु ससृजे घोरं राक्षसं चास्त्रमस्त्रवित् ॥ २८ ॥ क्रोधेन महताविष्टो रामस्योपरि रावणः ॥ रावणस्य धनुर्मुक्ताः सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥ शराः काञ्चनपुङ्खाभा राघवं परितोऽपतन् ॥ २९ ॥ तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलं मुखैः ॥ दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाऽभवन् ॥ ३० ॥ रामः सर्पास्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान् ॥ सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुरः प्रावर्तयद्रणे ॥ ३१ ॥ रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिणः ॥ चिच्छिदुः सर्पबाणास्तान्समन्तात्सर्पशत्रवः ॥ ३२ ॥ अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धरः ॥ अभ्यवर्षत्ततो रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः॥३३॥ ततः पुनः शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् ॥ अर्दयित्वा तु घोरेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥ ३४ ॥ पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतुं च काञ्चनम् ॥ ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ३५ ॥

महाघोर सौपर्ण (जिसके देवता गरुड हैं ऐसा) अस्त्र छोड़ना प्रारम्भ किया ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोड़ेहुए वह सौपर्णबाण गरुड़रूप होकर चारोंओर फैलेहुए उन सर्परूप रावणके बाणोंको शत्रुरूप होकर नष्ट करनेलगे ॥३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी जब संग्राममें सौपर्ण अस्त्र छोडने लगे, तब तो रावणने श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर बाणोंकी धारारूपसे घोर वर्षा करी, इसप्रकार बाणोंके समूहसे सहजमेंही अपना कार्य्य सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको पीडित करके फिर एक घोर बाण छोडकर सारथी मातलिको भी वेध दिया॥३३॥३४॥सुवर्णकी बनी हुई रथकी ध्वजाको काटकर रावणने रथके भीतर गिराके, क्रोधसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भराकर इन्द्रके उन घोडोंको भी बाणोंसे वेध दिया ॥३५॥ उससमय श्रीरामचन्द्रजीको घबडाया हुआसा देखकर देवता-गंधर्व-चारण-पितर और महर्षि अतिविषादको प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥ और बिभीषण सहित सम्पूर्ण वानरभी अत्यन्त दुःखित हुए, और दशमुख वीस भुजधारी, और धनुष धारण करे-हुए रावण उस समय मैनाकपर्वतके समान प्रतीत होता था, तबतो क्रोधकरके लाल २ हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीरामचन्द्रजी भ्रुकुटिको चढ़ाकर अपने योग्य क्रोधको धारण करके राक्षसको जलाने लगे, और वर्षाकालमें दीखनेवाले इन्द्रधनुषके समान आकारवाले धनुषको लेकर, और दूसरे हाथमें प्रलयकालके अग्निके समान प्रकाशवान् बाणको लेकर नेत्रोंसे जलातेहुएसे रावणके समीप दीखनेलगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और फिर

विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ॥ आर्ताकारं हरिं दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षयः ॥३६॥ व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सबिभीषणाः ॥ दशा-स्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥३७॥ ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वतः ॥ रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥३८॥ कोपं चकार सदृशं निर्दहन्निव राक्षसम् ॥ धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम्॥३९॥गृहीत्वा पाणिना बाणं कालानलसमप्रभम् ॥ निर्दहन्निव च-क्षुर्भ्यां ददृशे रिपुमन्तिके ॥४०॥ पराक्रमं दर्शयितुं तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यतः॥४१॥विकृष्य चापं राम-स्तु रावणं प्रतिविध्य च ॥ हर्षयन्वानरानीकं कालान्तक इवाबभौ ॥४२॥क्रुद्धं रामस्य वदनं दृष्ट्वा शत्रुं प्रधावतः ॥ तत्रसुः सर्वभूतानि च-चाल च वसुन्धरा ॥४३॥ रामं दृष्ट्वा महारौद्रमुत्पातांश्च सुदारुणान् ॥ त्रस्तानि सर्वभूतानि रावणं चाविशद्भयम् ॥४४॥ विमानस्थाः सुर-गणाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ ददृशुः सुमहायुद्धं लोकसंवर्तकोपमम् ॥ ऐन्द्रमस्त्रं समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत् ॥ ४५ ॥

अपना पराक्रम दिखानेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजीने अपने तेजकरके अग्निके समान प्रकाश किया, सब लोकोंके देखते हुए ही कालके समान स्वरूप धारण कर लिया ॥४१॥ और धनुषको खैंचकर श्रीरामचन्द्रजी बाणोंसे रावणको वेधकर वानरोंकी सेनाको हर्षित करते हुए उस समय काल और मृत्युके समान शोभायमान हुए ॥ ४२ ॥ शत्रुके ऊपर दौडतेहुए श्रीरामचन्द्रजीका क्रोधयुक्त मुख देखकर सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगए, और पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ ४३ ॥ महाभयंकर रूप श्रीरामचन्द्रजीको और दारुण उत्पातोंको देखकर सम्पूर्ण प्राणि त्रासको प्राप्त हुए और रावणभी भयभीत हो गया ॥ ४४ ॥ जगत्के प्रलयके समान महाभयंकर उस युद्धको देवता, सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर विमानोंमें बैठ कर देखने लगे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतनेहीमें श्रीरामचन्द्रजीने ऐन्द्र अस्त्र लेकर रावणके शिरोंको काट दिया ॥ ४५ ॥ तबतो रुधिरसे भीगे हुए वह बहुतसे रावणके शिर आकाशमेंसे इसप्रकार गिरे, जैसे तालके वृक्षमेंसे फल गिरैं ॥ ४६ ॥ फिर तो युद्धमें न दिनकी ओर ध्यान होता था, न रात्रिकी ओर ध्यान होता था, न संध्याकी ओर ध्यान होता था; अर्थात् कितनेक दिनतक निरन्तर युद्ध हुआ और कटे हुए रावणके शिरोंसे रणभूमि ऐसी भरगई कि न दिशा प्रतीत होती थीं, न विदिशा प्रतीत होतीथीं, तथापि रावणका शिरहीन शरीर देखनेमें नहीं आया ॥ ४७ ॥ तब तो श्रीरामचन्द्रजी चित्तमें बडेही चकित हुए कि मैंने इसके एकसमान तेजस्वी शिरोंको एकसौ एकवार काटा ॥४८॥ परन्तु अभीतक यह आयुके नष्ट न होनेसे शान्त नहीं हुआ, अर्थात्

मूर्धानो रावणस्याथ बहवो रुधिरोक्षिताः ॥ गगनात्प्रपतन्तिस्म तालादिव फलानि हि ॥ ४६ ॥ न दिनं न च वै रात्रिर्न सन्ध्या न दिशोऽपि वा ॥ प्रकाशन्ते न तद्रूपं दृश्यते तत्र सङ्गरे ॥ ४७ ॥ ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानसः ॥ शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥ ४८ ॥ न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात् ॥ ततः सर्वास्त्रविद्धीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ ४९॥ अस्त्रैश्च बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ॥ यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः ॥ ५० ॥ त एते निष्फलं याता रावणस्य निपातने ॥ इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो बिभीषणः ॥५१॥ उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ ॥ विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरांसि च ॥५२॥ उत्पत्स्यन्ति पुनः शीघ्रमित्याह भगवानजः ॥ नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥ ५३ ॥

यह अभीतक नहीं मरा फिर सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें प्रवीण, अनेक प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाले, परम धैर्य्यशाली, कौसल्या (अपनी माता) के आनन्दको बढ़ानेवाले, श्रीरामचन्द्रजीने विचारा कि हमने जिन जिन बाणोंसे महाबलि परम पराक्रमी अनेक दैत्योंका संहार किया, वह सब बाण रावणको गिरानेमें निष्फल जाते हैं, जब श्रीरामचन्द्रजी ऐसे चिन्तासे आकुल हुए, तब तो पास खडाहुआ बिभीषण कहने लगा कि हे श्रीरामचन्द्रजी! इसको अजन्मा भगवान् ब्रह्माजीने यह वरदान दिया था, कि हे रावण! तेरे कटेहुए भुजा और कटेहुए मस्तकभी फिर तत्कालही उत्पन्न होजायँगे, इसकी नाभिके स्थानमें एक कुण्डलाकार अमृत का स्थान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ आप उस अमृतकुण्डको आग्नेय अस्त्र (जिस अस्त्रकी अग्नि देवता है) से उसको सुखा दीजिये, तब इसका मरण होजायगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है. शीघ्रही अपना पराक्रम दिखानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार बिभीषणका वचन सुनकर धनुषपर आग्नेय अस्त्र (अग्निदेवताके मंत्रसे अभिमंत्रित किया हुआ बाण) चढ़ाया, और राक्षस रावणके उपरको छोडा, और उसकी नाभिको वेध दिया, फिर महाबली श्रीरामचन्द्रजीने शिरभी काटदिये, तदनन्तर अतिक्रोधमें होकर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी भुजाभी काट डालीं, तब तो रावणने क्रोधमें भरकर एक महाघोर शक्ति ली, और उसको बिभीषणको मारनेके निमित्त फेका, उस शक्तिको श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णभूषित तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया ॥५४॥५५॥

तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत् ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः ॥ ५४ ॥ पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः ॥ अनन्तरं च चिच्छेद शिरांसि च महाबलः ॥ ५५ ॥ बाहूनपि च संरब्धो रावणस्य रघूत्तमः ॥ ततो घोरां महाशक्तिमादाय दशकन्धरः ॥ ५६ ॥ बिभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्वलः ॥ चिच्छेद राघवो बाणैस्तां शितैर्हेमभूषितैः ॥ ५७ ॥ दशग्रीवशिरश्छेदात्तदा तेजो विनिर्गतम् ॥ म्लानरूपो बभूवाथ छिन्नैः शीर्षैर्भयङ्करैः ॥ ५८ ॥ एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ ॥ रावणस्तु पुनः क्रुद्धो नानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ॥ ५९ ॥ ववर्ष रामं तं रामस्तथा बाणैर्ववर्ष च ॥ ततो युद्धमभूद्घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६० ॥ अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा ॥ विसृज्यास्त्रं वधायास्य ब्राह्मं शीघ्रं रघूत्तम ॥ ६१ ॥ विनाशकालः प्रथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥ उत्तमाङ्गं न चैतस्य छेत्तव्यं राघव त्वया ॥ ६२ ॥

॥५६॥५७॥ तबतो शिरोंके कटजानेसे रावणका तेज निकल गया, रूप मलीन होगया, और सम्पूर्ण भयंकर शिर तो कट गए, केवल एक मुख्य शिर और दो भुजाओंकी ही शोभा रहगई, फिर भी रावण क्रुद्ध होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करने लगा, और तैसेही श्रीरामचन्द्रजीने भी अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करी, तब उन दोनोंका रोमांचोंका खड़ा करनेवाला भयंकर घोर युद्ध हुआ ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ फिर उस समयमें मातलिनामक सारथिने रघुनाथजीको स्मरण दिलाया कि हे रघुनाथजी ! अब शीघ्रही इस रावणका वध करनेके निमित्त ब्राह्म अस्त्र छोंड़िये ॥ ६१ ॥ क्योंकि रावणका वध होनेका समय जो देवताओंने नियत किया है वह इससमय आ पहुँचा है. हे श्रीरामचन्द्रजी ! अब आप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसका उत्तमाङ्ग (शिर) न काटिये क्यों कि यह शिर काटनेसे नहीं मरैगा, इसकारण इसके हृदयरूप मर्मस्थानको बाणसे वेधिये इसप्रकार मातलिके कहनेसे श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण आगया, तब तो रघुनाथजीने जिसप्रकार सर्प फुनकार मारता होय इसप्रकारके प्रज्वलित बाणको हाथमें लिया जिस बाणके दोनों ओर पवन देवता और भाले (फल) के ऊपर सूर्य्य तथा अग्निदेवता निवास करतेथे, जिसका शरीर (आकार) आकाशमय (आकाशके समान व्यापक) और भारीपन मेरु तथा मन्दराचल पर्वतके समान था, जिसकी ग्रन्थियोंमें महातेजस्वी लोकपाल निवास करतेथे, जो अपनी देहसे सूर्य्यके समान प्रकाश करताथा, जो जाज्वल्यमान, सम्पूर्ण लोगोंके भय (दुःखदायक राक्षसदैत्यादि) को नष्ट करनेवाला, महाक-

नैव शीर्ष्णि प्रभो वध्यो वध्य एव हि मर्मणि ॥ ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ॥ ६३ ॥ जग्राह सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ यस्य पार्श्वे तु पवनः फले भास्करपावकौ ॥ ६४ ॥ शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥ पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ॥ ६५ ॥ जाज्वल्यमानं वपुषा भातं भास्करवर्चसा ॥ तमुग्रमस्त्रं लोकानां भयनाशनमद्भुतम् ॥ ६६ ॥ अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः ॥ वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥ ६७ ॥ तस्मिन्सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ॥ सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥ ६८ ॥ स रावणाय संक्रुद्धो भृशमानम्य कार्मुकम् ॥ चिक्षेप परमायत्तस्तमस्त्रं मर्मघातिनम् ॥ ६९ ॥ स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रपाणिविसर्जितः ॥ कृतान्त इव घोरास्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥ ७० ॥ स निमग्नो महाघोरः शरीरान्तकरः परः ॥ बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥

ठोर और आश्चर्यरूप था ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ महाबाहु परम बलवान् श्रीरामचन्द्रजीने उस बाणको वेदमें कही हुई रीतिके अनुसार मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके धनुषपर चढाया ॥ ६७ ॥ जब रघुनाथजीने उस बाणको चढ़ाया तब तो सम्पूर्ण प्राणी भयभीत होगए, और पृथिवी डगमगाने लगी ॥ ६८ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने अति क्रोधमें होकर रावणका संहार करनेके निमित्त धनुषकी प्रत्यंचाको खैंचकर वह बाण रावणके हृदयमें बडी सावधानीके साथ मारा ॥ ६९ ॥ इन्द्रके हाथसे छूटे हुए दुर्धर्ष वज्रके समान और यमराजके समान भयंकर है मुख जिसका ऐसा वह श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे छूटा हुआ बाण रावणके हृदयमें जाकर लगा ॥ ७० ॥ और भीतर घुसगया, फिर वह महाघोर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीरका अन्त करनेवाला बाण तत्कालही महात्मा रावणके हृदयको विदीर्ण करके पार निकलगया, और रावणके प्राणोंको हरकर पृथ्वीतलमें प्रवेश करगया, इसप्रकार रावणका संहार करके वह बाण फिर श्रीरामचन्द्रजीके तरकसमें आगया ॥७१॥७२॥ उस बाणके लगतेही रावणके हाथमेंसे बाणसहित धनुष छूटकर गिरगया और चक्कर खाके प्राणहीन होकर राक्षसपति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७३ ॥ उसको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखकर मरते मरते बाकी बचे हुए राक्षस भयभीत होकर चारों ओरको भागने लगे, स्वामीका मरण होनेपर आश्रितोंकी ऐसी दशा होही जाती है ॥ ७४ ॥ इसप्रकार रावणका मरण और श्रीरामचंद्रजीकी विजय हुई, तब तो संग्रामको जीतनेवाले वानर प्रसन्न होकर गरजने लगे ॥ ७५॥ उनमेंसे कोई कहते फिर-

रावणस्याहरत्प्राणान्विवेश धरणीतले ॥ स शरो रावणं हत्वा रामतूणीरमाविशत् ॥७२॥ तस्य हस्तात्पपाताशु सशरं कार्मुकं महत् ॥ गतासुर्भ्रमिवेगेन राक्षसेन्द्रोऽपतद्भुवि ॥७३॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषाश्च राक्षसाः ॥ हतनाथा भयत्रस्ता द्रुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥७४॥ दशग्रीवस्य निधनं विजयं राघवस्य च ॥ ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ॥७५॥ वदन्तो रामविजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥ अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ॥७६॥ पपात पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि ॥ तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धाश्चारणाश्च दिवौकसः ॥७७॥ अथान्तरिक्षे ननृतुः सर्वतोऽप्सरसो मुदा ॥ रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥७८॥प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ॥ देवा ऊचुरहो भाग्यं रावणस्य महात्मनः॥७९॥वयं तु सात्विका देवा विष्णोः कारुण्यभाजनाः॥भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारे परिवर्तिनः॥८०॥

तेथे कि श्रीरामचन्द्रजीकी विजय होगई, और कोई कहते फिरतेथे कि रावणका मरण होगया, इतनेहीमें आकाशमें देवताभी मंगलसूचक नगाड़े बजाने लगे ॥ ७६ ॥ और आकाशमेंसे चारोंओरसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी, मुनि, सिद्ध, चारण और सम्पूर्ण देवता श्रीरामचद्रजीकी स्तुति करनेलगे ॥ ७७ ॥ और अप्सरा प्रसन्नतापूर्वक आकाशमें नृत्य करनेलगीं, और रावणके शरीरमेंसे सूर्य्यके समान प्रकाशमान ज्योति उठकर देवताओंके देखतेहुए श्रीरामचन्द्रजीके शरीरमें प्रवेश करगई, तबतो देवता कहने लगे कि—महात्मा रावणका अहोभाग्य है ॥ ७८ ॥ ॥ ७९ ॥ देखो-हम सब देवता सत्त्वगुणसे उत्पन्न और विष्णु भगवान्के कृपापात्र हैं, तथापि भयदुःखादियुक्त संसारमेंही भ्रमण करतेरहते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं ॥ ८० ॥ और यह रावण जातिका राक्षस, क्रूर, ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाला, अतितामस (बड़ा अभिमानी), पराई स्त्रियोंको दुष्ट दृष्टिसे देखनेवाला, विष्णु भगवान्‌से द्वेष करनेवाला और तपस्वियोंका प्राणान्त करनेवाला था ॥ ८१ ॥ तथापि सब प्राणियोंके देखतेहुएही श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपमें लीन होगया, इसप्रकार देवताओंके कहनेपर नारदजी मुसुकुराकर कहने लगे ॥ ८२ ॥ कि हे देवताओ ! तुम सबतो धर्म्मके तत्त्वको जाननेवाले हो, इस विषयमें मैं कुछ कहताहूं उसको श्रवण करो, रघुनाथजीके साथ वैरभाव होनेके कारण वह रावण द्वेष करके अपने सेवकोंसहित श्रीरामचंद्रजीके चरित्रको सुनकर नित्य शोकयुक्त हो विचार करता रहताथा, और श्रीरामचंद्रजीके हाथसे अपना मरण सुनकर भयके कारण जहां तहाँ उसको श्रीरामचंद्रजीही दीखते थे, और क्या कहा जाय, वह प्रतिदिन स्वप्नमेंभी श्रीरामचंद्रजीकोही देखता था, इस कारण उसको यह

अयं तु राक्षसः क्रूरो ब्रह्महातीव तामसः ॥ परदाररतो विष्णुद्वेषी तापसहिंसकः ॥८१॥ पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान् ॥ एवं ब्रुवत्सु देवेषु नारदः प्राह सुस्मितः ॥ ८२ ॥ शृणुतात्र सुरा यूयं धर्मतत्त्वविचक्षणाः ॥ रावणो राघवद्वेषादनिशं हृदि भावयन् ॥८३॥ भृत्यैः सह सदा रामचरित्रं द्वेषसंयुतः ॥ श्रुत्वा रामात्स्वनिधनं भयात्सर्वत्र राघवम् ॥ ८४ ॥ पश्यन्ननुदिनं स्वप्ने राममेवानुपश्यति ॥ क्रोधोऽपि रावणस्याशु गुरुबोधाधिकोऽभवत् ॥ ८५ ॥ रामेण निहतश्चान्ते निर्धूताशेषकल्मषः ॥ रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धनः ॥ ८६ ॥ पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपरदारेषु सक्तो यदि स्यान्नित्यं स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलकं भावयन्संपरेतः ॥ भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनितानेकदोषैर्विमुक्तः सद्यो रामस्य विष्णोः सुखरविनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम् ॥ ८७ ॥

फल प्राप्त हुआ, इसकारण रावणका क्रोधभी गुरुके उपदेशसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानसे अधिक हो गया ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मृत्यु होनेके कारण संपूर्ण पापोंसे छूटकर और संसारबंधनसे मुक्त होकर रावण श्रीरामचन्द्रजीके सायुज्यकोही प्राप्त हुआ ॥ ८६ ॥ पापी हो, दुष्टात्मा हो, पराए धनको चुरानेवाला हो और चाहे परस्त्रीके विषे आसक्त हो यदि भक्तिसे अथवा भयसे नित्य रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ मरणको प्राप्त होय तो वह शुद्धान्तःकरण होकर और सैंकडों जन्मोंमें कियेहुए पापोंसे छूटकर शीघ्रही साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीके उस आदि वैकुण्ठलोकको प्राप्त होता है कि जिस लोकको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बडे बडे देवता प्रणाम करते हैं ॥८७॥ त्रिलोकीको दुःख देनेवाले रावणका संहार करके वामहस्तसे भूमिमें धनुषको टेंककर खड़ेहुए, और दूसरे हाथमें धारण कियेहुए एक बाणको घुमातेहुए, कुछ २ लाल हैं नेत्रोंके कोए जिनके, रावणके बाणोंसे विदीर्ण होरहा है शरीर जिनका, करोड़ों सूर्य्योंके समान है प्रकाश जिनका, अपनी योग्यताके अनुसार ठीक ठीक नीचाई ऊँचाईवाला है शरीर जिनका, इन्द्रजी कररहेहैं स्तुति जिनकी ऐसे वीरलक्ष्मीको धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करैं ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहतेहैं कि हे पार्वति ! तदनंतर श्रीरामचन्द्रजी, हनुमान्,

हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं वामहस्तेन चापं भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं भ्रामयन्बाणमेकम् ॥ आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः सूर्यकोटिप्रकाशो वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः पातु मां वीररामः ॥ ८८ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ रामो बिभीषणं दृष्ट्वा हनूमन्तं तथाङ्गदम् ॥ लक्ष्मणं कपिराजं च जाम्बवन्तं तथा परान् ॥ १ ॥ परितुष्टेन मनसा सर्वानेवाब्रवीद्वचः ॥ भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया ॥ २ ॥ कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम् ॥ ३ ॥ ययोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि ॥ ४ ॥ मन्दोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियो रावणपालिताः ॥ पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्यः पर्यदेवयन् ॥ ५ ॥

बिभीषण, अंगद, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान् तथा औरभी संपूर्ण वानरोंके ओरको प्रसन्न चित्तसे देखकर इसप्रकार कहनेलगे कि तुम्हारीही भुजाओंके बलसे मैंने रावणका वध किया है ॥ १ ॥ २ ॥ जबतक चंद्रमा और सूर्य रहेंगे तबतक यह तुम्हारी कीर्ति संसारमें स्थित रहेगी, और प्राणी त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली तुम्हारी कथाका कीर्त्तन करेंगे ॥ ३ ॥ जिस कलियुगके पापोंको दूर करनेवाली तुम्हारी कीर्तिका वर्णन करतेहुए पुरुष परम गतिको प्राप्त होयँगे. श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार कहरहेथे, कि इसही अवसरमें रावणको भूमिपर गिराहुआ देखकर मंदोदरीआदि सम्पूर्ण रावणके रणवासकी स्त्रियें आकरके शरीरके आगे गिर पडीं, और अत्यन्त शोक करतीं हुईं विलाप करने लगीं ॥ ४ ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिभीषणभी बहुत घबडा गये और महाशोकयुक्त होकर मृतक शरीरके सामने गिरपडे, और अनेक प्रकारके विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ तब तो श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे भ्रातः ! बिभीषणको समझाओ, यह अपने भ्राताका संस्कार (प्रेतकर्म) करै, अब विलंब करनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ७ ॥ और मंदोदरी आदि रावणकी स्त्रियें, तथा और भी रावणकी प्रेमपात्र राक्षसियें पडी हुई विलाप कररहीं हैं, सो बिभीषणसे कहो कि इन सबको समझावै ॥ ८ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेपर लक्ष्मणजी रावणके मृतक शरीरके समीप प्राणहीनके समान पडे हुए, और अत्यंत शोकसे व्याकुल जो बिभीषण तिनके समीप जाकर कहने लगे कि हे बिभीषण ! जिसका तुम दुःखपूर्वक शोक कररहे हो, यह तुम्हारा कौन है और तुम इसके कौन हो ? अर्थात् आत्मा तो शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है उसका किसीसे सम्बन्ध नहीं होता है, देखो जन्म धारण करनेसे पहिले

बिभीषणः शुशोचार्तः शोकेन महतावृतः ॥ पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत् ॥ ६ ॥ रामस्तु लक्ष्मणं प्राह बोधयस्व बिभीषणम् ॥ करोतु भ्रातृसंस्कारं किं विलम्बेन मानद ॥ ७ ॥ स्त्रियो मन्दोदरीमुख्याः पतिता विलपन्ति च ॥ निवारयतु ताः सर्वा राक्षसी रावणप्रियाः ॥ ८ ॥ एवमुक्तोऽथ रामेण लक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् ॥ उवाच मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ ९ ॥ शोकेन महताविष्टं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ यं शोचसि त्वं दुःखेन कोऽयं तव बिभीषण ॥ १० ॥ त्वं वास्य कतमः सृष्टेः पुरेदानीमतः परम् ॥ यद्वत्तोयौघपतिताः सिकता यान्ति तद्वशाः ॥ ११ ॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥ १२ ॥ एवं भूतेषु भूतानि प्रेरितानीशमायया ॥ त्वं चेमे वयमन्ये च तुल्याः कालवशोद्भवाः ॥ १३ ॥

तुम्हारा इसका कुछ संबंध नहीं था और न आगे तुम्हारा इसका कुछ सम्बन्ध होयगा, इसकारण इस समयभी जो सम्बन्ध है सो मिथ्याही है वास्तवमें तो आत्मा नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव है, जिसप्रकार जलके प्रवाहमें पड़ाहुआ रेतेका समूह उस प्रवाहके वशीभूत होकर बहताहुआ चलाजाता है, तिसीप्रकार संपूर्ण प्राणी कालके वशीभूत होकर उसके वेगसे संयोग और वियोगको प्राप्त होते हैं, वास्तवमें उनका कोई सम्बन्ध नहीं है, और जिसप्रकार भांडेमें जब भूननेके निमित्त जौ डाले जाते हैं तब अग्निके लगनेसे उनमेंसे कुछ दाने एक स्थानपर रहते हैं, और फिर वही उडकर ऊपर नीचे गिर जातेहैं इसीप्रकर प्राणी कालरूप ईश्वरकी जो माया तिसकी प्रेरणासे कभी एक स्थानपर संयोगको प्राप्त होतेहैं, और कभी वियोगको प्राप्त होजातेहैं. और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये संयोग तथा वियोग केवल तुमकोही नहीं हुआ है, किन्तु तुम हम तथा और जो कुछ प्राणी हैं, सो सबही कालके वशीभूत होकर संयोग और वियोगको प्राप्त होतेहैं, क्योंकि कालको सबही समान हैं, जिससमय जिसके प्रकाशसे ईश्वरने प्राणीका जन्म और मृत्यु रचा है, उस प्राणीको उसही समयमें उसकेही प्रकाशसे होतेहैं, और जिसप्रकार बालक अपनेको सुखादिकी इच्छा न करके स्वभावसेही मृत्तिकाआदिकी मूर्ति बनाकर उनका विवाहादिक तथा पुत्रादिककी कल्पना करके क्रीडा करता है, और फिर उनकी परस्पर टक्करैं लगाकर तोड़ डालता है, और किसी प्रकारका हर्ष शोक नहीं करता है, तिसही प्रकार ईश्वर जगत्की सृष्टि करनेसे किसी प्रकारके फलकी अपेक्षा न करकेभी अपनी रचे माया करके रचेहुए स्त्रीपुरुषरूप प्राणियोंकेद्वारा पुत्रादिकोंको रचताहै, और उनहींसे पालन करताहै, और उनहींमेंसे एककेद्वारा एकका मरण करादेताहै, तहाँ कहतेहैं कि मातापिताकोही जगत्का कर्त्ता मानलेना चाहिये, ईश्वरकी कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है ? तहाँ कहते हैं कि जीव तो तृणमात्रके चलानेमेंभी स्वतंत्र नहीं है, और माता-

जन्ममृत्यू यदा यस्मात्तदा तस्माद्भविष्यतः ॥ ईश्वरः सर्वभूतानि भूतैः सृजति हन्त्यजः ॥१४॥ आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥
देहेन देहिनो जीवा देहाद्देहोऽभिजायते ॥ १५ ॥ बीजादेव यथा बीजं देहान्य इव शाश्वतः ॥ देहिदेहविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥१६॥

पिताके देहसे तौ देहमात्रको उत्पत्ति होतीहै और उस देहके सम्बन्धसेही आत्मा देहधारी कहलाता है, वास्तवमें आत्मा देहधारी नहीं है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे बिभीषण ! जिसप्रकार बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होतीहै, और फिर उस वृक्षसे बीजोंकी उत्पत्ति होतीहै, और उन बीजोंसे फिर वृक्ष उत्पन्न होतेहैं, इसीप्रकार प्राणियोंकी उत्पत्तिभी संसारमें अनादिकालसे चली आती है, अर्थात् अविद्या कर्म्म-आदि रूप बीजसे देहकी उत्पत्ति होतीहै, और उस देहमें आकर आत्मा अविद्याके वशीभूत होकर फिर अहंबुद्धि (मैं हूँ, मेरा है, इत्यादिरूप बुद्धि) कर्ता है, तिससे कर्मादिकके द्वारा फिर देहकी उत्पत्ति होतीहै, इसप्रकार जबतक अविद्या दूर नहीं होती तबतक संसार (जन्ममरण) प्रवाह चलाही जाताहै, और जीव तो देहसे भिन्न और नित्य है, देहके संबंधसे जीवात्मा देही कहलाता है, देहका संबंध अविद्याकल्पित होनेके कारण मिथ्या है, अज्ञानके कारण आत्मा पुत्रकलत्रादिके विषे ममत्वबुद्धि करताहै, इसप्रकार विचारनेसे जब देहकी ममत्वबुद्धिही मिथ्या है; फिर भ्रातादि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कके विषे जो ममत्वबुद्धि है उसके मिथ्या होनेमें तो संदेहही क्या है? ॥ १६ ॥ और वास्तवमें तो भ्रातादिकको अपनेसे भिन्न मानना, अथवा उनका नाशादि मानना सीपीमें रजतकी प्रतीतिके समान मिथ्याही है, क्योंकि भेद, जन्म, नाश, क्षय, वृद्धि और सुखदुःखादि शरीर आदिकेही धर्म देखनेमें आते हैं, तहाँ दृष्टान्त देते हैं, कि जिसप्रकार अग्निमें जलतेहुए काष्ठआदिमें जो टेढ़ापनआदि होताहै, वह काष्ठआदिकाही होताहै, अग्निका नहीं ॥ १७ ॥ हे बिभीषण ! वह भेद जन्ममरणआदिधर्म्म अन्तःकरणके संयोगसे अहंममताआदि बुद्धि होनेके कारण आत्माके विषे भी इसप्रकार प्रतीत होने लगतेहैं, कि जिसप्रकार कीडा भृंगी नामक दूसरे कीडेका ध्यान करताहुआ वैसाही कहाताहै, वास्तवमें वह भृंगी नहीं होजाताहै ॥१८॥ और जिसप्रकार सुषुप्तिअवस्थामें जब अहं ममत्व बुद्धि नहीं होतीहै, तब संसारकी प्रतीतिभी नहीं होती, तिसीप्रकार तत्वज्ञान होनेसे जीवन्मुक्त

नानात्वं जन्म नाशश्च क्षयो वृद्धिः क्रिया फलम् ॥ द्रष्टुराभान्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रियाः ॥ १७ ॥ त इमे देहसंयोगादात्मना भान्त्यसद्ग्रहात् ॥ यथा यथा तथा चान्यद्ध्यायतो सत्सदाग्रहात् ॥ १८ ॥ प्रसुप्तस्यानहंभावात्तदा भाति न संसृतिः ॥ जीवतोऽपि तथा तद्वद्विमुक्तस्यानहंकृतेः ॥ १९ ॥ तस्मान्मायामनोधर्मं जह्यहंममताभ्रमम् ॥ रामभद्रे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥ २० ॥ सर्वभूतात्मनि परे मायामानुषरूपिणि ॥ बाह्येन्द्रियार्थसम्बन्धात्त्याजयित्वा मनः शनैः ॥२१॥ तत्र दोषान्दर्शयित्वा रामानन्दे नियोजय ॥ देहबुद्ध्या भवेद्भ्राता पिता माता सुहृत्प्रियः॥२२॥विलक्षणं यदा देहाज्जानात्यात्मानमात्मना ॥ तदा कः कस्य वा बन्धुर्भ्राता माता पिता सुहृत् ॥ २३ ॥

दशाके प्राप्त हुए पुरुषको जीवित रहनेपरभी अहंकारके न होनेके कारण संसारकी प्रतीति न होनेसे दुःखशोकादिभी नहीं होतेहैं ॥ १९ ॥ इसकारण हे बिभीषण ! मायाके विकाररूप मनके धर्म्म अहंममतारूप भ्रमको त्यागो, और अंतःकरणको कल्याणरूप सर्वशक्तिमान् परमात्मा श्रीरामचंद्रजीके विषे लगाओ ॥ २० ॥ हे बिभीषण ! कर्णआदि बाह्यइन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें दोषदृष्टि करके धीरे २ मनको उन शब्दादि विषयोंके संबन्धसे हटाओ, और मायाकरके मनुष्यरूप धारण करनेवाले संपूर्ण प्राणियोंके आत्मा आनंदस्वरूप परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके विषे लगाओ, देहबुद्धिसे भ्राता, माता, पिता, मित्र और प्रिय इन सम्बन्धोंकी प्रतीति होती है, और जब परमेश्वरके विषे चित्तकी वृत्ति लगानेके कारण अंतःकरण शुद्ध होनेसे देहसे अन्य आत्माका ज्ञान हो जाताहै, तब कौन किसका बन्धु, भ्राता, माता, पिता और मित्र होताहै ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिथ्या ज्ञान होनेसेही स्त्री, स्थान आदि, संबन्ध और शब्दआदि विषय तथा अनेक प्रकारकी संपत्तिमें, सेना, खजाना, सेवकोंका समूह, पृथ्वी और पुत्रआदिके विषे ममता होती है, परन्तु हे बिभीषण ! यह सब अज्ञानसे उत्पन्न होनेके कारण क्षणमात्रमें प्राप्त होतेहैं, और क्षणमात्रमेंही नष्ट होजाते हैं, इसकारण यह अनित्य है और आत्मा नित्य है ॥ २४ ॥ २५ ॥ इसकारण हे बिभीषण ! उठो और भक्तिपूर्वक अपने हृदयमें स्मरण करेहुए श्रीरामचन्द्रजीका सदा ध्यान करते रहो और हे बिभीषण ! विना भोगे प्रारब्धकर्म्म सैंकडों करोड जन्मोंको धारण करनेसेभी क्षीण नहीं होता है, इसकारण प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार इस लङ्कापुरीके राज्यको भोगो, और नीतिपूर्वक पालन करो ॥ २६ ॥ हे बिभीषण ! यह क्या होगया ? और आगे क्या होगा ? इसविचारको छोड दो, और वर्त्तमान दशामें जो सुखदुःखादि प्राप्त हों उनको शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार भोगते

मिथ्याज्ञानवशाज्जाता दारागारादयः सदा ॥ शब्दादयश्च विषया विविधाश्चैव संपदः ॥ २४ ॥ बलं कोशो भृत्यवर्गो राज्यं भूमिः सुतादयः ॥ अज्ञानजत्वात्सर्वे ते क्षणसङ्गमभङ्गुराः ॥ २५ ॥ अथोत्तिष्ठ हृदा रामं भावयन् भक्तिभावितम् ॥ अनुवर्तस्व राज्यादि भुञ्जन्प्रारब्ध मन्वहम् ॥ २६ ॥ भूतं भविष्यदभजन्वर्तमानमथाचरन् ॥ विहरस्व यथान्यायं भवदोषैर्न लिप्यसे ॥ २७॥ आज्ञापयति रामस्त्वां यद्भ्रातुः साम्परायिकम् ॥ तत्कुरुष्व यथाशास्त्रं रुदतीश्चापि योषितः ॥ २८ ॥ निवारय महाबुद्धे लङ्कां गच्छतु माचिरम् ॥ श्रुत्वा यथावद्वचनं लक्ष्मणस्य बिभीषणः ॥ २९ ॥ त्यक्त्वा शोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपागमत् ॥ विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥ ३० ॥

हुए, अर्थात् अहं बुद्धिको त्यागकर संसारयात्राका निर्वाह करो तब तुम संसारके दोषोंसे लिप्त नहीं होओगे ॥ २७ ॥ हे बिभीषण ! श्रीरामचन्द्रजी तुम्हैं आज्ञा देते हैं, कि अब तुम भ्राताका जो कुछ परलोक कर्म्म (प्रेतकर्म्म) है उसको शास्त्रोक्तरीतिसे करो, और हे परमप्रवीण बिभीषण ! यह जो मन्दोदरी आदि स्त्रियें विलाप कररहीं हैं उनको समझाकर रोनेसे निवारण करो, और यह सब शीघ्रही लङ्कापुरीको चली जायँ, इसप्रकार लक्ष्मणजीने जो वचन कहे तिनको सुनकर धर्म्मात्मा बिभीषण शोक और मोहको त्यागके श्रीरामचन्द्रजीके समीप आया, फिर लक्ष्मणजीके कहे हुए उन सम्पूर्ण वचनोंको बुद्धिसे मनहीमनमें विचारकर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेके निमित्त इसप्रकार कहने लगे कि हे प्रियबन्धो ! आपने मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिये, हे प्रभो ! देखिये यह रावण निर्दयी, मिथ्याभाषी, अतिक्रूर, अपने धर्म्मको त्यागनेवाला और सदा परस्त्रियोंमें आसक्त रहताथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसकी अन्त्येष्टिक्रिया (प्रेताक्रिया) रूप संस्कार करनेको मैं किसी प्रकार भी योग्य नहीं हूँ, इसप्रकार बिभीषणके कथनको सुनकर श्रीरामचंद्रजी प्रसन्न होकर कहने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कि हे मित्र ! देखो मनुष्यसे वैरभाव उसके मरण पर्य्यन्तही होता है, जब उसका मरण होगया, फिर शत्रुता करनेका फलही क्या ? सो इसका मरण होनेसे हमारा कार्य्य सिद्ध होगया. अर्थात् यह जब जीवित था, तब हमारा तुम्हारा दोनोंका शत्रु था, अब तो जैसा तुम्हारा भ्राता वैसाही मेरा भी है, सो मेरी सम्मति है कि तुम शीघ्रही इसका प्रेतसंस्कार करो. इसप्रकार श्रीराचमन्द्रजीके कहनेका यह अभिप्राय है कि रावणसे मेरा विरोध नहीं था; किन्तु उसके उस दुष्ट स्वभावसे मेरा विरोध था कि जिस

रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं पर्यभाषत ॥ नृशंसमनृतं क्रूरं त्यक्तधर्मव्रतं प्रभो ॥ ३१ ॥ नार्होऽस्मि देवसंस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ॥ श्रुत्वा तद्वचनं प्रीतो रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ॥ क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥ ३३ ॥ रामाज्ञां शिरसा धृत्वा शीघ्रमेव बिभीषणः ॥ सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिं राज्ञीं मन्दोदरीं तदा ॥ ३४ ॥ सान्त्वयामास धर्मात्मा धर्मबुद्धिर्बिभीषणः ॥ त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थं स्वबान्धवान् ॥ ३५ ॥ चित्यां निवेश्य विधिवत्पितृमेधविधानतः ॥ आहिताग्नेर्यथाकार्यं रावणस्य बिभीषणः ॥ ३६ ॥

स्वभावसे वह देवता, ब्राह्मण और धर्म्मसे विरोध करताथा, अब रावणकी यह राक्षसी प्रकृति (स्वभाव) संग्राममें मेरे बाणोंके लगनेसे, तथा मरण कालमें मेरा दर्शन होनेसे नष्ट होगई, और रावण दैवप्रकृति (साधुस्वभाव) को प्राप्त होगया, फिर उससे वैरभाव रखनेका अवसरही कहाँ रहा ॥३३॥ इसके अनन्तर धर्म्मात्मा बिभीषण श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको मस्तकपर धारण करके तत्कालही जाकर परम बुद्धिमती रानी मन्दोदरीको शोकको दूर करवाले शान्तिवाक्योंको कहकर समझाया; फिर वह धर्म्मात्मा बिभीषण रावणकी क्रिया करनेके निमित्त अपने बान्धवोंको बुलाकर शीघ्रता करने लगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ फिर परम धर्म्मात्मा बिभीषणने शास्त्रोक्त पितृमेधकी रीतिसे रावणके मृतकशरीरको चितामें स्थापन किया, और जिसप्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निहोत्रियोंकी अन्तक्रिया करना उचित होती है तिसीरीतिके अनुसार रावणका सम्पूर्ण प्रेतकर्म्म किया, और बांधव तथा मन्त्रियोंसहित मंत्रोच्चारणपूर्वक बिभीषणने रावणकी चितामें अग्नि लगाई ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ फिर स्नान कर, गीले वस्त्रोंको धारण कियेहुएही बिभीषणने मंत्रोंको पढ़कर रावणके अर्थ कुशातिलयुक्त जलांजलि दी; इसप्रकार जलांजलि देकर और मस्तक नमाके उसको प्रणाम करके बिभीषणने वारंवार शोकको दूर करनेवाले वचनोंको कहकर तिन मंदोदरीआदि रावणकी सम्पूर्ण रानियोंको समझाकर शान्त किया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ और फिर बिभीषणने उन सब स्त्रियोंको आज्ञा दी, कि अब जाओ, तब वह सब नगरमें गईं, जब वह सब राक्षसी नगरके भीतर चलीगईं तब बिभीषण श्रीरामचन्द्रजीके समीप आकर नम्रतापूर्वक

तथैव सर्वमकरोद्बन्धुभिः सह मन्त्रिभिः ॥ ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं बिभीषणः ॥ ३७ ॥ स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भांभिमिश्रितान् ॥ उदकेन च संमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥ प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं प्रणम्य च ॥ ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ॥ ३९ ॥ गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा ॥ प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु बिभीषणः ॥ ४० ॥ रामपार्श्वमुपागत्य तदातिष्ठद्विनीतवत् ॥ रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥ ४१ ॥ हर्षं लेभे रिपून्हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ॥ मातलिश्च तदा रामं परिक्रम्याभिवन्द्य च ॥ ४२ ॥ अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा ॥ ततो हृष्टमना रामो लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ बिभीषणाय मे लङ्काराज्यं दत्तं पुरैव हि ॥ इदानीमपि गत्वा त्वं लङ्कामध्ये बिभीषणम् ॥ ४४ ॥ अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद्विधिपूर्वकम् ॥ इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः ॥ ४५ ॥

बैठगया, उससमय शत्रुओंका संहार करके वानरोंकी सेनासहित, और सुग्रीव तथा लक्ष्मणसहित, श्रीरामचंद्रजी इसप्रकार प्रसन्न हुए, जिसप्रकार वृत्रासुरका वध करके इंद्र आनंदको प्राप्त हुआथा. उससमय मातलि श्रीरामचंद्रजीकी परिक्रमा और प्रणाम करके उनकी आज्ञाके अनुसार आकाशमार्गसे स्वर्गलोकको चलागया. फिर प्रसन्नमन श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे इसप्रकार कहने लगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ कि हे लक्ष्मण! यद्यपि मैंने लंकाका राज्य बिभीषणको पहिलेही देदिया है, तथापि इससमयभी जाकर तुम ब्राह्मणोंसहित मंत्रोच्चारण करके विधिपूर्वक लंकापुरीमें बिभीषणका अभिषेक करो; इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर लक्ष्मणजी तत्कालही वानरोंसहित लंकापुरीको गये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और स्वर्णके कलशोंमें भरे हुए समुद्रके जलसे परम बुद्धिमान् राक्षसपति बिभीषणका लंकापुरीमें शुभ अभिषेक किया ॥ ४६ ॥ फिर हाथमें भेंट लियेहुए जो पुरवासी तिनकरके सहित बिभीषण अपने आपभी भेंट लेकर लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजीके समीप आये ॥ ४७ ॥ और अनायासमेंही कार्य सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको दंडवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनके सन्मुख खड़े होगये, तब श्रीरामचन्द्रजीने भी बिभीषणको राज्य पानेके अनंतर अपने पास आया हुआ देखकर अत्यन्त आनँन्दको प्राप्त हुए, और लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर अपनेको कृतकृत्य जाना, फिर सुग्रीवसे कहने लगे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ कि हे सुग्रीव ! हे वीर ! मैंने तुम्हारी

लङ्कां सुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः ॥ अभिषेकं शुभं चक्रे राक्षसेन्द्रस्य धीमतः ॥ ४६ ॥ ततः पौरजनैः सार्धं नानोपायनपाणिभिः ॥ बिभीषणः ससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥ दण्डप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ रामो बिभीषणं दृष्ट्वा प्राप्तराज्यं मुदान्वितः ॥४८॥ कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत सहानुजः ॥ सुग्रीवं च समालिङ्ग्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४९ ॥ सहायेन त्वया वीर जितो मे रावणो महान् ॥ बिभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो मयानघ ॥ ५० ॥ ततः प्राह हनूमन्तं पार्श्वस्थं विनयान्वितम् ॥ बिभीषणस्यानुमते गच्छ त्वं रावणालयम् ॥ ५१ ॥ जानक्यै सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम् ॥ जानक्याः प्रतिवाक्यं मे शीघ्रमेव निवेदय ॥ ५२ ॥ एवमाज्ञापितो धीमान् रामेण पवनात्मजः ॥ प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥ ५३ ॥ प्रविश्य रावणगृहं शिंशपामूलमाश्रिताम् ॥ ददर्श जानकीं तत्र कृशां दीनामनिन्दिताम् ॥ ५४ ॥

सहायतासेही इस बड़े भारी रावणको जीता, और लंकामें बिभीषणको अभिषेक किया ॥ ५० ॥ फिर नम्रतापूर्वक समीपमें बैठेहुए हनुमान्जीसे श्रीरामचंद्रजी कहने लगे कि हे पवनकुमार ! बिभीषणकी आज्ञा लेकर रावणके मंदिरमें जाओ. ॥ ५१ ॥ और जानकीजीसे रावणका मरण आदि संपूर्ण वृत्तान्त कहो, तब जानकीजी जो उत्तर दें वह शीघ्रही मुझसे आनकर कहो ॥ ५२ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर परम बुद्धिमान् पवनकुमार लंकापुरीमें गये, उससमय राक्षसोंने उनका बड़ा सत्कार किया ॥ ५३ ॥ फिर रावणके मंदिरमें जाकर तहाँ शिंशपा वृक्षके नीचे बैठी हुई पतिव्रता जानकीजीको देखा, उससमय जानकीजीका देह अत्यंत दुर्बल और दीनतायुक्त था, राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई, श्रीरा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मचंद्रजीकाही ध्यान कर रहीं थीं, इतनेहीमें पवनकुमार नम्रतापूर्वक प्रणामकरके भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ेहुए सन्मुख खडेहोगये, उनको देखकर जानकीजी कुछ काल मौन होकर चिंता करनेलगीं, फिर पहिला वृत्तान्त स्मरण आया ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब इन पवनकुमारको श्रीरामचंद्रजीका दूत जानकर हर्षके कारण जानकीजीका मुख प्रसन्न होगया, सो हनुमान्जीने उनका सुन्दर और प्रसन्नमुख देखकर श्रीरामचंद्रजीने जो कुछ संदेसा कहाथा सो तिनजानकीजीसे कहना प्रारम्भ किया ॥ ५७ ॥ कि हे देवि ! श्रीरामचंद्रजी, सुग्रीव बिभीषण और लक्ष्मणजी तथा संपूर्ण वानरोंकी सेना सहित कुशल हैं ॥ ५८ ॥ सेना और मंत्रियोंसहित सपुत्र रावणका वध करके, और लंकाके राज्यमें बिभीषणको नियत करके श्रीरामचंद्रजीने तुमसे कुशल कहनेको भेजा है ॥ ५९ ॥ इसप्रकार हनुमान्जीके द्वारा भर्त्ता (अपने पति श्रीरामचंद्रजी) के प्रिय वृत्तांतको सुनकर

राक्षसीभिः परिवृतां ध्यायन्तीं राममेव हि ॥ विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मजः ॥ ५५ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वो भक्त्याग्रतः स्थितः ॥ तं दृष्ट्वा जानकी तूष्णीं स्थित्वा पूर्वस्मृतिं ययौ ॥५६॥ ज्ञात्वा तं रामदूतं सा हर्षात्सौम्यमुखी भवत् ॥ स तां सौम्यमुखीं दृष्ट्वा तस्यै पवननन्दनः ॥ रामस्य भाषितं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५७ ॥ देवि रामः ससुग्रीवो बिभीषणसहायवान् ॥ कुशली वानराणां च सैन्यैश्च सहलक्ष्मणः ॥ ५८ ॥ रावणं ससुतं हत्वा सबलं सह मन्त्रिभिः ॥ त्वामाह कुशलं रामो राज्ये कृत्वा बिभीषणम् ॥ ५९ ॥ श्रुत्वा भर्तुः प्रियं वाक्यं हर्षगद्गदया गिरा ॥ किं ते प्रियं करोम्यद्य न पश्यामि जगत्त्रये ॥ ६० ॥ समं ते प्रियवाक्यस्य रत्नान्याभरणानि च ॥ एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः॥६१॥रत्नौघाद्विविधाद्वापि देवराज्याद्विशिष्यते ॥ हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम् ॥६२॥

श्रीजानकीजी परम प्रसन्न हुई, और गदगद वाणीसे कहने लगीं कि हे पवनकुमार ! अब मैं तुमको क्या प्रिय वस्तु दूँ, तुमने जो इस समय प्रियसमाचार सुनायो है, इसके बदलेमें देनेयोग्य वस्तु मुझे त्रिलोकीमें कोईभी नहीं दीखती ॥ ६० ॥ रत्न और आभूषण तुम्हारे प्रियवाक्यके समान नहीं हैं, जिनके देकर मैं तुमसे उद्धार होऊं, अर्थात् मैं इस प्रिय वचन सुनानेके ऋणसे कदापि उद्धार नहीं होऊंगी, इसप्रकार जानकीजीने जब कहा तबतो पवनकुमार कहने लगे ॥६१॥ किं हे मातः ! रावणादि शत्रुओंका वध करनेवाले विजयशाली और सदा एकरस श्रीरामचंद्रजीका जो मैं दर्शन करताहूँ, यह मुझे अनेक प्रकारके रत्नोंके समूह और इन्द्रके राज्यसे भी विशेष है अर्थात् हे मातः ! सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके आनंद ब्रह्मानंदके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अंतर्गत हैं, सो जब आनन्दघन परब्रह्मरूप श्रीरामचंद्रजीको भक्तिपूर्वक देखताहूँ, फिर मुझे यह रत्न राज्य आदिक सम्पत्तियें क्या सुख देसक्ती हैं ॥ ६२ ॥ इसप्रकार पवनकुमारके कथनको सुनकर जानकीजी कहने लगीं कि हे सौम्य पवनकुमार ! यह चंद्रमाके समान आनंद देनेवाले गुण तुम्होरमेंही स्थित हैं ॥६३॥ अब तुम श्रीरामचंद्रजीसे जाके कहो, कि यदि आप आज्ञा दे तो मैं तुम्हारा शीघ्रही दर्शन करना चाहतीहूँ, तब इसप्रकार जानकीजीके कहनेपर उनको प्रणाम करके हनुमान्जी रघुनाथजीका दर्शन करनेको गये ॥६४॥ और जो कुछ जानकीजीने कहा था वह सब श्रीरामचंद्रजीके आगे निवेदन करदिया, कि हे देव ! जिसके निमित्त आपने इन युद्ध आदि कार्योंका प्रारम्भ किया था, उन कार्योंके फलकी प्राप्ति जो शोकसे

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम् ॥ सर्वे सौम्या गुणाः सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिताः ॥ ६३ ॥ रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रं मामाज्ञापयतु राघवः ॥ तथेति तां नमस्कृत्य ययौ द्रष्टुं रघूत्तमम् ॥ ६४ ॥ जानक्या भाषितं सर्वं रामस्याग्रे न्यवेदयत् ॥ यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ॥ ६५ ॥ तां देवीं शोकसंतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥ एवमुक्तो हनुमता रामो ज्ञानवतां वरः ॥ ६६ ॥ मायासीतां परित्यक्तुं जानकीमनले स्थिताम् ॥ आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह बिभीषणम् ॥६७॥ गच्छ राजन् जनकजामानयाशु ममान्तिकम् ॥ स्नातां विरजवस्त्राढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ ६८ ॥ बिभीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा जगाम सहमारुतिः ॥ राक्षसीभिः सुवृद्धाभिः स्नापयित्वा तु मैथिलीम् ॥ ६९ ॥ सर्वाभरणसंपन्नामारोप्य शिबिकोत्तमे ॥ याष्टीकैर्बहुभिर्युक्तां कञ्चुकोष्णीषिभिः शुभाम् ॥ ७० ॥

व्याकुल जानकीजी तिन देवीको अब आप देखैं, इसप्रकार हनुमान्जीके कहनेपर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी मायाकी सीताका परित्याग करनेके निमित्त और अग्निमें स्थित जानकीको ग्रहण करनेके निमित्त बिभीषणसे कहनेलगे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! तुम जाओ और शीघ्रही जानकीको स्नान कराकर स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर और संपूर्ण आभूषणोंको धारण कराकर मेरे समीप लेआओ ॥ ६८ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनकर बिभीषण पवनकुमारको साथ लेकर गये, और वृद्ध राक्षसियोंसे जानकीजीको स्नान कराय संपूर्ण वस्त्र और आभूषण पहिनाये, और सुन्दर पालकीमें बैठालकर रक्षाके निमित्त जामे और पगडियोंको धारण कियेहुए आसेवल्लमवाले सेवकोंको चारोंओर करके चलदिये,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उससमय कल्याणी जानकीजीका दर्शन करनेके निमित्त संपूर्ण वानर दौड़ आये, उनको आसेवल्लम धारण करनेवाले बिभीषणके बहुतसे सेवकोंने रोक दिया ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ और हटो बचो करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके समीपको आये सो श्रीरामचंद्रजी दूरसेही पालकीमें बैठींहुई जानकीजीको देखकर कहनेलगे कि हे बिभीषण ! वह तुम्हारे चोबदार वानरोंको क्यों हटातेहैं ! वह सब वानर सीताका माताके समान दर्शन करैं रोकनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ और जानकी पालकीमेंसे उतरकर मेरे समीप पैदल आवै, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके वचनको सुनके जानकीजी पालकीमेंसे उतरकर पैदलही धीरे २ श्रीरामचंद्रजीके समीप आईं. रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजीने कार्य सिद्ध करनेके निमित्त मायासे

तां द्रष्टुमागताः सर्वे वानरा जनकात्मजाम् ॥ तान्वारयन्तो बहवः सर्वतो वेत्रपाणयः ॥७१॥कोलाहलं प्रकुर्वन्तो रामपार्श्वमुपाययुः ॥ दृष्ट्वा तां शिबिकारूढां दूरादथ रघूत्तमः॥७२॥ बिभीषण किमर्थं ते वानरान्वारयन्ति हि ॥ पश्यन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा ॥ ७३॥ पादचारेण सा यातु जानकी मम सन्निधिम् ॥ श्रुत्वा तद्रामवचनं शिबिकादवरुह्य सा ॥७४॥ पादचारेण शनकैरागता रामसन्निधिम् ॥ रामोऽपि दृष्ट्वा तां मायासीतां कार्यार्थनिर्मिताम् ॥७५॥ अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघूनन्दनः ॥ अमृष्यमाणा सा सीता वचनं राघवोदितम् ॥७६॥ लक्ष्मणं प्राह मे शीघ्रं प्रज्वालय हुताशनम् ॥ विश्वासार्थं हि रामस्य लोकानां प्रत्ययाय च ॥७७॥ राघवस्य मतं ज्ञात्वा लक्ष्मणोऽपि तदैव हि ॥ महाकाष्ठचयं कृत्वा ज्वालयित्वा हुताशनम् ॥७८॥ रामपार्श्वमुपागम्य तस्थौ तूष्णीमरिन्दमः ॥ ततः सीता परिक्रम्य राघवं भक्तिसंयुता ॥७९॥ पश्यतां सर्वलोकानां देवराक्षसयोषिताम् ॥ प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ॥८०॥

रचीहुई तिस जानकीको बहुतसे अवाच्य वचन कहे, तिन रामचंद्रके कहेहुए उन वचनोंको सीता न सहसकी ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ और लक्ष्मणजीसे कहनेलगी, कि हे लक्ष्मण ! श्रीरामचंद्रजीको तथा और सबलोगोंको विश्वास होनेके निमित्त तुम शीघ्रही अग्नि प्रज्वलित करो, तिस अग्निमें स्नान करके मैं सबको अपना सच्चा पतिव्रतापन दिखलाऊंगी ॥७७॥ श्रीरामचंद्रकीभी इसकार्यमें सम्मति जानकर लक्ष्मणजीने तत्कालही काष्ठका बडा भारी ढेर लगाया; और उसको अग्निसे प्रज्वलित करके श्रीरामचंद्रजीके समीप आके मौन बैठगये, तब सीताने भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिक्रमा करी, और देवता, राक्षस राक्षसी, तथा वानरोंके देखतेहुए देवता और ब्राह्मणोंके अर्थ प्रणाम करके जानकीजीने हाथ जोड़कर अग्निके समीपमें स्थित हो इसप्रकार कहा, कि यदि मेरा मन श्रीरामचन्द्रजीसे अन्यत्र कभी नहीं जाताहै तो सब लोकोंका साक्षी जो अग्नि वह मेरी सर्वप्रकारसे रक्षा करै, अर्थात् मेरे प्रवेश करनेपर शीतल होजाय, इसप्रकार कहकर सीता अग्निकी परिक्रमा करके निर्भयचित्त होतीहुई जलतीहुई अग्निमें प्रवेश करगई ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ उससमय सिद्धगणोंसहित देवता वानर राक्षस सम्पूर्ण प्राणी सीताजीको अत्यन्त प्रज्वलित होतीहुई अग्निमें प्रवेश करतेहुए देखकर अत्यंत दुःखित हुए और परस्पर कहने लगे, कि बडे

बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपगा ॥ यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ॥८१॥ तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥ एवमुक्त्वा तदा सीता परिक्रम्य हुताशनम् ॥ ८२ ॥ विवेश ज्वलनं दीप्तं निर्भयेन हृदा सती ॥ ८३ ॥ दृष्ट्वा ततो भूतगणाः ससिद्धाः सीतां महावह्निगतां भृशार्ताः ॥ परस्परं प्राहुरहो स सीतां रामः श्रियं स्वां कथमत्यजज्ञः ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ततः शक्रः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा ॥ कुबेरश्च महातेजाः पिनाकी वृषवाहनः ॥ १ ॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ पितरो ऋषयः साध्या गन्धर्वाप्सरसोरगाः ॥ २ ॥ एते चान्ये विमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्र राघवः ॥ अब्रुवन्परमात्मानं रामं प्राञ्जलयश्च ते ॥ ३ ॥ कर्ता त्वं सर्वलोकानां साक्षी विज्ञानविग्रहः ॥ वसूनामष्टमोऽसि त्वं रुद्राणां शङ्करो भवान् ॥ ४ ॥

आश्चर्य्यकी बात है सर्वज्ञ होकरभी श्रीरामचन्द्रजीने साक्षात् लक्ष्मीरूप सीताको अग्निमें प्रवेश करनेके निमित्त आज्ञा देदी ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! उससमय तहाँ सहस्र हैं नेत्र जिनके ऐसे इंद्र, यम, वरुण, महातेजस्वी कुबेर, पिनाकधारी शिव, ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, नारद आदि मुनि, सिद्ध, चारण, पितर, ऋषि, साध्य, गंधर्व, अप्सरा और नाग यह सब औरभी सुन्दर सुन्दर विमानोंमें बैठकर रघुनाथजीके समीप आये, और हाथ जोड़कर परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे, कि हे भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोंगोंके कर्त्ता, सबके साक्षी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञानरूप हो वसुओंमें अष्टम और रुद्रोंमें तुम साक्षात् शिव हो ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! लोकोंके कर्त्ता विराट्स्वरूप, चतुर्मुख ब्रह्मा आपही हो, अश्विनीकुमार आपके विराट्स्वरूपकी घ्राण (नासिका) इन्द्रिय है, चंद्रमा और सूर्य नेत्र हैं ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! संसारकी आदि (उत्पत्ति करनेवाले) और अन्त (नाश करनेवाले) आपही हो अतएव आप नित्यस्वरूप हो, सदा उदयको प्राप्त रहतेहो, अर्थात् आपके विषे रात्रिदिनका व्यवहार नहीं हैं, सदा मायाके गुणोंसे भिन्न रहते हो, तिसकारणही सदा ज्ञानरूप मुक्त, गुणोंसे रहित और अद्वितीय हो ॥ ६ ॥ जो पुरुष आपकी मायासे मोहित होरहे हैं उनको आप मनुष्यशरीरधारी प्रतीत होते हो, और हे श्रीरामजन्द्रजी ! जो आपके नामका स्मरण करते हैं उनको चैतन्यस्वरूप प्रतीत होतेहो ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! रावणने तेजकरके हमारा स्थान हरण कर लियाथा, आज आपने उस दुष्टका

आदिकर्तासि लोकानां ब्रह्मा त्वं चतुराननः ॥ अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्रभास्करौ ॥ ५ ॥ लोकानामादिरन्तोऽसि नित्य एकः सदोदितः ॥ सदा शुद्धः सदा बुद्धः सदा मुक्तोऽगुणोऽद्वयः ॥ ६ ॥ त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः ॥ त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः ॥ ७ ॥ रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह ॥ त्वयाद्य निहतो दुष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम् ॥ ८ ॥ एवं स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात्पितामहः ॥ अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथे स्थितम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थिति-हेतुं त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ॥ हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥ १० ॥ प्राणापानौ निश्चय-बुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ॥ पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥ ११ ॥

संहार किया, तब फिर हमने अपना स्थान पाया है ॥ ८ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण देवताओंके स्तुति करनेपर साक्षात् पितामह ब्रह्माजी नम्र होकर सत्यमार्गमें स्थित जो श्रीरामचन्द्रजी तिनको प्रणाम करके कहनेलगे ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले, कि सम्पूर्ण संसारकी स्थितिके हेतु, आत्मज्ञानियोंने हृदयमें ध्यान कियेहुए, हेय कहिये त्याग करनेयोग्य, अहेय कहिये ग्रहण करने योग्य, जो दुःखसुख पापपुण्यादिरूप द्वन्द्व तिनसे रहित, प्रकृतिसे पर, अद्वितीय, सत्तामात्र और सबके हृदयमें स्थित ज्ञानस्वरूप, साक्षात् विष्णुदेवका अवतार जो श्रीरामचन्द्रजी मैं तिनके अर्थ प्रणाम करताहूँ, ॥ १० ॥ प्राण (नासिकासे निकलनेवाला पवन) और अपान (गुदाके द्वारा निकलनेवाला पवन) को निश्चयबुद्धि (हठयोग) के द्वारा हृदयके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषे रोककर और संपूर्ण संशयरूप बंधनको तथा विषयोंके समूहोंको श्रवण मनन और वैराग्य आदिके द्वारा नष्ट करके मोहरहित यतिपुरुष जिन सर्व शक्तिमान्का दर्शन करते हैं, तिनहीं रत्नजटित मुकुटको धारण करनेवाले, सूर्यके समान प्रकाशवान् श्रीरामचंद्रजीको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ११ ॥ मायाके गुणोंसे भिन्न, आदि, जगत्के कारण, इयत्तारहित, भक्तोंके मोहको नष्ट करनेवाले, मुनियोंके वन्दन करनेयोग्य, योगियोंने ध्यान करनेयोग्य, योगमार्गके प्रवर्त्तक, सर्वव्यापी, अपने गुणोंसे संसारको प्रसन्न करनेवाले और अतिरमणीय जो लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजी तिनको मैं प्रणाम करताहूँ ॥१२॥ भाव जो दृश्य पदार्थ और अभाव जो अदृश्य पदार्थ तिनका जो ज्ञान तिसके अविषय अर्थात् अनिर्वचनीयता ज्ञानके विषय, भोगोंमें आसक्ति न करनेवाले शिवआदिकरके पूजन कियेगए हैं चरणकमल जिनके ऐसे, नित्य (त्रिकालमें अबाध्य अर्थात् एकरस), मायादोषोंका नहीं है स्पर्श जिनको ऐसे

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ॥ योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥ १२ ॥ भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यैर्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ॥ नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥ १३ ॥ त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ॥ भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी ॥ १४ ॥ त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ॥ भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥ १५ ॥

ज्ञानस्वरूप, अनन्त, ओंकारनामा, सम्पूर्ण दैत्योंके नाशक और रागद्वेषशून्य श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ मैं प्रणाम करताहूँ ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! आप मेरे नाथ हो, क्योंकि सम्पूर्ण प्रार्थित कार्य्योंके करनेवाले, देश—काल—रूप—तीन प्रकारके परिच्छेदकरके शून्य, लक्ष्मीके पति, सम्पूर्ण जगत्के धारण करनेवाले, अनन्यभक्तिकरकेही प्राप्त होनेयोग्य, ध्यान करनेपर संसारदुःखको हरनेवाले, और योगाभ्यासकरके शुद्धहुआ जो अन्तःकरण तिसके विषे दर्शन देनेवाले हो ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! लोकपरम्पराकी उत्पत्ति और प्रलयके हेतु, लोकोंके परम पालना करनेवाले लौकिक प्रमाणोंसे जाननेमें न आनेवाले अर्थात् केवल शास्त्रकरकेही जानने योग्य, भक्ति और श्रद्धायुक्त हैं चित्त जिनके ऐसे पुरुषोंसे सेवन करनेयोग्य, नीलकमलके समान श्यामवर्ण और अतिरमणीय जो आप तिनको प्रणाम करताहूँ ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे श्रीरामचंद्रजी ! हे लक्ष्मीपते ! अतिमान कहिये सर्वव्यापी और गतमान कहिये परिच्छेद (इयत्ता) करके रहित जो आप तिनको इन्द्रियोंके द्वारा कौन जाननेको समर्थ होसक्ता है ? मुनियोंके माननीय और कृष्णावतारमें वृन्दावनमें स्थित होकर मायाकरके देवसमूहके अर्थ प्रणाम करनेवाले, शिव आदिके प्रणाम करनेयोग्य, और परमसुखदायक आपको प्रणाम करताहूँ ॥ १६ ॥ अनेक शास्त्र और चारोंवेदोंसे प्रतिपादन करने-योग्य, नित्य, आनन्दस्वरूप, निर्विकल्पक ज्ञानके विषय अर्थात् बाह्यविषयोंका अविषय जो ज्ञान तिसकरके जाननेयोग्य, आदि (उत्पत्ति) रहित, मेरी सेवाके अर्थ अर्थात् रावणआदिका वधरूप मेरा कार्य सिद्ध करनेके निमित्त मनुष्य अवतार धारण करनेवाले, और मथुरापति मरकत मणिके समान श्याममूर्ति श्रीरामचंद्रजीके अर्थ मेरा प्रणाम है ॥ १७ ॥ ब्रह्मज्ञानके देनेवाले, ब्रह्माजीके कहे हुए इस सर्वोपरि स्तोत्रको पृथ्वीतलमें जो

को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं मानासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम् ॥ वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं वन्दे रामं भवसुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥ १६ ॥ नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ॥ मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥१७॥ श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः ॥ रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥ १८ ॥ श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम् ॥ विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम् ॥१९॥ प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः ॥ गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने ॥ २० ॥ विधाय मायाजनकात्मजां हरे दशाननप्राणविनाशनाय च ॥ हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवैर्नि-राकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो ॥ २१ ॥

मनुष्य, अभिलाषाको पूर्ण करनेवाले सर्वशक्तिमान् श्यामवर्ण श्रीरामचंद्रजीका ध्यान करके पाठ करैगा वह ध्यान करनेवाला पुरुष पातकोंके समूहोंसे मुक्त होजाताहै ॥ १८ ॥ इसप्रकार ब्रह्माकी करीहुई श्रीरामचंद्रजीकी स्तुतिको सुनकर अरुणके तुल्य निर्म्मल कान्तिमती रक्त वस्त्र धारण कियेहुए और दिव्य आभूषणोंको धारण कियेहुए जो विदेहकुमारी जानकी तिनको अपनी गोदमें लेकर त्रिलोकीका साक्षी अग्नि शरणागतके दुःखोंको दूर करनेवाले रघुनाथजीसे कहनेलगा, कि हे श्रीरामचंद्रजी ! जो आपने पहिले बनमें मुझे सौंप दी थी, उस जानकीको ग्रहण करिये ॥ १९ ॥ २० ॥ हे हरे ! रावणके प्राणोंको नष्ट करनेके निमित्त मायाकी जानकी रचकर आपने पुत्र और बान्धवोंसहित रावणका संहार किया. हे प्रभो ! इसप्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रावणका वध करनेसे आपने पृथ्वीका भार दूर किया ॥ २१ ॥ आपने जिस कार्य्यके निमित्त उस प्रतिबिम्बरूप सीताका निर्माण कियाथा, वह उस कार्य्यको करके अब अन्तर्धान होगई, इसप्रकार अग्निके कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने अतिप्रसन्न होकर अग्निका पूजन किया, फिर लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीने सर्वकाल साथ रहनेवाली त्रिलोकीकी माता साक्षात् लक्ष्मीरूप अत्यन्त प्रसन्नमुखी जो जानकी तिनको स्वीकार करके अपनी गोदमें बैठाया, तब तो शोभाकरके प्रकाशवान् श्रीरामचन्द्रजीको जनाकीजीकरके युक्त देखकर अतिप्रसन्न हुए जो इन्द्रदेव सो भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ेहुए समीपमें आकर गद्गदवाणीसे श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करनेलगे, इन्द्रदेव बोले, कि नीलकमलके समान कान्तिमान, संसाररूपी वनको अग्निके

तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता ॥ ततोऽतिहृष्टां परिगृह्य जानकीं रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम् ॥ २२ ॥ स्वाङ्के समावेश्य सदानपायिनीं श्रियं त्रिलोकीजननीं श्रियः पतिः ॥ दृष्ट्वाथ रामं जनकात्मजायुतं श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा ॥२३॥ भक्त्या गिरा गद्गदया समेत्य कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे ॥ इन्द्र उवाच ॥ भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं भवारण्यदावानलाभाभिधानम् ॥ भवानीहृदा भावितानन्दरूपं भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥ २४ ॥ सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं नराकारदेहं निराकारमीड्यम् ॥ परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥ २५ ॥ प्रपन्नाखिलानन्ददोऽहं प्रपन्नं प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम् ॥ तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥ २६ ॥

तुल्य भस्म करनेवाला है नाम जिनका, पार्वती करके हृदयके विषे ध्यान कियेहुए आनन्दस्वरूप, संसारबन्धनको नष्ट करनेवाले, और शिव आदिकरके सेवन करनेयोग्य श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजताहूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ देवगणोंके दुःखसमूहको नाश करनेवाले, मनुष्यशरीर धारण करनेवाले, वास्तवमें निराकाररूप, स्तुति करनेयोग्य ब्रह्मादिकेभी स्वामी, मायासे पर, आनन्दस्वरूप, सर्वश्रेष्ठ, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले, और सर्वशक्तिमान् साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजताहूँ ॥ २५ ॥ शरणागतोंको सर्वप्रकारका आनन्द देनेवाले, भक्तोंसे सेवित, शरणागतोंके दुःखोंको निर्मूल करनेवाला है नाम जिसका, शमदमादिरूप योगको धारण करनेवाले, योगीश्वरोंकरके सत्तारूपसे ध्यान करनेयोग्य ऐसे, सुग्रीव बिभी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षण आदिके मित्र सूर्यके समान प्रकाशवान् श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजताहूँ ॥ २६ ॥ संसारके विषयोंको भोगनेमें आसक्तपुरुषोंसे सदा दूरही रहनेवाले, प्रकाशवान्, सदा योगियोंके समीपमेंही प्रकाशित रहनेवाले, चैतन्यस्वरूपऔर आनन्दस्वरूप, जानकीको आनन्दरूप अर्थात् सबप्रकारको आनन्द देनेवाले, रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरणागत हूँ ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! अपनी बड़ी भारी योगमायाके सत्वादिगुणोंके विषे आप इसप्रकार प्रतीयमान होतेहो, जिसप्रकार लालपुष्पके समीपमें रखीहुई स्वच्छ और श्वेतभी स्फटिकमणि लालसी प्रतीत होनेलगती है, और इसी योगमायाके गुणोंको अंगीकार करके आप मनुष्यकी आकृति धारण करते हैं; तिस मनुष्यरूपकरके करीहुई आपकी आनन्ददायक लीलाओंकी कथाओंको श्रवण करनेसे पवित्र हैं कर्ण जिनके ऐसे पुरुष इसलोकमें आनन्दरूप होकर रहते हैं ॥ २८ ॥ हे ईश ! अहंकाररूपी मद्यपानकरके मदो-

सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं सदा योगभाजामदूरे विभान्तम् ॥ चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये ॥ २७ ॥
महायोगमायाविशेषानुयुक्तो विभासीश लीलानराकारवृत्तिः ॥ त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके ॥ २८ ॥
अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ॥ इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥ २९ ॥
स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं धराभारभूतासुरानीकदावम् ॥ शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥ ३० ॥ सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम् ॥ किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥ ३१ ॥

न्मत्त हुआ मैं आपको भूलरहाथा; और इसप्रकार अभिमानयुक्त होरहाथा, कि जिसप्रकार चक्रवर्त्ती राजाओंको अपने ऐश्वर्य्यको अभिमान होता है, परन्तु हे भगवन् ! इससमय आपके चरणकमलोंके अनुग्रहसे वह त्रिलोकीके स्वामीपूनेका अभिमान दूर होगया ॥ २९ ॥ प्रकाशवान् रत्नोंकरके जड़ेहुए बाजूबन्द और हारोंकरके अति रमणीय, पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका समूहरूप जो वन तिसको अग्निके समान नष्ट करनेवाले, शरत्कालके चंद्रमाके समान है मुख जिनका, नीलकमलके समान हैं नेत्र जिनके, और अति कठिनसे प्राप्त होने योग्य है पारावार जिनका, ऐसे रघुनाथजीकी मैं शरणागत हूँ ॥३०॥ इन्द्रनीलमणिके और मेघमण्डलके समान श्यामवर्ण है अंगकी कान्ति जिनकी ऐसे, विराध आदि राक्षसोंका वध करके लोगोंको शान्ति रूप सुख देनेवाले, मुकुट आदिकरके शोभायमान, शिवजीकोभी यत्नसे प्राप्त होनेयोग्य, ऐसे रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरणागत हूँ ॥ ३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करोडों चंद्रमाओंके समान प्रकाशवान् सिंहासनके ऊपर दैदीप्यमान सुवर्णके तुल्य है शरीरका वर्ण जिनका और विजलियोंके समूहके तुल्य है कान्ति जिनकी, ऐसी सीताजीको गोदमें लेकर बैठेहुए दुःख और आलस्यसे रहित श्रीरामचन्द्रजी तिनको मैं भजताहूँ ॥ ३२ ॥ इसप्रकार इंद्रके स्तुति करनेके अनंतर पार्वतीसहित आकाशमें विमानपर बैठेहुए महादेवजी कमलदलनयन श्रीरामन्द्रजीसे कहनेलगे ॥ ३३ ॥ कि हे रघुनाथजी ! मैं अयोध्यामें राज्याभिषेक होनेपर आपका दर्शन करनेको आऊंगा, इससमय आप अपने इस देहके पिता राजा दशरथका दर्शन करिये ॥ ३४ ॥ इसप्रकार महादेवजीके कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने अपने आगे विमानपर स्थित महाराज दशरथको देखा, तब

लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे समासीनमङ्के समाधाय सीताम् ॥ स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥ ३२ ॥ ततः प्रोवाच भगवान्भवान्या सहितो भवः ॥ रामं कमलपत्राक्षं विमानस्थो नभःस्थले ॥ ३३ ॥ आगमिष्याम्ययोध्यायां द्रष्टुं त्वां राज्यसत्कृतम् ॥ इदानीं पश्य पितरमस्य देहस्य राघव ॥ ३४ ॥ ततोऽपश्यद्विमानस्थं रामो दशरथं पुरः ॥ ननाम शिरसा पादौ मुदा भक्त्या सहानुजः ॥ ३५ ॥ आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय रामं दशरथोऽब्रवीत् ॥ तारितोस्मि त्वया वत्स संसारादुःखसागरात् ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा पुनरालिङ्ग्य ययौ रामेण पूजितः ॥ रामोऽपि देवराजं तं दृष्ट्वा प्राह कृताञ्जलिम् ॥ ३७ ॥ मत्कृते निहतान्सङ्ख्ये वानरान्पतितान् भुवि ॥ जीवयाशु सुधावृष्ट्या सहस्राक्ष ममाज्ञया ॥ ३८॥ तथेत्यमृतवृष्ट्या तान् जीवयामास वानरान् ॥ ये ये मृता मृधे पूर्वं तेते सुप्तोत्थिता इव ॥ पूर्ववद्बलिनो हृष्टा रामपार्श्वमुपाययुः ॥ ३९ ॥

प्रसन्न होकर भक्तिपूर्वक लक्ष्मणजीसहित शिर नमाकर पिताके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ तब महाराजा दशरथने श्रीरामचन्द्रजीको हृदयसे लगाकर मस्तकमें सूंघ लिया और कहनेलगे, कि हे पुत्र ! तुमने मुझे संसाररूपी दुःखके समुद्रसे तारदिया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार कहकर और फिर हृदयसे लगाकर श्रीरामचन्द्रजीसे सत्कारको प्राप्त होकर चलेगये, तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़े आगे खड़ेहुए इन्द्रको देखकर कहा ॥ ३७ ॥ कि हे इन्द्रदेव ! तुम मेरी आज्ञासे मेरे निमित्त संग्राममें मरणको प्राप्त होकर रणभूमिमें पड़ेहुए वानरोंको अमृतकी वर्षा करके शीघ्रही जीवित करो ॥ ३८ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको स्वीकार कर इन्द्रदेवने अमृतकी वर्षा करके सम्पूर्ण वानरोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवित करदिया, तब वह सब वानर जिसप्रकार शयन करके उठते हैं इसप्रकार उठकर पहिलेके समान प्रसन्न और बलवान् होकर श्रीरामचंद्रजीके समीप आगये ॥ ३९ ॥ परंतु रणभूमिमें पड़े हुए राक्षस अमृतकी वर्षा होनेपरभी नहीं उठे, क्यों कि सत्यसंकल्प भगवान्के बाणोंसे मरणको प्राप्त होनेवालोंको जीवित करनेके लिये अमृतकी क्या सामर्थ्य है ? तदनंतर बिभीषण साष्टांग प्रणाम करके रघुनाथजीसे यह वचन बोले ॥ ४० ॥ कि हे देव ! मेरे ऊपर कृपा करिये, यदि मेरे विषे आपकी प्रीति है तो अब सीतासहित मंगलस्नान करिये ॥ ४१ ॥ फिर भ्राता लक्ष्मणजी सहित वस्त्र आभूषणादि धारण करके मेरे ऊपर अनुग्रह करिये, और कलको हम सब अयोध्यापुरीको चलेंगे, इसप्रकार बिभीषणके वचनको सुनकर श्रीरघुनाथजीने उत्तर दिया, कि हे बिभीषण ! अतिकोमल मेरे अत्यंत भक्त और मेरे समानही जटा और वल्कलको धारण करके ॐकारका

नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि ॥ बिभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्याब्रवीद्वचः ॥ ४० ॥ देव मामनुगृह्णीष्व मयि भक्तिर्यदा तव ॥ मङ्गलस्नानमद्य त्वं कुरु सीतासमन्वितः ॥ ४१ ॥ अलंकृत्य सह भ्रात्रा श्वो गमिष्यामहे वयम् ॥ बिभीषणवचः श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूत्तमः ॥ ४२ ॥ सुकुमारोऽतिभक्तो मे भरतो मामवेक्षते ॥ जटावल्कलधारी स शब्दब्रह्मसमाहितः ॥ ४३ ॥ कथं तेन विना स्नानमलङ्कारादिकं मम ॥ अतः सुग्रीवमुख्यांस्त्वं पूजयाशु विशेषतः ॥ ४४ ॥ पूजितेषु कपीन्द्रेषु पूजितोऽहं न संशयः ॥ इत्युक्तो राघवेणाशु स्वर्णरत्नाम्बराणि च ॥ ४५ ॥ ववर्ष राक्षसश्रेष्ठो यथाकामं यथारुचि ॥ ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वा रामो रत्नैश्च यूथपान् ॥ ४६ ॥ अभिनन्द्य यथान्यायं विससर्ज हरीश्वरान् ॥ बिभीषणसमानीतं पुष्पकं सूर्यवर्चसम् ॥ ४७ ॥

ध्यान करनेमें तत्पर भरत मेरे आनेकी वाट देखता होगा, अर्थात् यदि अवधिका समय वीत जायगा तो वह प्राणत्याग करदेगा ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ सो तिस भरतके विना मैं मंगलस्नान आदि किसप्रकार कर सक्ताहूँ, ? इसकारण तुम सुग्रीवआदि वानरोंका विशेषतासे पूजन करो, देरी करनेका समय नहीं है ॥ ४४ ॥ हे बिभीषण ! इन सब बानरोंका पूजन करनेपर मैं निःसंदेह पूजित हो जाऊंगा, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर बिभीषणने तत्कालही वानरोंको यथारुचिके अनुसार रत्न और वस्त्र दिये, तब तिन वानरोंके समूहोंको और सेनापतियोंको रत्नोंसे पूजित देखकर श्रीरामचंद्रजीने सब वानरोंको यथायोग्य प्रशंसा करके विदा किया फिर बिभीषणने लायेहुए सूर्यके समान प्रकाशवान् अत्युत्तम पुष्पक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नामक विमानपर लज्जायुक्त यशस्विनी जानकीको गोदमें बैठाकर श्रीरामचंद्रजी चढ़े, और परमपराक्रमी धनुषधारी भ्राता लक्ष्मणको अपने धीरे बैठाया, और विमानमें बैठेहुए ही श्रीरामचंद्रजी सम्पूर्ण वानरोंसे और वानरराज सुग्रीवसे तथा अंगदसे और बिभीषणसे कहने लगे, कि आप सबने वानरोंसहित जो कुछ मित्रके करनेका कार्य था सो सब किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब मेरी आज्ञासे तुम सब इच्छाके अनुसार अपने २ स्थानोंको जाओ, और हे सुग्रीव ! अपनी सेनासहित किष्किन्धाको जाओ ॥ ५१ ॥ हे बिभीषण! तुम मेरी भक्ति करतेहुए अपने लंकाके राज्यमें निवास करो तुम्हारा इंद्रसहितभी देवता तिरस्कार नहीं करसकेंगे ॥ ५२ ॥ अब मैं अपने पिताकी

आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ अङ्के निधाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ॥ ४८ ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥ अब्रवीच्च विमानस्थः श्रीरामः सर्ववानरान् ॥ ४९ ॥ सुग्रीवं हरिराजं च अङ्गदं च बिभीषणम् ॥ मित्रकार्यं कृतं सर्वं भवद्भिः सह वानरैः ॥५०॥ अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ॥ सुग्रीवं प्रतियाह्याशु किष्किन्धां सर्वसैनिकैः ॥५१॥ स्वराज्ये वस लङ्कायां मम भक्तो बिभीषण ॥ न त्वां धर्षयितुं शक्ता सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥ ५२ ॥ अयोध्यां गन्तुमिच्छामि राजधानीं पितुर्मम ॥ एवमुक्तस्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः ॥ ५३ ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च बिभीषणः ॥ अयोध्यां गन्तुमिच्छामस्त्वया सह रघूत्तम ॥५४॥ दृष्ट्वा त्वामभिषिक्तं तु कौसल्यामभिवाद्य च ॥ पश्चाद्वृणीमहे राज्यमनुज्ञां देहि नः प्रभो ॥ ५५ ॥ रामस्तथेति सुग्रीववानरैः सबिभीषणः ॥ पुष्पकं सहनूमांश्च शीघ्रमारोह सांप्रतम् ॥ ५६ ॥ ततस्तु पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया ॥ बिभीषणश्च सामात्यः सर्वे चारुरुहुर्द्रुतम् ॥ ५७ ॥

राजधानी अयोध्यापुरीको जानाचाहताहूँ, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर वह संपूर्ण महाबली वानर और संपूर्ण राक्षस तथा बिभीषण आदि सब हाथ जोड़कर कहने लगे, कि हे रघुनाथजी ! हमारीभी यही इच्छा है, कि आपके साथ अयोध्यापुरीको चलैं ॥ ५३॥ ५४ ॥ आपके राज्याभिषेकको देखकर और कौसल्या माताके चरणोंमें प्रणाम करके फिर इस राज्यको स्वीकार करैंगे; सो हे प्रभो ! हमैं साथ चलनेकी आज्ञा देनी चाहिये ॥ ५५ ॥ इसप्रकार सबके कहनेको स्वीकार करके श्रीरामचन्द्रजीने कहा, कि हे सुग्रीव ! तुम वानरोंसहित और बिभीषण तथा हनुमान्सहित अब शीघ्रही विमानपर चढ़ो ॥ ५६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके इतना कहतेही वानरोंकी सेनासहित सुग्रीव और मंत्रियोंसहित बिभीषण तथा और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी सब शाघ्रही तिस दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़गए ॥ ५७ ॥ जब वह सब चढ़गए तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे वह कुबेरका पुष्पकविमान आकाशमार्गको उड़कर चलदिया ॥ ५८ ॥ हंसोंकरके युक्त प्रकाशवान् तिस विमानके ऊपर चढ़कर प्रसन्नचित्त श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार शोभाको प्राप्त हुए, मानो हँसके ऊपर चढ़ेहुए दूसरे ब्रह्माही हैं ॥ ५९ ॥ बड़े तपकरके प्राप्त हुआ वह सूर्य्यमण्डलकेसमान कुबेरका विमान स्वयंही शोभायमान था, और लक्ष्मणजी तथा सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीके बैठनेसे तो अत्यन्तही शोभाको प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इतिश्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं,

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् ॥ राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥ ५८ ॥ बभौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ प्रहृष्टश्च तदा रामश्चतुर्मुख इवापरः ॥ ५९ ॥ ततो बभौ भास्करबिम्बतुल्यं कुबेरयानं तपसानुलब्धम् ॥ रामेण शोभां नितरां प्रपेदे सीतासमेतेन सहानुजेन ॥६०॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमाम० युद्धकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ॥ अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥ १ ॥ त्रिकूटशिखराग्रस्था पश्य लङ्कां महाप्रभाम् ॥ एतां रणभुवं पश्य मांसकर्दमपङ्किलाम् ॥ २ ॥ असुराणां प्लवङ्गानामत्र वैशसनं महत् ॥ अत्र मे निहतः शेते रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥ कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्याः सर्वे चात्र निपातिताः ॥ एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलाशये ॥ ४ ॥ एतच्च दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥ सेतुबन्धमिति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥ ५ ॥

कि हे पार्वति ! तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी चारोंओर दृष्टि डालकर चन्द्रमुखी जनककुमारी सीताजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ कि हे प्रिये ! त्रिकूटाचलके शिखरके अग्रभागपर वसीहुई अत्यन्त कान्तियुक्त लंकापुरीको देखो, और इस रणभूमिको देखो, अभीतक यहाँ मांस रुधिरकी कींच होरही है ॥ २ ॥ राक्षसोंका और वानरोंका बड़ा भारी युद्ध यहाँही हुआ था, और यहाँही मेरे हाथसे मरकर राक्षसपति रावणने शयन किया था ॥ ३ ॥ कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि सब राक्षस इसीस्थानपर मारेगये, और यह देखो जलके स्थान समुद्रमें मैंने पूल बँधवाया है ॥ ४ ॥ और यह देखो, समुद्रके तीरपर परम पवित्र तीर्थ है, यह त्रिलोकीके पूजने योग्य और सेतुबन्धनामसे प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधिक क्या कहूँ, हे प्रिये ! यह परमपवित्र और दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पातकोंको दूर करनवाला है, क्यों कि मैंने स्वयं यहाँ रामेश्वर नामक महादेवकी प्रतिष्ठा करी है ॥ ६ ॥ और देखो इस स्थानपर मंत्रियोंसहित सुग्रीव मेरी शरणागत आया था, और वह देखो विचित्र वनकरके शोभायमान सुग्रीवकी किष्किंधा नगरी है ॥७॥ महादेवजी कहतेहैं, कि हे पार्वति ! इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी सीताको मार्गके सब स्थान बतारहे थे, सो ज्योंही किष्किन्धा-नगरीके समीप आया, त्यौंही तत्काल श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे सुग्रीवने सीताजीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे ताराआदि, अपनी सम्पूर्ण स्त्रियोंको तहाँ बुलालिया ॥ ८ ॥ तब उन स्त्रियोंकोभी लेकर शीघ्रही पुष्पक विमान आकाशमार्गसे चलने लगा, तब श्रीरामचन्द्रजी सीताजीसे कहने लगे, कि

एतत्पवित्रं परमं दर्शनात्पातकापहम् ॥ अत्र रामेश्वरो देवो मया शम्भुः प्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥ अत्र मां शरणः प्राप्तो मन्त्रिभिश्च बिभीषणः ॥ एषा सुग्रीवनगरी किष्किन्धा चित्रकानना ॥ ७ ॥ तत्र रामाज्ञया ताराप्रमुखा हरियोषितः ॥ आनयामास सुग्रीवः सीतायाः प्रियकाम्यया ॥ ८ ॥ ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ॥ प्राह चाद्रिमृष्यमूकं पश्य वाल्यत्र मे हतः ॥ ९ ॥ एषा पञ्चवटी नाम राक्षसा यत्र मे हताः ॥ अगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्य पश्याश्रमपदे शुभे ॥ १० ॥ एते ते तापसाः सर्वे दृश्यते वरवर्णिनि ॥ असौ शैलवरो देवि चित्रकूटः प्रकाशते ॥ ११ ॥ अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥ भरद्वाजाश्रमं पश्य दृश्यते यमुनातटे ॥ १२ ॥ एषा भागीरथी गङ्गा दृश्यते लोकपावनी ॥ एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी ॥१३॥ एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि ॥ एवं क्रमेण सम्प्राप्तो भरद्वाजाश्रमं हरिः ॥ १४ ॥

हे प्रिये ! इस ऋष्यमूक पर्वतको देखो, यहाँ मैंने वालिका वध किया था ॥ ९ ॥ और यह पंचवटी दीखरही है, जहाँ मैंने राक्षसोंको नष्ट किया था, और वह देखो, अगस्त्य और सुतीक्ष्णमुनिके दोनों सुन्दर आश्रम दीखरहे हैं ॥ १० ॥ हे प्रिये ! यह सब तपस्वी दीखरहेहैं, और हे देवी ! वह देखो अति उत्तम चित्रकूट प्रकाशित होरहा है ॥ ११ ॥ यहाँ मुझे कैकयीका पुत्र भरत प्रसन्न करनेको आया था, और वह देख यमुनाके तटपर भरद्वाजऋषिका आश्रम दीख रहा है ॥ १२ ॥ यह लोगोंको पवित्र करनेवाली भागीरथी गङ्गा दीख रही है, और हे सीते ! वह देखो, सरयू दीख रही है, जिसके तटपर रघुवंशियोंके यज्ञ करनेके खंभोंकी पंक्ति शोभित हो रही है ॥ १३ ॥ और हे भामिनी ! यह वह अयोध्यानगरी दीखती है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसको प्रणाम करो, इसप्रकार जानकीजीसे वार्ता करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाजऋषिके आश्रममें आ गए ॥ १४ ॥ चौदहवर्ष पूर्ण होनेपर पंचमीके दिन प्रभु रघुनाथजीने लक्ष्मणजीसहित आकर भरद्वाजमुनिका दर्शन करके प्रणाम किया ॥ १५ ॥ फिर आश्रममें बैठेहुए भरद्वाजमुनिसे श्रीरामचन्द्रजीने नम्रतापूर्वक बूझा, कि हे भगवन्! शत्रुघ्नसहित भरत तो कुशल है ? यह आपने सुना है ? ॥ १६ ॥ अयोध्यामें सुभिक्ष है ? और मेरी माता जीवित है ? इसप्रकार रघुनाथजीके बूझनेपर भरद्वाजमुनि प्रसन्न चित्त होकर बोले, कि हे रामचंद्र ! सब कुशलपूर्वक हैं, और पवित्रान्तःकरण भरत तो फलमूल आहारकरके जटा वल्कल धारण करेहुए रहता है ॥ १७ ॥१८॥ और अयोध्यापुरीका सम्पूर्ण राज्य आपकी पादुका (खड़ाऊं) ओंको समर्पण करके तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा करता है. हे रघुनंदन ! तुमने दण्डकारण्यमें राक्षसोंका नाश और सीताहरण आदि जो जो लीला करीं वह सब

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां रघुनन्दनः ॥ भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववन्दे सानुजः प्रभुः ॥१५॥ पप्रच्छ मुनिमासीनं विनयेन रघूत्तमः ॥ शृणोषि कच्चिद्भरत कुशल्यास्ते सहानुजः ॥१६॥ सुभिक्षा वर्ततेऽयोध्या जीवन्ति च हि मातरः ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं भरद्वाजः प्रहृष्टधीः ॥१७॥ प्राह सर्वे कुशलिनो भरतस्तु महामनाः ॥ फलमूलकृताहारो जटावल्कलधारकः ॥१८॥ पादुके सकलं न्यस्य राज्यं त्वां सुप्रतीक्षते ॥ यद्यत्कृतं त्वया कर्म दण्डके रघुनन्दन ॥ १९ ॥ राक्षसानां विनाशं च सीताहरणपूर्वकम् ॥ सर्वं ज्ञातं मया राम तपसा ते प्रसादतः ॥ २० ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादादिमध्यान्तवर्जितः ॥ त्वमग्रे सलिलं सृष्ट्वा तत्र सुप्तोऽसि भूतकृत् ॥ २१ ॥ नारायणोऽसि विश्वात्मन्नराणामन्तरात्मकः ॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २२ ॥

तुम्हारे अनुग्रहसे तपके बलकरके मैंने जानलिया ॥ १९ ॥ २० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम आदि, मध्य और अन्तकरके रहित साक्षात् परब्रह्म हो, हे सम्पूर्ण प्राणियोंको रचनेवाले ! आपने प्रथमही जलको रचकर उसमें शयन किया ॥ २१ ॥ इसकारण तुम नारायण हो, क्यों कि नर जो पुरुष (आप) तिनसे उत्पन्न होयँ सो हुए नार वह नार हैं अयन स्थान जिनका, अथवा सब नरोंके कहिये जीवोंके अन्तर्यामी होनेके कारण आप नारायण हो, अर्थात् नार जो जीवसमूह तिसका अयन कहिये प्रवृत्ति होय जिससे वह नारायण कहाता है इसप्रकार नारायण शब्द व्याकरणसे सिद्ध होता है. हे विश्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी जो जलशायी मूर्ति है, तिस मूर्तिकी नाभिकमलसे त्रिलोकीके पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसकारण हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम जगत्के स्वामी और सम्पूर्ण लोगोंकरके नमस्कार कियेगए हो, हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम विष्णु हो, जानकी लक्ष्मी है और लक्ष्मण साक्षात् शेषजीका अवतार है ॥ २३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! तुम अधिष्ठानरूप अपने आत्माके विषे इस जगत्को मायासे रचते हो, परन्तु अपनी चित्शक्ति करके आकाशके समान कहीं लिप्त नहीं होते हो, किन्तु सबके साक्षीरूप होकर रहते हो ॥२४॥ हे रघुवंशको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! सम्पूर्ण प्राणियोंके बाहर भीतर तुमही व्याप्त हो, परन्तु अज्ञानदृष्टि पुरुषोंको विच्छिन्न कहिये परिच्छिन्न (मनुष्यादि रूपधारी) से प्रतीत होतेहो ॥ २५ ॥ हे जगत्पते ! तुमही जगत्के आधार हो, तुमही जगत्के पालक हो, तुमही सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे भोजन करनेवाले रूप

अतस्त्वं जगतामीशः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शेषोऽयं लक्ष्मणाभिधः ॥२३॥ आत्मना सृजसीदं त्वमात्मन्येवात्ममायया ॥ न सज्जसे नभोवत्त्वं चिच्छक्त्या सर्वसाक्षिकः ॥२४॥ बहिरन्तश्च भूतानां त्वमेव रघुनन्दन ॥ पूर्णोऽपि मूढदृष्टीनां विच्छिन्न इव लक्ष्यसे ॥२५॥ जगत्त्वं जगदाधारस्त्वमेव परिपालकः ॥ त्वमेव सर्वभूतानां भोक्ता भोज्यं जगत्पते ॥२६॥ दृश्यते श्रूयते यद्यत्स्मर्यते वा रघूत्तम ॥ त्वमेव सर्वमखिलं त्वद्विनान्यन्न किञ्चन ॥ २७ ॥ माया सृजति लोकांश्च स्वगुणैरहमादिभिः ॥ त्वच्छक्तिप्रेरिता राम तस्मात्त्वय्युपचर्यते ॥२८॥ यथा चुम्बकसान्निध्याच्चलन्त्येवाय आदयः ॥ जडास्तथा त्वया दृष्टा माया सृजति वै जगत् ॥ २९ ॥ देहद्वयमदेहस्य तव विश्वं रिरक्षिषोः ॥ विराट् स्थूलं शरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम् ॥ ३० ॥

तुमही हो, और भोज्य कहिये अन्नादिरूपभी तुमही हो ॥ २६ ॥ जो कुछ श्रवण करनेमें आता है, और जो कुछ स्मरण होता है, हे रघूत्तम ! वह सब आपकाही रूप है, आपसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ २७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी प्रेरणा करीहुई माया अपने अहंकार आदि गुणोंकरके लोकोंको रचती है, इसकारणही आपके विषे वह जगत्का कर्त्तापनाआदि इसप्रकार प्रतीत होता है, जिसप्रकार सेवकके कियेहुए कार्य्यका कर्त्तापना आदि राजाके विषे है ॥ २८ ॥ जिसप्रकार चुम्बक पत्थरकी समीपतासे लोहाआदि चलने लगते हैं, तिसीप्रकार जड़माया आपकी दृष्टिमात्रसेही जगत्की रचना करने लगती है आपका मायाकी ओरको देखनाही प्रेरणा है ॥ २९ ॥ जगत्के रक्षक जो आप तिन आपके अदेह होकरभी तुम्हारे स्थूल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और सूक्ष्म दो शरीर हैं, आपका विराट्स्वरूपही स्थूल शरीर है, और हिरण्यगर्भ आपका सूक्ष्म शरीर है ॥ ३० ॥ उस आपके विराट् शरीरसेही यह हजारों अवतार होते हैं और हे रघुनाथजी ! कार्य सिद्ध होनेके अनंतर वह संपूर्ण अवतार उस विराट्स्वरूपमेंही प्रवेश करजाते हैं ॥ ३१ ॥ हे रघुनाथजी ! जो चित्त लगाकर इस संसारमें आपके अवतारोंकी कथाको श्रवण करते हैं और गान करते हैं तथा कहते हैं उनको निःसंदेह मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ३२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! तुमने पहिले ब्रह्माजीके तपसे प्रसन्न होकर इनकी प्रार्थनासे रघुकुलमें अवतार धारण किया है ॥ ३३॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपने देवताओंका अतिकठिन कार्य पूर्णरीतिसे किया और आगेको तुम अनेक सहस्र वर्षपर्यंत मनुष्यशरीरको धारण करेहुए दुष्कर

विराजः सम्भवन्त्येते अवतारा: सहस्रशः ॥ कार्यान्ते प्रविशन्त्येव विराजं रघुनन्दन ॥३१॥ अवतारकथां लोके ये गायन्ति गृणन्ति च ॥ अनन्यमनसो मुक्तिस्तेषामेव रघूत्तम ॥ त्वं ब्रह्मणा पुरा भूमेर्भारहाराय राघव ॥ ३२ ॥ प्रार्थितस्तपसा तुष्टस्त्वं जातोऽसि रघोः कुले ॥३३॥ देवकार्यमशेषेण कृतं ते राम दुष्करम् ॥ बहुवर्षसहस्राणि मानुषं देहमाश्रितः ॥३४॥ कुर्वन्दुष्करकर्माणि लोकद्वयहिताय च ॥ पाप हारीणि भुवनं यशसा पूरयिष्यसि ॥ ३५ ॥ प्रार्थयामि जगन्नाथ पवित्रं कुरु मे गृहम् ॥ स्थित्वाद्य भुक्त्वा सबलः श्वो गमिष्यसि पत्तनम् ॥ ३६ ॥ तथेति राघवोऽतिष्ठत्तस्मिन्नाश्रम उत्तमे ॥ ससैन्यः पूजितस्तेन सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ३७ ॥ ततो रामश्चिन्तयित्वा मुहूर्तं प्राह मारुतिम् ॥ इतो गच्छ हनूमंस्त्वमयोध्यांप्रति सत्वरः ॥ ३८ ॥ जानीहि कुशली कश्चिज्जनो नृपतिमन्दिरे ॥ शृङ्गवेरपुरं गत्वा ब्रूहि मित्रं गुहं मम ॥ ३९ ॥

कर्म्मोंको करके दोनों लोकोंके हितके अर्थ पापको दूर करनेवाले अपने चरित्ररूपी यशसे त्रिलोकीको परिपूर्ण करोगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! मेरी इतनी प्रार्थना है, कि आज निवासकरके मेरे घरको पवित्र करिये, कल भोजन करके सेनासहित अयोध्यापुरीको जाइये ॥ ३६ ॥ इस कथनको स्वीकार करकें रघुनाथजी तिस उत्तम आश्रमके विषे ठहर गये, और भरद्वाजऋषिने सीता, लक्ष्मण तथा सेनासहित श्रीरामचंद्रजीका सत्कार किया ॥ ३७ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने दो घड़ी पर्यन्त कुछ विचार करके हनुमान्जीसे कहा, कि हे पवनकुमार ! तुम यहाँसे शीघ्रही अयोध्यापुरीको जाओ ॥३८॥ तहाँ राजमंदिरमें जाकर प्रथम सबकी कुशल देखकर आओ, और लौटते समय शृंगवेरपुरमें जाकर मेरे मित्र गुहसे कहो ॥३९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि जानकी और लक्ष्मणसहित रामचन्द्र आगये, फिर नंदिग्राममें जाकर मेरे भ्राता भरतका दर्शन करके कहो, कि जानकी और भ्राता लक्ष्मणसहित रामचंद्र कुशल हैं और क्रमसे सीताहरण रावणका वध आदि सब तहाँका चरित्र भ्रातासे कहो, और कहो कि सम्पूर्ण शत्रुसमूहोंको नष्ट करके सीता और लक्ष्मणसहित और रीछ तथा वानरोंको साथमें लिये हुए परिपूर्ण मनोरथ रामचंद्र आ रहे हैं, इसप्रकार कहकर और तहाँ भरतका सम्पूर्ण चरित्र देखकर शीघ्रही लौटकर मेरे पास आओ, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको शिरोधारणपूर्वक अंगीकार करके हनुमान्‌जीने तहाँही मनुष्यका शरीर धारण करलिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ और शीघ्रही नंदिग्रामको

जानकीलक्ष्मणोपेतमागतं मा निवेदय ॥ नन्दिग्रामं ततो गत्वा भ्रातरं भरतं मम ॥ ४० ॥ दृष्ट्वा ब्रूहि सभार्यस्य सभ्रातुः कुशलं मम ॥ सीतापहरणादीनि रावणस्य वधादिकम् ॥ ४१ ॥ ब्रूहि क्रमेण मे भ्रातुः सर्वं तत्र विचेष्टितम् ॥ हत्वा शत्रुगणान्सर्वान्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ४२ ॥ उपयाति समृद्धार्थः सह ऋक्षहरीश्वरैः ॥ इत्युक्त्वा तत्र वृत्तान्तं भरतस्य विचेष्टितम् ॥४३॥ सर्वं ज्ञात्वा पुनः शीघ्रमागच्छ मम सन्निधिम् ॥ तथेति हनुमांस्तत्र मानुषं वपुरास्थितः ॥४४॥ नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं वायुवेगेन मारुतिः ॥ गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन् भुजगोत्तमम् ॥ ४५ ॥ शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुह्यमासाद्य मारुतिः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४६ ॥ रामो दाशरथिः श्रीमान्सखा ते सह सीतया ॥ सलक्ष्मणस्त्वां धर्मात्मा क्षेमी कुशलमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ अनुज्ञातोऽद्य मुनिना भरद्वाजेन राघवः ॥ आगमिष्यति तं देवं द्रक्ष्यसि त्वं रघूत्तमम् ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वा महातेजाः संप्रहृष्टतनूरुहम् ॥ उत्पपात महावेगो वायुवेगेन मारुतिः ॥ ४९ ॥

हनूमान् इसप्रकार वेगसे गये, कि जिसप्रकार उत्तम सर्पको ग्रहण करनेकी इच्छासे गरुडजी अतिवेगसे जाते हैं ॥ ४५ ॥ पवनकुमारने शृंगवेरपुरमें गुहके पास जाकर प्रसन्न चित्तसे मधुर वाक्य कहा ॥ ४६ ॥ कि तुम्हारे मित्र श्रीमान् दशरथकुमार धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण और सीतासहित कुशलपूर्वक आये हैं और तुम्हारे अर्थ कुशल कहा है ॥ ४७ ॥ आज भरद्वाजमुनिकी आज्ञासे रघुनाथजी उनके आश्रममें ठहर गये हैं, कल आवेंगे अब तिन रघुवंशशिरोमणि राजा रामचंद्रजीको देखोगे ॥ ४८ ॥ प्रसन्नतासे शरीरमें खड़े होगये हैं रोमांच जिसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसे गुहसे इसप्रकार कहकर पवनकुमार वायुसमान अत्यंत वेगसे चलदिये ॥४९॥ और आगे जाकर रामतीर्थ महानदी शरयूको देखा, उसको लांघके हनुमान्‌जी अयोध्यासे कोशभर जो नन्दिग्राम तहाँ प्रसन्न होतेहुए गये, तहाँ चीर और मृगचर्म्मको ओढे हुए, दीन अवस्थाको प्राप्त, दुर्बल शरीर, धूलि और कींचसे सजेहुए शरीरवाले, मस्तकपर जटाजूट धारण करेहुये, वनके फलमूलका आहार करनेवाले श्रीरामचंद्रजीकी चिन्तासे व्याकुल, और तिन श्रीरामचंद्रजीकीही पादुकाओंका आगे स्थापन करके गेरुवा वस्त्र धारण करनेवाले, मंत्रि और मुख्य २ पुरवासियोंसहित पृथ्वीका पालन करते-हुए साक्षात् शरीरधारी धर्म्मरूप भरतजीका दर्शन करके पवनकुमार हनुमान्‌जी हाथ जोड़कर यह वाक्य बोले, कि हे रघुकुलशिरोमणे ! आप

सोऽपश्यद्रामतीर्थं च सरयूं च महानदीम् ॥ तामतिक्रम्य हनुमान्नन्दिग्रामं ययौ मुदा॥५०॥क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥५१॥ मलपङ्कविदिग्धाङ्गं जटिलं वल्कलाम्बरम् ॥ फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम् ॥ ५२ ॥ पादुके ते पुरस्कृत्य शासयन्तं वसुन्धराम् ॥ मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च काशायाम्बरधारिभिः॥५३॥वृतदेहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् ॥ उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः ॥ ५४ ॥ यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम् ॥ अनुशोचसि काकुत्स्थः स त्वां कुशल-मब्रवीत् ॥५५॥ प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् ॥ अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥ ५६ ॥ समरे रावणं हत्वा रामः सीतामवाप्य च ॥ उपयाति समृद्धार्थः ससीतः सहलक्ष्मणः ॥ ५७ ॥ एवमुक्तो महातेजा भरतो हर्षमूर्छितः ॥ पपात भुवि चा-स्वस्थः कैकेयीप्रियनन्दनः ॥ ५८ ॥

जिन श्रीरामचंद्रजीके निमित्त चिंता कररहे हैं, जो श्रीरामचंद्रजी तपस्वियोंका वेश धारण करके दण्डकारण्यमें रहे थे, और जिनके निमित्त प्रतिक्षण शोक करतेहुए तुम दुःखित होते हो उनही इक्ष्वाकुवंशमें जन्म धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने आपको कुशल कहा है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे देव ! मैं आपको प्रिय वृतान्त सुनाताहूं अब आप इस दारुण शोकको त्याग दीजिये इस मुहूर्त्तमेंही माता श्रीराम-चंद्रजीके साथ आपका मेलन होगया ॥ ५६ ॥ श्रीरामचंद्रजी रणभूमिमें लंकापति रावणका संहार करके और सीताको प्राप्त होकर मनोरथ पूर्ण होनेपर भ्राता लक्ष्मण और जनकनंदिनी सीतासहित आ रहे हैं ॥ ५७ ॥ जब हनुमान्‌जीने यह शुभसंवाद कहा तब कैकयीके प्रियपुत्र महा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बली भरतजी आनन्दके कारण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥५८॥ और फिर उठकर शुभसंवाद देनेवाले पवनकुमार हनुमान्जीको शीघ्रही हृदयसे लगाकर नेत्रोंमेंसे निकलेहुए आनंदके आंसुओंसे पवनकुमारको सींचकर भरतजी कहने लगे ॥ ५९ ॥ कि तुम देवता हो या मनुष्य हो जो मेरे ऊपर अनुग्रह करके तुम यहाँ आये हो ? हे चंद्रमाके समान प्रियदर्शन तुमने मुझे प्रिय संवाद सुनाया है सो मैं तुमको क्या वस्तु समर्पण करूं ? ॥ ६० ॥ सौ हजार गौ, एकसौ बड़े बड़े गाँव, और संपूर्ण आभूषणोंकरके भूषित सर्वांग सुन्दरी सोलह कन्या देता हूँ ॥ ६१ ॥ इसप्रकार कहकर भरतजी पवनकुमारसे फिर कहने लगे कि हमारे नाथ रामचंद्रको महावनमें गयेहुए बहुत वर्ष व्यतीत हो गये ॥६२॥ आज मैंने आनन्ददायक अपने

आलिङ्ग्य भरतः शीघ्रं मारुतिं प्रियवादिनम् ॥ आनन्दजैरश्रुजलैः सिषेच भरतः कपिम् ॥५९॥ देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ॥ प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम्॥६०॥गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं वरम् ॥ सर्वाभरणसम्पन्ना सुग्धाः कन्यास्तु षोडश॥६१॥एवमुक्त्वा पुनः प्राह भरतो मारुतात्मजम् ॥ बहूनीमानि वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्॥६२॥शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ कल्याणी बत गाथेऽयं लौकिकी प्रतिभाति मे॥६३॥एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ राघवस्य हरीणां च कथमासीत्समागमः ॥६४॥ तत्त्वमाख्याहि भद्रं ते विश्वसेयं वचस्तव ॥ एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना ॥६५॥ आचचक्षेऽथ रामस्य चरितं कृत्स्नशः क्रमात् ॥ श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतो मारुतात्मजात् ॥६६॥ आज्ञापयच्छत्रुहणं मुदा युक्तं मुदान्वितः ॥ दैवतानि च यावन्ति नगरे रघुनन्दन॥६७॥नानोपहारबलिभिः पूजयन्तु महाधियः ॥ सूता वैतालिकाश्चैव बन्दिनः स्तुतिपाठकाः ॥ ६८ ॥

स्वामीका वृत्तान्त सुनाहै आज यह शुभदायक लौकिक गाथा मुझे सत्य प्रतीत होती है ॥६३॥ कि जीतेहुए मनुष्यको सौ वर्षके अनंतरभी आनंदकी प्राप्ति होतीहै. हे पवनकुमार ! अब मुझे यह सुनाओ, कि रघुनाथजीका और वानरोंका समागम किसप्रकार हुआ ॥ ६४ ॥ यह सब ठीक ठीक कहो, क्यों कि हे भद्र ! मुझे तुम्हारे कथनका विश्वास है, परमसमर्थ महात्मा भरतजीके इसप्रकार कहनेपर हनुमान्जीने क्रमसे श्रीरामचंद्रजीका सम्पूर्ण चरित्र वर्णन किया, हनुमान्जीसे श्रीरामचंद्रजीके सम्पूर्ण वृत्तांतको सुनकर भरतजी परमानन्दको प्राप्त हुए ॥६५॥६६॥ और अपने हृदयमें आनन्दयुक्त हो प्रसन्न चित्त शत्रुघ्नको आज्ञा दी, कि हे रघुनंदन ! इस नगरमें जितनी देवताओंकी प्रतिमा हैं उनका परमबुद्धिवान् ब्राह्मण अनेक प्रकारकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूजनकी सामग्रीके द्वारा पूजन करैं. सूत, मागध, बन्दीजन, तथा औरभी स्तुति पढ़नेवाले पुरुष और सैंकड़ों वेश्या, यह सब इकट्ठे होकर अबही नगरके बाहर आवें, और महाराज दशरथकी सब रानियें, सम्पूर्ण मंत्री, हाथी घोड़े आदि सम्पूर्ण सेना, ब्राह्मण, सम्पूर्ण पुरवासी और इधर उधरसे आये हुए सम्पूर्ण राजा, आज चन्द्रमाके समान मुखवाले श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके निमित्त नगरसे बाहर आवैं ॥ ६७ ॥ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ इसप्रकार भरतजीके वचनको सुनकर शत्रुघ्नके आज्ञा देनेपर पुरवासियोंने मोती और रत्नोंकी बनाई हुई चमकती हुई बंदनवारोंसे और अनेकप्रकारकी चित्र विचित्र पताकाओंसे अयोध्यापुरीको शोभित करदिया, और नानाप्रकारकी रचना करनेमें चतुर पुरुषोंने

वारमुख्याश्च शतशो निर्यान्त्वद्यैव सङ्घशः ॥ राजदारास्तथामात्याः सेनाहस्त्यश्वपत्तयः ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणाश्च तथा पौरा राजानो ये समागताः ॥ निर्यान्तु राघवस्याद्य द्रष्टुं शशिनिभाननम् ॥ ७०॥ भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नपरिचोदिताः ॥ अलंचक्रुश्च नगरीं मुक्तारत्नमयोज्ज्वलैः ॥ ७१ ॥ तोरणैश्च पताकाभिर्विचित्राभिरनेकधा ॥ अलंकुर्वन्ति वेश्मानि नानाबलिविचक्षणाः ॥ ७२ ॥ निर्यान्ति वृन्दशः सर्वे रामदर्शनलालसाः ॥ हयानां शतसाहस्रं गजानामयुतं तथा ॥ ७३ ॥ रथानां दशसाहस्रं स्वर्णसूत्रविभूषितम् ॥ पारमेष्ठीन्युपादाय द्रव्याण्युच्चावचानि च ॥ ७४ ॥ ततस्तु शिबिकारूढा निर्ययू राजयोषितः ॥ भरतः पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलिः ॥ ७५ ॥ शत्रुघ्नसहितो रामं पादचारेण निर्ययौ ॥ तदैव दृश्यते दूराद्विमानं चन्द्रसन्निभम् ॥ ७६ ॥ पुष्पकं सूर्यसंकाशं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ॥ एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ॥ ७७ ॥

अपने स्थानोंको शोभायमान किया ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ और सम्पूर्ण पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसासे इकट्ठे हो होकर नगरसे बाहर जानेलगे, एक लक्ष घोंड़ोंके सवार, दशहजार हाथी, और दशहजार सुवर्णके तारके कामसे शोभायमान रथ, तथा और सब पुरुष श्रीरामचन्द्रजीके योग्य कमती बड़ती मोलकी वस्तुएँ भेटके निमित्त लेकर चलदिये ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ फिर पालकियोंमें चढ़ीहुई महाराज दशरथकी रानियें चलीं, तिन सबके पीछे भरतजी श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाओंको शिरपर रखकर हाथ जोड़ेहुए, शत्रुघ्न सहित पैदलही श्रीरामचन्द्रजीके मिलनेको चलदिये; इतनेहीमें दूरसे चन्द्रमाके समान कांतिमान्, सूर्यके समान प्रकाशवान्, ब्रह्माजीने मनसे बनाया हुआ पुष्पक विमान दीखा, सो पवनकुमार हनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानजी कहनेलगे, कि अरे पुरुषो ! देखो इस विमानमें जानकीसहित परमपराक्रमी रामलक्ष्मण दोनों भ्राता, वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव और मंत्रियोंसहित बिभीषण दीखरहे हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ इतना हनुमानजीके कहतेही स्त्री, बालक, युवा और वृद्धोंने कहा कि वह श्रीरामचन्द्रजी हैं वह श्रीरामचन्द्रजी हैं, इसप्रकार हर्षसे उत्पन्नहुआ बड़ा भारी शब्द आकाशमें गुंजारने लगा ॥ ७९ ॥ रथ, हाथी, और घोड़ेपरसे उतरकर मनुष्य पृथ्वीपर खड़े होगये, और आकाशमें विमानपर स्थित श्रीरामचंद्रजीको चंद्रमाके समान देखनेलगे ॥ ८० ॥ तदनंतर श्रीरामचंद्रजीको सन्मुख पृथ्वीपर स्थित परमानंदयुक्त भरतजीने हाथ जोड़कर विमानपर बैठेहुए श्रीरामचंद्रजीको परम हर्षसहित प्रणाम किया, तब मानो सुमेरुपर स्थित सूर्यनारायणको कोई प्रणाम कररहा है, ऐसी शोभा हुई, फिर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विमान पृथ्वीपर

सुग्रीवश्च कपिश्रेष्ठो मन्त्रिभिश्च बिभीषणः ॥ दृश्यते पश्यत जना इत्याह पवनात्मजः ॥ ७८ ॥ ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् ॥ स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोयमिति कीर्तनात् ॥ ७९ ॥ रथकुञ्जरवाजिस्था अवतीर्य महीं गताः ॥ ददृशुस्ते विमानस्थं जनाः सोममिवाम्बरे ॥ ८० ॥ प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ॥ ततो विमानाग्रगतं भरतो राघवं मुदा ॥ ८१ ॥ ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥ ततो रामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद्भुवि ॥ ८२ ॥ आरोपितो विमानं तद्भरतः सानुजस्तदा ॥ राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥ ८३ ॥ समुत्थाप्य चिराद्दृष्टं भरतं रघुनन्दनः ॥ भ्रातरं स्वाङ्कमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे ॥ ८४ ॥ ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं नाम कीर्तयन् ॥ अभ्यवादयत प्रीतो भरतः प्रेमविह्वलः ॥ ८५ ॥ सुग्रीवं जाम्बवन्तं च युवराजं तथाङ्गदम् ॥ मैन्दद्विविदनीलांश्च ऋषभं चैव सस्वजे ॥ ८६ ॥ सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ॥ शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे ॥ ८७ ॥

उतरा ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ तब शत्रुघ्नसहित भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीने उस विमानपरही चढ़ालिया, तबतो श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त होकर भरतजी परम प्रसन्न हुए, और फिर प्रणाम किया ॥ ८३ ॥ तबतो रघुनाथजीने चरणोंमें गिरेहुए और बहुतकालके अनंतर देखेहुए भ्राता भरतको उठाकर अपनी गोदमें बैठाया, और परम आनन्दके साथ हृदयसे लगाया ॥ ८४ ॥ फिर भरतजीने लक्ष्मणजी और जानकीके पास जाय प्रेमसे विह्वल हो इसप्रकार कहा, कि मैं भरत प्रणाम करताहूँ ॥ ८५ ॥ फिर भरतजीने सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज, अंगद, मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गंधमादन, शरभ तथा पनस आदि सबको हृदयसे लगाया ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदनंतर उन संपूर्ण वानरोंने प्रसन्न होकर अतिरमणीय मनुष्यका रूप धारण करके भरतजीका सत्कार किया, और कुशल पूँछी ॥ ८८ ॥ तदनंतर भरतजी प्रीतिपूर्वक सुग्रीवको हृदयसे लगाकर कहने लगे, कि हे वानरराज ! तुम्हारीही सहायतासे श्रीरामचंद्रजीकी जय और रावणका मरण हुआ ॥ ८९ ॥ हे सुग्रीव ! तुम हम चारों भ्राताओंमें पांचवे भ्राता हो, फिर शत्रुघ्नने लक्ष्मणसहित श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके पीछेसे नम्रतापूर्वक सीताजीके चरणोंमें प्रणाम किया, इसके अनंतर श्रीरामचंद्रजी शोककरके विह्वल और दुर्बल शरीर कौशल्या आदि अपनी माताओंके पास गये, और प्रणामपूर्वक चरणोंमें गिरकर अपनी माता कौशल्याके मनको प्रसन्न किया, फिर कैकेयी और सुमित्रा आदि सब रणवासकी रानियोंको प्रणाम किया

सर्वे ते मानुषं रूपं कृत्वा भरतमादृताः ॥ पप्रच्छुः कुशलं सौम्याः प्रहृष्टाश्च प्लवङ्गमाः ॥ ८८ ॥ ततः सुग्रीवमालिङ्ग्य भरतः प्राह भक्तितः ॥ त्वत्सहायेन रामस्य जयोऽभूद्रावणो हतः ॥ ८९ ॥ त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ॥ शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ॥ ९० ॥ सीतायाश्चरणौ पश्चाद्ववन्दे विनयान्वितः ॥ रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोकविह्वलाम् ॥ ९१ ॥ जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन् ॥ कैकेयीं च सुमित्रां च ननामेतरमातरः ॥ ९२ ॥ भरतः पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते ॥ योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ॥ ९३ ॥ राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यातितं तव ॥ अद्य मे सफलं जन्म फलितो मे मनोरथः ॥ ९४ ॥ यत्पश्यामि समायातमयोध्यां त्वामहं प्रभो ॥ कोष्ठागारं बलं कोशं कृतं दशगुणं मया ॥ ९५ ॥ त्वत्तेजसा जगन्नाथ पालयस्व पुरं स्वकम् ॥ इति ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा सर्वे कपीश्वराः ॥ ९६ ॥ मुमुचुर्नेत्रजं तोयं प्रशशंसुर्मुदान्विताः ॥ ततो रामः प्रहृष्टात्मा भरतं स्वाङ्कगं मुदा ॥ ९७ ॥

॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ फिर भरतजीने सुन्दर रीतिसे पूजन करी हुई उन पादुकाओंको भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीके चरणोंमें पहिनाया ॥ ९३ ॥ और कहने लगे, कि हे प्रभो ! यह आपका धरोहड़रूप राज्य मैंने आपको लौटादिया, आज मेरा जन्म सफल हुआ, और मनोरथ सफल हुआ जो आपको अयोध्यापुरीमें आया हुआ देखरहा हूँ, हे प्रभो ! मैंने आपके प्रतापसे अन्नका भंडार, सेना और खजाना, दशगुणा करदिया, हे त्रिलोकीनाथ ! अब आप अपने नगरका पालन करिये, भरतजीको इसप्रकार कहतेहुए देखकर सम्पूर्ण वानरोंके नेत्रोंमेंसे आंसू टपकने लगे, और सब प्रसन्न होकर भरतजीकी प्रशंसा करनेलगे, इसके अनंतर प्रसन्नचित्त श्रीरामचंद्रजी भरतजीको अपनी गोदमें बैठाएहुए आनंदपूर्वक तिस विमानपर चढ़ेहुएही भरतजीके आश्रमको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गये, और तहाँ उस पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर उतरकर महाराज पुष्पकसे कहने लगे, कि हे पुष्पक ! जाओ, और कुबेरको अपने ऊपर धारण करो, मैं तुम्हैं आज्ञा देताहूँ, कि तुम धनपालक कुबेरकी आज्ञामें रहाकरो ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ तदनंतर जिस प्रकार इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिजीको प्रणाम करतेहै तिसही प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने कुलगुरु वसिष्ठजीके चरणकमलोंको प्रणाम किया, और गुरुको बैठनेके निमित्त एक बहुमूल्य अतिउत्तम आसन दिया, और आपने आपभी उनके समीपमेंही बैठगये ॥ १०० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ श्रीमहादेवजी कहते

ययौ तेन विमानेन भरतस्याश्रमं तदा ॥ अवरुह्य तदा रामो विमानाद्भ्यान्महीतलम् ॥ ९८ ॥ अब्रवीत्पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह ॥ अनुगच्छानुजानामि कुबेरं धनपालकम् ॥ ९९ ॥ रामो वसिष्ठस्य गुरोः पदाम्बुजं नत्वा यथा देवगुरोः शतक्रतुः ॥ दत्त्वा महार्हासनमुत्तमं गुरोरुपाविवेशाथ गुरोः समीपतः ॥१००॥ इति श्रीम० रा० उमामहे० युद्धकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ततस्तु कैकयीपुत्रो भरतो भक्तिसंयुतः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय ज्येष्ठं भ्रातरमब्रवीत् ॥ १ ॥ माता मे सत्कृता राम दत्तं राज्यं त्वया मम ॥ ददामि तत्ते च पुनर्यथा त्वमददां मम ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा पादयोर्भक्त्या साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ बहुधा प्रार्थयामास कैकेय्या गुरुणा सह ॥ ३ ॥ तथेति प्रतिजग्राह भरताद्राज्यमीश्वरः ॥ मायामाश्रित्य सकला नरचेष्टामुपागतः ॥ ४ ॥ स्वाराज्यानुभवो यस्य सुखज्ञानैकरूपिणः ॥ निरस्तातिशयानन्दरूपिणः परमात्मनः ॥ ५ ॥

हैं; हे पार्वति ! तदनन्दर कैकेयीके पुत्र भरतजी भक्तिपूर्वक बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके हाथ जोडकर कहने लगे ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! आपने मुझे राज्य सोंपकर चौदहवर्षपर्यंत बनमें निवास करके मेरी माताका सत्कार किया सो अब मैं यह राज्य जैसा आपने पहिले मुझे सोंपाथा वैसाही मैं समर्पण करताहूँ ॥ २ ॥ इस प्रकार कहकर और चरणोंमें भक्तिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करके भरतजीने कैकेयी और गुरुवसिष्ठजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी अनेकप्रकारसे प्रार्थना करी ॥ ३ ॥ मायाको स्वीकार करके संपूर्ण मनुष्यकी चेष्टा करनेवाले परमात्मा श्रीरामचंद्रजीने भरतसे उस संपूर्ण राज्यको ग्रहण किया ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजी अपने स्वाराज्य (आत्मानंदके सुख) का अनुभव करते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो सुखरूप और ज्ञानरूप और अद्वितीय हैं, और जिनके आनंदरूपके समान दूसरा आनन्द नहीं है, तिन जगत्के स्वामी परमात्माको मनुष्योंके तुच्छ राज्यसे क्या प्रयोजन है ? जिसके भौंके चलाने मात्रसे क्षणमात्रमें त्रिलोकी नष्ट होजाती है, जिनके कृपाकटाक्षसे इन्द्रको सम्पत्तियें प्राप्त होती हैं, ऐसी लीलाकरकेही, अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेवाले लक्ष्मीपति श्रीरामचंद्रजीको यह अयोध्याका राज्य कितना है ? ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ तथापि भक्तोंकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेकी इच्छासे परमात्मा नित्य लीलाकरके मनुष्यशरीरको धारण कर सबप्रकारका मनुष्योंका सा व्यवहार करते हैं ॥ ८॥ तदनंतर शत्रुघ्नकी आज्ञासे अतिप्रवीण नाई और समुद्रजलआदि अभिषेककी सामग्रियें आईं, पहिले भरतजीने स्नान किया, फिर माहात्मा लक्ष्मणजीने स्नान

मानुषेण तु राज्येन किं तस्य जगदीशितुः ॥ यस्य भ्रूभङ्गमात्रेण त्रिलोकी नश्यति क्षणात् ॥ ६ ॥ यस्यानुग्रहमात्रेण भवन्त्याखण्डलश्रियः ॥ लीलासृष्टमहासृष्टेः कियदेतद्रमापतेः ॥ ७॥ तथापि भजतां नित्यं कामपूरविधित्सया ॥ लीलामानुषदेहेन सर्वमप्यनुवर्तते ॥ ८॥ ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणः श्मश्रुकृन्तकः ॥ सम्भाराश्चाभिषेकार्थमानीता राघवस्य हि ॥ ९ ॥ पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महात्मनि ॥ सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे बिभीषणे ॥ १० ॥ विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ॥ महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ ११ ॥ प्रतिकर्म च रामस्य लक्ष्मणश्च महामतिः ॥ कारयामास भरतः सीताया राजयोषितः ॥ १२ ॥ महार्हवस्त्राभरणैरलंचक्रुः सुमध्यमाम् ॥ ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभना ॥ १३ ॥ अकारयत कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥ ततः स्यन्दनमादाय शत्रुघ्नवचनात्सुधीः ॥ १४ ॥ सुमन्त्रः सूर्यसंकाशं योजयित्वाग्रतः स्थितः ॥ आरुरोह रथं रामः सत्यधर्मपरायणः ॥ १५ ॥

किया तदनंतर वानरराज सुग्रीवने फिर राक्षसपति बिभीषणने स्नान किया, फिर जटाओंका संस्कार, स्नान, अनेकप्रकारकी मालाओंका धारण, गंधलेपन और बहुमूल्य वस्त्रोंको धारणकरके स्थित, लक्ष्मीकरके प्रकाशवान् परमप्रवीण लक्ष्मणजी और भरतजीने श्रीरामचंद्रजीका संपूर्ण उवटनादि संस्कार कराया, और सीताका उबटनादि संपूर्ण संस्कार कौशल्या आदि रानियोंने कराया, और तिन जानकीको बहुमूल्य वस्त्र आभूषणादिसे शोभित किया, तदनंतर पुत्रवत्सला प्रसन्नचित्त शुभलक्षणा कौशल्याने सुग्रीव आदि संपूर्ण वानरोंकी स्त्रियोंका उवटना आदि करवाया, तदनंतर शत्रुघ्नकी आज्ञासे परम प्रवीण सुमंत्र सूर्यके समान प्रकाशवान् रथको जोडकर लाया, और श्रीरामचंद्रजीके आगे खडा करदिया, तब सत्यप्रतिज्ञ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचंद्रजी रथपर चढ़े ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ सुग्रीव अंगद हनूमान् और बिभीषण यह सब स्नान करके दिव्य वस्त्र और आभूषणोंको धारण करेहुए रथ घोडे और हाथियोंपर चढ़कर श्रीरामचंद्रजीके पीछे और आगे चलदिये, सुग्रीवस्त्रियें और सीताजी यह सब पालकीआदिपर सवार होकर अयोध्यापुरीको चलीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ जिसप्रकार देवताओंसहित हरित घोड़ोंके रथपर चढ़ाहुआ इन्द्र जाता है, तिसी प्रकार रथपर बैठकर श्रीरामचंद्रजी अयोध्यापुरीको गये ॥ १८ ॥ उससमय भरतजीने सारथी बनकर रथ हाँका, परमप्रकाशवान् शत्रुघ्नने रत्नजटित दण्डेका श्वेत छत्र लिया, लक्ष्मणजीने व्यजन (पंखा) धारण किया ॥ १९ ॥ चन्द्रमाके समान कान्तिमान् एक चमरको सुग्रीव और दूसरे चम-

सुग्रीवो युवराजश्च हनुमांश्च बिभीषणः ॥ स्नात्वा दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिताः ॥ १६ ॥ राममन्वीयुरग्रे च रथाश्वगजवाहनाः ॥ सुग्रीवपत्न्यः सीता च ययुर्यानैः पुरं महत् ॥ १७ ॥ वज्रपाणिर्यथा देवैर्हरिताश्वरथे स्थितः ॥ प्रययौ रथमास्थाय तथा रामो महत्पुरम् ॥ १८ ॥ सारथ्यं भरतश्चक्रे रत्नदण्डं महाद्युतिः ॥ श्वेतातपत्रं शत्रुघ्नो लक्ष्मणो व्यजनं दधे ॥ १९ ॥ चामरं च समीपस्थो न्यवीजयद्रिंदमः ॥ शशिप्रकाशं त्वपरं जग्राहासुरनायकः ॥ २० ॥ दिविजैः सिद्धसङ्घैश्च ऋषिभिर्दिव्यदर्शनैः ॥ स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥ २१ ॥ मानुषं रूपमास्थाय वानरा गजवाहनाः ॥ भेरी शङ्खनिनादैश्च मृदङ्गपणवानकैः ॥ २२ ॥ प्रययौ राघवश्रेष्ठस्तां पुरीं समलंकृताम् ॥ ददृशुस्ते समायान्तं राघवं पुरवासिनः ॥ २३ ॥ दूर्वादलश्यामतनुं महार्हकिरीटरत्नाभरणाचिताङ्गम् ॥ आरक्तकञ्जायतलोचनान्तं दृष्ट्वा ययुर्मोदमतीव पुण्याः ॥ २४ ॥ विचित्ररत्नाञ्चितसूत्रनद्धपीताम्बरं पीनभुजान्तरालम् ॥ अनर्घ्यमुक्ताफलदिव्यहारैर्विरोचमानं रघुनन्दनं प्रजाः ॥ २५ ॥

रको बिभीषणने धारण किया ॥ २० ॥ दिव्य है दर्शन जिनका ऐसे देवता, सिद्धसमूह और ऋषियोंके श्रीरामचन्द्रजीके स्तुतिकारक वाक्योंकी मधुर ध्वनि सुनाई देनी लगी ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण वानर मनुष्यका रूप धारण करके हाथियोंपर चढ़ेहुए भेरी, शंख, मृदङ्ग, पणव और नगाड़े आदि अनेक प्रकारके बाजे बजानेलगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार श्रीरघुनाथजी तिस सजाईहुई अयोध्यानगरीको गए. और तिन पुरवासियोंने दूवके समान श्यामवर्ण बहुमूल्य रत्नोंके जडेहुए आभूषणोंसे भराहुआ है शरीर जिनका, और कुछ लाल कमलके समान चौंडे हैं नेत्र जिनके ऐसे रघुनाथजीको आतेहुए देखा, और देखकर वह पुण्यवान् पुरवासी अतिआनन्दको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ २४ ॥ चित्रविचित्र वर्णके रत्न और सुवर्णके तार आदिकोंसे युक्त पीताम्बरको धारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेवाले, और पुष्ट हैं भुजाओंका अन्तराल (वक्षःस्थल) जिनका, और अमूल्य मुक्ताओंके दिव्य हारोंसे शोभायमान जो रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीको देखकर प्रजाके लोग परम आनन्दको प्राप्तहुए ॥ २५ ॥ शान्तस्वरूप सुग्रीव आदि मुख्य २ वानरोंकरके सेवा करेहुए, सूर्य्यके तुल्य कान्तिमान्, कस्तूरी और चन्दनसे लिप्त है शरीर जिनका और कण्ठसे बगलमेंको कल्पद्रुमके पुष्पोंकी मालाको धारण करेहुए जो श्रीरामचन्द्रजी तिनको आयाहुआ सुनकर अत्यन्त हर्षके वेगसे अत्यन्त बढ़गई है मुखकी कान्ति जिनकी ऐसी सम्पूर्ण अयोध्यापुरीकी स्त्रियें अत्यन्त आवश्यकभी गृहके सम्पूर्ण कार्य्योंको छोड़कर शृंगारकरके महलोंके ऊपर चढ़गई ॥ २६ ॥ २७ ॥ सबके नेत्रोंको उत्सवरूप है आकृति जिनकी ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मुसकुरानेसे शोभायमान हैं मुख जिनके ऐसी स्त्रियोंने पुष्पोंकी वर्षा करी, और नेत्र तथा मनको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्र-

सुग्रीवमुख्यैर्हरिभिः प्रशान्तैर्निषेव्यमाणं रवितुल्यभासम् ॥ कस्तूरिकाचन्दनलिप्तगात्रं निवीतकल्पद्रुमपुष्पमालम् ॥ २६ ॥ श्रुत्वा स्त्रियो राममुपागतं मुदा प्रहर्षवेगोत्कलिताननश्रियः ॥ अपास्य सर्वं गृहकार्यमाहितं हर्म्याणि चैवारुरुहुः स्वलंकृताः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा हरिं सर्वदृगुत्सवाकृतिं पुष्पैः किरन्त्यः स्मितशोभिताननाः ॥ दृग्भिः पुनर्नेत्रमनोरसायनं स्वानन्दमूर्तिं मनसाभिरेभिरे ॥ २८ ॥ रामः स्मितस्निग्धदृशाः प्रजास्तथा पश्यन्प्रजानाथ इवापरः प्रभुः ॥ शनैर्जगामाथ पितुः स्वलंकृतं गृहं महेन्द्रालयसन्निभं हरिः ॥ २९ ॥ प्रविश्य वेश्मान्तरसंस्थितो मुदा रामो ववन्दे चरणौ स्वमातुः ॥ क्रमेण सर्वाः पितृयोषितः प्रभुर्ननाम भक्त्या रघुवंशकेतुः ॥ ३० ॥ ततो भरतमाहेदं रामः सत्यपराक्रमः ॥ सर्वसम्पत्समायुक्तं मम मन्दिरमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

जीको स्त्रियोंने नेत्रोंसे और मनसे आलिंगन किया ॥ २८ ॥ साक्षात् विष्णुरूप श्रीरामचन्द्रजी मुसकुरानयुक्त स्नेहकी दृष्टिसे सम्पूर्ण प्रजाको देखतेहुए दूसरे प्रजानाथ (ब्रह्मा) के समान शोभायमान हुए, इसप्रकार धीरे धीरे इन्द्रके स्थानके समान रमणीय पिताके स्थानको गए ॥ २९ ॥ स्थानके भीतर जाकर खड़े हुए, और परमप्रसन्नताके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया, फिर रघुवंशकी पताकारूप श्रीरामचन्द्रजीने भक्तिपूर्वक सम्पूर्ण माताओंके चरणोंमें क्रमसे प्रणाम किया ॥ ३० ॥ फिर सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीसे इसप्रकार कहा, कि हे भ्रातः ! सबप्रकारकी संपत्तियों युक्त जो मेरा उत्तम स्थान है, वह मेरे मित्र वानरराज सुग्रीवको ठहरनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निमित्त दो, और वानर बिभीषण आदिको भी सुखपूर्वक ठहरनेके निमित्त स्थान बतादो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे भरतजीने सबको ठहरनेके लिये यथोचित स्थान दिये, और परमतेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको छोटे भ्राता भरतजीने सुग्रीवसे इसप्रकार कहा कि हे सुग्रीव ! श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके निमित्त चारों समुद्रोंका शुभकारक जल लानेके निमित्त शीघ्रही शीघ्रगामी दूतोंको भेजो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इसप्रकार भरतजीके कहनेसे सुग्रीवने जाम्बवान्, पवनकुमार, अङ्गद और सुषेणको भेजा. यह चारों वायुके समान वेगसे जाकर, जलसे भरेहुए सुवर्णके कलशोंको ले आए. फिर मंत्रियोंसहित शत्रुघ्नने वसिष्ठजीको निवेदन किया कि महाराज ! तिर्थोंका जल आगया. तब वृद्ध जितेन्द्रिय वसिष्ठजीने ब्राह्मणोंको साथ

मित्राय वानरेन्द्राय सुग्रीवाय प्रदीयताम् ॥ सर्वेभ्यः सुखवासार्थं मन्दिराणि प्रकल्पय ॥ ३२ ॥ रामेणैव समादिष्टो भरतश्च तथाकरोत् ॥ उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ॥ ३३ ॥ राघवस्याभिषेकार्थं चतुःसिन्धुजलं शुभम् ॥ आनेतुं प्रेषयस्वाशु दूतांस्त्वरितविक्रमान् ॥३४॥ प्रेषयामास सुग्रीवो जाम्बवन्तं मरुत्सुतम् ॥ अङ्गदं च सुषेणं च ते गत्वा वायुवेगतः ॥ ३५ ॥ जलपूर्णान् शातकुम्भकलशांश्च समानयन् ॥ आनीतं तीर्थसलिलं शत्रुघ्नो मन्त्रिभिः सह ॥३६॥ राघवस्याभिषेकार्थं वसिष्ठाय न्यवेदयत् ॥ ततस्तु प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ॥ ३७ ॥ रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत् ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गौतमस्तथा ॥ ३८ ॥ वाल्मीकिश्च तथा चक्रुः सर्वे रामाभिषेचनम् ॥ कुशाग्रतुलसीयुक्तपुण्यगन्धजलैर्मुदा ॥ ३९ ॥ अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठं वासवं वसवो यथा ॥ ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः श्रेष्ठैः कन्याभिः सह मन्त्रिभिः ॥ ४० ॥ सर्वौषधिरसैश्चैव दैवतैर्नभसि स्थितैः ॥ चतुर्भिर्लोकपालैश्च स्तुवद्भिः सगणैस्तथा ॥ ४१ ॥

लेकर रत्नजटित सिंहासनपर सीतासहित श्रीरामचंद्रजीको बैठाया, तदनन्तर वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, वाल्मीकि, आदि सब ऋषियोंने परमआनन्दपूर्वक कुश और तुलसीके मिलेहुए पवित्र तथा सुगंधित जलसे रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक किया, जिसप्रकार वसुनामक देवता इन्द्रका अभिषेक करते हैं, तिसीप्रकार उन ऋषियोंने ऋत्विज, उत्तम ब्राह्मण, कन्या, मंत्रिसमूह, आकाशके विषे स्थित देवता और पार्षदों सहित स्तुति करतेहुए चार लोकपालोंके साथ संपूर्ण औषधियोंके रससे श्रीरामचंद्रजीका अभिषेक किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उससमय श्रीरामचन्द्रजीके शुभ श्वेत छत्रको शत्रुघ्नने धारण किया, सुग्रीव और राक्षसेन्द्र बिभीषण इन दोनोंने चमर धारण करे ॥ ४२ ॥ इन्द्रकी प्रेरणासे वायुने उससमय श्रीरामचन्द्रजीको सुवर्णकी माला दी, और सबप्रकारके रत्नोंसे युक्त मणि सुवर्ण करके शोभायमान हार इन्द्रने स्वयं भक्तिपूर्वक श्रीराचन्द्रजीको समर्पण किया, देवता और गन्धर्व गान करनेलगे, अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ देवता दुन्दुभी बजाने लगे, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी, नवीन दूबके समान श्यामवर्ण, कमलके पत्रके समान चौंडे नेत्रवाले, करोड सूर्योंके समान कान्तियुक्त मुकुटसे विराजमान, करोड़ कामदेवोंके समान रमणीय, पीताम्बरधारी, दिव्य आभूषण धारण करेहुए, दिव्य चन्दनसे लिप्त, दशह-

छत्रं च तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ॥ सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ तौ दधतुः श्वेतचामरे ॥ ४२ ॥ मालां च काञ्चनीं वायुर्ददौ वासवचोदितः ॥ सर्वरत्नसमायुक्तं मणिकाञ्चनभूषितम् ॥ ४३ ॥ ददौ हारं नरेन्द्राय स्वयं शक्रस्तु भक्तितः ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात् ॥ नवदूर्वादलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ४५ ॥ रविकोटिप्रभायुक्तकिरीटेन विराजितम् ॥ कोटिकन्दर्पलावण्यं पीताम्बरसमावृतम् ॥ ४६ ॥ दिव्याभरणसम्पन्नं दिव्यचन्दनलेपनम् ॥ अयुतादित्यसंकाशं द्विभुजं रघुनन्दनम् ॥ ४७ ॥ वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम् ॥ सर्वाभरणसम्पन्नां वामाङ्के समुपस्थिताम् ॥ ४८ ॥ रक्तोत्पलकराम्भोजां वामेनालिङ्ग्य संस्थितम् ॥ सर्वातिशयशोभाढ्यं दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः ॥ ४९ ॥ उमया सहितो देवः शङ्करो रघुनन्दनम् ॥ सर्वदेवगणैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ५० ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पलश्यामलकोमलाय ॥ किरीटहाराङ्गदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय ॥ ५१ ॥

जार सूर्योंके समान प्रकाशवान्, द्विभुज, रघुनाथजीको और वामभागमें बैठी हुई, सुवर्णके समान कान्तिमती, सम्पूर्ण आभूषणोंको धारण करेहुए श्रीरामचन्द्रजीकी वामजंघापर बैठनेवाली, लालकमल हाथमें लियेहुए जो जनकनन्दिनी सीताको वामहाथसे आलिङ्गन करके स्थित सर्वोपरि शोभा युक्त देखकर पार्वतीसहित और संपूर्ण देवताओंको साथ लियेहुए महादेवजी भक्तिपूर्वक रघुनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ श्रीशीवजी बोले, कि शक्ति (सीता) सहित, नीलकमलके तुल्य कोमल श्याममूर्ति मुकुट हार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और बाजूबन्दकरके शोभित, सिंहासनपर स्थित परमकान्तिमान् श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपको आदि मध्य और अन्त नहीं है, आप अद्वितीय है, सम्पूर्ण जगत्को आपही अपनी मायासे रचते हो, पालन करते हो और नष्ट करते हो, परन्तु यह सब कार्य्य मायाके द्वारा करते हो इसकारण तिससे लिप्त नहीं होते हो, जिसप्रकार वाजीगर अपनी मायासे रचेहुए जीवआदिको नष्ट करकेभी उसके दोषका भागी नहीं होता है. हे भगवन् ! आप निरन्तर आत्मसुखका अनुभव करतेरहते हो, आपको किसीप्रकार दोष नहीं लगसक्ता है ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! शरणागतभक्तोंको संसारबन्धनसे छुटानेके निमित्त आप मायाके गुणोंको धारण करतेहुए देवमनुष्यआदि नानाप्रकारके अवतारोंको धारण करके लीला करते हो, अवतार धारण करनेपरभी आप ज्ञानी पुरुषोंके परमेश्वररूपही प्रतीत होतेहो, और अज्ञानी

त्वमादिमध्यान्तविहीन एकः सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम् ॥ स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं यत्स्वे सुखेऽजस्रतोऽनवद्यः ॥ ५२ ॥ लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वं प्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ॥ नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम् ॥ ५३ ॥ स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तं बिभर्षि च त्वं तदधः फणीश्वरः ॥ उपर्यथो भान्वनिलोडुपौषधीप्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत् ॥ ५४ ॥ त्वमिह देहभृतां शिखिरूपः पचसि भुक्तमशेषमजस्रम् ॥ पवनपञ्चकरूपसहायो जगदखण्डमनेन बिभर्षि ॥ ५५ ॥ चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतं यत्तेज ईश चिदशेषतनूनाम् ॥ प्राभवत्तनुभृतामिव धैर्यं शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम् ॥ ५६ ॥

पुरुष यह समझते हैं कि रामकृष्णादि कोई श्रेष्ठ पुरुष हैं ईश्वर नहीं हैं ॥ ५३ ॥ हे भगवन् ! तुम सम्पूर्ण लोकको अपने अंशसे रचकर उसको पातालमें शेषरूप होकर धारण करते हो, और ऊपर सूर्य्य, वायु, चंद्रमा, औषधि और मेघआदि अनेकप्रकारके रूपोंको धारण करके तिस जगत्का पालन करतेहो ॥ ५४ ॥ हे भगवन् ! तुम इस लोकमें प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान इन पांच प्रकारके पवनोंका सहायरूप जाठराग्निस्वरूप होकर प्राणियोंके भोजन किये हुए सम्पूर्ण अन्नको पचातेहो, इसप्रकारभी सदा सम्पूर्ण जगत्का पालन करतेहो ॥ ५५ ॥ हे ईश ! चंद्रमा सूर्य और अग्निके विषे जो तेज है सम्पूर्ण प्राणियोंमें जो चेतनता है, तथा इस लोकमें प्राणियोंका जो धैर्य्य, शूरता और आयु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि है, सो सब आपकीही सत्तासे प्रकट हुआ है ॥ ५६ ॥ हे ईश! ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि भेदकरके और काल, कर्म्म, सूर्य्य, चंद्रमा, आदि विभागकरके तुमही ब्रह्माआदिके विषे ईश्वरपनका अभिमान करनेवाले मनुष्योंको ब्रह्माआदिरूपकरके प्रतीत होते हो, वास्तवमें निःसन्देह अद्वितीय ब्रह्म हो ॥ ५७ ॥ हे भगवन्! जिसप्रकार आप एकही पुराणोंके विषे मत्स्य आदि रूपकरके अनेक प्रकारके कहे गये हो, परलोकमें प्रसिद्ध हो, तिसीप्रकार कुछ सत् और असत् प्रतीत होताहै सो सब आपही हो, आपसे भिन्न कुछ नहीं हैं ॥ ५८ ॥ हे भगवन्! इस अनंत सृष्टिमें जो जो पदार्थ उत्पन्न होगये और जे जे उत्पन्न होयँगे तथा जो जो उत्पन्न हो रहे हैं तिन स्थावर जंगम आदिके विषे कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो आपकी सत्ताके विना हो इस कारण हे भगवन्! आप हिरण्यगर्भसे भी पर हो ॥ ५९ ॥ हे भगवन्! आपकी मायाकरके मोहित संपूर्ण प्राणी आपके वास्तविक इस

त्वं विरिञ्चिशिवविष्णुविभेदात्कालकर्मशशिसूर्यविभागात् ॥ वादिनां पृथगिवेश विभासि ब्रह्मनिश्चितमनन्यदिहैकम् ॥ ५७ ॥ मत्स्यादि-रूपेण यथा त्वमेकः श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः ॥ तथैव सर्वं सदसद्विभागस्त्वमेव नान्यद्भवतो विभाति ॥ ५८ ॥ यद्यत्समुत्पन्नमनन्त-सृष्टावुत्पत्स्यते यच्च भवच्च यच्च ॥ न दृश्यते स्थावरजंगमादौ त्वया विनातः परतः परस्त्वम् ॥ ५९ ॥ तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव माययातः ॥ त्वद्भक्तसेवामलमानसाना विभाति तत्त्वं परमेकमैशम् ॥ ६० ॥ ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहि-रर्थभावाः ॥ ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः ॥ ६१ ॥ अहं भवन्नाम गृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवा-न्या ॥ मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥ ६२ ॥

परमात्मरूपको नहीं जानते हैं, और आपके भक्तोंकी सेवा करनेसे निर्मल अन्तःकरण मनुष्योंको आपका सर्वोपरि अद्वितीय ईश्वररूप प्रतीत होता है, बाह्यपदार्थोंमें है चित्त जिनका ऐसे ब्रह्मादिकभी आपके वास्तविक चैतन्य स्वरूपको नहीं जानसक्ते हैं, फिर अन्य पुरुषोंका तो कहनाही क्या? इस कारण आपके निर्गुणरूपको जाननेमें असमर्थ अज्ञानी जीव ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त अन्य उपाय न करके आपके इस श्यामरूपको भक्तिपूर्वक ध्यान करताहुआ संपूर्ण दुःखोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे भगवन्! मैं सदा आपके नामको उच्चारण करताहुआ कृतार्थ होकर पार्वतीसहित काशीपुरीमें निवास करताहूं और मरणको प्राप्त होतेहुए प्राणीकी मुक्तिके निमित्त आपके रामनाम मंत्रका उपदेश करताहूँ ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो पुरुष अनन्यभक्तिसे नित्य इस स्तोत्रको श्रवण करैं पढैं और लिखैं वह परमसुखको प्राप्त होकर आपके प्रसादसे आपकेही पदको प्राप्त होयँ ॥ ६३ ॥ इन्द्र बोले कि हे देव! इसराक्षसपति रावणने ब्रह्माजीके वरदानसे संपूर्ण देवताओंका राज्यरूप मेरा सुख हरलियाथा सो अपने मेरे शत्रु इस दुष्ट राक्षसका वध किया इसकारण आपके प्रसादसे वह संपूर्ण राज्य मैंने फिर पाया ॥६४॥ देवता बोले, कि हे विष्णो! हे मुरदैत्यको नष्ट करनेवाले इस दुष्ट दैत्य रावण ने हमारे अर्थ ब्राह्मणोंके दिये हुए संपूर्ण यज्ञभाग हरलिये थे, सो अब आपने इस दुष्ट रावणका नाश किया अब आपके प्रसादसे यज्ञोंमें फिर पहलेके समान हमैं भाग मिलेंगे ॥ ६५ ॥ पितर बोले, कि हे भगवन्! अब आपने इस दुष्ट दैत्यका संहार किया यह बहुत श्रेष्ठ हुआ, क्योंकि यह दुष्ट गय

इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै ॥ ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात्॥६३॥
॥ इन्द्र उवाच ॥ रक्षोधिपेनाखिलदेव सौख्यं हृतं च मे ब्रह्मवरेण देव ॥ पुनश्च सर्वं भवतः प्रसादात्प्राप्तं हतो राक्षसदुष्टशत्रुः ॥ ६४॥
॥ देवा ऊचुः ॥ हृता यज्ञभागा धरादेवदत्ता मुरारे खलेनादिदैत्येन विष्णो ॥ हतोऽद्य त्वया नो वितानेषु भागाः पुरावद्भविष्यन्ति युष्मत्प्रसादात् ॥ ६५ ॥ पितर ऊचुः ॥ हतोऽद्य त्वया दुष्टदैत्यो महात्मन् गयादौ नरैर्दत्तपिण्डादिकान्नः ॥ बलादत्ति हत्वा गृहीत्वा समस्तानिदानीं पुनर्लब्धसत्वा भवामः ॥ ६६ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ सदा विष्टिकर्मण्यनेनाभियुक्ता वहामो दशास्यं बलाद्दुःखयुक्ताः ॥ दुरात्मा हतो रावणो राघवेश त्वया ते वयं दुःखजाताद्विमुक्ताः ॥ ६७ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ वयं संगीतनिपुणा गायन्तस्ते कथामृतम् ॥ आनन्दामृतसन्दोहयुक्ताः पूर्णाः स्थिताः पुरा ॥ ६८ ॥

आदिमें मनुष्योंने दियेहुए हमारे सम्पूर्ण पिंड आदिको बलात्कारसे छीनकर और हमको पीड़ा देकर अपने आप खालेताथा सो अब हम आपके अनुग्रहसे फिर पिंड़ोंको प्राप्त होकर हृष्ट पुष्ट होजायँगे ॥ ६६ ॥ यक्ष बोले, कि हे ईश ! हे रघुनाथजी ! हम विना वेतन (तनख्वाह) के ही सदा विष्टि-कर्म्म (बेगार) में इस रावणकी आज्ञासे लगे रहतेथे, और उसको बलात्कार (जबरदस्ती) से दुःखयुक्त होकर पालकी आदिमें सवार हुए तिस रावणको उठातेथे, उस दुष्टात्मा रावणका संहार करके आपने हमैं दुःखोंके समूहसे छुटादिया ॥६७॥ गंधर्व बोले, कि हे भगवन्! संगीत विद्यामें प्रवीण हम पहिले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमृतके समान आपकी कथाका गान करतेहुए आनंदके समूहसे परिपूर्ण रहतेथे ॥ ६८ ॥ सो पीछे इस दुष्टात्मा रावणने हमैं बलात्कारसे अपने वशमें करलिया, तब हम उस रावणकाही गान करतेहुए उसकीही सेवा करनेमें तत्पर रहे, उस दुष्ट राक्षसका वध करके हमारी रक्षा करी है; इसही प्रकार नाग, सिद्ध, किन्नर, मरुत्, वसु, मुनि, गौ, गुह्यक, पक्षी, दक्ष आदि प्रजापति और अप्सराओंके समूह यह सब श्रीरामचन्द्रजीके समीप आके और नेत्रोंको आनन्ददायक श्रीरामचंद्रजीकी श्याममूर्त्तिका दर्शन करके, तथा अलग अलग स्तुति करके रघुनाथजीसे प्रशंसाको प्राप्त होकर अपने अपने स्थानको चलेगये, तिसीप्रकार ब्रह्मा और रुद्र आदि संपूर्ण देवता आनंदपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करतेहुए और उनके चरित्रका गान करते

पश्चाद्दुरात्मना राम रावणेनाभिविद्रुताः ॥ तमेव गायमानाश्च तदाराधनतत्पराः ॥ ६९ ॥ स्थितास्त्वया परित्राता हतोऽयं दुष्टराक्षसः ॥ एवं महोरगाः सिद्धाः किन्नरा मरुतस्तथा ॥ ७० ॥ वसवो मुनयो गावो गुह्यकाश्च पतत्रिणः ॥ सप्रजापतयश्चैते तथा चाप्सरसां गणाः ॥ ७१ ॥ सर्वे रामं समासाद्य दृष्ट्वा नेत्रमहोत्सवम् ॥ स्तुत्वा पृथक् पृथक् सर्वे राघवेणाभिवन्दिताः ॥ ७२ ॥ ययुः स्वं स्वं पदं सर्वे ब्रह्मरुद्रादयस्तथा ॥ प्रशंसन्तो मुदा रामं गायन्तस्तस्य चेष्टितम् ॥ ७३ ॥ ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्रं सीतालक्ष्मणसंयुतम् ॥ सिंहासनस्थं राजेन्द्रं ययुः सर्वे हृदि स्थितम् ॥ ७४ ॥ खे वाद्येषु ध्वनत्सु प्रमुदितहृदयैर्देववृन्दैः स्तुवद्भिर्वर्षद्भिः पुष्पवृष्टिं दिवि मुनिनिकरैरीड्यमानं समन्तात् ॥ रामः श्यामः प्रसन्नस्मितरुचिरमुखः सूर्यकोटिप्रकाशः सीतासौमित्रिवातात्मजमुनिहरिभिः सेव्यमानो विभाति ॥ ७५ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

हुए, तथा अभिषेकसे गीला है शरीर जिनका ऐसे सीता और लक्ष्मण सहित सिंहासनपर विराजमान राजा रामचंद्रजीका हृदयमें अंतर्यामी रूपसे ध्यान करतेहुए चलेगये ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ आकाशमें अनेक प्रकारके बाजे बजनेपर प्रसन्न चित्त देवताओंके समूहोंने स्तुति करनेपर तथा आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा करनेपर मुनियोंके समूहोंकरके चारों ओरसे स्तुति करेहुए करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवान् प्रसन्नमुख मंद मंद मुस्कुरातेहुए सीता लक्ष्मण और पवनकुमार आदिकरके सेवित परमानंददायक श्यामवर्ण श्रीरामचन्द्रजी परमशोभाको प्राप्त हुए ॥७५॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! सर्वलोगोंको सुख देनेवाले श्रीरामचंद्रजीको राज्याभिषेक होनेपर सम्पूर्ण पृथ्वी धान्य संपत्ति युक्त हुई और संपूर्ण वृक्ष फलोंकरके युक्त हुए ॥ १ ॥ गंधहीन पुष्पभी गंधयुक्त होकर खिलने लगे, पहिले रघुनाथजीने ब्राह्मणोंके एक लक्ष घोड़े, एक हजार गौ और एक सौ वृष (बैल) दिये, फिर तीस करोड़ सुवर्णकी मोहरैं ब्राह्मणोंको दान दीं ॥ २ ॥ ३ ॥ फिर वस्त्र, आभूषण और रत्न, प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंको दिये, फिर भक्तवत्सल रघुनाथजीने सूर्य्यके समान कान्तियुक्त अनेक प्रकारके रत्नोंसे जड़ीहुई माला प्रसन्न होकर सुग्रीवको दी, और रघुकुल शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने दिव्य बाजूबंदोंकी जोड़ी अंगदको दी ॥ ४ ॥ ५ ॥ और रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे ॥ वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तो महीरुहाः ॥ १॥ गन्धहीनानि पुष्पाणि गन्धवन्ति चकाशिरे ॥ सहस्रशतमश्वाना धेनूनां च गवां तथा ॥ २ ॥ ददौ शतवृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो रघुनन्दनः ॥ त्रिंशत्कोटिं सुवर्णस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥ ३ ॥ वस्त्राभरणरत्नानि ब्राह्मणेभ्यो मुदा तथा ॥ सूर्यकान्तिसमप्रख्यां सर्वरत्नमयीं स्रजम् ॥ ४ ॥ सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सलः ॥ अङ्गदाय ददौ दिव्ये ह्यङ्गदे रघुनन्दनः ॥ ५ ॥ चन्द्रकोटिप्रतीकाशं मणिरत्नविभूषितम् ॥ सीतायै प्रददौ हारं प्रीत्या रघुकुलोत्तमः ॥ ६ ॥ अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ॥ अवैक्षत हरीन्सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥ रामस्तामाह वैदेहीमिङ्गितज्ञो विलोकयन् ॥ वैदेहि यस्य तुष्टासि देहि तस्मै वरानने ॥ ८ ॥ हनूमते ददौ हारं पश्यतो राघवस्य च ॥ तेन हारेण शुशुभे मारुतिर्गौरवेण च ॥ ९ ॥ रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ भक्त्या परमया तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ हनूमंस्ते प्रस न्नोऽस्मि वरं वरय काङ्क्षितम् ॥ दास्यामि देवैरपि यद्दुर्लभं भुवनत्रये ॥ ११ ॥

होकर करोड़ों चंद्रमाके समान प्रकाशवान् मणि और रत्नोंकरके शोभित हार सीताजीको दिया ॥ ६ ॥ जनकनन्दिनी उस हारको अपने कंठमेंसे निकालकर संपूर्ण वानरोंको और श्रीरामचंद्रजीकी ओरको वारंवार देखने लगीं ॥ ७ ॥ सो इंगित (इशारा) को जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीकी ओर देखकर बोले, कि हे वैदेहि ! हे वरानने ! जिसके उपर तू प्रसन्न हो उसको यह हार देदो ॥ ८ ॥ सो श्रीरामचंद्रजीके देखतेहुए जानकीजीने वह हार हनुमान्‌जीको देदिया, तिस हारकरके और जानकीके करेहुए आदरकरके पवनकुमार शोभाको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीभी हाथ जोडेहुए समीपमें स्थित पवनकुमारको देखकर और अत्यंत भक्तिसे प्रसन्न होकर यह वचन बोले ॥ १० ॥ हे पवनकुमार ! मैं तुझपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसन्न हूँ जो तेरी इच्छा होय सो तू वर माँग, जो पदार्थ देवताओंकोभी त्रिलोकीमें दुर्लभ हो वहभी मैं तुझे दूँगा ॥ ११ ॥ हनुमान्‌जीभी तिन श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके मनमें प्रसन्न हो इसप्रकार बोले कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपके नामका स्मरण करते करते मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ १२ ॥ इसकारण सदा आपके नामका स्मरण करताहुआ पृथ्वीतलपर रहूँगा, हे राजेन्द्र ! जबतक लोकमें आपका नाम स्थित रहै तबतकही यह मेरा शरीर स्थित रहे यही वरदान मुझे अभीष्ट है, इसप्रकार हनुमान्‌जीके कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने तथास्तु कहकर कहा कि हे पवनकुमार ! तू जीवन्मुक्त होकर सुखपूर्वक भूतलपरही स्थित रह ॥ १३ ॥ १४ ॥ कल्पके अन्तमें निःसन्देह मेरे सायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त होगा

हनुमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः ॥ त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम ॥ १२ ॥ अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले ॥ यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम् ॥ १३ ॥ मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः ॥ रामस्तथेति तं प्राह मुक्तस्तिष्ठ यथासुखम् ॥ १४ ॥ कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥ तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते ॥ १५ ॥ स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगाः सर्वे ममाज्ञया ॥ इत्युक्तो मारुतिस्ताभ्यामीश्वराभ्यां प्रहृष्टधीः ॥ १६ ॥ आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयोभूयः प्रणम्य तौ ॥ कृच्छ्राद्ययौ तपस्तप्तुं हिमवन्तं महामतिः ॥ १७ ॥ ततो गुहं समासाद्य रामः प्राञ्जलिमब्रवीत् ॥ सखे गच्छ पुरं रम्यं शृङ्गवेरमनुत्तमम् ॥ १८ ॥ मामेव चिन्तयन्नित्यं भुङ्क्ष्व भोगान्निजार्जितान् ॥ अन्ते ममैव सारूप्यं प्राप्स्यसे त्वं न संशयः ॥ १९ ॥

इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेके अनन्तर पवनकुमार हनुमान्‌जीके उपर प्रसन्न होकर सीताजी बोली, कि हे मारुते ! तू जहाँ स्थित होगा तहाँही मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण भोग तेरे पास आकर प्राप्त होजायँगे, इसप्रकार सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीके कहनेपर पवनकुमार चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ १६ ॥ और आनन्दके कारण नेत्रोंमेंसे आँसूओंका प्रवाह वहनेलगा, फिर सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीको वारंवार प्रणाम करके परमबुद्धिमान् हनुमान्‌जी अतिकठिनतासे तप करनेके निमित्त हिमालयपर्वतको चलेगए ॥ १७ ॥ फिर हाथ जोड़े आगे खडेहुए गुहकी ओरको देखकर श्रीरामचन्द्रजी बोले कि हे मित्र ! रमणीय सबसे उत्तम शृंगबेरपुरको जाओ ॥ १८ ॥ मेराही नित्य ध्यान करते हुए अपने पुण्योंकरके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इकट्ठे करेहुए भोगोंको भोगो, अन्तमें तुम सिःसन्देह मेरेही सारूप्य (मोक्ष) को प्राप्त होओगे ॥ १९ ॥ इसप्रकार कहकर सर्वान्तर्यामी श्रीरामचन्द्रजीने तिस गुहको दिव्य आभूषण दिये और बहुतसा राज्य देकर ज्ञानका उपदेश दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने आलिंगन किया तब गुह प्रसन्न होकर अपने स्थानको चलागया, और जो श्रेष्ठ वानर अयोध्यापुरीको आए थे, उन सबका रघुनाथजीने अमूल्य वस्त्र और आभूषणोंसे सत्कार किया इसप्रकार तिन परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी करके यथायोग्य सत्कार करेहुए बिभीषणसहित सुग्रीव आदि सम्पूर्ण वानर प्रसन्न चित्त होकर अपने अपने स्थानको चलेगए ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ सुग्रीव आदि सम्पूर्ण वानर तो आनन्दपूर्वक किष्किन्धामें पहुँचगए, और बिभी-

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च ॥ राज्यं च विपुलं दत्त्वा विज्ञानं च ददौ विभुः ॥ २० ॥ रामेणालिङ्गितो हृष्टो ययौ स्वभवनं गुहः ॥ ये चान्ये वानराः श्रेष्ठा अयोध्यां समुपागताः ॥ २१ ॥ अमूल्याभरणैर्वस्त्रैः पूजयामास राघवः ॥ सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे वानराः सबिभीषणः ॥ २२ ॥ यथार्हं पूजितास्तेन रामेण परमात्मना ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥ २३ ॥ सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे किष्किन्धां प्रययुर्मुदा ॥ बिभीषणस्तु संप्राप्य राज्यं निहतकण्टकम् ॥ २४ ॥ रामेण पूजितः प्रीत्या ययौ लङ्कामनिन्दितः ॥ राघवो राज्यमखिलं शशासाखिलवत्सलः ॥ २५ ॥ अनिच्छन्नपि रामेण यौवराज्येऽभिषेचितः ॥ लक्ष्मणः परया भक्त्या रामसेवापरोऽभवत् ॥ २६ ॥ रामस्तु परमात्माऽपि कर्माध्यक्षोऽपि निर्मलः ॥ कर्तृत्वादिविहीनोऽपि निर्विकारोऽपि सर्वदा ॥ २७ ॥ स्वानन्देनाऽपि तुष्टः सन् लोकानामुपदेशकृत् ॥ अश्वमेधादियज्ञैश्च सर्वैर्विपुलदक्षिणैः ॥ २८ ॥

षण निष्कंटक लङ्कापुरीके राज्यको प्राप्त होकर श्रीरामचंद्रजीके अनुग्रहसे लंकामें चलेगये बिभीषणकी कहींभी निन्दा नहीं होतीथी, और सबके उपर प्रेम करनेवाले रघुनाथजीभी अपने संपूर्ण राज्यको पालन करने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीरामचंद्रजीने इच्छा न करतेहुए भी लक्ष्मणजीका युवराजपदमें अभिषेक करादिया, सो लक्ष्मणजी परमभक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेमें तत्पर रहे ॥ २६ ॥ परमात्मा, सम्पूर्ण कर्म्मोंके साक्षी, अर्थात् कर्मोंका फल देनेवाले, निर्म्मल, कर्तृत्व (मैं करताहूँ) आदि अभिमान करके रहित, सर्वदा निर्विकार, अपनेही आनन्दकरके प्रसन्न रहनेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और लोगोंको उपदेश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने परम आनन्दस्वरूप होकरभी मनुष्यशरीरको धारण करके लोगोंको शिक्षा देनेके निमित्त बहुतसी दक्षिणा करके युक्त अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ करे. श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करते समय विधवा स्त्रियें विलाप नहीं करतीथीं, किसीको सर्प आदिका भय नहीं होताथा ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करते समय किसीको व्याधीका भयभी नहीं होताथा, लुटेरोंका भय नहीं था, और कोई अनर्थभी नहीं होताथा ॥ ३० ॥ वृक्षोंके जीवित रहनेपर उनके बालकोंको मृत्युका भय नहीं होताथा, उससमय सबही रामचन्द्रजीका पूजन करतेथे, और सबही श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेमें तत्पर रहतेथे ॥ ३१ ॥ मेघ समयके

अयजत्परमानन्दो मानुषं वपुराश्रितः ॥ न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥ २९ ॥ न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ लोके दस्युभयं नासीदनर्थो नास्ति कश्चन ॥ ३० ॥ वृद्धेषु सत्सु बालानां नासीन्मृत्युभयं तथा ॥ रामपूजापराः सर्वे सर्वे राघवचिन्तकाः ॥ ३१ ॥ ववर्षुजलदास्तोयं यथाकालं यथारुचि ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ ३२ ॥ औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत्प्रजाः ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वधर्मपरायणः ॥ ३३ ॥ दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमुपास्त सः ॥ ३४ ॥ इदं रहस्यं धनधान्यऋद्धिमद्दीर्घायुरारोग्यकरं सुपुण्यदम् ॥ पवित्रमाध्यात्मिकसंज्ञितं पुरा रामायणं भाषितमादिशंभुना ॥ ३५ ॥ शृणोति भक्त्या मनुजः समाहितो भक्त्या पठेद्वा परितुष्टमानसः ॥ सर्वाः समाप्नोति मनोगताशिषो विमुच्यते पाककोटिभिः क्षणात् ॥ ३६ ॥

अनुसार यथेष्ट वर्षा करतेथे, सम्पूर्ण प्रजा अपने २ धर्म्ममें तत्पर थी, सब ब्राह्मण आदि वर्ण और ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमोंके गुणोंको धारण करेहुए थे ॥३२॥ श्रीरामचन्द्रजीकी प्रजाको औरस (सगे) पुत्रोंके समान समझकर पालन करतेथे; सर्वलक्षणयुक्त, सबप्रकारसे धर्म्मका आचरण करनेमें तत्पर उन श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार दशहजार वर्षपर्य्यन्त राज्यको पालन किया ॥३३॥३४॥ यह गुप्त रखने योग्य, धनधान्यरूप समृद्धिको बढ़ानेवाला, दीर्घ आयु और आरोग्य करनेवाला, पुण्यदायक, पवित्र, आध्यात्मिक नामक रामायण अर्थात् अध्यात्मरामायण पूर्वकालमें महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा है ॥ ३५ ॥ जो प्रसन्नचित्त मनुष्य सावधान होकर भक्तिपूर्वक इस अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है, अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण मनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामाभिषेकं प्रयतः शृणोति यो धनाभिलाषी लभते महद्धनम् ॥ पुत्राभिलाषी सुतमार्यसम्मतं प्राप्नोति रामायणमादितः पठन् ॥ ३७ ॥ शृणोति योऽध्यात्मिकरामसंहिता प्राप्नोति राजा भुवमृद्धसम्पदम् ॥ शत्रून्विजित्यारिभिरप्रधर्षितो व्यपेतदुःखो विजयी भवेन्नृपः ॥ ३८ ॥ स्त्रियोऽपि शृण्वन्त्यधिरामसंहितां भवन्ति ता जीवसुताश्च पूजिताः ॥ वन्ध्याऽपि पुत्रं लभते सुरूपिणं कथामिमां भक्तियुता शृणोति या ॥ ३९ ॥ श्रद्धान्वितो यः शृणुयात्पठेन्नरो विजित्य कोपं च तथा विमत्सरः ॥ दुर्गाणि सर्वाणि विजित्य निर्भयो भवेत्सुखी राघवभक्तिसंयुतः ॥ ४० ॥ सुराः समस्ता अपि यान्ति तुष्टतां विघ्नाः समस्ता अपयान्ति शृण्वताम् ॥ अध्यात्मरामायणमादितो नृणां भवन्ति सर्वा अपि सम्पदः पराः ॥ ४१ ॥ रजस्वला वा यदि रामतत्परा शृणोति रामायणमेतदादितः ॥ पुत्रं प्रसूते ऋषभं चिरायुषं पतिव्रता लोकसुपूजिता भवेत् ॥ ४२ ॥

अभिलषित पदार्थोंको प्राप्त होता है, और करोड़ों पातकोंसे क्षणमात्रमें छूट जाता है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर ऐसे रामाभिषेक श्रवण करता है, वह धनकी इच्छा करै तो बहुतसे धनको प्राप्त होता है, और पुत्रकी इच्छा करनेवाला आदिसे इस अध्यात्मरामायणका पाठ करके शिष्ट पुरुषोंके माननीय पुत्रको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ यदि राजा अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है तो वह बहुतसी सम्पत्तियोंको प्राप्त होता है, और शत्रुओंको जीतकर शत्रुओंसे तिरस्कारको नहीं प्राप्त होता और सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर विजयको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ और जो स्त्रियें अध्यात्मरामायणको श्रवण करती हैं उनके पुत्र जीवित रहते हैं और संसारमें सत्कारको प्राप्त होती हैं, यदि वन्ध्याभी भक्तिपूर्वक अध्यात्मरामायणको श्रवण करै तो वह सुंदर रूपवान् पुत्रको प्राप्त होती है ॥ ३९ ॥ जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर और कोपको जीतकर तथा मत्सरता (हिरस) को त्यागकर इस अध्यात्मरामायणको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर निर्भय-सुखी और श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिकरके युक्त होता है ॥ ४० ॥ अध्यात्मरामायणको आदिसे श्रवण करनेवाले मनुष्योंके ऊपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होजाते हैं, सम्पूर्ण विघ्न नष्ट होजाते हैं, और सम्पूर्ण सम्पत्तियें प्राप्त होती हैं ॥ ४१ ॥ जो रजस्वला स्त्री चतुर्थदिनसे बारहवेदिनपर्य्यंत श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करती हुई इस अध्यात्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामायणको आदिसे श्रवण करती है, वह बलवान् और चिरंजीव पुत्रको प्रसवती है, पतिव्रता होती है और संसारमें सत्कारको प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य नित्य अध्यात्मरामायणके पुस्तकका पूजन करके नमस्कार करते हैं, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुभगवान्‌के परमपद (वैकुण्ठलोक) को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ जो पुरुष अध्यात्मरामायणमें लिखे श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंको भक्तिपूर्वक पूर्णरीतिसे श्रवण करते हैं अथवा अपने मुखसे पाठ करते हैं, उनके उपर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीही परब्रह्म हैं उन सर्वात्माके प्रसन्न होनेपर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थोंमेंसे पुरुष जिस जिसकी इच्छा करता है उस उसकी हीं प्राप्ति होजाती है ॥ ४५ ॥ आयु और आरोग्यके करनेवाले तथा कराड़ों कल्पोंके पापोंको नष्ट करनेवाले इस अध्यात्मरामायणको पूर्णरीतिसे नियमकरके श्रवण करना चाहिये ॥ ४६ ॥ अध्यात्मरामायणका श्रवण करनेपर सम्पूर्ण देवता, सम्पूर्ण ग्रह संपूर्ण महर्षि तथा सम्पूर्ण पितर प्रसन्न होजाते हैं ॥ ४७ ॥ वैराग्य और ज्ञानकरकेयुक्त, प्राचीन, इस अद्भुत अध्यात्मरामायणको जो मनुष्य पढ़ते हैं, श्रवण करते हैं और लिखते हैं, उनका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता है अर्थात् मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४८ ॥ भूतेश्वर महादेवजीने वारंवार वेदोंके समूहको मथकर यही निश्चय किया है कि जो तारक-

पूजयित्वा तु ये भक्त्या नमस्कुर्वन्ति नित्यशः ॥ सर्वैः पापैर्विनिर्मुक्ता विष्णोर्यान्ति परं पदम् ॥ ४३ ॥ अध्यात्मरामचरितं कृत्स्नं शृण्वन्ति भक्तितः ॥ पठन्ति वा स्वयं वक्त्रात्तेषां रामः प्रसीदति ॥ ४४ ॥ राम एव परं ब्रह्म तस्मिंस्तुष्टेऽखिलात्मनि ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यद्यदिच्छति तद्भवेत् ॥ ४५ ॥ श्रोतव्यं नियमेनैतद्रामायणमखण्डितम् ॥ आयुष्यमारोग्यकरं कल्पकोट्यघनाशनम् ॥ ४६ ॥ देवाश्च सर्वे तुष्यन्तु ग्रहाः सर्वे महर्षयः ॥ रामायणस्य श्रवणे तृप्यन्ति पितरस्तथा ॥ ४७ ॥ अध्यात्मरामायणमेतदद्भुतं वैराग्यविज्ञानयुतं पुरातनम् ॥ पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये नरास्तेषां भवेऽस्मिन्न पुनर्भवो भवेत् ॥ ४८ ॥ आलोड्याखिलवेदराशिमसकृद्यत्तारकं ब्रह्म तद्रामो विष्णुरहस्यमूर्तिरिति यो विज्ञाय भूतेश्वरः ॥ उद्धृत्याखिलसारसंग्रह मिदं संक्षेपतः प्रस्फुटं श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राहप्रियायै भवः ॥ ४९ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे युद्धकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्म है वह विष्णुभगवान्‌की गुप्तमूर्ति श्रीरामचन्द्रजीही है, ऐसा जानकर सम्पूर्ण वेदोंके सारभूत जो उपनिषद् तिनका गूढ़तत्त्व निकालकर संक्षेप और स्पष्टरीतिसे यह श्रीरामचंद्रजीका चरित्ररूप अध्यात्मरामायण अपनी परमप्रिया पार्वतीके अर्थ श्रीमहादेवजीने वर्णन करी है॥ ४९॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँवादे युद्धकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलानाथात्मजभारद्वाजपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

युद्धकाण्डे नृपमिताः सर्गाः प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ सार्धरुद्रशतश्लोकैर्मनुयुक्तैरलंकृताः ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं पण्डित "हरिप्रसाद भगीरथजी" इत्यनेन महाम्बापुर्य्यां 'गुजराती' मुद्रणालये मुद्रितम्।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना कालिकादेवी रोड़—रामवाड़ी—मुंबई.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ अथाध्यात्मरामायणे भाषाटीकासहिते उत्तरकाण्डप्रारम्भः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

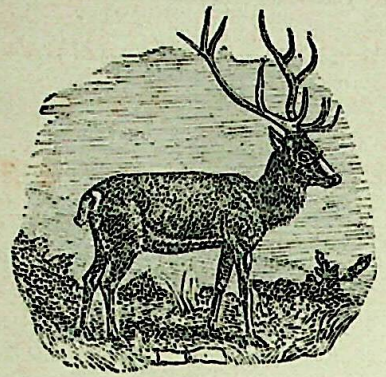

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दशाननननिधनकारी पुंडरीकाक्ष रघुवंशतिलक कौशल्याहृदयनंदन दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजीसे पार्वतीजी प्रश्न करती हैं, कि हे देव ! कौसल्याके आनंदको बढ़ानेवाले भीमपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने संग्राममें रावणादि राक्षसोंका संहार करनेके अनंतर क्या क्या चरित्र किया ? ॥ १ ॥ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें विषे सीतासहित राज्याभिषेक होनेके अनंतर मायासे मनुष्यरूपको धारण करेहुए कितनेसमयपर्यन्त इस पृथ्वीतलपर स्थित रहे ? परब्रह्म सनातन श्रीरामचन्द्रजीने लीलाकरके इस मनुष्यलोकको किसकारणसे त्याग दिया ? ॥ २ ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! मुझ श्रद्धायुक्तसे यह सब वृत्तान्त कहिये, हे प्रभो ! श्रीरामचन्द्रजीकी कथारूप अमृतका पान करके मेरी तृप्ति नहीं

जयति रघुवंशतिलकः कौसल्याहृदयनन्दनो रामः ॥ दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच ॥ अथ रामः किमकरोत्कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ हत्वा मृधे रावणादीन् राक्षसान्भीमविक्रमः ॥ १ ॥ अभिषिक्तस्त्वयोध्यायां सीतया सह राघवः ॥ मायामानुषतां प्राप्य कति वर्षाणि भूतले ॥ २ ॥ स्थितवान् लीलया देवः परमात्मा सनातनः ॥ अत्यजन्मानुषं लोकं कथमन्ते रघूद्वहः ॥ ३ ॥ एतदाख्याहि भगवञ्छ्रद्धत्या मम प्रभो ॥ कथापीयूषमास्वाद्य तृष्णा मेऽतीव वर्धते ॥ रामचन्द्रस्य भगवान् ब्रूहि विस्तरशः कथाम् ॥ ४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ राक्षसानां वधं कृत्वा राज्यं राम उपस्थिते ॥ आययुर्मुनयः सर्वे श्रीराममभिवन्दितुम् ॥ ५ ॥ विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ॥ कश्यपो वामदेवोऽत्रिस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः ॥ ६ ॥ अगस्त्यः सहशिष्यैश्च मुनिभिः साहितोऽभ्यगात् ॥ द्वारमासाद्य रामस्य द्वारपालमथाब्रवीत् ॥ ७ ॥

होती है किन्तु तृष्णा अत्यंत वृद्धिको प्राप्त होती चलीजातीहै; इसकारण हे भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजीकी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ ४ ॥ इसप्रकार पार्वतीजीके कथनको सुनकर महादेवजी कहतेहैं, कि हे पार्वति ! जब राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी राज्यको प्राप्त हुए तब श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करनेके निमित्त सम्पूर्ण मुनि आये ॥ ५ ॥ विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि तथा सप्तर्षि और अपने शिष्य मुनियोंसहित अगस्त्य ऋषि आये, श्रीरामचंद्रजीके द्वारपर आकर द्वारपालसे कहनेलगे ॥ ६ ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि हे द्वारपाल ! श्रीरामचन्द्रजीसे जाकर कहो, कि अगस्त्य आदि संपूर्ण मुनि आपको आशीर्वाद देनेके निमित्त आकर बाहर खड़े हैं ॥ ८ ॥ इस-
प्रकार अगस्त्यजीके कहनेसे द्वारपाल शीघ्रही गया और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करके विनयसे नम्र होकर हाथ जोड़े हुए इसप्रकार कहने
लगा ॥ ९ ॥ कि हे देव ! मुनियोंसहित अगस्त्यऋषि आपका दर्शन करनेके निमित्त आये हैं और बाहर खड़े हैं ॥ १० ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने
द्वारपालसे कहा, कि उन मुनियोंको सुखपूर्वक (विना रोक टोक) यहाँ लेआओ, वह द्वारपाल सत्कारपूर्वक मार्ग बतला हुआ उन मुनियोंको
लिवाकर लेगया तब वह मुनि नानाप्रकारके रत्नोंसे भूषित श्रीरामचन्द्रजीके राजमंदिरमें पहुँचे ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजी मुनियोंको आताहुआ देखकर

ब्रूहि रामाय मुनयः समागत्य बहिः स्थिताः ॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे आशीर्भिरभिनन्दितुम् ॥ ८ ॥ प्रतीहारस्ततो राममगस्त्यवच
नाद्द्रुतम् ॥ नमस्कृत्वाब्रवीद्वाक्यं विनयावनतः प्रभुम् ॥ ९ ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदमगस्त्यो मुनिभिः सह ॥ देव त्वद्दर्शनार्थाय प्राप्तो बहिरुप-
स्थितः ॥ १० ॥ तमुवाच द्वारपालं प्रवेशय यथासुखम् ॥ पूजिता विविशुर्वेश्म नानारत्नविभूषितम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा रामो मुनीन् शीघ्रं
प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्य गां निवेद्य यथाविधि ॥ १२ ॥ नत्वा तेभ्यो ददौ दिव्यान्यासनानि यथार्हतः ॥ उपविष्टाः
प्रहृष्टाश्च मुनयो रामपूजिताः ॥ १३ ॥ संपृष्टकुशलाः सर्वे रामं कुशलमब्रुवन् ॥ कुशलं ते महाबाहो सर्वत्र रघुनन्दन ॥ १४ ॥ दिष्ट्येदा-
नीं प्रपश्यामो हतशत्रुमरिन्दम ॥ नहि भारः स ते राम रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १५ ॥ सधनुस्त्वं हि लोकांस्त्रीन् विजेतुं शक्त एव हि ॥
दिष्ट्या त्वया हताः सर्वे राक्षसा रावणादयः ॥ १६ ॥

शीघ्रही खड़े होगये, और हाथ जोड़कर पाद्य अर्घ्य आदि सामग्रियोंसे उनका पूजन किया, और शास्त्रोक्त विधिसे मधुपर्ककेनिमित्त गौ दी॥१२॥और नम-
स्कार करके तिन सब मुनियोंको यथायोग्य दिव्य आसन दिये, तब श्रीरामचंद्रजीसे पूजित होकर वह सब ऋषि प्रसन्न होतेहुए आसनोंपर बैठे॥१३॥ तब
श्रीरामचंद्रजीने उन सबसे कुशल पूँछा, तब उन सबोंनेभी श्रीरामचंद्रजीसे कुशल प्रश्न किया, कि हे महाबाहो रघुनंदन ! आपके संपूर्ण राज्यमें कुशल
है ? ॥ १४ ॥ हे शत्रुसूदन श्रीरामचंद्रजी ! आज शत्रुका संहार करनेके अनंतर हम आपका दर्शन कररहे हैं, यह बड़ाही आनंद है; राक्षसपति राव-
णका संहार करना आपको कुछ भारी नहीं था ॥ १५ ॥ क्योंकि धनुषको धारण करके आप इकलेही तीनों लोकोंके जीतनेको समर्थ हो, सो रावण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि राक्षसोंका आपने संहार किया यह बड़ेही आनंदकी वार्ता है ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! रावणका संहार करना तो सहज था परंतु इस मेघनादका वध करना अतिकठिन था ॥ १७ ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ ! आपने संग्रामके विषे कालके समान कुंभकर्ण आदि संपूर्ण राक्षसोंका कालमूर्त्ति अपने बाणोंसे संहार किया ॥ १८ ॥ पहिले आपने हम सब ऋषियोंको अभयदक्षिणा दी थी, सो संग्राममें संपूर्ण राक्षसोंका वध करके आज कृतकृत्य होकर विराजमान होरहे हो ॥ १९ ॥ शुद्ध अंतःकरणवाले उन मुनियोंका इस प्रकार कथन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यंत आश्चर्य्यमें होगये और कहने लगे ॥ २० ॥ कि हे ऋषियो ! त्रिलोकीको जीतनेवाले रावण कुंभकर्ण आदि राक्षसोंको छोड़कर रावणके पुत्र मेघनादकी ही प्रशंसा

सह्यमेतन्महाबाहो रावणस्य निबर्हणम् ॥ असह्यमेतत्संप्राप्तं रावणेर्यन्निषूदनम् ॥ १७ ॥ अन्तकप्रतिमाः सर्वे कुम्भकर्णादयो मृधे ॥ अन्तकप्रतिमैर्बाणैर्हतास्ते रघुसत्तम ॥ १८ ॥ दत्ता चेयं त्वयास्माकं पुरा ह्यभयदक्षिणा ॥ हत्वा रक्षोगणान्सङ्ख्ये कृतकृत्योऽद्य जीवसि ॥ १९ ॥ श्रुत्वा तु भाषितं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ विस्मयं परमं गत्वा रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ २० ॥ रावणादीनतिक्रम्य कुम्भकर्णादिराक्षसान् ॥ त्रिलोकजयिनो हित्वा किं प्रशंसथ रावणिम् ॥ २१ ॥ ततस्तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः ॥ कुम्भयोनिर्महातेजा रामं प्रीत्या वचोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥ शृणु राम यथा वृत्तं रावणे रावणस्य च ॥ जन्म कर्म वरादानं संक्षेपाद्वदतो मम ॥ २३ ॥ पुरा कृतयुगे राम पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥ तपस्तप्तुं गतो विद्वान्मेरोः पार्श्वं महामतिः ॥ २४ ॥ तृणबिन्दोराश्रमेऽसौ न्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥ तपस्तेपे महातेजाः स्वाध्यायनिरतः सदा ॥ २५ ॥ तत्राश्रमे महारम्ये देवगन्धर्वकन्यकाः ॥ गायन्त्यो ननृतुस्तत्र हसन्त्यो वादयन्ति च ॥ २६ ॥

किसकारण करते हो ? ॥ २१ ॥ तब तो रघुकुलशिरोमणि परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके इस वचनको सुनकर परमतेजस्वी अगस्त्यमुनि प्रीतिपूर्वक इसप्रकार कहने लगे ॥ २२ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! जिसप्रकार मेघनाद और रावणका जन्मकर्म्म और वरदानकी प्राप्ति आदि वृत्तान्त है सो मैं संक्षेपसे कहताहूँ तुम श्रवण करो ॥ २३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! पहिले सतयुगमें ब्रह्माके पुत्र परमबुद्धिमान् विद्वान् पुलस्त्यऋषि मेरु पर्वतके समीप तप करनेको गये ॥ २४ ॥ तहाँ तृणबिन्दु ऋषिके आश्रममें यह महातेजस्वी पुलस्त्य ऋषि रहनेलगे, और सदा स्वाध्यायमें तत्पर होकर तप करतेरहे ॥ २५ ॥ उसे परमसुंदर आश्रममें देवता और गंधर्वोंकी कन्या गान करके नृत्य करके बाजा बजाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और मुसकुराकर पुलस्त्य ऋषिके तपमें विघ्न करनेलगीं, वह सब अत्यंतरूपवती थीं, जब उन्होंने गान नृत्य आदि करके ऋषिके तपमें विघ्न करना प्रारंभ किया, तबतो महातेजस्वी पुलस्त्यऋषिने क्रुद्ध होकर महाउग्र यह शाप दिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ कि जो मेरी दृष्टिके सामने आजायगी वह तत्कालही गर्भवती होजायगी, इसप्रकारके शापसे भयभीत होकर वह सब तिस आश्रममें नहीं गई ॥ २८ ॥ परन्तु जिस तृणबिन्दु राजर्षिका वह आश्रम था उसकी कन्याने यह पुलस्त्य ऋषिका शाप नहीं सुनाथा इस कारण वह निर्भय होकर पुलस्त्यऋषिकी दृष्टिके सामने उनकी ओरको देखती हुई फिरनेलगी ॥ २९ ॥ सो उसका शरीर उसही समय पीला पड़ गया और सम्पूर्ण गर्भवतीके चिन्ह उसके शरीरपर मालूम पड़नेलगे, सो

पुलस्त्यस्य तपोविघ्नं चक्रुः सर्वा अनिन्दिताः ॥ ततः क्रुद्धो महातेजा व्याजहार वचो महत् ॥ २७ ॥ या मे दृष्टिपथं गच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति ॥ ताः सर्वाः शापसंविग्ना न तं देशं प्रचक्रमुः ॥ २८ ॥ तृणबिन्दोस्तु राजर्षेः कन्या तन्नाशृणोद्वचः ॥ विचचार मुनेरग्रे निर्भया तं प्रपश्यती ॥ २९ ॥ बभूव पाण्डुरतनुर्व्यञ्जितान्तःशरीरजा ॥ दृष्ट्वा सा देहवैवर्ण्यं भीता पितरमन्वगात् ॥ ३० ॥ तृणबिन्दुश्च तां दृष्ट्वा राजर्षिरमितद्युतिः ॥ ध्यात्वा मुनिकृतं सर्वमवैद्धिज्ञानचक्षुषा ॥ ३१ ॥ ता कन्यां मुनिवर्याय पुलस्त्याय ददौ पिता ॥ तां प्रगृह्याब्रवीत्कन्यां बाढमित्येव स द्विजः ॥ ३२ ॥ शुश्रूषणपरां दृष्ट्वा मुनिः प्रीतोऽब्रवीद्वचः ॥ दास्यामि पुत्रमेकं ते उभयोर्वंशवर्धनम् ॥ ३३ ॥ ततः प्रासूत सा पुत्रं पुलस्त्याल्लोकविश्रुतम् ॥ विश्रवा इति विख्यातः पौलस्त्यो ब्रह्मविन्मुनिः ॥ ३४ ॥

वह तृणबिन्दुकी कन्या अपने शरीरका वर्ण बदलाहुआ देखकर भयभीत होगई और पिताके पास गई ॥ ३० ॥ तब परमतेजस्वी तृणबिन्दु राजर्षिने अपनी कन्याकी ऐसी दशा देखकर ध्यान करके ज्ञानदृष्टिके प्रभावसे यह सब चरित्र पुलस्त्यमुनिका किया जाना ॥ ३१ ॥ सो तृणबिन्दुने वह कन्या मुनिवर पुलस्त्यजीकोही देदी, उन पुलस्त्यमुनिने भी उस कन्याको स्त्रीरूपसे अंगीकार कर लिया ॥ ३२ ॥ उस कन्याको शुश्रूषा करनेमें तत्पर देखकर पुलस्त्यमुनि प्रसन्न हुए, और इसप्रकार बोले, कि हे प्रिये ! मैं तुझे दोनों कुलोंकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र दूँगा ॥ ३३ ॥ तदनंतर उस स्त्रीने पुलस्त्यमुनिसे एक लोकप्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किया, वह पुत्र सम्पूर्ण वेदोंका जाननेवाला विश्रवा और पौलस्त्य नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस विश्रवाका सुन्दर शीलगुणादि देखकर महामुनि भरद्वाजने प्रसन्न होकर उसकेसाथ अपनी कन्याका विवाह करदिया ॥३५॥ उस स्त्रीके विषे विश्रवा ऋषिसे एक वैश्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह लोकका माननीय और पिताके समान गुणवान् तथा ब्रह्माजीसे वरको प्राप्त होनेवाला हुआ ॥ ३६ ॥ उसके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसके मनकी अभिलाषाके समान वरदान दिया, जिससे उसको देवताओंके धनका पूर्ण स्वामीपना प्राप्त हुआ ॥३७॥ इसप्रकारका प्राप्त हुआ है वरदान जिसको ऐसा वैश्रवण (कुबेर) एकसमय ब्रह्माजीके दियेहुये प्रकाशवान् पुष्पकविमानमें बैठकर पिताका दर्शन करनेको आया ॥ ३८ ॥ और पिताको नमस्कार करके तथा तपका फल निवेदन करके कहनेलगा, कि मुझे भगवान् ब्रह्माजीने

तस्य शीलादिकं दृष्ट्वा भरद्वाजो महामुनिः ॥ भार्यार्थं स्वा दुहितरं ददौ विश्रवसे मुदा ॥३५॥ तस्यां तु पुत्रः संजज्ञे पौलस्त्याल्लोकसम्मतः ॥ पितृतुल्यो वैश्रवणो ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ ३६ ॥ ददौ तत्तपसा तुष्टो ब्रह्मा तस्मै वरं शुभम् ॥ मनोऽभिलषितं तस्य धनेशत्वमखण्डितम् ॥३७॥ ततो लब्धवरः सोऽपि पितरं द्रष्टुमागतः ॥ पुष्पकेण धनाध्यक्षो ब्रह्मदत्तेन भास्वता ॥ ३८ ॥ नमस्कृत्वाथ पितरं निवेद्य तपसः फलम् ॥ प्राह मे भगवान् ब्रह्मा दत्त्वा वरमनिन्दितम् ॥ ३९ ॥ निवासाय न मे स्थानं दत्तवान्परमेश्वरः ॥ ब्रूहि मे नियतं स्थानं हिंसा यत्र न कस्यचित् ॥४०॥ विश्रवा अपि तं प्राह लङ्कानाम पुरी शुभा ॥ राक्षसानां निवासाय निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ४१ ॥ त्यक्त्वा विष्णुभयाद्दैत्या विविशुस्ते रसातलम् ॥ सा पुरी दुष्प्रधर्षान्यैर्मध्ये सागरमास्थिता ॥ ४२ ॥ तत्र वासाय गच्छ त्वं नान्यैः साऽधिष्ठिता पुरा ॥ पित्रादिष्टस्त्वसौ गत्वा तां पुरीं धनदोऽविशत् ॥ ४३ ॥

सर्वोपरि वरदान देकर देवताओंके धनका स्वामी तो बनादिया, परंतु निवास करनेके निमित्त स्थान नहीं दिया सो हे पिताजी ! अब आप कृपाकरके मुझे ऐसा स्थान बताइये जहाँ किसी दूसरेका स्वत्व (स्वामीपना) नहीं होय, और मेरे रहनेसे किसीको क्लेशभी नहीं होय ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तब विश्रवानाम ऋषि कुबेरसे कहनेलगे, कि विश्वकर्म्माने राक्षसोंके निवास करनेके निमित्त एक लंकानामक अति रमणीय पुरी रचीथी ॥ ४१ ॥ परन्तु विष्णुभगवान्के भयसे सम्पूर्ण दैत्य राक्षस उस लंकापुरीको त्यागकर पातालको चलेगये, उस लंकापुरीको कोई शत्रु नहीं दबासक्ता है क्योंकि वह समुद्रके बीचमें स्थित है ॥ ४२ ॥ जबसे दैत्य राक्षस उसको छोडकर चलेगये तबसे उस पुरीमें कोईभी नहीं वसा है, जाकर तुम निवास करो,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार पिताकी आज्ञासे यह कुबेर तिस लंकापुरीमें चलेगये ॥ ४३ ॥ पिताकी सम्मतिसे वह कुबेर उस लंकापुरीमें बहुतकालपर्यन्त निवास करते रहे, अब किसी समयमें मांसभक्षी सुमालीनाम राक्षस पाताललोकसे मनुष्य लोकमें आकर साक्षात् लक्ष्मीदेवीके समान अपनी कन्याको लियेहुए विचरता फिरताथा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उसने पुष्पक बिमानपर बैठकर बिचरतेहुए दिव्यरूप कुबेरको देखा, फिर सम्पूर्ण राक्षसोंके हितके निमित्त इस परम बुद्धिमान् सुमाली राक्षसने बिचार किया ॥ ४६ ॥ और कैकसी नामक अपनी कन्यासे कहनेलगा, कि हे पुत्रि ! तेरे विवाहका समय प्राप्तहोगया अब यौवनावस्था वृथा बीती जातीहै ॥ ४७ ॥ और तेरे निषेध (मने) करनेके भयसे, हे शुभे ! तुझसे कोई प्रार्थना नहीं करताहै, सो तू अपने

स तत्र सुचिरं कालमुवास पितृसम्मतः ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य सुमाली नाम राक्षसः ॥ ४४ ॥ रसातलान्मर्त्यलोकं चचार पिशिताशनः ॥ गृहीत्वा तनयां कन्यां साक्षाद्देवीमिव श्रियम् ॥ ४५ ॥ अपश्यद्धनदं देवं चरन्तं पुष्पकेण सः ॥ हिताय चिन्तयामास राक्षसानां महामनाः ॥ ४६ ॥ उवाच तनयां तत्र कैकसीं नाम नामतः ॥ वत्से विवाहकालस्ते यौवनं चातिवर्तते ॥ ४७ ॥ प्रत्याख्यानाच्च भीतैस्त्वं न वरैर्गृह्यसे शुभे ॥ सा त्वं वरय भद्रं ते मुनिं ब्रह्मकुलोद्भवम् ॥ ४८ ॥ स्वयमेव ततः पुत्रा भविष्यन्ति महाबलाः ॥ ईदृशाः सर्वशोभाढ्या धनदेन समाः शुभे ॥ ४९ ॥ तथेति साश्रमं गत्वा मुनेरग्रे व्यवस्थिता ॥ लिखन्ती भुवमग्रेण पादेनाधोमुखी स्थिता ॥ ५० ॥ तामपृच्छन्मुनिः का त्वं कन्यासि वरवर्णिनि ॥ सा ब्रवीत्प्राञ्जलिर्ब्रह्मन् ध्यानेन ज्ञातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ततो ध्यात्वा मुनिः सर्वं ज्ञात्वा तां प्रत्यभाषत ॥ ज्ञातं तवाभिलषितं मत्तः पुत्रानभीप्स्यसि ॥ ५२ ॥

आपही जाकर ब्रह्माके कुलमें उत्पन्न होनेवाले विश्रवा मुनिको वरले इससे तेरा कल्याण होयगा ॥ ४८ ॥ हे शुभे ! ऐसा करनेपर तेरे स्वयंसिद्ध बलवान् इस कुबेरके समान सर्वशोभायुक्त पुत्र उत्पन्न होयगा ॥ ४९ ॥ कैकसीने इसप्रकार पिताके वचनको स्वीकार किया, और आश्रममें जाकर मुनिके सन्मुख खडी होगई और चरनके अँगुठेसे पृथ्वीको खोदतीहुई नीचेको मुख करेहुए खड़ी रही ॥ ५० ॥ तब मुनिने उस कैकसीसे पूँछा, कि हे सुन्दरि ! तू कौन है ? और किसकी कन्या है ? तब कैकसी हाथ जोडकर बोली कि हे ब्रह्मन् ! आप ध्यान करके सब वृत्तान्त जानसक्ते हैं ॥ ५१ ॥ तब विश्रवा मुनिने ध्यान करके उसका संपूर्ण अभिप्राय जानलिया, और कहनेलगे, कि हे सुंदरी ! मैंने तेरे मनोरथको जान लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि तू मुझसे पुत्रोंकी इच्छा करती है ॥ ५२ ॥ हे सुन्दरि ! तू घोर संध्यासमयमें आई है इसकारण तेरे महाघोर दो राक्षस पुत्र होयँगे ॥ ५३ ॥ तब वह कैकसी बोली, कि हे मुनिश्रेष्ठ ! बडे आश्चर्यकी बात है जो आपसे ऐसे पुत्र उत्पन्न हो, तब मुनि बोले कि हे सुन्दरि ! जो तेरा छोटा पुत्र होगा वह परम बुद्धिवान् महाभागवत श्रीरामचंद्रजीकीही भक्ति करनेमें तत्पर और लक्ष्मीवान् होयगा, इसप्रकार मुनिके कहनेसे कुछ कालके अनंतर घोर सायंकालके समयमें तिस कैकसीने एक रावणनामक पुत्र उत्पन्न किया, उसको दश शिर थे, वीस भुजा थीं, उस महाभयंकर राक्षसके उत्पन्न होतेही पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उससमय संपूर्ण शकुन वंशको और लोकोंके नाशको सूचित करनेवाले हुए, तदनंतर

दारुणायां तु वेलायामागतासि सुमध्यमे ॥ अतस्ते दारुणौ पुत्रौ राक्षसौ संभविष्यतः ॥ ५३ ॥ साब्रवीन्मुनिशार्दूल त्वत्तोऽप्येवंविधौ सुतौ ॥ तामाह पश्चिमो यस्ते भविष्यति महामतिः ॥ ५४ ॥ महाभागवतः श्रीमान् रामभक्त्यैकतत्परः ॥ इत्युक्ता सा तथा काले सुषुवे दशकन्धरम् ॥ ५५ ॥ रावणं विंशतिभुजं दशशीर्षं सुदारुणम् ॥ तद्भक्षोजातमात्रेण चचाल च वसुन्धरा ॥ ५६ ॥ बभूवुर्नाशहेतूनि निमित्तान्यखिलान्यपि ॥ कुम्भकर्णस्ततो जातो महापर्वतसन्निभः ॥ ५७ ॥ ततः शूर्पणखा नाम जाता रावणसोदरी ॥ ततो बिभीषणो जातः शान्तात्मा सौम्यदर्शनः ॥ ५८ ॥ स्वाध्यायी नियताहारो नित्यकर्मपरायणः ॥ कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा द्विजान् सन्तुष्टचेतसः ॥ ५९ ॥ भक्षयन्नृषिसङ्घांश्च विचचारातिदारुणः ॥ रावणोऽपि महासत्वो लोकानां भयदायकः ॥ ववृधे लोकनाशाय ह्यामयो देहिनामिव ॥ ६० ॥ राम त्वं सकलान्तरस्थमभितो जानासि विज्ञानदृक् साक्षी सर्वहृदि स्थितो हि परमो नित्योदितो निर्मलः ॥ त्वं लीलामनुजाकृतिः स्वमहिमन् मायागुणैर्नाज्यसे लीलार्थं प्रतिचोदितोऽद्य भवता वक्ष्यामि रक्षोद्भवम् ॥ ६१ ॥

बडेभारि पर्वतके समान शरीरधारी कुम्भकर्ण उत्पन्न हुआ ॥ ५७ ॥ तदनंतर शूर्पणखानाम कन्या उत्पन्न हुई जो संसारमें रावणकी बहिन प्रसिद्ध है, तदनंतर शान्तरूप चंद्रमाके समान प्रियदर्शन बिभीषण उत्पन्न हुआ ॥ ५८ ॥ यह बिभीषण सदा वेदपाठ करनेवाला, नियमित भोजन करनेवाला, नित्यकर्म्म करनेमें तत्पर था, और दुष्टात्मा कुम्भकर्ण संतोषी ब्राह्मणोंको और ऋषियोंके समूहोंको भक्षण करताहुआ विचरने लगा, महाबली त्रिलोकीको भय देनेवाला रावणभी त्रिलोकीका नाश करनेके निमित्त प्राणियोंके देहमें रोगके समान बढ़नेलगा ॥ ५९ ॥ ६० ॥ अब अगस्त्यजी कहते हैं, कि हे श्रीरामचंद्रजी ! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अंतर्यामी रूपसे स्थित रहतेहो, और ज्ञानदृष्टिसे संसारके सम्पूर्ण चरित्रोंको जानते हो,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमात्मा हो, नित्य हो, सर्वदा प्रकाशवान् हो, अपनी असाधारण महिमासे मायाके गुणोंकरके लिप्त नहीं होतेहो, सो रावणादि राक्षसोंकी उत्पत्तिका चरित्र आपसे वर्णन करताहूँ ॥ ६१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! मूढभी मैं आपके अनुग्रहसे अद्वितीय, अविनाशी, अचिन्त्य शक्तियुक्त चैतन्यस्वरूप त्रिकालमें एकरूप, अजन्मा, आत्मतत्वको जाननेवाले, गुप्तरूप, आपके स्वरूपको जानताहूँ, तथापि द्विभुजधनुर्धर आपके श्यामसुंदररूपको ध्यान करता हुआ प्रवृत्तिमार्गमें विचरताहूँ ॥ ६२ ॥ इसप्रकार कहतेहुए अगस्त्यमुनिसे रघुवंशमें पवित्र है कीर्ति जिनकी, ऐसे रघुनाथजी हँसतेहुए कहनेलगे कि हे मुने! जो कुछ तुमने मेरा स्वरूप वर्णन किया वह सब और यह जगत्भी मायाकरके कल्पित है, क्योंकि मैं तौ सब धर्म्मोंसे रहित हूँ, और

जानामि केवलमनन्तमचिन्त्यशक्तिं चिन्मात्रमक्षरमजं विदितात्मतत्त्वम् ॥ त्वां राम गूढनिजरूपमनुप्रवृत्तो मूढोऽप्यहं भवदनुग्रहतश्चरामि ॥ ६२ ॥ एवं वदन्तमिनवंशपवित्रकीर्तिः कुम्भोद्भवं रघुपतिः प्रहसन्बभाषे ॥ मायाश्रितं सकलमेतदनन्यकत्वान्मत्कीर्तनं जगति पाप-हरं निबोध ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवाद उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ श्रीरामवचनं श्रुत्वा परमानन्दनिर्भरः ॥ मुनिः प्रोवाच सदसि सर्वेषां तत्र शृण्वताम् ॥ १ ॥ अथ वित्तेश्वरो देवस्तत्र कालेन केनचित् ॥ आययौ पुष्पकारूढः पितरं द्रष्टुमञ्जसा ॥ २ ॥ दृष्ट्वा तं कैकसी तत्र भ्राजमानं महौजसम् ॥ राक्षसी पुत्रसामीप्यं गत्वा रावणमब्रवीत् ॥ ३ ॥ पुत्र पश्य धनाध्यक्षं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ त्वमप्येवं यथा भूयास्तथा यत्नं कुरु प्रभो ॥ ४ ॥

तुम मेरे कीर्तनको सम्पूर्ण पातकोंका दूर करनेवाला जानो ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवाद उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा-दाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति! अगस्त्यमुनि श्रीरामचन्द्रजीके वच नको सुनकर परमआनंदमें भरेहुए, तिस श्रीरामचंद्रजीकी सभामें सबके सुनतेहुए इसप्रकार कहनेलगे, कि हे श्रीरामचन्द्रजी! इसके अनंतर कुछ समय व्यतीत होनेपर कुबेर पुष्पकविमानपर चढकर पिताका दर्शन करनेके निमित्त आश्रममें आये ॥ १ ॥ २ ॥ जिस आश्रममें महाबली शोभायमान तिस कुबेरको देखकर कैकसीनाम राक्षसी अपने पुत्र रावणके समीप जाकर कहनेलगी ॥ ३ ॥ कि हे पुत्र! देखो यह धनपति कुबेर अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेजसे कैसा प्रकाशवान् होरहा है,तूभी ऐसा यत्न कर जो इस कुबेरके समान होजाय ॥ ४ ॥ इसप्रकार माताके कथनको रावण सुनकर रावण क्रोधमें भरगया और तत्कालही यह प्रतिज्ञा करी कि हे मातः ! तू संतापको त्याग दे, और मुझे देख मैं थोडेही कालमें कुबेरके समान अथवा कुबेरसेभी अधिक होजाऊंगा, इसप्रकार मातासे कहकर वह रावण घोर तप करनेके निमित्त और फलकी सिद्धिके अर्थ अपने भाइयोंसहित गोकर्णक्षेत्रमें आया तहाँ यह तीनो भ्राता अपनी अपनी वासनाके अनुसार नियम करके बडाभारी तप करने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ सब लोगोंको अत्यन्त सन्ताप देनेवाला घोर तप करते करते दशहजार वर्ष तो कुम्भकर्णको बीत गए ॥ ८ ॥ और सत्यधर्म्ममें प्रीति करनेवाला धर्मात्मा बिभीषणजी पाँचहजार

तच्छ्रुत्वा रावणो रोषात् प्रतिज्ञामकरोद् द्रुतम् ॥ धनदेन समो वापि ह्यधिको वाचिरेण तु ॥ ५ ॥ भविष्याम्यम्ब मां पश्य सन्तापं त्यज सुव्रते ॥ इत्युक्त्वा दुष्करं कर्तुं तपः स दशकन्धरः ॥ ६ ॥ अगमत्फलसिद्ध्यर्थं गोकर्णं तु सहानुजः ॥ स्वं स्वं नियममास्थाय भ्रातरस्ते तपो महत् ॥ ७ ॥ आस्थिता दुष्करं घोरं सर्वलोकैककतापनम् ॥ दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽकरोत्तपः ॥ ८ ॥ बिभीषणोऽपि धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि पादेनैकेन तस्थिवान् ॥ ९ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तु निराहारो दशाननः ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु शीर्षमग्नौ जुहाव सः ॥ एवं वर्षसहस्राणि नव तस्यातिचक्रमुः ॥ १० ॥ अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशमं शिरः ॥ छेत्तुकामस्य धर्मात्मा प्राप्तश्चाथ प्रजापतिः ॥ वत्स वत्स दशग्रीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ ११ ॥ वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि काङ्क्षितम् ॥ दशग्रीवोऽपि तच्छ्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १२ ॥ अमरत्वं वृणोमीश वरदो यदि मे भवान् ॥ सुपर्णनागयक्षाणां देवतानां तथासुरैः ॥ अवध्यत्वं तु मे देहि तृणभूता हि मानुषाः ॥ १३ ॥

वर्षपर्य्यन्त एकचरणसे खड़ा होकर तप करतारहा ॥ ९ ॥ और रावणभी देवताओंके हजार वर्षपर्यन्त निराहार रहकर तप करतारहा, जब हजारवर्ष पूरेहुए तब उस रावणने अपने शिरको काटकर अग्निमें हवन करदिया, इसप्रकार क्रमसे प्रत्येक हजारवर्ष पूर्ण होनेपर एक एक शिर काटकर चढ़ातेहुए रावणको नौहजार वर्ष बीतगए ॥ १० ॥ जब दशहजार वर्ष व्यतीत होनेपर रावणने दशवाँ शिर काटनेकी इच्छा करी, सो उसीसमय धर्मात्मा ब्रह्माजी आकर प्राप्त होगए, और कहनेलगे, कि हे पुत्र ! रावण ! मैं तेरे तपसे प्रसन्न होगया ॥ ११ ॥ अब तू वर माँग मैं तेरी इच्छाके अनुसार वर दूँगा, इसप्रकार ब्रह्माजीके वचनको सुनकर रावण चित्तमें प्रसन्न होता हुआ कहने लगा ॥ १२ ॥ कि हे ईश ! यदि आप मुझे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर देते हैं तौ अमर कर दीजिये, जिससे गरुड़, नाग, यक्ष, देवता और दैत्यराक्षसोंके हाथसे मेरा मरण नहीं होय, और मनुष्य तो तृणके समान हैं, उनसे मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ १३ ॥ इस प्रकार रावणके प्रार्थना करनेपर तथास्तु (ऐसाही होय) कहकर फिर रावणसे बोले कि हे राक्षसश्रेष्ठ ! तैंने अग्निमें जितने शिरोंका हवन किया है, वह फिर जैसे थे वैसे होकर अक्षय (कटनेपरभी नष्ट न होनेवाले किन्तु फिर उत्पन्न होनेवाले) होजायँगे ॥ १४ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं, कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! इसप्रकार रावणसे कहकर भक्तवत्सल ब्रह्माजी सन्मुख हाथ जोड़े खड़े हुए विनीत बिभीषणसे इसप्रकार बोले ॥ १५ ॥ कि हे पुत्र ! बिभीषण ! तैंने धर्म्मके निमित्त उत्तम तप किया है, इसकारण हे पुत्र ! तूभी

तथास्त्विति प्रजाध्यक्षः पुनराह दशाननम् ॥ अमौ हुतानि शीर्षाणि यानि तेऽसुरपुङ्गव ॥ १४ ॥ भविष्यन्ति यथापूर्वमक्षयाणि च सत्तम ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा ततो राम दशग्रीवं प्रजापतिः ॥ बिभीषणमुवाचेदं प्रणतं भक्तवत्सलः ॥ १६ ॥ बिभीषण त्वया वत्स कृतं धर्मार्थमुत्तमम् ॥ तपस्ततो वरं वत्स वृणीष्वाभिमतं हितम् ॥ १७ ॥ बिभीषणोऽपि तं नत्वा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ देव मे सर्वदा बुद्धिर्धर्मे तिष्ठतु शाश्वती ॥ मा रोचयत्वधर्मे मे बुद्धिः सर्वत्र सर्वदा ॥१८ ॥ ततः प्रजापतिः प्रीतो बिभीषणमथाब्रवीत् ॥ वत्स त्वं धर्मशीलोऽसि तथैव च भविष्यसि ॥ १९ ॥ अयाचितोऽपि ते दास्ये ह्यमरत्वं बिभीषण ॥ कुम्भकर्णमथोवाच वरं वरय सुव्रत ॥ २० ॥ वाण्या व्याप्तोऽथ तं प्राह कुम्भकर्णः पितामहम् ॥ स्वप्स्यामि देव षण्मासान्दिनमेकं तु भोजनम् ॥ २१ ॥

हितकारक अपना मनोवांछित वर माँग ॥ १६ ॥ १७ ॥ बिभीषणभी ब्रह्माजीको प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए इसप्रकार बोला, कि हे देव ! मेरी बुद्धि सदा धर्म्ममें स्थित रहैं, और मेरी बुद्धि अधर्म्ममें कदापि नहीं जाय, यह वरदान मुझे दीजिये ॥ १८ ॥ इस कथनको सुनकर प्रसन्न हुए ब्रह्माजी बिभीषणसे बोले, कि हे पुत्र ! तू धर्मशील है इसकारण तेरी बुद्धि सदा धर्म्ममेंही रहैगी ॥ १९ ॥ हे बिभीषण ! बिना माँगेभी मै तुझे अमरपणा देताहूँ; इसके अनन्तर ब्रह्माजी कुम्भकर्णसे बोले, कि हे शोभन ! वर माँगो ॥ २० ॥ उससमय देवताओंकी प्रार्थनासे सरस्वती कुम्भकर्णके कण्ठकर बैठ गई, और कुम्भकर्णको मोहमें डालदिया, सो कुम्भकर्ण तिन ब्रह्माजीसे बोले, कि हे देव ! मुझे यह वरदान दो कि मैं छः महीने पर्य्यन्त शयन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया करूँ और एक दिन भोजन किया करूँ ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने देवताओंकी ओर देखकर कुम्भकर्णसे तथास्तु (ऐसाही होय) कह दिया, इतनेहीमें कुम्भकर्णके मुखसे निकलकर सरस्वती स्वर्गको चली गई ॥ २२ ॥ तबतो दुष्टात्मा कुम्भकर्ण मनमें दुःखित होकर चिन्ता करने लगा, कि मेरे मुखसे यह कैसी अनिष्ट वार्त्ता निकल गई; ठीक है प्रारब्धके लिखेको कोई नहीं मेटसक्ता है ॥ २३ ॥ इतनेहीमें सुमालीराक्षस अपनी कन्याके पुत्रोंको ब्रह्माजीसे वरदान मिला है, ऐसा सुनकर निर्भय हो प्रहस्तआदिको साथमें ले पातालसे निकलकर आगया ॥ २४ ॥ और रावणको हृदयसे लगाकर यह वचन बोला, कि हे पुत्र ! बड़े आनन्दकी वार्ता है जो मेरे मनोरथके अनुसार तुम्हे वरदान मिलगया ॥ २५ ॥ जिसके

एवमस्त्विति तं प्राह ब्रह्मा दृष्ट्वा दिवौकसः ॥ सरस्वती च तद्वक्त्रान्निर्गता प्रययौ दिवम् ॥ २२ ॥ कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ अनभिप्रेतमेवास्यार्त्कि निर्गतमहो विधिः ॥२३॥ सुमाली वरलब्धांस्तान् ज्ञात्वा पौत्रान् निशाचरान् ॥ पातालान्निर्भयः प्रायात् प्रहस्तादिभिरन्वितः ॥ २४ ॥ दशग्रीवं परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ दिष्ट्या ते पुत्र संवृत्तो वाञ्छितो मे मनोरथः ॥२५॥ यद्भयाच्च वयं लङ्कां त्यक्त्वा याता रसातलम् ॥ तद्भतं नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥ २६ ॥ अस्माभिः पूर्वमुषिता लङ्केयं धनदेन ते ॥ भ्रात्रा कान्तामिदानीं त्वं प्रत्यानेतुमिहार्हसि ॥ २७ ॥ साम्ना वाथ बलेनापि राज्ञां बन्धुः कुतः सुहृत् ॥ इत्युक्तो रावणः प्राह नार्हस्येवं प्रभाषितुम् ॥ २८ ॥ वित्तेशो गुरुरस्माकमेवं श्रुत्वा तमब्रवीत् ॥ प्रहस्तः प्रश्रितं वाक्यं रावणं दशकन्धरम् ॥ २९ ॥ शृणु रावण यत्नेन नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ नाधीता राजधर्मास्ते नीतिशास्त्रं तथैव च ॥ ३० ॥

भयसे हम लङ्कापुरीको त्यागकर पातालको चलेगए थे, हे महाबाहो ! वह विष्णुका बड़ा भय अब दूर होगया ॥ २६ ॥ इस लंकापुरीमें पहिले हम सब राक्षसही वसतेथे, अब तुम्हारे भ्राता कुबेरने अपने वशमें करली है, अब यह फिर लेलेनी चाहिये ॥ २७ ॥ चाहे शान्तिसे लेलो, चाहे बलात्कार (जबरदस्ती) से लेलो; क्योंकि राजाओंका कौन मित्र है ? इसप्रकार सुमालीके कहनेपर रावण बोला, कि तुमको ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ क्योंकि मेरा बड़ा भ्राता कुबेर पिताके समान है, ऐसा सुनकर प्रहस्त राक्षस नम्रतापूर्वक दशकन्धर रावणसे कहने लगा ॥ २९ ॥ कि हे रावण ! सावधान होकर सुनो तुम्हारा इसप्रकार कहना उचित नहीं है, क्योंकि तुमने राजधर्म नहीं पढे हैं, और न नीतिशास्त्रको जानते हो ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे प्रभो! शूरपुरुष कदापि भ्रातापनकी प्रीति नहीं करते हैं, मैं जो वृतान्त कहताहूँ सो सुनो, देखो कश्यपजीके पुत्र देवता और राक्षस दोनोही महाबली हुए ॥ ३१ ॥ और उन्होंने प्रीतिका त्याग करके परस्पर शस्त्रोंसे युद्ध किया, सो देवता और राक्षसोंका वैर आजका नहीं है, किन्तु पहिलेसेही चला आता है ॥ ३२ ॥ दुष्टात्मा प्रहस्तका वचन सुनकर रावण क्रोधसे लाल लाल नेत्र करेहुए तैसेही त्रिकूटाचलको चलागया ॥ ३३ ॥ और प्रहस्तको दूत बनाकर कुबेरके पास भेजा, और कुबेरको लङ्कापुरीसे निकालकर और लंकापुरीको अपने वशमें करके रावण अपने मंत्री राक्षसोंसहित सुखपूर्वक निवास करने लगा ॥ ३४ ॥ परम यशस्वी कुबेरभी पिताकी आज्ञासे लंकापुरीको छोड़कर कैलास पर्वतके शिखरपर चलागया, और

शूराणां नहि सौभ्रात्रं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ कश्यपस्य सुता देवा राक्षसाश्च महाबलाः ॥३१॥ परस्परमयुध्यन्त त्यक्त्वा सौहृदमायुधैः ॥ नैवेदानीन्तनं राजन् वैरं देवैरनुष्ठितम् ॥ ३२ ॥ प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा दशग्रीवो दुरात्मनः ॥ तथेति क्रोधताम्राक्षस्त्रिकूटाचलमन्वगात् ॥ ३३ ॥ दूतं प्रहस्तं संप्रेष्य निष्कास्य धनदेश्वरम् ॥ लङ्कामाक्रम्य सचिवै राक्षसैः सुखमास्थितः ॥ ३४ ॥ धनदः पितृवाक्येन त्यक्त्वा लङ्कां महायशाः ॥ गत्वा कैलासशिखरं तपसा तोषयच्छिवम् ॥ ३५ ॥ तेन सख्यमनुप्राप्य तेनैव परिपालितः ॥ अलकां नगरीं तत्र निर्ममे विश्वकर्मणा ॥ ३६ ॥ दिक्पालत्वं चकारात्र शिवेन परिपालितः ॥ रावणो राक्षसैः सार्धमभिषिक्तः सहानुजैः ॥ ३७ ॥ राज्यं चकारासुराणां त्रिलोकीं बाधयन्खलः ॥ भगिनीं कालखञ्जाय ददौ विकटरूपिणीम् ॥ ३८ ॥

तप करके महादेवजीको प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ तब कुबेरकी महादेवजीसे मित्रता होगई, और महादेवजी सब प्रकारसे रक्षा करने लगे, और कुबेरको निवास करनेके निमित्त विश्वकर्म्मासे तिस कैलास पर्वतपरही एक अलका नाम पुरी बनवादी ॥ ३६ ॥ और महादेवजीके आश्रयसे कुबेर अपनी दिशाकी रक्षाभी करता रहा; इधर भ्राताओंसहित सम्पूर्ण राक्षसोंने रावणको राज्यका अभिषेक करादिया ॥ ३७ ॥ तब वह दुष्ट रावण त्रिलोकीको पीड़ा देताहुआ राक्षसोंका राज्य करने लगा. और इस मायावी रावण राक्षसने भयंकर रूपवाली अपनी शूर्पणखा नामक भगिनी कालखंजके वंशमें

१ पुराणमें ऐसी कथा है कि दूतके जानेके अनन्तर कुवेरजी अपने पिताके पास बोले कि रावणने ऐसा कहला भेजा है सो क्या करना चाहिये ? उन्होंने कहा लङ्का त्यागनाही उचित है. तब कुबेरने लंकाको त्याग दिया.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हुए विद्युज्जिव्ह नाम राक्षसको देदी, तदनन्तर राक्षसोंके विश्वकर्मा दितिपुत्र मयनामक राक्षसने त्रिलोकीमें अद्वितीय सुन्दरी मन्दोदरी नामक अपनी कन्या रावणको देदी, फिर प्रसन्न मनसे एक अमोघ शक्ति (साँग) दी ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ तदनन्तर वैरोचन बलिकी दौहित्री (धेवती नातिन) वृत्रज्वालानामक कन्याको उसके पिताने अपने आपे देदिया, उसके साथ रावणने कुम्भकर्णका विवाह किया ॥ ४१ ॥ धर्म्मको जाननेवाली महात्मा गन्धर्वराज शैलूषकी पुत्रीके साथ रावणने बिभीषणका विवाह किया ॥४२॥ वह गन्धर्वराज शैलूषकी पुत्री सम्पूर्ण सौभाग्यके चिन्हों-करके युक्त और सरमानामसे प्रसिद्ध थी, तदनन्तर मन्दोदरीने मेघनादनामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ४३ ॥ जो उत्पन्न होतेही मेघके समान गरजने लगा,

विद्युज्जिह्वाय नाम्नासौ महामायी निशाचरः ॥ ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसानां दितेः सुतः ॥ ३९ ॥ सुतां मन्दोदरीं नाम्ना ददौ लोकै-कसुन्दरीम् ॥ रावणाय पुनः शक्तिममोघां प्रीतमानसः ॥ ४० ॥ वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेति विश्रुताम् ॥ स्वयं दत्तामुदवहत्कुम्भ-कर्णाय रावणः ॥ ४१ ॥ गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः ॥ बिभीषणस्य भार्यार्थे धर्मज्ञां समुदावहत् ॥ ४२ ॥ सरमां नाम सुभगां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत् ॥ ४३ ॥ जातमात्रस्तु यो नादं मेघवत्प्रमुमोच ह ॥ ततः सर्वेऽ-ब्रुवन्मेघनादोऽयमिति चासकृत् ॥ ४४ ॥ कुम्भकर्णस्ततः प्राह निद्रा मां बाधते प्रभो ॥ ततश्च कारयामास गुहां दीर्घां सुविस्ताराम् ॥ ॥ ४५ ॥ तत्र सुष्वाप मूढात्मा कुम्भकर्णो विघूर्णितः ॥ निद्रिते कुम्भकर्णे तु रावणो लोकरावणः ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणान् ऋषिमुख्यांश्च देवदानवकिन्नरान् ॥ देवश्रियो मनुष्यांश्च निजघ्ने समहोरगान् ॥ ४७ ॥ धनदोऽपि ततः श्रुत्वा रावणस्याक्रमं प्रभुः ॥ अधर्मं मा कुरुष्वेति दूतवाक्यैर्न्यवारयत् ॥ ४८ ॥

इसकारणही सब राक्षस उसको मेघनादनामसेही पुकारने लगे ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कुम्भकर्ण रावणसे बोला, कि हे प्रभो! मुझे निद्रा पीडित करती है, तब रावणने बड़ी लम्बी चौड़ी एक गुहा बनवाई ॥ ४५ ॥ तहाँ जाकर मूढ़बुद्धि कुम्भकर्ण घुर्राटे लेताहुआ सो रहा और कुम्भकर्णके शयन करनेके अन-न्तर लोकोंको रोदन करानेवाला रावण ब्राह्मणोंको, मुख्य मुख्य ऋषियोंको, देवताओंको, दानवोंको, किन्नरोंको, मनुष्योंको और बडे २ नागोंको मारनेलगा, और देवताओंकी सम्पत्तियें छीनलीं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ कुबेरने रावणके ऐसे अन्यायको सुनकर दूतोंके द्वारा रावणके पास कहलाकर भेजा, कि हे भ्रातः!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा अधर्म्म मत करो ॥ ४८ ॥ दूतोंके इसप्रकार कहतेही रावण क्रोधमें होकर कुबेरके स्थानपर गया, और कुबेरको जीतकर उसका पुष्पकविमान ले आया ॥ ४९ ॥ फिर रावण यम और वरुणकोभी जीतकर शीघ्रही इन्द्रको जीतनेकी इच्छासे स्वर्गलोकको गया ॥ ५० ॥ तहाँ इन्द्र और देवताओंके साथ रावणका बड़ाभारी युद्ध हुआ, और इन्द्रने रावणको बाँधलिया ॥ ५१ ॥ इस वार्त्ताको सुनकर परमप्रतापी मेघनाद तत्काल स्वर्गमें गया, और महा घोर युद्धकर बडे बडे देवताओंको जीतकर इस महाबली मेघनादने इन्द्रको पकडकर बाँध लिया, और पिताको छुटाकर इन्द्रको लिये हुए अपनी लंकापुरीको

ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम् ॥ विनिर्जित्य धनाध्यक्षं जहारोत्तमपुष्पकम् ॥ ४९ ॥ ततो यमं च वरुणं निर्जित्य समरेऽसुरः ॥ स्वर्गलोकमगात्तूर्णं देवराजजिघांसया ॥ ५० ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धमिन्द्रेण सह दैवतैः ॥ ततो रावणमभ्येत्य बबन्ध त्रिदशेश्वरः ॥ ५१ ॥ तच्छ्रुत्वा सहसागत्य मेघनादः प्रतापवान् ॥ कृत्वा घोरं महद्युद्धं जित्वात्रिदशपुङ्गवान् ॥ ५२ ॥ इन्द्रं गृहीत्वा बद्ध्वासौ मेघनादो महाबलः ॥ मोचयित्वा तु पितरं गृहीत्वेन्द्रं ययौ पुरम् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा तु मोचयामास देवेन्द्रं मेघनादतः ॥ दत्त्वा वरान्बहूंस्तस्मै ब्रह्मा स्वभवनं ययौ ॥ ५४ ॥ रावणो विजयी लोकान्सर्वान् जित्वा क्रमेण तु ॥ कैलासं तोलयामास बाहुभिः परिघोपमैः ॥ ५५ ॥ तत्र नन्दीश्वरेणैवं शप्तोऽयं राक्षसेश्वरः ॥ वानरैर्मानुषैश्चैव नाशं गच्छेति कोपिना ॥ ५६ ॥ शप्तोऽप्यगणयन् वाक्यं ययौ हैहयपत्तनम् ॥ तेन बद्धो दशग्रीवः पुलस्त्येन विमोचितः ॥ ५७ ॥

चलाआया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ तब ब्रह्माजीने मेघनादसे इन्द्रको छुडाया बदलेमें मेघनादको बहुतसे वरदान देकर ब्रह्माजी अपने स्थानको गए ॥ ५४ ॥ विजयी रावणने सम्पूर्ण लोगोंको क्रमसे जीतकर परिघशस्त्रके समान अपनी भुजाओंसे कैलास पर्वतको उठाकर अजमाया ॥ ५५ ॥ तब तो नन्दीश्वर नामक महादेवजीके पार्षदने कोपमें होकर रावणको यह शाप दिया, कि तू वानरोंसे अथवा मनुष्योंके हाथसे नाशको प्राप्त होयगा ॥ ५६ ॥ इसप्रकार नन्दीश्वरके शाप देनेपरभी रावणने शापको कुछ नहीं गिना, (क्योंकि यह तो मनुष्य और वानरोंको तृणके समान समझता था) और हैहय (कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन) के

१ यहाँ शाप देनेका कारण कैलासको उठानाही प्रतीत होता है, और वाल्मीकिआदि रामायणोंके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दीश्वरका वानरोंके सरिखा मुख देखकर रावण हँसाथा इसकारण नन्दीश्वरने ऐसा शाप दिया.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नगरको गया, तहाँ सहस्रार्जुनने इस रावणको बाँधकर डालदिया, तब पुलस्त्यऋषिने छुटाया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर फिर भी रावण अपने बलके गर्वसे वालीके जीतनेकी इच्छासे किष्किन्धाको गया, तहाँ भी उलटाही फल हुआ, कि वालीने रावणको बगलमें दबालिया, और चार समुद्रोंको फिराकर छोड दिया, तब रावणने वालीके साथ मित्रता करली ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ अगस्त्यजी कहते हैं, कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! परम प्रसन्न महाबली रावणने इसप्रकार सम्पूर्ण लोकोंको अपने वशमें करलिया, और लोकोंके सम्पूर्ण भोग अपने आपही भोगे ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसे प्रतापी मेघनादकी सहायताको प्राप्त होनेवाले, लोकोंको पीडा देनेवाले दशमुख रावणका आपने संग्रामके विषे वध किया ॥ ६१ ॥ महात्मा

ततोऽतिबलमासाद्य जिघांसुर्हरिपुङ्गवम् ॥ धृतस्तेनैव कक्षेण वालिना दशकन्धरः ॥ ५८ ॥ भ्रामयित्वा तु चतुरः समुद्रान् रावणं हरिः ॥ विसर्जयामास ततस्तेन सख्यं चकार सः ॥ ५९ ॥ रावणः परमप्रीत एवं लोकान्महाबलः ॥ चकार स्ववशे राम बुभुजे स्वयमेव तान् ॥ ॥ ६० ॥ एवंप्रभावो राजेन्द्र दशग्रीवः सहेन्द्रजित् ॥ त्वया विनिहतः सङ्ख्ये रावणो लोकरावणः ॥ ६१ ॥ मेघनादश्च निहतो लक्ष्मणेन महात्मना ॥ कुम्भकर्णश्च निहतस्त्वया पर्वतसन्निभः ॥ ६२ ॥ भवान्नारायणः साक्षाज्जगतामादिकृद्विभुः ॥ त्वत्स्वरूपमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६३ ॥ त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ अग्निस्ते मुखतो जातो वाचा सह रघूत्तम ॥ ६४ ॥ बाहुभ्यां लोकपालौघाश्चक्षुर्भ्यां चन्द्रभास्करौ ॥ दिशश्च विदिशश्चैव कर्णाभ्यां ते समुत्थिताः ॥ ६५ ॥ घ्राणात्प्राणः समुत्पन्नश्चाश्विनौ देवसत्तमौ ॥ जङ्घाजानूरुजघनाद्भुवर्लोकादयोऽभवन् ॥ ६६ ॥

लक्ष्मणजीने मेघनादका संहार किया, आपने पर्वतके समान शरीरधारी कुम्भकर्णका वध किया ॥ ६२ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप त्रिलोकीको रचनेवाले, साक्षात् सर्वव्यापी नारायण हो, यह सम्पूर्ण स्थावरजङ्गमरूप संसार आपकाही स्वरूप है ॥ ६३ ॥ लोकके पितामह ब्रह्माजी आपकेही नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं, हे रघुकुलश्रेष्ठ ! वाणीसहित आपके मुखसे अग्नि उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ इन्द्रआदि सम्पूर्ण लोकपाल आपकी भुजाओंसे उत्पन्न हुए हैं, चन्द्रमा और सूर्य आपके दोनों नेत्रोंसे उत्पन्न हुए हैं, दिशा और विदिशा (आग्नेयआदिकोण) आपके दोनों कर्णोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६५ ॥ आपके घ्राणइंद्रियसे प्राणवायु और देवताओंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए हैं, और आपकी जंघा, जानु, तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊरुस्थानसे भुवरलोक आदि उत्पन्न हुए हैं ॥ ६६ ॥ आपकी कोखसे चारों समुद्र उत्पन्न हुए हैं, स्तनोंसे इन्द्र और वरुण उत्पन्न हुए हैं, और आपके वीर्यसे वालखिल्यऋषि उत्पन्न हुए है ॥ ६७ ॥ आपके लिंगेंद्रियसे यमराज उत्पन्न हुए हैं, गुदासे मृत्यु उत्पन्न हुआ है, और आपके क्रोधसे त्रिनेत्र शिव उत्पन्न हुए हैं, आपकी अस्थियोंसे पर्वत उत्पन्न हुए हैं, आपके केशोंसे मेघोंकी घटा उत्पन्न हुई है ॥ ६८ ॥ आपके रोमोंसे औषधियें उत्पन्न हुई हैं और आपके नखोंसे लोहा आदिक कठोर पदार्थ उत्पन्न हुए हैं. हे भगवन् ! पुराणपुरुषभी आप आपनी मायाशक्तिसे युक्त होकर विश्वरूपसे प्रतीत होते हो ॥ ६९ ॥ तिस मायाके सत्वादिक गुणोंके न्यूनाधिकभावसे मिलनेपर आप ब्रह्मा विष्णु और रुद्ररूपसे प्रतीत होते हो,

कुक्षिदेशात्समुत्पन्नाश्चत्वारः सागरा हरे ॥ स्तनाभ्यामिन्द्रवरुणौ वालखिल्याश्च रेतसः ॥ ६७ ॥ मेण्ढ्राद्यमो गुदान्मृत्युर्मन्यो रुद्रस्त्रिलोचनः ॥ अस्थिभ्यः पर्वता जाताः केशेभ्यो मेघसंहतिः ॥ ६८ ॥ औषध्यस्तव रोमभ्यो नखेभ्यश्च खरादयः ॥ त्वं विश्वरूपः पुरुषो मायाशक्तिसमन्वितः ॥ ६९ ॥ नानारूप इवाभासि गुणव्यतिकरे सति ॥ त्वामाश्रित्यैव विबुधाः पिबन्त्यमृतमध्वरे ॥ ७० ॥ त्वया सृष्टमिदं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ त्वामाश्रित्यैव जीवन्ति सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥ ७१ ॥ त्वद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारेऽपि राघव ॥ क्षीरमध्यगतं सर्पिर्यथा व्याप्याखिलं पयः ॥ ७२ ॥ त्वद्भासा भासतेऽर्कादि न त्वं तेनावभाससे ॥ सर्वगं नित्यमेकं त्वां ज्ञानचक्षुर्विलोकयेत् ॥ ७३ ॥ नाज्ञानचक्षुस्त्वां पश्येदन्धदृक् भास्करं यथा ॥ योगिनस्त्वां विचिन्वति स्वदेहे परमेश्वरम् ॥ ७४ ॥

अग्निरूपसे तुम्हाराही आश्रय करके देवता यज्ञमें अमृतपान करते हैं ॥७०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह स्थावर जंगमरूप संपूर्ण विश्व आपनेही रचा है, और आपहीके आश्रयसे स्थावर जंगमरूप सम्पूर्ण प्राणी जीवन धारण करते हैं, हे रघुनाथजी ! व्यवहारमें जो कुछ वस्तु देखनेमें आवै है वह सब आपकी सत्तासे युक्त है, जिसप्रकार दुग्धके मध्यमें स्थित घृत संपूर्ण दुग्धमें व्याप्त होकर स्थित रहता है ॥७१॥७२॥ हे भगवन् ! सूर्यादि आपके प्रकाशसे प्रकाश करते हैं, परंतु उनसे आप प्रकाशित नहीं होते हो, सर्वव्यापी, नित्य और अद्वितीय रूप आपको ज्ञानदृष्टि पुरुषही देखसक्ता है, जिसप्रकार अंधा पुरुष सूर्यको नहीं देख सक्ता, इसीप्रकार अज्ञानदृष्टि पुरुष आपको नहीं देख सकता, योगी पुरुष अपने शरीरमेंही परमेश्वर रूप आपका दर्शन करते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ और योगीपुरुष यदि आपके चरण कमलोंकी भक्तिके लेश करके युक्त होते हैं, तबहीं जड़ पदार्थोंका त्याग करते हुए उपनिषदोंके विषे कहेहुए नेतिनेति आदि वाक्यों करके रात्रिदिन आपके चैतन्य स्वरूपका दर्शन करते हैं, दूसरे प्रकारसे नहीं, हे भगवन् ! सर्वज्ञ जो आप तिनके सामने मैंने अपनी मतिके अनुसार जो कुछ कहा है उसको क्षमा करिये क्योंकि हे देवदेव ! आपके अनुग्रहसेंही मेरी बुद्धि इस विषयमें प्रवृत्त हुई है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ दिशा देश और कालके परिच्छेद करके रहित स्वजातीय विजातीय स्वगतभेदशून्य, अद्वितीय, चैतन्यस्वरूप, अविनाशी, अजन्मा, चलना आदि क्रिया करके रहित, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनंत गुण, अपनी चितशक्तिके द्वारा मायाके दोषोंको दूर करनेवाले, और जो भक्तजनोंको अपनेसे अभिन्न प्रतीत होते हैं, तिन रघुनाथजीको मैं भजताहूँ ॥ ७७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीय

अतन्निरसनमुखैर्वेदशीर्षैरहर्निशम् ॥ त्वत्पादभक्तिलेशेन गृहीता यदि योगिनः ॥ ७५ ॥ विचिन्वन्तो हि पश्यन्ति चिन्मात्रं त्वां न चान्यथा ॥ मया प्रलपितं किञ्चित्सर्वज्ञस्य तवाग्रतः ॥ क्षन्तुमर्हसि देवेश तवानुग्रहभागहम् ॥ ७६ ॥ दिग्देशकालपरिहीनमनन्यमेकं चिन्मात्रमक्षरमजं चलनादिहीनम् ॥ सर्वज्ञमीश्वरमनन्तगुणं व्युदस्तमायं भजे रघुपतिं भजतामभिन्नम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ वालिसुग्रीवयोर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ रवीन्द्रौ वानराकारौ जज्ञात इति नः श्रुतम् ॥ १ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ मेरोः स्वर्णमयस्याद्रेर्मध्यशृङ्गे मणिप्रभे ॥ तस्मिन्सभाऽस्ते विस्तीर्णा ब्रह्मणः शतयोजना ॥ २ ॥ तस्यां चतुर्मुखः साक्षात्कदाचिद्योगमास्थितः ॥ नेत्राभ्यां पतितं दिव्यमानन्दसलिलं बहु ॥ ३ ॥ तद्गृहीत्वा करे ब्रह्मा ध्यात्वा किञ्चित्तदत्यजत् ॥ भूमौ पतितमात्रेण तस्माज्जातो महाकपिः ॥ ४ ॥

मुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ महादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! तदनंतर श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे अगस्त्यमुने ! अब मैं वालि और सुग्रीवके जन्मकी कथाको पूर्ण रीतिसे सुनना चाहताहूँ, मैंने सुना है कि सूर्य और इन्द्र, वालि और सुग्रीव रूपसे उत्पन्न हुए हैं ? ॥ १ ॥ अगस्त्य मुनि बोले कि सुवर्णरूप मेरु पर्वतके मणियोंकी कांतिकरके युक्त शिखरपर सौ योजन चौड़ा ब्रह्माजीकी सभाका स्थान है ॥ २ ॥ तिस सभास्थानके विषे एक समय साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्माजी योगसमाधि लगाये हुए बैठे थे, उनके नेत्रोंमेंसे बहुतसा आनंदका जल टपकने लगा ॥ ३ ॥ उसको हाथमें लेकर ब्रह्माजीने कुछ समय पर्यन्त ध्यान किया, और उस जलको पृथ्वीपर डालदिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस जलके पृथ्वीपर गिरतेही एक बडाभारी वानर उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ उस वानरसे ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! सब प्रकारकी शोभासे युक्त इस सुमेरुके शिखरपर कुछ कालपर्यन्त मेरे समीप निवास करो, तब तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ५ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीके कहनेपर वह श्रेष्ठ वानर तहाँही निवास करने लगा, इसप्रकार बहुतसा काल व्यतीत होनेपर एक समय फल मूल आदिके निमित्त उद्योग करता हुआ वह परम बुद्धिमान् ऋक्षपति वानर तिस सुमेरु पर्वतपै फिर रहाथा, सो निर्मल दिव्य जल करके युक्त और मणियों करके जटित शिलाओंकी बनी हुई एक बावडी उस वानरने देखी ॥ ६ ॥ ७ ॥ और उस बावडीमें पानी पीनेको आया तहाँ जलमें अपनी छायाके प्रतिबिंबको दूसरा वानर जानके

तमाह द्रुहिणो वत्स किञ्चित्कालं वसात्र मे ॥ समीपे सर्वशोभाढ्ये ततः श्रेयो भविष्यति ॥ ५ ॥ इत्युक्तो न्यवसत्तत्र ब्रह्मणा वानरोत्तमः ॥ एवं बहुतिथे काले गते ऋक्षाधिपः सुधीः ॥ ६ ॥ कदाचित्पर्यटन्द्रौ फलमूलार्थमुद्यतः ॥ अपश्यद्दिव्यसलिलां वापीं मणिशिलान्विताम् ॥ ७ ॥ पानीयं पातुमागच्छत्तत्र छायामयं कपिम् ॥ दृष्ट्वा प्रतिकपिं मत्वा निपपात जलान्तरे ॥ ८ ॥ तत्रादृष्ट्वा हरिं शीघ्रं पुनरुत्प्लुत्य वानरः ॥ अपश्यत्सुन्दरीं रामामात्मानं विस्मयं गतः ॥ ९ ॥ ततः सुरेशो देवेशं पूजयित्वा चतुर्मुखम् ॥ गच्छन्मध्याह्नसमये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम् ॥ १० ॥ कन्दर्पशरविद्धाङ्गस्त्यक्तवान्वीर्यमुत्तमम् ॥ तामप्राप्यैव तद्बीजं वालदेशेऽपतद्भुवि ॥ ११ ॥ वाली समभवत्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ तस्य दत्त्वा सुरेशानः स्वर्णमालां दिवं गतः ॥ १२ ॥ भानुरप्यागतस्तत्र तदानीमेव भामिनीम् ॥ दृष्ट्वा कामवशो भूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत् ॥ १३ ॥

जलमें कूदपड़ा ॥ ८ ॥ तहाँ किसी दूसरे वानरको न देखकर शीघ्रही कूदकर वह वानर बाहर आगया, और अपनेको सुंदर स्त्रीरूप देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ तदनंतर उसीसमयमें ब्रह्माजीका पूजन करके इन्द्र आ रहे थे, सो मार्गमें मध्याह्नके समय उस परम सुन्दरी स्त्रीको देखकर कामदेवके वशीभूत होगये, और इनका उत्तम वीर्य स्खलित होगया, वह इंद्रका वीर्य उस स्त्रीको विना प्राप्त हुएही उसके वालोंको स्पर्श कर पृथ्वीपर गिरा ॥ १० ॥ ११ ॥ उस वीर्यसे तहाँही इन्द्रके समान पराक्रमी वाली उत्पन्न हुआ, तिस वालीको सुवर्णकी माला देकर इन्द्रदेव स्वर्गको चलेगये ॥ १२ ॥ उसी समयमें सूर्यभी अकस्मात् तहाँ आगये और उस स्त्रीको देखकर कामदेवके वशीभूत होगये और अपना उग्र वीर्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसकी ग्रीवापर छोड़ा, तिस वीर्यसे तत्कालही बड़ाभारी है शरीर जिसका ऐसा सुग्रीव वानर उत्पन्न हुआ, उस सुग्रीवकी सहायताके निमित्त हनुमान्-जीको देकर अर्थात् हनुमान्जीको सुग्रीवके समीप छोड़कर सूर्यदेव चले गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ उन दोनों पुत्रोंको लेकर वह स्त्री किसी स्थानमें जाकर निद्राको प्राप्त होगई, और प्रातःकालके समय उठकर फिर अपनेको पहिलेके समान वानररूप देखा ॥ १५ ॥ तदनंतर वह परमबुद्धिवान् ऋक्षपति वानर फल मूल और दोनों पुत्रों सहित प्रणाम करके ब्रह्माजीके सन्मुख स्थित हुआ ॥ १६ ॥ तब ब्रह्माजीने उस वानरको अनेक प्रकारसे समझाया, अर्थात् स्त्रीरूप होनेकी ग्लानि दूर किया, और तहाँ एकको देवताओंके दूतको बुलाकर इसप्रकार कहा ॥ १७ ॥ कि हे दूत ! मेरी

बीजं तस्यास्ततः सद्यो महाकायोऽभवद्धरिः ॥तस्य दत्त्वा हनूमन्तं सहायार्थं गतो रविः ॥ १४ ॥ पुत्रद्वयं समादाय गत्वा सा निद्रिता क्वचित् ॥ प्रभातेऽपश्यदात्मानं पूर्ववद्वानराकृतिम् ॥ १५ ॥ फलमूलादिभिः सार्धं पुत्राभ्यां सहितः कपिः ॥ नत्वा चतुर्मुखस्याग्रे ऋक्षराजः स्थितः सुधीः ॥ १६ ॥ ततोब्रवीत्समाश्वास्य बहुशः कपिकुञ्जरम् ॥ तत्रैकं देवतादूतमाहूयामरसन्निभम् ॥ १७ ॥ गच्छ दूत मयादिष्टो गृहीत्वा वानरोत्तमम् ॥ किष्किन्धां दिव्यनगरीं निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ १८ ॥ सर्वसौभाग्यवलितां देवैरपि दुरासदाम् ॥ तस्यां सिंहासने वीरं राजानमभिषेचय ॥ १९ ॥ सप्तद्वीपगता ये ये वानराः सन्ति दुर्जयाः ॥ सर्वे ते ऋक्षराजस्य भविष्यन्ति वशेऽनुगाः ॥ २० ॥ यदा नारायणः साक्षाद्रामो भूत्वा सनातनः ॥ भूभारासुरनाशाय सम्भविष्यति भूतले ॥ २१ ॥ तदा सर्वे सहायार्थं तस्य गच्छन्तु वानराः ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा दूतो देवानां स महामतिः ॥ २२ ॥ यथाज्ञप्तस्तथा चक्रे ब्रह्मणा तं हरीश्वरम् ॥ देवदूतस्ततो गत्वा ब्रह्मणे तन्निवेदयत् ॥ २३ ॥

आज्ञासे तू इन वानरोंको लेकर विश्वकर्म्माकी बनाई हुई किष्किन्धानामक दिव्य नगरीमें जा ॥ १८ ॥ जो सबप्रकारकी भोगकी वस्तुओंकरके युक्त किष्किन्धा नगरी देवाओंको भी मिलना कठिन है, तहाँ सिंहासनके ऊपर इस वीर वानरका अभिषेक करो ॥ १९ ॥ सातों द्वीपोंमें जो कठिनसे जीतनेयोग्य जितने वानर हैं, वह सब इस ऋक्षराजके वशीभूत होकर रहेंगे ॥ २० ॥ जिस समय साक्षात् सनातन नारायण पृथ्वीके भाररूप राक्षसोंका नाश करनेके निमित्त भूतलपर श्रीरामचंद्रावतार धारण करेंगे ॥ २१ ॥ तब संपूर्ण वानर उनकी सहायता करनेके निमित्त जायँगे, इसप्रकार ब्रह्माजीके कहनेपर वह देवताओंका परम बुद्धिमान् दूत उन वानरोंको लेकर किष्किंधाको चलागया, और जिसप्रकार ब्रह्माजीने आज्ञा दी थी तिसा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार संपूर्ण कार्य किया, और उस वानरको संपूर्ण वानरोंका राजा बनादिया, फिर उस देवताओंके दूतने ब्रह्माजीको जाकर वह संपूर्ण वृत्तान्त सुनादिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस दिनसे वह किष्किन्धा नगरी वानरोंकी राजधानी हुई, हे श्रीरामचंद्रजी ! सर्वेश्वर तुमहीं हो, ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेसे इस समय लीलासे मनुष्यका रूप धारण करके पृथ्वीका संपूर्ण भार दूर कर दिया. सर्वांतर्यामी, नित्यमुक्त, चैतन्यस्वरूप और परिपूर्ण आनंदस्वरूप जो आप जिनका यह रावणादि राक्षसोंका वध करनारूप पराक्रम कितनासा है ? अर्थात् कुछभी नहीं है, तथापि लीलाकरके मनुष्यरूप धारण करनेवाले जो आप तिनका यश सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंको नष्ट करनेके अर्थ और परम आनंदकी प्राप्तिके अर्थ सत्पुरुष वर्णन करते हैं, जो पुरुष आपके उपदेहिना ॥ सर्वभूतान्तरस्थस्य नित्यमुक्तचिदात्मनः ॥ २५ ॥ अखण्डानन्दरूपस्य कियानेष पराक्रमः ॥ तथाऽपि वर्ण्यते सद्भिर्लीलामानुषरूपिणः ॥ २६ ॥ यशस्ते सर्वलोकानां पापहत्यै सुखाय च ॥ य इदं कीर्तयेन्मर्त्यो वालिसुग्रीवयोर्महत् ॥ २७ ॥ जन्म त्वदाश्रयत्वात्स मुच्यते सर्वपातकैः ॥ अथान्यां संप्रवक्ष्यामि कथां राम त्वदाश्रयाम् ॥ २८ ॥ सीता हृता यदर्थं सा रावणेन दुरात्मना ॥ पुरा कृतयुगं राम प्रजापतिसुतं विभुम् ॥ २९ ॥ सनत्कुमारमेकान्ते समासीनं दशाननः ॥ विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ को न्वस्मिन्प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः ॥ देवाश्च यं समाश्रित्य युद्धे शत्रुं जयन्ति हि ॥ ३१ ॥ कं जयन्ति द्विजा नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः ॥ एतन्मे शंस भगवन् प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ ३२ ॥

तदादि वानराणां सा किष्किन्धाऽभून्नृपाश्रयः ॥ सर्वेश्वरस्त्वमेवासीरिदानीं ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ २४ ॥ भूमेर्भारो हृतः कृत्स्नस्त्वया लीलानृ-

कारके निमित्त होनेवाले वालि और सुग्रीवके जन्मको परमकथाका कीर्त्तन करताहै वह सम्पूर्ण पातकोंसे छूट जाताहै. हे श्रीरामचन्द्रजी ! अब मैं आपके विषयकी एक और कथा कहताहूँ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिस प्रयोजनसे दुष्टात्मा रावणने सीताका हरण किया हे श्रीरामचन्द्रजी ! पहिले सत्ययुगमें एक समय ब्रह्माजीके मानसपुत्र परम तेजस्वी सनत्कुमार एकान्तमें बैठे हुए थे, तिनके पास जाकर रावणने नम्रतापूर्वक प्रणाम करके इस प्रकार बूझने लगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! आप प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थ हैं, इस कारण अनुग्रह करके इस मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये, कि इस लोकमें सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ और बलवान् कौन हैं ? जिसका आश्रय लेकर देवता युद्धमें शत्रुको जीतते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और नित्य ब्राह्मण किसका पूजन करते हैं ? तथा योगी पुरुष नित्य किसका ध्यान करते हैं ? ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उस रावणके हृद यका सम्पूर्ण अभिप्राय योगदृष्टिसे जानकर सनत्कुमार तिस रावणसे कहने लगे, कि हे पुत्र ! सुन इन सब प्रश्नोंका उत्तर मैं तुझसे कहता हूँ ॥ ३३ ॥ जो सदा त्रिलोकीका पालन करता है, जिसका जन्म मरण आदि नहीं होता है, जिसकी देवता और दैत्य सदा स्तुति करते हैं, वह अविनाशी नारायण विष्णु भगवान् हैं ॥ ३४ ॥ जिनकी नाभिके कमलसे दक्षआदि प्रजापतियोंके भी स्वामी ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने स्थावरजंगमरूप सम्पूर्ण संसारको रचा है ॥ ३५ ॥ उनकाही आश्रय लेकर देवता संग्राममें शत्रुओंको जीतते हैं, योगी पुरुषभी ध्यानयोगके द्वारा उनहीं पर-

ज्ञात्वा तस्य हृदिस्थं यत्तदशेषेण योगदृक् ॥ दशाननमुवाचेदं शृणु वक्ष्यामिं पुत्रक ॥ ३३ ॥ भर्ता यो जगतां नित्यं यस्य जन्मादिकं नहि ॥ सुरासुरैर्नुतो नित्यं हरिर्नारायणोऽव्ययः ॥ ३४ ॥ यन्नाभिपङ्कजाज्जातो ब्रह्मा विश्वसृजा पतिः ॥ सृष्टं येनैव सकल जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३५ ॥ तं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून् ॥ योगिना ध्यानयोगेन तमेवानुजपन्ति हि ॥३६॥ महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच दशाननः ॥ दैत्यदानवरक्षांसि विष्णुना निहतानि च ॥ ३७ ॥ कां वा गतिं प्रपद्यन्ते प्रेत्य ते मुनिपुङ्गव ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ दैवतैर्निहता नित्यं गत्वा स्वर्गमनुत्तमम् ॥ भोगक्षये पुनस्तस्माद्भ्रष्टा भूमौ भवन्ति ते ॥ ३९ ॥ पूर्वार्जितैः पुण्यपापैर्म्रियन्ते चोद्भवन्ति च ॥ विष्णुना ये हतास्ते तु प्राप्नुवन्ति हरेर्गतिम् ॥ ४० ॥

मात्माका ध्यान करते हैं ॥ ३६ ॥ इसप्रकार सनत्कुमारऋषीके वचनको सुनकर रावण फिर कहने लगा, कि हे मुनिश्रेष्ठ ! विष्णुभगवान्के हाथसे मरणको प्राप्त हुए दैत्य दानव और राक्षस किस गतिको प्राप्त होते हैं ? इसप्रकार कहनेपर तिस राक्षसपति रावणको सनत्कुमारमुनिने यह उत्तर दिया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ कि हे पुत्र ! देवताओंके हाथसे मरणको प्राप्तहुए दैत्य दानव उत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, और जब पुण्योंका भोग क्षीण हो जाताहै तब स्वर्गलोकसे गिरकर भूमिलोकपर जन्म लेते हैं ॥ ३९ ॥ फिर पूर्वजन्मोंमें करेहुए पुण्यपापोंके अनुसार मरणको प्राप्त होते हैं, और जन्म धारण करतेहैं, और जो विष्णु भगवान्के हस्ततीर्थमें मरणको प्राप्त होते हैं वह नारायणकी गतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् विष्णुलोकको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्त होकर मुक्त होजाते हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार सनत्कुमार मुनिके मुखसे अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनकर रावण अपने चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और वह विचार करने लगा, कि मैं विष्णुभगवान्‌के साथ युद्ध करूँगा ॥ ४१ ॥ रावणके मनकी इस वार्त्ताको योगबलसे जानकर सनत्कुमार मुनि बोले, कि हे पुत्र ! निःसन्देह तेरा मनोरथ पूर्ण होजायगा ॥ ४२ ॥ परंतु हे रावण ! कुछ कालपर्यन्त प्रतीक्षा करतेहुए सुखपूर्वक अपने नगरमें निवास करो, अगस्त्यमुनि कहते हैं, कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! इसप्रकार कहकर सनत्कुमार मुनि तिस रावणसे फिर कहने लगे ॥ ४३ ॥ कि हे रावण ! अरूप होकर भी मायाके आश्रयसे अनेक रूपोंको धारण करनेवाले तिन विष्णुभगवान्‌के अनेक रूपोंको तुम्हारे अर्थ वर्णन करताहूँ, सम्पूर्ण स्थावर,

श्रुत्वा मुनिमुखात्सर्वं रावणो हृष्टमानसः ॥ योत्स्येऽहं हरिणा सार्धमिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४१ ॥ मनःस्थितं परिज्ञात्वा रावणस्य महामुनिः ॥ उवाच वत्स तेऽभीष्टं भविष्यति न संशयः ॥ ४२ ॥ कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व सुखी भव दशानन ॥ एवमुक्त्वा महाबाहो मुनिः पुनरुवाच तम् ॥ ४३ ॥ तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि ह्यरूपस्यापि मायिनः ॥ स्थावरेषु च सर्वेषु नदेषु च नदीषु च ॥ ४४ ॥ ओङ्कारश्चैव सत्यं च सावित्री पृथिवी च सः ॥ समस्तजगदाधारः शेषरूपधरो हि सः ॥ ४५ ॥ सर्वे देवाः समुद्राश्च कालः सूर्यश्च चन्द्रमाः ॥ सूर्योदयो दिवारात्री यमश्चैव तथाऽनिलः ॥ ४६ ॥ अग्निरिन्द्रस्तथा मृत्युः पर्जन्यो वसवस्तथा ॥ ब्रह्मा रुद्रादयश्चैव ये चान्ये देवदानवाः ॥ ४७ ॥ विद्योतति ज्वलत्येष पाति चात्तीति विश्वकृत् ॥ क्रीडां करोत्यव्ययात्मा सोऽयं विष्णुः सनातनः ॥ ४८ ॥ तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः ॥ ४९ ॥

नद और नदीयोंके विष्णु उनहीकी सत्ता व्याप्त होरही है ॥ ४४ ॥ ॐकार, सत्य, सावित्री और पृथ्वीरूपकरके उनही नारायणकी प्रतीति होती है, सम्पूर्ण जगत्‌के आधार शेषरूप होकर भी वही परमात्मा प्रतीत होते हैं ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण देवता, चारों समुद्र, काल, सूर्य्य, चन्द्रमा, सूर्य्योदय, दिन, रात्रि, यम, वायु, अग्नि, इन्द्र, मृत्यु, मेघ, वसु, ब्रह्मा और रुद्र आदि जो कुछ देवता और दानव हैं सो सब परमात्माकाही विराट्‌रूप है ॥ ४६ ॥ ॥ ४७ ॥ वही सूर्य्यादिके विषे प्रकाश करता है, वही अग्निके विषे जाज्वल्यमान होता है, वही जगत्‌की रक्षा करता है, वही प्रलय करता है और वही विश्वकी रचना करनेवाला है, वही अविनाशी सनातन विष्णु भगवान् अनेक प्रकारसे क्रीड़ा करते हैं ॥ ४८ ॥ तिनहीकरके यह सम्पूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चराचर त्रिलोकी व्याप्त होरहा है, वही नीलकमलके दलके समान श्यामवर्ण विष्णुभगवान् पीताम्बर धारण करेहुए, तपेहुए निर्दोष सुवर्णके तुल्य कान्तिमती वांई ओर स्थित, सदा साथ रहनेवाली, लक्ष्मीदेवीको देखते रत्नजटित सिंहासनपर स्थित होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जिनकी ओरको देखनेको देव, दानव, नाग आदि समर्थ नहीं होते हैं; जिसके ऊपर उनकी प्रसन्नता होतीहै केवल वहही उनको देखसक्ता है ॥ ५१ ॥ यज्ञ, तप, दान, अध्ययन आदि उपायोंकरके, तथा अन्य उपायोंकरकेभी भगवान्का दर्शन नहीं होता है ॥ ५२ ॥ और तिन विष्णुभगवानके विषेही चित्त और प्राण लगानेवाले, पापरहित और वेदान्तशास्त्रके ज्ञानकरके निर्म्मल होगई है दृष्टि जिनकी ऐसे उनके भक्तही तिन विष्णुभगवान्का

शुद्धजाम्बूनदप्रख्यां श्रियं वामाङ्कसंस्थिताम् ॥ सदानपायिनीं देवीं पश्यन्नालिङ्ग्य तिष्ठति ॥ ५० ॥ द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ॥ यस्य प्रसादं कुरुते स चैवं द्रष्टुमर्हति ॥ ५१ ॥ न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभिः ॥ शक्यते भगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ॥ ५२ ॥ तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषैः ॥ शक्यते भगवान्विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभिः ॥ ५३ ॥ अथवा द्रष्टुमिच्छा ते शृणु त्वं परमेश्वरम् ॥ त्रेतायुगे स देवेशो भविता नृपविग्रहः ॥ ५४ ॥ हितार्थं देवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणां कुले हरिः ॥ रामो दाशरथिर्भूत्वा महासत्त्वपराक्रमः ॥ ५५ ॥ पितुर्नियोगात्स भ्रात्रा भार्यया दण्डके वने ॥ विचरिष्यति धर्मात्मा जगन्मात्रा स्वमायया ॥ ५६ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण विस्तरात् ॥ भजस्व भक्तिभावेन सदा रामं श्रिया युतम् ॥ ५७ ॥ एवं श्रुत्वाऽसुराध्यक्षो ध्यात्वा किञ्चिद्विचार्य च ॥ त्वया सह विरोधेप्सुर्मुमुदे रावणो महान् ॥ ५८ ॥

दर्शन करनेको समर्थ होते हैं ॥ ५३ ॥ अथवा हे रावण ! परमेश्वरका दर्शन करनेकी तेरी इच्छा है तो सुन, वही देवाधिदेव त्रेतायुगमें राजाका शरीर धारण करैंगे ॥ ५४ ॥ देवता और मनुष्योंके हितके अर्थ विष्णु भगवान् इक्ष्वाकुवंशमें श्रीरामचन्द्रनामक दशरथके पुत्र होकर महाबली और परमपराक्रमी होयँगे ॥ ५५ ॥ वह परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे भ्राता लक्ष्मण और जगत्का माता मायारूप अपनी स्त्री सीतासहित दण्डकारण्यमें विचरैंगे ॥ ५६ ॥ हे रावण ! इसप्रकार सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने विस्तारपूर्वक तेरे अर्थ वर्णन किया, सो अब तुम भक्तिभावसे लक्ष्मीरूप जानकीकरके युक्त श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ ५७ ॥ अगस्त्यमुनि कहते हैं, कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! राव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णने इसप्रकार सनत्कुमारमुनिके वचनको सुनकर कुछकालपर्य्यन्त विचार और ध्यान करके आपके साथ विरोध करनेकी इच्छा करताहुआ परम आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ और युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ सब लोकोंमें विचारता रहा, सो हे महाराज ! इस प्रयोजनके लियेही अर्थात् केवल आपके हाथसे अपने वधकी इच्छा करके परमबुद्धिमान् रावण जानकीको हरकर लेगया ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य इस कथाको सदा सुनैगा, पढ़ैगा अथवा जो सुननेकी इच्छा करनेवालोंको सुनावैगा वह आयु, आरोग्य, अनन्तसुख और अक्षयधनको प्राप्त होयगा ॥ ६० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवाद उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

युद्धार्थी सर्वतो लोकान् पर्यटन् समवस्थितः ॥ एतदर्थं महाराज रावणोऽतीव बुद्धिमान् ॥ हृतवान् जानकीं देवीं त्वयात्मवधकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥ इमां कथां यः शृणुयात्पठेद्वा संश्रावयेद्वा श्रवणार्थिनां सदा ॥ आयुष्यमारोग्यमनन्तसौख्यं प्राप्नोति लाभं धनमक्षयं च ॥६० ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणो लोकादायान्तं नारदं मुनिम् ॥ पर्यटन् रावणो लोकान्दृष्ट्वा नत्वाब्रवीद्वचः ॥ १ ॥ भगवन्ब्रूहि मे योद्धुं कुत्र सन्ति महाबलाः ॥ योद्धमिच्छामि बलिभिस्त्वं ज्ञातासि जगत्त्रयम् ॥ २ ॥ मुनिर्ध्यात्वाह सुचिरं श्वेतद्विपनिवासिनः ॥ महाबला महाकायास्तत्र याहि महामते ॥ ३ ॥ विष्णुपूजारता ये वै विष्णुना निहताश्च ये ॥ त एव तत्र सञ्जाता अजेयाश्च सुरासुरैः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! एकसमय लोकोंमें फिरताहुआ रावण ब्रह्मलोकसे आतेहुए नारदमुनिको देखकर प्रणाम करके यह वचन बोला ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! युद्ध करनेको समर्थ महाबली कहाँ है ? मुझे बलवानोंसे युद्ध करनेकी इच्छा है, और आप त्रिलोकीके सम्पूर्ण प्राणियोंको जानते हो ॥ २ ॥ इसप्रकार रावणके कहनेपर नारदमुनि बहुतकालपर्य्यन्त ध्यान करके कहनेलगे कि हे महामति रावण ! श्वेतद्वीपके निवास करनेवाले महाबली और बड़े २ शरीरधारी हैं सो तुम तिस श्वेतद्वीपमें जाओ ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्का पूजन करते थे, और जो विष्णु भगवान्के हाथसे मरणको प्राप्त हुए, वही तिस श्वेतद्वीपके विषे उत्पन्न हुए हैं, और उनको देव दानव कोई नहीं जीत सक्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है ॥ ४ ॥ इसप्रकार नारदजीके वचनको सुनकर रावण मंन्त्रियों सहित पुष्पकविमानमें बैठकर शीघ्रही युद्ध करनेकी इच्छासे श्वेतद्वीपके समीप आया ॥ ५ ॥ तहाँ आतेही तिसपुष्पक विमानकी कान्ति नष्ट होगई, और तहाँसे आगे को नहीं चलसका, सो रावण विमानको और मन्त्रियोंको तहाँही छोडकर इकला चलदिया ॥ ६ ॥ और ज्योंही, श्वेतद्वीपमें घुसा सो एक स्त्रीने पकड लिया और बूझने लगी, कि तुम कहाँसे आया है ? कौन जाति है, ? और तुझे किसने भेजा है ? सो बता ॥ ७ ॥ इसप्रकार वारंवार लीलाकरके हँसतीहुई स्त्रियोंने इससे बूझा, परंतु कुछ उत्तर नहीं दिया, और रावण बडी कठिनसे उन स्त्रियोंसे छूटा ॥ ८ ॥ और अत्यन्त आश्चर्य्यको प्राप्त होकर यह दुष्टात्मा रावण विचार करने लगा

श्रुत्वा तद्रावणो वेगान्मन्त्रिभिः पुष्पकेण तान् ॥ योद्धुकामः समागत्य श्वेतद्वीपसमीपतः ॥ ५ ॥ तत्प्रभाहततेजस्कं पुष्पकं नाचलत्ततः ॥ त्यक्त्वा विमानं प्रययौ मन्त्रिणश्च दशाननः ॥ ६ ॥ प्रविशन्नेव तद्द्वीपं धृतो हस्तेन योषिता ॥ पृष्टश्च त्वं कुतः कोऽसि प्रेषितः केन वा वद ॥ ७ ॥ इत्युक्तो लीलया स्त्रीभिर्हसन्तीभिः पुनः पुनः ॥ कृच्छ्राद्धस्ताद्विनिर्मुक्तस्तासां स्त्रीणां दशाननः ॥ ८ ॥ आश्चर्यमतुलं लब्ध्वा चिन्तयामास दुर्मतिः ॥ विष्णुना निहतो यामि वैकुण्ठमिति निश्चितः ॥ ९ ॥ मयि विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्यं करोम्यहम् ॥ इति निश्चित्य वैदेहीं जहार विपिनेऽसुरः ॥ १० ॥ जानन्नेव परात्मानं स जहारावनीसुताम् ॥ मातृवत्पालयामास त्वत्तः काङ्क्षन्वधं स्वकम् ॥ ११ ॥ राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं जानासि विज्ञानदृक् भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलनासाक्षीविकल्पोज्झितः ॥ भक्तानामनुवर्तनाय सकलां कुर्वन् क्रियासंहतिं त्वाश्रृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचो भासीश लोकार्चितः ॥ १२ ॥

और विचार करते करते अन्तमें यह निश्चय करलिया कि मैं विष्णुभगवान्के हाथसे मरणको प्राप्त होकर वैकुण्ठलोकको प्राप्त होऊँगा ॥ ९ ॥ सो जिसप्रकार विष्णुभगवान् मेरे ऊपर कोप करैं सो यत्न करूँ, ऐसा निश्चयकरके उस राक्षसने वनमें जानकीको हर लिया ॥ १० ॥ उसने आपके परमात्मस्वरूपको जानकर भी सीताको हरा, और आपके हाथसे अपने वधकी इच्छाकरके जानकीजीको माताके समान पालन करतारहा ॥ ११ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप परमेश्वर हैं, और ज्ञानदृष्टिसे भूत-भविष्यत्-वर्तमानरूप तीनों कालके पदार्थोंको जानते हो, और भेदरहित सबके साक्षीरूप हो, हे ईश ! अपने चरित्रोंका कीर्तन आदि करनेसे भक्तोंके पापोंको दूर करनेके निमित्त मुनियोंके वचनोंको सुनतेहुए यज्ञ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि क्रिया करते हो, सब लोकोंकरके पूजित होतेहो, और तुमही सबके अन्तर्यामीरूप होकर प्रकाशित होते हो ॥ १२ ॥ इसप्रकार रघुनाथजीकी स्तुति करके तिनसे सत्कारको प्राप्त हुए अगस्त्यमुनि प्रसन्न चित्त होकर मुनियों सहित अपने आश्रमको चले गए ॥ १३ ॥ और लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीभी सीता और चारों भ्राता तथा मंत्रियोंसहित संसारी पुरुषके समान रमण करते हुए अपने स्थानगृहमें निवास करते रहे ॥ १४ ॥ हनुमानआदि श्रेष्ठ वानरोंकरके युक्त और प्रिया (सीता) सहित श्रीरामचन्द्रजी आसक्तिरहित होकर विषयोंको भोगने लगे ॥ १५ ॥ एकसमय प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पास पहिलेके समान पुष्पक विमान आया और कहने लगा, कि हे देव !

स्तुत्वैवं राघवं तेन पूजितः कुम्भसम्भवः ॥ स्वाश्रमं मुनिभिः सार्धं प्रययौ हृष्टमानसः ॥ १३ ॥ रामस्तु सीतया सार्धं भ्रातृभिः सह मन्त्रिभिः ॥ संसारीव रमानाथो रममाणोऽवसद्गृहे ॥ १४ ॥ अनासक्तोऽपि विषयान्बुभुजे प्रियया सह ॥ हनुमत्प्रमुखैः सद्भिर्वानरैः परिवेष्टितः ॥ १५ ॥ पुष्पकं चागमद्राममेकदा पूर्ववत्प्रभुम् ॥ प्राह देव कुबेरेण प्रेषितं त्वामहं ततः ॥ १६ ॥ जितं त्वं रावणेनादौ पश्चाद्रामेण निर्जितम् ॥ अतस्त्वं राघवं नित्यं वह यावद्वसेद्भुवि ॥ १७ ॥ यदा गच्छेद्रघुश्रेष्ठो वैकुण्ठं याहि मां तदा ॥ तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह पुष्पकं सूर्यसन्निभम् ॥ १८ ॥ यदा स्मरामि भद्रं ते तदागच्छ ममान्तिकम् ॥ तिष्ठान्तर्धाय सर्वत्र गच्छेदानीं ममाज्ञया ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा रामचन्द्रोऽपि पौरकार्याणि सर्वशः ॥ भ्रातृभिर्मन्त्रिभिः सार्धं यथान्यायं चकार सः ॥ २० ॥ राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ ॥ वसुधा सस्य संपन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः ॥ २१ ॥

मुझे कुबेरने भेजा है और यह कह दिया है ॥ १६ ॥ कि तुझे पहिले रावणने जीतलिया था, फिर उससे श्रीरामचन्द्रजीने जीत लिया, सो जबतक श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वीपर निवास करैं तबतक उनकोही सवारी दे ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजी वैकुण्ठको चलेजाँय तब मेरे पास आना, इसप्रकार कहनेको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सूर्य्यके समान प्रकाशवान् तिस विमानसे बोले ॥ १८ ॥ कि हे पुष्पक ! तुम्हारा कल्याण होय, जिस समय मैं स्मरण कराकरूँ तब मेरे पास आजाया करो, और अब मेरी आज्ञासे जाओ, तथा सर्वत्र अन्तर्धान होकर रहाकरो ॥ १९ ॥ इसप्रकार कहकर श्रीरामचन्द्रजी भ्राता और मंत्रियोंसहित नीति और शास्त्रके अनुसार पुरवासियोंके सम्पूर्ण कार्य्य करने लगे ॥ २० ॥ त्रिलोकीनाथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मीपति श्रीरामचन्द्रजीके पृथ्वीको रक्षा करते समय पृथ्वी धान्यसम्पत्ति करके युक्त हुई, और वृक्ष फलोंकरके युक्त हुए ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण पुरुष धर्म्म-तत्पर थे, स्त्रियें पतिकी सेवा करनेमें तत्पर थीं, श्रीरामचन्द्रजीके राज्य करनेके समय कोई पुत्रका मरण नहीं देखता था ॥ २२ ॥ सीता और हनुमान् आदि वानर तथा भ्राताओंसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अत्युत्तम पुष्पक विमानपर चढ़के पृथ्वीपर विचरते रहे ॥ २३ ॥ और पृथ्वीपर बहुतसे अमानुष (जो मनुष्योंसे न होसकैं ऐसे) चरित्र करे, एकसमय किसी ब्राह्मणके पुत्रकी अकालमृत्यु देखकर और उस ब्राह्मणको शोक करताहुआ जानकर परमबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने वनमें तप करतेहुए शूद्रका वध करके ब्राह्मणके बालकको जीवित किया और उस शूद्रको

जना धर्मपराः सर्वे पतिभक्तिपराः स्त्रियः ॥ नापश्यत्पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे ॥ २२ ॥ समारुह्य विमानाग्र्यं राघवः सीतया सह ॥ वानरैर्भ्रातृभिः सार्धं सञ्चचारावनिं प्रभुः ॥ २३ ॥ अमानुषाणि कार्याणि चकार बहुशो भुवि ॥ ब्राह्मणस्य सुतं दृष्ट्वा बालं मृतमकालतः ॥ २४ ॥ शोचन्तं ब्राह्मणं चापि ज्ञात्वा रामो महामतिः ॥ तपस्यन्तं वने शूद्रं हत्वा ब्राह्मणबालकम् ॥ २५ ॥ जीवयामास शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम् ॥ लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः ॥ २६ ॥ कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सर्वशः ॥ सीता च रमयामास सर्वभोगैरमानुषैः ॥ २७ ॥ शशास रामो धर्मेण राज्यं परमधर्मवित् ॥ कथां संस्थापयामास सर्वलोकमलापहाम् ॥ २८ ॥ दशवर्षसहस्राणि मायामानुषविग्रहः ॥ चकार राज्यं विधिवल्लोकवन्द्यपदाम्बुजः ॥ २९ ॥ एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः ॥ गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान् ॥ ३० ॥

उत्तम स्वर्गलोक दिया; तदनन्तर परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीने लोकोंको उपदेश देनेके निमित्त सर्वत्र करोड़ों शिवलिङ्गकी स्थापना करी, और सबप्रकारके दिव्य भोगोंकरके श्रीरामचन्द्रजी सीताजीका मन प्रसन्न करते रहे ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ परम धर्म्मको जाननेवाले श्रीरामचंद्रजी धर्म्मपूर्वक राज्यकी रक्षा करतेहुए लोगोंके पापोंको नष्ट करनेवाली अपनी कथाको स्थित करतेहुए ॥ २८ ॥ लोगोंके प्रणाम करनेयोग्य हैं चरणकमल जिनके ऐसे मायाकरके मनुष्यशरीर धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी दशहजारपर्य्यन्त विधिपूर्वक राज्य करतेरहे ॥ २९ ॥ एकपत्नीव्रतको धारण करेहुए अर्थात् अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीके विषे जिनका स्वप्नमेंभी मन नहीं गया है ऐसे सदा पवित्र राजर्षि श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण प्रा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णियोंको शिक्षा देतेहुए गृहस्थोंके धर्म्मका आचरण करतेरहे ॥ ३० ॥ और सीताजीभी प्रेम तथा अनुकूल आचरणकरके इन्द्रियोंके दमनपूर्वक नम्रतासे और लज्जासे तथा भयसे सदा प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानतीहुई पातिव्रत्यमें तत्पर होकर श्रीरामचन्द्रजीके मनको हरण करती रहीं ॥ ३१ ॥ एकसमय क्रीड़ा करनेकी वाटिकामें एकान्तमें बनेहुए भोगोंकरके युक्त दिव्य मन्दिरमें बैठेहुए, नीलमणिके समान श्यामवर्ण, दिव्य आभूषणोंको धारण करेहुए, प्रसन्नमुख, शान्तस्वरूप, बिजलीके समूहके समान पीतांबर धारण करेहुए, रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी चरणकमलोंको अपने हाथोंसे दाबतीहुई कमलपत्रके समान नेत्रवाली और सम्पूर्ण आभूषणोंकरके भूषित सीताजी इसप्रकार कहने लगीं ॥ ३२ ॥

सीता प्रेम्णाऽनुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च ॥ भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया ॥ ३१ ॥ एकदाक्रीडविपिने सर्वभोगसमन्विते ॥ एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम् ॥ ३२ ॥ नीलमाणिक्यसंकाशं दिव्याभरणभूषितम् ॥ प्रसन्नवदनं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ॥ ३३ ॥ सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता ॥ राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे ॥ ३४ ॥ देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन ॥ चिदानन्दादिमध्यान्तरहिताशेषकारण ॥ ३५ ॥ देव देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन्वचः ॥ बहुशोऽर्थयमानास्ते वैकुण्ठागमनं प्रति ॥ ३६ ॥ त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले ॥ विसृज्यास्मान्स्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम् ॥ ३७ ॥ आस्ते त्वया जगद्धात्रि रामः कमललोचनः ॥ अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद्रघूत्तमः ॥ ३८ ॥ आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथान्नः करिष्यति ॥ इति विज्ञापिताहं तैर्मया विज्ञापितो भवान् ॥ ३९ ॥

॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कि हे देव ! जगन्नाथ ! परमात्मन् ! सनातन ! चैतन्य और आनन्दस्वरूप ! आदिमध्यअन्तरहित ! सर्वकारण ! श्रीरामचन्द्रजी ! ॥ ३५ ॥ हे देव ! सम्पूर्ण देवताओंने एकान्तमें मेरे पास आकर आपके वैकुण्ठलोकको आनेके निमित्त अनेक प्रकारसे बहुतही प्रार्थना करी है, और मुझसे यह बचन कहा ॥ ३६ ॥ कि हे सीते ! तुझ चित्शक्तिसहित श्रीरामचन्द्रजी हमको और अपने सनातन वैकुण्ठधामको त्यागकर पृथ्वीपर स्थित हैं ॥ ३७ ॥ हे जगन्मातः ! तुम्हारे कारणसेही कमलनेत्र श्रीरामचन्द्रजी पृथ्वीपर हैं, सो तुम पहिलेही वैकुण्ठलोकको चलीजाओ, तब रघुनाथजीभी वैकुण्ठलोकको आजायँगे, और हम सबोंको सनाथ करैंगे, इसप्रकार देवताओंने मुझसे प्रार्थना करी है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोई मैंने आपको निवेदन करदिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ अब आप जैसा उचित हो वैसा करैं, मैं आपको आज्ञा नहीं करतीहूँ. इसप्रकार सीताजीके वचनको सुनकर श्रीरामचंद्रजी क्षणमात्र ध्यान करके कहनेलगे ॥ ४० ॥ हे देवि ! मैं सब जानताहूँ, सो इस विषयमें मैं तुम्हैं एक उपाय बताताहूँ, हे देवि ! तेरे विषयके लोकापवादका बहाना रचकर, जिसप्रकार कोई संसारी पुरुष लोकापवादसे भयभीत होकर अपनी स्त्रीको त्याग देय, तिसीप्रकार मैं तुझे वनमें त्याग दूँगा, और वाल्मीकिके आश्रममें तेरे दो पुत्र उत्पन्न होयँगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ क्योंकि अब तुम्हारे शरीरमें गर्भके चिन्ह प्रतीत होही रहे हैं, पुत्र उत्पन्न होनेके अनन्तर तुम मेरे पास फिर आकर लोगोंको विश्वास दिलानेके निमित्त आदरपूर्वक शपथ करके पृथ्वीके छि-

यद्युक्तं तत्कुरुष्वाद्य नाहमाज्ञापयें प्रभो ॥ सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाऽब्रवीत्क्षणम् ॥ ४० ॥ देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते ॥ कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम् ॥ ४१ ॥ त्यजामि त्वा वने लोकवादाद्भीत इवापरः ॥ भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥ ४२ ॥ इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ॥ लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात् ॥ ४३ ॥ भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम् ॥ पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा तां विसृज्याथ रामो ज्ञानैकलक्षणः ॥ मन्त्रिभिर्मन्त्रतत्त्वज्ञैर्बलमुख्यैश्च संवृतः ॥ ४५ ॥ तत्रोपविष्टं श्रीरामं सुहृदः पर्युपासत ॥ हास्यप्रौढकथासुज्ञा हासयन्तः स्थिता हरिम् ॥ ४६ ॥ कथाप्रसङ्गात्पप्रच्छ रामो विजयनामकम् ॥ पौरा जानपदा मे किं वदन्तीह शुभाशुभम् ॥ ४७ ॥ सीतां वा मातरं वा मे भ्रातॄन्वा कैकयीमथ ॥ न भेतव्यं त्वया ब्रूहि शापितोऽसि ममोपरि ॥ ४८ ॥

द्रके द्वारा तुम वैकुण्ठलोकको जाओगी, तदनन्तर मैं भी शीघ्रही वैकुण्ठलोकको आऊँगा, बस अब यहही मेरा निश्चय है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसप्रकार कहकर और तिन सीताजीको तिस स्थानपरही छोड़कर ज्ञानैकस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी संमतिके तत्त्वको जाननेवाले मंत्रियोंकरके और मुख्य सेनापतियोंसहित सभामें आकर बैठे ॥ ४५ ॥ तहां राज्यसिंहासनपर बैठेहुए श्रीरामचन्द्रजीको हास्यविषयमें अति प्रवीण और अनेक प्रकारकी कथाओंको जाननेवाले मित्रगण हास्यके द्वारा प्रसन्न करतेहुए समिपमें बैठगए ॥ ४६ ॥ वार्त्ता करते करते प्रसङ्गसे श्रीरामचन्द्रजीने विजयनामक अपने दूतसे बूझा, कि नगरके पुरुष और देश (इलाके) के पुरुष मेरी किसप्रकारसे भलाई बुराई कहते हैं ? ॥ ४७ ॥ सीताके विषयमें, मेरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माताके विषयमें, भ्राताओंके विषयमें अथवा कैकेयीके विषयमें लोग क्या क्या कहतेहैं ? सो निर्भय होकर ठीक ठीक कहदो, तुम्हैं मेरी शपथ है ॥ ४८ ॥ इसप्रकार कहनेपर विजय बोला, कि हे देव ! आपके विषयमें तो सब लोग यह कहतेहैं, कि आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजीने जो कुछभी कार्य्य किया, वह अन्यसे कदापि नहीं होसक्ता ॥ ४९ ॥ परन्तु एक कार्य्य अच्छा नहीं किया, कि रावणका वध करके सीताको घरमें लेआए और सीताके उपर बिलकुल क्रोध नहीं किया ॥ ५० ॥ उन श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें सीताके सम्भोगका सुख कैसा होताहोगा ? यह हम नहीं कहसक्ते. जो दुष्टात्मा रावण वनमें सीताको हरकर लेगया, तिसपर भी श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको घरमें रखलिया और किसीप्रकारका संदेह नहीं किया ॥ ५१ ॥ तौ अब यदि हमारी स्त्रीयें भी किसीप्रकारका कुकर्म्म कर आवैंगी तौ हम सबोंको सहना पड़ैगा, क्योंकि लोककी कहावत है कि "यथा राजा तथा प्रजा" अर्थात् जैसा राजा होता है वैसीही प्रजाभी होती है ॥ ५२ ॥ उस विजयदूतके इस कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने मंत्री आदिसे बूझा. वहभी प्रणाम करके कहनेलगे, कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह जो कुछ विजयने कहा है सो निःसन्देह ठीक है ॥ ५३ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने मंत्रियोंको और विजयदूतको तथा मित्रगणोंको तौ विदा करदिया, और लक्ष्मणजीको बुलाकर श्रीरामचन्द्रजी यह बचन बोले ॥ ५४ ॥ कि हे भ्रातः ! सीताके कारणसे मेरा बडाभारी लोकापवाद हो रहा है, सो तुम कल प्रातःकाल सीताको रणवासमेंसे निकालकर रथमें बैठाय शीघ्रही वाल्मीकि ऋषिके आश्रमके समीप छोड़कर लौटआओ, यदि अब तुम इसविषयमें कुछ कहोगे तो तुमको मेरा प्राणान्त करनेकी हत्या

इत्युक्तः प्राह विजयो देव सर्वे वदन्ति ते ॥ कृतं सुदुष्करं सर्वं रामेण विदितात्मना ॥ ४९ ॥ किन्तु हत्वा दशग्रीवं सीतामाहृत्य राघवः ॥ अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा स्वं वेश्म प्रत्यपादयत् ॥ ५० ॥ कीदृशं हृदये तस्य सीतासम्भोगजं सुखम् ॥ या हृता विजनेऽरण्ये रावणेन दुरात्मना ॥ ५१ ॥ अस्माकमपि दुष्कर्म योषितां मर्षणं भवेत् ॥ यादृक् भवति वै राजा तादृश्यो नियतं प्रजाः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं रामः स्वजनान्पर्यपृच्छत ॥ तेऽपि नत्वाऽब्रुवन् राममेवमेतन्न संशयः ॥ ५३ ॥ ततो विसृज्य सचिवान्विजयं सुहृदस्तथा ॥ आहूय लक्ष्मणं रामो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मेऽभवत् ॥ सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमान्तिके ॥ ५५ ॥ त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण ॥ वक्ष्यसे यदि वा किञ्चित्तदा मां हतवानसि ॥ ५६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगैगी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कहनेसे भयभीत हो लक्ष्मणजी प्रातःकालही उठे और सुमन्त्रके द्वारा रथको मँगवाकर और जानकीजीको उस रथपर बैठाकर शीघ्रही बनको चलेगए ॥ ५७ ॥ और वाल्मीकिऋषिके आश्रमके समीप सीताजीको छोड़कर, कहनेलगे कि हे मातः ! लोकापवादके भयसे रघुनाथजीने तुम्है वनमें त्याग दिया है ॥ ५८ ॥ हे मातः ! इसमें मेरा किसीप्रकारका दोष नहीं है, अब तुम वाल्मीकिऋषिके आश्रममें चलीजाओ, इसप्रकार कहकर लक्ष्मणजी शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीके समीप चलेगए ॥ ५९ ॥ सीताजीभी अति अज्ञानी पुरुषके समान दुःखित होकर विलाप करनेलगी, सो वाल्मीकि मुनिने शिष्योंसे सुना कि कोई स्त्री विलाप कर रही है, सो उन मुनिने ज्ञानदृष्टिसे जाना कि

इत्युक्तो लक्ष्मणो भीत्या प्रातरुत्थाय जानकीम् ॥ सुमन्त्रेण रथे कृत्वा जगाम सहसा वनम् ॥ ५७ ॥ वाल्मीकेराश्रमस्यान्ते त्यक्त्वा सीतामुवाच सः ॥ लोकापवादभीत्या त्वां त्यक्तवान् राघवो वने ॥५८॥ दोषो न कश्चिन्मे मातर्गच्छाश्रमपदं मुनेः ॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणः शीघ्रं गतवान् रामसन्निधिम् ॥ ५९ ॥ सीताऽपि दुःखसन्तप्ता विललापातिमुग्धवत् ॥ शिष्यैः श्रुत्वा च वाल्मीकिः सीतां ज्ञात्वा स दिव्यदृक् ॥ ६० ॥ अर्घ्यादिभिः पूजयित्वा समाश्वास्य च जानकीम् ॥ ज्ञात्वा भविष्यं सकलमार्पयन्मुनियोषिताम् ॥ ६१ ॥ तास्तां संपूजयन्तिस्म सीतां भक्त्या दिने दिने ॥ ज्ञात्वा परात्मनो लक्ष्मीं मुनिवाक्येन योषितः ॥ सेवां चक्रुः सदा तस्या विनयादिभिरादरात् ॥ ६२ ॥ रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः ॥ सन्त्यज्य भोगानखिलान्विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः ॥ ॥ ६३ ॥ इति श्रीम० रा० उमामहेश्वरसं० उत्तरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

जानकी हैं ॥ ६० ॥ सो मुनिने आनकर अर्घ्यपाद्यादिसे पूजन किया और जानकीजीको समझाया, और ज्ञानदृष्टिसे सम्पूर्ण भविष्यको जानकर सीताजीको मुनियोंकी स्त्रियोंके अर्थ सौंपदिया ॥ ६१ ॥ वह मुनियोंकी स्त्रियें प्रतिदिन भक्तिपूर्वक तिन सीताजीका सत्कार करती रहीं; उन स्त्रियोंने वाल्मीकि मुनिसे सुनलिया था कि यह जानकीजी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी लक्ष्मी हैं, सो वह स्त्रियें सदा नम्रतापूर्वक परम आदरसे तिन जानकीजीकी सेवा करनेलगीं ॥ ६२ ॥ इधर सीताकरके रहित, आदिदेव, ज्ञानदृष्टि, परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी भी सम्पूर्ण भोगोंको त्यागकर विरक्त होकर मुनियोंके व्रतको धारण करतेहुए, यद्यपि वह परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी मुनियोंकरके सेवन कियेगए हैं चरणकमल जिनके ऐसे थे, तथापि उन्होंने लोगोंको शिक्षा देनेके निमित्त मुनियोंका व्रत धारण करलिया ॥ ६३ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! तदनन्तर श्रीरामचंद्रजी जगत्के मंगलोंकाभी मंगल करनेवाली अर्थात् जगत्मंगल जो विषयोंके आनन्द तिनको सत्ता देनेवाली अपनी मूर्तिकरके उत्तम कहिये श्रवण करनेवालोंको मोक्षफल देनेवाली, और वाल्मीकि आदिके रचेहुए अनेक रामायणग्रंथोंको पवित्र करनेवाली, रावणवध आदिसे उत्पन्न हुई अपनी कीर्तिको त्रिलोकीमें फैलाकर रघुकुलशिरोमणी श्रीरामचन्द्रजी सीताका परित्याग करनेके अनंतर अपने वंशके इक्ष्वाकुआदि श्रेष्ठ राजर्षियोंके अनुसार प्रजापालन, धर्म्मानुष्ठान और सत्कथाओंका श्रवण आदि जो सदाचार तिसका सेवन करनेलगे ॥ १ ॥ एकसमय गुरु और देवताओंके विषे विश्वास करने-

॥ महादेव उवाच ॥ ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम् ॥ चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा ॥ १ ॥ सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ॥ राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥ २ ॥ कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं रामं रमालालितपादपङ्कजम् ॥ सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥ त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम् ॥ प्रतीयसे ज्ञानदृशा महामते पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम् ॥ ४ ॥

वाली है बुद्धि जिनकी ऐसे लक्ष्मणजीने प्रश्न किया तब श्रीरामचंद्रजी धर्म्मका निर्णय करनेवाली प्राचीन राजाओंकी शुभ कथा कहनेलगे; फिर विना जाने एक गौको दो ब्राह्मणोंके अर्थ दान करनेके अनंतर उन दोनों ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाकोभी न सुनकर ब्राह्मणके शापसे गिरगिटकी योनिको प्राप्त होनेवाले राजा नृगकी कथा लक्ष्मणजीको सुनाकर श्रीरामचन्द्रजीने यह सूचित किया कि विना जानेभी ब्राह्मणका धन लेनेसे परम धर्मात्मा पुरुषकी भी राजा नृगके समान अत्यन्त दुर्दशा होती है ॥ २ ॥ एकसमय शुद्धअन्तःकरणवाले लक्ष्मणजीने लक्ष्मीकरके सेवित हैं चरणकमल जिनके ऐसे एकान्तमें बैठेहुए श्रीरामचंद्रजीके पास जाकर तिनको गुरुबुद्धिसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करके नम्रतापूर्वक यह वचन कहा ॥ ३ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी ! हे महामते ! आप शुद्ध बोध कहिये निर्म्मल ज्ञानस्वरूप हो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हो, और अंतर्यामीरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेरक हो, और जीवोंके समान कर्म्माधीन जो देह तिसकरके रहित हो, अर्थात् मायाके वशीभूत न होकर अपनी इच्छासे ही मनुष्यशरीर धारण करते हो, ऐसे आपके ज्ञानस्वरूपको सर्वसाधारण पुरुष नहीं जानसक्ते हैं, किन्तु चरणोंमें भ्रमरके समान अपने अंतःकरणको समर्पण करने वाले आपके भक्तोंके सत्संगको करनेवाले ज्ञानदृष्टि पुरुषही आपका वास्तविक ज्ञानस्वरूपके जाननेको समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥ और हे भगवन् ! योगियोंकरके संसारबंधनसे छूटनेके निमित्त ध्यान करेहुए संसारबन्धसे छुटानेवाले आपके चरणकमलकी मैं शरणागत हूँ, हे भगवन् ! संसारके मूल कारण अपार समुद्ररूप अज्ञानसे जिसप्रकार मैं सुखपूर्वक पार होजाऊं, तिसप्रकार मुझे शिक्षा दीजिये ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हे पार्वति ! अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करनेके निमित्त (तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति । नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय) उस परमात्माको ही जान

अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो भवापवर्गं तव योगिभावितम् ॥ यथाञ्जसा ज्ञानमपारवारिधिं सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥ ५ ॥ श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ॥ विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तये श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥ आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ॥ समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥ क्रिया शरीरोद्भवहेतुराहृता प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ॥ धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥

कर पुरुष संसाररूपी मृत्युके पार होता है, आत्मज्ञानके सिवाय और कोई मार्ग मुक्तिको प्राप्त होनेके निमित्त नहीं है, इत्यादि श्रुतियोंकरके वर्णन कियाहुआ आत्मतत्त्वज्ञान लक्ष्मणजीके अर्थ वर्णन करनेलगे ॥ ६ ॥ तहाँ प्रथम तिस आत्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ क्रमसे बहिरंग और अंतरंग साधनोंको कहते हैं कि मुमुक्षु पुरुष प्रथम अपने वर्ण और आश्रमके विषें शास्त्रने वर्णन करीहुई नित्य नैमित्तिक यज्ञदानआदिरूप क्रियाओंको करके अंतःकरणको शुद्ध करै, तदनंतर तिन क्रियाओंको करताहुआही शमदमादि साधनोंकी प्राप्ति करै, तदनंतर कर्म्मानुष्ठानको त्यागकर अर्थात् संन्यास लेकर आत्मज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंके अर्थका विचार करनेके लिये वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी गुरुके समीप जाय ॥ ७ ॥ अब इस विषयका निरूपण करते हैं कि संसार घूमतेहुए चक्रके समान है और अपने कारणरूप अज्ञानके दूर होनेसे दूर होताहै, और अज्ञानकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्ति केवल तत्त्वज्ञानसेही होसक्ती है और तत्त्वज्ञान 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्तवाक्योंके विचार करनेसे प्राप्त होताहै, और वह विचार गुरुकी कृपासे ही होताहै, श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण! यह संसार चक्रके समान कहाता है, प्रीतिपूर्वक पूर्वजन्ममें कियेहुए कर्म्महो इस शरीरके जन्मका कारण है, सो पूर्वजन्मोंके कर्मोंके अनुसार प्राप्त हुए जन्ममें विषयोंकी अभिलाष करनेवाले पुरुषको शास्त्रमें कहेहुए धर्म्म अधर्म्म सुख और दुःख देते हैं, तब किसीकी अधर्म्ममें और किसीकी धर्म्ममें प्रवृत्ति होती है, इसप्रकार तिस जन्ममेंभी उत्पन्न हुए कर्म्मोंसे फिर शरीर होता है और उस शरीरको धारण करके जीव फिर कर्म्म करता है, इसप्रकार प्राणी संसारचक्रमें घूमता रहता है, जिसप्रकार गाड़ीके पहियेका कभी ऊपरका भाग नीचे आजाता है और कभी नीचेका भाग ऊपर चलाजाता है इसीप्रकार इस संसारचक्रमें घूमताहुआ जीव कभी पुण्यके प्रतापसे ऊपरके लोकोंमें जाता है और कभी पापकर्म्मोंके प्रभावसे नीचेके लोकोंमें जाता है ॥ ८ ॥ और हे लक्ष्मण! अज्ञानही

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते ॥ विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥ ९ ॥ नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवे ॥ ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत् ॥ १० ॥

इस संसारका मूलकारण है, इसकारण संसारकी निवृत्ति करनेके निमित्त अज्ञानका नाशही साधनरूप होता है, तिस अज्ञानके दूर करनेको ज्ञानही समर्थ होता है कर्म्म नहीं, क्योंकि कर्म्म अज्ञानसेही उत्पन्न होते हैं, इसकारण कर्म्मका और अज्ञानका विरोध अर्थात् परस्पर प्रतिबंधकताभाव नहीं है, और जिससे जिसका विरोध होता है वही उसका नाश करसक्ता है इसप्रकार शास्त्रोंमें कहा है, इसकारण ज्ञान और अज्ञान इन दोनोंका विरोध होनेसे ज्ञानही अज्ञानको नष्ट करसक्ता है ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण! कर्म्म और अज्ञानका परस्पर विरोध न होनेके कारणही तिस कर्म्मानुष्ठानसे न अज्ञानका नाश होता है, और न राग कहिये विषयोंकी आसक्ति दूर होती है, किन्तु कर्म्म करनेसे और उलटा क्षणभंगुर फलका देनेवाला दोषयुक्त कर्म्मही उत्पन्न होता है, और उस कर्म्मसे फिर जन्ममरणरूप संसारकी प्राप्ति होती है अर्थात् कर्म करनेसे कदापि संसारबन्धन निवृत्त नहीं होता है, फिर मोक्षकी तो आशाही क्या करना? इसकारण विचारवान् पुरुष सदा वेदान्तवाक्योंका विचार करनेमें तत्पर रहै ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कितनेक समुच्चयवादी आचार्य्योंका ऐसा मत है, कि ज्ञान और कर्म्म दोनों मिलकर मुक्तिदायक होते हैं, केवल ज्ञानसेही मुक्ति नहीं होती है, इस मतका खण्डन करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजी प्रथम तीनश्लोकोंकरके तिन समुच्चयवादियोंके मतका वर्णन करते हैं. समुच्चयवादी इसप्रकार शंका करते हैं, कि जिसप्रकार विद्या कहिये ज्ञानको (ब्रह्मविदाप्नोति परम्—ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मकोही प्राप्त होता है) इत्यादि श्रुतियोंमें मोक्षरूप परमपुरुषार्थका साधन कहा है, तिसीप्रकार कर्म्मकोभी (यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति—जबतक जीवित रहै तबतक अग्निहोत्र करै) इत्यादि श्रुतियोंकरके अवश्य कर्तव्य कहा है, इसकारण कर्म्म ज्ञानका सहायक होताहै क्योंकि जब वेदमें कर्म्मको अवश्य कर्तव्य कहा है, तबतो कर्म्मके न करनेसे विघ्न उत्पन्न होकर ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होयगी, इसकारण कर्म्मसहितही ज्ञान मुक्ति देनेमें समर्थ होता है, इस विषयमें समुच्चयवादी यह युक्ति देते हैं कि " उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः । तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्—अर्थात्

ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता यथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ॥ कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः ॥११॥कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ॥ ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी विद्या न किञ्चिन्मनसाऽप्यपेक्षते ॥ १२ ॥ न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ॥ तथैव विद्या विधितः प्रकाशितैर्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥ १३ ॥

जिसप्रकार पक्षी दोनोंही पक्षोंसे आकाशमें गमन करसक्तेहैं तिसीप्रकार ज्ञान और कर्म दोनोंहीसे शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति (मुक्ति) होतीहै ॥ ११ ॥ और कर्म्मके नहीं करनेपर वेदमें (वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते—जो पुरुष अग्निहोत्रके कुण्डकी अग्निको बुझादेताहै वह देवताओंके वीरको नाश करनेवाला होताहै) इत्यादि श्रुतियोंमें दोष कहा है इसकारण मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा कर्म्मानुष्ठानपूर्वक ज्ञानकी प्राप्ति करना चाहिये, तहाँ सिद्धान्ती शंका करताहै कि निश्चल मोक्षरूपपरमपुरुषार्थको उत्पन्न करनेवाली विद्या (ज्ञान) स्वतंत्र है अर्थात् मोक्षरूप फल देनेमें किसीकी सहायकी मनसेभी अपेक्षा नहीं करतीहै, जिसप्रकार सूर्य्य किसी दूसरेकी सहायता न लेकरही अंधकारको नष्ट करदेताहै तिसीप्रकार अविद्या (अज्ञान) रूपी अंधकारको नष्ट करनेमें विद्या किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करतीहै ॥ १२ ॥ इस शंकाका समुच्चयवादी उत्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देताहै, कि तुम्हारा इसप्रकार कहना ठीक नहीं है, क्योंकि (अक्षय्यं हि चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति—चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालेको अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होतीहै) इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे यद्यपि यज्ञकर्म स्थिर है तथापि जिसप्रकार अन्यकारकोंकी अर्थात् प्रयाज अनुयाज आदि अंगोंकी और देशकाल आदिकी अपेक्षा करताहै तिसीप्रकार (अधीतवेदो जपकृत् पुत्रवानन्नदोऽग्निमान् शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनःकुर्यात्तु नान्यथा—अर्थात् वेद पढ़कर गायत्रीआदि जपका करनेवाला पुत्रवान् अन्नदाता अग्निहोत्री और यथाशक्ति यज्ञ करनेवालाही मोक्षमें मन लगावै, अन्य पुरुष नहीं) इत्यादि वाक्योंके द्वारा अग्निहोत्रादि कर्म्मोंकी सहायतासे ही ज्ञान मोक्ष देसक्ता है स्वतंत्र होकर नहीं ॥ १३ ॥ इसप्रकार समुच्चयवादीका मत दिखाकर सिद्धान्ती उसका खण्डन करता है कि इसप्रकार जो वितर्कवादियों (समुच्चयवादियों) का कथन है सो असत् (मिथ्या) है, जिसप्रकार केवल कर्म्म मोक्षका साधन नहीं होसक्ता, इसीप्रकार ज्ञानसहित कर्मभी मोक्षका साधन नहीं होताहै, क्योंकि सर्वज्ञ विरोध देखनेमें आताहै,

केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिनस्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ॥ देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ॥ १४ ॥
विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता विद्याऽत्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ॥ उदेति कर्माखिलकारकादिभिर्निहन्ति विद्याऽखिलकारकादिकम् ॥ १५ ॥

सोही दिखाते हैं कि—अनात्मरूप देहादिके विषे आत्मत्व (मैं हूँ, मेरा है इत्यादि) का अभिमान होनेसे क्रिया वृद्धिको प्राप्त होतीहै अर्थात् कर्म्मसिद्धि होतीहै, और ज्ञानकी प्राप्ति तो देहाभिमान नष्ट होनेसे होतीहै इसकारण जब कर्म्मसिद्धिका कारण तो अहंकार हुआ, और ज्ञानका कारण अहंकारका नाश हुआ फिर दिन और रात्रिके समान परस्पर विरुद्ध दोनों ज्ञान और कर्म एकसाथ पुरुषके विषे किसप्रकार रहसक्तेहैं ? अर्थात् दोनों इकट्ठे कदापि नहीं रहसक्ते, और जब इकट्ठे एकस्थानमें नहीं रहैंगे तौ दोनोंका समुच्चयभी किसप्रकार होसक्ता है ? अर्थात् कदापि नहीं होसक्ता, इसकारण समुच्चयवादियोंका मत असत् है ॥ १४ ॥ समुच्चयवादिने जो बारहवें श्लोकमें अनुमान कियाथा, कि जिसप्रकार प्रयाज अनुयाज आदि अंगोंसहित ही चातुर्मास्य आदि मुख्य यज्ञ फलदायक होताहै, तिसी प्रकार ज्ञानभी कर्मके साथही मोक्षरूप फलदायक होगा, इसका सिद्धान्ती खण्डन करताहुआ कहता है, कि विशुद्ध निर्म्मल ज्ञानके देनेवाले वेदान्तवाक्योंके विचार करनेसे प्राप्ति होनेवाली अंतःकरणकी अंतिम ब्रह्माकार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृत्ति विद्या कहाती है, और यज्ञादि कर्म्म तो कर्त्तृकर्म्मादि अंगोंसहित उत्पन्न होता है, और विद्या सम्पूर्ण कर्तृकर्मादि कारकों (मैं करता हूँ इत्यादि बुद्धियों) को नष्ट करती है, क्योंकि—सम्पूर्ण वृत्तियोंको त्यागकर ब्रह्मके विषे तदाकाररूप होनेको विद्या कहते हैं, इसप्रकार कहनेका अभिप्राय यह है, कि विद्याकी प्राप्तिके निमित्त साधनरूप जो अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये तो कर्मकी अपेक्षा होती है, क्योंकि अंतःकरण विना शुद्ध हुए विद्याकी प्राप्ति नहीं होसक्ती, कर्म्मानुष्ठानके विना अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होसक्ती, परन्तु जब कर्म्मानुष्ठानसे अंतःकरण शुद्ध होकर विद्याकी प्राप्ति होजाती है फिर वह विद्या (ज्ञान) मोक्षरूप फलको उत्पन्न करनेके लिये कर्म्मके सहायताकी अपेक्षा नहीं करती है, यदि किसीके सहायताकी अपेक्षा करै तो विद्याका वास्तविक स्वरूप नष्ट होजाय, क्योंकि अंतिम वृत्तिका नाम विद्या है, यदि वह विद्या किसीके सहायताकी अपेक्षा करै तौ फिर वह अंतिम (चरम) वृत्ति किसप्रकार होसक्ती है ? इसकारण अंतःकरणकी चरम ब्रह्माकारवृत्तिरूप विद्या मोक्ष देनेमें कर्म्मकी अपेक्षा

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीर्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ॥ आत्मानुसंधानपरायणः सदा निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥ १६ ॥ यावच्छरीरादिषु माययाऽत्मधीस्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ॥ नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य तज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः ॥ १७ ॥

नहीं रखती है और दूसरे कर्मका कारण जो अहंकार वह तो विद्या (ज्ञान) के समय होताही नहीं, फिर उस अवस्थामें कर्म्मका रहना किसप्रकार संभव होसक्ता है ? कि जिसकी ज्ञान अपेक्षा करै, इसकारण विद्या स्वतंत्र होकरही मोक्षरूप फल देती है, और जिसप्रकार सूर्य और अंधकार एक स्थानमें नहीं रहसक्ते, इसीप्रकार ज्ञान और कर्म्मका भी एक स्थानमें रहना (समुच्चय होना) असम्भव है ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! विद्या और कर्म्मका विरोध होनेसे समुच्चय नहीं होसक्ता, इसकारण मुमुक्षु पुरुषको योग्य है, कि कर्म्मको त्याग दे, अर्थात् काम्यकर्म्मको तो सर्वथाही त्याग करदें, परन्तु जबतक चित्तकी शुद्धि न होय तबतक नित्य नैमित्तिक कर्म्म करतारहै और जब अंतःकरणकी वृत्ति शुद्ध होजाय अर्थात् ब्रह्मके विषे चित्त स्थिर होजाय तब नित्य नैमित्तिक कर्म्मको त्याग दे फिर संपूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्त होकर अर्थात् संपूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्तिको त्यागकर सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माका ध्यान करनेमें तत्पर रहै ॥१६॥ श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! पुरुष जिस-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समय पर्यंत अविद्या (अज्ञान) के वशीभूत होकर शरीर इन्द्रिय आदि अनात्म कहिये जड़ पदार्थोंमें आत्मत्वबुद्धि (मैं हूँ मेरा है इत्यादि बुद्धि) करताहै तबतक ही वेदविहित (स्वर्गकामो यजेत—स्वर्गकी कामना करनेवाला यज्ञ करै) इत्यादि कर्म्मोंका दास बनारहता है, अर्थात् जबतक अहंकार रहता है तबतकही पुरुषकी कर्म्ममार्गमें प्रवृत्ति होतीहै, और जब अहंकार नष्ट होजाताहै तब ज्ञान होनेसे सब मिथ्या प्रतीत होनेलगताहै, इसकारण विचारवान् मुमुक्षु पुरुष वेदविहित सत्कर्म्मोंको अंतःकरणकी शुद्धि होनेपर्यन्त करै और अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर प्रकृतिसे पर आत्मस्वरूपको जानकर "नेति नेति" इत्यादि वाक्योंकरके सम्पूर्ण जगत्का निषेध करताहुआ अर्थात् संपूर्ण जगतको स्वप्नके समान मिथ्या जानताहुआ संपूर्ण कर्म्मोंका त्याग करदेय ॥ १७ ॥ अब आत्मज्ञान होनेके अनंतर अविद्या अवश्य दूर होजातीहै, इस वार्ताका प्रतिपादन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! जिससमय शुद्ध अंतःकरणमें परमात्माका और जीवात्माका भेद करानेवाली जो माया और अंतःकरणरूप दो उपाधि तिनको नष्ट करने-

यदा परात्मात्मविभेदभेदकं विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम् ॥ तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥ १८ ॥ श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ॥ विज्ञानमात्रादमलाद्वितीयतस्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥ १९ ॥ यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते कर्ताऽहमस्येति मतिः कथं भवेत् ॥ तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभाति केवला॥२०॥

वाला प्रकाशस्वरूप विज्ञान अर्थात् अन्य वृत्तियोंको नष्ट करनेवाली अखण्ड ब्रह्माकारवृत्ति उदयको प्राप्त होतीहै उसीसमय अनेक जन्मोंको देनेवाले कर्म्मोंसहित संसारका कारणरूप माया अर्थात् जीवोपाधिभूत अविद्या तत्काल नष्ट होजाती है ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! "तमत्त्वसि" आदि महावाक्योंके द्वारा उत्पन्न हुए ज्ञानसे नाशको प्राप्त हुई अविद्या क्या फिर किसी प्रकारभी संसारबन्धनरूप कार्यकी करनेवाली होसक्ती है? अर्थात् कदापि नहीं, क्योंकि वह तो शुद्ध अद्वितीय ज्ञानसे नष्टही होजाती है, और फिर उदयको भी नहीं प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ और हे लक्ष्मण ! यदि तत्वज्ञानसे नाशको प्राप्त हुई अविद्या फिर उत्पन्न नहीं होती है, तौ फिर अपने कारणरूप अविद्याके नष्ट होनेसे अहंकार भी किसप्रकार होसक्ता है ? अर्थात् कदापि नहीं होसक्ता है और जब अहंकारही उत्पन्न नहीं होता तो फिर उससमय कर्म्मका होनाभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संभव नहीं होसक्ता, इसकारण विद्या स्वतंत्रही मोक्षरूप फल देती है, और किसीकी अपेक्षा नहीं करती ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! (न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेअमृतत्वमानशुः परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजदेतद्यतयो विशन्ति । तै० आ० प्र० १० अ० १०) अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म्म करनेसे, संतानको उत्पन्न करनेसे, अथवा धनसे, मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है; किन्तु सम्पूर्ण लौकिक वैदिक कर्म्मोंको त्यागकरही कोई अंतर्मुख पुरुष अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त होता है, जिस अमृतत्त्वके विषे जितेन्द्रिय यति प्रवेश करते हैं, वह अमृतत्व स्वर्गसेभी श्रेष्ठ और अपनी एकाग्र बुद्धिरूप गुहामें स्थित है) यह तैत्तिरीय शाखाकी प्रसिद्ध श्रुति आदरपूर्वक स्पष्ट रीतिसे सम्पूर्ण कर्म्मोंको त्याग करनेका उपदेश करती है और (एतावदरे खल्वमृतत्वम्) इत्यादि वाजसनेयिशाखावालोंकी श्रुति ऐसा उपदेश करती है कि केवल ज्ञानमात्रही मोक्षका साधन है कर्म्म नहीं ॥ २१ ॥ इसप्रकार कर्म्म और ज्ञानका वैषम्य दिखाया अब कर्म्म और ज्ञानके

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम् ॥ एतावदित्याह च वाजिना श्रुतिर्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम् ॥२१॥
विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ॥ फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥ २२ ॥
स प्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधीरज्ञप्रसिद्धा नतु तत्त्वदर्शिनः ॥ तस्माद्बुधैस्त्याज्यमपि क्रियात्मभिर्विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम् ॥ २३ ॥

फलमेंभी विषमता दिखाताहुआ सिद्धान्ती कहता है, कि हे समुच्चयवादिन् ! तुमने अग्निष्टोमादि यज्ञ और विद्या (ज्ञान) की समता वर्णन करी परंतु कोई ऐसा दृष्टान्त नहीं दिया कि जिससे अग्निष्टोमादि यज्ञ और विद्याकी समता सिद्ध होती इसकारण तुम्हारा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यज्ञ तो फलोंके भेदकरके और नाना प्रकारके कर्तृ कर्म्मादि कारकोंकरके तथा बाह्य देश काल आदि नियमोंकरके सिद्ध होता है, और ज्ञानकी सिद्धि (विद्या) में तो कर्तृत्वादि बुद्धिका त्याग होता है, इसकारण ज्ञान और कर्मका परस्पर विपरीत भाव है, फिर समता किसप्रकार होसक्ती है ? और समताके विना समुच्चय कहाँ ॥ २२ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! अमुक कर्म्मका त्याग करनेसे निःसंदेह मैं प्रायश्चित्तका भागी होऊँगा, यह जो अनात्म (जड़) धर्मसंबंधी बुद्धि है सो तत्वज्ञानहीन मूढ़ पुरुषकोही होती है, तत्वज्ञानीको नहीं, क्योंकि—अहंकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होता है, वह तत्वज्ञानी पापादिको देहादि अनात्म पदार्थोंका धर्म्म जानता है आत्माका नहीं, इसकारण शास्त्रमें अवश्य कर्तव्य कहा-हुआभी कर्म्म तत्वज्ञानी पुरुषोंको त्याग देना चाहिये, क्योंकि शास्त्रोंमें वह कर्म्म उनहीं पुरुषोंको अवश्य कर्तव्य कहे हैं, जिनके अंतःकरणोंमें कर्म्मोंसे स्वर्गादि फलको प्राप्त होनेकी इच्छा होती है, और जो पुरुष मोक्षकी इच्छा करनेवाले हैं उनके अर्थ शास्त्रोंमें कर्म्मोंकी अवश्य कर्त्तव्य विधि नहीं है ॥ २३ ॥ अब विरक्त पुरुषको जो कार्य करना चाहिये तिसका उपदेश करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! निष्काम कर्म करनेसे शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिसका ऐसा गुरुवाक्य और वेदान्त शास्त्रोंमें विश्वासयुक्त मुमुक्षु पुरुष गुरुके प्रसादसे प्राप्तहुए "तत्त्वमसि" आदि वाक्योंकरके श्रवण करीहुई परमात्मा और जीवकी एकताको जानकर सुमेरु पर्वतके समान निष्कंप अर्थात् विषयाभिलाषसे चलायमान नहीं हुआ है चित्त जिसका ऐसा होकर सुखको प्राप्त होय ॥ २४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! भ्रमप्रसादरहित महावा-

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतोगुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ॥ विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥ २४ ॥
आदौपदार्थावगतिर्हि कारणं वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ॥ तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवकावसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥ २५ ॥
प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनोर्विहाय सङ्गृह्य तयोश्चिदात्मताम् ॥ संशोधितां लक्षणया च लक्षितां ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥२६॥

क्यके अर्थका ज्ञान उत्पन्न होनेमें प्रथम वाक्यके प्रत्येक पदके अर्थका ज्ञान होना कारण है इसकारण महावाक्यके अर्थका वर्णन करनेके निमित्त प्रथम प्रत्येक पदका भिन्न भिन्न अर्थ वर्णन करते हैं कि "तत्त्वमसि" इस वाक्यके तीन पद हैं, तत् १ त्वम् २ और असि ३ तहाँ प्रथम तत् पदका अर्थ सर्वज्ञत्व आदि गुणविशिष्ट परमात्मा है, और दूसरे त्वम् पदका अर्थ अल्पज्ञत्व आदि विविष्ट जीवात्मा है, और तीसरा असि पद तत् तथा त्वम् इन दोनों पदोंका अभेद बोधक है ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! ऐसा कहनेपर यदि तुम शंका करो कि जब ईश्वर सर्वज्ञ (पूर्ण ज्ञानवान्) है और जीव अल्पज्ञ (थोड़े ज्ञानवाला) है तो फिर इन दोनोंकी एकता किसप्रकार होती है ! इसका उत्तर इसप्रकार है कि अहंबुद्धिकरके जानने योग्य जो प्रत्यक्त्व (अनेक पदार्थोंका अपना मानना) जीवका धर्म है, और परोक्षत्व (इन्द्रियोंके गोचर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न होना) ईश्वरका धर्म्म है, इत्यादि औरभी धर्मोंसे प्रतीत होनेवाले जीवात्मा और परमात्माके विरोधको त्यागकर तत् और त्वम् इन दोनों पदोंकी भलीप्रकारसे संशोधन करीहुई अर्थात् अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे भलीप्रकार विचार करीहुई और भागत्यागलक्षणाकरके लक्षितचिद्रूपताको जान कर द्वैतभावसे रक्षित अर्थात् चैतन्यरूपताको प्राप्त हुआसा होजाय, इसप्रकार कहनेका अभिप्राय यह है कि तत् और त्वम् इन दोनों पदोंके दो अर्थ हैं एक वाच्य और दूसरा लक्ष्य, तहाँ तत्पदका वाच्य अर्थ तो मायोपाधिक सर्वज्ञत्व आदि विशिष्ट चैतन्य है, और लक्ष्य अर्थ उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य है, इसीप्रकार त्वम् पदका वाच्य अर्थ तो मायाकार्य अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्व आदि विशिष्ट चैतन्य है, और लक्ष्य अर्थ वही उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य है, इसप्रकार दोनोंके वाच्य अर्थ विरुद्ध होनेसे तो सामानाधिकरण्य नहीं होसक्ता क्योंकि सर्वज्ञ अल्पज्ञ नहीं होसक्ता, और अल्पज्ञ सर्वज्ञ नहीं होसक्ता, परन्तु तत् और त्वम् दोनों पदोंका उपाधिरहित शुद्ध चैतन्यरूप लक्ष्य अर्थ एक होनेसे जीवात्मा और परमात्माकी एकता होनेमें कोई बाधा नहीं है, इसकारण " तत्त्वमसि " वाक्यके द्वारा जीवात्मा और परमात्माका एकत्व ज्ञान होनेके अनंतर

एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत्तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ॥ सोऽयंपदार्थाविव भागलक्षणा युज्येत तत्त्वंपदयोरदोषतः ॥ २७ ॥

द्वेषभावरहित होकर चैतन्यरूपताको प्राप्तहुआसा होजाय, अर्थात् है तौ पहिलेभी चैतन्यरूप ही, परन्तु जिसप्रकार कोई पुरुष अपने कंठमें धारण करी हुई मणिको भूलकर कहने लगे कि मेरी कंठमणि खोगई, परन्तु फिर कोई दूसरा पुरुष उसको बता देय कि तेरी कंठमणि तो तेरे कंठमेंही है, तब वह पुरुष कहने लगता है कि मेरी कंठमणि मिलगई, इसीप्रकार यद्यपि जीवात्मा सदा चैतन्यरूप और परमात्मासे अभिन्न है, तथापि अज्ञानके कारण वह जीवात्मा अपनेको परमात्मासे अलग मानने लगता है, परन्तु जब ज्ञान होजाता है तब वह अपनेको परमात्मरूपमें मिला हुआ जानने लगता है ॥ २६ ॥ अब लक्षणाओंका स्वरूप वर्णन करते हुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! लक्षणा तीन प्रकारकी होती है, एक जहती अर्थात् जहत्स्वार्थलक्षणा, दूसरी अजहती अर्थात् अजहत्स्वार्थलक्षणा और तीसरी भागलक्षणा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् जहदजहल्लक्षणा. जहाँ संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग किया जाय अर्थात् शब्दके मूल अर्थका संभव न होनेसे उसको त्यागकर उसके स्थानमें जहाँ दूसरा सम्भव अर्थ स्वीकार किया जाय तहाँ जहत्स्वार्थ लक्षणा होती है, जैसे "गंगायां घोषः-गंगामें घोसियोंका स्थान है" यहाँ वास्तवमें गंगापदका अर्थ भगीरथखातावच्छिन्न जलप्रवाहरूप है परन्तु तिस जलके प्रवाहमें घोसियोंके स्थानका होना संभव नहीं हो सक्ता, इस कारण गंगाशब्दकी तीर अर्थमें लक्षणा करी जाती है, अर्थात् गंगापदका जलप्रवाहरूप वाच्य अर्थको त्यागकर तट-रूप लक्ष्य अर्थ स्वीकार कियाजाताहै तब "गंगायां घोषः" इस वाक्यका गंगाके तटपर घोसियोंका स्थान है ऐसा अर्थ होनेपर किसीप्रकारका दोष नहीं आता, परन्तु ऐसा अर्थ करनेपर गंगाशब्दका जलप्रवाहरूप वाच्य (वास्तविक मूलका) अर्थ कुछभी प्रतीत नहीं होताहै, संपूर्णका त्याग होकर तटरूप लक्ष्य अर्थकाही ग्रहण होताहै, इसकारण यहाँ जहत्स्वार्थलक्षणा मानी जातीहै, परन्तु यह जहत्स्वार्थलक्षणा "तत्त्वमसि" इस महावाक्यमें नहीं होसक्ती, क्योंकि यहाँ तत् और त्वम् इन दोनों पदोंके अर्थोंकी एकता होनी चाहिये, सो जहत्स्वार्थलक्षणा माननेमें चैतन्य रूप विशेष्य अंशकाभी त्याग होनेसे नहीं होसकैंगी, अर्थात् जब जहत्स्वार्थ लक्षणामें संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग होनेसे चैतन्य अर्थकाभी त्याग होजायगा, फिर एकता किसके साथ होयगी, और जहाँ वाच्य अर्थका त्याग न होकर और अधिक अर्थका ग्रहण होय तहाँ अजहत्स्वार्थ लक्षणा होती है, जैसे "काकेभ्यो दधिरक्षिताम्-काकोंसे दधिकी रक्षा करे यहाँ "काकेभ्यः" इस पदका वाच्य अर्थ "काकोंसे" है परन्तु कहने-वालेका अभिप्राय यह है कि दधिको नष्ट करनेवाले जो काक बिड़ाल आदि हैं तिनसे रक्षा करो, इसकारण यहाँ काकपदके वाच्य अर्थका त्याग न होकर उस दधिके नाश करनेवाले और बिडाल आदिकाभी ग्रहण होता है अतएव यहाँ अजहत्स्वार्थलक्षणा मानी गई है, परन्तु "तत्त्व-मसि" इस महावाक्यमें यह अजहत्स्वार्थलक्षणाभी नहीं होसक्ती, क्योंकि जब तत् और त्वम् इन दोनों पदोंके सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्वरूप वाच्य अर्थका त्याग नहीं होयगा, तब तो विरोध ज्योंका त्योंही रहैगा और एकता नहीं होयगी, और जहाँ वाच्य अर्थका किंचिन्मात्रभी त्याग होता है तहाँ अजहत्स्वार्थलक्षणा नहीं होसक्ती, इसकारण निर्दोष होनेसे "तत्त्वमसि" इसमहावाक्यमें भागत्यागलक्षणाही करनी चाहिये, अर्थात् जहाँ कुछ वाच्य अर्थ त्यागा जाय और कुछ नहीं त्यागाजाय, तहाँ भागत्यागलक्षणा अर्थात् जहदजहल्लक्षणा होतीहै जैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

" सोयं देवदत्तः— जिसको दशवर्ष पहिले काशीपुरीमें कवचकुंडलादि धारणकर पुष्टशरीर देखा था, वही यह देवदत्त इससमय कवचकुण्डलरहित और कृश है " यहाँ ' सः ' का वाच्यार्थ तो कवचकुण्डलधारी पुष्टशरीरवान् काशीपुरीस्थ देवदत्त है; और ' अयम् ' का वाच्यार्थ इस देशमें स्थित कवचकुण्डलहीन कृश देवदत्त है. सो जैसा काशीपुरीमें पाहिले देखाथा वैसा अब नहीं है, इसप्रकार पूर्वकाल और वर्तमानकालके विशेषणमें परस्पर विरोधकी प्रतीति होती है, इस विरोधको दूर करनेके निमित्त यहाँ पूर्वकालका विरुद्ध अंश जो कवचकुण्डलविशिष्टत्व और शरीरपुष्टत्व आदि धर्म्म और वर्त्तमानकालका विरुद्ध अंश जो कवचकुण्डलरहितत्व और कृशत्वादि धर्म्म तिसका त्याग करके देवदत्तके मांसपिण्डमात्र विशेष्यका ग्रहण होता है, अर्थात् पूर्वकालके और वर्त्तमानकालके विशेषणरहित देवदत्तमात्र विशेष्य अंशही लक्ष्यार्थ होता है, इसप्रकार जहदजहत्स्वार्थलक्षणाके द्वारा " सोऽयं देवदत्तः " इसका वाक्यार्थ होता है, इसीप्रकार " तत्त्वमसि " यहाँ ' तत् ' पदके वाच्य अर्थ (मायोपाधिक सर्वज्ञत्त्व आदि विशिष्ट चैतन्य) में तो मायोपाधिक सर्वज्ञत्व आदि विरुद्धधर्म्मका त्याग करके; और ' त्वम् ' पदके वाच्य अर्थ (अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्व

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ॥ शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥ २८ ॥

आदि विशिष्ट चैतन्य) में अविद्योपाधिक अल्पज्ञत्त्व आदि विरुद्ध धर्म्मका त्याग करके दोनोंका अविरुद्ध अखण्ड चैतन्य अंशमात्र लक्ष्यार्थ होता है, इसप्रकार जहदजहत्स्वार्थलक्षणा अर्थात् भागत्यागलक्षणाके द्वारा " तत्त्वमसि " इस महावाक्यकी निर्दोष अर्थसंगति होती है ॥ २७ ॥ अब त्याग करनेयोग्य जीवकी उपाधिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! पञ्चीकृत पृथ्वीआदि महाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाला, पापपुण्यरूप कर्म्मोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखदुःखादिके अनुभवस्थान, जन्ममरणको प्राप्त होनेवाला, पूर्वजन्मके कर्म्मोंसे उत्पन्न होनेवाला, और परम्परासे मायाका विकाररूप यह शरीर आत्माका स्थूल उपाधि है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं; उपरोक्त पञ्चीकरणका यह प्रकार है, कि प्रत्येक पृथिवी आदि महाभूतके दो भाग करै, और दोदोभागोंमेंसे एक एक भागके चार चार भाग करै, फिर पाँचों महाभूतोंका यह आठवाँ आठवाँ भाग प्रत्येक महाभूतके अर्द्धभागमें युक्त करै, इसप्रकार आधा आधा भाग तो प्रत्येक महाभूतका अपना और आठवाँ आठवाँ भाग अन्य चारों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाभूतोंका मिलै तब एक एकमें पाचों महाभूतोंका इकट्ठा होना है सो पंचीकरण कहाता है, और अपना अपना भाग अधिक होनेसे "यह पार्थिवशरीर है, यह तैजस शरीर है" इत्यादि व्यवहार होता है ॥ २८ ॥ अब सूक्ष्मशरीररूप उपाधिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! सूक्ष्म कहिये चक्षुआदि इन्द्रियोंका अविषय, संकल्पात्मक मन-निश्चयात्मिका बुद्धि और दशेन्द्रिय अर्थात् नासिका-जिव्हा-नेत्र-त्वचा-कर्ण यह पाँच ज्ञानेन्द्रिय और वाणी-हस्त-चरण-गुदा-उपस्थ यह पाँच कर्म्मेंद्रिय तथा प्राण-अपान-व्यान-उदान-समान इन पञ्च प्राणोंकरके युक्त, अपञ्चीकृत कहिये पंचीकरण न कियेहुए पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न होनेवाला, इसकारणही अदृश्यरूप, और जीवको सुखदुःखादि अनुभव करनेका साधन, अर्थात् जिसके भीतर प्रवेश करनेपरही स्थूलशरीर भोगका साधन होता है, और जिसके स्थूलशरीरसे वियोग होनेपर मरण होजाता है, ऐसा स्थूल शरीरसे भिन्न जो सूक्ष्मशरीर है तिसको विद्वान्पुरुष लिङ्गोपाधि कहते हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार जीवकी दोनो उपाधियोंका वर्णन

सूक्ष्मं मनो बुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ॥ भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं भवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥ २९ ॥ अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं मायाप्रधानं तु परं शरीरकम् ॥ उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितं स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥ ३० ॥ कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृतिर्विभाति सङ्गात्स्फटिकोपलो यथा ॥ असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥ ३१ ॥

करके अब ईश्वरकी उपाधिका वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! अनादि कहिये उत्पत्तिरहित और नानाप्रकारके परिणामको प्राप्त होनेवाली होनेके कारण नाशवान्, सत् असत् रूपसे वर्णन करनेको अशक्य, तथापि इस सम्पूर्ण प्रपञ्च कहिये जगत्को उत्पन्न करनेवाली माया ब्रह्मका उत्कृष्ट प्रधान शरीर है, इस प्रकार एकही चैतन्य उपाधिके भेदसे भिन्न भिन्न स्थित हो रहा है, अर्थात् स्थूलसूक्ष्मोपाधि जीव है, और कारणोपाधि (मायोपाधि) ईश्वर है, इस भेदबुद्धिका विषय होरहा है, इसकारण भागत्यागलक्षणाके द्वारा उपाधिका त्यागकरके श्रवण-मनन-निदिध्यासन आदिके क्रमसे अपने आत्माके विषेही आत्माका निश्चय करै अर्थात् जीवात्मा और परमात्माको अभिन्न जानै ॥ ३० ॥ अब महावाक्यके अर्थके विचार करनेके फलका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! निर्लेपभी आत्मा अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय-आनन्दमय, इन पञ्च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोशोंके सङ्गसे तिस तिस आकृतिका प्रतीत होने लगता है, जिसप्रकार कि स्वच्छ भी स्फटिक मणि जपापुष्प (दुपहरियाके पुष्प) आदिके सङ्गसे अनेक प्रकारका प्रतीत होनेलगता है, परन्तु इस महावाक्यका भलीप्रकार विचार करनेपर यह आत्मा असङ्ग कहिये अन्नमयादि कोशोंके सङ्गकरके रहित, अजन्मा और अद्वितीय प्रतीत होनेलगता है, अर्थात् अज्ञानी पुरुषकोही अन्नमयादि कोशोंके सङ्गसे मैं स्थूल हूँ मैं कृश हूँ, इत्यादि प्रतीति होती है, और महावाक्यके अर्थका विचार करनेसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनेपर मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूं इत्यादि प्रतीति नहीं होती है इसप्रकार यह दिखाया, कि उपाधियोंके कारण तिस तिस रूपकी प्रतीति नाश होकर एकरूपसे आत्माकी प्रतीति होनाही महावाक्यके अर्थके विचार करनेकाफल है ॥ ३१ ॥ जाग्रत्आदि तीनो अवस्था बुद्धिका धर्म हैं, आत्माका नहीं इसप्रकार वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! इस आत्माके विषे जाग्रत्-स्वप्न-और सुषुप्ति यह जो तीनप्रकारकी वृत्ति देखनेमें आति है सोभी सत्व-रज-तमरूप गुणत्रयस्वरूप जो बुद्धि तिसका

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ॥ अन्योन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥ ३२ ॥
देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां सङ्घादजस्रं परिवर्तते धियः ॥ वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥ ३३ ॥

धर्म्म है, क्योंकि यह तीनो अवस्था गुणत्रयरूप बुद्धिमूल कही हैं, और इन जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंका आत्माके विषे जो भान होताहै, सो मिथ्याभूत जो बुद्धिका अध्यास कहिये आत्मा और बुद्धिकी एकताका भ्रम तिसके कारणसे होताहै, वास्तवमें नहीं है, क्योंकि जाग्रत अवस्थामें स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका अभाव होताहै, और स्वप्न अवस्थामें जाग्रत् और सुषुप्ति अवस्थाका अभाव होताहै, तथा सुषुप्ति अवस्थामें जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाका अभाव होताहै, इसप्रकार परस्पर व्यभिचार होनेके कारण यह तीनों अवस्था अनित्य तथा मिथ्यारूप हैं, फिर नित्य कहिये उत्पत्ति-विनाशरहित, त्रिगुणातीत (मायासे पर), व्यापक, असङ्ग और सदा एकरस चैतन्यस्वरूप आत्माका धर्म्म किसप्रकार होसक्ती हैं ? ॥ ३२ ॥ अब त्याग करनेयोग्य संसारकी मूलभूत वृत्तिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और चैतन्यस्वरूप आत्मा इनके संघ कहिये परस्पराध्यास (एकपर एकका अध्यास) होनेसे अज्ञताकी उत्पन्न करनेवाली और रजोगुण तथा तमोगुण है प्रधान जिसमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी बुद्धिकी वृत्ति निरन्तर जबतक चलती रहैगी; तभीतक इस संसारकी उत्पत्ति होतीरहैगी, इसकारण संसारकी कारणरूप तिस बुद्धिकी वृत्तिका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥ अब जिसने महावाक्यका विचार करलिया हो उस ज्ञानी पुरुषको क्या कर्त्तव्य है सो वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! मुमुक्षु पुरुष महा वाक्यका विचार करनेके अनन्तर अर्थात् " आदेशो नेनि नेति " इस वेदकी श्रुतिके प्रमाणसे संपूर्ण जगत्का खण्डन करै अर्थात् संपूर्ण जगत्को मिथ्या जानै, और तदनन्तर सतोगुणप्रधान मनके द्वारा चैतन्यघन अमृतरूप आत्माका अनुभव करताहुआ सम्पूर्ण जगत् (देह-इन्द्रियादिरूप दृश्यमानसमूह) को त्याग देय; यदि ऐसा कहनेपर कोई शंका करे, कि-जिन देह इन्द्रियादिके द्वारा ज्ञानका लाभ हुआ है उनका त्यागना किस प्रकार उचित होसक्ता है ? तहाँ समाधान करते हैं, कि-जिसप्रकार पिपासित पुरुष सुन्दर मधुर रसयुक्त नारियल, नारङ्गी आदिके भीतरके रसका पान करके उस रसके स्थानरूप फलको अर्थात् छक्कल आदिको त्याग देता है, तिसीप्रकार सम्पूर्ण दृश्यमान शरीर इन्द्रियआदि रूप जगत्के सारभूत ब्रह्मसुखको प्राप्त होकर निःसार दृश्यमान शरीर इन्द्रियादिसमूहरूप

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः ॥ त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं पीत्वा यथाऽम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥ ३४ ॥
कदाचिदात्मा न मृतो न जायते न क्षीयते नापि विवर्धतेनवः ॥ निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः स्वयंप्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥ ३५ ॥

जगत्को हेय (त्याग करनेयोग्य) उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) दृष्टिसे न देखै अर्थात् उदासीन रहे, क्योंकि (द्वितीयाद्धि भयं भवति—द्वितीय सेही भय होता है) इस श्रुतिके अनुसार जहाँ द्वैतभाव होनेसे भयकी संभावना होती है तहाँही हेयत्वबुद्धि होती है, और जब द्वैतभाव दूर होनेसे भयकी निवृत्ति होगई तौ फिर हेयत्व बुद्धिका भी होना किसप्रकार सम्भव होसक्ता है ? इसकारण कहा कि—उदासीन होकर रहै ॥ ३४ ॥ वैराग्य होनेके निमित्त ब्रह्मभिन्न सम्पूर्ण पदार्थोंकी अनित्यता और केवल ब्रह्म (आत्मा) काही नित्यताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! यह आत्मा कदापि मरणको नहीं प्राप्त होताहै, जन्म नहीं धारण करताहै क्षीणताको नहीं प्राप्त होताहै, और वृत्तिको नहीं प्राप्त होताहै, तथा अनव है अर्थात् नवीन नहीं होताहै इसप्रकार अनव कहनेका अभिप्राय यह है कि उत्पत्तिके अनन्तर अस्तित्वरूप जो विकार है सो आत्माके विषे नहीं है, और यहभी सूचित होताहै, कि यदि नवीन नहीं होताहै तो वृद्धभी नहीं होताहै, क्योंकि जो नवीन होयगा वही पुरुष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृद्धभी होयगा, सो अन्य अवस्थाको प्राप्त न होनेसे परिणाम रूप विकारभी आत्माके विषे नहीं है, यहां पर्य्यन्त कहनेका अभिप्राय यह है, कि शास्त्रोंके विषे जो "जायते १ अस्ति २ वर्द्धते ३ विपरिणमते ४ अपक्षीयते ५ नश्यति ६" अर्थात्—उत्पन्न होना १ उत्पन्न होकर रहना २ वृद्धिको प्राप्त होना ३ रूपान्तरको प्राप्त होना ४ क्षीणताको प्राप्त होना ५ और नाशको प्राप्त होना ६ यह छः भावविकार कहे हैं सो आत्माके विषे नहीं होते हैं, इसकारण आत्मा तो आत्मलाभसे देह इन्द्रियादिके महत्त्वको दूर करनेवाला, सुखात्मक कहिये आनन्दस्वरूप, स्वयंप्रकाश, तथा सर्वव्यापक, है और (अयम्) कहिये अहंबुद्धिका विषय जो जीव सौभी अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपही है, तिससे भिन्न नहीं है, क्योंकि श्रुतिमें कहा है, कि (**अयमात्मा ब्रह्म**) अहंबुद्धिका विषय जो जीवात्मा है सोभी ब्रह्मही है, इस सम्पूर्ण श्लोकके कहनेका अभिप्राय यह है, कि ब्रह्मभिन्न जो कुछ है सो सब षड्भावविकारयुक्त होनेके कारण अनित्य है, और केवल आत्माही नित्य है इसकारण सम्पूर्ण अनित्य पदार्थोंसे विरक्त होकर निर्विकार नित्यस्वरूप आत्माके विषेही अन्तःकरणकी वृत्ति लगावे ॥ ३५ ॥ तहाँ शंका होती है, कि जब आत्मा विकारशून्य है तो फिर

एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ॥ अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥ ३६ ॥
यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ॥ असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा रज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥ ३७ ॥

आत्माके विषे जन्ममरणप्रवाहरूप संसारकी प्रतीति किसप्रकार होती है ? इसका समाधान करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! ज्ञानमय सुखरूप, आत्माके विषे जो अनेक दुःखयुक्त संसारकी प्रतीति होती हैं, सो अज्ञानके कारण होनेवाला जो अध्यास कहिये देह अंतःकरण आदिके विषे "मैं हूं" "मेरा है" इत्यादि भ्रमयुक्त बुद्धिके होनेसे होती है, परन्तु तत्वज्ञानका प्रकाश होते ही क्षणमात्रमें लीन होजाती है, क्योंकि ज्ञान और अज्ञानका विरोध है सो ज्ञानका उदय होते ही अज्ञानका नाश होता है, सो उस अज्ञानका कार्य जो देहादि अध्यास सो इसप्रकार नष्ट होजाता है जिसप्रकार प्रकाश होनेसे अंधकारमें पडीहुई रज्जुके विषे सर्पकी भ्रांति नष्ट होजाती है ॥ ३६ ॥ अब पूर्वोक्त अध्यासका लक्षण वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! भ्रमकरके अन्य वस्तुके विषे अन्य वस्तुकी जो प्रतीति है तिसको विद्वान्पुरुष अध्यास कहते हैं, जिसप्रकार सर्प न होनेपरभी अंधकारमें पडीहुई रज्जुके विषे सर्पकी प्रीति होनेलगती है सो अध्यास है, इसीप्रकार आत्माके विषे भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अज्ञानके कारण जो देहादिरूप संसारकी प्रतीति होती है सो अध्यास है, और अज्ञानजनित भ्रमसेही है, वास्तवमें नहीं ॥ ३७ ॥ अब आत्माके विषे जो जगत्का अध्यास होता है तिसके स्वरूपका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! सम्पूर्ण विकल्पोंका कारणरूप जो माया तिसकरके रहित अर्थात् वास्तवमें मायाके संगकरके रहित, चैतन्यस्वरूप, सबके कारण, दुःखरहित, आनंदस्वरूप, सर्व विकारशून्य और प्रकृतिसे पर जो व्यापकरूप आत्माके विषे प्रथम अहंकार कल्पना कियागया है वही अध्यास है, अर्थात् अहंबुद्धिरूप अध्यासही जन्ममरणादिरूप संपूर्ण संसारका कारण है ॥ ३८ ॥ संसार बुद्धिनिष्ठ है, आत्मनिष्ठ नहीं है, यह वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! सबका साक्षी जो आत्मा तिसके विषे संसारका कारण इच्छा, उपेक्षा, राग, द्वेष और सुख दुःखआदि धर्मयुक्त बुद्धिकी वृत्तियें ही हैं, अर्थात् इच्छा उपेक्षाआदि धर्मयुक्त बुद्धिकी वृत्तियोंके होनेपर ही संसार है, क्योंकि जब सुषुप्ति अवस्थामें बुद्धिकी वृत्तियें नहीं होतीहैं, तब संसारकी प्रतीति भी नहीं

विकल्पमायारहिते चिदात्मकेऽहङ्कार एष प्रथमः प्रकल्पितः ॥ अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥ ३८ ॥ इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः सदा धियः संसृतिहेतवः परे ॥ यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥ ३९ ॥ अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः ॥ आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितो बुद्ध्या परिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥

होतीहै, इसीकारण शयन करके उठाहुआ पुरुष कहताहै, कि—"सुखमहमस्वाप्सम्—मैं सुखपूर्वक सोया" इससे निश्चय होता है कि सुषुप्ति व्यवस्थामें केवल सुखस्वरूप आत्माहीका अनुभव होताहै, इसप्रकार जब जाग्रतअवस्थामें बुद्धिकी वृत्तियोंके होनेपर संसारकी प्रतीति होतीहै, और सुषुप्ति अवस्थामें बुद्धिकी वृत्तियोंके न होनेसे संसारकी प्रतीति भी नहीं होतीहै, तबतौ सिद्ध होगया, कि—संसार बुद्धिनिष्ठ है, आत्मामें नहीं हैं ॥ ३९ ॥ अब फिर तत् और त्वम् पदार्थके स्वरूपका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे लक्ष्मण ! अनादि अविद्यासे उत्पत्ति जिसकी है ऐसी जो बुद्धि कहिये अंतःकरण तिसके विषे प्रतिबिंबित हुआ जो चैतन्यका प्रकाश सो जीव कहाता है, और जो बुद्धिका साक्षीरूप होकर पृथक् स्थित और बुद्धिके परिच्छेदसे रहित है, सो परमात्मा कहताहै, और जब ज्ञानके द्वारा प्रतिबिंबका आधार बुद्धिरूप अंतःकरण लीन होजाताहै,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब प्रतिबिंबरूप उपाधिके न होनेसे वह जीव परमात्मरूपही होताहै ॥ ४० ॥ अब फिर बुद्धि और आत्माका परस्पर अध्यास होनेसे एकमें दूसरेके धर्मकी परस्पर प्रतीति होनेलगती है, इस वार्ताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! चैतन्यरूप आत्मा और बुद्धिका परस्पर अध्यास अर्थात् तादात्म्यारोपसे ही बुद्धिकी चिद्रूप और आत्माकी बुद्धि इससे प्रतीत होती है, और इसकारणसेंही वास्तवमें जड़रूप बुद्धिके विषे चिद्रूप ज्ञानकी प्रतीति होनेलगती है, और चिद्रूप आत्माके विषे जड़त्वकी प्रतीति होनेलगती है, इसकारणही तार्किकोंने चिद्रूप आत्माको ज्ञानाश्रय मानाहै और इसकारणही स्मार्त्त जीवात्माको जड़ कहते हैं, सो अध्यास चिदाभास और इन्द्रियोंकरके सहित मन तथा अंतःकरणके परस्पर सन्निकर्षसे अर्थात् समापता होनेसे प्रतीति होती है, जिसप्रकार अग्निमें तपायाहुआ जो लोहेका गोला तिसके विषे अग्निका गुण (दाहकताआदि) प्रतीत होताहै, और उस लोहेके गोलेके गुण (गोलाकार आदि) अग्निके विषे प्रतीत होने लगते हैं, और अग्निका गोला ऐसा व्यवहार होनेलगताहै,

चिद्बिम्बसाक्षात्मधियां प्रसङ्गतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ॥ अन्योऽन्यमध्यासवशात्प्रतीयते जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥ ४१ ॥
गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः संजातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ॥ स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥ ४२ ॥
प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः ॥ विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥ ४३ ॥

इसप्रकार परस्पर अध्यास होनेसे आत्माका धर्म चेतनपना बुद्धिके विषे, और बुद्धिका धर्म जड़पना आत्माके विषे प्रतीत होने लगताहै ॥ ४१ ॥ अब दृढ़ होनेके निमित्त पूर्वोक्त विषयकाही फिर अन्य रीतिसे वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! गुरुके सकाशसे और वेदांतवाक्योंके श्रवणसे अर्थात् श्रवण और मनन करनेसे प्राप्त हुआ है ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव जिसको ऐसा पुरुष अपने आत्माके विषेही स्थित उपाधिरहित चिदानंदस्वरूप आत्माका दर्शन कहिये साक्षात्कार करके आत्माके विषे भ्रान्तिकरके प्रतीत होनेवाला जो सम्पूर्ण दृश्यमान देह इन्द्रियादि जड़समूह तिसका त्याग करदेय, अर्थात् उदासीन वृत्तिका अवलंबन करै ॥ ४२ ॥ अब दोश्लोकोंकरके उपाधिरहित आत्मस्वरूपका वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! ज्ञानीपुरुष इसप्रकार भावना करै, कि मैं प्रकाशरूप हूँ, किसी अन्यसे प्रकाशित नहीं होताहूँ, जन्म-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Gollection. Digitized by eGangotri

आदि षड्भावविकारशून्य हूँ, अद्वितीय कहिये सजातीय विजातीय और स्वगतभेदशून्य हूँ, असकृत् विभात हूँ अर्थात् जो वस्तु किसीसमय सूर्यादिसे प्रकाशित होय वह सकृत्विभात कहलाती है, और मैं तो (न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्– तिस परमात्माके विषे न सूर्य प्रकाश करसक्ता है, और न चन्द्रमा तारागण आदि प्रकाश करसक्तेहैं) इस श्रुतिके अनुसार सूर्यादिके प्रकाशकरके रहित हूँ, किन्तु सूर्यादिकोंका भी प्रकाश करनेवाला हूँ, अत्यन्त निर्म्मल कहिये मायाके करेहुए आवरण विक्षेप आदि मलोंकरके रहित हूँ, विशुद्ध विज्ञानघन अर्थात् चैतन्यरूप एकरस हूँ, निरामय कहिये कर्तृत्व आदि अभिमानकरके रहित हूँ, सम्पूर्ण कहिये देशकालके परिच्छेदरहित सर्वव्यापी हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ और (अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे– यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीरके नष्ट होनेपर

सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ॥ अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधैर्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥ ४४ ॥
एवं सदात्मानमखण्डितात्मना विचारमाणस्य विशुद्धभावना ॥ हन्यादविद्यामचिरेण कारकै रसायनं यद्धदुपासितं रुजः ॥ ४५ ॥

इसका नाश नहीं होताहै) इस श्रुतिके अनुसार अक्रिय कहिये क्रियारहित होनेसे परिणामहीन हूँ ॥ ४३ ॥ मैं भूत, भविष्यत् और वर्तमानरूप तीनों कालोंमें मुक्त कहिये सर्व धर्म्मरहित हूँ, अचिन्त्यशक्तियुक्त हूँ, और (यतो वाचो निवर्त्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह– मन सहित वाणी न प्राप्त होकर जिस परमात्माके सकाशसे निवृत्त होजातीहै) इस श्रुतिके अनुसार अतीन्द्रियज्ञानस्वरूप हूँ, अविकियात्मक कहिये परिणामको नहीं प्राप्त होताहूँ, अनंतपार कहिये देशकालकृत् परिच्छेदरहित हूँ. रात्रि दिन वेदवेत्ता विद्वानोंकरके जो हृदयके विषे ध्यान कियाजाता है सो मैंही हूँ ॥४४॥ इसप्रकार भावना करनेके फलका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! इसप्रकार सदा अखण्डित कहिये बिषयोंसे न खिँचेहुए चित्तकरके ध्यान करतेहुए पुरुषकी वह विशुद्ध भावना अर्थात् ब्रह्माकार अंतःकरणकी वृत्ति उदय होतीहै. जो उदय होतेही जन्मान्तरोंको

॥२५॥

? अपनी जातिमें परस्परभेदको सजातीयभेद कहतेहैं; जैसे ब्राह्मणजातिमें द्विवेदी त्रिवेदी आदि भेद, और एकजातिसे दूसरी जातिके भेदको विजातीय भेद कहतेहैं, जैसे ब्राह्मणजातिका क्षत्रियजातिसे; और एकव्यक्तिमें अंगोंके परस्पर भेदको स्वगतभेद कहतेहैं, जैसे शरीरमें मुख हस्तादिका भेद.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देनेवाले कर्मोंसहित अविद्या (अज्ञान) को शीघ्रही इसप्रकार नष्ट करदेतीह जिसप्रकार सेवन कियाहुआ औषध शीघ्रही सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट कर देताहै ॥ ४५ ॥ अब ध्यान करनेकी रीतिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! निर्जनस्थानमें यथा योग्य शास्त्रके विषे कहेहुए पद्मासनादिके द्वारा बैठाहुआ विषयोंसे निवृत्त हुई हैं इन्द्रिय जिसकी, शम दम आदि साधन सम्पन्न होकर प्राणायाम आदिके द्वारा अंतःकरणको जीतकर शुद्धचित्त होकर विज्ञानरूप है दृष्टि जिसकी अर्थात् मैं देखनेवाला हूँ, और ये देखनेयोग्य है, ऐसे भावकरके रहित निर्विकल्पक असंप्रज्ञातसमाधिके विषे स्थित असंग पुरुष एक तत्त्वज्ञानहीको साधन मानकर आत्मस्वरूपका ध्यान करै ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! वह ध्यान करनेवाला पुरुष परमात्माही है प्रकाश करनेवाला जिसका ऐसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान संपूर्ण इस चराचर जगत्को मायाके

विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ॥ विभावयेदेकमनन्यसाधनो विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥ विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ॥ पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते न वेदबाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ॥ ४७ ॥ पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोंकारमात्रं सचराचरं जगत् ॥ तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाव्यते ज्ञानवशान्न बोधतः ॥ ४८ ॥

सन्निधानसे सम्पूर्ण जगत्के उपादान कारणरूप परमात्माके विषे लय करदेय, अर्थात् उपादानकारण सत्तासे भिन्न कार्यसत्ताको न देखै, ऐसा करनेपर ज्ञानी पुरुष पूर्ण हुए हैं सम्पूर्ण काम कहिये मनोरथ जिसके अर्थात् जिसको किसीप्रकारकी कामना नहीं है ऐसा अवाप्तसमस्तकाम चिदानंदस्वरूप होकर स्थित होता है, और फिर उसको बाहर भीतरकी कुछ प्रतीति नहीं होतीहै, सर्वत्र ब्रह्मरूपही दीखताहै ॥ ४७ ॥ समाधिकी सिद्धिसे प्रथम जो कुछ करना चाहिये तिसका उपदेश करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! सम्पूर्ण विषयोंकी आसक्तिको त्यागकर जो ब्रह्माकारवृत्ति होतीहै उसको समाधि कहतेहैं, तिस समाधिसे प्रथम सम्पूर्ण चराचर जगत्को ओंकाररूप जानै, कि जगत् वाच्य है और प्रणव कहिये ओंकार वाचक है, यह भावना ज्ञानवशसे होतीहै और जब निर्विशेष ब्रह्मका साक्षात्कार होजाताहै तब नहीं होतीहै, क्योंकि उस समय सम्पूर्ण वृत्तियें लीन होजा-

१ तस्य वाचकः प्रणवः । पात० यो० प्र० स० २७ सू० ९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीहैं ॥ ४८ ॥ तिस ओंकारके विषे अकार, उकार, मकार, यह तीन अक्षर हैं, अर्थात् अ—उ—म—इन तीन अक्षरोंको मिलकर ओम् बनता है, तहाँ आदि अक्षर जो अकार तिसका वाच्य अर्थ जाग्रत् अवस्थाका साक्षी जिसको वेदान्तशास्त्रमें विश्वशब्दसे कहतेहैं सो है, और द्वितीय अक्षर जो उकार तिसको वाच्य अर्थ सूक्ष्मशरीरका अभिमानी हिरण्यगर्भ कहाता है, और तीसरा अक्षर जो मकार सो तिसका वाच्य अर्थ संपूर्ण वेदोंके विषे सुषुप्ति अवस्थाका साक्षी प्राज्ञ मायोपाधिक ईश्वर हैं, ऐसी भावना करै, यह भावना ब्रह्मसाक्षात्कार होनेसे पहिलेही होतीहै, अनन्तर नहीं, क्योंकि—साक्षात्कार होनेके अनंतर सम्पूर्ण वृत्तियें लीन होजाती है ॥ ४९ ॥ अब नित्यसमाधिका वर्णन करनेके निमित्त जगत्को आत्मस्वरूपके विषे लय करनेकी रीतिका वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! विराट्रूप अनेकप्रकारसे स्थित विश्व जो अकारका वाच्य तिसको उकारका

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ॥ प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥ ४९ ॥ विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ॥ ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥ ५० ॥ मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम् ॥ सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥ ५१ ॥ एवं सदा जातपरात्मभावनः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः ॥ आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥ ५२ ॥

वाच्य जो हिरण्यगर्भरूप तैजस तिसके विषे लीन करैं अर्थात् तिसकाही रूप जानै, और तिस उकारका वाच्य जो स्वप्नअवस्थाका अभिमानी हिरण्यगर्भरूप तैजस, तिसको मकारका वाच्य जो ईश्वररूप प्राज्ञ तिसके विषे लीन करैं अर्थात् तिसकाहीरूप जानै ॥ ५० ॥ तदनन्तर उस पूर्वोक्त मकारको तथा तिस मकारका वाच्य जो ईश्वररूप प्राज्ञ अर्थात् कारणत्वका अभिमानी पुरुष तिसको चैतन्यघन परमात्माके विषे लीन करै अर्थात् उसको चैतन्यघन परमात्मरूप जानै, तदनंतर मैं उपाधिरहित, निर्मल, ज्ञानस्वरूप, संपूर्णके लीन होनेका स्थान, नित्यमुक्त हूँ, ऐसी भावना करै ॥ ५१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! इसप्रकार प्राप्त हुई है परमात्माके विषे पूर्ण भावना जिसको इसकारणही स्वरूपको आनन्दकरके सन्तुष्ट और परिणाममें दुःखरूप होनेके कारण पुत्रकलत्रादि सबको विस्मरण करताहुआ पूर्ण प्रकाशस्वरूप, आत्मस्वरूप और जीवन्मुक्त होकर निश्चलजलयुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रके समान विषयसम्बन्धरूप तरङ्गोंकरके रहित होकर स्थित होता है ॥ ५२ ॥ हे लक्ष्मण ! इसप्रकार सदा समाधियोगका अभ्यास करनेवाले और निवृत्त हुए हैं सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय जिससे, तथा जीतलिये हैं सम्पूर्ण काम क्रोधादि शत्रु जिसने, इसकारणही "सर्वज्ञत्व—सर्वज्ञ होना १ नित्यतृप्तत्व नित्य तृप्त रहना २ बोधरूपत्व ज्ञानस्वरूप होना ३ स्वतन्त्रत्व—स्वतन्त्र रहना ४ नित्यमलुप्तत्व—त्रिकालमें विद्यमान रहना और अनन्तरूपत्व—अनन्तरूप होना ६ " यह छः गुण हैं वशमें जिसके ऐसे जितात्मा भक्तको मैं सदा दर्शन देताहूँ ॥ ५३ ॥ हे लक्ष्मण ! इसप्रकार रात्रिदिन ध्यान करनेसे मुक्त होगए हैं सम्पूर्ण कर्म्मबन्धन जिसके ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष प्रारब्धकर्म्मोंके अनुसार निरभिमान होकर भोगोंको भोगताहुआ स्थित रहताहै, और प्रारब्धकर्म्मोंको भोगनेके अनन्तर मेरे विषेही लीन होजाताहै ॥५४॥ अब सम्पूर्ण धर्म्मोंसे यही श्रेष्ठ धर्म है इस वार्त्ताका वर्णन करतेहुए

एवं सदाऽभ्यस्तसमाधियोगिनो निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि ॥ विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥ ५३ ॥ ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनिस्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धनः ॥ प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥ ५४ ॥ आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो भवं विदित्वा भयशोककारणम् ॥ हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥ ५५ ॥ आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ॥ यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथाऽनिलः ॥ ५६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, किहे लक्ष्मण ! जिसप्रकार प्रथमही धनकी प्राप्ति करनेमें दुःख होता है, मध्यमें धनकी रक्षा करते समय राजा चौर आदिका दुःख होताहै, अन्तमें नाश होनेपर शोकरूप दुःख होताहै, इसीप्रकार संसारमात्रको आदि, मध्य और अन्तमें भय तथा शोकका कारण जानकर तिस संसारके कारणरूप " स्वर्गकामो यजते—स्वर्गकी इच्छा करनेवाला यज्ञ करै " इत्यादि बेदमें कहेहुए विधिवादों करके प्रेरणा करेहुए सम्पूर्ण कर्म्मजालका त्याग करके सम्पूर्ण जीवोंके स्वरूपभूत परमेश्वरका भजन करौ ॥ ५५ ॥ मेरे विषेही अभेदभावना करके नामरूपको त्यागकर सम्पूर्ण जगत् मेराही रूप होता है इस विषयको दृष्टान्तसहित वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! आत्मा कहिये सबका आश्रयरूप जो मैं तिस मेरे विषे इस अपने स्वरूप जीवको अभेदरूपसे ध्यान करताहुआ जिससमय प्राणी स्थित होता है, उससमय मुझ परमा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्माकरके अभिन्न होजाता है, अर्थात् मेराही स्वरूप होजाता है, तहाँ दृष्टान्त देते हैं कि जिसप्रकार समुद्रके विषे गयाहुआ नदीआदिका जल समुद्ररूप होजाता है, जैसे गो आदिके दुग्धमें ड़ालाहुआ जलदुग्धरूपही होजाता है, जिसप्रकार महाकाशके विषे घटाकाश घट फूटनेपर महाकाशरूपही होजाता है, और जिसप्रकार धौंकनी आदिका वायु महापवनमें मिलकर महापवनरूप होजाता है, इसीप्रकार मेरे स्वरूपमें मिलकर ज्ञानी मुझसाही होजाताहै, सोई मुण्डकउपनिषद्के विषे कहा है, कि—"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्—जिसप्रकार वहती हुई नदियें नामरूप रहित होकर समुद्रके विषे लीन होजाती हैं, इसीप्रकार ज्ञानीपुरुष नामरूपका त्यागकरके प्रकृतिसे पर दिव्यरूप परमपुरुषके विषे लीन होजाता है" ॥ ५६ ॥ इसप्रकार आत्मतत्वका ज्ञान होनेपर जगत्के सत्यत्वका भ्रम स्वयंही दूर होजाता है, इस वार्त्ताका वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं, कि हे लक्ष्मण ! लोकमें स्थितभी अर्थात् जीवन्मुक्तिदशामें प्रारब्धकर्म्मके अनुसार लोकव्यवहारको करताहुआभी

इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ॥ निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ॥ ५७ ॥
यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ॥ श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि ॥ ५८ ॥

ज्ञानी जगत्को मिथ्या निश्चय करताहुआ जब जीवात्मा और परमात्माकी एकताको जानता है, तब जगत्की सत्य प्रतीति होनेका भ्रम दूर होजाता है, क्योंकि—" अतोन्यदार्तम्— ब्रह्मसे अन्य सब मिथ्या है " इस श्रुतिके प्रमाणसे और "जगन्मिथ्या बाध्यमानत्वे सति प्रतीयमानत्वात् शुक्तिरजतादिवत्—जिसप्रकार सीपीमें भासमान रजत मिथ्या होताहै, तिसीप्रकार यह भासमान जगत् तत्वज्ञानसे बाधित होजानेसे मिथ्या है " इस अनुमानसे जगत् खण्डित होचुका है, तहाँ दृष्टान्तभी देते हैं, कि जिसप्रकार एक चंद्रमामें दो चंद्रमाओंका भ्रम एकतत्वके ज्ञानसे निवृत्त होता है, और जिसप्रकार एक दिशामें अन्य दिशाका भ्रम, अथवा घूमतेहुए पुरुषको दिशाओंके घूमनेका भ्रम, और समीपके वृक्षोंमें घूमनेका भ्रम, उनकी स्थिरताके ज्ञानसे दूर होताहै तिसीप्रकार आत्मस्वरूपकी एकताका ज्ञान होनेसे अर्थात् तत्वज्ञान होनेसे जगत्की सत्यताका भ्रम दूर होताहै ॥ ५७ ॥ ऐसे ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय केवल भगवत्की आराधनाही है, इसप्रकार वर्णन करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जबतक मैं ही हूँ आश्रय जिसका ऐसे सम्पूर्ण जगत्को मेरा विवर्त्तरूप नहीं देखै, अर्थात् जिस प्रकार सर्पकी प्रतीतिका आधार रज्जु है तिसी-प्रकार इस सम्पूर्ण जगत्का आधार ईश्वर है, जबतक यह ज्ञानदृष्टि प्राप्त न होय तबतक मेरी आराधनामें तत्पर रहै; उस अपने श्रद्धालु अत्यन्त भक्तियुक्त भक्तके हृदयमें मैं रात्रिदिन दर्शन देता हूँ, और उसको ऐसी बुद्धि देताहूँ, जिससे वह तत्त्वज्ञानको प्राप्त होकर मेरेमें लीन हो-जाताहै ॥ ५८ ॥ हे प्रिय भ्राता लक्ष्मण ! सम्पूर्ण वेदोंके सारके संग्रहरूप अत्यन्त गुप्तकरके रखनेयोग्य इस ज्ञानको निर्धारण करके मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन किया है, जो बुद्धिमान् पुरुष संसारमें इसका उत्तम रीतिसे विचार करता है वह क्षणमात्रमें पातकोंसे छूट जाता है, अर्थात् जो पाप मेरी आराधनामें विघ्नरूप होतेहैं, उनको दूर करनेका उपाय विचारपूर्वक इस रामगीताका पाठ करनाही है ॥ ५९ ॥ हे भ्रातः ! यह जो कुछ जगत् दीखता है, सो

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ॥ यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥ ५९ ॥ भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा ॥ मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥ ६० ॥ यः सेवते मामगुणं गुणात्परं हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ॥ सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन् पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥ ६१ ॥ विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम् ॥ यः श्रद्धया परिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः ॥ ६२ ॥ इति श्रीम० रा० उमामहेश्वरसं० उत्तरकाण्डे श्रीरामगीतायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

सब माया ही है, ऐसा जान चित्तसे सबका परित्याग करके मेरे ध्यान करनेसे शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिनका ऐसे होकर स्थित होओ; तब सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर परमानंदस्वरूप होते हुए सुखको प्राप्त होओगे ॥ ६० ॥ हे भ्रातः ! जो पुरुष जिस किसीसमयभी निर्म्मल अंतःकरणसे प्रकृतिके सत्वादि गुणोंकरके रहित सच्चिदानंदस्वरूप मायासे पर निर्गुणरूपका अथवा सर्वज्ञत्वआदि और सर्वोत्तम सुन्दरताआदि गुणयुक्त मेरे श्यामसुन्दर द्विभुज धनुर्धर रूपका सेवन करताहै वह मेरा भक्त मेराही स्वरूप होताहै, और अपने चरणोंकी लगीहुई धूलियोंसे स्पर्श करताहुआ त्रिलोकीको इसप्रकार पवित्र करता है जिसप्रकार सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे त्रिलोकीको पवित्र करतेहैं ॥ ६१ ॥ अब इस ग्रंथके अर्थका विचार करनेमें समर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषको पाठमात्रसेभी अत्यन्त फल होताहै, यह वार्ता वर्णन करतेहुए श्रीरामचंद्रजी कहतेहैं कि हे लक्ष्मण ! विज्ञानको उत्पन्न करनेवाले उपनिषदवाक्योंकरके जाननेयोग्य है जगत्की रचनाआदि कर्म्म जिसका ऐसे मुझकरके वर्णन करेहुए संपूर्ण श्रुतियोंके सारभूत, अद्वितीय इस रामगीतास्तोत्रको जो पुरुष गुरुके वाक्योंमें भक्ति और श्रद्धायुक्त होकर पढ़ताहै वह पुरुष यदि मेरे वचनोंमें विश्वास करनेवाला होय तो मेरे रूपको प्राप्त होजाताहै, सोही कहाभी है, कि " यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ जिस पुरुषकी परमेश्वरमें परमभक्ति होतीहै, और जैसी परमेश्वरमें तैसीही गुरुके विषेभी होती है, उस पुरुषको ही वेदान्तशास्त्रमें कहेहुए अर्थोंका प्रकाश होता है " ॥ ६२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृत

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः ॥ आजग्मू राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षसः ॥ १ ॥ कृत्वाग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं च्यवनं द्विजाः ॥ असङ्ख्याताः समायाता रामादभयकाङ्क्षिणः ॥ २ ॥ तान्पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोत्तमः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन्मुनिमण्डलम् ॥ ३ ॥ करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् ॥ धन्योऽस्मि यदि यूयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः ॥ ४ ॥ दुष्करं चापि यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम् ॥ आज्ञापयन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा दैवतं हि मे ॥ ५ ॥

मर्यादानामभाषाटीकायां रामगीतानाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! एकसमय यमुनाके तटपर निवास करनेवाले सम्पूर्ण मुनि लवणासुर राक्षसके भयसे श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके निमित्त आए ॥ १ ॥ वह असंख्य मुनि भृगुकुलशिरोमणि च्यवनऋषिको आगे करके श्रीरामचन्द्रजीसे अभयप्राप्ति (लवणासुरके भयसे छूटने) की इच्छा करके आए ॥ २ ॥ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी परमप्रीतिपूर्वक तिन मुनियोंका पूजन करके संम्पूर्ण मुनियोंको प्रसन्न करतेहुए श्रीरामचन्द्रजी मधुर वाक्य बोले ॥ ३ ॥ कि हे श्रेष्ठ मुनियों ! आपके आगमनका क्या कारण है, अर्थात् किसकार्य्यकी इच्छाकरके आप यहाँ आए हैं ? जिसको मैं करूँ, आज मैं धन्य हूँ, जो आप सब प्रसन्नतापूर्वक यहां मेरेको देखने आए ॥ ४ ॥ जो आपका अतिकठिन कार्य्य होगा उसको भी मैं करूँगा, आप मुझ सेवकको आज्ञा करिये,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि ब्राह्मणोंको मैं सदा अपने आराधन करनेयोग्य देवता मानता हूँ ॥ ५ ॥ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर शीघ्रही च्यवन ऋषि प्रसन्न होकर कहनेलगे, हे प्रभो ! पहिले सतयुगमें एक मधुनामक महादैत्य था ॥ ६ ॥ वह अत्यन्त धर्म्मात्मा और ब्राह्मण तथा देवताओंका पूजन करनेवाला था, उसको महादेवजीने प्रसन्न होकर एक अतिउत्तम त्रिशूल दिया ॥ ७ ॥ और कहदिया, कि हे मधुदैत्य ! इस त्रिशूलसे तू जिसके उपर प्रहार करैगा, वह भस्म होजायगा, कुंभीनसी नाम करके प्रसिद्ध रावणकी छोटी बहिन उसकी स्त्री थी ॥ ८ ॥ उस स्त्रीके विषे महाभयंकर पराक्रमी, देवता और ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाला, दुःसह दुष्टात्मा लवणासुर नामक राक्षस उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ हे राजेन्द्र !

तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ॥ मधुनामा महादैत्यः पुरा कृतयुगे प्रभो ॥ ६ ॥ आसीदतीव धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः ॥ तस्य तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ प्राह चानेन यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति ॥ रावणस्यानुजा भार्या तस्य कुम्भीनसी श्रुता ॥ ८ ॥ तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः ॥ आसीद्दुरात्मा दुर्धर्षो देवब्राह्मणहिंसकः ॥ ९ ॥ पीडितास्तेन राजेन्द्र वयं त्वां शरणं गताः ॥ तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भैर्वो मुनिपुङ्गवाः ॥ १० ॥ लवणं नाशयिष्यामि गच्छन्तु विगतज्वराः ॥ इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि भ्रातॄन् को वा हनिष्यति ॥ ११ ॥ लवणं राक्षसं दद्याद्ब्राह्मणेभ्योऽभयं महत् ॥ तच्छ्रुत्वा प्राञ्जलिः प्राह भरतो राघवाय वै ॥ १२ ॥ अहमेव हनिष्यामि देव ज्ञापय मां प्रभो ॥ ततो रामं नमस्कृत्य शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी ! उस लवणासुरसे पीडाको प्राप्त होकर हम सब आपकी शरणागत आए हैं, इसप्रकार मुनियोंके वचनको सुनतेही श्रीरामचन्द्रजी बोले, कि हे श्रेष्ठ मुनियों ! अब तुमको उस राक्षसका भय नहीं होगा ॥ १० ॥ आप दुःखको छोडकर अपने आश्रमोंको जाओ, मैं उस लवणासुरका नाश करदूंगा; इस प्रकार मुनियोंसे कहकर श्रीरामचंद्रजीने अपने भ्राताओंसे कहा, कि भैया इस लवणासुरको कौन मारैगा ? जो ब्राह्मणोंको अभयदान देना चाहे, वह कहै. इस वचनको सुनकर भरतजी हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि हे प्रभो ! हे देव ! मैंही इस राक्षसका संहार करूँगा आप मुझे आज्ञा दीजिये इस प्रकार भरतजीके कहतेही श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करके शत्रुघ्न यह वाक्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोले ॥ १३ ॥ कि हे रघुनाथजी ! संग्रामके विषे लक्ष्मणजीने बहुत कार्य्य किया, और नंदिग्राममें निवास करके परमप्रवीण भरतजीभी बहुत दुःखका अनुभव कर चुके हैं ॥ १४ ॥ इस कारण हे रघुनाथजी ! इस लवणासुरका वध करनेके निमित्त मैंही जाऊँगा; और आपके अनुग्रहसे युद्धमें उस राक्षसका वध करूंगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार शत्रुघ्नके कथनको सुनकर दुष्टदलन श्रीरामचंद्रजीने शत्रुघ्नको अपनी गोदमें बैठाया, और कहने लगे, कि हे शत्रुघ्न ! अभी मैं तुम्हारा मथुराके राज्यके लिये अभिषेक करताहूँ ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न अभिषेककी इच्छा नहीं करतेथे, तथापि श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे अभिषेककी सामग्रियें मँगवाकर प्रेमपूर्वक शत्रुघ्नको अभिषेक करदिया ॥ १७ ॥ और शत्रुघ्नको एक दिव्य

लक्ष्मणेन महत्कार्यं कृतं राघव संयुगे ॥ नंदिग्रामे महाबुद्धिर्भरतो दुःखमन्वभूत ॥ १४ ॥ अहमेव गमिष्यामि लवणस्य वधाय च ॥ त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हन्यां तं राक्षसं युधि ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा स्वाङ्कमारोप्य शत्रुघ्नं शत्रुसूदनः ॥ प्राहाद्यैवाभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् ॥ ॥ १६ ॥ आनाय्य च सुसम्भाराल्लँक्ष्मणेनाभिषेचने ॥ अनिच्छन्तमपि स्नेहादभिषेकमकारयत् ॥ १७ ॥ दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं रामः शत्रुघ्नमब्रवीत् ॥ अनेन जहि बाणेन लवणं लोककण्टकम् ॥ १८ ॥ स तु सम्पूज्य तच्छूलं गेहे गच्छति काननम् ॥ भक्षणार्थं तु जन्तूनां नानाप्राणिवधाय च ॥ १९ ॥ स तु नायाति सदनं यावद्धनचरो भवेत् ॥ तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्मुकः ॥ २० ॥ योत्स्यते स त्वया क्रुद्धस्तदा वध्यो भविष्यति ॥ तं हत्वा लवणं क्रूरं तद्धने मधुसंज्ञितम् ॥ २१ ॥

बाण देकर श्रीरामचंद्रजी बोले, कि हे भ्रातः शत्रुघ्न ! इस बाणसे लोककंटक (त्रिलोकीको दुःख देनेवाले) लवणासुरका संहार करो ॥ १८ ॥ परन्तु हे भ्रातः ! वह लवणासुर गृहमें अपने त्रिशूलको स्थापन करके जंतुओंको भक्षण करनेके निमित्त और अनेक प्राणियोंको मारनेके निमित्त वनको जाया करताहै ॥ १९ ॥ सो वह जबतक स्थानको लौटकर न आवै और वनमेंही रहै तबतक तुम उसके नगरके द्वारपर धनुष धारण करेहुए स्थित रहना ॥ २० ॥ वह आकर क्रुद्ध होताहुआ शूलविनाही तुम्हारेसाथ युद्ध करैगा, तब तुम उसको मारसकोगे, इसप्रकार उस क्रूर लव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णासुरको मारकर वहाँ जो मधुनामक वन है ॥ २१ ॥ तहाँ नगर वसाकर तुम मेरी आज्ञासे स्थित रहो, और पांच हजार घोड़े और उसके आधे अर्थात् ढाई हजार रथ, छःसौ हाथी और तीसहजार पैदल, पीछेसे आवेंगे. पहिले तुम जाकर उस राक्षसका नाश करो ॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने इसप्रकार कहकर, और मस्तकमें सूंघ कर, तथा अनेक आशीर्वाद देकर शत्रुघ्नको मुनियोंके साथ भेजदिया ॥ २४ ॥ शत्रुघ्नेभी जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा दीथी, तिसीप्रकार सम्पूर्ण कार्य्य किया, संग्राममें लवणासुरको मारकर मथुरापुरी वसाई, तहाँ देशके मनुष्योंको बहुत कुछ दान देके तथा सन्मान करके मथुरापुरीमें वसाया, और इधर वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें सीताजीभी दो पुत्र उत्पन्न हुए

निवेश्य नगरं तत्र तिष्ठ त्वं मेऽनुशासनात् ॥ अश्वानां पंचसाहस्रं रथानां च तदर्धकम् ॥ २२ ॥ गजानां षट् शतानीह पत्तीनामयुतत्रयम् ॥ आगमिष्यति पश्चात्त्वमग्रे साधय राक्षसम् ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा मूर्ध्न्यवघ्राय प्रेषयामास राघवः ॥ शत्रुघ्नं मुनिभिः सार्धमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ २४ ॥ शत्रुघ्नोपि तथा चक्रे यथा रामेण चोदितः ॥ हत्वा मधुसुतं युद्धे मथुरामकरोत्पुरीम् ॥ २५ ॥ स्फीतां जनपदां चक्रे मथुरां दानमानतः ॥ सीतापि सुषुवे पुत्रौ द्वौ वाल्मीकेरथाश्रमे ॥ २६ ॥ मुनिस्तयोर्नाम चक्रे कुशो ज्येष्ठोऽनुजो लवः ॥ क्रमेण विद्यासम्पन्नौ सीतापुत्रौ बभूवतुः ॥ २७ ॥ उपनीतौ च मुनिना वेदाध्ययनतत्परौ ॥ कृत्स्नं रामायणं प्राह काव्यं बालकयोर्मुनिः ॥ २८ ॥ शङ्करेण पुरा प्रोक्तं पार्वत्यै पुरहारिणा ॥ वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥ २९ ॥ कुमारौ स्वरसम्पन्नौ सुन्दरावश्विनाविव ॥ तन्त्रीतालसमायुक्तौ गायन्तौ चेरतुर्वने ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ २६ ॥ वाल्मीकि मुनिने उन दोनों पुत्रोंमेंसे बडेका नाम कुश और छोटेका नाम लव रक्खा; वह सीताके दोनों पुत्र क्रमक्रमसे सम्पूर्ण विद्याओंको जाननेवाले होगये ॥ २७ ॥ फिर वाल्मीकि मुनिने उनका उपनयन संस्कार (यज्ञोपवीतजनेऊ) करादिया, तब तत्पर होकर वेदाध्ययन करने लगे, तदनंतर उन दोनों बालकोंको वाल्मीकि मुनिने अपनी रचना करीहुई सम्पूर्ण रामायण पढ़ादी ॥ २८ ॥ जो रामायण पूर्वकालमें शिवजीने पार्वतीके अर्थ वर्णन कियाथा, वही रामायण वेदोंके अर्थका तात्पर्य्य जाननेके निमित्त वाल्मीकि मुनिने उन दोनों कुमारोंको पढाई ॥ २९ ॥ सुन्दर स्वरवाले और अश्विनीकुमारोंके समान सुंदर रूपवान; वह दोनों कुमार वीणाकी तालयुक्त रामायणका गान करते हुए वनमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचरने लगे, जहाँ तहाँ मुनियोंके समाजमें गान करते हुए; इन दोनों सुन्दर रूपवान् कुमारोंको देखकर आश्चर्य्यको प्राप्त हुए चारों ओरसे कहते थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कि हमारी बडी बडी अवस्था होगई, और बहुत काल पर्यन्त हमने भ्रमण करके सम्पूर्ण दिशा देखीं, परंतु न गन्धर्वोंमें, न किन्नरोंमें, न पृथिवीतलपर, न स्वर्गमें देवताओंमें, न पाताललोकमें न ब्रह्मलोकमें और क्या कहैं कि संपूर्णलोकोंमें हमने ऐसी गानेबजानेकी उत्तमता न देखी और न सुनी ॥ ३२ ॥ इसप्रकार प्रतिदिन सम्पूर्ण मुनि प्रशंसा करते थे, तिन तिन मुनियों करके चिरकालपर्यन्त वह दोनों कुमार वनमें वाल्मीकि मुनिके विषे निवास करते रहे ॥ ३३ ॥ इधर परमकांतिमान् श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णकी सीता बनाकर बहुतसी दक्षिणा-

तत्र तत्र मुनीनां तौ समाजे सुररूपिणौ ॥ गायन्तावभितो दृष्ट्वा विस्मिता मुनयोऽब्रुवन् ॥ ३१ ॥ गन्धर्वेष्विव किन्नरेषु भुवि वा देवेषु देवालये पातालेष्वथवा चतुर्मुखगृहे लोकेषु सर्वेषु च ॥ अस्माभिश्चिरजीविभिश्चिरतरं दृष्ट्वा दिशः सर्वतो नाज्ञायीदृशगीतवाद्यगरिमा नादर्शि नाश्रावि च ॥ ३२ ॥ एवं स्तुवद्भिरखिलैर्मुनिभिः प्रतिवासरम् ॥ आसाते सुखमेकान्ते वाल्मीकेराश्रमे चिरम् ॥ ३३ ॥ अथ रामोऽश्वमेधादींश्चकार बहुदक्षिणान् ॥ यज्ञान् स्वर्णमयीं सीतां विधाय विपुलद्युतिः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्वितानेऽऋषयः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः समाजग्मुर्दिदृक्षवः ॥ ३५ ॥ वाल्मीकिरपि सङ्गृह्य गायन्तौ तौ कुशीलवौ ॥ जगाम ऋषिवाटस्य समीपं मुनिपुङ्गवः ॥ ३६ ॥ तत्रैकान्ते स्थितं शान्तं समाधिविरमे मुनिम् ॥ कुशः पप्रच्छ वाल्मीकिं ज्ञानशास्त्रं कथान्तरे ॥ ३७ ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि संक्षेपाद्भवतोऽखिलम् ॥ देहिनः संसृतिर्बंधः कथमुत्पद्यते दृढः ॥ ३८ ॥

वाले अश्वमेधादि यज्ञ करे, तिन यज्ञके समाजमें सम्पूर्ण ऋषि, राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य देखनेकी इच्छासे आये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ मुनिवर वाल्मीकिजीभी तिन रामायणका गान करनेवाले कुश और लवके साथमें लेकर यज्ञमें मुनियोंके समाजमें पहुँचे ॥ ३६ ॥ तहाँ समाधि लगानेके अनन्तर एकान्तस्थानमें बैठेहुए शांतस्वरूप वाल्मीकिमुनिसे शास्त्र विषयक वार्ता करते करते कुशने ज्ञानविषयक प्रश्न किया ॥ ३७ ॥ कि हे भगवन् ! मैं सम्पूर्ण ज्ञानशास्त्रको आपसे संक्षेपसे श्रवण करना चाहताहूँ, कि प्राणीको संसाररूपी दृढ़ बंधन किसप्रकार प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और प्राणी तिस संसाररूप दृढ़ बंधनसे किसप्रकार छूटताहै ? हे सर्वज्ञ मुने ! मुझ शिष्यके अर्थ वर्णन करिये ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले कि- हे पुत्र ! मैं तेरे अर्थ बन्ध और मोक्षका सम्पूर्ण स्वरूप तथा साधन संक्षेपसे वर्णन करताहूँ, तिसको मुझसे श्रवण करो, और श्रवण करके जिसप्रकार मैं वर्णन करूँ उसीप्रकार आचरण करो, तब तुम्हारा कल्याण होयगा. और जीवन्मुक्त होजाओगे; हे पुत्र ! वास्तवमें आत्मा अदेह है अर्थात् देहके सम्बन्धकरके रहित है, तथापि जिसप्रकार प्राकृतपुरुषोंका निवास करनेके स्थानसे तादात्म्यसम्बन्ध नहीं होताहै, तथापि वह स्थानका स्वामी उस स्थानमें निवास करताहै, तिसी प्रकार यह देह चेतनस्वरूप आत्माके निवास करनेका बड़ा स्थान है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ तिस चैतन्यस्वरूप आत्माका इस देहरूप स्थानके विषे तिसकाही रचाहुआ अहंकाररूप मंत्री है, वह अहंकार देहरूपी स्थानका "यह मेरा है" इसप्रकारका अभिमान तिस चैतन्यस्व-

कथं विमुच्यते देही दृढबंधाद्भवाभिधात् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ मह्यं शिष्याय ते मुने ॥ ३९ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ शृणु वक्ष्यामि ते सर्वं संक्षेपाद्बंधमोक्षयोः ॥ स्वरूपं साधनं चापि मत्तः श्रुत्वा यथोदितम् ॥ ४० ॥ तथैवाचर भद्रं ते जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥ देह एव महागेहमदेहस्य चिदात्मनः ॥ ४१ ॥ तस्याहंकार एवास्मिन्मंत्री तेनैव कल्पितः ॥ देहगेहाभिमानं स्वं समारोप्य चिदात्मनि ॥ ४२ ॥ तेन तादात्म्यमापन्नः स्वचेष्टितमशेषतः ॥ विदधाति चिदानंदे तद्भासितवपुः स्वयम् ॥ ४३ ॥ तेन संकल्पितो देही सङ्कल्पनिगडावृतः ॥ पुत्रदारगृहादीनि सङ्कल्पयति चानिशम् ॥ ४४ ॥ सङ्कल्पयन्स्वयं देही परिशोचति सर्वदा ॥ त्रयस्तस्याहमो देहा अधमोत्तममध्यमाः ॥ ४५ ॥

रूप आत्माके विषे आरोपण करके उस आत्माके साथ तादात्म्य (एकरूपता) को प्राप्त होताहुआ अपनी सम्पूर्ण चेष्टा (व्यापार) को तिस चैतन्य स्वरूप आत्माके विषे दिखाता है, और वह अहंकार जडभी तिस चैतन्यस्वरूप आत्माके प्रकाशसे सामर्थ्यको प्राप्त होकर अनेक प्रकारके व्यापार करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तिस अहंकारकरके संकल्पको प्राप्त हुआ अर्थात् देहका अभिमान करनेवाला आत्मा संकल्परूपी बेड़ियोंसे बँधकर रात्रिदिन पुत्र, स्त्री और स्थानआदिकी इच्छा करता रहताहै ॥ ४४ ॥ फिर वह देहाभिमानी आत्मा संकल्प करके यदि इच्छित पदार्थको नहीं प्राप्त होताहै अथवा इच्छित वस्तु प्राप्तहोकर नष्ट होजाती है तो रात्रि दिन अत्यन्त शोक करताहै, तिस अहंकारके तीन देह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, अधम १ उत्तम २ और मध्यम ३ ॥ ४५ ॥ तीनों शरीर क्रमसे तम १ सत्व २ और रजोगुण ३ नामवाले और जगत्की स्थितिके कारण हैं, तिनमें तमोगुणकी प्रधानताकरके कियेहुए संकल्पसे पुरुष नित्य तामसचेष्टाकरके अर्थात् अज्ञानके कारण पशुओंके समान आचरण करके अत्यन्त तामस होकर कृमिकीटआदि योनियोंमें जन्म लेताहै और जब सत्वगुणप्रधान संकल्प करताहै तब पुरुष धर्म्म और ज्ञानमें तत्पर होताहै, और समीपही है मोक्षरूपी चक्रवर्त्ती राज्यका सुख जिसके ऐसा होकर स्थित होताहै और जब रजोगुणप्रधान संकल्प करताहै तब पुरुष लौकिक व्यवहारकी चतुरताको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ और संसारमें पुत्रकलत्रादिके प्रेममें मग्न रहताहै, हे परमप्रवीण ! इस तीन प्रकारके

तमःसत्वरजःसंज्ञा जगतः कारणं स्थितेः ॥ तमोरूपाद्धि सङ्कल्पान्नित्यं तामसचेष्टया ॥ ४६ ॥ अत्यन्तं तामसो भूत्वा कृमिकीटत्वमाप्नुयात् ॥ सत्त्वरूपो हि सङ्कल्पो धर्मज्ञानपरायणः ॥ ४७ ॥ अदूरमोक्षसाम्राज्यः सुखरूपो हि तिष्ठति ॥ रजोरूपो हि सङ्कल्पो लोके स व्यवहारवान् ॥ ४८ ॥ परितिष्ठति संसारे पुत्रदारानुरञ्जितः ॥ त्रिविधं तु परित्यज्य रूपमेतन्महामते ॥ ४९ ॥ सङ्कल्पः परमाप्नोति पदमात्मपरिक्षये ॥ दृष्टीः सर्वाः परित्यज्य नियम्य मनसा मनः ॥ ५० ॥ सबाह्याभ्यन्तरार्थस्य संकल्पस्य क्षयं कुरु ॥ यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि दारुणम् ॥ ५१ ॥ पातालस्थस्य भूस्थस्य स्वर्गस्थस्याऽपि तेऽनघ ॥ नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति सङ्कल्पोपशमादृते ॥ ५२ ॥ अनाबाधेऽविकारे स्वे सुखे परमपावने ॥ सङ्कल्पोपशमे यत्नं पौरुषेण परं कुरु ॥ ५३ ॥ सङ्कल्पतन्तौ निखिला भावाः प्रोक्ताः किलानघ ॥ छिन्ने तन्तौ न जानीमः क्व यान्ति विभवाः पराः ॥ ५४ ॥

अहंकारके शरीरको त्यागकर संकल्परूप अपने स्वरूपका नाश होनेपर परमपदको प्राप्त होताहै, हे पुत्र ! इसकारण सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको त्यागकर, और शुद्ध मनके द्वारा विषयासक्त मनको जीतकर बाह्य विषयोंसहित तथा आभ्यन्तर विषयोंसहित संकल्पका नाश करो, हे कुश ! यदि तुम हजारवर्षपर्यन्त अति कठोर तप करोगे, पातालमें जाकर रहोगे, भूतलपर निवास करोगे, चाहै स्वर्गलोकमें जाकर निवास करोगे परन्तु संकल्पको नष्ट करनेके सिवाय कोई दूसरा उपाय मोक्षकी प्राप्तिका नहीं मिलैगा, इसकारण हे पुत्र ! दुःखरहित निर्विकार परम पवित्र आत्मसुखकी प्राप्तिके निमित्त संकल्पको दूर करनेके विषयमें अत्यन्त पुरुषार्थपूर्वक यत्न करो ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ हे निष्पाप कुश ! ज्ञानी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन दोनों मुनिकुमारोंको दशहजार मुहरैं देदो ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाके अनुसार भरतजी दशहजार मुहरैं देनेलगे, परन्तु इन बालकोंने ग्रहण नहीं करीं; और बोले कि हे राजन् ! हम वनके फलमूलोंका भोजन करनेवाले हैं, इस धनसे हमको क्या प्रयोजन है ? ॥ १४ ॥ इसप्रकार उस दियेहुए धनको त्यागकर दोनों बालक वाल्मीकि मुनिके समीप चलेगये, उन दोनों बालकोंसे इसप्रकार अपना चरित्र सुनकर श्रीरामचंद्रजी परमआश्चर्य्यको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ और उन दोनोंको सीताके पुत्र जानकर शत्रुघ्न, हनुमान्, सुषेण, बिभीषण और अंगदसे कहने लगे ॥ १६ ॥ कि भगवान् महात्मा मुनिश्रेष्ठ देवतुल्य वाल्मीकिऋषिको सीतासहित बुलालाओ ॥ १७ ॥ इस सभामें जानकी यदि शपथ

दीयमानं सुवर्णं तु न तज्जगृहतुस्तदा ॥ किमनेन सुवर्णेन राजन्नौ वन्यभोजनौ ॥ १४ ॥ इति सन्त्यज्य सन्दत्तं जग्मतुर्मुनिसन्निधिम् ॥ एवं श्रुत्वा तु चरितं रामः स्वस्यैव विस्मितः ॥ १५ ॥ ज्ञात्वा सीताकुमारौ तौ शत्रुघ्नं चेदमब्रवीत् ॥ हनूमन्तं सुषेणं च बिभीषणमथाङ्गदम् ॥ १६ ॥ भगवन्तं महात्मानं वाल्मीकिं मुनिसत्तमम् ॥ आनयध्वं मुनिवरं ससीतं देवसंमितम् ॥ १७ ॥ अस्यास्तु पार्षदो मध्ये प्रत्ययं जनकात्मजा ॥ करोतु शपथं सर्वे जानन्तु गतकल्मषाम् ॥ १८ ॥ सीतां तद्वचनं श्रुत्वा गताः सर्वेऽतिविस्मिताः ॥ ऊचुर्यथोक्तं रामेण वाल्मीकिं रामपार्षदाः ॥ १९ ॥ समस्य हृद्गतं सर्वं ज्ञात्वा वाल्मीकिरब्रवीत् ॥ श्वः करिष्यति वै सीता शपथं जनसंसदि ॥ २० ॥ योषितां परमं दैवं पतिरेव न संशयः ॥ तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा सर्वे प्रोचुर्मुनेर्वचः ॥ २१ ॥ राघवस्यापि रामोऽपि श्रुत्वा मुनिवचस्तथा ॥ राजानो मुनयः सर्वे शृणुध्वमिति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

करके विश्वास दिलावेंगी तो सब पुरुष सीताको निष्पाप जानलेंगे, इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेको सुनकर सब आश्चर्य्यमें होगये, और शत्रुघ्न, हनुमान् आदि श्रीरामचंद्रजीके पार्षद वाल्मीकि ऋषिके पास आये, और जिसप्रकार श्रीरामचंद्रजीने कहा था सो सब निवेदन किया ॥ १८ ॥ ॥१९॥ वाल्मीकि मुनि शत्रुघ्न आदिके कथनसे श्रीरामचंद्रजीके हृदयकी सम्पूर्ण वार्ता जानकर कहने लगे कि जानकी कलको सभामें आनकर शपथ करैगी ॥ २० ॥ निःसंदेह पतिही स्त्रियोंकी परम देवता है, इसप्रकार वाल्मीकिजीके कथनको सुनकर शत्रुघ्न आदि सब आये और श्रीरामचंद्रजीको मुनिका वचन कह सुनाया ॥ २१ ॥ श्रीरामचंद्रजी शत्रुघ्नसे इसप्रकार मुनिके कथनको सुनकर कहने लगे, कि हे राजाओ ! हे मुनियो ! हे सब लोगो !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनो ॥ २२ ॥ सीताकी शपथको देखकर आप सब पुरुष उसका धर्म अधर्म्म निर्णय करलें. इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, महर्षि तथा वानर, आश्चर्यमें होकर वह कुतूहल देखनेकी इच्छा करके आये ॥ २३ ॥ २४ ॥ तदनंतर शीघ्रही मुनिवर वाल्मीकिजी सीतासहित आये, आगे वह वाल्मीकि ऋषि और पीछे कुछ नीचेको मुख करीहुई सीताजी हाथ जोड़े हुए और नेत्रोंमें जलभरे हुए यज्ञस्थानमें प्रविष्ट हुई, ब्रह्माके पीछे आतीहुई लक्ष्मीके समान वाल्मीकि मुनिके पीछे आतीहुई तिन सीताजीको देखकर सम्पूर्ण सभाके पुरुष धन्य धन्य कहने लगे, उस समय सीतासहित वाल्मीकि मुनि तिस जनसमूहमें आकर श्रीरामचंद्रजीसे इसप्रकार बोले कि हे दशरथकु-

सीतायाः शपथं लोका विजानन्तु शुभाशुभम् ॥ इत्युक्ता राघवेणाथ लोकाः सर्वे दिदृक्षवः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महर्षयः ॥ वानराश्च समाजग्मुः कौतूहलसमन्विताः ॥ २४ ॥ ततो मुनिवरस्तूर्णं ससीतः समुपागमत् ॥ अग्रतस्तमृषिं कृत्वा यान्ती किंचिदवाङ्मुखी ॥ २५ ॥ कृताञ्जलिर्बाष्पकण्ठा सीता यज्ञं विवेश तम् ॥ दृष्ट्वा लक्ष्मीमिवायान्तीं ब्रह्माणमनुयायिनीम् ॥ २६ ॥ वाल्मीकेः पृष्ठतः सीतां साधुवादो महानभूत् ॥ तदा मध्ये जनौघस्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः ॥ २७ ॥ सीतासहायो वाल्मीकिरिति प्राह च राघवम् ॥ इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी ॥ २८ ॥ अपापा ते पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः ॥ लोकापवादभीतेन त्वया राम महावने ॥ २९ ॥ प्रत्ययं दास्यते सीता तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ इमौ तु सीतातनयाविमौ यमलजातकौ ॥ ३० ॥ सुतौ तु तव दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ प्रचेतसोऽहं दशमःपुत्रो रघुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥ अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमौ तव पुत्रकौ ॥ बहून्वर्षगणान् सम्यक्तपश्चर्या मया कृता ॥ ३२ ॥

मार रामचंद्र ! यह पतिव्रता धर्मचारिणी निष्पाप सीता तुमने पहिले लोकापवादसे भयभीत होकर महाबनमें मेरे आश्रमके समीप त्यागदी थी ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ वह सीता इस सभामें विश्वासदायक शपथ करैगी, सो अब तुम आज्ञा दो, यह दोनों सीताके पुत्र एकसाथ उत्पन्न हुए हैं और बड़े दुर्द्धर्ष तुम्हारेही पुत्र हैं यह मैं तुमसे सत्य कहताहूँ, हे रघुकुलपालक रामचंद्र ! मैं प्रचेताका दशवाँ पुत्र हूँ, कदापि मिथ्या भाषणका स्मरणभी नहीं करताहूँ और मैंने तुमसे यह जो कहा कि यह दोनों पुत्र तुम्हारेही हैं सो सत्यही समझो; हे रामचंद्र ! मैं शपथ करताहूँ कि यदि यह जानकी निष्पाप न होय तो मैं बहुत वर्ष पर्यन्त पूर्ण रीतिसे करीहुई अपनी तपस्याके फलको नहीं प्राप्त होऊँ. इस प्रकार वाल्मीकिमुनिके कहनेपर श्रीरामचंद्रजी ॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष इस प्रकार कहतेहैं कि संसारके सम्पूर्ण पदार्थ संकल्परूपी सूत्र (डोरे) में बँधे हुए हैं, तिस संकल्परूपी तन्तुके टूटतेही न जानै वह संपूर्ण पदार्थ कहाँ जातेहैं अर्थात् लीन होजातेहैं ॥ ५४ ॥ इसकारण हे पुत्र ! तिसकारण संकल्परूपी बन्धन दूर करके प्रारब्धके अनुसार जो व्यवहार प्राप्त होय उसको करतेहुए स्थित रहो, क्योंकि—संकल्पजालके नष्ट होनेपर पुरुष ब्रह्मरूपको प्राप्त होजाताहै ॥ ५५ ॥ और हठ करके संकल्पजालको त्यागकरके प्राप्त हुआ है परमार्थ कहिये ब्रह्मतत्व जिसको ऐसा होकर तिस अद्वितीय पदको प्राप्तहो, तब सुषुप्ति अवस्थाके तुल्य अर्थात् सम्पूर्ण विषयों करके रहित ब्रह्माकार चित्तकी वृत्ति होनेपर परमसुखकी प्राप्ति होयगी ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं. कि हे पार्वति ! वाल्मीकि मुनिके उपदेश

निःसंकल्पो यथाप्राप्तव्यवहारपरो भव ॥ क्षये सङ्कल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ अधिगतपरमार्थतामुपेत्य प्रसभमपास्य विकल्पजालमुच्चैः ॥ अधिगमय पदं तदद्वितीयं विततसुखाय सुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥ ५६ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ वाल्मीकिना बोधितोऽसौ कुशः सद्यो गतभ्रमः ॥ अन्तर्मुक्तो बहिः सर्वमनुकुर्वश्चचार सः ॥ १ ॥ वाल्मीकिरपि तौ प्राह सीतापुत्रौ महाधियौ ॥ तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वतः ॥ २ ॥ रामस्याग्रे प्रगायेतां शुश्रूषुर्यदि राघवः ॥ न ग्राह्यं वै युवाभ्यां तद्यदि किञ्चित्प्रदास्यति ॥ ३ ॥ इति तौ चोदितौ तत्र गायमानौ विचेरतुः ॥ यथोक्तं ऋषिणा पूर्वं तत्रतत्राभ्यगायताम् ॥ ४ ॥

करनेसे शीघ्रही उसका भ्रम (संसारको सत्य माननारूप अज्ञान) नष्ट होगया, तदनंतर वह कुश अंतःकरणके विषे ज्ञानवान् होकरभी प्रारब्धकर्म्मोंके अनुसार बाह्यव्यवहारोंको करने लगा ॥ १ ॥ तदनंतर जहाँ तहाँ अयोध्यापुरीकी संपूर्ण गलियोंमें रामायणका गान करते हुए तिन परम बुद्धिमान् सीताकुमार कुश और लवसे वाल्मीकि मुनिने कहा ॥ २ ॥ कि हे पुत्रो ! यदि रघुनाथजी श्रवण करना चाहैं तौ तुम उन रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके सामने इस रामायणका अवश्य गान करो; और यदि वह तुम दोनोंको कुछ धन दे तो ग्रहण न करना ॥ ३ ॥ इसप्रकार वाल्मीकिमुनिके प्रेरणा करेहुए वह दोनों कुमार तिस अयोध्यापुरीमें रामायणका गान करते हुए फिरने लगे, और जहाँ जहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहिले ऋषिने बता दिया तहाँ तहाँ गान किया ॥ ४ ॥ सो पुरवासियोंसे श्रीरामचन्द्रजीने यह वार्ता सुनी थी कि दो बालक आपके पूर्वचरित्रोंको मानकी रीतिसे ऐसा पाठ करते हैं जो कदापि पहिले नहीं सुनीथी ॥ ५ ॥ इसप्रकार तिन बालकोंकी प्रशंसा सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बडे आश्चर्यको प्राप्त हुए और यज्ञ कर्म्मके विषे विश्राम करनेके समय बडे बडे मुनीश्वरोंको, राजाओंको, वेदशास्त्रके जाननेवाले पण्डितोंको, पुराणके जाननेवालोंको तथा और जो कोई वृद्ध ब्राह्मण थे उन सबोंको बुलाकर श्रीरामचंद्रजीने तिन दोनों गान करनेवाले बालकोंको बुलाया, उन दोनों बालकोंको तथा श्रीरामचंद्रजीको देखकर वह सब आये हुए राजा और ब्राह्मण आदि चित्तमें परमप्रसन्न हुए, और परम आश्चर्यको प्राप्त हो अनिमेष

तां स शुश्राव काकुत्स्थः पूर्ववर्यां ततस्ततः ॥ अपूर्वपाठजातिं च गेयेन समभिप्लुताम् ॥ ५ ॥ बालयो राघवः श्रुत्वा कौतूहलमुपेयिवान् ॥ अथ कर्मान्तरे राजा समाहूय महामुनीन् ॥ ६ ॥ राज्ञश्चैव नरव्याघ्रः पण्डितांश्चैव नैगमान् ॥ पौराणिकान्शब्दविदो ये च वृद्धा द्विजातयः ॥ ७ ॥ एतान्सर्वान्समाहूय गायकौ संप्रवेशयत् ॥ ते सर्वे हृष्टमनसो राजानो ब्राह्मणादयः ॥ ८ ॥ रामं तौ दारकौ दृष्ट्वा विस्मिता ह्यनिमेषणाः ॥ अवोचन् सर्व एवैते परस्परमथागताः ॥ ९ ॥ इमौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद्बिम्बमिवोदितौ ॥ जटिलौ यदि न स्यातां न च वल्कलधारिणौ ॥ १० ॥ विशेषं नाधिगच्छामो राघवस्यानयोस्तदा ॥ एवं संवदतां तेषां विस्मितानां परस्परम् ॥ ११ ॥ उपचक्रमतुर्गातुं तावुभौ मुनिदारकौ ॥ ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमतिमानुषम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा तन्मधुरं गीतमपराह्णे रघूत्तमः ॥ उवाच भरतं चाभ्यां दीयतामयुतं वसु ॥ १३ ॥

(जिसमें पलक न लगाये जायँ) दृष्टिसे परस्पर देखतेहुए इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ कि यह दोनों बालक जैसे सूर्यमंडलसे दूसरा सूर्य्यमण्डल उदय होजाय, तिसी प्रकार साक्षात् श्रीरामचंद्रजीके समान प्रतीत होते हैं, यदि यह दोनों बालक जटावल्कलधारी नहीं होते तबतौ इन दोनों बालकोंमें और श्रीरामचंद्रजीसे कोईभी विशेषता नहीं होती, इसप्रकार आश्चर्य्यमें होकर वह सब परस्पर वार्ता कररहे थे, इतनेहींमें उन दोनों मुनिकुमारोंने गानेका प्रारम्भ करदिया, तबतौ वह मधुर गान आदिसे अंतपर्यन्त ऐसाहुआ कि जो कभी किसी मनुष्यने श्रवण नहीं किया था ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजी तीसरे पहरके समय उस मधुरगानको श्रवण करके भरतजीसे बोले कि हे भ्रातः !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोले ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे परमप्रवीण तपस्विन् ! यह जो कुछ आप कहते हैं इन आपके निर्दोष वाक्योंसे मुझे विश्वास होगया ॥ ३४ ॥ और लंकापुरीमें भी मैंने देवताओंके सन्मुख अग्निमें प्रवेश करके सीताका पूर्ण विश्वास कर लियाथा, तबही मैं अपने स्थानको लायाथा ॥ ३५ ॥ परन्तु हे ब्रह्मन् ! निष्पापभी इस पतिव्रता सीताको लोकनिन्दाके कारण मैंने त्याग दियाथा, सो अपराध आप क्षमा करदीजिये ॥ ३६ ॥ और कुश तथा लव यह दोनों पुत्र मेरेही उत्पन्न हुए हैं यह मैं जानता हूँ, परन्तु इस लोकमें शुद्धि होनेपर सीताके विषे मेरी प्रीति होय इस अभिप्रायसे मैंने अब शपथ करनेको कहा है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर सम्पूर्ण देवता और श्रीरामचन्द्रजीका अभिप्राय जानकर उत्कंठासे

नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली ॥ वाल्मीकिनैवमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥ एवमेतन्महाप्राज्ञ यथा वदसि सुव्रत ॥ प्रत्ययो जनितो मह्यं तव वाक्यैरकिल्बिषैः ॥ ३४ ॥ लङ्कायामपि दत्तो मे वैदेह्या प्रत्ययो महान् ॥ देवानां पुरतस्तेन मन्दिरे सम्प्रवेशिता ॥ ३५ ॥ सेयं लोकभयाद्ब्रह्मन्नपापापि सती पुरा ॥ सीता मया परित्यक्ता भवांस्तत्क्षन्तुमर्हति ॥ ३६ ॥ ममैव जातौ जानामि पुत्रावेतौ कुशीलवौ ॥ शुद्धाया जगतीमध्ये सीताया प्रीतिरस्तु मे ॥ ३७ ॥ देवाः सर्वे परिज्ञाय रामाभिप्रायमुत्सुकाः ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ३८ ॥ प्रजाः समागमन्हृष्टाः सीता कौशेयवासिनी ॥ उदङ्मुखी ह्यधोदृष्टिः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ रामादन्यं यथाहं वै मनसापि न चिन्तये ॥ तथा मे धरणी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ ४० ॥

ब्रह्माजीको आगे करके आगये ॥ ३८ ॥ और हजारों प्रजाके मनुष्य प्रसन्न होकर जहाँ तहाँसे उस कौतुकको देखनेके निमित्त आये, उस जनसमूहमें रेशमी वस्त्र धारण करेहुई सीताजी उत्तरकी ओरको मुख करके नीचेको दृष्टि कर हाथ जोड़ेहुए यह वाक्य बोली ॥ ३९ ॥ कि जिसप्रकार मैं श्रीरामचंद्रजीसे अन्य पुरुषका मनसेभी चिन्तवन नहीं करती हूँ, इसप्रकारके मेरे पातिव्रत्य धर्ममें यदि कुछ दोष नहीं है तौ पृथ्वी देवी मुझे विवर देनेयोग्य है अर्थात् यदि मैं रामचंद्रसे अन्य पुरुषका मनमेंभी चिन्तवन नहीं करतीहूँ तौ पृथ्वी फट जाय और मैं इसमें समजाऊँ ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार सीताजीके शपथ करनेपर परम आश्चर्यदायक अतिउत्तम दिव्य सिंहासन पृथ्वीमेंसे प्रकट हुआ उस सूर्यके समान कान्तिमान् सिंहासनको दिव्य देहधारी नाग अपने मस्तकपर धारण करेहुए थे उस सिंहासनपर बिराजमान पृथ्वी देवीने प्रेमपूर्वक अपनी भुजाओंसे सीताजीको ग्रहण करके अपने दिव्य सिंहासनपर बैठाया, और कहा कि बहुत अच्छा हुआ, उस सिंहासनपर बैठके रसातलमें प्रवेश करतीहुई जनककुमारीके ऊपर आकाशसे निरंतर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हुई, और देवता परम आश्चर्यमें होकर धन्य धन्य कहने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आकाशमें स्थित देवता, पृथ्वीतलपर स्थित सम्पूर्ण स्थावर जंगम, और बड़े बड़े शरीरधारी वानर, यह सब सीताजीके इसप्रकार शपथ करनेसे कोई परस्पर वार्ता करने लगे, कि सीताजीसे ऐसा कराना

तथा शपन्त्या सीतायाः प्रादुरासीन्महाद्भुतम् ॥ भूतलाद्दिव्यमत्यर्थं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥ नागेन्द्रैर्ध्रियमाणं च दिव्यदेहैः रविप्रभम् ॥ भूदेवी जानकीं दोर्भ्यां गृहित्वा स्नेहसंयुता ॥ ४२ ॥ स्वागतं तामुवाचैनामासने संन्यवेशयत् ॥ सिंहासनस्था वैदेहीं प्रविशन्तीं रसातलम् ॥ ४३ ॥ निरन्तरा पुष्पवृष्टिर्दिव्या सीतामवाकिरन् ॥ साधुवादश्च सुमहान् देवानां परमाद्भुतः ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च बहुधा वाचो अन्तरिक्षगताः सुराः ॥ अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमाः ॥ ४५ ॥ वानराश्च महाकायाः सीताशपथकारणात् ॥ केचिच्चिन्तापरास्तस्याः केचिच्च्यानपरायणाः ॥ ४६ ॥ केचिद्रामं निरीक्षन्तः केचित्सीतामचेतसः ॥ मुहूर्तमात्रं तत्सर्वं तूष्णीम्भूतमचेतनम् ॥ ॥ ४७ ॥ सीताप्रवेशनं दृष्ट्वा सर्वं सम्मोहितं जगत् ॥ रामस्तु सर्वं ज्ञात्वैव भविष्यत्कार्यगौरवम् ॥ ४८ ॥

उचित नहीं था, कोई कहनेलगे कि लंकामें तौ शपथ कराही लीथी, फिर अब शपथ लेना योग्य नहीं था, कोई इसप्रकार चिंतामें होगये कि अब सीता कहाँ जायँगी, कोई नाचेको मुख करके सीताजीका ध्यान करनेलगे, कोई श्रीरामचंद्रजीके मुखकी ओरको देखनेलगे, कोई सीताजीका शोक करने लगे और मूर्छित होगये, अधिक क्या कहाजाय उस समय किसीका भी चित्त सावधान नहीं था, वह संपूर्ण सभाका स्थान कुछ देरतक ऐसा होगया कि मानो यहाँ कोई चेतन हैही नहीं, अर्थात् कुछ देरपर्यन्त उस सभास्थानमें किसीप्रकारका शब्द सुननेमें नहीं आया ॥४५॥४६॥४७॥ सीताके पृथ्वीमें समाजा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेको देखकर सम्पूर्ण जगत् मोहको प्राप्त होगया और श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण होनेवाले कार्यको जानकर भी अज्ञपुरुषके समान दुःखित होकर जानकीजीका शोक करने लगे, तब श्रीरामचन्द्रजीको ऋषियोंसहित ब्रह्माजीने समझाया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार होगये कि जैसे कोई पुरुष शयनकरके उठता है, तदनंतर यज्ञकी बाकी बची हुई क्रियाओंको समाप्त किया, फिर सम्पूर्ण ऋषियोंको बिदा किया, तदनंतर जो यज्ञ करानेवाले ऋत्विज आये थे उन सबको बहुत धन रत्न देकर प्रसन्न किया और बिदा करादिया, फिर उन दोनों कुमारोंको लेकर श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें आये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तबसे लेकर श्रीरामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राजभोगोंमें स्पृहा (इच्छा) त्यागदी, नित्य

अजानन्निव दुःखेन शुशोच जनकात्मजाम् ॥ ब्रह्मणा ऋषिभिः सार्धं बोधितो रघुनन्दनः ॥ ४९ ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नाच्चकारानन्तराः क्रियाः ॥ विससर्ज ऋषीन् सर्वानृत्विजो ये समागताः ॥ ५० ॥ तान् सर्वान् धनरत्नाद्यैस्तोषयामास भूरिशः ॥ उपादाय कुमारौ तावयोध्यामगमत्प्रभुः ॥ ५१ ॥ तदादि निस्पृहो रामः सर्वभोगेषु सर्वदा ॥ आत्मचिन्तापरो नित्यमेकान्ते समुपस्थितः ॥ ५२ ॥ एकान्ते ध्याननिरते एकदा राघवे सति ॥ ज्ञात्वा नारायणं साक्षात्कौसल्या प्रियवादिनी ॥ ५३ ॥ भक्त्यागत्य प्रसन्नं तं प्रणता प्राह हृष्टधीः ॥ राम त्वं जगतामादिरादिमध्यान्तवर्जितः ॥ ५४ ॥ परमात्मा परानन्दः पूर्णः पुरुष ईश्वरः ॥ जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकतः ॥ ५५ ॥ अवसाने ममाप्यद्य समयोऽभूद्रघूत्तम ॥ नाद्याप्यबोधजः कृत्स्नो भवबन्धो निवर्तते ॥ ५६ ॥

एकान्तमें बैठकर आत्मस्वरूपका विचार करनेमें तत्पर रहे ॥ ५२ ॥ एकसमय एकान्तमें श्रीरामचन्द्रजी ध्यानमें तत्पर स्थित थे उनको साक्षात् नारायण जानकर प्रियभाषिणी कौशल्या आई, और तिन प्रसन्नस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रसन्नचित्त हो कहने लगी कि हे रामचंद्र ! तुम सम्पूर्ण संसारके आदिकारण हो, और तुम आदि, मध्य तथा अन्त रहित हो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे रामचंद्र ! परमात्मा परमानंद पूर्ण पुरुष ईश्वर होकरभी मेरे पुण्योंकी अधिकतासे मेरे गर्भरूपी स्थानमें आकर प्रकट हुए हो ॥ ५५ ॥ हे रघुकुलशिरोमणे ! तुम्हारे अवतारके समाप्तिकालमें अपनी वृद्धावस्था होनेपर मुझे प्रश्न करनेका समय मिला है, कि हे रामचंद्र ! तुम्हारे संगसे किंचिन्मात्र निवृत्त हुआ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला संसारबंधन पूर्ण रीतिसे नहीं निवृत्त हुआ ॥ ५६ ॥ हे रामचंद्र ! इसे अंतसमयभी जिसप्रकार मुझे संसारको निवृत्त करनेवाला ज्ञान प्राप्त होजाय तिसप्रकार संक्षेपसे उपदेश करो ॥ ५७ ॥ परमदयालु मातृभक्त धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इसप्रकार विषयोंसे विरक्त होकर कहतीहुई अपनी शुभलक्षणा वृद्ध मातासे बोले ॥ ५८ ॥ कि हे मातः ! मैंने पहिले कर्म्मयोग, ज्ञानयोग और निरंतर भक्तियोग यह तीन मार्ग मोक्षप्राप्तिके साधन कहे हैं ॥ ५९ ॥ हे मातः ! भक्तिके भिन्न भिन्न तीन गुण होनेसे तीन प्रकारकी है, जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी भक्ति भी वैसीही भिन्न होती है ॥ ६० ॥ जो पुरुष हिंसा (शत्रुका मारणआदि) के उद्देशसे, दम्भके (पूजाकरनेसे धनादिफलप्राप्तिकी इच्छाके) उद्देशसे, मात्सर्य्यके उद्देशसे, भेद दृष्टि करके तथा संरम्भ (तिन २ विषयोंका आग्रह) करके मेरी भक्ति करता है वह मेरा तामस

इदानीमपि मे ज्ञानं भवबन्धनिवर्तकम् ॥ यथा सङ्क्षेपतो भूयात्तथा बोधय मां विभो ॥ ५७ ॥ निर्वेदवादिनीमेवं मातरं मातृवत्सलः ॥ दयालुः प्राह धर्मात्मा जराजर्जरितां शुभाम् ॥ ५८ ॥ मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः ॥ कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः ॥ ५९ ॥ भक्तिर्विभिद्यते मातस्त्रिविधा गुणभेदतः ॥ स्वभावो यस्य यस्तेन तस्य भक्तिर्विभिद्यते ॥ ६० ॥ यस्तु हिंसां समुद्दिश्य दम्भं मात्सर्यमेव वा ॥ भेददृष्टिश्च संरम्भी भक्तो मे तामसः स्मृतः ॥६१॥ फलाभिसंधिर्भोगार्थी धनकामो यशस्तथा ॥ अर्चादौ भेदबुद्ध्या मां पूजयेत्स तु राजसः ॥ ६२ ॥ परस्मिन्नर्पितं यस्तु कर्मनिर्हरणाय वा ॥ कर्तव्यमिति वा कुर्याद्भेदबुद्ध्या स सात्विकः ॥६३॥ मद्गुणाश्रयणादेव मय्यनन्तगुणालये ॥ अविच्छिन्ना मनोवृत्तिर्यथा गङ्गाम्बुनोऽम्बुधौ ॥ तदेव भक्तियोगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि ॥ ६४ ॥

भक्त कहाता है ॥ ६१ ॥ स्वर्गादि फलकी कामनाकरके इस लोकके भोगोंकी इच्छा करके, धनकी इच्छा करके तथा यशकी इच्छा करके जो पुरुष भेदबुद्धि (ईश्वर उपास्य है मैं उपासक हूँ इसप्रकारकी भेदबुद्धि) करके मेरा पूजन करता है वह मेरा राजस भक्त कहाता है ॥ ६२ ॥ और जो पुरुष जो कुछ कर्म्म करै वह परमात्माके अर्थ अर्पण करके करे, अथवा संसाररूप बंधनकी निवृत्तिके अर्थ भगवद्भजन मुझे अवश्य करना चाहिये, इसप्रकार मनमें विचार कर दास स्वामीभावसे मेरा पूजन करै वह मेरा सात्विक भक्त कहाता है ॥ ६३ ॥ हे मातः ! मेरे गुणोंका श्रवण करनेहीसे जिस पुरुषके अन्तःकरणकी वृत्ति, अनन्त कल्याणगुणोंका आश्रय जो मैं तिस मेरे विषे समुद्रमें वेगसे जातेहुए गंगाके प्रवा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हके समान विच्छेदरहित (निरन्तर) स्वाभाविक लगजाती है, सो निर्गुण भक्तियोगका लक्षण है ॥ ६४ ॥ किसीप्रकारके फलकी इच्छा न करके मेरे विषे जो निरन्तर भक्ति होती है, वह भक्ति सालोक्य १, सामीप्य २, सारूप्य ३ और सायुज्य ४, यह चार प्रकारकी मुक्ति देती है ॥६५॥ परन्तु मेरे भक्त उस मुक्तिको ग्रहण न करके परम आनन्दस्वरूप जो मैं तिस मेराही सेवन करते हैं. हे मातः ! भक्तिमार्गका यही पूर्णयोग है ॥ ६६ ॥ इस पूर्ण भक्तियोगके प्रभावसेही पुरुष तीनों गुणोंको अतिक्रमण करके मेरे भावको प्राप्त होता है, अब इस भक्तियोगके साधनोंका वर्णन करते हैं, कि बड़ा भारी काम कहिये फलप्राप्तिकी इच्छा तिसको त्यागना, और नित्यनैमित्तिकरूप अपने धर्म्मका आचरण (करना) सोई

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मयि जायते ॥ सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा ॥ ६५ ॥ ददात्यपि न गृह्णन्ति भक्ता मत्सेवनं विना ॥ स एवात्यन्तिको योगो भक्तिमार्गस्य भामिनि ॥ ६६ ॥ मद्भावं प्राप्नुयात्तेन अतिक्रम्य गुणत्रयम् ॥ महता कामहीनेन स्वधर्माचरणेन च ॥ ६७ ॥ कर्मयोगेन शस्तेन वर्जितेन विहिंसनम् ॥ मद्दर्शनस्तुतिमहापूजाभिः स्मृतिवन्दनैः ॥ ६८ ॥ भूतेषु मद्भावनया सङ्गेनासत्यवर्जनैः ॥ बहुमानेन महतां दुःखिनामनुकम्पया ॥ ६९ ॥ स्वसमानेषु मैत्र्या च यमादीनां निषेवया ॥ वेदान्तवाक्यश्रवणान्मम नामानुकीर्तनात् ॥ ७० ॥ सत्सङ्गेनार्जवेणेव ह्यहमः परिवर्जनात् ॥ कांक्षया मम धर्मस्य परिशुद्धान्तरो जनः ॥ ७१ ॥

हुआ क्रियायोग, इस हिंसारहित और परमप्रशंसनीय कर्म्मयोग करके, मेरी सगुणमूर्तिका दर्शन करनेसे, स्तुति करनेसे, परमपूजा करनेसे, स्मरण (भजन) करनेसे, प्रणाम करनेसे संपूर्ण प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे, अर्थात् संपूर्ण प्राणियोंको मेराही रूप माननेसे, दुष्टोंके संगका परित्याग करके भक्तोंकी संगति करनेसे, मिथ्याभाषणका त्याग करनेसे, महात्मा पुरुषोंके बहुत सन्मान करनेसे, दुःखित प्राणियोंके ऊपर दया करनेसे, अपने समान अवस्थागुण आदियुक्त पुरुषोंके विषे मित्रता करनेसे, यम–नियम आदिका सेवन करनेसे, वेदान्तवाक्योंका श्रवण करनेसे, मेरे नामका कीर्त्तन करनेसे, सत्संगति करनेसे, कोमलतायुक्त स्वभाव रखनेसे, देह आदि अनात्म कहिये जड़पदार्थोंके विषे अहंबुद्धिका त्याग करनेसे और शुद्धसात्विक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवद्धर्म्मकी इच्छा करनेसे शुद्ध हुआ है अन्तःकरण जिसका ऐसा पुरुष मेरे गुणोंका श्रवण करनेसे शीघ्रही मेरे सारूप्यको इसप्रकार प्राप्त होजाता है. जिसप्रकार वायुके वशसे कमलआदिसे सुगन्धि उड़कर नासिकाको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ इसीप्रकार योगाभ्यासके विषे लगाहुआ चित्तभी आत्माके विषे प्रवेश करता है. हे मातः ! सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे मैं आत्मरूप करके स्थित हूँ, तिस मुझ आत्मस्वरूपको विना जाने देहबुद्धिसे सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे द्वेषबुद्धि करताहुआ विमूढ़ात्मा पुरुष केवल बाहरकी क्रियाओंके द्वारा उत्पन्न हुए गन्ध पुष्प आदि अनेकप्रकारके द्रव्योंकरके बहिर्दृष्टिसे भक्तिरहित प्रतिमाके विषे मेरा पूजन करता है, उस प्राणियोंका अपमान करनेवाले देहदृष्टि पुरुषके ऊपर

मद्गुणश्रवणादेव याति मामञ्जसा जनः ॥ यथा वायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत् ॥ ७२ ॥ योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥ सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः ॥ ७३ ॥ तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः ॥ क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मे नाम्ब तोषणम् ॥ ७४ ॥ भूतावमानिनार्चायामर्चितोऽहं न पूजितः ॥ ७५ ॥ तावन्मामर्चयेद्देवं प्रतिमादौ स्वकर्मभिः ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु स्थितं चात्मनि न स्मरेत् ॥ ७६ ॥ यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च ॥ भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः ॥ ७७ ॥ मामतः सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम् ॥ एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चार्चेदभिन्नधीः ॥ ७८ ॥ चेतसैवानिशं सर्वभूतानि प्रणमेत्सुधीः ॥ ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम् ॥ ७९ ॥

न मैं प्रसन्न होताहूँ, और न उस पूजाको स्वीकार करताहूँ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ हे मातः ! प्राणिको योग्य है कि तबतक वर्णाश्रमधर्म्मके अनुसार प्रतिमा आदिके विषे मुझ दिव्यरूपका पूजन करै जबतक सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे तथा अपने अन्तःकरणके विषे स्थित मुझको यथावत् न जाने ॥ ७६ ॥ जो पुरुष अपना तथा परका भेद करता है, उस भेददृष्टि पुरुषको निःसन्देह मैं मृत्युरूप होकर भय देताहूँ ॥ ७७ ॥ हे मातः ! इसकारण भिन्न भिन्न प्रतीत होनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे मुझ अद्वितीय परमात्माकोही स्थित जानकर अभेददृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे सत्कार और मित्रताकरके मेरा पूजन करै ॥ ७८ ॥ बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके विषे मुझ शुद्ध चैतन्यस्वरूप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोही जीवरूपसे स्थित जानकर रात्रि दिन सम्पूर्ण प्राणियोंको चित्तसेही प्रणाम करै ॥ ७९ ॥ तिसकारण जीव और ईश्वरके विषे कदापि भेद-दृष्टि न करै, हे मातः ! इसप्रकार यह भक्तियोग और ज्ञानयोग तेरे अर्थ वर्णन किया ॥ ८० ॥ इन दोनोंसे एककाभी अवलम्बन करके पुरुष कल्याणको प्राप्त होता है तिस कारण हे मातः ! भक्तियोगके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयकेमें स्थित जो मैं तिस मुझको ईश्वररूप करके अथवा पुत्ररूपकरकेही स्मरण करके शान्तिसुखको प्राप्त होजायगी, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके वचनको सुनकर कौशल्या परम आनन्दकरके युक्त हुई ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ और सदा हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करनेसे संसाररूपी बन्धनको छेदन करके, तथा तीनगति कहिये सात्विकी

तस्मात्कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयोः ॥ भक्तियोगो ज्ञानयोगो मया मातरुदीरितः ॥ ८० ॥ आलम्ब्यैकतरं वापि पुरुषः शममृच्छति ॥ ततो मां भक्तियोगेन मातः सर्वहृदि स्थितम् ॥ ८१ ॥ पुत्ररूपेण वा नित्यं स्मृत्वा शान्तिमवाप्स्यसि ॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं कौसल्यानन्दसंयुता ॥ ८२ ॥ रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम् ॥ अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम् ॥ ८३ ॥ कैकेयी चापि योगं रघुपतिगदितं पूर्वमेवाधिगम्य श्रद्धाभक्तिप्रशान्ता हृदि रघुतिलकं भावयन्ती गतासुः ॥ गत्वा स्वर्गं स्फुरन्ती दशरथसहिता मोदमानावतस्थे माता श्रीलक्ष्मणस्याप्यतिविमलमतिः प्राप भर्तुः समीपम् ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे मातॄणां स्वर्गप्रस्थानं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अथ काले गते कस्मिन् भरतो भीमविक्रमः ॥ युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽगात्ससैनिकः ॥ १ ॥

राजसी और तामसी गतिको उल्लंघन करके परमगति (मोक्ष) को प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ कैकेयीभी पहिले चित्रकूटपर दिये हुए श्रीरामचन्द्रजीके उपदेशको प्राप्त होकर शान्तस्वरूप हो श्रद्धा और भक्ति पूर्वक रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीका हृदयमें ध्यान करतीहुई प्राणोंको त्याग कर स्वर्गलोकको प्राप्त हो दिव्यरूप धारण करके प्रकाशवान् महाराजा दशरथके सहित आनन्द करतीहुई स्थित हुई; तथा अतिनिर्मलबुद्धि, श्रीलक्ष्मण जीकी माता सुमित्राभी पतिके समीप प्राप्त हुई ॥ ८४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! तदनन्तर कुछ काल व्यतीत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होनेपर भीमपराक्रमी भरतजी युधाजित् नामक अपने मामाके बुलानेपर सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे उनके यहाँ गए ॥ १ ॥ तहाँ उस देशके समीप निवास करनेवाले तीन करोड़ गन्धर्वोंको मारकर भरतजीने दो नगर वसाय ॥ २ ॥ उनमेंसे एक नगरका नाम पुष्करावती रक्खा, उसमें पुष्कर नामक पुत्रको और दूसरे नगरका नाम तक्षशिला रक्खा उसमें तक्षनामक अपने पुत्रको अभिषेक करदिया, और उनको बहुत धन धान्य दिया, और अनेक मित्रवर्ग उनके समीप नियत करदिये ॥ ३ ॥ और तहाँसे अयोध्यापुरीमें आकर फिर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी आदर और प्रेमपूर्वक लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण ! तुम अपने दोनों पुत्रोंको लेकर पश्चिमदिशाको

रामाज्ञया गतास्तत्र हत्वा गन्धर्वनायकान् ॥ तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः ॥ २ ॥ पुष्करं पुष्करावत्यां तक्षं तक्षशिलाह्वये ॥ अभिषिच्य सुतौ तत्र धनधान्यसुहृद्वृतौ ॥ ३ ॥ पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् ॥ ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं प्राह सादरम् ॥ ४ ॥ उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् ॥ तत्र म्लेच्छान्विनिर्जित्य दुष्टान् सर्वोपकारिणः ॥ ५ ॥ अङ्गदश्चित्रकेतुश्च महासत्वपराक्रमौ ॥ द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नकैः ॥ ६ ॥ अभिषिच्य सुतौ तत्र शीघ्रमागच्छ मां पुनः ॥ रामस्याज्ञां पुरस्कृत्य गजाश्वबलवाहनः ॥ ७ ॥ गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् स्थापयित्वा कुमारकौ ॥ सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् ॥ ८ ॥ ततस्तु काले महति प्रयाते रामं सदा धर्मपथे स्थितं हरिम् ॥ द्रष्टुं समागादृषिवेषधारी कालस्ततो लक्ष्मणमित्युवाच ॥ ९ ॥

जाओ, तहाँ सबको दुःख देनेवाले दुष्ट म्लेच्छोंको जीतकर तहाँ परमपराक्रमी और महाबली अंगद तथा चित्रकेतु नामक अपने दोनों पुत्रोंके निमित्त दो नगर वसाओ तहाँ गजाश्व और धनरत्नोंसहित अभिषेककरके शीघ्र मेरेपास लौट आओ, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको स्वीकार कर हाथी घोड़े आदि सेनासहित लक्ष्मणजी गए, तहाँ सम्पूर्ण दुष्टोंका नाशकरके और अपने दोनों पुत्रोंको राज्य देकर अयोध्यापुरीको लौट आए, और श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ तदनन्तर बहुतसमयके अनन्तर सदा धर्म्ममार्गपर स्थित साक्षात् विष्णु भगवान्का अवतार जो श्रीरामचन्द्रजी तिनका दर्शन करनेके निमित्त साक्षात् काल ऋषिका रूप धारण करके आया और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मणजीसे इसप्रकार बोला ॥ ९ ॥ कि हे परमप्रवीण लक्ष्मण ! तुम श्रीरामचंद्रजीसें जाकर निवेदन करो, कि अतिबल महर्षिका दूत आपका दर्शन करनेकी इच्छा करता है, क्योंकि तिन श्रीरामचंद्रको मुझे तिन अतिबलनामक महर्षिका संदेशा देरतक कहनाहै ॥ १० ॥ उस ऋषिवेषधारी कालका इसप्रकार वचन सुनकर लक्ष्मणजी शीघ्रही श्रीरामचंद्रजीके अर्थ निवेदन किया, कि महाराज ! आपका दर्शन करनेके निमित्त एक तपस्वी आए हैं ॥ ११ ॥ इसप्रकार कहनेपर श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे यह वचन कहा, कि हे भ्रातः ! तिन ऋषिको शीघ्रही सत्कारपूर्वक यहाँ लिवालाओ ॥ १२ ॥ सो लक्ष्मणजी " बहुत अच्छा " कहकर अपने तेजसे घृतकी आहुतिसे

निवेदयस्वातिबलस्य दूतं मां द्रष्टुकामं पुरुषोत्तमाय ॥ रामाय विज्ञापनमस्ति तस्य महर्षिमुख्यस्य चिराय धीमन् ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिस्त्वरयान्वितः ॥ आचचक्षेऽथ रामाय स संप्राप्तं तपोधनम् ॥ ११ ॥ एवं ब्रुवन्तं प्रोवाच लक्ष्मणं राघवो वचः ॥ शीघ्रं प्रवेश्यतां तात मुनिः सत्कारपूर्वकम् ॥ १२ ॥ लक्ष्मणस्तु तथेत्युक्त्वा प्रावेशयत तापसम् ॥ स्वतेजसा ज्वलन्तं तं घृतसिक्तं यथानलम् ॥ १३ ॥ सोऽभिगम्य रघुश्रेष्ठं दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ मुनिर्मधुरवाक्येन वर्धस्वेत्याह राघवम् ॥ १४ ॥ तस्मै स मुनये रामः पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ पृष्ट्वानामयमव्यग्रो रामः पृष्टोऽथ तेन सः ॥ १५ ॥ दिव्यासने समासीनो रामः प्रोवाच तापसम् ॥ यदर्थमागतोऽसि त्वमिह तत्प्रापयस्व मे ॥ १६ ॥ वाक्येन चोदितस्तेन रामेणाह मुनिर्वचः ॥ द्वन्द्वमेव प्रयोक्तव्यमनालक्ष्यं तु तद्वचः ॥ १७ ॥

जाज्वल्यमान अग्निके समान प्रकाशवान् तिन ऋषिको लिवागए ॥ १३ ॥ अपने तेजसे प्रकाशवान् वह ऋषिवेषधारी काल श्रीरामचंद्रजीके समीप जाकर मधुरवाणीसे बोला कि " ऐश्वर्य्यकी वृद्धि होय " ॥ १४ ॥ तिन मुनिकी श्रीरामचंद्रजीने विधिपूर्वक पूजा करके कुशल बूझी, तदनन्तर तिन मुनिने भी सावधान होकर श्रीरामचंद्रजीसे कुशल बूझी ॥ १५ ॥ तदनन्तर दिव्य आसनके ऊपर विराजमान श्रीरामचंद्रजी तिस तपस्वीसे बोले, कि हे मुने ! जिस प्रयोजनसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है, सो मेरे अर्थ आज्ञा कीरिये ॥ १६ ॥ इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर मुनिवेषधारी काल बोला, कि मैं और आप दोही जने होयँ तब आपके अर्थ निवेदन करूँ, क्योंकि वह वार्त्ता किसी अन्यके जाननेकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है ॥ १७ ॥ जो मैं आपसे कहूँ उसको न दूसरा सुनै, और न तो आप किसीको कहैं, और हे प्रभो ! मेरे आपके उस गुप्त वार्त्तालापको जो कोई सुनै अथवा देखै, उसको आप प्राणान्त दण्ड दे ॥ १८ ॥ इसप्रकार ऋषिवेषधारी कालके वचनको स्वीकार करके श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि हे भ्रातः ! तुम द्वारपर स्थित रहो, जिससे मेरे पास एकान्तमें कोई पुरुष न आने पावै ॥ १९ ॥ और जो कोई मेरे पास आवैगा, मैं निःसन्देह उस पुरुषको प्राणदण्ड दूँगा, तदनन्तर एकान्तमें श्रीरामचंद्रजी तिन ऋषिसे बोले, कि तुम्हैं किसने भेजा है ? और तुम्हारे मनमें क्या वार्त्ता कहनेकी इच्छा है सो मुझसे कहो. तब वह मुनिवेषधारी काल बोला, कि हे श्रीरामचंद्रजी ! जो कुछ कहना है सो यथावत् कहताहूँ, आप श्रवण

नान्येन चैतच्छ्रोतव्यं नाख्यातव्यं च कस्यचित् ॥ शृणुयाद्वा निरीक्षेद्वा यः स वध्यस्त्वया प्रभो ॥ १८ ॥ तथेति च प्रतिज्ञाय रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ तिष्ठ त्वं द्वारि सौमित्रे नायात्वत्र जनो रहः ॥ १९ ॥ यद्यागच्छति को वापि स वध्यो मे न संशयः ॥ ततः प्राह मुनिं रामो येन वा त्वं विसर्जितः ॥ २० ॥ यत्ते मनीषितं वाक्यं तद्ब्रूस्व ममाग्रतः ॥ ततः प्राह मुनिर्वाक्यं शृणु राम यथातथम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मणा प्रेषितोऽस्मीश कार्यार्थे तेऽन्तिकं प्रभो ॥ अहं हि पूर्वजो देव तव पुत्रः परन्तप ॥ २२ ॥ मायासङ्गमजो वीर कालः सर्वहरः स्मृतः ॥ ब्रह्मा त्वामाह भगवन् सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ २३ ॥ रक्षितुं स्वर्गलोकस्य समयस्ते महामते ॥ पुरा त्वमेक एवासीर्लोकान् संहृत्य मायया ॥ २४ ॥ भार्यया सहितस्त्वं मामादौ पुत्रमजीजनः ॥ तथा भोगवतं नागमनन्तमुदकेशयम् ॥ २५ ॥

करिये ॥ २० ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! मुझे ब्रह्माजीने, कुछ कार्य्यके निमित्त आपके पास भेजाहै, और हे परंतप ! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ ॥ २२ ॥ हे वीर ! श्रीरामचंद्रजी ! जिससमय आपका मायासे संयोग हुआ, उस समय प्रथमही सबका संहार करनेवाला मैं कालनामक उत्पन्न हुआ, हे भगवन् ! संपूर्ण देवर्षियोंकरके पूजित ब्रह्माजीने आपको यह कहा है ॥ २३ ॥ कि हे महामते ! अब यह समय आपका स्वर्गलोकमें देवताओंकी रक्षा करनेका है, पहिले मायाके द्वारा संपूर्ण लोगोंका संहार करके आप एकही थे ॥ २४ ॥ फिर अपनी भार्य्या (स्त्री) जो माया तिस करके सहित हो आपने आदिमें मुझपुत्रको उत्पन्न किया, तथा अनेक हैं फणा जिसके ऐसे जलके विषे शयन करनेवाले अनन्त (शेष) नागको उत्पन्न किया ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार मायाके द्वारा महाबली परमपराक्रमी शेषनाग और मुझे उत्पन्न करके, और हे पुरुषश्रेष्ठ ! मधु तथा कैटभ इन दोनो दैत्योंका वध करके, इनकी मेदा (चरबी) और अस्थियोंके समूहसे पर्वतोंसहित पृथ्वीको रचा, और सूर्य्यके समान दिव्यरूप कमलको अपनी नाभिके विषे उत्पन्न करके तिसके विषे मुझे उत्पन्न किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ और मुझे प्रजाका स्वामी बनाकर सम्पूर्ण प्रजाका भार मुझे सौंप दिया, सो प्रजापालनादिका भार अंगीकार करनेवाले मैंने आपसे कहा कि हे जगत्पते ! जो मेरे पराक्रमका नाश करनेवाले प्राणी हैं तिनसे मेरी रक्षा करिये, तब आप सर्वव्यापी होकर भी कश्यपऋषिसे अदितिसे वामनरूप धारण करके प्रकट हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ और राक्षसोंका वध करके

मायया जनयित्वा त्वं द्वौ ससत्वौ महाबलौ ॥ मधुकैटभकौ दैत्यौ हत्वा मेदोऽस्थिसञ्चयम् ॥ २६ ॥ इमा पर्वतसम्बद्धां मेदिनीं पुरुषर्षभ ॥ पद्मे दिव्यार्कसङ्काशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ॥ २७ ॥ मां विधाय प्रजाध्यक्षं मयि सर्वं न्यवेदयत् ॥ सोऽहं संयुक्तसम्भारस्त्वामवोचं जगत्पते ॥ २८ ॥ रक्षां विधत्स्व भूतेभ्यो ये मे वीर्यापहारिणः ॥ ततस्त्वं कश्यपाज्जातो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ २९ ॥ हृतवानसि भूभारं वधाद्रक्षोगणस्य च ॥ सर्वासूत्सार्यमाणासु प्रजासु धरणीधर ॥ ३० ॥ रावणस्य वधाकाङ्क्षी मर्त्यलोकमुपागतः ॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ ३१ ॥ कृत्वा वासस्य समयं त्रिदशेष्वात्मनः पुरा ॥ स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृषु ॥ ३२ ॥ कालस्तापसरूपेण त्वत्समीपमुपागमम् ॥ ततो भूयश्च ते बुद्धिर्यदि राज्यमुपासितुम् ॥ ३३ ॥

पृथ्वीका भार दूर किया, हे धरणीधर ! फिर जब सब प्रजा पीडित हुई तब रावणका संहार करनेकी इच्छा करके आप मृत्युलोकमें पहुँचे, सो आपने पहिले देवताओंसे यह प्रतिज्ञा करीथी, कि मैं दशहजार और दशसौ वर्ष अर्थात् ग्यारहहजार वर्षपर्य्यन्त रामरूपसे मृत्युलोकमें निवास करूंगा, सो वह रावणका वध करनारूप आपका मनोरथ और ग्यारह हजार वर्षपर्य्यन्तकी आयु मनुष्यलोकमें निवास करतेहुए पूर्ण होचुकी ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ सो अब मैं काल तपस्वीका रूप धारण करके आपके पास आया हूँ, सो यदि आपकी इच्छा अभी पृथ्वीपर और अधिक राज्य कर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेकी होय तो तैसाही करिये आपका कल्याण होय. अब श्रीरामचंद्रजीसे ऋषिवेषधारी काल कहता है, कि हे श्रीरामचंद्रजी ! इसप्रकार कहकर ब्रह्माजीने इतना और कहादिया था, कि हे जितेन्द्रिय श्रीरामचंद्रजी ! यदि आपकी इच्छा स्वर्गलोकको जानेकी होय, तो देवता आपके विष्णुरूपसे सनाथ होकर संतापरहित होजायँगे, इसप्रकार ऋषिवेषधारी कालके द्वारा चतुर्मुख ब्रह्माजीके संदेशेको सुनकर श्रीरामचंद्रजी मुसकुराते हुए, उस समय कालसे यह वचन बोले, कि हे काल ! मैंने तुम्हारा यह कथन सुना, और मेरीभी यही इच्छा थी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ तुम्हारे आनेसे मुझे बड़ा भारी संतोष हुआ; त्रिलोकीका कार्य्य करनेके निमित्त मेरा अवतार होताहै ॥ ३७ ॥ हे काल ! तुम्हारा कल्याण

तत्तथा भव भद्रं ते एवमाह पितामहः ॥ यदि ते गमने बुद्धिर्देवलोकं जितेन्द्रिय ॥ ३४ ॥ सनाथा विष्णुना देवा भवन्तु विगतज्वराः ॥ चतुर्मुखस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा कालेन भाषितम् ॥ ३५ ॥ हसन् रामस्तदा वाक्यं कृत्स्नस्यान्तकमब्रवीत् ॥ श्रुतं तव वचो मेऽद्य ममापीष्टतरं तु तत् ॥ ३६ ॥ सन्तोषः परमो ज्ञेयस्त्वदागमनकारणात् ॥ त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ॥ ३७ ॥ भद्रं तेऽस्त्वागमिष्यामि यत एवाहमागतः ॥ मनोरथस्तु सम्प्राप्तो न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ३८ ॥ मत्सेवकानां देवानां सर्वकार्येषु वै मया ॥ स्थातव्यं मायया पुत्र यथा चाह प्रजापतिः ॥ ३९ ॥ एवं तयोः कथयतोर्दुर्वासा मुनिरभ्यगात् ॥ राजद्वारं राघवस्य दर्शनापेक्षया द्रुतम् ॥ ४० ॥ मुनिर्लक्ष्मणमासाद्य दुर्वासा वाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रं दर्शय रामं मे कार्यं मेऽत्यन्तमाहितम् ॥ ४१ ॥ तच्छ्रुत्वा प्राह सौमित्रिर्मुनिं ज्वलनतेजसम् ॥ रामेण कार्यं किं तेऽद्य किं तेऽभिष्टं करोम्यहम् ॥ ४२ ॥

होय और मैं अपने जिस धामसे आयाथा तहाँही जाऊँगा, क्योंकि निःसन्देह मेरा मनोरथ पूर्ण होही गया ॥ ३८ ॥ हे पुत्र ! जिसप्रकार ब्रह्माजीने कहा है, तिसीप्रकार मैं मायासहित अपने सेवक देवताओंके संपूर्ण काय्योंमें स्थित रहूँगा ॥ ३९ ॥ इसप्रकार वह दोनों ऋषिवेषधारी काल और श्रीरामचंद्रजी वार्त्ता कररहे थे, कि इतनेहीमें दुर्वासा ऋषि आए, और शीघ्रही श्रीरामचंद्रजीका दर्शन करनेकी इच्छासे राजद्वारपर पहुँचे, तथा लक्ष्मणजीके पास जाकर दुर्वासा यह वचन बोले, कि हे लक्ष्मण ! मुझे शीघ्रही श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन कराओ, क्योंकि—मुझे उनसे कुछ आवश्यक कार्य्य है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ऐसा सुनकर अग्निके समान तेजस्वी दुर्वासा ऋषिसे लक्ष्मणजी कहने लगे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि इस समय श्रीरामचन्द्रजीसे आपका क्या कार्य्य है कहिये, आपकी क्या अभिलाषा है, उसको मैंही पूर्ण करदूँ ॥ ४२ ॥ क्यौंकि महाराज किसी कार्य्यमें व्यग्र हैं, सो आप एक मुहूर्त्तपर्य्यन्त ठहर जाइये. यह सुनकर मुनि क्रोधमें भरगए और लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४३ ॥ कि हे लक्ष्मण ! यदि इसीक्षणमें मुझे विभु श्रीरामचंद्रजीका दर्शन नहीं कराओगे तौ मैं निःसन्देह श्रीरामचन्द्रको देश और कुटुम्बसहित भस्म करदूँगा ॥ ४४ ॥ इसप्रकार दुर्वासाऋषिका महाघोर वचन सुनकर और इसप्रकार वचनके स्वरूपका विचारकरके लक्ष्मणजीने निश्चय किया, कि सबका नाश होनेसे तो यदि इस समय मुझ इकलेका नाश हो जायगा तो श्रेष्ठ है. इसप्रकार निश्चय करके लक्ष्मणजीने जाकर श्रीरामचन्द्रजीके अर्थ निवेदन किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

राजा कार्यान्तरे व्यग्रो मुहूर्तं सम्प्रतीक्ष्यताम् ॥ तच्छ्रुत्वा क्रोधसन्तप्तो मुनिः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ अस्मिन् क्षणे तु सौमित्रे न. दर्शयसि चेद्भिभुम् ॥ रामं सविषयं वंशं भस्मीकुर्यां न संशयः ॥ ४४ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं घोरमृषेर्दुर्वाससो भृशम् ॥ स्वरूपं तस्य वाक्यस्य चिन्तयित्वा स लक्ष्मणः ॥ ४५ ॥ सर्वनाशाद्वरं मेऽद्य नाशो ह्येकस्य कारणात् ॥ निश्चित्यैवं ततो गत्वा रामाय प्राह लक्ष्मणः ॥ ४६ ॥ सौमित्रेर्वचनं श्रुत्वा रामः कालं व्यसर्जयत् ॥ शीघ्रं निर्गम्य रामोऽपि ददर्शात्रेः सुतं मुनिम् ॥ ४७ ॥ रामोऽभिवाद्य सम्प्रीतो मुनिं पप्रच्छ सादरम् ॥ किं कार्यं ते करोमीति मुनिमाह रघूत्तमः ॥ ४८ ॥ तच्छ्रुत्वा रामवचनं दुर्वासा राममब्रवीत् ॥ अद्य वर्षसहस्राणामु-पवाससमापनम् ॥ ४९ ॥ अतो भोजनमिच्छामि सिद्धं यत्तं रघूत्तम ॥ रामो मुनिवचः श्रुत्वा सन्तोषेण समन्वितः ॥ ५० ॥ स सिद्ध-मन्नं मुनये यथावत्समुपाहरत् ॥ मुनिर्भुक्त्वान्नममृतं सन्तुष्टः पुनरभ्यगात् ॥ ५१ ॥

सो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीका वचन सुनकर ऋषिवेषधारी कालको बिदा किया, और शीघ्रही मन्दिरसे निकलकर श्रीरामचन्द्रजीने अत्रिपुत्र (दुर्वासा) मुनिको देखा ॥ ४७ ॥ और मुनिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीने आदरपूर्वक बूझा कि हे मुने ! आपका क्या कार्य्य है, जिसको मैं करूं ? इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीके कथनको सुनकर दुर्वासा मुनि बोले कि आज हजार वर्षका निराहार व्रत समाप्त हुआ है, सो हे रघूत्तम ! तुम्हारे यहाँ भोजन तयार होय उसकीही मुझको इच्छा है, श्रीरामचन्द्रजीभी इसप्रकार दुर्वासामुनिका वचन सुनकर संतोषको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ और जो कुछ पकान्न तयार था सो विधिपूर्वक मुनिके निमित्त लाए, सो दुर्वासा मुनि उस अमृततुल्य अन्नको भोजन करके परम सन्तुष्ट हुए,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदनन्तर चले गए ॥ ५१ ॥ इसप्रकार जब दुर्वासा मुनि अपने आश्रमको चलेगए, तब जो कुछ कालने कहा था, वह श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण आया, सो शोक करके अत्यन्त दुःखित हुए, और चित्तमें खिन्न हो विव्हल होगए ॥ ५२ ॥ दुःखित है मन जिनका ऐसे श्रीरामचन्द्रजी नीचेको मुख करेहुए बैठगये, और लक्ष्मणजीसे कुछ कहनेको समर्थ नहीं हुए, और मनसे लक्ष्मणजीको हतप्राय (मृतकतुल्य) जानकर रघुकुलशिरोमणि त्रिलोकीपति श्रीरामचंद्रजी नीचेको मुख करे हुए मौनही बैठे रहे, सो श्रीरामचन्द्रजीको दुःखित और चिन्ता करते हुए, और स्नेहबंधनकी निंदा करते हुए देखकर लक्ष्मणजी बोले, हे रघुकुलशिरोमणे ! आप मेरे कारण दुःख करनेका त्याग दीजिये, और मुझे प्राणदण्ड

स्वमाश्रमं गते तस्मिन् रामः सस्मार भाषितम् ॥ कालेन शोकदुःखार्तो विमनाश्चातिविह्वलः ॥ ५२ ॥ अवाङ्मुखो दीनमना न शशाकाभिभाषितुम् ॥ मनसा लक्ष्मणं ज्ञात्वा हतप्रायं रघूद्वहः ॥ ५३ ॥ अवाङ्मुखो बभूवाथ तूष्णीमेवाखिलेश्वरः ॥ ततो रामं विलोक्याह सौमित्रिर्दुःखसंप्लुतम् ॥ ५४ ॥ तूष्णीम्भूतं चिन्तयन्तं गर्हन्तं स्नेहबन्धनम् ॥ मत्कृते त्यज सन्तापं जहि मां रघुनन्दन ॥ ५५ ॥ गतिः कालस्य कलिता पूर्वमेवेदृशी प्रभो ॥ त्वयि हीनप्रतिज्ञे तु नरको मे ध्रुवं भवेत् ॥ ५६ ॥ मयि प्रीतिर्यदि भवेद्यद्यनुग्राह्यता तव ॥ त्यक्त्वा शङ्कां जहि प्राज्ञ मा मा धर्मं त्यज प्रभो ॥ ५७ ॥ सौमित्रिणोक्तं तच्छ्रुत्वा रामश्चलितमानसः ॥ आहूय मन्त्रिणः सर्वान् वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥ ५८ ॥ मुनेरागमनं यत्तु कालस्यापि हि भाषितम् ॥ प्रतिज्ञामात्मनश्चैव सर्वमावेदयत्प्रभुः ॥ ५९ ॥

दीजिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे प्रभो ! कालकी इस प्रकारकी गतिको मैंने पहिलेही विचार लियाथा, आपकी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर अवश्यही मुझे नरक होगा ॥ ५६ ॥ हे महामते ! हे प्रभो ! यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं और यदि आपका मेरे उपर प्रेम है, तो निःसन्देह मुझे प्राणदण्ड दीजिये, और धर्म्मका त्याग न करिये ॥ ५७ ॥ इस प्रकार लक्ष्मणजीके कथनको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने चित्तसे भ्रातापनका स्नेह त्याग दिया, और सम्पूर्ण मंत्रियोंको तथा वसिष्ठजीको बुलाकर यह बचन बोले ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार दुर्वासामुनिका आगमन हुआ, और जिस प्रकार कालपुरुषका समागम हुआ; जो कुछ कालने प्रथमही कह दिया था, और अपने आप प्रतिज्ञा करीथी, सो सब वृत्तान्त प्रभुने वसिष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुनिको निवेदन किया ॥ ५९ ॥ वसिष्ठजीसहित मंत्रीलोग श्रीरामचंद्रजीका इसप्रकार कथन सुनकर सब हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ६० ॥ हे प्रभो ! पृथ्वीका भार दूर करनेवाले आपका लक्ष्मणजीके साथ होनेवाला वियोग ज्ञानदृष्टिसे हमने पहिले ही जानलिया था ! ॥ ६१ ॥ सो हे प्रभो श्रीरामचंद्रजी ! शीघ्रही लक्ष्मणजीका त्याग कर दीजिये. और अपनी प्रतिज्ञाका त्याग न करिये आपके प्रतिज्ञाका त्याग करनेपर धर्म्म निष्फल हो जायगा ॥ ६२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! यदि धर्म्म नष्ट होगया तौ निःसन्देह सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्ट हो जायगी, क्योंकि हे रघुकुलशिरोमणे ! तुमही सम्पूर्ण त्रिलोकीके रक्षक हो ॥ ६३ ॥ सो केवल इकले लक्ष्मणकाही त्याग करके त्रिलो-

श्रुत्वा रामस्य वचनं मन्त्रिणः सपुरोहिताः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राममक्लिष्टकारिणम् ॥ ६० ॥ पूर्वमेव हि निर्दिष्टं तव भूभारहारिणः ॥ लक्ष्मणेन वियोगस्ते ज्ञातो विज्ञानचक्षुषा ॥ ६१ ॥ त्यजाशु लक्ष्मणं राम मा प्रतिज्ञां त्यज प्रभो ॥ प्रतिज्ञाते परित्यक्ते धर्मो भवति निष्फलः ॥ ६२ ॥ धर्मे नष्टेऽखिले राम त्रैलोक्यं नश्यति ध्रुवम् ॥ त्वं तु सर्वस्य लोकस्य पालकोऽसि रघूत्तम ॥ ६३ ॥ त्यक्त्वा लक्ष्मणमेवैकं त्रैलोक्यं त्रातुमर्हसि ॥ रामो धर्मार्थसहितं वाक्यं तेषामनिन्दितम् ॥ ६४ ॥ सभामध्ये समाश्रुत्य प्राह सौमित्रिमञ्जसा ॥ यथेष्टं गच्छ सौमित्रे माभूद्धर्मस्य संशयः ॥ ६५ ॥ परित्यागो वधो वापि सतामेवोभयं समम् ॥ एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे दुःखव्याकुलितेक्षणः ॥ ६६ ॥ रामं प्रणम्य सौमित्रिः शीघ्रं गृहमगात्स्वकम् ॥ ततोऽगात्सरयूतीरमाचम्य स कृताञ्जलिः ॥ ६७ ॥ नव द्वाराणि सँय्यम्य मूर्ध्नि प्राणमधारयत् ॥ यदक्षरं परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥ ६८ ॥

कीकी रक्षा करना आपको उचित है. श्रीरामचंद्रजीने धर्म्म और अर्थसहित तिन मंत्रियोंका निर्दोष वचन सुनकर सभाके बीचमें लक्ष्मणजीको बुलाया, और कहदिया, कि हे लक्ष्मण ! शीघ्रही जहाँ तुम्हारी इच्छा होय तहाँको चले जाओ ! जिससे धर्म्ममें किसी प्रकारका संदेह नहीं होय, अर्थात् धर्म्मका नाश नहीं होय ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इसकारणसे मैं तुमको त्यागताहूँ, कि सत्पुरुषोंको त्याग और बध समानही है. इसप्रकार रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर दुःखसे व्याकुल होरहे हैं नेत्र जिनके ऐसे लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके अपने गृहको गए, फिर सरयूके तटपै जाकर आचमन किया और हाथ जोडकर नव पवनके द्वारोंको रोकके प्राणोंको मस्तक (ब्रह्माण्ड) में चढ़ा लिया, और अक्षर, अविनाशी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वासुदेवनामक, जो सबका आधाररूप परमपद है तिस तेजःस्वरूपका चित्तसे ध्यान किया; अर्थात् मैं परब्रह्मरूप हूँ इस भावनासे मनकी वृत्तिको ब्रह्माकार किया, इसप्रकार प्राणोंका निरोध करतेहुए लक्ष्मणजीको देखकर सम्पूर्ण देवताओने अग्नि और महर्षियोंसहित पुष्पोंकी वर्षा करी और लक्ष्मणजीकी स्तुति करने लगे, और किसी देवताके देखनेमें नहीं आवैं ऐसे लक्ष्मणजीको शरीरसहित इन्द्र देव विमानमें बैठाकर स्वर्गको लेगए तब विष्णुके चतुर्थ भागरूप तिन लक्ष्मणदेवको सम्पूर्ण देवता और देवर्षि देखकर पूजन करतेहुए ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ जब विष्णुरूप लक्ष्मणजी स्वर्गलोकको प्राप्त हुए, तब सिद्धलोकमें निवास करनेवाले योगीजन ब्रह्माजीसहित परम-

पदं तत्परमं धाम चेतसा सोऽभ्यचिन्तयत् ॥ वायुरोधेन संयुक्तं सर्वे देवाः सहर्षयः ॥ ६९ ॥ साग्नयो लक्ष्मणं पुष्पैस्तुष्टुवुश्च समाकिरन् ॥ अदृश्यं विबुधैः कैश्चित्सशरीरं स वासवः ॥ ७० ॥ गृहीत्वा लक्ष्मणं शक्रः स्वर्गलोकमथागमत् ॥ ततो विष्णोश्चतुर्भागं तं देवं सुर-सत्तमः ॥ सर्वे देवर्षयो दृष्ट्वा लक्ष्मणं समपूजयन् ॥ ७१ ॥ लक्ष्मणे हि दिवमागते हरौ सिद्धलोकगतयोगिनस्तदा ॥ ब्रह्मणा सह स मागमन्मुदा द्रष्टुमाहितमहाहिरूपकम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसँव्वादे उत्तरकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ लक्ष्मणं तु परित्यज्य रामो दुःखसमन्वितः ॥ मन्त्रिणो नैगमांश्चैव वसिष्ठं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अभिषेक्ष्यामि भरतमधिराज्ये महामतिम् ॥ अद्य चाहं गमिष्यामि लक्ष्मणस्य पदानुगः ॥ २ ॥ एवमुक्ते रघुश्रेष्ठे पौरजानपदास्तदा ॥ द्रुमा इव च्छिन्नमूला दुःखार्ताः पतिता भुवि ॥ ३ ॥

प्रसन्न होकर अपने पहिले बड़े भारी नागशरीर (शेषरूप) को धारण करनेवाले लक्ष्मणजीका दर्शन करनेके निमित्त आतेहुए ॥ ७२ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितरामस्वरूपकृतभाषाटीकायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीमहादेवजी कहते हैं, कि हे पार्वति ! लक्ष्मणजीका परित्याग करके श्रीरामचंद्रजी अत्यन्त दुःखित हो मन्त्री, नगरके वैश्य तथा वसिष्ठजीसे यह वचन बोले ॥ १ ॥ कि हे महाशयो ! अब मैं परमप्रवीण भरतजीको अभिषेक करूंगा, और मैं आजही जहाँ लक्ष्मण गये हैं, तहाँही जाऊंगा ॥ २ ॥ इसप्रकार रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजीके कहनेपर उस समय सम्पूर्ण पुरवासी तथा देशके मनुष्य दुःखसे व्याकुल होकर कटगई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है जड़ जिनकी ऐसे वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ ३ ॥ और भरतजीभी इसप्रकार श्रीरामचंद्रजीके कथनको सुनकर मूर्छित होगए, और राज्यकी निन्दा करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके समीप इसप्रकार बोले ॥ ४ ॥ कि हे रघुकुलशिरोमणे ! हे प्रभो ! मैं सत्यकी तथा आपके चरणोंकी शपथ करताहूँ, कि मैं आपके विना पृथ्वीके क्या स्वर्गके राज्यकी भी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥ हे राजन् ! हे श्रीरामचंद्रजी ! इन कुशलवको राज्याभिषेक करिये, अर्थात् कोशलदेशोंमें कुशका और उत्तरदेशोंमें लवका राज्याभिषेक करिये ॥ ६ ॥ और शीघ्रही दूत मथुरापुरीको शत्रुघ्नको लिवालानेके निमित्त जायँ, वह हमारा सबका स्वर्गलोकको जाना श्रवण करले ॥ ७ ॥ इसप्रकार भरतजीके कथनको सुनकर सब

मूर्छितो भरतो वापि श्रुत्वा रामाभिभाषितम् ॥ गर्हयामास राज्यं स प्राहेदं रामसन्निधौ ॥ ४ ॥ सत्येन च शपेनाहं त्वां विना दिवि वा भुवि ॥ काङ्क्षे राज्यं रघुश्रेष्ठ शपे त्वत्पादयोः प्रभो ॥ ५ ॥ इमौ कुशलवौ राजन्नभिषिञ्चस्व राघव ॥ कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु लवं तथा ॥ ६ ॥ गच्छन्तु दूतास्त्वरितं शत्रुघ्नानयनाय हि ॥ अस्माकमेतद्गमनं स्वर्वासाय शृणोतु सः ॥ ७ ॥ भरतेनोदितं श्रुत्वा पतितास्ताः समीक्ष्य तम् ॥ प्रजाश्च भयसंविग्ना रामविश्लेषकातराः ॥ ८ ॥ वसिष्ठो भगवान् रामसुवाच सदयं वचः ॥ पश्य तातादरात्सर्वाः पतिता भूतले प्रजाः ॥ ९ ॥ तासां भावानुगं राम प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ श्रुत्वा वसिष्ठवचनं ताः समुत्थाप्य पूज्य च ॥ १० ॥ सस्नेहो रघुनाथस्ताः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ततः प्राञ्जलयः प्रोचुः प्रजा भक्त्या रघूद्वहम् ॥ ११ ॥ गन्तुमिच्छसि यत्र त्वमनुगच्छामहे वयम् ॥ अस्माकमेषा परमा प्रीतिर्धर्मोऽयमक्षयः ॥ १२ ॥

प्रजाके मनुष्य श्रीरामचंद्रजीसे वियोगकी कातरतासे मनमें भयभीत हो व्याकुल होगए और पृथ्वीपर गिरपड़े, यह दशा देखकर भगवान् वसिष्ठजी दयायुक्त यह वचन श्रीरामचंद्रजीसे आदर पूर्वक कहने लगे, कि हे तात ! देखो सम्पूर्ण प्रजा पृथ्वीपर पडी है ॥ ८ ॥ ९ ॥ सो हे श्रीरामचंद्रजी ! इनकी भक्तिके अनुसार तुम्है भी इनके उपर अनुग्रह करना चाहिये. वसिष्ठजीके इस वचनको सुनकर श्रीरामचंद्रजीने तिन प्रजाके पुरुषोंको उठाया और सत्कार किया ॥ १० ॥ और रघुनाथजी प्रीतिपूर्वक तिन सबोंसे कहने लगे, कि मैं तुम्हारे साथ क्या उपकार करूं. तब सम्पूर्ण प्रजाके लोग हाथ जोडकर भक्तिपूर्वक श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगे ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जहाँ आप जाना चाँहतेहैं, तहाँही हमसबभी आपके पिछे २ जाना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहते हैं, इसहीमें हमारी प्रसन्नता होगी और यही आपका अबिनाशी धर्म्म है ॥ १२ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपके साथ चलनेके निमित्त हमारे मनसे दृढ़ सम्मति है, आज हम अपने स्त्रीपुत्रादिसहित जैसे होगा वैसे आपके संग चलैंगे ॥ १३ ॥ हे रघुनंदन ! चाहे आप तपोवनको जायँ, चाहे स्वर्गको जायँ, और चाहे किसी नगरको जायँ हम आपके साथ जायँगे. इसप्रकार तिनके कहनेसे चित्तकी दृढ़ता जानकर और कालके वचनको स्मरण करके ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीने परमभक्त नगरनिवासियोंसे कह दिया, कि अच्छा मेरे साथही चलो, इसप्रकार निश्चय करके प्रभु श्रीरामचंद्रजीने उसी दिन कुश और लवको जानेकी आज्ञा करी, और आठ हजार रथ, एक हजार हाथी और साठ हजार घोड़े

तवानुगमने राम दृढ़ता नो दृढा मतिः ॥ पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥ १३ ॥ तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ॥ ज्ञात्वा तेषां मनोदार्ढ्यं कालस्य वचनं तथा ॥ १४ ॥ भक्तं पौरजनं चैव बाढमित्याह राघवः ॥ कृत्वैव निश्चयं रामस्तस्मिन्नेवाहनि प्रभुः ॥ १५ ॥ प्रस्थापयामास च तौ रामभद्रः कुशीलवौ ॥ अष्टौ रथसहस्राणि सहस्रं चैव दन्तिनाम् ॥ १६ ॥ षष्टिं चाश्वसहस्राणामेकैकस्मै ददौ बलम् ॥ बहुरत्नौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनावृतौ ॥ १७ ॥ अभिवाद्य गतौ रामं कृच्छ्रेण तु कुशीलवौ ॥ शत्रुघ्नानयने दूतान्प्रेषयामास राघवः ॥ ते दूतास्त्वरितं गत्वा शत्रुघ्नाय न्यवेदयन् ॥ १८ ॥ कालस्यागमनं पश्चादत्रिपुत्रस्य चेष्टितम् ॥ लक्ष्मणस्य च निर्याणं प्रतिज्ञा राघवस्य च ॥ १९ ॥ पुत्राभिषेचनं चैव सर्वं रामचिकीर्षितम् ॥ श्रुत्वा तद्दूतवचनं शत्रुघ्नः कुलनाशनम् ॥ २० ॥ व्यथितोऽपि धृतिं लब्ध्वा पुत्रावाहूय सत्वरः ॥ अभिषिच्य सुबाहुं वै मथुरायां महाबलः ॥ २१ ॥

इतनी २ सेना उन दोनोंमेंसे हरएकको दी, और बहुतसे रत्न और धन दिया साथमें हृष्ट पुष्ट पुरुष करदिये, तब वह कुश और लव श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके अतिकठिनसे गए, तदनन्तर श्रीरामचंद्रजीने शत्रुघ्नको बुलानेके निमित्त दूत भेजे, उन दूतोंने शीघ्रही जाकर शत्रुघ्नके अर्थ निवेदन किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ कालका ऋषिवेषधारण करके आना, पीछेसे अत्रिके पुत्र दुर्वासामुनिका चरित्र, लक्ष्मणजीका निर्याण (स्वर्गलोकको जाना), श्रीरामचंद्रकी भी स्वर्गलोकको जानेकी प्रतिज्ञा, और पुत्रोंका अभिषेक, इसप्रकार दूतोंके द्वारा श्रीरामचंद्रजीका कुलनाशक चिकीर्षित (मनोरथ) सुनकर शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हुए, और तदनन्तर धैर्य्य धरके शीघ्रही पुत्रोंको बुलाया, और महाबली शत्रुघ्नने सुबा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुनामक अपने पुत्रका मथुरापुरीमें अभिषेक करादिया ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ और यूपकेतुनामक पुत्रको विदिशानगरीमें अभिषिक्त करादिया और फिर अपने आप श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेकी इच्छासे शीघ्रही अयोध्यापुरीको गए ॥ २२ ॥ और तहाँ अग्निके समान तेजयुक्त, दुकूल वस्त्र धारण करे हुए महात्मा श्रीरामचंद्रजीको चिरजीवी वसिष्ठादि ऋषियोंकरके युक्त देखा ॥ २३ ॥ सो परमप्रवीण शत्रुघ्नजी साक्षात् लक्ष्मीपति रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम करके हाथ जोडेहुए धर्म्म और अर्थयुक्त वचन कहने लगे ॥ २४ ॥ कि हे राजन् ! हे कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी ! तिस अपने राज्यमें पुत्रोंका अभिषेक करके आपके साथ गमन करनेका निश्चय करके आया हूं, सो आप जानलीजिये ॥ २५ ॥ सो हे भगवन् ! आपको

यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुसूदनः ॥ अयोध्यां त्वरितं प्रागात्स्वयं रामदिदृक्षया ॥ २२ ॥ ददर्श च महात्मानं तेजसा ज्वलनप्रभम् ॥ दुकूलयुगसंवीतं ऋषिभिश्चाक्षयैर्वृतम् ॥ २३ ॥ अभिवाद्य रमानाथं शत्रुघ्नो रघुपुंगवम् ॥ प्राञ्जलिर्धर्मसहितं वाक्यं प्राह महामतिः ॥ २४ ॥ अभिषिच्य सुतौ तत्र राज्ये राजीवलोचन ॥ तवानुगमने राजन्विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ २५ ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां वीर भक्तं तव विशेषतः ॥ शत्रुघ्नस्य दृढां बुद्धिं विज्ञाय रघुनन्दनः ॥ २६ ॥ सज्जीभवतु मध्याह्ने भवानित्यब्रवीद्वचः ॥ अथ क्षणात्समुत्पेतुर्वानराः कामरूपिणः ॥ २७ ॥ ऋक्षाश्च राक्षसाश्चैव गोपुच्छाश्च सहस्रशः ॥ ऋषीणां देवतानां च पुत्रा रामस्य निर्गमम् ॥२८॥ श्रुत्वा प्रोचू रघुश्रेष्ठं सर्वे वानरराक्षसाः ॥ तवानुगमने विद्धि निश्चितार्थान्हि नः प्रभो ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे रामं सुग्रीवोऽपि महाबलः ॥ यथावदभिवाद्याह राघवं भक्तवत्सलम् ॥ ३० ॥

मेरा त्यागना योग्य नहीं है, क्योंकि मैं आपका अत्यन्त भक्त हूँ, इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजी शत्रुघ्नको बुद्धिके विषे दृढ़ निश्चय करे हुए जानकर कहनेलगे, कि अच्छा तुमभी मध्याह्नके समय तयार होजाना, इतनेहीमें क्षणभरके अनन्तर इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले वानर अयोध्यापुरीमें आकर प्राप्त होगए ॥ २६ ॥ २७ ॥ और जो कोई रीछ, राक्षस तथा गोपुच्छजातिके वानर थे, तथा हजारों देवताओंके और ऋषियोंके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका निर्याण (स्वर्गलोकगमन) श्रवण करके तहाँ आगए, और सम्पूर्ण राक्षस तथा वानर रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे, कि हे प्रभो ! हम सब आपके साथ जानेका निश्चय करके आए हैं, सो आप जानलीजिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ इसी अन्तरमें महाबली सुग्रीवभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधिपूर्वक भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके कहने लगा ॥ ३० ॥ कि हे भगवन्! किष्किन्धाके राज्यमें महाबली अङ्गदका अभिषेक करके आयाहूं, सो आप मुझे अपने साथ चलनेके निमित्त निश्चय करेहुए समझिये ॥ ३१ ॥ इस प्रकार तिन रीछ, वानर और राक्षसोंके दृढ़वाक्योंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बिभीषणसे आदर पूर्वक यह कोमल वचन बोले ॥ ३२ ॥ कि हे बिभीषण! जबतक पृथ्वी प्रजाको धारण करै तबतक तुमभी मेरे कहनेसे राक्षसोंकी प्रजाका पालन करते रहो, इस विषयमें मैं तुमको अपनी शपथ दिलाताहूँ ॥ ३३ ॥ अब इसका कुछ उत्तर न देना, और यदि तुम्हारी इच्छा नहीं होय तौ मेरी प्रसन्नताके निमित्त ही तुम राज्य करो, इस प्रकार बिभीषणसे

अभिषिच्याङ्गदं राज्ये आगतोऽस्मि महाबलम् ॥ तवानुगमने राम विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा तेषां दृढं वाक्यं ऋक्षवानर-रक्षसाम् ॥ बिभीषणमुवाचेदं वचनं मृदु सादरम् ॥ ३२ ॥ धरिष्यति धरा यावत्प्रजास्तावत्प्रशाधि मे ॥ वचनाद्राक्षसं राज्यं शापितोऽसि ममोपरि ॥ ३३ ॥ न किञ्चिदुत्तरं वाच्यं त्वया मत्कृतकारणात् ॥ एवं बिभीषणं तूक्त्वा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ मारुते त्वं चिरं जीव ममाज्ञां मा मृषा कृथाः ॥ जाम्बवन्तमथ प्राह तिष्ठ त्वं द्वापरान्तरे ॥ ३५ ॥ मया सार्धं भवेद्युद्धं यत्किञ्चित्कारणान्तरे ॥ ततस्तान् राघवः प्राह ऋक्षराक्षसवानरान् ॥ सर्वानेव मया सार्धं प्रयातेति दयान्वितः ॥ ३६ ॥ ततः प्रभाते रघुवंशनाथो विशालवक्षाः सितकञ्ज-नेत्रः ॥ पुरोधसं प्राह वसिष्ठमार्यं यान्त्वग्निहोत्राणि पुरो गुरो मे ॥ ३७ ॥ ततो वसिष्ठोऽपि चकार सर्वं प्रास्थानिकं कर्म महद्विधानात् ॥ क्षौमाम्बरो दर्भपवित्रपाणिर्महाप्रयाणाय गृहीतबुद्धिः ॥ ३८ ॥

कहकर हनुमान्जीसे कहने लगे ॥ ३४ ॥ हे पवनकुमार! तुम चिरकालपर्य्यन्त जीवित रहो, और मेरी आज्ञाको मिथ्या मत करो. इसके अनन्तर जाम्बवानसे कहनेलगे कि हे जाम्बवान्! तुमभी अभी पृथ्वीपर स्थित रहो, द्वापरके अन्तमें (कृष्णावतारमें) किसीकारणसे मेरे साथ तुम्हारा युद्ध होयगा, तब तुम मेरे लोकको प्राप्त होओगे, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी तिन सम्पूर्ण रीछ, राक्षस और वानरोंसे दयायुक्त हो कहने लगे, कि तुम सब मेरे साथ चलो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ तदनन्तर प्रातःकालके समय कमलनेत्र, विशालवक्षस्थल रघुवंशनाथ श्रीरामचन्द्रजीके परमपूजनीय पुरोहित महाराज वसिष्ठजीसे बोले, कि हे गुरो! मेरे आगे आगे अग्निहोत्रके अग्नि चलैं ॥ ३७ ॥ तब वसिष्ठजीने भी श्रीरामचन्द्रजीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहनेके अनुसार वेदकी रीतिसे यात्रासमयका संपूर्ण कर्म्म विधिपूर्वक किया, महायात्राके विषे लगी है बुद्धि जिनकी, ऐसे रेशमी वस्त्र धारण करेहुए और कुशकी पवित्री हाथमें लियेहुए करोडों चंद्रमाके समान है कांति जिनकी ऐसे श्रीरामचन्द्रजी जिसप्रकार श्वेतवर्ण मेघमण्डलमेंसे चंद्रमा निकलै इसप्रकार नगरके बाहर निकले श्रीरामचंद्रजीके वामभागमें कमलके समान विशालनेत्रा लक्ष्मी हाथमें श्वेत कमल लेकर चली ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥ और दाहीं ओर लाल कमल हाथमें लिएहुए देदीप्यमान श्यामवर्ण रूप धारण करेहुए पृथ्वी चली, और शास्त्र-शस्त्र-धनुष-तथा बाण शरीर धारण करके श्रीरामचंद्रजीके आगे आगे चले ॥ ४० ॥ शरीर धारण करेहुए चारों वेद, और सम्पूर्ण दिव्यरूप मुनि, तथा ओंकार और

निष्क्रम्य रामो नगरात्सिताभ्राच्छशीव यातः शशिकोटिकान्तिः ॥ रामस्य सव्ये सितपद्महस्ता पद्मा गता पद्मविशालनेत्रा ॥ ३९ ॥ पार्श्वेऽथ दक्षेऽरुणकञ्जहस्ता श्यामा ययौ भूरपि दीप्यमाना ॥ शास्त्राणि शस्त्राणि धनुश्च बाणा जग्मुः पुरस्ताद्धृतविग्रहास्ते ॥ ४० ॥ वेदाश्च सर्वे धृतविग्रहाश्च ययुश्च सर्वे मुनयश्च दिव्याः ॥ माता श्रुतीनां प्रणवेन साध्वी ययौ हरिं व्याहृतिभिः समेता ॥ ४१ ॥ गच्छन्तमेवानुगता जनास्ते सपुत्रदाराः सह बन्धुवर्गैः ॥ अनावृतद्वारमिवापवर्गं रामं व्रजन्तं ययुराप्तकामाः ॥ ४२ ॥ सान्तःपुरः सानुचरः सभार्यः शत्रुघ्नयुक्तो भरतोऽनुयायात् ॥ गच्छन्तमालोक्य रमासमेतं श्रीराघवं पौरजनाः समस्ताः ॥ ४३ ॥ सबालवृद्धाश्च ययुर्द्विजाग्र्याः सामात्यवर्गाश्च समन्त्रिणो ययुः ॥ सर्वे गताः क्षत्रमुखाः प्रहृष्टा वैश्याश्च शूद्राश्च तथा परे च ॥ ४४ ॥ सुग्रीवमुख्या हरिपुङ्गवाश्च स्नाता विशुद्धाः शुभशब्दयुक्ताः ॥ न कश्चिदासीद्व्यदुःखयुक्तो दीनोऽथवा बाह्यसुखेषु सक्तः ॥ ४५ ॥

व्याहृतियोंसहित वेदमाता गायत्री, यह सब श्रीरामचंद्रजीके साथमें चले ॥ ४१ ॥ जिससमय श्रीरामचंद्रजी अयोध्यापुरीसे चले उसीसमय पूर्ण मनोरथ होकर श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ पुत्र-कलत्र-और बन्धुवर्गोंसहित सम्पूर्ण अयोध्यावासी इसप्रकार चलदिये, जिसप्रकार कोई मोक्षके द्वारको जाता है ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीयुक्त श्रीरामचंद्रजीको जाताहुआ देखकर रणवास-अपने सेवक अपनी स्त्री-और शत्रुघ्नसहित भरतजी भी चलदिए, और बालक तथा वृद्धों सहित सम्पूर्ण प्रजाके पुरुष, ब्राह्मण, मंत्रीयोंके समूह, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा परमप्रसन्न और जो सुग्रीव आदि वानर थे सो सब स्नानकरके शुद्ध शरीर होकर मंगल शब्दोंको उच्चारण करतेहुए श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ चलदिये, इनमें कोई संसारके दुःख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके युक्त और दीन, तथा बाह्यविषयोंमें आसक्त नहीं था ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ और आनन्दरूप जो श्रीरामचंद्रजी तिनके पीछे जानेवाले सब पुरुष विरक्त होकर अपने पशु और सेवकोंसहित श्रीरामचंद्रजीके पीछे २ जातेहुए और जो अदृश्य (जो देखनेमें न आवैं) प्राणी, और स्थावर तथा जङ्गम थे, सो सब विरक्त होकर अनन्तशक्ति, मायासे पर, ईश्वर, साक्षात्परमात्मारूप श्रीरामचंद्रजीके पीछे चलदिये, उस समय अयोध्यानगरीमें कोई ऐसा न रहा जिसका श्रीरामचन्द्रजीके विषे मन न लगा होय, और जो श्रीरामचंद्रजीके संग न गया होय ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके निजधामको जानेके निमित्त चलनेपर वह सम्पूर्ण अयोध्यानगरी खाली होगई, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी नगरसे कुछ दूर जाकर

आनन्दरूपानुगता विरक्ता ययुश्च रामं पशुभृत्यवर्गैः ॥ भूतान्यदृश्यानि च यानि तत्र ये प्राणिनः स्थावरजङ्गमाश्च ॥ ४६ ॥ साक्षात्परात्मानमनन्तशक्तिं जग्मुर्विरक्ताः परमेकमीशम् ॥ नासीदयोध्यानगरे तु जन्तुः कश्चित्तदा राममना न यातः ॥ ४७ ॥ शून्यं बभूवाखिलमेव तत्र पुरं गते राजनि रामचन्द्रे ॥ ततोऽतिदूरं नगरात्स गत्वा दृष्ट्वा नदीं तां हरिनेत्रजाताम् ॥ ४८ ॥ ननन्द रामः स्मृतपावनोऽतो ददर्श चाशेषमिदं हृदिस्थम् ॥ अथागतस्तत्र पितामहो महान् देवाश्च सर्वे ऋषयश्च सिद्धाः ॥ ४९ ॥ विमानकोटीभिरपारपारं समावृतं खं सुरसेविताभिः ॥ रविप्रकाशाभिरभिस्फुरत्स्वं ज्योतिर्मयं तत्र नभो बभूव ॥ ५० ॥ स्वयंप्रकाशैर्महतां महद्भिः समावृतः पुण्यकृतां वरिष्ठैः ॥ ववुश्च वाताश्च सुगन्धवन्तो ववर्ष वृष्टिः कुसुमावलीनाम् ॥ ५१ ॥ उपस्थिते देवमृदङ्गनादे गायत्सु विद्याधरकिन्नरेषु ॥ रामस्तु पद्भ्यां सरयूजलं सकृत्स्पृष्ट्वा परिक्रामदनन्तशक्तिः ॥ ५२ ॥

हरिके नेत्रोंसे उत्पन्न हुई जो सरयूनदी तिसका दर्शन करतेहुए ॥ ४८ ॥ परमप्रसन्न श्रीरामचन्द्रजीने तदनन्तर अपने परमपवित्र विराट्स्वरूपका स्मरण करके सम्पूर्ण जगत्को अपने हृदयके विषे स्थित देखा, सो इसी समय पितामह ब्रह्माजी और देवता, ऋषि तथा सिद्ध आगए ॥ ४९ ॥ जिनमें देवता बैठेहुए हैं ऐसे सूर्य्यके समान प्रकाशवान् करोड़ों विमानोंकरके अपरंपारभी आकाश भर गया, तिन विमानोंकी कान्तियोंसे आकाश प्रकाशमय होगया ॥ ५० ॥ जो बड़े बड़े पुण्यवान् इस लोकसे ऊपरके लोकोंको गए थे, तिनके भी स्वयं प्रकाशरूप विमानोंकरके आकाश ढकगया उससमय सुगंधयुक्त पवन चलने लगे, और पुष्पोंकी अतिवर्षा हुई ॥ ५१ ॥ देवता मृदंगोंके शब्द करनेलगे, विद्याधर और किन्नर गान करने लगे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उससमय अनंतशक्ति श्रीरामचंद्रजी थोड़े थोड़े सरयूके जलमें जाकर फिर जलके ऊपर इसप्रकार चलने लगे जैसे कोई पृथ्वीपर चलै ॥ ५२ ॥ उससमय ब्रह्माजी हाथ जोड़कर तिन श्रीरामचंद्रजीसे कहने लगे, कि हे परमात्मन् ! आप साक्षात् ईश्वर हो, सदा आनन्दमय परिपूर्णरूप हो और अपने वास्तविक अद्वितीय ऐश्वर्य्यरूपको यथार्थ रीतिसे तुमही जानते हो ॥ ५३ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! तथापि आपने मुझदासकी प्रार्थनाको पूर्ण किया, सो ठीकही है, क्योंकि हे विद्वन् ! आप भक्तवत्सल हैं, सो अब आप भ्राताओंसहित सबके कारणरूप अपने विष्णुशरीरके विषे प्रवेशकरके देवताओंकी रक्षा करिये ॥ ५४ ॥ अथवा और कोई दूसरा शरीर आपको अभीष्ट हो तौ उसके ही विषे प्रवेश करके आप हमारी रक्षा

ब्रह्मा तदा प्राह कृताञ्जलिस्तं रामं परात्मन् परमेश्वरस्त्वम् ॥ विष्णुः सदानन्दमयोऽसि पूर्णो जानासि तत्त्वं निजमैशमेकम् ॥ ५३ ॥ तथापि दासस्य ममाखिलेश कृतं वचो भक्तपरोऽसि विद्वन् ॥ त्वं भ्रातृभिर्वैष्णवमेवमाद्यं प्रविश्य देहं परिपाहि देवान् ॥ ५४ ॥ यद्वा परो वा यदि रोचते तं प्रविश्य देहं परिपाहि नस्त्वम् ॥ त्वमेव देवाधिपतिश्च विष्णुर्जानन्ति न त्वां पुरुषा विना माम् ॥ ५५ ॥ सहस्रकृत्वस्तु नमो नमस्ते प्रसीद देवेश पुनर्नमस्ते ॥ पितामहप्रार्थनया स रामः पश्यत्सु देवेषु महाप्रकाशः ॥ ५६ ॥ मुष्णंश्च चक्षूंषि दिवौकसां तदा बभूव चक्रादियुतश्चतुर्भुजः ॥ शेषो बभूवेश्वरतल्पभूतः सौमित्रिरत्यद्भुतभोगधारी ॥ ५७ ॥ बभूवतुश्चक्रपरौ च दिव्यौ कैकेयिसूनुर्लवणान्तकश्च ॥ सीता च लक्ष्मीरभवत्पुरैव रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः ॥ ५८ ॥ सहानुजः पूर्वशरीरकेण बभूव तेजोमयदिव्यमूर्तिः ॥ विष्णुं समासाद्य सुरेन्द्रमुख्या देवाश्च सिद्धा मुनयश्च यक्षाः ॥ ५९ ॥

करिये, हे भगवन् ! देवताओंके अधिपति विष्णु आपही हैं और मेरे सिवाय दूसरा आपको नहीं जानता है ॥ ५५ ॥ हे देवेश ! आपके अर्थ वारंवार नमस्कार है, मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, मैं आपको औरभी अधिक नमस्कार करताहूँ, देवताओंके देखतेहुए ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे परमप्रकाशस्वरूप श्रीरामचंद्रजी सबके नेत्रोंको चुरातेहुए उससमय चक्रादि धारण करेहुए चतुर्भुजमूर्ति होगए, और लक्ष्मणजी अतिअद्भुत शरीरधारी शेषरूप धारण करेहुए भगवान्की शय्यारूप होगए ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कैकेयीके पुत्र भरतजी दिव्य चक्ररूप होकर और शत्रुघ्न दिव्य चक्ररूप होकर भगवान्के हाथोंमें विराजमान होगए, सीताजी तो पहिलेही लक्ष्मीरूप होगईथीं और श्रीरामचंद्रजी इससमय भ्राताओंसहित पूर्वरूपके तेजःस्वरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दि[illegible]विष्णुरूप होगए, तब विष्णुरूप श्रीरामचंद्रजीको प्राप्त होकर इन्द्रादि देवता, सिद्धसमूह, मुनिगण, यक्षसमूह और ब्रह्मादि प्रजापति चारों ओर सर्वशक्तिमान परमात्माकी स्तुति और पूजन करने लगें, और मनोरथ पूर्ण होनेके कारण उन सबके चित्त आनन्दमें मग्न होगए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उस समय सर्वव्यापी विष्णु भगवान् ब्रह्माजीसे कहने लगे, कि मेरे विषे प्रेम करनेवाले यह मेरे भक्त स्वर्गलोकको जातेहुए भी मेरे साथ गमन करनेकी इच्छासे आएहैं. इनमें जो तिर्यक्शरीर (कुक्कुर आदि) हैं वहभी पुण्यात्मा हैं ॥ ६१ ॥ सो तुम मेरी आज्ञासे इन सबको वैकुण्ठके समान जो लोक हैं तहाँ पहुँचादो, इसप्रकार विष्णु भगवान्के कथनको सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे, कि नाना प्रकारके भोगों करके युक्त जो सान्तानिक नामवाले लोक हैं, तहाँ यह सब प्राप्त होयँगे ॥ ६२ ॥ और मेरे लोकसेभी ऊपर जो प्रकाशवान् लोक हैं, तहाँ यह

पितामहाद्याः परितः परेशं स्तवैर्गृणन्तः परिपूजयन्तः ॥ आनन्दसंप्लावितपूर्णचित्ता बभूविरे प्राप्तमनोरथास्ते ॥ ६० ॥ तदाह विष्णुर्द्रुहिणं महात्मा एते हि भक्ता मयि चानुरक्ताः ॥ यान्तं दिवं मामनुयान्ति सर्वे तिर्यक्शरीरा अपि पुण्ययुक्ताः ॥ ६१ ॥ वैकुण्ठसाम्यं परमं प्रयान्तु समाविशस्वाशु ममाज्ञया त्वम् ॥ श्रुत्वा हरेर्वाक्यमथाब्रवीत्कः सान्तानिकान्यान्तु विचित्रभोगान् ॥ ६२ ॥ लोकान्मदीयोपरि दीप्यमानास्त्वद्भावयुक्ताः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ये चापि ते राम पवित्रनाम गृणन्ति मर्त्या लयकाल एव ॥ ६३ ॥ अज्ञानतो वापि भजन्तु लोकांस्तानेव योगैरपि चाधिगम्यान् ॥ ततोऽतिहृष्टा हरिराक्षसाद्याः स्पृष्ट्वा जलं त्यक्तकलेवरास्ते ॥ ६४ ॥ प्रपेदिरे प्राक्तनमेव रूपं यदंशजा ऋक्षहरीश्वरास्ते ॥ प्रभाकरं प्राप हरिप्रवीरः सुग्रीव आदित्यजवीर्यतत्त्वात् ॥ ६५ ॥

सब प्राप्त होयँगे, क्योंकि यह सब अनेक पुण्य करनेवाले और आपकी भक्ति करके युक्त हैं, और हे भगवन् ! और भी जो पुरुष आपके पवित्र रामनामका कीर्त्तन करैंगे वहभी सब अन्तकालमें इनही लोकोंको प्राप्त होयँगे ॥ ६३ ॥ और जो पुरुष विनाजानेभी परमपवित्र रामनामका कीर्त्तन करैंगे, वह पुरुषभी योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य लोकोंको प्राप्त होयँगे. जब इसप्रकार ब्रह्माजीसे कहा, तबतौ अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए जो वानर और राक्षस आदि तिन्होंने जलका आचमन करके शरीरका त्याग करदिया ॥ ६४ ॥ और जिस जिस देवताओंके अंशसे रीछ और वानररूप धारण किया था, उस उसही देवताके स्वरूपको प्राप्त होगए, सूर्यके वीर्य्यसे उत्पन्न होनेके कार[illegible] वानरराज सुग्रीव सूर्यके रूपमें लीन होगये ॥ ६५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पार्वतीके अर्थ वर्णन कियाहै ॥ ७० ॥

रूप काव्य श्रीमहादेवजीने से मुक्त होजाताहै, जो पुरुष नित्य अध्यात्मरामायणको पढ़ता है,

सैंकड़ों जन्मोंमें करेहुए पापोंसे प्रसन्न होकर अपने समीप रखते हैं और अन्तमें मोक्षरूपी लक्ष्मी देते हैं.

सीतासहित श्रीरामचन्द्रजी अति और उसको लक्ष्मी कभी नहीं त्यागती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ जिसकी ब्रह्मा आ ॥ ७१ ॥ जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करताहै अथवा श्रव

सीतासहित निवास करते हैं

जन्मशतोद्भवैश्च ॥ अध्यात्मरामं पठतश्च नित्यं श्रोतुश्च भक्त्या लिखितुश्च रामः ॥ ७२ ॥ नर

श्रेयः शृणुयात्स पापैर्विमुच्यते श्रियमातनोति ॥ ७३ ॥ रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ॥

श्च सदा समीपे सीतासमेतः सत्यं विष्णोः पर्यगते सदनं स विशुद्धदेहः ॥ ७४ ॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे

ः पठति यः शृणुयात्तु निः ॥ ॥ समाप्तमिदमुत्तरकाण्डम् ॥

रसंवादे उत्तरकाण्डे नवमः सर्ग

का हरण करनेवाले इस अ[illegible]रामायणका जो पुरुष नित्य श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करता है अथवा

शंसा करतेहैं, तिस पुरुषोंके मनरूपी भगवान्के धाम (वैकुण्ठलोक) को प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥ प्रकाशकानुवादकाभ्यां लक्ष्मीं वितरतु श्रीजन-

है, वह शुद्ध शरीर होकर विष्णुरामायणे उमामहेश्वरसंवादे उत्तरकाण्डे पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादनगरनिवासिगौड़वंशावतंसश्रीयुतभोलाना-

रामचन्द्रः ॥ इति श्रीमदध्यात्मटीकायां नवमः सर्गः समाप्तः ॥

रद्वाजपण्डितरामस्वरूपकृतभा

शशी, संवत विक्रमभूप ॥ पौषकृष्ण दशमी सुबुध, प्रथमप्रहर शुभरूप ॥ १ ॥

नेत्र बाण अरु ग्र[illegible] यह व्याख्यान अनूप ॥ रामचरण चित लायकै, पण्डित रामस्वरूप ॥ २ ॥

रामकृपा पूरण

ठिका[illegible]-हरिप्रसाद भगीरथजी-कालकादेवी रोड़ रामवाड़ी मुंबई

पुस्तक

दायक

करत

उ

टिप्पणी ।५

और भाग

की कृपा

॥४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र और जो अयोध्यापुरीके निवा
बैठकर सान्तानिक नामक स करनेवाले मनुष्य थे सो सरयूके जलमें स्नान करतेही मनुष्यदेहको त्यागकर दिव्य आभूषणोंको धारण करके
सरयूके जलमें गोता लगा लोकोंको प्राप्त होगये ॥ ६६ ॥ तिर्य्यक्योनि (पशुपक्षी आदि) के विषे उत्पन्न हुये प्राणीभी श्रीरामचन्द्रजीकी
शीघ्रही सम्पूर्ण गृहादि तेही स्वर्गलोकको चलेगये, उस निर्याणको देखनेकी इच्छासे और जो देशके लोग आये थे, सो भी उस निर्य्या
काल स्वर्गलोकको प्राप्त हो की प्रीतिको त्यागकर, और त्रिलोकीनाथ साक्षात् विष्णुरूप परमात्माका ध्यान करके सरयूके जलमें गोता ल-
गये. श्रीमहादेवजीने श्रीरामचन्द्रजीका कथाका बचाहुआ इतना वृत्तान्तही उत्तर काण्डमें पार्वतीजीके अर्थ

विमग्नाः सरयूजलेषु नराः
प्रजाता अपि रामदृष्टा जलं परित्यज्य मनुष्यदेहम् ॥ आरुह्य दिव्याभरणा विमानं प्रापुश्च ते सान्तनिकाख्यलोकान् ॥ ६६ ॥
हरिं लोकगुरुं परेशं स्पृष्ट्वा विष्टा दिवमेव याताः ॥ दिदृक्षवो जानपदाश्च लोका रामं समालोक्य विमुक्तसंगाः ॥ ६७ ॥
त्र पठेत्स पापाद्विमुच्यते जन्मसजलं स्वर्गमवापुरञ्जः ॥ एतावदेवोत्तरमाह शम्भुः श्रीरामचन्द्रस्य कथावशेषम् ॥ ६८ ॥ यः
पयाति रामेति सालोक्यमनन्यहस्रजातात् ॥ दिन दिने पापचयं प्रकुर्वन्पठेन्नरः श्लोकमपीह भक्त्या ॥ ६९ ॥ विमुक्तस-
मः परितोषमेति ॥ रामायणं वलभ्यम् ॥ आख्यानमेतद्रघुनायकस्य कृतं पुरा राघवचादितेन ॥ ७० ॥ महेश्वरेणाप्तभविष्यदर्थं
॥ ६७ ॥ ६८ ॥ जो पुरुष इस काव्यमनन्तपुण्यं श्रीशङ्करेणाभिहितं भवान्यै ॥ ७१ ॥

और प्रतिदिन इस रामायणके एक अध्यात्मरामायणके चौथाई श्लोककाभी पाठ करता है, वह हजारों जन्मोंमें करेहुए भी पापों
र्ण पाप छूट जातेहैं तब शुद्ध श्लोककाभी जो पुरुष भक्तिपूर्वक पाठ करै, वह पुरुष नित्य करेहुए पापोंसे छूट जाता है
ह श्रीरामचन्द्रजीका भविष्यदर्थ र भक्तिहीन पुरुषको जो प्राप्त न होसकैं ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके
ा, श्रीमहादेवजीने श्रीरामचन्द्र होनेवाले चरित्रकरके युक्त भूत और वर्तमान सम्पूर्ण
जीकी प्रेरणा वर्णन किया है इसका श्रवण करनेसे श्री

क्षसमूह और ब्रह्मादि
चित्त आनन्दमें मग्न
मेरे भक्त स्वर्गलोकको
सो तुम मेरी आशासे
के नाना प्रकारके भोगों
वान् लोक हैं, तहाँ यह
॥ तदाह विष्णुर्द्रुहिणं
॥ वैकुण्ठसाम्यं परमं
॥ लोकान्मदीयोपरि
ानतो वापि भजन्तु
पेदिर प्राक्तनमेव रूपं यदं-

न्! और भी जो पुरुष आपके पवित्र
जो पुरुष विनाजानेभी परमपवित्र रामनामका
ब्रह्माजीसे कहा, तबतौ अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए जो वानर
॥ ६४ ॥ और जिस जिस देवताओंके अंशसे रीछ और वानररूप
सूर्य्यसे उत्पन्न होनेके कारण वानरराज सुग्रीव सूर्यके रूपमें लीन होगये ॥ ६५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अ.रा.उ.

दायक रामायण
करता है, वह
उस पुरुषको
श्रीरामचन्द्रजी

भक्त्या प
अतिप्रसन्न
श्रद्धान्वित
उमामहे

देवताभी प्र
पाठ करत
कजाजानी
थात्मजभा

श्रीमद्भागवत [illegible] धिनी–व्याख्यासह

[illegible] लोगोंको विदित हो कि हमने श्रीमद्भागवत ब[illegible] टीकासहित दूसरी बार छापया है. श्रीभागवतका [illegible] –रसिकरंजनी–वीरराघवी–तोषणी–सुदर्शनी–चक्र[illegible] दीपिका–विजयध्वजी–भावार्थदीपिका आदि बहुतसी [illegible] हैं। उनमें विजयध्वजकृत और श्रीधरस्वामीकी भावार्थदीपिका ए दो टीका छप गई हैं। परंतु ए दोनो टीका टिप्पणी [illegible] तथा एक मायावादानुकूल होनेसे और दूसरी द्वैतमात्रको प्रतिपादन करनेवाली होनेसे पुष्टिमार्गविभावित अंतःकरण और भाग[illegible] [illegible]णप्रेप्सु सज्जन जनोंको उन दोनोंके ग्रहणमें मंदादर देख भक्तिमार्गकमलमंडनविभाकर (सूर्य) श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंकी कृपा[illegible] [illegible]बोधिनी पदार्थादिबोधनधुरंधर सरल और अधिक विस्तारसे रहित गोस्वामी श्रीगोपालरायतनुज श्रीमद्गिरिधररायजी [illegible] [illegible]लप्रबोधिनीको पठन पाठनादि द्वारा प्रचार करना चाहते हैं। इसके गुणगण प्रत्यक्ष हैं अतएव हम हथकंगनके जवाह[illegible] [illegible]वत विद्वानोंके समक्ष इसकी प्रशंसा नहीं करा चाहते. परंतु इतना अवश्य कहेंगे कि श्रीधर–स्वामिकृतटीकाके [illegible] सुननेवाले वैष्णवजन इसकी आवश्यकताको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। बहुतसे महानुभाव वैष्णव इस [illegible] [illegible]क थे। परंतु प्राचीन पुस्तकादिक तथा शोधक विद्वानोंकी सहायता पाकरही इसकी प्रथमावृत्ति छपी थी। [illegible] यह द्वितीयावृत्ति छापी है। मूलके साथ (९००[illegible]००) नब्बे हजार ग्रंथका छापना बहुश्रम साध्य है यह आप[illegible] उत्तम पुष्ट चिकने स्वच्छ पत्रोंमें बढ़िया टाईपमें छपी है. सुबोधिनीकी अपेक्षा यह (बालप्रबोधिनी) स[illegible] [illegible]ी है तथा अनुकूल अर्थ करती है। बालकोंको प्रबोध करानेसेही इसकी बालप्रबोधिनी [illegible] थोड़ा अर्थात् केवल १६ रु. रक्खा गया है. पोष्टव्यय अलग लगेगा.

हरिप्र[illegible]

७१ ॥ जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करताहै अथवा श्रव[illegible] श्रवण करता है अथवा लिखत[illegible] अथवा उस पुरुषके [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ इति भाषाटीकासहितं श्रीमदध्यात्मरामायणं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri